पशुधन और कुक्कुट पालन

इस पूरक खण्ड के अनुवादक

डा देवनारायण पाण्डेय
पशुचिकित्सा विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

डा दीपिका कौल
प्राणि विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

श्री जनार्दन स्वरूप शर्मा
स्योहारा, जिला बिजनौर
उत्तर प्रदेश

डा रमेशचन्द्र तिवारी
कृषि रसायन विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

श्री जोगेन्द्र सक्सेना
उपसूचना अधिकारी
वै औ अ प
नई दिल्ली

श्री तुलसीदास नागपाल
पी आई डी, नई दिल्ली-12

विषय-सूची

चित्र-सूची

पशुधन
और
कुक्कुट पालन

पशुधन

विषय-प्रवेश

भारतवर्ष मे कुल मिलाकर 34 43 करोड पशु है इनमे 22 84 करोड गाय-भैस, 10 76 करोड भेड-बकरी, 50 लाख सुग्रर तथा 34 लाख घोडे, खच्चर, गधे और ऊँट जातीय पशु है इनके अतिरिक्त 11 49 करोड मुर्गियाँ भी है भारतवर्ष मे पाये जाने वाले गो तथा भैस जातीय पशुओ की सख्या विश्व की अनुमानित 111 5 करोड पशु सख्या की 20% है

इतने अधिक पशु होते हुए भी, जिनमे विश्व के लगभग 50% भैस जातीय पशु, 20% गोजातीय पशु तथा 16 7% बकरियाँ सम्मिलित है, भारतवर्ष मे दूध का उत्पादन केवल 1 98 करोड टन है यहाँ प्रति व्यक्ति दूध की औसत खपत केवल 130 ग्रा प्रति दिन है, जबकि यह मात्रा स्विटजरलैड मे 741 ग्रा , न्यूजीलैड मे 637 ग्रा , अमेरिका मे 623 ग्रा तथा इगलैड मे 509 ग्रा है विश्व का यह औसत 303 ग्रा है अन्य देशो की तुलना मे भारतीय पशुओ की दुग्धोत्पादन-क्षमता बहुत कम है भारतीय गाय एक वर्ष मे औसतन 173 किग्रा दूध देती है, जबकि डेनमार्क की गाय औसतन 3,710, स्विटजरलैड की 3,250, अमेरिका की 3,280 तथा इगलैड की 2,900 किग्रा दूध देती है प्राप्त जानकारी के अनुसार भारतवर्ष की आजकल की दुधारू गायो मे से 94 3% गाये नित्य 1 किग्रा से कम दूध देती है, तथा केवल 0 4% गाये ऐसी है जो 2 किग्रा से अधिक दूध देती है भैसो मे से 19 2% एक किग्रा से कम दूध देने वाली तथा 18 8% नित्य 2 किग्रा से अधिक दूध देने वाली है

पशुधन की अन्य प्रजातियो की स्थिति निम्नाकित है यद्यपि भेडो की सख्या की दृष्टि से विश्व मे भारतवर्ष का 5 वाँ स्थान है, किन्तु इनमे ऊन का उत्पादन बहुत ही कम होता है साथ ही इनसे प्राप्त ऊन अधिकाशत निम्न श्रेणी का होता है यह बालयुक्त तथा खुरदरा होता है तथा अच्छे कपडे बुनने के योग्य नही होता भारतवर्ष मे प्रति भेड ऊन का वार्षिक औसत उत्पादन केवल 700 ग्रा है जबकि कुछ विदेशी नस्ल की भेडे एक वर्ष मे 5 से 7 किग्रा तक ऊन देती है जहाँ तक मास-उत्पादन का सम्बन्ध है भारतीय भेडो का औसत शरीर भार 25 से 30 किग्रा तक होता है, जबकि विदेशी भेडे इनसे तीन गुनी भारी होती है

प्राप्त आँकडो के अनुसार 1965 मे सपूर्ण विश्व मे भेड-बकरियो से प्राप्त होने वाले मास की मात्रा 5,923 हजार टन थी, जिसमे से 357 हजार टन भारतवर्ष मे, 1,000 हजार टन रूस मे, 295 हजार टन अमेरिका मे तथा 239 हजार टन इगलैड मे उत्पादित हुआ था सम्पूर्ण विश्व के सुअरो से प्राप्त होने वाले मास की मात्रा 31,453 हजार टन थी, जिसमे से रूस के 4,100, अमेरिका के 5,064 तथा इगलैड के 900 हजार टन की तुलना मे भारत का योगदान केवल 20 हजार टन था

जहाँ तक कुक्कुट-पालन का सम्बन्ध है अन्य देशो की तुलना मे भारतवर्ष मे जनसख्या के आधार पर बहुत ही कम मुर्गियाँ पाली जाती है प्रति 100 व्यक्तियो पर डेनमार्क मे 540, कनाडा मे 373, अमेरिका मे 286, इगलैड मे 179 तथा अन्य यूरोपीय देशो मे 150 से 200 तक पक्षी पाले जाते है, जबकि भारतवर्ष मे प्रति 100 मनुष्यो पर केवल 26 मुर्गियाँ पाली जाती है एक भारतीय मुर्गी वर्ष-भर मे औसतन 60 अण्डे देती है जबकि अमेरिका की **ह्वाइट लेगहार्न** तथा **रोड आइलैड रेड** नस्ल की मुर्गियो का वार्षिक औसत उत्पादन क्रमश 193 तथा 212 अण्डे है देश की यह सख्या विश्व की वार्षिक औसत सख्या (130 अण्डे) की आधे मे भी कम है भारत मे इस समय प्रति मनुष्य प्रति वर्ष 12 अण्डे उपलब्ध होते है, जबकि अमेरिका मे यही सख्या 295, कनाडा मे 282 तथा पश्चिमी जर्मनी मे 249 है

इसी प्रकार, भारतवर्ष मे विभिन्न प्रकार की मुर्गियो से उपलब्ध मास की वार्षिक खपत 131 ग्रा प्रति मनुष्य है, जबकि अमेरिका मे यह 13 18 किग्रा तथा अन्य यूरोपीय देशो मे 2 47 किग्रा है

भारतवर्ष मे पशुधन का पालन-पोषण विभिन्न प्रकार की प्रतिकूल जलवायु तथा वातावरण की परिस्थितियो मे किया जाता है यहाँ का पशु-पालन व्यवसाय छोटे-छोटे किसानो के हाथ मे है जिनमे से अधिकाश कृपक अपनी कृपि के मूल धन्धे के साथ इसे सहायक व्यवसाय के रूप मे अपनाते है साधारण किसान 3 हेक्टर से कम भूमि पर छोटे-छोटे खेतो मे 2–3 पशु रखकर अपना जीवन-यापन करता है यूरोप के कुछ देशो मे औसत झुड मे पशुओ की सख्या 30 से अधिक होती है

केवल खराब जलवायु, चरागाहो का अभाव, अन्य पारिस्थितिक कारक, क्रय-विक्रय की सुविधाओ का अभाव, विपणन सुविधाओ की अपर्याप्तता के अतिरिक्त प्रमुख रूप से वर्तमान पशुधन का खराब जीन रूप तथा चारे-दाने के अत्यन्त अभाव आदि से भारतवर्ष मे पशुधन व्यवसाय की उन्नति तथा विकास मे बाधा उत्पन्न होती है वर्तमान काल मे प्रमुख रूप से चारे-दाने की कमी से ही भारतीय पशुधन की उत्पादन-क्षमता मे अवरोध उत्पन्न हो रहा है हमारी वार्षिक अनुमानित आवश्यकता 9 54 करोड टन दाना तथा 86 978 करोड टन सूखा चारा है जिसमे से भारत

मे उपलब्ध हरे चारे के अतिरिक्त केवल 1 736 करोड टन दाना तथा 30 89 करोड टन सूखा चारा ही प्रति वर्ष जुट पाता है भारतवर्ष मे पशुधन की प्रति इकाई पर केवल 0 06 हेक्टर भूमि स्थायी चरागाह के रूप मे उपलब्ध है जबकि ऑस्ट्रेलिया तथा अमेरिका के लिये यही ऑकडे क्रमश 14 59 तथा 2 04 हेक्टर है आजकल खाद्य एव अखाद्य फसले उगायी जाने वाली भूमि का 4% से भी कम अश चारा उगाने के लिये प्रयुक्त होता है जो भारतवर्ष की इतनी बडी पशु सख्या को खिलाने के लिये अत्यन्त अपर्याप्त है

अत यह स्पष्ट है कि पशु सख्या इतनी अधिक होने पर भी देश की अर्थ-व्यवस्था मे पशुधन का योगदान उसकी सख्या के अनुरूप नही है भारतवर्ष की कुल राष्ट्रीय आय का 11 83% पशुधन मे प्राप्त होता है 1960–61 मे पशु-उत्पादो मे प्राप्त होने वाली कुल अनुमानित आय 1,592 72 करोड रु थी इसमे से 988 34 करोड रु दूध तथा दूध मे बने पदार्थो से, 120 01 करोड रु मास तथा मास उत्पादो से, 42 8 करोड रु खाल तथा चमडे से, 66 91 करोड रु मुर्गियो तथा अण्डो से, 12 74 करोड रु ऊन तथा बालो से, 262 8 करोड रु गोबर मे तथा 99 11 करोड रु की आय अन्य उत्पादो मे हुयी थी

भारतवर्ष मे कृषि से होने वाली मूल आय का 18 3% पशुधन से प्राप्त होता है देश की इतनी बडी पशु सख्या को देखते हुये यह योगदान काफी कम है इसकी तुलना में यह आय डेनमार्क मे 82%, आयरलैंड मे 81%, स्वीडन में 79% तथा इगलैंड और नार्वे मे प्रत्येक देश मे 78% होती है अभी हाल के कुछ वर्षो मे पशुओं के प्रवर्धन की ओर अधिक ध्यान दिया गया है तथा देश के विभिन्न भागो मे इस दिशा मे किये गये कार्यो से यह स्पष्ट हो गया है कि यदि पशुओं का प्रवर्धन वैज्ञानिक ढग मे किया जाय तो भारतीय पशुओं की उत्पादन-क्षमता मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो सकती है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उनका योगदान काफी बढ सकता है

1966 मे हुयी दसवी पचवर्षीय पशु गणना के लेखो मे भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशो मे विभिन्न जाति के पशुओं की सख्या का विवरण मिलता है ये ऑकडे सारणी 1 मे दिये गये है

गो तथा भैंस जातीय पशु

भारतवर्ष मे काफी बडी सख्या मे गो तथा भैंस जातीय पशु है 1961–62 की पशुगणना के अनुसार गो तथा भैंस जाति के पशु पूरे विश्व मे 111 5 करोड और भारत मे 22 68 करोड (20 35%) थे किन्तु पशु-उद्योग का उत्पादन मान इतना बडी पशु सख्या के अनुरूप नही है प्रशासकीय सचिवालय के सांख्यिकी विभाग के सशोधित आकलन के अनुसार 1960–61 मे, धन के रूप मे इसका अनुमानित योगदान 1160 करोड रु था

भारत की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे पशुओं का योगदान महत्वपूर्ण है आज भी कृषि कार्यो के हेतु आवश्यक शक्ति बैलो से ही मिलती है और अधिकाश लोगो की खुराक मे पशु-प्रोटीन का प्रमुख स्रोत दूध ही है जुताई, खुदाई, फसल की कटाई, मडाई, सिचाई के लिए तथा कृषि-उत्पादो को बाजार तक पहुँचाने आदि अनेक कार्यो मे बैलो का प्रयोग होता है इसके अतिरिक्त पशु अपने गोबर की खाद से भूमि को उपजाऊ बनाते है तथा खाल और चमडा भी प्रदान करते है, इसीलिए भारतवर्ष मे गायो तथा बैलो को कृषि की आधारशिला माना गया है भारतवर्ष, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार को सबसे बडी मात्रा मे खाले तथा चमडे बेचता है और इनकी बिक्री से काफी विदेशी मुद्रा अर्जित होती है पशुओं के सीग, खुर तथा हड्डिया कारखानो मे अस्थि-चूर्ण तथा अन्य सामान बनाने मे प्रयुक्त होती है अस्थि-चूर्ण को खनिज-पूरक के रूप मे पशु-खाद्यो में मिलाया जाता है और उर्वरक के रूप मे भी डाला जाता है पशु-उद्योग छोटी-छोटी असख्य इकाइयो के रूप मे पूरे देश मे फैला हुआ है इसलिये उसका सही मूल्यांकन करना काफी कठिन है भारतीय कृषि मे पशुश्रम के रूप मे, पशुधन का एक महत्वपूर्ण योगदान है खेती में इस श्रम का अनुमानित मूल्य 300 से 500 करोड रु होगा भूमि की उर्वरा शक्ति बढाने में पशुओं से लगभग 270 करोड रु के मूल्य की सामग्री मिलती है

भारतीय पशुओ में अनावृष्टि, पशु-प्लेग तथा किलनियो से लगने वाले रोगो के प्रति प्रतिरोध शक्ति होती है इसमे विदेशी बाजारो मे इनका बहुत अच्छा मान है इसी कारण यूरोपीय पशुपालको ने भारतवर्ष के ककुदधारी देशी ढोरो (जेबू पशुओं) का प्रयोग अपने यहाँ के पशुओ मे सकरण कराने के लिये किया जिससे और भी अच्छे पशु पैदा हो सकें जिनमे भारतीय पशुओ की सहिष्णुता तथा रोगप्रतिरोध क्षमता और यूरोपीय पशुओ की उत्पादन क्षमता हो ऐसा करने मे यह पता लगा कि भारतीय पशुओं के 20% प्रभेद उनके शरीर मे पहुँचकर उन्हे उष्ण-कटिबन्धीय वातावरण की विषमताओ मे रहने के योग्य बना देते है

भारतीय ककुदधारी पशु, बॉस इडिकस लिनियस [बैल, गाय, गऊ, ढोर, डॉगर (सींग वाले पशु), दुधार (दूध देने वाली गाय)] (कुल बोविडी, उपकुल बोविनी) यूरोप और उत्तरी एशिया के पालतू पशुओ से शारीरिक बनावट, रग तथा स्वभाव मे भिन्न होते है उनका मूल निवास स्थल अज्ञात है किन्तु ये अफ्रीका के जन्मजात जान पडते है भारतीय जन्मजात गो-पशुओं के पूर्वजो की अभी तक कोई खोज नही हो पायी है और उनका कोई जीवाश्म अभी नही मिल पाया है भारत के ककुदधारी पशु प्राय खूँख्वार हो जाते है यहाँ गो-पशुओ का पालना बहुत ही सम्मानित व्यवसाय माना जाता है तथा उनसे प्राप्त दूध, मक्खन, पनीर आदि पदार्थो को सभी वर्ग के लोग उपयोग मे लाते है देश के विभिन्न भागो मे पालतू गो-पशुओ की अनेक नस्ले पायी जाती है

1961 की पशु-गणना के अनुसार भारतवर्ष में 15 23 करोड हेक्टर कृषि योग्य भूमि के लिये 8 04 करोड गो तथा भैंस जातीय पशु थे तीन वर्ष से अधिक आयु वाली 5 1 करोड गाये तथा 2 423 करोड भैंसो को प्रजनन तथा दूध-उत्पादन के लिये रखा गया था इनमें से 2 07 करोड गाये तथा 1 25 करोड भैंसे दूध देती थी तथा शेष या तो सूखी थी अथवा एक बार भी नही ब्यायी थी सारणी 2 और 3 मे 1966 का गो तथा भैंस जातीय पशुओ का प्रादेशिक वितरण दिखाया गया है 1956 और 1961 के बीच भारतवर्ष मे गो तथा भैंस जातीय पशुओ की सख्या मे क्रमश 10 7 तथा 13 9% की वृद्धि हुयी थी 1961–1966 की अवधि मे गो जातीय पशुओ की सख्या मे कोई परिवर्तन नही

सारणी 1 – 1966 में भारतवर्ष की पशु संख्या*

राज्य	गोपशु	भैंसे	भेड	बकरी	घोडे तथा टट्टू	सुअर	ऊँट	कुक्कुट	अन्य पशु
अण्डमान एव निकोबार द्वीप समूह	10,131	8,107	26	10,131	5	21,314		98,659	
असम	65,61,997	5,79,741	73,497	15,94,571	45,848	4,22,799		1,09,84,502	2,558
आन्ध्र प्रदेश	1,23,41,889	67,90,727	80,03,869	37,58,439	48,896	5,81,871	643	1,46,14,683	68,155
उडीसा	1,03,15,762	12,62,500	11,81,726	30,45,552	65,884	1,79,027		76,81,465	14,595
उत्तर प्रदेश	2,59,86,488	1,14,37,915	25,21,372	81,26,322	2,31,510	11,56,399	49,140	36,46,900	3,12,057
केरल	28,56,727	4,71,235	11,519	11,89,218	426	1,11,928	4	99,08,987	318
गुजरात	65,43,951	31,40,432	16,51,965	27,71,339	70,403	1,657	45,670	23,24,402	1,12,488
जम्मू एव कश्मीर	17,90,842	4,28,351	11,51,896	6,05,501	65,797	485	2,303	15,34,820	34,073
तमिलनाडु	1,08,59,345	27,24,017	66,21,177	37,70,847	17,140	4,74,891	109	1,12,25,890	1,01,435
त्रिपुरा	5,33,391	48,533	2,198	1,24,009	1,247	31,182		6,36,930	225
दादरा, नगर हवेली	38,279	3,365	344	12,753	49	160		39,147	50
दिल्ली	81,667	1,03,826	5,749	13,266	7,257	10,797	2,623	1,29,417	1,839
नागालैंड	76,433	4,320	259	12,417	508	1,10,854		4,38,157	10,157
पजाव	60,24,079	50,93,739	11,96,261	13,90,544	68,467	1,43,873	2,50,710	22,09,039	1,51,136
पांडिचेरी	71,549	10,573	7,100	32,180	73	1,788		1,07,139	177
बगाल	1,25,75,911	10 42,777	6,39,509	48,34,894	27,384	1,43,676	48	1,28,18,190	1,901
बिहार	1,51,56,456	36,54,364	12,46,890	78,01,141	1,15,878	6,46,248	122	1,08,49,858	34,329
मणिपुर	2,88,476	47,411	8,420	12,460	803	73,926	-	6,22,713	12,178
मध्य प्रदेश	2,46,44,682	56,07,410	10,15,166	66,06,457	1,50,042	3,78,095	19,384	57,38,903	56,861
महाराष्ट्र	1,46,80,619	30,29,656	22,00,450	51,04,462	1,00,666	1,81,009	1,935	98,87,497	67,130
मैसूर	96,85,581	29,45,997	47,47,964	27,83,682	64,874	207,078	986	82,76,797	49,300
राजस्थान	1,31,29,427	42,05,713	88,05,274	1,05,60,899	63,166	84,336	6,53,226	8,76,452	1,98,617
लक्षदीवो, मिनिकोय एव अमोनदीवी द्वीप समूह	1,342			5,435				18,540	
हिमाचल प्रदेश	12,44,981	2,24,243	7,29,226	5,69,151	9,028	2,690	124	1,46,225	5,975
योग	17,55,20,025	5,28,64 964	4,28,21,857	6,47,36,670	11,56,351	49,66,083	10,27,027	11,49,15,311	12,35,554

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of food & Agriculture, Govt of India, 1972

हुआ इस अवधि मे भैंस जातीय पशुओं की सख्या मे भी केवल 3 2% की वृद्धि हुयी है

प्रति 100 हेक्टर कृष्य क्षेत्रफल के अनुपात मे ढोरो की सख्या 116 है और यह पजाब मे 61, महाराष्ट्र तथा गुजरात मे 283, पश्चिमी बगाल मे 188, एव उडीसा मे 162 है

विश्व की पशु सख्या की दृष्टि से भारतवर्ष का प्रमुख स्थान होने पर भी पशुपालन व्यवसाय मे रुचि रखने वाले अन्य देशो की तुलना मे पशुओं का जनसख्या से अनुपात उतना अधिक नही है (सारणी 4)

भारतवर्ष के गोपशुओं की शारीरिक बनावट तथा गठन मे काफी भिन्नता है जिसके कारण वह विभिन्न भागो मे पायी जाने वाली जलवायु के अनुकूल बन गये हैं यहाँ के पशु या तो अपने को स्थानीय जलवायु तथा भूमि के अनुकूल बना लेते है अथवा वही अच्छी तरह वृद्धि करते है जहाँ उनका जन्म तथा पालन-पोषण होता है भारतीय पशु शुष्क क्षेत्रो मे भी भली-भाँति बढते देखे गये हैं जबकि अन्य नस्लो को उपयुक्त ताप तथा आर्द्रता की आवश्यकता पडती है पजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र के कुछ भागो, तमिलनाडु, मैसूर तथा आन्ध्र प्रदेश मे भारतीय गो-पशुओं की सर्वोत्तम नस्ले पायी जाती हैं देश के पूर्वी भागो तथा तटीय क्षेत्रो मे देशी तथा कम दूध देने वाले पशु पाये जाते हैं इस प्रकार असम, पश्चिमी बगाल, उडीसा तथा केरल मे निम्न-कोटि के पशु मिलते हैं देश के अन्य भागो मे पाये जाने वाले पशुओं के गुण उपर्युक्त दोनो वर्गो के पशुओं के गुणो क बीच के होते हैं पर्वतीय क्षेत्रो मे, जहाँ वर्षा काफी अधिक होती है,

सारणी 2 – 1966 में भारतवर्ष में गोपशुओं का वितरण*

(हजार में)

प्रदेश	तीन वर्ष से ऊपर के नर पशु				तीन वर्ष से ऊपर के मादा पशु				पशु-बच्चे		योग
	प्रजनक सॉंड़	कार्य तथा प्रजनन मे प्रयुक्त वेल	केवल कार्य मे प्रयुक्त वेल	अन्य	प्रजनक गाये (दूध मे)	प्रजनक गायें (सूखी, अनन्यागी)	कार्यकारी गाये	अन्य	नर	मादा	
असम	49 98	221 54	2,155 69	82 45	1,088 61	734 52	141 89	60 25	996 31	1,012 16	6,562 00
									18 60 (अवर्गीकृत)		
अण्डमान एव निकोवार द्वीप समूह, लक्षदीवी, मिनिकोय एव अमीनदीवी द्वीप समूह	0 05	0 18	2 72	0 11	1 93	2 08	0 02	0 07	2 05	2 27	11 53
आन्ध्र प्रदेश	36 19	281 70	4,884 75	204 41	1,292 24	2,537 37	207 44	116 80	1,342 74	1,438 24	12,341 88
उड़ीसा	24 61	95 27	4,187 80	89 18	1,137 53	2,020 94	155 80	104 31	1,490 94	1,411 27	10,627 74
उत्तर प्रदेश	42.65	64 75	13,037 60	85 49	2,668 28	4,041 67	7 21	33 81	3,208 86	2,929 18	26,120 44
केरल	6 91	12 47	491 28	8 86	483 42	726 97	3 61	5 25	393 53	724 43	2,856 73
गुजरात	10 49	14 80	3,052 69	23 40	812 95	948 47	10 03	8 30	809 82	853 00	6,543 96
जम्मू एव कश्मीर	1 34	55 19	493 71	8 38	254 81	391 60	3 41	3 70	279 42	299.28	1,790 84
तमिलनाडु	66 70	592 64	4,052 79	234 94	1,194 57	1,657 10	657 83	201 79	1,095 61	1,104 37	10 859 34
त्रिपुरा	3 41	18 93	185 41	3 11	102 03	73 87	1 83	3 44	93 29	102 97	588 29
दिल्ली	0 14	0 62	27 32	0 13	15 83	8 59	0 08	0 03	11 37	11 39	75 50
पजाव	3 57	3 94	1,275 17	7 14	484 69	340 26	1 67	1 93	541 70	501 66	3,161 73
वगाल	50 45	161 56	4,585 98	110 59	2,125 42	1,957 68	38 32	51 21	1,637 82	1,856 88	12,575 91
विहार	13 84	78 58	6,781 02	57 28	1,395 12	2,419.24	193 72	91 69	2,050 69	2,060 27	15,156 45
मणिपुर	3 94	16 79	85 35	8 67	31 30	26 13	24 76	5 86	45 24	40 43	288 47
मध्य प्रदेश	29 44	119 12	8,949 14	105 34	2,622 70	1,513 09	137 04	87 02	3,774 92	4,305 87	24,644 68
महाराष्ट्र	30 44	318 36	6,125 55	75 80	1,605 73	2,873 90	24 87	28 82	1,800 25	1,844 73	14,729 45
मैसूर	26 47	169 24	3,204 46	266 03	1,220 07	1,897 91	356 49	97 87	1,193 02	1,249 02	9,685 58
राजस्थान	16 86	9 10	3,994 42	71 40	1,825 34	2,953 69	6 71	14 45	1,927 74	2,303 73	13,123 44
हिमाचल प्रदेश	1 00	17 34	654 75	8 68	233 62	376 49	1 86	3 09	290 76	303 99	1,891 58
हरियाणा	5 31	2 03	934 75	6 17	351 50	259 68	1 61	2 18	331 17	362 43	2 226 80
योग	423 79	2,254 12	69,132 44	1,458 47	20,948 75	30,761 25	1,981 23	921 87	23,243 25	24,718 57	1,75,862 34
									18 60 (अवर्गीकृत)		

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics Ministry of Food & Agriculture, Govt of India, 1972

सारणी 3 – 1966 में भारतवर्ष में भैंस वशज पशुओ का वितरण*
(हजार मे)

प्रदेश	तीन वर्ष से ऊपर के नर पशु				तीन वर्ष से ऊपर के मादा पशु				पशु-वच्चे		योग
	प्रजनक सांड	कार्य तथा प्रजनन मे प्रयुक्त	केवल कार्य मे प्रयुक्त	अन्य	प्रजनक भैंसे (दूध मे)	भैंसे (सूखी, अनव्यायी)	कार्यकारी भैंसे	अन्य	नर	मादा	
अण्डमान एव निकोवार द्वीप समूह	0 01	0 45	3 59	0 03	1 00	1 03	0 06	0 01	0 84	1 08	8 10
असम	*13 41*	*41 47*	*175 44*	*10 19*	*80 67*	*78 56*	*26 60*	*7 60*	*72 19*	*73 40*	*579 74*†
आन्ध्र प्रदेश	24 95	114 59	1,241 86	78 99	1,544 78	1,569 38	56 09	48 41	873 43	1,238 25	6,790 73
उडीसा	38 78	64 36	475 76	19 28	131 09	206 26	38 41	15 94	136 17	142 81	1,268 86
उत्तर प्रदेश	36 20	39 70	1,337 69	14 90	3,029 16	2,925 52	20 63	15 82	1,383 19	2,622 67	11,425 48
केरल	1 09	5 02	241 05	6 70	66 70	61 93	4 59	1 58	41 89	40 72	471 24
गुजरात	8 24	2 66	21 38	2 72	1,015 94	785 10	13 20	5 61	208 44	1,077 14	3,140 43
चडीगढ	0 03	0 00	0 01	0 00	5 96	4 61	0 00	0 00	0 79	5 12	16 52
जम्मू एव कश्मीर	3 13	4 75	33 73	0 73	115 03	127 68	3 78	0 69	37 29	101 54	428 35
तमिलनाडु	65 11	97 51	284 40	54 80	687 63	542 99	64 53	51 11	383 17	492 77	2,724 02
त्रिपुरा	0 97	5 21	10 68	1 17	7 71	9 75	1 67	0 57	5 08	6 94	49 75
दादरा ओर नगर हवेली	0 02	0 15	1 64	0 03	0 26	0 53	0 00	0 01	0 36‡	0 36‡	3 36
दिल्ली	0 20	0 59	0 47	0 05	48 45	14 95	0 16	0 03	13 21	25 30	103 41
पजाव	4 09	34 71	211 22	1 10	861 20	625 35	24 67	2 86	360 95	857 11	2,983 26
पाण्डिचेरी	0 02	0 02	0 83	0 04	3 01	2 84	0 05	0 01	1 51	2 24	10 57
वगाल	7 58	38 81	471 04	14 82	161 22	115 29	8 16	8 08	103 55	114 23	1,042 78
विहार	44 76	75 73	596 08	15 45	701 64	871 71	64 78	24 55	493 01	766 65	3,654 36
मणिपुर	5 82	3 73	7 64	1 53	4 62	4 89	5 05	1 03	6 21	6 89	47 41
मध्य प्रदेश	25 69	17 33	1,185 68	8 13	1,025 69	1,277 74	13 90	25 26	763 18	1,264 81	5,607 41
महाराष्ट्र	15 85	27 54	288 68	7 62	855 01	855 73	14 93	9 41	316 45	650 70	3,041 91
मैसूर	17 70	33 50	213 66	24 50	837 68	833 37	16 69	19 08	342 29	607 53	2,946 00
राजस्थान	8 12	7 35	133 71	4 27	1,035 82	1,100 09	5 13	3 42	578 80	1,345 33	4,222 04
हरियाणा	3 88	4 41	25 81	0 69	586 34	422 56	1 55	0 74	253 74	635 01	1,934 73
हिमाचल प्रदेश	3 57	1 71	9 71	0 66	117 63	151 94	0 77	1 49	27 39	101 49	415 36
योग	329 22	620 30	6,971 76	268 40	12,924 24	12,589 76	385 40	243 31	6,403 13	12,180 09	52,915 82

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Food & Agriculture, Govt of India, 1972
† इस सख्या मे 210 पशु सम्मिलित है जिनसे सम्वधित विस्तृत सूचना प्राप्त नहीं है ‡ अनुमानित

सारणी 4 – कुछ देशो में पशु सख्या की सघनता*

देश	पशु सख्या (हजार)	गोपशु/ (वर्ग किमी)	गोपशु/100 व्यक्तियो पर
अर्जेण्टाइना	34,010	12 3	241
आस्ट्रिया	7,187	25 8	32
ऑस्ट्रेलिया	14,184	0 2	199
कनाडा	10,759	0 1	93
डनमार्क	3,184	73 8	79
न्यूजीलैंड	4,628	1 7	268
फ्रास	14,273	2 6	35
भारतवर्ष	1,75,557	4 4	44
सयुक्त राज्य अमेरिका	81,909	10 8	58

*Mamoria, *Agricultural Problem of India*, 1961

पशु बहुत ही घटिया नस्ल के होते है छोटे कद तथा कम उत्पादन वाले अनेक देशी पशुओं के अतिरिक्त भारतवर्ष मे 26 नस्लो के गोपशु तथा 7 नस्लो की भैंसे पायी जाती हैं

भारतीय पशुओ को दुधारू, भारवाही तथा सामान्य उपयोगिता वाली नस्लो मे वर्गीकृत किया गया है उनकी शारीरिक विशेषतायें, वनावट, भारवाही एव दूध देने वाले गुण सारणी 5 मे उल्लिखित है

गोपशु

दूध देने वाली नस्लें

इन नस्लो के पशुओ का शरीर भारी, गलकम्वल तथा मुतान लटकते हुये और सींग सिर के दोनो ओर से निकलकर प्राय मुडे हुये होते हैं गिर, साहीवाल, लाल सिन्धी तथा देवनी इस समूह की कुछ प्रमुख नस्लें है.

सारणी 5 – भारतीय गोपशु तथा भैंसो की नस्लो की विशेषतायें एव शारीरिक गठन*

नस्ल	विभेदी विशिष्टतायें	रग	शारीरिक माप (मी)			शरीर भार (किग्रा)	भारवाही तथा दुधारु गुण
			ऊचाई	लम्बाई	हृतघेरा		
दूध देने वाली नस्लें			गोपशु				
गिर	सुगठित शरीर, उभरा हुआ तथा चौडा मस्तक, टेढे तथा पीछे को मुडे हुये सीग, लम्बे तथा लटकते हुये कान, लम्बी तथा कोडे जैसी पूँछ तथा उभरी हुयी नितम्ब अस्थियाँ	लाल और सफेद से लेकर काला तथा सफेद अथवा बिल्कुल ही लाल या बिल्कुल सफेद	नर 1 35 मादा 1 25	1 50 1 70	1 80 1 65	544 00 385 50	इस नस्ल के बैल काफी भारी-भरकम शरीर वाले और शक्तिशाली होते है और बोझा खीचने के लिये बहुत अच्छे माने जाते है गाये अच्छी दुधारु होती है 300 दिन के दुग्धकाल मे लगभग 1,675 किग्रा दूध देती है, इनके दूध मे 4 5% वसा होती है
साहीवाल	सुडौल शरीर, ढीली त्वचा, भारी नस्ल, शरीर मासल, लम्बा, भारी तथा सुडौल, ढीली त्वचा, पैर छोटे, मस्तक चौडा, सीग ठुड्डन, कान मध्यम आकार के तथा किनारो पर काले बालो युक्त, गलकम्बल लम्बा तथा भारी, नरो मे ककुद सीधा, नितम्ब अस्थियाँ ऊँची तथा दूर-दूर, पूँछ लम्बी, तथा कोडे जैसी तथा अयन बडा होता है	बादामी या चितकबरा बादामी	नर 1 70 मादा 1 25	1 45 1 35	1 85 1 70	544 00 408 25	इस नस्ल के बैल बहुत ही सुस्त तथा मट्ठर होते है गाये दूध देने के लिये सुविख्यात है सुप्रजनित गायें 300 दिन के दुग्धकाल मे लगभग 2,725 किग्रा दूध देती है इनके दूध मे 4 3–6 0% वसा होती है
लाल सिंधी	आकार मँझोला, शरीर सुडौल तथा सुगठित, ककुद भारी, गलकम्बल तथा सुतान लटकता हुआ, सीग नीचे मोटे, सिर के किनारे से निकल कर ऊपर को मुडे हुये, कान मध्यम आकार वाले तथा लटकते हुये, तथा अयन सुविकसित होता है	गहरे लाल से हल्के पीले रग तक	नर 1 30 मादा 1 20	1 40 1 35	1 75 1 55	454 00 317 50	इस नस्ल के बैल सभी प्रकार के कृषि कार्यों मे प्रयुक्त होते है गाये अधिक दूध देती है 300 से अधिक दिनो के दुग्धकाल मे इनसे 5,440 किग्रा तक दूध प्राप्त होता है जिनमे 4 9% वसा होती है
देवनी	इस नस्ल के पशु गिर जाति के पशुओ से काफी मिलते-जुलते होते है इनका आकार मँझोला, मस्तक कम उठा हुआ, गलकम्बल तथा सुतान सुविकसित, सीग बाहर तथा पीछे की ओर मुडे हुये और कान छोटे तथा लटके हुये, सिरे पर अदन्तुर होते है	काला एव सफेद अथवा लाल और सफेद धब्बे युक्त, चितकबरा, धब्बे अनियमित	नर 1 50 मादा 1 30	1 70 1 45	2 00 1 65	589 65 340 20	इस नस्ल के बैल अच्छा काम करने वाले तथा गाये दुधारु होती है 300 दिन के दुग्धकाल मे गायो का औसत दुग्धोत्पादन 1,135 किग्रा होता है

(क्रमश)

सारणी 5–क्रमश

नस्ल	विभेदी विशिष्टतायें	रंग	शारीरिक माप (मी)			शरीर भार (किग्रा)	भारवाही तथा दुधारू गुण
			ऊंचाई	लम्बाई	हृतघेरा		
भारवाही नस्लें							
नागौरी	इनका शरीर लम्बा भारी, सशक्त तथा सुगठित, पीठ सीधी, अगले तथा पिछले पुट्ठे सुविकसित, कान लम्बे तथा लटकते हुये, ककुद औसत दर्जे का, गल-कम्बल छोटा तथा देखने में अच्छा, चेहरा पतला तथा लम्बा, मस्तक चपटा, सींग औसत लम्बाई के ऊपर को उठे हुये, बाहर की ओर थोड़े घुमावदार तथा नुकीले और पूँछ औसत लम्बाई वाली होती है	सामान्यतया सफेद अथवा भूरा	नर 1 50 मादा 1 40	 1 45 1 25	 2 00 1 85	 408 00 340 20	भारतवर्ष की भारवाही गुणों वाली यह अति उपयोगी नस्ल है जिसे आमतौर पर सड़क पर तेज कार्य करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है फार्म पर रखी गयी गायें नित्य लगभग 3 65 किग्रा दूध देती है
बछौर	इनका शरीर सुगठित, पीठ सीधी पार्श्व तथा तलपेट वाला भाग गोल, मस्तक चौड़ा तथा चपटा, आँखें बड़ी-बड़ी, कान मध्यम आकार के एवं लटकते हुए, ककुद औसत आकार का, गठा हुआ एवं सुदृढ़ और पूँछ छोटी होती है	धूसर	नर 1 40 मादा 1 00	 1 20 1 15	 1 80 1 70	 385 50 317 50	इस नस्ल के पशु अपने मध्यम भारवाही गुणों के लिये सुप्रसिद्ध है गायें बहुत थोड़ा दूध देती है इनका औसत दुग्धोत्पादन लगभग 1 35 किग्रा प्रति दिन है
केनकथा	इनका शरीर सुगठित तथा छोटा, पीठ सीधी, सिर छोटा तथा चौड़ा, मस्तक दबा हुआ, पैर अच्छे तथा सुदृढ़, गलकम्बल मध्यम आकार का, सींग दृढ़ तथा बाहर की ओर निकले हुये, नुकीले, कान लटकते हुये तथा सिरे पर नुकीले, ककुद सुविकसित तथा पूँछ मध्यम लम्बी होती है	पार्श्व तथा तलपेट वाला भाग धूसर एवं शरीर के अन्य भाग गहरे धूसर	नर 1 25 मादा 1 00	 1 20 1 15	 1 80 1 70	 344 50 295 00	इस नस्ल के बैल सुदृढ़ और शक्तिशाली होते हैं गायें बहुत थोड़ा दूध देती है
मालवी	इनका शरीर छोटा, भारी तथा सुगठित, पीठ सीधी, पिछले पुट्ठे ढलवा, गल-कम्बल सुविकसित, सिर छोटा और चौड़ा, मस्तक दबा हुआ, थूथन बड़ी, सींग ऊपर को उठे हुए, सुदृढ़ एवं नुकीले, कान छोटे, नुकीले और सीधे और पूँछ की लम्बाई मध्यम होती है	सामान्यतया धूसर, जो प्रौढ़ नर पशुओं में लोहिया, ग्रीवा, कंधों, ककुद, अगले तथा पिछले पुट्ठों पर काला होता चला जाता है	नर 1 40 मादा 1 30	 1 45 1 40	 1 95 1 65	 498 95 340 20	कृषि तथा सड़क के कार्य के लिये इस नस्ल के बैल बड़े अच्छे माने जाते हैं गायें सामान्य दूध देती है प्रति दुग्धोत्पादन काल में लगभग 917 से 1,234 किग्रा दूध देती है

(क्रमश)

सारणी 5--क्रमश

नस्ल	विभेदी विशिष्टतायें		शारीरिक माप (मी)			शरीर भार (किग्रा)	भारवाही तथा दुग्धारू गुण
			ऊचाई	लम्बाई	हृतघेरा		
खेरीगढ	इनका चेहरा छोटा तथा पतला, सीग पतले तथा ऊपर को उठे हुये, ग्रॉखें चमकीली, कान छोटे, साँडो मे ककुद सुविकसित, गलकम्वल पतला तथा लटकता हुग्रा ग्रौर पूँछ लम्बी होती है	सामान्यतया सफेद	नर 1 25 मादा 1 25	 1 15 1 25	 1 75 1 50	 476 00 317 50	इस नस्ल के वैल हल्का वोझ खीचने तथा तेज भागने वाले होते है गायें वहुत थोडा दूध देती है तराई के क्षेत्र के लिये ये पशु वहुत उपयुक्त हैं
हल्लीकर	इनका शरीर सुगठित एव मासल, कद ग्रौसत, सीग तथा सिर इस नस्ल के लिये लाक्षणिक, मस्तक ऊँचा तथा वीच मे गड्ढेदार, कान नुकीले तथा छोटे, सीग पीछे की ग्रोर मुडे हुये, लम्वे तथा नुकीले, ककुद छोटा, गलकम्वल मध्यम सुविकसित, पीठ सीधी एव सुदृढ, त्वचा चमकीले वालो से युक्त तथा मुलायम ग्रोर पूँछ सुन्दर होती है	ग्रगले तथा पिछले पुट्ठो पर कालापन लिये हुये धूसर ग्रथवा गहरा धूसर रग	नर 1 35 मादा 1 20	 1 45 1 25	 1 90 1 70	 453 50 317 50	इस नस्ल के वैल मजवूत, फुर्तीले तथा खेत ग्रौर सडक पर ग्रच्छा कार्य करने वाले होते है गाये वहुत थोडा दूध देती है
ग्रमृतमहल	इनका शरीर सुगठित, सिर तथा सीग नस्ल की विशेषताग्रो के ग्रनुसार, मस्तक उठा हुग्रा तथा वीच मे गड्ढेदार, सीग सिर के सिरे से निकल कर ग्रीवा के दोनो ग्रोर पीछे तक वढकर ऊपर को मुडे हुये तथा नुकीले, कान छोटे तथा पतले, ककुद तथा गलकम्वल सुविकसित, त्वचा चिकने वालो युक्त तथा मुलायम ग्रौर पूँछ सुन्दर होती है	प्राय धूसर, कुछ का रग सफेद से काले तक, कुछ पशुग्रो मे चेहरे तथा गलकम्वल पर निश्चित ग्राकार के धूसर तथा सफेद निशान मिलते है	नर 1 30 मादा 1 25	 1 45 1 30	 1 85 1 70	 498 90 317 50	इस नस्ल के वैल काफी मजवूत तथा ग्रच्छे भारवाही गुणो वाले होते है गाये वहुत थोडा दूध देती है किन्तु इनकी प्रजनन क्षमता वहुत ग्रच्छी होती है ये ग्रपनी सहिष्णुता के लिये सुविख्यात है प्रति दुग्धकाल मे इनसे लगभग 1,012 किग्रा दूध प्राप्त होता है
खिल्लारी	मैसूर मे हल्लीकर नामक स्थान की यह नस्ल ग्रपने गुणो मे ग्रमृतमहल से वहुत कुछ मिलती-जुलती है इनका शरीर सुगठित तथा चुस्त, मस्तक थोडा-सा उठा हुग्रा, सिर वडा, सीग सिर के वीचोवीच मे निकल कर ऊपर को उठे हुये तथा लम्वे, ककुद सुविकसित, ग्राँखे वडी-वडी, कान छोटे तथा नुकीले, गलकम्वल वडा ग्रोर पूँछ ग्रपेक्षाकृत छोटी होती है	धूसर सफेद	नर . 1 35 मादा 1 25	 1 35 1 10	 1 75 1 70	 498 95 340 00	इस नस्ल के वैल वहुत ही परिश्रमी ग्रौर फुर्तीले होते है तथा सडक के कार्य के लिये वहुत उपयुक्त है गाये वहुत थोडा दूध देती हैं
वरगुर	इस नस्ल के पशुग्रो का शरीर मैसूर प्रकार की ग्रपेक्षा छोटा पर ग्रधिक सुगठित, मस्तक कुछ-कुछ उभरा हुग्रा, सीग पीछे की ग्रोर	प्राय लाल ग्रौर सफेद तथा कभी-कभी हल्का धूसर	नर 1 15 मादा 1 00	 1 35 1 25	 1 75 1 65	 340 00 295 00	इस नस्ल के वैल वहुत ही परिश्रमी, तेज तथा फुर्तीले होते है जिन्हे काम सिखाने मे वडी कठिनाई

(क्रमश)

सारणी 5—क्रमश.

नस्ल	विभेदी विशिष्टतायें	रंग	शारीरिक माप (मी)			शरीर भार (किग्रा)	भारवाही तथा दुधारू गुण
			ऊंचाई	लम्बाई	हृतघेरा		
	तथा ऊपर को बढ़े हुये, ककुद औसत आकार का, गलकम्बल पतला एवं एक समान और पूँछ छोटी होती है						पड़ती है गायें बहुत थोड़ा दूध देती हैं
कागायाम	इनका शरीर औसत लम्बाई का, पीठ सीधी, गर्दन छोटी तथा मजबूत, गलकम्बल छोटा, सिर औसत आकार का, मस्तक कुछ-कुछ उभरा हुआ, थूथन पर्याप्त चौड़ा, सींग ऊपर, बाहर तथा कुछ-कुछ अन्दर की ओर मुड़े हुये और मजबूत, कान छोटे तथा नुकीले और पूँछ औसत लम्बी होती है	प्राय धूसर अथवा सफेद	नर . 1 37 मादा . 1 35	1 60 1 40	1 90 1 70	317 50 294 80	इस नस्ल के बैल मजबूत तथा अच्छे भारवाही गुणों वाले होते हैं गायें बहुत थोड़ा दूध देती हैं इनका औसत दुग्धोत्पादन लगभग 2 8 किग्रा प्रति दिन है.
पवार	इनका चेहरा छोटा तथा पतला, कान छोटे, आँखें बड़ी-बड़ी तथा चमकीली, ककुद सुविकसित, सींग लम्बे तथा ऊपर को उठे हुये और पूँछ लम्बी तथा गावदुम होती है	सामान्यतया काला तथा सफेद	नर . 1 35 मादा 1 25	1 35 1 25	1 60 1 55	317 50 294 80	इस नस्ल के बैल गति और सहनशक्ति के लिये विख्यात हैं और खेत तथा सड़क के कार्यों के लिये बड़े अच्छे माने जाते हैं गायें बहुत थोड़ा दूध देती हैं
सीरी	इनका सिर छोटा तथा चौखुटा, मस्तक चौड़ा तथा चपटा, सींग आगे की ओर तथा थोड़ा ऊपर को बढ़े हुये एवं नुकीले, कान छोटे और ककुद अन्य जेबू नस्लों की तुलना में कुछ आगे को बढ़ा हुआ होता है	काला तथा सफेद अथवा एकदम काला	नर 1 25 मादा 1 15	1 45 1 30	1 85 1 75	453 50 362 85	इस नस्ल की चुनी हुयी गायों का 280 दिनों के दुग्धकाल में औसत दुग्धोत्पादन 1,360 किग्रा है जिसमें 6–10% वसा होती है.
सामान्य उपयोगिता वाली नस्लें :							
निमाड़ी	इनका शरीर सुगठित एवं सुडौल, सिर औसत लम्बाई का, मस्तक थोड़ा उभरा हुआ, सींग गिर नस्ल के पशुओं की भाँति पीछे की ओर निकले हुयें, शरीर भारी, पीठ सीधी, गलकम्बल औसत आकार का, ककुद सुविकसित और त्वचा पतली तथा कुछ ढीली होती है	शरीर के विभिन्न भागों पर सफेद चकत्तेयुक्त लाल रंग	नर 1 55 मादा 1 35	1 75 1.25	1 75 1 60	390 00 317 50	इस नस्ल के बैल बहुत ही सीधे तथा अच्छा कार्य करने वाले होते हैं गायें बहुत थोड़ा दूध देती हैं औसत दुग्धोत्पादन 1 35–1 80 किग्रा प्रति दिन है
डांगी	इनका आकार मँझोला, त्वचा चिकनी, सिर छोटा, मस्तक उभरा हुआ, सींग छोटे तथा मोटे और कान छोटे होते हैं	लाल और सफेद अथवा काला और सफेद	नर 1 25 मादा 1 15	1 35 1 25	1 50 1 45	362 85 294 85	इस नस्ल के बैल काफी मजबूत, मध्यम, धीमी गति के, भारवाही और पश्चिमी भारत के अधिक वर्षा वाले

(क्रमशः)

सारणी 5–क्रमश.

नस्ल	विभेदी विशिष्टतायें	रंग	शारीरिक माप (मी.)			शरीर भार (किग्रा)	भारवाही तथा दुधारू गुण
			ऊंचाई	लम्बाई	हृतघेरा		
							क्षेत्रों के लिये उपयुक्त होते हैं गायें बहुत थोडा दूध देती हैं
हरियाना	इनका शरीर सुगठित एवं सुडौल तथा औसत लम्बाई का, सिर ऊँचा, सींग छोटे तथा ऊपर को उठकर अन्दर की ओर मुड़े हुये, आँखें बडी-बडी तथा चमकीली, कान छोटे तथा कुछ-कुछ लटकते हुये, गलकम्बल छोटा, नर पशुओं में बडे आकार का ककुद, पूँछ छोटी, पतली एवं गावदुम और गायों का अयन सुविकसित होता है	सफेद अथवा हल्का धूसर	नर. 1 40 मादा. 1 30	1 50 1 35	1 95 1 70	498 95 353 80	उत्तरी भारत की यह एक सुविख्यात द्विप्रयोजनीय नस्ल है इस नस्ल के बैल शक्तिशाली तथा अच्छा कार्य करने वाले होते है ये हल जोतने तथा सडक पर यातायात के लिये तीव्र गति से कार्य करने मे उपयोगी है गायें कुछ-कुछ अच्छा दूध देती हैं, 300 दिन के दुग्धकाल में इनका औसत उत्पादन लगभग 1,140 किग्रा है कुछ फार्मो पर इनका उत्पादन 1,815 किग्रा तक देखा गया है
मेवाती (कोसी)	लम्बे, भारी तथा सुगठित शरीर वाले इस नस्ल के पशु हरियाना तथा गिर नस्ल के पशुओ से मिलते-जुलते हैं इनका चेहरा लम्बा तथा पतला, मस्तक उभरा हुआ, सिर के दोनो किनारो से बाहर की ओर निकले सींग, आँखे बडी-बडी, कान लटकते हुये, ककुद सुविकसित तथा पूँछ लम्बी होती है	सफेद	नर 1 55 मादा 1 20	1 75 1 25	1 85 1 55	385 55 326 60	इस नस्ल के बैल बहुत ही मजबूत तथा अच्छा कार्य करने वाले माने जाते है पानी खीचने, बोझा ढोने तथा अधिक जुताई के लिये ये विशेष उपयोगी है गायें सामान्य दुधारू होती है इनका औसत दुग्धोत्पादन 4 55 किग्रा प्रति दिन है
राठ	मूलरूप मे हरियाना से मिलते-जुलते इस नस्ल के पशु मँझोले आकार के तथा शक्तिशाली होते है इनका सीना बडा, शरीर सुगठित, चेहरा लम्बा, मस्तक चपटा, आँखे चौडी तथा बडी-बडी, कान छोटे एवं लटकते हुये, सीग छोटे तथा किनारे से निकले हुये, ककुद सामान्य विकसित, गलकम्बल हल्का, अगले तथा पिछले पुट्ठे सुविकसित और पूँछ छोटी तथा काले गुच्छे वाली होती है	इनके सिर पर सफेद गहरे धूसर रंग के निशान पाये जाते है	नर 1 45 मादा 1 15	1 50 1 35	1 95 1 50	385 50 326 60	इस नस्ल के बैल फुर्तीले तथा शक्तिशाली होते है ये खेत तथा सडक के सामान्य कार्य के लिये काफी उपयुक्त है इनके पालन-पोषण मे खर्च भी कम आता है गायें लगभग 4 5 किग्रा दूध प्रति दिन देती है

(क्रमश)

सारणी 5–क्रमश

नस्ल	विभेदी विशिष्टतायें	रग	शारीरिक माप (मी) ऊचाई	लम्बाई	हृतघेरा	शरीर भार (किग्रा)	भारवाही तथा दुधारू गुण
अंगोल	ढीले-ढाले शरीर वाले ये बडे आकार के पशु है इनका शरीर लम्बा, पैर लम्बे तथा गठीले, आँखो के बीच मे चौडा मस्तक, कान लम्बे, सीग गुट्ठल, गलकम्बल बडा तथा मॉसल, नर पशुओ मे सीधा एव सुविकसित ककुद होता है	इनका रग श्वेत तथा सिर पर सफेद गहरे धूसर निशान पाये जाते है	नर 1 45 मादा 1 30	 1 55 1 05	 2 00 1 75	 567 60 431 00	इस नस्ल के बैल शक्तिशाली और भारी हल खीचने तथा बोझा ढोने के लिये अधिक उपयुक्त होते है, किन्तु तेज चलने वाले नही होते गाये अच्छी दुधारू होती है 300 दिन के दुग्धकाल मे इनका औसत दुग्धोत्पादन लगभग 1,360 किग्रा है
गाओलाओ	इनका कद मध्यम, शरीर हल्का, सिर सामान्यतया लम्बा, पतला तथा सीगो की जड के पास कुछ चौडा, मस्तक प्राय चपटा, आँखे बादाम की आकृति की, कान औसत आकार के, सीग छोटे तथा गुट्ठल, गलकम्बल बडा तथा पूँछ अपेक्षाकृत छोटी होती है	सफेद अथवा हल्का धूसर	नर 1 45 मादा 1 25	 1 20 1 30	 1 85 1 70	 431 00 340 20	इस नस्ल के बैल अच्छा काम करने वाले तथा गाये कुछ अच्छा दूध देने वाली होती है 250 दिन के दुग्धकाल मे इनका औसत दुग्धोत्पादन लगभग 816 5 किग्रा है
कृष्णा घाटी	यह नस्ल गिर, अगोल तथा स्थानीय मैसूर प्रकार की नस्लो का मिश्रण है इनका शरीर लम्बा तथा भारी, सीना बडा तथा चौडा, सिर छोटा, मस्तक उभरा हुआ, सीग छोटे, आगे से निकल कर अन्दर की ओर मुडे हुये, गलकम्बल सामान्य सुविकसित, कान छोटे तथा नुकीले होते है	धूसर श्वेत	नर 1 45 मादा 1 15	 1 50 1 25	 1 90 1 50	 498 95 340 20	इस नस्ल के बैल बहुत ही मजबूत, धीरे चलने वाले तथा भारी हल खीचने के लिये उपयुक्त होते है गाये सामान्य दुधारू होती है एक ब्यॉतकाल मे इनका औसत दुग्धोत्पादन लगभग 916 किग्रा है
थारपारकर	इनका कद औसत, सुडौल एव सुगठित; पैर छोटे, सीधे तथा मजबूत; सुगठित सन्धियाँ, चेहरा लम्बा, सिर मध्यम आकार का, मस्तक चौडा तथा चपटा अथवा आँखो के ऊपर कुछ-कुछ उभरा हुआ, आँखें बडी-बडी तथा चमकीली; कान कुछ-कुछ लम्बे, चौडे तथा आधे लटकते हुये, सीग मध्यम आकार के, अगले तथा पिछले पुट्ठे कुछ-कुछ ढलवा और पूँछ लम्बी, पतली, टखनो तक लटकती हुयी एव काले गुच्छे से युक्त होती है	सफेद अथवा धूसर	नर 1 30 मादा 1 25	 1 40 1 35	 1 85 1 65	 544 30 385 60	इस नस्ल के बैल सभी प्रकार के कृषि कार्य के लिए उपयुक्त होते है; गाये अच्छा दूध देती है; चुनी हुई ग्रामीण गायो का औसत दुग्धोत्पादन 1,360 किग्रा प्रति ब्यॉत है, कुछ फार्मो पर सुप्रजनित यूथ का औसत दुग्धोत्पादन 1,815–2,720 किग्रा है

(क्रमश)

सारणी 5–क्रमश

नस्ल	विभेदी विशिष्टतायें	रग	शारीरिक माप (मी) ऊचाई	लम्बाई	हृतघेरा	शरीर भार (किग्रा)	भारवाही तथा दुधारू गुण
कांकरेज	भारतीय नस्लो मे यह सबसे भारी नस्ल है इनका शरीर शक्तिशाली, सीना चौडा, पीठ सीधी, ककुद सुविकसित, त्वचा मोटी, गलकम्बल मध्यम आकार का; मस्तक अपेक्षाकृत चौडा, बीचोबीच थोडा-सा दबा हुआ; चेहरा छोटा, नाक थोडी ऊपर को मुडी हुयी और पूँछ औसत लम्बाई की काली गुच्छेदार	धूसर श्वेत से लेकर लोहिया अथवा स्टील जैसा काला	नर· 1 55 मादा: 1 30	 1 60 1 40	 2 00 1 75	 589 60 430 90	इस नस्ल के पशु तेज, शक्तिशाली एव अच्छे भारवाही गुणो वाले होते है गाये अच्छा दूध देती है प्रति ब्यांत इनका औसत दुग्धोत्पादन 1,360 किग्रा है
			भैस जातीय पशु				
मुर्रा	इनका शरीर भारी, सिर अपेक्षाकृत हल्का, सीग छोटे तथा छल्लेदार, अयन सुविकसित, नितम्ब चौडे, अगले तथा पिछले पुट्ठे ढलवाँ और पूँछ लम्बी तथा टखनो तक लटकती हुयी होती है	रग गहरा काला, तथा पूँछ, मुँह एव शरीर के किनारे वाले भागो पर सफेद धब्बे होते है	नर 1 45 मादा 1 35	 1 50 1 45	 2 25 2 20	 567 00 431 00	इस नस्ल की भैसे काफी अधिक दूध देती है जिनमे अधिक वसा होती है कुछ फार्मो पर रखी गयी सुप्रजनित भैसे 300 दिन के दुग्धकाल मे 2,270 किग्रा तक दूध देती देखी गयी है
भदावरी	इनका कद मध्यम, शरीर फानाकार, सिर अपेक्षाकृत छोटा, पैर छोटे तथा मजबूत, खुर काले, भैसो मे पिछले पुट्ठे अगले पुट्ठो की अपेक्षा भारी तथा ऊँचे; शरीर पर बहुत थोडे बाल तथा पूँछ लम्बी, पतली, लचीली एव पिछले घुटनो तक लटकती हुयी, काले तथा सफेद अथवा बिल्कुल सफेद गुच्छे वाली होती है	ताँबे जैसा	नर 1 30 मादा 1 25	 1 40 1 35	 1 85 1 80	 476 30 385 50	नर पशु बोझ ढोने के काम आते है काली नस्लो की अपेक्षा ये अधिक गर्मी सहन कर सकते है भैसे अच्छा दूध देती है औसत दैनिक दुग्ध मात्रा 3 50 किग्रा है इनके दूध मे चिकनाई की प्रतिशतता बहुत अधिक होती है
जाफराबादी	इनका शरीर लम्बा, गलकम्बल ढीला, मादा पशु कुछ-कुछ ढीले-ढाले, सिर तथा गर्दन वाला भाग भारी, मस्तक खूब उठा हुआ, सीग भारी तथा गर्दन के दोनो ओर लटकते हुये किन्तु मुर्रा की अपेक्षा बहुत थोडे मुडे हुये तथा अयन सुविकसित होता हे	प्राय काला	नर 1 45 मादा 1 40	 1 65 1 65	 1 90 1 85	 590 00 454 00	इस नस्ल के नर पशु भारी बोझा खीचने के काम आते है भैसे काफी अच्छी दुधारू होती है ये प्रति ब्याँत काफी अच्छी चिकनाई वाला 2,450 किग्रा दूध देती है
सूरती	इनका शरीर सुडौल, कद मध्यम, फानाकार बेलनाकार, सिर लम्बा तथा चौडा एव सीगो के बीच गोल, पीठ सीधी, आँखे बडी-बडी,	इनका रग काला अथवा बादामी होता है तथा जबडे के चारो ओर और	नर 1 30 मादा 1 25	 1 42 1 35	 1 85 1 75	 499 00 408 00	इस नस्ल की भैसे थोडा दूध देती है फार्म पर रखे गये सुप्रजनित पशुओ के 300 दिन ब्याँतकाल

(क्रमशः)

सारणी 5—क्रमश

नस्ल	विभेदी विशिष्टतायें	रंग	शारीरिक माप (मी)			शरीर भार (किग्रा.)	भारवाही तथा दुधारू गुण
			ऊंचाई	लम्बाई	हृतघेरा		
	सीग हसिये के आकार के, साधारण लम्बे तथा चपटे और पूँछ काफी लम्बी तथा सफेद गुच्छे वाली होती है	अधर वक्ष के पास एक-एक सफेद धारी होती है					मे औसत दुग्धोत्पादन 1,655 किग्रा होता है
मेहसाना	इनका शरीर मुर्रा की अपेक्षा लम्बा; पैर हल्के; सिर लम्बा तथा भारी; सीग मुर्रा की अपेक्षा सिरे पर कम मुडे हुये किन्तु लम्बे और अयन सुविकसित होता है	काला या बादामी धूसर तथा चेहरे, पैरो अथवा पूँछ के सिरे पर सफेद निशान	नर 1 45 मादा. 1 35	 1 75 1 55	 2 10 2 10	 567 00 431 00	इस नस्ल की भैंसे अच्छी दुधारू होती हैं ये शहर मे दुग्धोत्पादन के लिये बडी उपयुक्त मानी जाती है प्रति ब्यॉत इनका औसत दुग्धोत्पादन 1,360 किग्रा है
नागपुरी अथवा एलिचपुरी	अन्य भैंसो की अपेक्षा इस नस्ल के पशु अपनी शारीरिक बनावट मे कुछ अधिक ऊँचे होते हैं इनका सामान्य रूप मुर्रा से भिन्न होता है सीग लम्बे, चपटे तथा मुडे हुये, चेहरा लम्बा तथा पतला, ग्रीवा कुछ लम्बी, पैर हल्के और पूँछ पिछले घुटनो से थोडा नीचे लटकती हुयी अपेक्षाकृत छोटी होती है	इनका रग प्राय काला होता है किन्तु कभी-कभी कुछ पशुओ के मुँह, पैरो तथा पूँछ के गुच्छे पर सफेद चकत्ते भी मिलते हैं	नर 1 42 मादा 1 32	 1 75 1 45	 2 10 2 00	 522 00 408 00	इस नस्ल के नर पशु धीमी प्रकृति के होते हैं और भारी कार्य के लिये प्रयुक्त होते हैं भैंसे अच्छी दुधारू होती हैं इनका प्रति दिन का औसत दुग्धोत्पादन 5 50–7 25 किग्रा. है
नीली-रावी	इनका सिर लम्बा ऊपर उठा हुआ, मस्तक का आँखो के मध्य वाला भाग नीचे दबा हुआ; थूयन पतला; कद मध्यम, सीग छोटे तथा छल्लेदार; ग्रीवा लम्बी तथा पतली, अयन सुविकसित और पूँछ जमीन को छूती हुयी काफी लम्बी होती है	रग प्राय काला होता है और मस्तक, चेहरे, थूयन तथा पैरो पर सफेद निशान होते हैं	नर 1 35 मादा 1 35	 1 55 1 45	 2 25 2 25	 567 00 454 00	इस नस्ल के नर पशु भारी बोझा खीचने के काम आते हैं भैंसे अधिक दूध देने वाली होती हैं प्रति ब्यॉत इनका औसत दुग्धोत्पादन 1,585 किग्रा है

*Agriculture and Animal Husbandry in India (I C A R , New Delhi), 1958, Zebu Cattle of India and Pakistan (F A O , Rome), 1953, Harbans Singh, A Handbook of Animal Husbandry for Extension Workers (Directorate of Extension, Ministry of Food & Agriculture, New Delhi), 1963, Definitions of the Characteristics of Cattle and Buffalo Breeds in India, *Bull Indian Coun agric Res*, No 86, 1960.

गिर—सम्भवत गुजरात में दक्षिणी काठियावाड के गिर जगलो से निकलने वाली यह नस्ल भारतवर्ष मे पायी जाने वाली श्रेष्ठतम दुधारू नस्लो में से एक है सम्पूर्ण गुजरात तथा महाराष्ट्र एव राजस्थान के समीपवर्ती प्रक्षेत्रो मे इस नस्ल के लगभग विशुद्ध पशु देखने को मिलते हैं पश्चिमी राजस्थान के एक बडे हिस्से, बडौदा तथा महाराष्ट्र के उत्तरी भाग में इस नस्ल के अशुद्ध पशु मिलते हैं उपयुक्त चरागाह की तलाश में दूर-दूर तक जाने की आदत के कारण निकटवर्ती क्षेत्रो की विभिन्न नस्लो मे गिर नस्ल का मिश्रण पाया जाता है

गिर नस्ल की गाये अच्छी दुधारू होती हैं. 325 दिन के दुग्धकाल मे इनका अधिकतम उत्पादन 3,175 किग्रा है सुव्यवस्थित यूथ औसतन 1,675 किग्रा दूध देते हैं तमिलनाडु के होसुर फार्म पर तथा गुजरात के मोर्वी फार्म पर रखी गयी इस नस्ल की गाये क्रमश. 6 0 तथा 5 0 किग्रा दूध नित्य देती हैं सैनिक फार्म, पूना पर रखे गये यूथ का उत्पादन कीर्तिमान 7 5 किग्रा दूध प्रति दिन प्रति गाय रहा है महाराष्ट्र तथा गुजरात के अन्य क्षेत्रो मे इस नस्ल के पशुओ का उत्पादन 2 25 – 4 50 किग्रा है

इस नस्ल के बैल भारी, शक्तिशाली किन्तु धीमी प्रकृति के होते हैं बोझा ढोने के लिये इनका अधिक प्रयोग होता है

मास की दृष्टि से भी गिर नस्ल के पशु भारतवर्ष मे श्रेष्ठतम है अत वहाँ के स्थानीय पशुओ में मासोत्पादन सम्बन्धी गुणो के सुधार हेतु इन्हे विदेशो को भी भेजा जाता है

साहीवाल—इस नस्ल का मूल स्थान पाकिस्तान का माण्टगोमरी जिला है आजकल यह पजाब तथा उन अन्य प्रदेशो मे पाली जाती है जहाँ शहरो के लिये दुग्धपूर्ति परियोजनाये कार्यान्वित हैं अपने अधिक दुधारू गुणो तथा भारतवर्ष के सभी भागो मे भली-भाँति वृद्धि कर सकने की क्षमता रखने के कारण इस नस्ल के अनेक विशुद्ध यूथ पजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश और विहार मे पाले जाते है

300 दिन के दुग्धकाल मे इस नस्ल का औसत दुग्धोत्पादन 2,725–3,175 किग्रा है कुछ गाये सामान्यतया 4,535 किग्रा तक दूध देती है

इस नस्ल के बैल बहुत ही सुस्त तथा ढीले-ढाले होते है किन्तु मन्द कार्य के लिये उपयुक्त होते है

प्रजनन कार्य हेतु ससार के विभिन्न उष्णकटिबन्धीय देशो मे इस नस्ल के विशुद्ध वशागत साँडो की बहुत माँग है

लाल सिन्धी—पाकिस्तान के सिन्ध प्रदेश मे कोहिस्तान से प्रारम्भ होने वाली यह नस्ल भारतवर्ष के गोपशुओ की एक विशिष्ट नस्ल है मूल स्थान वाले क्षेत्रो मे ही इस नस्ल के विशुद्ध पशु मिलते हैं तथा अन्य स्थानो मे धूसर रग वाले पशुओ से रक्त का सम्मिश्रण हो जाने के कारण यह नस्ल अशुद्ध अवस्था मे प्राप्त होती है लाल सिन्धी नस्ल के पशु सिन्ध प्रदेश के काफी वडे क्षेत्र तथा भारत के सीमावर्ती जनपदो मे पाये जाते हैं

सिन्धी गाये लाभप्रद और अधिक दुधारू होती है तथा भारतीय नस्लो मे दुग्धोत्पादन की दृष्टि से साहीवाल के बाद इनका दूसरा स्थान है 300 दिन के दुग्धकाल मे ये 5,440 किग्रा तक दूध देती है सुव्यवस्थित यूथ का औसत दुग्धोत्पादन 1,725 किग्रा है भारतवर्ष की उन्नत सिन्धी गायो का दैनिक औसत दुग्धोत्पादन 4 5–6 5 किग्रा प्रति गाय है ये लगभग नियमित रूप से गर्भित होती तथा बच्चे देती रहती है

सिन्धी नस्ल के बैलो का आकार मध्यम, शरीर मासल तथा सुगठित और मासपेशियाँ तथा हड्डियाँ मजबूत होती है ये अच्छे भारवाही गुणो वाले और खेत तथा सडक दोनो कार्यों के लिये उपयोगी हैं

कद मे छोटे, विभिन्न प्रकार की जलवायु मे वृद्धि कर सकने का गुण तथा सामान्य रोगो के प्रति प्रतिरोध शक्ति होने के कारण सिन्धी नस्ल के पशु भारतवर्ष के कुछ भागो, विशेषकर असम, उडीसा, केरल तथा तमिलनाडु के कुछ क्षेत्रो मे स्थानीय पशुओ की नस्ल सुधारने के लिये वडी सख्या मे प्रयोग किये जाते हैं कोरिया, मलाया, ब्राजील, क्यूवा, ब्रह्मा, श्रीलका, जापान तथा फिलीपीन्स द्वीप समूहो मे भी इनकी वडी माँग है सिन्धी नस्ल के अनेक विशुद्ध यूथ वर्षो से भारतवर्ष के व्यक्तिगत, सहकारी समितियो तथा राजकीय फार्मो पर रखे गये हैं राजकीय फार्म, होसुर, राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल, सैनिक फार्म, वगलौर तथा हैदराबाद, और कृषि सस्थान, इलाहाबाद में इस नस्ल के वहुत ही अच्छे यूथ रखे गये है

देवनी—इस नस्ल के पशु आन्ध्र प्रदेश के उत्तरी-पश्चिमी तथा पश्चिमी भागो मे पाये जाते है ये अपने कद तथा चितकवरे रग मे गिर नस्ल से मिलते-जुलते है तथा इनमे अन्य नस्लो का मिश्रण भी हो सकता है

इस नस्ल की गाये कुछ अच्छी दूध देने वाली होती है ये 300 दिन के दुग्धकाल मे लगभग 1,135 किग्रा दूध देती है. फार्मो पर रखी गयी सुप्रजनित गाये इसी अवधि मे 1,580 किग्रा. तक दूध देती है देवनी नस्ल के बैल भारी काम के लिये बहुत अच्छे होते हैं तथा सघन खेती के लिये विशेषकर उपयोगी है

महाराष्ट्र के उदगिर फार्म पर इस नस्ल की विशुद्ध प्रजातियाँ विकसित की जा रही है

भारवाही नस्लें

इन नस्लो की गाये वहुत थोडा दूध देती है किन्तु बैल भारवाही कार्यो के लिये अच्छे होते हैं भारतवर्ष मे 80% से अधिक किसान कृषि कार्यो के लिये बैलो पर ही निर्भर रहते हैं फार्मो पर रखे गये पशुओ मे से लगभग 42% भारवाही होते हैं फार्म पर रखे गये बैलो के खाली समय का उपयोग फार्म यातायात तथा ग्रामीण उद्योग-धन्धो मे होता है 1961 मे कार्य करने वाले बैलों की सख्या 6 87 करोड अनुमानित की गयी थी

भारवाही नस्ले चार प्रकार की होती है (1) छोटे सीग वाले सफेद अथवा हल्के धूसर रग के पशु जिनका चेहरा तथा खोपडी लम्बी एव वनावट कुछ-कुछ उन्नतोदर होती है (2) वीणा के आकार के सीग वाले धूसर पशु जिनका मस्तक चौडा, आँखे वडी-वडी, वनावट चपटी अथवा दवी हुयी, शरीर भारी तथा कार्य करने की क्षमता वहुत अधिक होती है (3) मैसूर प्रकार के पशु जिनका मस्तक वडा तथा सीग एक दूसरे के पास से निकल कर लम्बे तथा नुकीले होते है (4) छोटे कद के काले, लाल अथवा काले-भूरे रग के पशु जिनके शरीर पर प्राय सफेद रग के वडे-वडे चकत्ते होते है तथा सीग छोटे अथवा कुछ-कुछ वीणा के आकार के होते है

(1) **नागौरी** तथा **बछौर** नस्ले पहले प्रकार के भारवाही गुणो वाले पशुओ के अति उत्तम उदाहरण हैं **नागौरी** भारतवर्ष की सुप्रसिद्ध दौडने वाली नस्ल है जो प्राचीन जोधपुर रियासत (राजस्थान) के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र मे पायी जाती है इस शुष्क क्षेत्र मे कृषको द्वारा बहुत ही सावधानी से इनका प्रजनन कराया जाता है इस नस्ल मे धूसर रक्त का सम्मिश्रण भी मिलता है फार्म पर रखी गयी गाये नित्य 3 65 किग्रा दूध देती हैं बैल काफी बडे कद के तथा तेज भागने वाले होते है ये सडक के द्रुतगामी कार्य के लिये काफी उपयुक्त होते हैं गहरी बलुई जमीन के लिये इनकी विशेष उपयोगिता है

बछौर प्रमुखतया एक भारवाही गुणो वाली नस्ल है जो विहार प्रदेश मे दरभगा के बछौर परगना, भागलपुर के कोइलपुर परगना, मुजफ्फरपुर की सीतामढी तहसील और चम्पारन जिले मे पायी जाती है इस नस्ल की गाये वहुत कम दूध देती है इनका औसत दुग्धोत्पादन 1 35 किग्रा प्रति दिन है बैल बहुत अच्छा कार्य करने वाले होते हैं यह नस्ल केवल स्थानीय महत्व की है तथा अन्य धूसर नस्लो की अपेक्षा यह कम सुविख्यात है

(2) **केनकठा, मालवी** तथा **खेरीगढ** नस्ले भारवाही गुणो मे दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत आती है **केनकठा या केंवरिया** नस्ल के पशु उत्तर प्रदेश के बांदा जिले की केन नदी के किनारे के क्षेत्र तथा मध्य प्रदेश के कुछ भागो मे पाये जाते है इस नस्ल के बैल छोटे किन्तु सुदृढ तथा शक्तिशाली होते है वे सडक तथा खेत का हल्का कार्य करने के लिये बडे अच्छे माने जाते है गाये बहुत थोडा दूध देती है

मालवी नस्ल मध्य भारत के शुष्क मालवा क्षेत्र एव मध्य प्रदेश तथा हैदराबाद के कुछ भागो मे पायी जाती है कृषि तथा यातायात के हल्के एव मध्यम कार्य के लिये इस नस्ल के पशु बडे अच्छे माने जाते है इनको खिलाने मे व्यय कम होता है तथा ये विभिन्न जलवायु तथा मिट्टी वाली परिस्थितियो मे वृद्धि कर सकते है गाये सामान्य दूध देती है

खेरीगढ अपेक्षाकृत एक अविख्यात नस्ल हे जो सरयू और मोहन के बीच वाले भाग, घाघरा के उत्तर तथा लखीमपुर के परगना खेरीगढ और उत्तर प्रदेश के खीरी जिले मे पायी जाती हे इस नस्ल के बैल हल्के कार्य तथा भगाने के लिये अच्छे होते है ये बहुत ही चुस्त होते है तथा केवल चरागाह पर चरकर ही जीवित रह सकते है तराई के क्षेत्र के लिये ये बहुत उपयुक्त है गाये बहुत थोडा दूध देती है

(3) **हल्लीकर, अमृतमहल, खिल्लारी, वरगुर** तथा **कांगायाम** नस्ले मैसूर प्रकार के भारवाही पशु है जो बहुत ही मजबूत तथा सडक के तेज कार्य के लिये उपयुक्त होते है गाये बहुत थोडा दूध देती है

हल्लीकर मैसूर की सुविख्यात भारवाही नस्ल हे इसका मूल स्थान तमकुर, हसन तथा मैसूर है कुछ गुणो मे यह **अमृतमहल** से मिलती-जुलती है इस नस्ल के बैल सुदृढ, जोशीले, तेज तथा सडक और खेत पर जमकर काम करने वाले होते है

अमृतमहल भारत की सुप्रसिद्ध भारवाही नस्ल हे इसका मूल स्थान मैसूर है इस नस्ल के पशु छोटे तथा फुर्तीले होते है और अपनी सहिष्णुता के लिये प्रसिद्ध है अपने वाह्य गुणो मे ये मैसूर प्रकार से काफी मिलते-जुलते है इनके सिर तथा सीगो की बनावट विशिष्ट प्रकार की होती है इनकी हल्लीकर, खिल्लारी और कांगायाम नस्लो के साथ तुलना की जा सकती हे यह नस्ल तेज कार्य के लिये बहुत ही उपयुक्त है और सडक तथा कृषि कार्य मे सक्षम है इस नस्ल के पशु कभी-कभी बहुत ही क्रोधित होते देखे जाते है राजकीय फार्म, आजमपुर पर रखे गये अभिलेखो के अनुसार इस नस्ल की गायो का औसत दुग्धोत्पादन 1 6 किग्रा प्रति दिन है

खिल्लारी नस्ल के पशु प्रमुख तौर पर महाराष्ट्र के दक्षिणी भागो, विशेषकर आशिक रूप से शोलापुर तथा सतारा जिलो एव सतपुडा क्षेत्र मे, पाले जाते है मध्यम कद की भारवाही गुणो वाली यह एक प्रसिद्ध नस्ल है यह मैसूर की अमृतमहल तथा हल्लीकर नस्लो से मिलती-जुलती है इस नस्ल के बैल बहुत ही शक्तिशाली तथा तेज कार्य करने वाले होते है ये बहुत ही परिश्रमी, चारे के अभाव मे थोडा खाकर जीवित रहने वाले तथा सडक अथवा खेत पर बहुत ही साहस से काम करने वाले होते है इस नस्ल के पशु अकाल की परिस्थितियो मे भी जीवित रहने की क्षमता रखते है, और इस कारण इनका बहुत बडा महत्व है इस नस्ल के पशु श्रीलका भी भेजे गये है, जहाँ स्थानीय पशुओ मे भारवाही गुणो के सुधार हेतु इनसे प्रजनन कराया जाता है

वरगुर नस्ल के पशु तमिलनाडु के कोयम्बटूर जिले के भवानी तालुके के वरगुर के पर्वतीय जगलो मे पाले जाते है देखने मे यह नस्ल हल्लीकर मे काफी मिलती-जुलती है इस नस्ल के पशु छोटे, सुगठित शरीर वाले तथा आकर्षक होते है ये बैल क्रोधी होते है और साहस, मजबूती तथा चाल मे अद्वितीय माने जाते है

कांगायाम भारत की एक अन्य लोकप्रिय नस्ल है जो प्रमुख तौर पर तमिलनाडु के कोयम्बटूर जिले मे पायी जाती है यह नस्ल मैसूर नस्लो से सम्बन्धित है तथा देखने मे उनसे मिलती-जुलती है इस नस्ल के पशु औसत कद के तथा कार्य करने मे तेज होते है , गायें कम दूध देती है तथा एक दुग्धकाल मे इनसे औसत 816 5 किग्रा दूध प्राप्त होता है कांगायाम पशुओ का अनेक पीढियो से वैज्ञानिक ढग से प्रजनन कराया गया है इस नस्ल के बैल शक्तिशाली भारवाही गुणो वाले होते है और इनके रख-रखाव मे व्यय भी कम होता है. दक्षिण भारत तथा श्रीलका मे कार्य के लिये इनको बहुत बडी सख्या मे खरीदा जाता है

(4) **पवार** तथा **सीरी** नस्ले भी अच्छे भारवाही गुणो वाली होती है ये फुर्तीली तथा हल्का हल खीचने एव अन्य कार्यो के लिये उपयुक्त होती है गाये बहुत थोडा दूध देती है

पवार नस्ल उत्तर प्रदेश के पीलीभीत जिले की पूरनपुर तहसील और खीरी जिले के उत्तरी-पश्चिमी भागो में मिलती है. बैल अपनी तेजी और सामर्थ्य के लिये प्रसिद्ध है और खेती तथा बोझ ढोने के लिये अच्छे है गाये थोडा दूध देती है

सीरी नस्ल दार्जिलिंग, सिक्किम और भूटान के पर्वतीय क्षेत्रो मे पायी जाती है कडाके की सर्दी तथा वर्षा से बचाव के लिये पशुओ के शरीर पर बालो की एक मोटी परत होती हे इस नस्ल के बैल विशेपकर पहाडी क्षेत्रो मे 375–670 किग्रा भार की गाडियाँ खीचने के काम आते है घर पर बाँधकर खिलाने से इस नस्ल की गाये कुछ अच्छा दूध देती है चुनी हुयी गाये 280 दिन के दुग्धकाल मे औसतन 1,360 किग्रा दूध देती है साधारण परिस्थितियो मे ये नित्य केवल 1 35–1 80 किग्रा दूध देती है

सामान्य उपयोगिता वाली नस्लें

इन नस्लो के पशु द्विप्रयोजनीय या दुकाजी होते है गाये थोडा अच्छा दूध देती है तथा बैल अच्छा कार्य करने वाले होते है देश मे विशिष्ट उद्देश्यो मे पाले गये गाय-भैस जाति के पशुओ की सख्या का कुल पशु सख्या से अनुपात अपेक्षाकृत काफी कम है 1961 की पशु गणना के अनुसार देश के कृषक 17 5 करोड बैलो तथा 5 1 करोड भैसो के विशाल समूह को कृषि कार्य के प्रयोग मे लाते है

फार्मो का औसत आकार, वितरण तथा वहाँ रहने वाले पशुओ की सख्या कुछ भी क्यो न हो, महाराष्ट्र, पजाब तथा पश्चिमी बगाल, इन तीनो प्रदेशो मे किये गये सर्वेक्षणो के अनुसार यहाँ के फार्मो पर कार्य करने वाले, दूध देने वाले तथा अन्य पशुओ का अनुपात एक जैसा ही है फार्मो पर लगभग 42% पशु कार्य करने वाले है तथा शेप 58% में दूध देने वाले तथा अन्य पशु लगभग बराबर के अनुपात मे है किसान, कार्य करने वाले पशुओ को अधिक पसद करते है तथा दुधारू पशु दूध देने की अपेक्षा अच्छे बैल पैदा करने की दृष्टि से रखे जाते है

सामान्य उपयोगिता वाली नस्लों के पशु दो प्रकार के होते हैं . (1) छोटे सीग वाले सफेद अथवा हल्के धूसर रग के पशु जिनका चेहरा तथा खोपडी लम्बी एव बनावट कुछ-कुछ उन्नतोदर होती है , (2) वीणा के आकार के सीग वाले धूसर रग के पशु जिनका मस्तक चौडा, आँखे बडी-बडी, बनावट चपटी अथवा दवी हुयी, शरीर भारी तथा कार्य करने की क्षमता बहुत अधिक होती है

(1) **निमाडी, डांगी, हरियाना, मेवाती (कोसी), राठ, अंगोल, गाम्रोलाम्रो** तथा **कृष्णाघाटी** नस्ले पहले प्रकार की सामान्य उपयोगिता वाली नस्लों के उदाहरण हैं **निमाडी** नस्ल मध्य प्रदेश के निमाड़ जिले, नर्मदा घाटी तथा प्राचीन इन्दौर राज्य (जो अब मध्य प्रदेश मे सम्मिलित है) के खारगॉन जिले मे पायी जाती है इस क्षेत्र मे यह नस्ल अपनी विशुद्ध अवस्था में मिलती है तथा अन्य स्थानो पर गिर और खिल्लारी नस्लो के साथ मिली-जुली पायी जाती है यह खारगोनी नस्ल के नाम से भी जानी जाती है पशु-पालन व्यवसायी इसी क्षेत्र मे इनका प्रजनन करवाते हैं सम्भवत यह नस्ल स्थानीय पशुओ और गुजरात की गिर नस्ल के साथ मिश्रण होने से निकली है निमाडी नस्ल के पशु कार्य करने तथा दुग्धोत्पादन दोनो ही दृष्टि से अच्छे होते हैं एक दुग्धकाल मे इनका औसत दुग्धोत्पादन 915 किग्रा है बैल बहुत ही शक्तिशाली तथा अच्छा काम करने वाले होते है और विशेषकर पानी खीचने के लिये प्रयोग मे लाये जाते है महाराष्ट्र के गिलिगान पशु प्रजनन फार्म, पिम्पिल (जलगाव जिला), गगापुरी पशु प्रजनन फार्म, जमनास (जलगाव जिला) और शहादा तालुक (धुलिया जिला) मे पाटिलवादी फार्म पर इस नस्ल के विशुद्ध वशागत यूथ रखे जाते है

डांगी एक छोटी सी नस्ल है जो अहमदनगर जिले के अकोला तालुके, पुराने खानदेश जिले के सोनखद तालुके, नासिक के घाटो, महाराष्ट्र के थाना और कोलावा जिलो, धरमपुर, जवाहर, डॉग्स और बनसदा की पुरानी रियासतो मे पायी जाती है इस नस्ल के पशु बहुत ही मजबूत होते हैं तथा पर्वतीय इलाको एव अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो में भली-भाँति बढते है

व्यावसायिक पशु-पालक तथा स्थानीय कृषक दोनो ही इस नस्ल के पशुओ को पालते हैं सम्भवत स्थानीय पशुओ का गिर नस्ल के पशुओ से प्रजनन करा कर यह नस्ल निकाली गयी है दुग्धोत्पादन तथा भारवाही गुणो के अध्ययन एव विकास हेतु तथा पशु-प्रजनको को विशुद्ध नस्ल वाले सांड देने के लिये 1946-47 मे महाराष्ट्र के नासिक जिले के इगतपुरी नामक स्थान पर एक राजकीय पशु-प्रजनन केन्द्र की स्थापना की गयी

इस नस्ल के बैल बहुत ही मजबूत तथा पश्चिमी भारत के अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो के लिये अत्यन्त उपयुक्त है ये काम करने मे चुस्त होते हैं तथा तराई के क्षेत्रो मे धान की खेती और यातायात के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं बछडो को बचपन मे ही वधिया करके बैल बनाने के लिये पाला जाता है गाये बहुत थोडा दूध देती हैं प्रति गाय औसत दुग्धोत्पादन 1 35–1 80 किग्रा होता है मैसूर के धारवाड जिले तथा महाराष्ट्र के नासिक जिले के फार्मो पर रखी गयी गायो का प्रति दिन का औसत दुग्धोत्पादन लगभग 3 5 किग्रा है

हरियाना भारतवर्ष मे गोपशुओ की बहुत ही प्रमुख नस्ल है और सम्पूर्ण देश मे प्रथम श्रेणी की द्विप्रयोजनीय नस्ल मानी जाती है विशेषकर इस नस्ल के पशु हरियाणा प्रदेश के रोहतक, हिसार, करनाल तथा गुडगांव जिलो तथा दिल्ली राज्य में पाले जाते हैं हिसार जिले मे पाये जाने वाले पशु अपनी शारीरिक बनावट मे विशुद्ध **हरियाना** नस्ल से कुछ भिन्न होते हैं और इनका नाम **हिसार** नस्ल रखा गया है अपनी विशुद्ध अवस्था मे हरियाना नस्ल के पशु पजाब तथा राजस्थान के कुछ भागो, विशेषकर अलवर तथा भरतपुर जिलो मे और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रजनित किये जाते हैं हरियाना पशुओ का शरीर बहुत ही सुगठित तथा सुडौल होता है इस नस्ल के बैल अच्छे कार्य करने वाले होते हैं

हरियाना गाये अच्छी दुधारू होती हैं 300 दिन के दुग्धकाल मे एक गाय प्रति दिन औसतन 1 15 किग्रा दूध देती है चुने हुये यूथो का औसत दुग्धोत्पादन 4 5 किग्रा प्रति गाय प्रति दिन है इस नस्ल के पशु बडी सख्या मे दुग्धोत्पादन के लिये अपने मूल स्थान से कलकत्ता जैसे बडे-बडे शहरो को तथा दुग्धोत्पादन एव कार्य करने के लिये उत्तर प्रदेश, बिहार और उडीसा जैसे अन्य प्रदेशो को भेजे जाते हैं कई राजकीय फार्मो पर हरियाना नस्ल के विशुद्ध यूथ रखे गये हैं इनमे से सर्वोत्तम तथा सबसे बडा यूथ कलकत्ता के निकट हेरिंघाटा फार्म पर पाला गया है

मेवाती (कोसी) नस्ल के पशु उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले के कोसी क्षेत्र और राजस्थान के अलवर तथा भरतपुर जिलो मे पाये जाते हैं वे कद मे हरियाना से छोटे होते हैं किन्तु इनमे गिर नस्ल के रक्त का सम्मिश्रण होता है इस नस्ल के बैल बहुत ही शक्तिशाली तथा सीधे होते हैं और भारी हल खीचने तथा बैलगाडी मे चलने के लिये बहुत उपयुक्त माने जाते हैं गाये कुछ अच्छी दुधारू होती हैं और प्रत्येक गाय औसतन नित्य 4 5 किग्रा दूध देती है

राठ नस्ल राजस्थान में अलवर के उत्तरी एव पश्चिमी भागो तथा निकटवर्ती क्षेत्रो मे पायी जाती है सम्भवत यह नस्ल **नागौरी, हरियाना** तथा **मेवाती (कोसी)** नस्लो का सम्मिश्रण है देखने मे ये हरियाना नस्ल के समान होते हैं पशु सुगठित शरीर वाले, मध्यम कद के तथा शक्तिशाली होते हैं और मध्यम भारी हल खीचने तथा बैलगाडी मे जोतने के काम आते हैं गाये कुछ अच्छी दुधारू होती है और 4 5 किग्रा की मात्रा मे प्रति दिन दूध देती हैं इस नस्ल के पशु प्राय कृष्य भूमि पर ही पाले जाते हैं

अगोल (नेल्लोर) नस्ल के पशु आन्ध्र प्रदेश के नेल्लोर तथा गुटूर जिलो मे पाये जाते है इन दोनो जिलो मे सर्वत्र बहुत बडी सख्या मे इस नस्ल के विशुद्ध पशु पाये जाते हैं यहाँ के किसान इन्हे विशेष प्रकार से उगाये हुये चारे तथा अनाज की फसलो के अवशेषो पर पालते है अधिकतर ये गुटूर जिले मे पाले जाते है

कार्य तथा दुग्धोत्पादन की दृष्टि से अगोल भारतवर्ष की सर्वोत्तम नस्लो मे से एक है इस नस्ल के बैल बहुत ही शक्तिशाली तथा भारी हल एव गाडी खीचने के उपयुक्त होते है, किन्तु अधिक भागने वाले नही होते गाये अच्छी दुधारू होती हैं राजकीय फार्मो पर रखी गयी गायो का प्रति दिन का औसत दुग्धोत्पादन 2 25 किग्रा है एक दुग्धकाल मे इनका औसत उत्पादन 1,360 किग्रा है कुछ पशु 3 5–5 0 किग्रा तक दूध देते देखे गये हैं

यूरोप के स्थानीय पशुओ के सुधार हेतु अगोल नस्ल के पशु काफी बडी सख्या मे अमेरिका तथा अन्य देशो को भी भेजे गये हैं अन्य देशी (जेबू) पशुओ की भाँति इनमे बीमारियों के प्रति प्रतिरोध शक्ति, सुदृढता तथा थोडे एव सूखे चारे पर पलने की

क्षमता आदि गुण होते हैं ये गुण अन्य देशों में मांस उत्पादन हेतु उपयुक्त नस्ल पैदा करने में काफी सहायक सिद्ध हुये हैं

गाओलाओ नस्ल अधिकतर छिंदवाडा, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के उत्तरी वर्धा और नागपुर जिलों में पायी जाती है इस नस्ल के पशु मध्यम कद के तथा हल्के शरीर वाले होते हैं बैल अच्छा कार्य करने वाले तथा गाये मध्यम दुधारू होती हैं इनका प्रति दिन का अधिकतम दुग्धोत्पादन 7 5 किग्रा तक देखा गया है

कृष्णावाटी नस्ल, बम्बई तथा हैदराबाद के सीमा-क्षेत्र में बहने वाली कृष्णा नदी के किनारे कपास की काली मिट्टी वाले क्षेत्र में पायी जाती है इस नस्ल के पूर्णतया शुद्ध होने में सदेह है क्योंकि इनमें मैसूर प्रकार के पशुओं के रक्त के सम्मिश्रण के लक्षण मिलते हैं

इस नस्ल के बैल काफी शक्तिशाली होते है तथा बोझभरी गाडी अथवा भारी हल खींचने के लिये उपयुक्त हैं ये अच्छा काम करते हैं इससे इनको काफी महत्व दिया जाता है गाये थोडा दूध देती हैं एक दुग्धकाल में इनका औसत दुग्धोत्पादन लगभग 916 किग्रा है

(2) **थारपारकर** तथा **काँकरेज** भारतवर्ष की दो प्रमुख द्विप्रयोजनीय नस्लें हैं जिनमें द्वितीय प्रकार के अन्तर्गत वर्णित पशुओं के गुण मिलते हैं **थारपारकर** एक बाहरी नस्ल है जो पाकिस्तान में दक्षिणी-पश्चिमी सिन्ध के अर्ध-रेगिस्तानी इलाके की मूलवासी है इस नस्ल के पशु कच्छ, जोधपुर तथा जैसलमेर के कुछ कम विकसित फार्मों पर भी पाये जाते हैं **थारपारकर** अथवा **थारी** नस्ल के पशुओं का कद मध्यम, शरीर सुगठित तथा पैर गठीले, सीधे एव मजबूत होते हैं अमरकोट, नौकोट, धोरो नारो एव छोड के बलुई टीबो वाले क्षेत्र में इस नस्ल के विशुद्ध पशु मिलते हैं थारपारकर पशुओं का सर्वोत्तम यूथ केन्द्रीय सरकारी फार्म, करनाल पर रखा गया है, जहाँ इनका नियंत्रित प्रजनन कराकर अनेक पीढियाँ प्राप्त की जा चुकी हैं भारत के अन्य फार्मों पर भी इस नस्ल के कुछ पशु पाले जाते हैं

थारपारकर भारतवर्ष की बहुत ही अच्छी द्विप्रयोजनीय नस्ल सिद्ध हुयी है इस नस्ल के बैल हल जोतने तथा गाडी खींचने के लिये बहुत ही अच्छे माने जाते हैं और गाये अच्छी दुधारू होती है कुछ फार्मों पर 300 दिन के दुग्धकाल में इन पशुओं से 1,815–2,720 किग्रा दूध प्राप्त हुआ है और अधिकतम उत्पादन 4,375 किग्रा तक देखा गया है औसत दुग्धोत्पादन लगभग 1,360 किग्रा है कुछ पशुओं का प्रति दिन का औसत दुग्धोत्पादन 7 5 किग्रा तक है

काँकरेज भारतवर्ष के गोपशुओं की बहुत ही अच्छी नस्ल है इस नस्ल के विशुद्ध पशु गुजरात में अहमदाबाद जिले के कच्छ की खाडी के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र तथा पूर्व में दीसा से लेकर पश्चिम में प्राचीन रधनपुर राज्य तक, विशेषकर बनास और सरस्वती नदियों के किनारे पाये जाते हैं **काँकरेज** अथवा **वाघियर,** पशुओं की सुप्रजनित नस्ल है और अपनी तेज चाल, शक्तिशाली कार्य और भारवाही गुणों के कारण बहुत अच्छी मानी जाती है हल जोतने तथा गाडी में चलने के लिये इस नस्ल के पशु बडे उपयोगी होते हैं सूरत, काठियावाड तथा बडौदा में इस नस्ल के पशुओं का बडी सख्या में प्रयोग होता है गाये अच्छी दुधारू होती हैं फार्मो पर रखी गयी गाये एक दुग्धकाल में औसतन 1,360 किग्रा दूध देती हैं गाँवो में रखी जाने वाली गायो का उत्पादन इनसे कम होता है कुछ गायो का प्रतिदिन का दुग्धोत्पादन 4 5–6 5 किग्रा है

व्यवसायी पशु-पालको द्वारा भी काँकरेज नस्ल के पशुओं का प्रजनन कराया जाता है काँकरेज का प्रमुख प्रजनन क्षेत्र तराई की भूमि है तथा समुद्रतल की ऊँचाई से नीचे वाले कुछ स्थानों पर भी इस नस्ल के पशु पाये जाते हैं इस नस्ल के विकास में दो बातो का योगदान महत्वपूर्ण है और ये हैं–छरोदी फार्म पर पाले गये विशुद्ध साँडो का ग्रामीण क्षेत्रों में प्रयोग तथा कुछ वर्षों पूर्व भूतपूर्व बम्बई सरकार द्वारा चलायी गयी यूथ पुस्तिका पंजीकरण की पद्धति कृषि सस्थान, आनन्द (गुजरात) में किये गये प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि इस नस्ल की दूध देने की क्षमता की बडी सभावनाये हैं **हरियाना** के बाद भारतवर्ष की यह श्रेष्ठतम द्विप्रयोजनीय नस्लो में से है

गोपशुओं की विदेशी नस्लें

देशी गायो की दुग्धोत्पादन-क्षमता की वृद्धि के लिये भारतवर्ष में विदेशी नस्लो का काफी अधिक उपयोग किया गया है अब से लगभग 50–60 वर्ष पूर्व सर्वप्रथम सैनिक फार्मो पर **शार्टहॉर्न, आयरशायर** तथा **होल्स्टाइन-फ्रीजियन** जैसी सुप्रसिद्ध यूरोपीय नस्ले प्रविष्ट की गयी तत्पश्चात् अनेक अन्य विदेशी नस्लो का भी भारत में समावेश हुआ इनमें से **जर्सी, ब्राउन स्विस, गर्नसे,** तथा **जर्मन फ्लेक्वीह** (चितकबरे पर्वतीय पशु) नस्लें अधिक महत्वपूर्ण हैं **जर्सी** नस्ल की हमारे यहाँ माँग बढी है जर्सी नस्ल के साँडो के प्रवर्धन तथा सकर एव विदेशी नस्लो के उन्नत यूथो के प्रजनन हेतु भारतवर्ष में विभिन्न पर्वतीय तथा अर्धपर्वतीय स्थानों पर लगभग 20 प्रजनन फार्म स्थापित किये जा चुके हैं सैनिक फार्मो पर ऐसे सकर पशुओं के 3,500 यूथ हैं जहाँ इनके एक दुग्धकाल का अधिकतम दुग्धोत्पादन 6,000 किग्रा तथा औसत उत्पादन 2,600 किग्रा रहा है एक गाय का एक दिन का अधिकतम उत्पादन 46 किग्रा तक देखा गया है दुग्धोत्पादन की वृद्धि के लिये प्रजनन कार्य में प्रयुक्त होने वाली भारत में प्रमुख विदेशी नस्लो का विवरण नीचे दिया जा रहा है

जर्सी, यू के के जर्सी द्वीप पर विकसित की गयी डेरी पशुओं की सबसे छोटे आकार की नस्ल है जर्सी नस्ल के पशु कम खर्च पर अधिक दूध देने वाले होते हैं और इनके दूध में 5 3% वसा तथा 15% ठोस पदार्थ होते हैं 365 दिन के दुग्धकाल में इनसे अधिकतम उत्पादन 11,381 किग्रा दूध तथा 544 किग्रा वसा का रहा है भारतवर्ष की जलवायु में यह नस्ल भली-भाँति वृद्धि करती है तथा देशी गायो को जर्सी नस्ल के साँडो से गाभिन कराने के फलस्वरूप उत्पन्न सकर सतान का प्रथम पीढी में ही दुग्ध उत्पादन 2 5 गुना अधिक बढ गया है ऐसी वर्ण-सकर सतान शीघ्र वयस्कता को प्राप्त होती है तथा वह जल्दी-जल्दी बच्चे देती है कृषि सस्थान, इलाहाबाद में भी विशुद्ध नस्ल के सिन्धी पशुओं के प्रवर्धन तथा उनका **जर्सी** नस्ल के पशुओं से सकरण कराने का कार्य चल रहा है जमैका में **साहीवाल** का जर्सी से सकरण कराकर तथा उनके बच्चो में अत प्रजनन कराकर डेरी की सर्वोत्तम नस्ल निकाली गयी है जिसे **जमैका होप** कहते हैं

होल्स्टाइन-फ्रीजियन का मूल स्थान हालैंड है अनगढ बनावट वाले इन पशुओं का अयन काफी बडा होता है इस नस्ल की गाये काफी अधिक मात्रा में दूध देती हैं किन्तु अन्य पशुओं की

तुलना मे इनके दूध मे वसा कम (3 5%) होती है भारतवर्ष मे सकर गाये नित्य 46 किग्रा तक दूध देती है

श्रायरशायर, जो स्काटलैड मे विकसित की गयी है, डेरी पशुश्रो की सुन्दरतम नस्ल मानी जाती है इस नस्ल के पशु बहुत ही फुर्तीले होते है किन्तु इनको सँभालना काफी कठिन होता है ये उतना अधिक दूध अथवा मक्खन-वसा (केवल 4%) नही प्रदान करते जितना कि दुग्धशाला की कुछ अन्य नस्ले करती है

ब्राउन स्विस, जो स्विट्ज़रलैड के पर्वतीय क्षेत्रो मे विकसित की गयी थी, अन्य डेरी नस्लो की तुलना मे कम उत्तम नस्ल है इस नस्ल के पशु बडे सीधे होते है और आसानी से सँभाले जा सकते है इनके दूध मे लगभग 4% वसा होती है 365 दिन के दुग्धकाल मे प्रति दिन तीन बार दूध निकालकर अब तक इनका अधिकतम दुग्धोत्पादन 14,024 किग्रा देखा गया है

गर्नसे नस्ल का मूल स्थान फ्राँस के समुद्री तट के समीप का एक छोटा-सा द्वीप गर्नसे है अपनी शारीरिक बनावट मे ये पशु होल्स्टाइन से कम तथा जर्सी से अधिक अनगढ होते है गायो का पिछला पुट्ठा भद्दा तथा कमर का भाग कमजोर होता है जर्सी की अपेक्षा इनके अयन कम समानुपातिक होते है 365 दिन के दुग्धकाल मे इनका अधिकतम दुग्धोत्पादन 12,954 किग्रा तथा वसा (5%) 556 किग्रा रही है.

जर्मन फ्लेक्वीह् (धब्बेदार पर्वतीय पशु) नस्ल के पशु दक्षिणी तथा दक्षिणी-पश्चिमी जर्मनी मे पाले जाते है ये पशु रुक्ष पर्वतीय परिस्थितियो के लिये विशेष उपयुक्त समझे जाते है अपने इस गुण के कारण ये पशु भारतवर्ष मे लाये जाकर हिमाचल प्रदेश मे रखे गये हैं इस नस्ल की गाये अच्छी दुधारू होती है 305 दिन के दुग्धकाल मे इनका औसत दुग्धोत्पादन 4,000 किग्रा है जिसमे 4 1% वसा होती है भारतीय जलवायु तथा चारे की परिस्थितियो मे इन पशुश्रो के पालन पर विशिष्ट दृष्टि रखी जा रही है

भैंसें

वर्तमान समय मे भारतीय भैंसे देश मे दूध की पूर्ति का प्रमुख स्रोत हैं और गायो की तुलना में ये लगभग तीन गुना अधिक दूध देती हैं देश के कुल उत्पादन का आधे से अधिक दूध (1 109 करोड टन, 55%) 2 423 करोड दूध देने वाली भैंसो से प्राप्त होता है, जबकि देश की 5 1 करोड गायो से कुल दूध-उत्पादन का केवल 45% (87 5 लाख टन) प्राप्त होता है इधर कुछ काल से भारतीय डेरी उद्योग अधिकाधिक भैंसो पर ही निर्भर रहता चला आ रहा है जिसके फलस्वरूप गायो की उपेक्षा हुयी है और सहकारी एव निजी क्षेत्रो मे चल रही दुग्ध-व्यवसाय की विभिन्न प्रायोजनाश्रो से प्राप्त कुल दूध का 1% भी गाय का दूध नही होता निजी (अव्यवस्थित) दुग्ध-व्यवसाय जो अभी हाल तक पूर्वी तथा दक्षिणी प्रदेशो के शहरी उपभोक्ताश्रो को गाय का दूध देता रहा है, अब भैंस का दूध देने लगा हे भारतवर्ष के दुग्ध-व्यवसाय मे भैंस का अब प्रमुख स्थान होता जा रहा है

भारतीय भैंसे या जल भैंसे (**बुबालस बुबालिस** लिनिअस) (अरना, भैस, गेरा, एरुमाइ) देश के सभी मैदानी भागो तथा कम ऊँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रो मे पायी जाती है ये अर्ध-जलचर है तथा आर्द्र क्षेत्रो मे बहुतायत से पायी जाती हैं भारी-भरकम शरीर तथा बेढगी आकृति वाले इन पशुश्रो के पैर विशेषत छोटे तथा मोटे एव खुर काफी बडे होते है सीग मोटे, चपटे, मुडे हुये अथवा सीधे होते हैं और उन पर आयु प्रदर्शित करने वाले वलय भी पाये जाते हैं दक्षिणी तथा पश्चिमी राज्यो के विशेषकर निचले लम्बी घास वाले तराई के दलदली स्थानो को छोडकर भारतवर्ष में जगली भैंसे काफी पायी जाती है जगली मादा भैंस पालतू भैंसे से गाभिन नही होती किन्तु पालतू भैंस जगली भैंसे से शीघ्र ही गाभिन हो जाती हे इससे नस्ल में सुधार भी हो जाता है कार्य के लिये ये पशु बडे मजबूत होते है हल तथा गाडी मे चलने के लिये भैंसे प्राय बधिया कर दिये जाते है दिन की भीषण गर्मी मे इनसे अच्छा काम नही लिया जा सकता गहरे काले रग के पशुश्रो की अपेक्षा हलके बादामी रग के पशु अधिक गर्मी सहन कर सकते है गाय के दूध (4 5%) की तुलना मे भैंस के दूध मे अधिक वसा (7%) होती है मक्खन, घी, पनीर, खोवा आदि दूध के पदार्थो को बनाने मे सामान्यत भैंस का दूध ही अधिक प्रयोग किया जाता हे

भैंसो की लगभग सात देशी नस्ले अपने दुग्धोत्पादन के गुणो के कारण सुविख्यात हैं इनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है इनकी प्रमुख भौतिक विशेषताये तथा शारीरिक गठन आदि गुण सारणी 5 मे दिये गये है

भैंसो की सबसे प्रमुख नस्ल **मुर्रा** है इसका मूल स्थान हरियाणा के दक्षिणी भाग (रोहतक, करनाल, हिसार एव गुडगाँव जिले) तथा दिल्ली प्रदेश है यहाँ ये अपनी विशुद्ध अवस्था मे पायी जाती है इस नस्ल की विशेष पहचान इसके कसकर मुडे हुए सीग है मुर्रा नस्ल के पशु उत्तरी उत्तर प्रदेश से लेकर दक्षिणी पजाब तथा पाकिस्तान मे सिंध तक, अर्थात् लगभग पूरे उत्तरी भारत मे पाले जाते है विशुद्ध जातीय मुर्रा के पाले जाने का सर्वोत्तम क्षेत्र हरियाणा प्रदेश है भारत के दक्षिणी तथा अन्य भागो मे मुर्रा नस्ल के भैंसो को स्थानीय देशी भैंसो को उन्नत बनाने के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है

मुर्रा भैंसे भारतवर्ष के अति उत्तम दूध तथा वसा प्रदायक पशु हैं इनके दूध मे 7% वसा होती है इससे श्रोसत दुग्धकाल मे 1,360 से 2,270 किग्रा दूध प्राप्त होता है, तथा बहुत-सी भैंसे एक दुग्धकाल मे 3,175 किग्रा से अधिक दूध देती है इनसे प्रति दिन औसतन 6 8 किग्रा दूध मिलता है जबकि कुछ पशु 18 1 किग्रा तक दूध देते देखे गये है

मुर्रा नस्ल की भैंसो का दुग्ध-पूर्ति केन्द्रो पर बहुतायत से प्रयोग किया जाता हे देश के सैनिक डेरी फार्मो पर इस नस्ल के पशु हजारो की सख्या मे रखे जाते है वहाँ इस नस्ल का विकास किया जाता है अनेक राज्य सरकारे भी अपने राजकीय फार्मो पर मुर्रा नस्ल के पशु पालती हैं भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् ने मुर्रा नस्ल के लिये यूथ-पुस्तिका रख छोडी है

भदावरी हल्के बादामी रग की भैंसो की नस्ल है जिसका मूल-स्थान आगरा जिले (उत्तर प्रदेश) की बाह तहसील की भदावरी रियासत और भूतपूर्व ग्वालियर रियासत के निकटवर्ती क्षेत्र तथा इटावा जिले है इनसे प्रति पशु प्रति दिन औसतन लगभग 3 5 किग्रा दूध मिलता है इनके दूध में वसा की प्रतिशतता बहुत अधिक होती है. इस नस्ल के भैंसे भारवाही पशु की तरह काम आते है और काले रग के पशुश्रो की अपेक्षा अधिक गर्मी सहन कर सकते है राजकीय पशु-प्रजनन फार्म, भरारी (झाँसी) मे **भदावरी** नस्ल के पशु रखे जाते हैं

जाफरावादी भैंसे काफी भारी होती हैं ये अपनी विशुद्ध अवस्था मे गिर जगलो एव गुजरात प्रदेश मे सौराष्ट्र क्षेत्र के जाफरावाद के समीपवर्ती भागो मे पायी जाती है इन पशुओ को काफी अधिक चारे की आवश्यकता पडती है इस नस्ल के पशु बहुत अधिक वसायुक्त और अधिक मात्रा मे दूध देते हैं भैसे का उपयोग भारी बोझ खीचने के निमित्त होता है

सूरती मध्यम कद की सुडोल आकार वाली नस्ल है जिसकी पीठ सीधी तथा सीग हँसिये के समान होते हैं इसका मूल-स्थान गुजरात प्रदेश का चरोत्तर क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत कैरा जिला तथा माही और सावरमती नदियो के बीच वाले क्षेत्र आते है जो भूतपूर्व बडौदा रियासत से लगे हुये हैं इस नस्ल के विशुद्ध पशु आनन्द, नादियाद, बोरसद तथा कैरा मे पाये जाते है सूरती को **देशी** अथवा **नादियादी** नाम से भी जाना जाता है इस नस्ल के पशुओ मे दो सफेद धारियाँ पायी जाती है इनमे से एक जबडे के चारो ओर तथा दूसरी अधर-वक्ष के चारो ओर होती है

सूरती नस्ल कम खर्चे पर दूध तथा वसा देती है इससे 300 दिन के दुग्धकाल मे 7 5% वसायुक्त औसतन 1,655 किग्रा. दूध प्राप्त होता है महाराष्ट्र सरकार द्वारा **सूरती** भैसो का विशुद्ध जातीय यूथ पूना के समीप कृषि महाविद्यालय डेरी, किरकी पर रखा गया है इसमे प्रति दिन सबसे अधिक दूध वाली भैस 15 किग्रा दूध देती है

मेहसाना, मुर्रा और सूरती के बीच की एक मिश्रित नस्ल है जो गुजरात के मेहसाना जिले तथा उसके समीपवर्ती उन क्षेत्रो मे पायी जाती है जो महाराष्ट्र प्रदेश मे है इस नस्ल के पशु सामान्यतया पालनपुर, दीसा तथा बनासकठा जिले के अन्य भागो एव गुजरात के साबरकठा जिले के रधनपुर और थारड नामक स्थानो मे पाये जाते हैं इस नस्ल के पशुओ के लक्षण स्थायी न होकर स्थान-स्थान पर विभिन्नता दिखाते है मेहसाना क्षेत्र मे **मुर्रा** भैसे अब भी इनकी नस्ल सुधारने के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं मेहसाना नस्ल की भैसे अच्छी दुधारू होती हैं जो जल्दी वयस्क और नियमित रूप से गर्भित होती हैं, और काफी लम्बी अवधि तक दूध देती हैं ये पशु सरल स्वभाव के होते हैं और पशुशाला मे बाँधकर खिलाये जा सकते है ये मैदानो पर चराकर भी पाले जा सकते हैं आर्थिक दृष्टि से कम खर्चे पर दूध तथा वसा देने वाली मेहसाना नस्ल शहरो मे दूध के लिये लोकप्रिय है 300 दिन से अधिक के दुग्धकाल मे इससे 1,360–1,825 किग्रा तक दूध प्राप्त होता है घी उत्पादन की दृष्टि मे भी यह नस्ल बहुत अच्छी मानी जाती है

नागपुरी अथवा एलिचपुरी भैसे छोटे कद की, लम्बे चपटे तथा मुडे हुये सीगो वाली होती हैं यह नस्ल अपने गुणो मे **मुर्रा** से सर्वथा भिन्न होती है तथा मध्य एव दक्षिणी भारत मे, विशेषतया प्राचीन मध्य प्रदेश (अब महाराष्ट्र) के नागपुर, वर्धा और बरार जिलो मे तथा निकटवर्ती भूतपूर्व हैदराबाद राज्य के क्षेत्रो मे पायी जाती है ये पशु मुर्रा अथवा उत्तरी या पश्चिमी भारत की अन्य नस्लो की अपेक्षा अपनी शारीरिक बनावट मे हल्के तो होते हैं किन्तु दुधारू भी होते हैं इनका प्रति दिन का औसत दुग्धोत्पादन 5 50–7 25 किग्रा है नर पशु प्राय· भारी कार्य के लिये प्रयुक्त होते हैं किन्तु इनकी चाल मन्द होती है

नीली-रावी, मुर्रा नस्ल से मिलती-जुलती दो प्रकार की भैसे है जो पजाब मे सतलज और रावी नदी की घाटियो मे विशेषतया फीरोजपुर जिले मे पायी जाती हैं देखने मे ये पशु भारी लगते हैं और इनके शरीर पर सफेद निशान होते हैं प्राय इनका रग काला होता है किन्तु कुछ पशु बादामी रग के भी होते हैं इस नस्ल के सर्वोत्तम पशु फीरोजपुर जिले मे सतलज नदी के तराई वाले क्षेत्र मे, पाकपट्टन तथा मैलसी तहसीलो के दक्षिण-पश्चिम मे पाये जाते हैं ये पशु काफी सीधे होते हैं तथा पशुशाला मे बाँधकर खिलाने एव बच्चो को दूध छुडा देने पर भली-भाँति बढते रहते हैं

नीली-रावी भैसे अच्छी दुधारू हैं और 250 दिन के दुग्धकाल मे औसतन 1,585 किग्रा दूध देती हैं इस नस्ल का प्रयोग शहर मे दूध फार्मो पर **मुर्रा** के साथ-साथ होता है सैनिक डेरी फार्मो पर मुर्रा के साथ इस नस्ल के भी यूथ रखे जाते हैं भैसे भारी कार्य करने के लिये प्रयुक्त होते हैं यह दूध देने वाली नस्लो मे सर्वोत्तम है इस नस्ल की भैसे दुग्ध उत्पादन के लिये कलकत्ता तथा बम्बई जैसे दूर-दूर के शहरों तक भेजी जाती हैं भारतवर्ष मे इस नस्ल का वशावली अभिलेख कही भी नही रखा गया है

गोपशुओं तथा भैंसों का प्रबन्ध

पशुओ के रख-रखाव के ढग वातावरणीय कारको, यथा जलवायु, वर्षा, मिट्टी के प्रकार तथा उस पर उगाये जाने वाले पेड-पौधो द्वारा बहुत ही अधिक प्रभावित होते हैं अत अलग-अलग क्षेत्रो मे इन पद्धतियो मे पर्याप्त भिन्नता होती है गाय-भैसो के अच्छे रख-रखाव में खिलाये जाने के ढग तथा रोग नियन्त्रण साधनो का भी महत्वपूर्ण योगदान है

भारतवर्ष की जलवायु अधिकतर उष्णकटिबधीय है यहाँ अक्तूबर से फरवरी तक जाडा पडता है जिसमे मौसम अपेक्षाकृत सूखा रहता है, मार्च से जून तक गर्मी पडती है और अन्य तीन महीने वर्षा ऋतु के होते हैं यहाँ 38 से 380 सेमी तक तथा कुछ स्थानो मे इससे भी अधिक वर्षा होती है

जलवायु, वर्षा तथा चारे की प्राप्ति मे पर्याप्त विभिन्नता होने के कारण पशु-पालन के अन्तर्गत प्रबन्ध की पद्धतियो को सुगम करने के लिये पूरे देश को पाँच क्षेत्रो मे बाँटा गया है

शीतोष्ण हिमालयी क्षेत्र के अन्तर्गत सिक्किम, भूटान, नेपाल, कुमायूँ, गढवाल, शिमला, कुल्लू, छम्ब, कश्मीर तथा असम के पर्वतीय प्रदेश आते हैं इस क्षेत्र मे अत्यधिक वर्षा भी होती है और पाला तथा बर्फ भी पडती है इस क्षेत्र मे विशेष रूप से उद्यान लगाये जाते हैं तथा गेहूँ की खेती की जाती है

शुष्क उत्तरी क्षेत्र मे पूर्वी पजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा भूतपूर्व पेप्सू रियासत सम्मिलित हैं इस क्षेत्र मे वर्षा की मात्रा काफी कम है वनस्पति भी कम है और सिचाई करके अधिकाश खेती की जाती है

आर्द्र पूर्वी क्षेत्र के अन्तर्गत असम, पश्चिमी बगाल, बिहार, उडीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु का उत्तरी-पूर्वी भाग तथा मध्य प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र आते हैं. यहाँ वर्षा काफी अधिक होती है और धान की खेती विशेष रूप से होती है

दक्षिणी क्षेत्र मे उत्तर प्रदेश की झाँसी कमिश्नरी, मध्य प्रदेश, पूर्वी हैदराबाद, पश्चिमी तमिलनाडु, बडौदा, बम्बई तथा मैसूर का थोडा-सा भाग सम्मिलित है. यहाँ अनियमित वर्षा होती है और प्रमुख उगायी जाने वाली फसल **मिलेट** (बाजरा-ज्वार) है

समुद्र तटीय क्षेत्र मे, पूर्वी और पश्चिमी घाटो की पट्टियाँ और मैसूर, कुर्ग और केरल के भाग सम्मिलित हैं इस क्षेत्र मे भीषण वर्षा होती है और इसकी मुख्य फसल धान है पशुओ के विकास और प्रजनन की दृष्टि से यह क्षेत्र पूर्वी आर्द्र क्षेत्र के समान है

भारतवर्ष मे पशु-पालन व्यवसाय छोटे-छोटे किसानो के हाथ मे है जिनमे से अधिकाश किसान पशुओ को सहायक उद्योग के रूप मे पालते हैं उनके पास छोटे-छोटे खेत (औसतन 3 हेक्टरके) तथा दो-तीन पशु होते हैं

बरसात के दिनो को छोडकर, जब हरे चरागाह उपलब्ध होते हैं, पशुओ को बहुत कम चरने को मिलता है जो अन्य साधन उपलब्ध है वे वर्तमान पशु सख्या के लिये पर्याप्त नही है दूध तथा दुग्ध-जन्य पदार्थो के लिये हाट व्यवस्था इतनी खराब है कि किसानो को इनके विक्रय के लिये या तो दलालो की आवश्यकता पडती है जो अधिकाश लाभ स्वय खा जाते हैं अथवा अपने दूध से घी बनाकर बेचना पडता है जिसमे न्यूनतम लाभ होता है फलत पशुओ पर ध्यान नही दिया जाता, उनकी बाढ कम होती है तथा वे अन्य देशो के पशुओ की तुलना मे काफी विलम्ब से वयस्क हो पाते हैं उनके ब्याँत का अवकाश बढ जाता है और भुखमरी तथा बीमारियो मे काफी क्षति होती है अन्तत दूध का उत्पादन काफी कम हो जाता है

इन कमियो के अतिरिक्त प्रजनन के लिये अच्छे साँडो की कमी तथा पशुओ को बढने के लिये चारे-दाने की अपर्याप्त मात्रा होने से भारतवर्ष मे पशु-पालन व्यवसाय की उन्नति तथा विकास मे बाधा आयी है इन परिस्थितियो मे निजी पशु-पालक स्वस्थ पशु रख सकने मे असमर्थ हैं राजकीय फार्मो की परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत कुछ अच्छी हैं

खराब मौसम से पशुओ को बचाना होता है उन्हे ऐसे अच्छे हवादार घरो मे रखना चाहिये जहाँ सफाई, पानी तथा अन्य सुविधाये उपलब्ध हो पशुशालाओ को कुछ ऊँचे स्थानो पर बनाना चाहिये जिससे पानी का निकास अच्छा रहे और उनकी बनावट ऐसी हो कि पशुओ को आसानी से खिलाया तथा देखभाल की जा सके आयु, उपयोगिता तथा कार्य के आधार पर गायो, बडे बछडो तथा साँडो को अलग-अलग बाडो मे रखना चाहिये आमतौर पर एक गाय को 6 वमी तथा भैंस को इससे अधिक स्थान की आवश्यकता पडती है पशुशालाओ के निर्माण हेतु भारतीय मानक निर्धारित किये जा चुके हैं [IS 4466 (Pts I& II) 1967]

पशुधन फार्म, गोशालाये तथा पशु सबधी अन्य स्थान परजीवी कीटो से मुक्त होने चाहिये तथा इनको सदैव साफ-सुथरा रखना चाहिये पशुओ को ठीक दशा मे रखने तथा चर्म रोगो मे बचाने के लिये उन्हे समय-समय पर नहलाना तथा खरहरा करना चाहिये

गाभिन पशुओ को अतिरिक्त राशन देकर तथा व्यायाम के लिये नित्य चरने भेजकर उनकी भली-भाँति देखभाल करनी चाहिये ब्याने के समय गाय को स्वच्छ, आरामदेह, पुआल की बिछाली से युक्त शात स्थान मे रखना चाहिये नवजात बछडो की समुचित देखभाल करनी चाहिये तथा तीव्र बाढ के लिये उन्हे पर्याप्त राशन देना चाहिये

दुधारू पशुओ के बच्चो का प्राय एक से दो सप्ताह की आयु पर ही सीग-रोधन कर दिया जाता है जिससे उनकी देखभाल मे सुभीता हो भारतवर्ष मे अवाछित बछडो को 15 से 18 माह की आयु से पहले बधिया कर दिया जाता है ऐसे बधिया किये हुये पशुओ को घर मे रखना तथा देखभाल करना आसान हो जाता है

पशुओ को आहार देना

अन्य देशो की तुलना मे भारतवर्ष मे भली-भाँति पालन-पोषण करने तथा समुचित आहार देने के लिये पशुओ की सख्या कही अधिक है इस कारण चारे के स्रोतो एव खाने वाले पशुओ की सख्या के बीच चिन्ताजनक असतुलन उत्पन्न हो गया है दूसरे देशो मे गोमास मनुष्य के भोजन का आवश्यक अग बन जाने के कारण वहाँ चारे के स्रोतो और पशु सख्या के बीच इस प्रकार का असतुलन नही है न्यूजीलैंड जैसे सुविकसित डेरी व्यवसाय वाले देश मे गाय के वृद्ध हो जाने पर उसकी पूर्ति के लिये उसके जने गये 6 या 8 बच्चो मे से केवल एक बछिया चुनकर भली-भाँति पाली-पोसी जाती है और शेष का वध कर दिया जाता है इस प्रकार देश मे पशुओ की कुल सख्या को नियन्त्रण मे रखा जाता है भारतवर्ष मे गोमास खाने के प्रति भावात्मक विरोध है अत यहाँ न केवल उत्पादक पशुओ को बल्कि अनुत्पादक पशुओ को भी खिलाने की समस्या है अत अनुत्पादक पशुओ की वृद्धि एव विकास पर कुछ नियन्त्रण रखना आवश्यक है जिसमे कि प्रत्येक क्षेत्र मे रहने वाली पशु सख्या को समुचित मात्रा मे चारा मिल सके

भारतवर्ष मे पशुओ की खिलायी न तो पर्याप्त है और न सन्तुलित है क्योकि न तो आवश्यक आहार तथा चारे मिल पाते हैं और न जानवरो के लिये अच्छे हाट हैं जिससे अधिक अच्छे चारे-दाने मे लगाया गया धन और समय न्यायोचित प्रतीत हो देश मे उत्पादक पशुओ के विकास के लिये लाभदायक बाजार, चारे की सघन खेती, चराई के क्षेत्र तथा चरागाहो का विकास एव सुरक्षा और अतिरिक्त चारे को सुखाना अथवा साइलेज बनाकर रखना ये पूर्वापेक्षित बातें हैं

पशुओ के आहार को चारे (मोटा) तथा दाने (सान्द्र) मे वर्गीकृत किया गया है चारे मे रेशे की मात्रा अधिक किन्तु कुल पचनीय पोषण-मान निम्न होता है दाने मे रेशे की मात्रा अल्प तथा कुल पचनीय पोषण मान उच्च होता है मोटे चारो के अन्तर्गत उगाये गये चारे, सूखी घास, साइलेज तथा भूसा जैसे पदार्थ आते हैं और दाने मे अधिक कार्बोहाइड्रेट वाले अनाज, अधिक प्रोटीनयुक्त तैलीय खलियाँ, तैलीय बीज, अनाज एव पशु-उपजात सम्मिलित हैं सारणी 6 मे भारतवर्ष मे उपलब्ध होने वाले पशुओ को दिये जाने वाले विभिन्न प्रकार के आहार दिये गये हैं सारणी 7 मे कुछ प्रमुख भारतीय पशु खाद्य पदार्थो के रासायनिक सघटन एव पोषण मान दिये गये हैं

पशु द्वारा खाये जाने वाले चारे की मात्रा उसके शरीर-भार तथा उत्पादन-क्षमता पर निर्भर करती है सामान्यतया पशु अपने शरीर-भार का 2–3% शुष्क पदार्थ उपभोग कर पाते हैं दुधारू पशुओ को थोडा अधिक खिलाना पड सकता है भैंसे, गायो की अपेक्षा कुछ अधिक चारा-दाना खाती हैं पशु द्वारा उपभोग किये जाने वाले शुष्क पदार्थ का अधिकाश भाग चारे से तथा शेष दाने से प्राप्त होता है तब पशुओ के विभिन्न शरीर-भारो के लिये राशन द्वारा प्राप्त होने वाले पचनीय कच्चे प्रोटीन की मात्रा, ऊर्जा मान (स्टार्च तुल्याक तथा कुल पचनीय पोषक तत्वो) की मात्रा का पता लगा लिया जाता है (Sen, *Bull Indian Coun agric Res*, No 25, 1964, 10-12)

नियमत किसी 450 किग्रा शरीर-भार वाले पशु को केवल अपने जीवन निर्वाह के लिये नित्य 0 3 किग्रा प्रोटीन तथा

सारणी 6 – भारतवर्ष में उपलब्ध पशु-खाद्य पदार्थ*

प्राकृतिक घासे : दूब, अन्जन, पल्वन, छिम्बर, स्पियर घास, कार्ड तथा गोरिया घास

उगायी जाने वाली घासे हाथी घास, गिनी घास, सूडान घास, रोड घास, टियोसिंटे, पैरा घास तथा नेपियर घास की संकर प्रजाति

उगाये जाने वाले चारे : ज्वार (चोलम), बाजरा (कुम्बु), रागी अथवा मडल, जई, चीना, चिकना बोडा, मक्का, लूसर्न, बरसीम, शफताल, सेजी तथा सूरजमुखी

जड़े तथा कन्द शलजम, स्वीडिश शलजम (दीर्घ शिखामूल), चुकन्दर, आलू तथा गाजर

सूखी घास : लूसर्न, बरसीम, जई, लोबिया, दूब, गन्ने के अगोले तथा मूँगफली की पत्तियों की सुखायी गयी घास

भूसा जई, जौ, गेहूँ, लूसर्न, सेम, मटर, पुआल तथा फलीदार फसलो का भूसा

रातब

खलियाँ मूँगफली की खली, अलसी की खली, ताड की गुठलियो की खली, गरी की खली, तिल की खली, तोरिया की खली, सरसो की खली तथा बिनौले की खली

तिलहन . अलसी तथा सूरजमुखी के बीज

अन्न तथा बीज चना, अरहर, ग्वार, मटर, मोथ, जई, गेहूँ तथा गेहूँ के उपोत्पाद, जौ धान, मक्का

*With India—Industrial Products, pt III, 1953, 9

सारणी 7 – कुछ भारतीय पशु आहारो के रासायनिक गठन एव पोषण मान*

पशु आहार	प्रति 100 किग्रा शुष्क पदार्थ मे पचनीय पोषक तत्व (किग्रा) कच्चा प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	ईथर-निष्कर्ष	सम्पूर्ण	पोषण अनुपात
हरा चारा					
बरसीम	14 10	48 23	0 94	64 44	3 1
लोबिया (बडा वाला)	20 26	38 51	1 52	62 19	2 7
हाथी घास	3 85	48 54	1 33	55 39	13 4
गिनी घास	5 83	58 00	0 56	65 09	10 2
ज्वार पका हुआ	0 97	52 02	0 60	54 34	54 9
लूसर्न	15 92	40 00	0 84	57 79	2 6
मक्का	4 18	60 94	0 96	67 77	13 5
सूडान घास	1 57	41 47	0 61	44 41	27 2

(क्रमश)

सारणी 7—क्रमश

साइलेज					
ज्वार	2 35	46 93	0 82	51 13	0 8
मक्का	3 41	56 70	0 59	61 13	17 0
रागी का भूसा	0 30	51 04	0 64	52 78	1 7
गेहूँ का भूसा	0 86	47 37	0 11	48 48	55 5
सूखी घास					
दूब	3 68	38 98	0 17	43 04	10 7
गन्ने के अगोले		45 50	0 36	46 30	
बरसीम	10 29	54 44	0 47	65 79	5 4
लोबिया	10 33	40 13		50 46	3 9
मूँगफली	14 93	34 00		48 90	2 3
लूसर्न	16 37	38 59	0 42	55 90	2 4
भूसे					
चने का भूसा	2 41	34 67		37 08	14 4
रागी का भूसा	0 23	54 55	0 38	55 63	243 5
पुआल	0 28	42 85	0 44	44 13	154 4
गेहूँ का भूसा	0 18	55 20	1 45	49 69	330 6
दाने – अनाज और बीज					
बाजरा	5 08	49 17	2 81	60 57	11 1
जौ	7 39	75 69	1 30	86 01	10 6
बिनौला	12 49	34 65	18 50	88 77	6 1
चना	14 33	63 27	1 96	82 01	4 7
ग्वार	32 33	39 93	2 96	78 82	1 4
ज्वार	7 30	70 76	1 63	85 73	10 2
मक्का	8 22	76 90	4 08	94 31	10 5
जई	7 86	57 81	5 70	78 48	9 0
खलियाँ तथा चूरे					
गिरी की खली (कोल्हू से पिरी)	21 10	39 75	13 00	90 10	3 3
बिनौले की खली	19 42	39 56	8 97	79 56	3 1
बिनौले का चूरा	31 65	25 99	12 62	86 04	1 7
मूँगफली की फली	46 39	14 59	7 97	78 92	0 7
सरसो की खली	30 68	28 06	10 34	82 41	1 7
तिल की खली	42 60	23 36	9 32	86 92	1 0
अन्न-उपोत्पाद					
चने का छिलका		59 59	0 77	61 33	
ग्वार का चूरा	42 52	33 86	3 18	83 49	1 0
मक्के का छिलका	4 54	68 94	0 81	75 30	15 6
चावल की भूसी	6 76	35 15	10 00	64 40	8 5
गेहूँ का चोकर	11 80	58 00	2 28	74 93	5 4
टेपिओका	1 46	81 19	0 28	83 28	56 0

*Sen, *Bull. Indian Coun agric Res*, No 25, 1964, Appx III, 112-33

2 5 किग्रा स्टार्च तुल्याक अथवा 3 4 किग्रा. कुल पचनीय पोषक तत्वो की आवश्यकता पडती है 6 माह की आयु तक डेरी पशुओ की दैनिक शरीर वृद्धि की दर का औसत 450 ग्रा है शरीर निर्वाह की अपेक्षा वृद्धि के लिये अधिक पोषक तत्वो की आवश्यकता पडती है तथा वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे ऊर्जा की अपेक्षा अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है दूध देने वाली गायो को निर्वाह राशन के अतिरिक्त भी पोषक तत्वो की आवश्यकता पडती है

अधिक दिन के गाभिन दुधारू पशुओ को (गर्भकाल के छठे माह से) निर्वाह तथा दुग्धोत्पादन के लिये दिये जाने वाले राशन के अतिरिक्त प्रतिदिन 150 गा पचनीय प्रोटीन तथा 500 ग्रा स्टार्च-तुल्याक या 700 ग्रा. कुल पचनीय पोषक तत्व मिलने चाहिये साँड को अपने शरीर-भार तथा जितना अधिक सगम करना हो उसके अनुसार अपने को स्वस्थ रखने के लिये अच्छे चारे के अतिरिक्त 2–3 किग्रा दाने की आवश्यकता पडती है

पशु की निर्वाह आवश्यकता प्राय सूखे अथवा रसीले चारे से थोडी मात्रा मे प्रोटीनयुक्त पौष्टिक मिश्रण के साथ अथवा इसके विना पूरी की जाती है इससे अधिक उत्पादन के लिये तैयार किया गया राशन विभिन्न प्रकार के दानो को मिलाकर बनाया जाता है इन दानो का चुनाव करते समय उनके स्वाद, मृदुरेचकता, वृद्धि एव उत्पादन के लिये आवश्यक विभिन्न ऐमीनो अम्लो के प्रदान करने की क्षमता पर विशेष ध्यान देना पडता है राशन वनाते समय उससे प्राप्त होने वाले विटामिन तथा खनिज लवणो पर भी विचार कर लेना चाहिये राशन मे थोडा हरा चारा सम्मिलित कर लेने से पशु की विटामिन-आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है खनिज लवणो की पूर्ति के लिये पशु को आवश्यकतानुसार खनिज मिश्रण देना चाहिये पशुओ के लिये विभिन्न सतुलित खाद्य-मिश्रण तैयार करने के लिये भारतीय मानक निर्धारित किये गये है (IS 2052-1962)

बच्चो (एक माह से लेकर तीन वर्ष की आयु तक के पशु) एवम् वयस्क पशुओ (तीन वर्ष से अधिक आयु के) को हरे तथा सूखे चारे, पौष्टिक मिश्रण, नमक, खनिज मिश्रण और दाने से बनाये गये सतुलित आहार के अवयवो की विभिन्न अनुपातो मे आवश्यकता पडती है यह पौष्टिक मिश्रण प्राय खली, विनौले, चावल अथवा गहूँ का चोकर, चने का छिलका तथा दला हुआ चना मिलाकर बनाया जाता है हमारे देश मे पशुओ के आहार की कमी ही सम्भवत उनके विकास तथा अधिक दुग्ध उत्पादन मे सबसे वडी बाधा है सारणी 8 मे 1961 की पशु गणना के अनुसार बहुत ही अल्पव्ययी पोषक मानको पर आधारित पशुओ के चारे-दाने की आवश्यकताये दी गयी है

सारणी 8 – गोपशुओ तथा भैसो के लिये पशु आहार की वार्षिक आवश्यकता तथा उपलब्धि
(1961 की पशु-गणना पर आधारित)

पशुओ का प्रकार	पशुओ की सख्या (हजार मे)	आवश्यकता* (हजार टन)			उपलब्धता** (हजार टन)		
		रातव	हरा चारा†	सूखा चारा‡	रातव	हरा चारा	सूखा चारा
गोपशु							
तीन वर्ष से ऊपर के नर पशु	72,477	43,480 2	1,44,954 0	3,62,385 0	8,121	1,31,239	1,49,519
दूध देने वाली गाये	20,721	6,151 4	1,24,326 0	1,03,605 0	2,178	33,611	26,774
सूखी तथा प्रजनन के योग्य गाये	33,603	6,720 6	67,206 0	1,68,015 0	1,533	33,778	34,649
पशु-बच्चे	48,871	19,548 4	97,742 0	48,871 0	821	28,202	26,293
भैंसें							
तीन वर्ष से ऊपर के नर पशु	7,658	4,594 8	15,316 0	38,290 0	486	18,197	15,200
दूध देने वाली भैसे	12,581	5 032 4	1,00,648 0	67,937 4	3,660	31,153	27,098
सूखी तथा प्रजनन के योग्य भैंसे	12,446	2,489 2	24,892 0	62,230 0	468	19,606	18,221
पशु-बच्चे	18,452	7,380 8	36,904 0	18,452 0	94	10,722	11,160
योग	2,26,809	95,403 8	6,11,988 0	8,69,785 4	17,361	3,06,508	3,08,914

*राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान के पूर्वी प्रक्षेत्रीय केन्द्र, कल्यानी, नदिया जिला (बगाल) के आँकडे डा एम एल माथुर से प्राप्त हुये
**कृषि साख्यिकी अनुसधान सस्थान (भारतीय कृषि अनुसधान परिषद), नई दिल्ली से प्राप्त आँकडे
†अनुमानित औसत उत्पादन 25 टन प्रति हेक्टर ‡अनुमानित औसत उत्पादन 1 7 टन प्रति हेक्टर
नोट : समस्त आँकडे वास्तविक उपयुक्त चारे के भार पर आधारित है और इनमे चरायी से प्राप्त होने वाला चारा सम्मिलित नही है

भूतकाल मे पशु-खाद्य पदार्थों की अनुमानित आवश्यकता तथा भारतवर्ष मे उनकी उपलब्धि के आकलन से यह प्रदर्शित होता है कि पशुओ के अधिकतम विकास के लिये देश मे पशु-खाद्य पदार्थों की माँग तथा पूर्ति के बीच काफी अन्तर है एक अनुमान के अनुसार पशुओ की वार्षिक आवश्यकता 4 092 करोड टन दाने तथा 94 8 करोड टन चारे की थी जबकि उस वर्ष दाने तथा चारे की वास्तविक उपलब्धि क्रमश 1 398 तथा 78 करोड टन रही [*Human vis-a-vis Animal Nutrition in India* (ICAR), 1954]

केन्द्रीय गोसम्वर्धन परिषद् की पशु-आहार उपसमिति ने 1961 मे यह आकलन किया है कि देश मे 2 418 करोड टन दाने, 26 8 करोड टन हरे चारे तथा 2 641 करोड टन भूसा एव करवी (सूखे ज्वार के डठल) की और आवश्यकता है कृषि साख्यिकी अनुसधान सस्थान (भारतीय कृषि अनुसधान परिषद्), नई दिल्ली ने 1956–57 से ही पजाब, उत्तर प्रदेश, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश तथा उडीसा के कुछ चुने हुये क्षेत्रो मे सर्वेक्षण करके गोपशुओ तथा भैसो द्वारा खाये जाने वाले चारे का औसत निकाला इस सर्वेक्षण के आधार पर निकाली गयी चारे-दाने की वार्षिक उपलब्धि सारणी 8 मे दी गयी है

देश मे उपयुक्त पशु-आहार के अभाव की पूर्ति के लिये चारे-दाने के नवीनतम स्रोत ढूढ निकालने के लिये भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान, इज्जतनगर मे शोध कार्य हो रहा है यहाँ यह पता लगाया जा चुका है कि बहुत मे ऐसे पदार्थों मे जो पशुओ के लिये वृथा समझे जाते है, समुचित मात्रा मे पोषक तत्व रहते हैं और इन्हे ऐसे ही अथवा ससाधित करके पशुओ को खिलाया जा सकता है आम तथा जामुन की गुठलियो, पँवार (**कैसिया टोरा**) तथा इमली के बीजो, बबूल की फलियो, ओझडी तथा मछली आदि पदार्थों मे प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है और इन्हे पौष्टिक मिश्रण मे दाने के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है इसी प्रकार काँस तथा मूँज जैसी मोटी घासो, कटियारी जैसे पौधो, अगोलो तथा पँवार (**कैसिया टोरा**) के भूसे को मोटे चारे के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है अकाल के समय मूँगफली के छिलके भी खिलाये जा सकते है ग्रामीण क्षेत्रो में खोई, शीरा तथा मूँगफली के मिश्रण को पशुओ के राशन मे मिलाये जाने वाले अनाजो के छिलको के स्थान पर डाला जा सकता है अभी हाल मे किये गये परीक्षणो से यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि महुआ की खली तथा फूल सनई के बीज, शोभा वनाम्लिका (वर्षा वृक्ष) की फलियाँ, वज्र और पतझड के मौसम मे गिरी हुयी पेडो की पत्तियाँ भी पशु-आहार के रूप में प्रयुक्त हो सकती है

जिन क्षेत्रो मे चारे की फसले उगायी जाती है वहाँ इन फसलो के अतिरिक्त पशु आहार के अन्य स्रोत निम्नलिखित है (1) देहातो मे सार्वजनिक भूमि पर पशुओ की चराई, (2) सरकारी भूमि पर उगी हुयी घास को काटकर पशुओ को खिलाना अथवा चराना, और (3) जगली क्षेत्र मे उगी हुयी घासो को काटकर पशुओ को खिलाना अथवा चराना लेकिन यह पता लगाना कठिन है कि देश मे चारे के स्रोतो मे उपर्युक्त प्राकृतिक चरागाह कितना योगदान करते है ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारतवर्ष मे पशु-आहार के सबसे बडे तथा प्रमुख स्रोत चरागाह ही हैं चरागाहो से प्राप्त होने वाले 78 करोड टन चारे मे से लगभग 53 5 करोड टन चारा हरी घास के रूप मे प्राप्त होता है जिससे 90% पशु अपना जीवन निर्वाह करते है भारतवर्ष मे (राज्य स्तर पर) 1958–59 मे चारे की फसलो के अन्तर्गत क्षेत्रफल, वास्तविक बोया जाने वाला क्षेत्रफल तथा चरागाहो का तुलनात्मक विवरण सारणी 9 मे दिया गया है

सारणी 9 – 1958–59 में भारतवर्ष में चारे की फसलो तथा चरागाहों का क्षेत्रफल*

(हजार हेक्टर मे)

राज्य	चारे की फसलें	वास्तविक बोया गया क्षेत्रफल	स्थायी चरागाह तथा अन्य चरायी के क्षेत्रफल
अण्डमान निकोबार द्वीप समूह		6 8	4 4
असम (नेफा सहित)	0 4	2,047 2	152 0
आन्ध्र प्रदेश	160 0	10,920 8	1,218 4
उड़ीसा	100 4	5,541 6	727 6
उत्तर प्रदेश	716 8	16,848 8	35 6
केरल	0 4	1,834 8	44 4
जम्मू एवं कश्मीर	8 8	638 8	140 0
तमिलनाडु	79 6	5,730 4	371 6
त्रिपुरा		200 0	56 0
दिल्ली	10 8	90 8	4 8
पजाब	1,170 4	7,395 2	87 6
पश्चिमी बगाल	2 0	5,171 6	
बिहार	29 6	7,876 0	208 4
मणिपुर		92 8	
मध्य प्रदेश	44 4	15,514 4	3,575 2
महाराष्ट्र (बम्बई)†	1,673 6	26,975 2	2,490 0
मैसूर	168 0	10,056 8	1,747 6
राजस्थान	1,193 2	12,441.6	1,508 4
लक्षद्वीप, मिनिकोय, अमीनदीवी द्वीप समूह		2 8	
हिमाचल प्रदेश	2 0	266 8	582 4
योग	5,400 4	1,29,649 2	12,954 4

*Building from Below Essays on India's Cattle Economy (Sarva Seva Sangh, Krishi Gosewa Samiti, New Delhi), 1964.

†ये आँकडे भूतपूर्व बम्बई प्रदेश से सम्बन्धित है

1959–60 मे केवल 9,87,000 हेक्टर भूमि मे चारे की फसले थी इसका तात्पर्य यह हुआ कि खाद्य अथवा अखाद्य फसलो के कुल सिंचित क्षेत्र मे से हमारे देश मे केवल 3 24% भूमि मे चारे की फसले उगायी जाती है जो वास्तव मे बहुत ही कम और अपर्याप्त है द्वितीय पचवर्षीय योजना (*1956–61*) की अवधि मे पशु खाद्य पदार्थों के विकास के लिये एक योजना बनायी गयी थी इस योजना के अन्तर्गत अनुदान के रूप मे बीजो तथा पौधो के वितरण, पशुग्राम केन्द्रो मे चरागाह के प्रदर्शन क्षेत्रो की स्थापना,

राजकीय फार्मों पर चरागाहों के सुधार, अनुदान देकर साइलेज के गड्ढों के निर्माण और प्रदेशों में चारा विकास अधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक 12 प्रदेशों तथा 2 केन्द्रीय प्रशासित राज्यों मे यह योजना चालू हो गयी थी तीसरी पचवर्षीय योजना की अवधि (1961–66) मे इस योजना को एक आदर्श रूप दिया गया है

चारे की आवश्यकता की पूर्ति के लिये चारा-बैंक स्थापित करने की केन्द्र द्वारा सरक्षण प्राप्त योजना भी द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सम्मिलित की गयी थी इसके अन्तर्गत महाराष्ट्र के धुलिया नामक स्थान मे एक चारा-बैंक खोला गया है तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत दो और चारा-बैंक खोलने का लक्ष्य था

पशुओ को सतुलित सान्द्र (रातब) मिश्रण देने के लिये निजी तथा सार्वजनिक स्तर पर लगभग 25 पशु-आहार तैयार करने वाले कारखाने खोले गये हैं इनमें से प्रमुख नाम ये हैं पशु आहार कारखाना, आनन्द दुग्ध सघ लिमिटेड, आनन्द (गुजरात), पशु आहार कारखाना, हिन्दुस्तान लीवर, बम्बई, पशु आहार कारखाना, शॉ वैलेस क, मद्रास, पशु आहार कारखाना, ईस्ट एशियाटिक क, मद्रास, मैसूर फीड्स प्राइवेट लिमिटेड, बगलौर, बी टी क्वालिटी फीड्स, देवनगेरी (मैसूर), सदत्ता फूड्स एण्ड फाइबर्स लिमिटेड, हुबली (मैसूर) तथा नन्दी प्रोवेंडर मिल्स, नई दिल्ली ये कारखाने विभिन्न व्यावसायिक नामो से लगभग 80,000 टन पशु-आहार तथा 42,000 टन कुक्कुट आहार तैयार करते हैं ये आहार, भारतीय मानक सस्थान द्वारा निर्धारित विनिर्देशो के अनुसार, विटामिनयुक्त तथा सतुलित होते हैं (विस्तृत जानकारी के लिए देखें – Wlth India—Industrial Products, pt VII, Processed Feeds)

चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित कार्यक्रम दो बडे-बडे भागो मे रखा जा सकता है (1) खाद्य पदार्थ एव चारा उत्पादन के वर्तमान स्रोतो का सम्वर्धन और (2) उचित सरक्षण एव ससाधन द्वारा उपलब्ध स्रोतो का भरपूर उपयोग इन कार्यक्रमो का मुख्य उद्देश्य चुनिन्दा क्षेत्रो मे चारे की फसलो की सघन खेती तथा गोपशु एव अन्य पशुधन को समुचित आहार उपलब्ध कराना है इन कार्यक्रमो के अतिरिक्त, चारा उत्पादन स्रोतो को बढावा देने के लिये अनेक शोध सस्थाये कार्य कर रही हैं इनमें से भारतीय चरागाह एव चारा अनुसधान सस्थान, नई दिल्ली, राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल और बम्बई, बगलौर तथा कल्याणी में स्थित उसके क्षेत्रीय केन्द्र एव केन्द्रीय शुष्क मण्डल अन्वेषण सस्थान, जोधपुर प्रमुख हैं चारा उत्पादन स्रोतो के विकास हेतु भारत सरकार द्वारा चलायी गयी योजनाओ में सयुक्त राष्ट्र सगठन के खाद्य एव कृषि सगठन ने भी आवश्यक तकनीकी सहायता प्रदान की है

प्रजनन

भारतवर्ष मे इस समय 26 नस्लो के गोपशु तथा 7 नस्लो की भैंसें पायी जाती हैं उन्नत एव विशिष्ट नस्लें आमतौर पर उत्तरी-पश्चिमी तथा पश्चिमी शुष्क क्षेत्रो मे मिलती हैं भारतवर्ष मे पाये जाने वाले गोपशुओ तथा भैंसो मे से केवल थोडे ही शुद्ध नस्ल के हैं 75% पशु सख्या किसी भी विशिष्ट नस्ल की नही है, अत इन्हें अज्ञात श्रेणी मे रखा जाता है कृषि की विशेष आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये शताब्दियो मे किये गये पशुओ के चुनाव के परिणामस्वरूप हमें काफी अच्छे भारवाही पशु प्राप्त होते रहे हैं गोपशुओ की कुछ द्विप्रयोजनीय एव दुधारू नस्लें भी इस बीच विकसित की गयी शुद्ध नस्ल की गायो द्वारा अधिकतम तथा औसत दुग्धोत्पादन (किग्रा) के मध्य बहुत बडी विभिन्नता है डेनमार्क (3,710), नीदरलैंड (4,280), यू के (2,900), सयुक्त राज्य अमेरिका (3,280), न्यूजीलैंड (2,750), इजरायल (4,380), जापान (3,640) तथा सयुक्त अरब गणराज्य (680) की तुलना मे भारतीय गाय तथा भैंस के एक दुग्ध-काल मे औसत वार्षिक उत्पादन क्रमश 173 तथा 491 किग्रा है शुद्ध नस्ल के कुछ दुधारू पशु एक ब्यांत मे 5,902 किग्रा से भी अधिक दूध देते देखे गये हैं भारतीय गाय की तुलना मे विदेशी गायो का औसत दुग्धोत्पादन 16 से 25 गुना (2,750–4,280 किग्रा) है

भारतीय पशुओ से कम उत्पादन मिलने के कई कारण हैं जिनमे से पशुधन व्यवसाय का असगठित होना सम्भवत प्रमुख है भारतवर्ष का पशु-पालक सम्भवत विश्व का सबसे गरीब किसान होता है जिसके पास इने-गिने पशु रहते हैं छोटे-छोटे खेतो वाले किसानो के पास सामान्यत एक या दो पशु होते हैं अव्यवस्थित प्रजनन तथा पीढियो से पशुओ के प्रति लापरवाही के कारण यह दशा उत्पन्न हो गयी है

ससार के अन्य देशो मे गोपशुओ को विशेषत दूध एव मास उत्पादन के लिये पाला जाता है लेकिन भारतवर्ष मे अभी तक हल जोतने तथा अन्य कृषि कार्यो के लिये बैल पैदा करने पर ही अधिक बल दिया जा रहा है इधर हाल के कुछ वर्षों मे बढती हुयी जनसख्या के कारण दूध की माँग लगातार बढती जा रही है देश मे कृषि का धीरे-धीरे यन्त्रीकरण होता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप कृषि कार्यो मे बैलो की आवश्यकता घट जायेगी किन्तु वर्तमान परिस्थितियो मे ऐसा लगता है कि अभी दीर्घ-काल तक बैल ही कृषि कार्यो के लिये शक्ति का स्रोत बना रहेगा भारतवर्ष में गोपशुओ तथा भैंसो के आनुवशिक उत्थान की योजना बनाते समय इस आवश्यकता को ध्यान मे रखना जरूरी है

अपने शुभारम्भ के साथ ही 1929 मे भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् ने देश में गोपशुओ के विधिवत विकास सम्बन्धी कार्यक्रम के अन्तर्गत गोपशुओ की विभिन्न नस्लो की वशावली का पजीकरण तथा दुग्ध उत्पादन का अभिलेखन प्रारम्भ कर दिया था इस विधि में सुधार लाने के उद्देश्य से 1941 मे यूथ-पुस्तिकाओ का चलन हुआ ये यूथ-पुस्तिकाये देश की मानी हुयी नस्लो और उनके दूध उत्पादन के ब्यौरे की प्रदर्शिका हैं अभी तक इन पुस्तिकाओ में आवश्यक न्यूनतम दुग्धोत्पादन (किग्रा) के आधार पर जो यूथ सम्मिलित किये जा चुके हैं उनके नाम हैं मुर्रा भैंस (1,362), साहीवाल (1,362), लाल सिंधी (1,135), थारपारकर (1,135), हरियाना (908), गिर (908), कांकरेज (681), अगोल (681), तथा कागायाम (454)

इसमे कोई सदेह नही कि हमारे देश मे गोजातीय तथा भैंस जातीय प्रजनक स्टाक मे विभिन्नता होने के कारण पशु प्रजनको को कार्य करने के लिये अच्छी सामग्री प्राप्त हो जाती है किन्तु साथ ही यह भी मानना पडेगा कि अज्ञात, कम उत्पादनशील अशुद्ध नस्ल की इतनी बडी पशु सख्या में आनुवशिक सुधार ला पाना अत्यन्त कठिन कार्य है अत विविध गुणो वाले इन समस्त

पशुओ मे प्रजनन की कोई भी एक विधि समान रूप से लागू नही की जा सकती देश मे गायो तथा भैसो के सुधार के लिये प्रजनन की सर्वोपयुक्त पद्धतियो को नामाकित करने के लिये अखिल भारतीय प्रजनन नीति अपनानी पडी स्थायी पशु प्रजनन एव पशुधन तथा दुग्ध समितियो की सस्तुति पर भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् ने 1950 मे एक प्रजनन नीति निर्धारित की जिसको कार्यान्वित करने की स्वीकृति प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकारो ने दे दी है इस प्रजनन नीति का मुख्य उद्देश्य भारवाही तथा दुग्धोत्पादन गुणो का अधिकाधिक समावेश करके देशी पशुओ को उन्नत करना तथा चुनिन्दा प्रजनन द्वारा दुधारू नस्लो की दुग्धोत्पादन क्षमता को वढाना है

भारतवर्ष के गोपशुओ के गुणो को सुधारने के लिये अच्छे सॉडो की आवश्यकता है ऐसे सॉडो की पूर्ति के लिये अनेक राज्य पशुधन फार्म खोले गये है और सॉडो की कमी पूरी करने के लिये वडे पैमाने पर कृतिम वीर्यसेचन किया जा रहा है राजकीय पशुधन फार्मो तथा निजी पशु प्रजनको द्वारा किये गये प्रयासो से सिद्ध होता है कि उन्नत नस्लो से प्रजनन कराने पर गायो का दुग्धोत्पादन वढने की सभावना है

चुनिदा प्रजनन—प्रजनन के लिये गाय अथवा सॉड का सावधानी से चुनाव करना वहुत आवश्यक है भारतवर्ष मे वछियो के वयस्क होने की आयु तीन वर्ष है और यह पशु को दिये जाने वाले चारे-दाने, जलवायु तथा वातावरण के अनुसार प्रत्येक पशु मे वदल सकती है वछियो को वरदवाने का सर्वोपयुक्त समय निरीक्षण द्वारा निश्चित किया जाता है एक प्रजनक गाय, जब तक कि वह वहुत ही कमजोर न हो ऐसी अवधि मे गाभिन हो जाती है जिससे विसुकने और दूसरा वच्चा देने के वीच का समय 6–8 सप्ताह से अधिक न हो साधारणत व्याने के दूसरे या तीसरे महीने वाद उसे पुन गाभिन करा देना चाहिये गाये हर 21 दिन के अवकाश पर ऋतुमती होती है और लगभग एक दिन तक गरम रहती है गाय के ऋतुमती होने के वाद वीच की अवधि से अन्तिम समय के वीच तक उसे गाभिन कराना चाहिये गायो तथा भैसो का औसत गर्भकाल क्रमश 280 तथा 310 दिन है

सॉड के परिपक्व होने की आयु, जव वह प्रजनन के लिये तैयार हो जाता है, उसके खान-पान के ढग तथा देखभाल पर निर्भर करती है यदि ठीक से पालन-पोषण एव देखभाल होती रहे तो भारतीय सॉड लगभग 2 5 वर्ष की आयु मे गायो के साथ सगम करने योग्य हो जाता है सामान्यत एक सॉड प्रजनन योग्य आयु वाली 60–70 गायो अथवा भैसो के लिये काफी होता है

चुनिदा प्रजनन के लिये प्रत्येक प्रदेश को विभिन्न खण्डो मे विभाजित किया गया है और प्रत्येक खण्ड मे प्रयुक्त होने वाली नस्ल का कार्यक्रम निर्धारित कर लिया गया है खण्डो मे इस प्रकार के विभाजन का उद्देश्य यह है कि जिन क्षेत्रो मे अच्छी नस्ल के पशु हों और जहाँ विद्यमान नस्लो में काफी सुधार पाया गया हो वहाँ वाहरी रक्त का प्रवेश न किया जाय रोहतक क्षेत्र, **हरियाना** पशुओ के लिये सुविख्यात है इन पशुओ के प्रजनन के लिये केवल **हरियाना** नस्ल के सॉडो का ही प्रयोग किया जाता है इसी प्रकार अगोल क्षेत्र मे केवल **अगोल** तथा गुजरान मे **काकरेज** नस्ल के सॉडो को ही प्रजनन के लिये प्रयुक्त किया जाता है उसी नस्ल मे प्रयुक्त होने वाला सॉड ऐसे यूथ से लेना चाहिये जिसका दुग्ध उत्पादन नस्ल के औसत उत्पादन से अच्छा हो जिससे कि उसकी वछियो से अधिक दूध प्राप्त हो सके माता, पिता तथा निकटतम सवन्धियो के उत्पादन के आधार पर ही सॉड का चुनाव किया जाता है यदि ऐसा सॉड आसानी से उपलब्ध न होता हो तो कम से कम वाह्य रूप एव उत्पादन मे अपनी मा से मिलते-जुलते विशुद्ध नस्लीय सॉड ही उस प्रजनन के क्षेत्र से चुने जाने चाहिये.

सुसगठित फार्मो तथा अच्छी नस्ल के पशु उत्पादक क्षेत्रो मे नस्लो के भारवाही अथवा दुग्धोत्पादन गुणो के सुधार के लिये चनिन्दा प्रजनन ही अपनाया जाता है दुधारू, भारवाही तथा सामान्य उपयोगिता वाली तीनो ही नस्लो मे चुनिंदा प्रजनन करने से उनके दुग्धोत्पादन मे वढोतरी होती देखी गयी है

पूसा के विशुद्ध वशागत **साहीवाल** यूथ मे (1904 से) प्रत्येक गाय का एक दिन का औसत दुग्धोत्पादन 1913–14 मे केवल 2 6 किग्रा रहा, किन्तु लगातार चुनिदा प्रजनन के परिणामस्वरूप इनके उत्पादन मे काफी वढोतरी हुई है और 1966–67 मे 306 दिनो के दुग्धकाल मे प्रतिदिन का अधिकतम दुग्धोत्पादन 34 5 किग्रा हो गया है उत्पादन वढाने के लिये 1966 मे इस नस्ल मे एक विदेशी नस्ल **होल्स्टाइन फ्रीजियन** का समावेश किया गया इसी प्रकार सैनिक डेरी फार्म, मेरठ पर **मीना** नामक **साहीवाल** गाय ने एक दुग्धकाल मे 6024 किग्रा दूध देकर अधिकतम उत्पादन का कीर्तिमान स्थापित किया है

लाल सिन्धी नस्ल की चुनिदा ग्रामीण गायो का दुग्धोत्पादन 300 दिन के दुग्धकाल मे लगभग 1,135 किग्रा रहा है किन्तु कुछ सुप्रजनित यूथो का औसत दुग्धोत्पादन 1,816 किग्रा. तक देखा गया है राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, वगलौर के दक्षिणी प्रक्षेत्रीय केन्द्र तथा होसुर पशुधन अनुसधान केन्द्र पर रखे गये **लाल सिन्धी** यूथ की कुछ गायो ने 305 दिनो मे 4,540 किग्रा तक दूध दिया है

एक अच्छी ग्रामीण **गिर** गाय 300 दिनो मे लगभग 908 किग्रा दूध देती है किन्तु कुछ फार्मो पर अच्छी तरह से रखे गये इस नस्ल के यूथ औसतन 1,590 किग्रा दूध देते है राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, वगलौर के दक्षिण क्षेत्रीय केन्द्र पर, जहा अनेक वर्षो से लगातार चुनिदा प्रजनन किया जा रहा है, कुछ-कुछ गायो ने एक दुग्धकाल मे 2,725 किग्रा से भी अधिक दूध दिया है

चुनिदा ग्राम की **हरियाना** नस्ल की गाये एक दुग्धकाल मे लगभग 1,135 किग्रा दूध देती है, किन्तु कुछ फार्मो पर जहा चुनिदा प्रजनन अपनाया जा रहा है औसत उत्पादन 1,816 किग्रा रहा है भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसधान सस्थान, इज्जतनगर पर रखी गयी **हरियाना** यूथ की कुछ गायो न एक दुग्धकाल मे 2,725–3,178 किग्रा तक दूध दिया है राजकीय पशुधन फार्म, पटना तथा राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान करनाल पर रखी गयी **थारपारकर** नस्ल की गायो ने 4,540 किग्रा और कृषि सस्थान, आनन्द (गुजरात) मे रखी गयी **काकरेज** नस्ल की गायो ने 5,900 किग्रा से भी अधिक दूध दिया है

अपने भारवाही गुणो के लिये सुविख्यात **हल्लीकर** नस्ल की गाये वहुत कम दूध देने वाली मानी जाती है लेकिन होसुर पशुधन फार्म पर, जहा चुनिदा प्रजनन अपनाया जाता है, 69 गायो ने अपने वछडो के लिये आवश्यक दूध छोडकर औसतन नित्य 1 6 किग्रा दूध दिया

चुनिदा प्रजनन द्वारा भैसो के दुग्धोत्पादन मे भी वढोतरी होते देखी गयी है चुनिदा ग्रामीण **मुर्रा** नस्ल की भैसो के 300 दिन के दुग्धकाल मे 1,362 किग्रा की तुलना मे कुछ फार्मो पर रखी

गयी सुप्रजनित भैंसे औसतन 2,270 किग्रा अथवा और अधिक दूध देती देखी गयी है

श्रेणी उन्नयन–अशुद्ध नस्ल के देशी तथा स्थानीय पशुओं की उन्नति के लिये सामान्य नीति यह अपनायी गयी है कि ऐसी मादाओं को गर्भित करने के लिये सदैव दुधारू अथवा सामान्य उपयोगिता वाले गुणों के विशुद्ध नस्लीय साँडों का ही प्रयोग किया जाय, जिससे कि उनकी श्रेणी मे धीरे-धीरे उन्नति हो और वे अधिक दूध दे सके इस नीति को कार्यान्वित करने के लिये विभिन्न प्रदेशो को अलग-अलग खण्डों में विभाजित किया गया है और इन खण्डो मे पशुओं के सुधार के लिये काफी विचार-विमर्श करके उपयुक्त नस्ल के साँड रखे जाने का निश्चय किया गया है इस काय के लिये आमतौर पर **हरियाना, थारपारकर, कांकरेज, लाल सिन्धी** तथा **साहीवाल** नस्लों को ही प्रयुक्त करने का निश्चय हुआ है उत्तरी भारत मे इस कार्य के लिये विशेष रूप से **हरियाना** नस्ल के साँडो का ही अधिक प्रयोग किया जाता है तथा दक्षिण भारत मे अनेक स्थानो पर **लाल सिन्धी** नस्ल के साँड उन्नयन के लिये प्रयुक्त होते हैं

अशुद्ध नस्लीय देशी भैंसो के सुधार के लिये सम्पूर्ण देश में **मुर्रा** नस्ल के भैंसो का ही प्रयोग किया जाता है

भारतवर्ष के देशी तथा अशुद्ध गोपशुओं के सुधार के लिये सर्वप्रथम 1936 मे पूरे देश मे 'प्रीमियम साँड योजना' चलायी गयी थी जिसके अन्तर्गत विशुद्ध नस्लीय वंशागत साँड ग्रामीण क्षेत्रों मे वितरित किये जाते थे और वहाँ उनका पालन-पोषण उपदान द्वारा किया जाता था ग्रामीण गायों को गाभिन करने के लिये इन साँडो की सेवायें नि शुल्क उपलब्ध होती थी प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रमुख ग्राम योजना का शुभारम्भ करके पशुओं के सर्वांगीण विकास का सुसगठित प्रयास हुआ इस योजना के कार्यक्रम के अन्तर्गत कृत्रिम वीर्यसेचन अथवा अच्छे साँडो से प्राकृतिक प्रजनन द्वारा निम्नश्रेणी के गाय-भैंसो के श्रेणी उन्नयन का कार्य भी सम्मिलित किया गया इस योजना का मुख्य उद्देश्य देश मे उपलब्ध उत्तम जननद्रव्य (जर्मप्लाज्म) का कम से कम समय मे अधिकतम उपयोग करना है

1962–63 के अन्त तक भारतवर्ष मे कुल मिलाकर 420 प्रमुख ग्राम खण्ड थे और इन खण्डो मे 20 25 लाख प्रजनक गाये तथा 10 49 लाख प्रजनक भैंसे थी 1964–65 के अन्त तक प्रमुख ग्राम योजना के अन्तर्गत उत्पन्न 54,393 सुविकसित बछडों का पालन-पोषण अन्य क्षेत्रों मे पशुधन का सुधार करने के लिये उपदान देकर किया गया इस योजना से 17,292 गाँवों की 46 लाख गाय-भैंस लाभान्वित हुयी देशी पशुओं के श्रेणी उन्नयन के लिये उपर्युक्त योजना के अन्तर्गत किये गये कार्य के अतिरिक्त प्रादेशिक स्तर पर राज्य सरकार के अन्य सगठन भी काम कर रहे हैं श्रेणी उन्नयन के लिये राज्य सरकार द्वारा बाँटे जाने वाले साँड स्थानीय सुविधाओं के अनुसार कृत्रिम वीर्यसेचन अथवा प्राकृतिक ढग से प्रजनन कराने के लिये प्रयुक्त किये जाते है

सकरण–भारतीय नस्लो की गायो को विदेशी साँडो से गाभिन करा कर सकरण कार्य किया जाता है इस प्रजनन का प्रमुख उद्देश्य भारतीय पशुओं के रक्त मे अधिक दुग्धोत्पादन, अगेती लैंगिक परिपक्वता एव नियमित प्रजनन के गुणों का समावेश है

भारतवर्ष मे विदेशी नस्ल के साँडो के द्वारा सकरण कार्य 1875 से चालू है जिसके परिणामस्वरूप बिहार प्रदेश मे पटना के निकट देशी गायो को यूरोपीय साँडो से गाभिन कराकर **टेलर** नस्ल विकसित की गयी थी प्रारम्भ में सकरण कार्य मद्रास के एक सरकारी फार्म तथा लखनऊ और बगलौर आदि के सैनिक डेरी फार्मो तथा कुछ रजवाडो में निजी तौर पर किया जाता रहा लेकिन दुग्धोत्पादन की बढोतरी के लिये सुव्यवस्थित ढग मे यह कार्य 1900 मे पहले-पहल सैनिक फार्मो द्वारा अपनाया गया प्रारम्भ में देशी गायो को गाभिन कराने के लिये यूरोप से मँगाये गये **आयरशायर** नस्ल के साँडो का प्रयोग किया गया, किन्तु, बाद में **शार्टहार्न, जर्सी, होल्स्टाइन-फ्रीजियन, गर्नसे, ब्राउन स्विस** आदि अन्य विदेशी नस्लो के साँडो से भी सकरण कार्य सम्पन्न हुआ

सैनिक डेरी फार्मो पर किये गये सकरण के प्रयोगो मे यह पता चला है कि सकर सतान मे विदेशी नस्ल का जितना ही अधिक रक्त आता है उसी के अनुपात में उसकी दूध देने की क्षमता बढ जाती है अन्य स्थानो पर किये गये सकरण कार्य मे भी ऐसे ही फल प्राप्त हुये हैं यह सच है कि सतति मे विदेशी रक्त की बढोतरी के साथ उसका दुग्ध-उत्पादन बढता है किन्तु ऐसे पशु बीमारियों के प्रति अधिक सवेदनशील, कम गर्मी सहन करने वाले, कम मजबूत तथा लगातार अधिक दूध उत्पादन के लिये आवश्यक गुणो के प्रति कम क्षमता वाले होते चले जाते हैं इलाहाबाद में तथा सैनिक डेरी फार्मो पर होने वाले शोध कार्य से यह पता चलता है कि 5/8 श्रेणी स्तर पर विदेशी रक्त की प्राप्ति एव अभिग्रहण से सर्वोत्तम परिणाम मिलते हैं

भैंसो के वर्तमान यूथ **मुर्रा** एव **नीली-रावी** नस्लो तथा श्रेणियो वाले हैं इन फार्मो पर रखे गये विशुद्ध नस्लीय पशुओं में चुनिंदा प्रजनन तथा देशी भैंसो का सुधार करने के लिये मुर्रा नस्ल के साँडो द्वारा श्रेणी उन्नयन की विधि अपनायी जाती है पिछले 60 वर्षो मे अधिक दुग्धोत्पादन की क्षमता के कारण, भारतीय **साहीवाल** नस्ल की गायो का सकरण **जर्सी, आयरशायर** तथा **होल्स्टाइन-फ्रीजियन** जैसे विदेशी नस्ल के साँडो से कराया जाता रहा है **होल्स्टाइन-फ्रीजियन** नस्ल के साँड इस कार्य के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुये है और ये समय-समय पर विदेशो से मँगाये जाते रहे हैं सकरण नीति के अन्तर्गत 50% या कम विदेशी रक्त वाली गायो को **होल्स्टाइन-फ्रीजियन** नस्ल के साँडो से अथवा 50% से अधिक विदेशी रक्त वाली गायो को पुन **साहीवाल** नस्ल के साँडो से गाभिन कराया जाता है सैनिक फार्मो पर रखी गयी वर्णसकर गायो के आँकडे यह सूचित करते हैं कि 50% विदेशी रक्त वाली एव 5/8 श्रेणी स्तर की सततियाँ अच्छा दूध देती है, उनमे बीमारी कम होती है और पशु देश की जलवायु मे बढने के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं

1948 से पूर्व **साहीवाल** तथा **लाल सिन्धी** नामक केवल दो भारतीय नस्लो की गाये ही क्रमश फीरोजपुर तथा बगलौर के सैनिक डेरी फार्मो पर रखी जाती थी अब **साहीवाल** नस्ल की गायें मेरठ, लखनऊ तथा अम्बाला और **लाल सिन्धी** इलाहाबाद में भी पाली जाती है 1950 मे सैनिक डेरी फार्मो पर **हरियाना, थारपारकर** तथा **गिर** नस्लो की गायें भी रखने लगे हैं सकरण कार्य के लिये साँडो की पूर्ति के लिये विभिन्न सैनिक फार्मो पर विशुद्ध **होल्स्टाइन-फ्रीजियन** नस्ल के यूथ भी रखे जाते हैं

यद्यपि सैनिक डेरी फार्मो पर किये गये सकरण कार्य ने काफी सतोषजनक परिणाम प्राप्त हुये हैं फिर भी कुछ कठिनाइयो के कारण सकरण विधि का उपयोग सीमित-सा रहा है इस विधि

द्वारा सर्वोत्तम परिणाम वही प्राप्त किये जा सकते है जहाँ पशुओ के खान-पान तथा उनकी देखरेख की उत्तम व्यवस्था हो और गर्मियो के दिनो मे उच्च श्रेणी के पशुओ को स्वस्थ बनाये रखने के लिये ठडी जलवायु मे भेजे जाने की सुविधाये उपलब्ध हो विदेशी साँड का जितना ही अधिक रक्त सतति मे आता है उसी के अनुसार पौरुष तथा सहिष्णुता मे ह्रास एव बीमारियो के प्रति वर्द्धमान सवेदनशीलता की समस्याये उत्पन्न होती हैं, जिनकी उपेक्षा नही की जा सकती सकरण से उत्पन्न नर पशु प्रजनन के अयोग्य समझे जाते है और विदेशी साँडो के आयात मे अनेक कठिनाइयाँ आती है

1933 मे असैनिक राजकीय पशुधन फार्मो पर सकरण कार्य बन्द कर दिया गया था किन्तु सैनिक डेरी फार्मो पर यह कार्यक्रम चलता रहा सैनिक डेरी फार्मो पर किये गये सकरण कार्य की समीक्षा करने के लिये 1953 मे एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त हुयी जिसने यह सिफारिश की कि इस कार्यक्रम को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया जाये फिर भी, 1953 में भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् ने पुन सकरण के प्रश्न पर विचार किया जिसमें यह निश्चित किया गया कि पहाडी तथा अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे इस कार्यक्रम को पुन लागू किया जाय, क्योकि यहाँ देशी नस्ल के साँडो से श्रेणी उन्नयन की गति मन्द है और इससे सतोषजनक परिणाम प्राप्त नही होते कुछ राज्यो मे ग्रामीण परिस्थितियो के अन्तर्गत अधिक वर्षा तथा ऊँचाई वाले क्षेत्रो मे एक-एक अग्रणी सकरण योजना लागू की गयी इसके केन्द्र हैं पालमपुर (पजाब), दार्जिलिंग (पश्चिमी बगाल), चोहरपुर (उत्तर प्रदेश), राँची (बिहार), शिलाग (असम), इम्फाल (मणिपुर), विशाखापटनम् तथा हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश), कुर्ग (मैसूर), उटकमड (तमिलनाडु) और नेत्तिनकारा एव चलकुडी (केरल) इन क्षेत्रो की स्थानीय देशी गायो को, केन्द्रीय कृत्रिम वीर्य सेचन केन्द्र, बगलौर से जर्सी नस्ल के साँडो का वीर्य मगाकर कृत्रिम विधि से गाभिन कराया गया टालीगज (पश्चिमी बगाल) मे भी एक क्षेत्रीय कृत्रिम वीर्य सेचन केन्द्र चालू किया गया इन अग्रगामी परियोजनाओ से उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुये

तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देशी गायो को विदेशी नस्ल के साँडो से गाभिन करा कर पर्वतीय पशुओ के सुधारने का एक समन्वित एव विस्तृत कार्यक्रम निर्धारित किया गया इस परियोजना के अन्तर्गत एक **जर्सी** पशु प्रजनन फार्म हिमाचल प्रदेश के कतौला नामक स्थान मे तथा दूसरा मैसूर प्रदेश के हेसरघट्टा नामक स्थान पर खोला गया इस कार्य के लिये **जर्सी तथा ब्राउन स्विस** के अतिरिक्त कुछ अन्य विदेशी नस्लो के चुनिंदा साँडो का भी प्रयोग किया जाता है

भारत सरकार द्वारा स्थापित कृषि एव पशुपालन बोर्ड ने 1961 में कुछ चुनिंदा क्षेत्रो मे विशेषतया जो अच्छी सडको द्वारा बडे-बडे दुग्ध-उपभोक्ता केन्द्रो से जुडे हुये है, सकरण कार्यक्रम चलाने की सम्भावना पर पुर्नविचार किया बोर्ड ने यह सिफारिश की कि उन विदेशी नस्लो के चुनिंदा साँडो से उन क्षेत्रो मे सकरण कार्य चालू किया जाय जहाँ अशुद्ध जाति के पशु हों तथा जहाँ की जलवायु वर्णसकरता के बढाने के लिये उपयुक्त हो

भारतीय गोपशुओ के सकरण एव विकास के लिये भारत सरकार द्वारा 1952 मे स्थापित केन्द्रीय गोसवर्धन परिषद् ने 1961 में देश की सामान्य पशु प्रजनन नीति तथा विदेशी नस्लो द्वारा सकरण कराने की नीति के अपनाये जाने पर विचार किया इस परिषद् की शासकीय समिति की सिफारिश पर, भारत सरकार के खाद्य एव कृषि मन्त्रालय ने देश मे तब तक हुयी प्रगति के आधार पर गोपशुओ के लिये प्रजनन नीति की समीक्षा के लिये एक कार्यकारिणी उपसमिति गठित कर दी इस उपसमिति द्वारा सशोधित प्रजनन नीति के अन्तर्गत दुधारू, द्विप्रयोजनीय एव भारवाही नस्लो के क्षेत्र मे चुनिंदा प्रजनन करना, देशी पशुओ को द्विप्रयोजनीय अथवा दुधारू नस्ल के साँडो से गाभिन करा कर श्रेणी उन्नयन करना, पहाडी क्षेत्रो मे विदेशी नस्ल के साँडो से सकरण कराना और भैंसो का चुनिंदा प्रजनन एव श्रेणी उन्नयन द्वारा सुधार करना सम्मिलित हैं इस कार्यकारिणी उपसमिति ने सतति-परीक्षित एव विशुद्ध नस्ल के वशागत साँडो के उत्पादन के लिये और पशु प्रजनन फार्म खोलने तथा **देवनी, खिल्लारी** एव **काकरेज** नस्लो वाले प्रजनन क्षेत्रो मे और अधिक प्रमुख ग्राम खण्डो की स्थापना की भी सिफारिश की

राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, बगलोर, के दक्षिणी क्षेत्रीय केन्द्र तथा कृषि सस्थान, इलाहाबाद मे नियन्त्रित परिस्थितियो मे किये गये प्रयोगो ने यह सिद्ध कर दिया है कि विदेशी नस्ल के साँडो द्वारा किये गये सकरण से पशुओ का बहुत जल्दी सुधार होता है ऐसे ही प्रयोग करनाल, हेरिंघाटा तथा भारत के अन्य केन्द्रो पर भी किये गये है

यद्यपि इजराइल की भाँति विदेशी नस्लो को गर्म जलवायु मे भी रखकर अधिकतम उत्पादन लिया जा सकता है किन्तु प्रयुक्त विधियाँ खर्चीली होती है और भारतवर्ष मे वर्तमान परिस्थितियो में इन्हे लागू करना असम्भव-सा प्रतीत होता है देश की अशुद्ध नस्ल वाली पशु सख्या मे 50% से अधिक विदेशी रक्त का समावेश धीरे-धीरे तथा नियन्त्रित परिस्थितियो मे ही किया जा सकता है इस दिशा मे जो प्रयास पहले कम सफल हुये हैं उनका मुख्य कारण विशुद्ध नस्ल के विदेशी साँडो का अभाव था हिमीकृत वीर्य बिना किसी क्षति के वर्षो तक सरक्षित रखा जा सकता है, अत उच्च श्रेणी के सतति-परीक्षित साँडो के वीर्य का आयात भी सम्भव हो गया है

राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल मे **साहीवाल** तथा **लाल सिंधी** गायो को अमेरिका के **ब्राउन स्विस** साँडो के हिमीकृत वीर्य से गाभिन करा कर सकरण का कार्य किया जाता है **साहीवाल और ब्राउन स्विस** के सकरण से **करनस्विस–65** नस्ल विकसित की गयी है जिसने 1973 मे 4 बार दोहन करने पर 43 ली दैनिक दुग्ध उत्पादन का कीर्तिमान स्थापित किया है कृत्रिम वीर्यसेचन द्वारा 144 बच्चो का पहला बैच (सकर$_1$) उत्पन्न हुआ इनमे से 63 बछियाँ परिपक्वता को प्राप्त कर सकी द्वितीय पीढी (सकर$_2$) प्राप्त करने के लिये इन्हे सर्वोत्तम गायो से प्राप्त सकर साँडो से गाभिन कराया गया इनमे से तीन गायो ने करनाल मे उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है पहली पीढी की बछियो मे से एक की भी छटनी नही हुयी हाँ, स्थानीय जलवायु के प्रति अनुकूलन तथा इनकी शरीरक्रियात्मक, जननात्मक एव उत्पादन क्षमता का पता लगाने के लिये प्रेक्षण किये जा रहे है सकर पशुओ ने पहले-पहल 1966 मे बच्चे देकर दूध देना प्रारम्भ किया सारणी 10 मे दिये गये सक्षिप्त विवरण के अनुसार अब तक इनकी प्रगति आशानुकूल ही रही है

चारे तथा पानी के उपभोग, पशुओ के स्वास्थ्य, दुग्ध उत्पादन मे ऋतु के अनुसार विभिन्नता आदि बातो से स्पष्ट है कि सकर

सारणी 10 – साहीवाल तथा लाल सिंधी नस्ल की तुलना में संकर पशुओं की क्षमता* (1965–68)

लक्षण	संकर पशु	साहीवाल	लाल सिंधी
जन्म के समय भार (किग्रा)			
नर	27(66)	22(82)	21(76)
मादा	24(57)	21(81)	19(74)
शरीर भार में दैनिक वृद्धि (ग्रा)			
नर	530	400(59)	410(61)
मादा	510	390(64)	344(48)
पहली बार ब्याने पर आयु (माह)	30(57)	42(48)	35(15)
दूध देने वाली गायें (%)	93	66	60
प्रथम दुग्धकाल का उत्पादन 305 दिन में (किग्रा)	3,180(31)	1,868(53)	1,529(11)
ब्यात कालान्तर (दिन)	385(22)	511(144)	493(37)
प्रति गर्भाधान साँड़ों का प्रयोग	1 3	1 8	1 7
गर्भाधान की दर (%)	83	68	81
दोहन का औसत (किग्रा/दिन, 3 दोहन)			
ग्रीष्मकाल (मार्च-जून)	13 3	7 5	7 8
वर्षा ऋतु (जुलाई-अक्टूबर)	11 0	6 9	6 9
जाड़े की ऋतु (नवम्बर-फरवरी)	9 8	6 3	6 5

* दुग्ध-विज्ञान विभाग, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

नोट *कोष्ठकों के भीतर दिये हुये अंक उन पशुओं की संख्या प्रदर्शित करते है जिनका ओसत लिया गया है*

पशु, करनाल की जलवायु (जो उत्तरी भारत के मैदानों में लाक्षणिक है) के लिये सर्वथा अनुकूल है साहीवाल तथा लाल सिन्धी नस्लों की अपेक्षा संकर बैल बहुत अच्छे (तेज एवं मजबूत) होते हैं इनमें ककुद के न होने से उनकी भारवाही क्षमता में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आता जाड़े तथा गर्मी के निकटतम सम्पर्क में रहने के बाद भी इन पशुओं के दुग्धोत्पादन में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं दिखायी देता, बल्कि जैसा कि सारणी 10 से स्पष्ट है वास्तव में गर्मियों की ऋतु में इनका दुग्धोत्पादन अधिकतम रहा विदेशी नस्लों से संकरण कराने के बाद संकर संतान मिलने से देशी पशुओं में जल्दी सुधार हुआ है एक बार संकरण कार्य के विधिवत प्रारम्भ होने पर विदेशी साँडों अथवा हिमीकृत वीर्य की आवश्यकता अपने आप घटती जायेगी

कृत्रिम वीर्यसेचन

भारतीय गोपशुओं के आनुवंशिक सुधार में अच्छे साँडों का अभाव सबसे बड़ी बाधा बनता है एक अनुमान के अनुसार देश में प्रजनन योग्य 7 5 करोड़ गायों-भैंसों को प्राकृतिक ढंग से गाभिन कराने के लिये लगभग 10 लाख अच्छी नस्लों के साँडों की आवश्यकता होगी यह मानकर कि प्रत्येक चार वर्ष बाद साँडों को बदलना पड़े तो प्रतिवर्ष हमें 2 5 लाख साँडों की आवश्यकता होगी किन्तु इस समय जहाँ 250 साँड चाहिये वहाँ केवल एक ही अच्छा प्रजनक साँड उपलब्ध है अत केवल कृत्रिम वीर्यसेचन ही इस समस्या का हल हो सकता है.

परीक्षित साँडों का अधिकाधिक उपयोग करने के उद्देश्य से ही भारतवर्ष में कृत्रिम वीर्यसेचन प्रणाली अपनायी गयी है विभिन्न केन्द्रों से प्राप्त अनुभवों से यह प्रदर्शित होता है कि इस प्रणाली के सही-सही उपयोग से ही पशुओं का शीघ्र सुधार हो सकता है

भारतवर्ष में कृत्रिम वीर्यसेचन सम्बन्धी क्रमबद्ध अनुसंधान का प्रारम्भ भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर (उत्तर प्रदेश) में हुआ भारतीय परिस्थितियों में इस प्रविधि को लागू करने में कोई कठिनायी नहीं आयी फलत देश में गायों-भैंसों के सुधार के लिये इसे बड़े पैमाने पर अपनाया गया प्रथम पंचवर्षीय योजना में चलायी गयी प्रमुख ग्राम योजना ने भी पशुओं के सुधार हेतु कृत्रिम वीर्यसेचन प्रविधि को साधन स्वरूप अपनाया द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में कृत्रिम वीर्यसेचन काफी दूर-दूर के क्षेत्रों में अपनाया गया सम्पूर्ण देश में बहुत बड़ी संख्या में कृत्रिम वीर्यसेचन केन्द्र खोले गये इनमें से अधिकांश पशु प्रजनन क्षेत्रों में तथा शेष अशुद्ध नस्ल के देशी पशुओं वाले क्षेत्रों में स्थापित किये गये आजकल प्रमुख ग्राम योजना तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा योजना में कृत्रिम वीर्यसेचन को प्रमुख स्थान प्राप्त है. इसमें प्रमुख ग्राम वीर्य गुणन केन्द्र का कार्य करते हैं और जो गाँव प्रजनन क्षेत्र में स्थित हैं वे आवश्यक संख्या में विभिन्न नस्लों के साँड तैयार करते हैं

प्रथम पंचवर्षीय योजना में 555 प्रमुख ग्रामों में 146 कृत्रिम वीर्यसेचन केन्द्र थे जिनमें 2,92,751 गायों-भैंसों का वीर्यसेचन किया गया द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 1960–61 तक 261 केन्द्रों द्वारा 17,80,594 गाय-भैंसें सेचित की गयीं तीसरी पंचवर्षीय योजना में 23 कृत्रिम वीर्यसेचन केन्द्र और खोले गये

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने एक क्षेत्रीय कृत्रिम वीर्यसेचन योजना की रूपरेखा तैयार की है जिसका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न भौगोलिक तथा जलवायु की परिस्थितियों में रहने वाले पशुओं की अनेक नस्लों पर कृत्रिम वीर्यसेचन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करके एक ऐसा सम एवं समन्वित शोध कार्यक्रम तैयार करना था जिसे पूर्वी क्षेत्र के लिये कटक तथा कलकत्ता, दक्षिणी क्षेत्र के लिये पूना, और उत्तरी क्षेत्र के लिये इज्जतनगर जैसे चुनिंदा केन्द्रों में कार्यान्वित किया जा सके

प्रमुख ग्राम योजना के अन्तर्गत चालू कृत्रिम वीर्यसेचन केन्द्रों के अतिरिक्त राज्य सरकारों ने इस कार्य के लिये अपने कुछ और केन्द्र भी खोले हैं

अच्छी नस्ल वाले क्षेत्रों में तथा कुछ सुसंगठित फार्मों पर भी चुनिंदा प्रजनन करने के लिये छोटे स्तर पर कृत्रिम वीर्यसेचन कार्य किया जाता है कुछ प्रदेशों में जहाँ राजकीय पशुधन फार्मों पर समुचित सुविधायें उपलब्ध हैं, पशुओं को केवल कृत्रिम वीर्यसेचन प्रविधि द्वारा ही सेचित कराया जाता है भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर (उत्तर प्रदेश) के डेरी फार्म पर रखी गयी **हरियाना** नस्ल की गायों को 1944 से ही इस विधि से गाभिन किया जाता रहा है यहाँ रखी गयी **मुर्रा** नस्ल की भैंसों में भी 1953 से यही विधि अपनायी जा रही है

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की एक योजना के अन्तर्गत कुछ चुनिंदा स्थानों में 1955 में विदेशी नस्ल के साँडों से पुन चलाया गया संकरण कार्य पूरी तरह कृत्रिम वीर्यसेचन पर ही आश्रित है इस कार्य के लिये बंगलौर तथा टालीगंज (पश्चिमी बंगाल) में वीर्य-बैंकों की स्थापना की गयी है जहाँ से जर्सी नस्ल

के साँडो का वीर्य एकत्रित करके कृत्रिम वीर्यसेचन के लिये विभिन्न सकरण केन्द्रो पर भेजा जाता है इसके अतिरिक्त दक्षिणी प्रदेशो के 25 केन्द्रो को भी यही से वीर्य भेजा जाता है विशाखापटनम, ऊटकमड, चलकुडी, पालमपुर तथा चोहरपुर स्थित केन्द्रो मे जर्सी से सकरित द्वितीय पीढी के पशु रखे गये है शेष इकाइयो मे प्रथम पीढी के पशु मिलते हैं

वीर्य एकत्रीकरण – साँड द्वारा मैथुन के बाद योनि तल से वीर्य एकत्रित करने के पुराने तरीके बेकार हो चुके हैं अब तो वीर्य कृत्रिम योनि (स्वीडिश तथा डैनिश माडल) मे इकट्ठा किया जाता है यह मोटे रबर के एक खोखले सिलिण्डर (लम्बाई 30 सेमी, भीतरी व्यास 6 सेमी तथा किनारे उठे हुये) और 40 सेमी लम्बे एव आधार पर 10 सेमी व्यास वाले रबर शकु की बनी होती है शकु के पतले एव सकरे सिरे पर एक अशाकित पाइरेक्स की परखनली होती है जिसमे साँड द्वारा स्खलित पूरा-पूरा वीर्य अपनी विशुद्ध अवस्था मे एकत्र हो जाता है शकु तथा परखनली को रोयी थैली मे रखकर सुरक्षित रखा जाता है शकु तथा रबर के अस्तर के बीच पानी अथवा हवा भरकर 42–45° से ताप तथा वाछित दाब रखा जाता है चिकना करने के लिये इसमे थोडी मात्रा मे निर्जर्मित सफेद वैसलीन अथवा कोई अन्य चिकना पदार्थ लगा दिया जाता है भारतीय नस्लो, विशेषकर **हरियाना** तथा **साहीवाल** के साँड कम ताप की अपेक्षा 45° से 48° से के उच्च ताप पर कृत्रिम योनि मे वीर्य देना अधिक पसद करते है

ढाई से तीन वर्ष की आयु के युवा साँड कृत्रिम वीर्यसेचन कार्य के लिये उपयुक्त होते है स्थानीय जलवायु तथा वातावरण की परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुये इनके खान-पीन और रहने का ठीक प्रबन्ध किया जाता है अच्छा रखने के लिये इन्हे नियमित रूप से व्यायाम कराया जाता है वीर्य एकत्रीकरण से पूर्व चुनिंदा साँडो को बाडो से परिचित कराया जाता है तत्पश्चात् इन्हे पाँच-पाँच मिनट के लिये तीन बार अडगडा में खडी भैंस अथवा बनावटी गाय के पास ले जाकर कृत्रिम योनि मे वीर्य इकट्ठा कर लिया जाता है **हरियाना** साँडो की अपेक्षा **साहीवाल** तथा **थारपारकर** नस्लो के साँड वीर्य स्खलित करना अधिक समय मे सीख पाते हैं अधिकाश भारतीय नस्लो के नये साँड लगभग पन्द्रह दिनो मे यह कार्य सीख लेते हैं जबकि अधिक आयु वाले साँडो को दो-तीन माह लग जाते है थोडे-थोडे अवकाश पर बार-बार एकत्रित करने की अपेक्षा एक सप्ताह मे दो बार अथवा पूरे सप्ताह मे एक ही दिन मे दो बार वीर्य एकत्रित करना अधिक अच्छा है

वीर्य एकत्रीकरण की वैद्युत उद्दीपन विधि, यद्यपि दूध देने वाली नस्लो के धीमी प्रकृति वाले साँडो से वीर्य प्राप्त करने के लिये अधिक उपयुक्त है, लेकिन बारम्बार प्रयोग करने से होने वाले खतरो तथा कुपरिणामो के कारण यह अधिक पसद नही की जाती यह विधि भारत मे प्रयुक्त नही होती

वीर्य एकत्रित करने के लिये पशु के मलाशय मे हाथ डाल कर शुक्रवाहिनी कलशिका एव वाहिनी को मलकर साँड का वीर्य स्खलित कराने की विधि मर्दन विधि कहलाती है यह अत्यन्त सीमित उपयोग की विधि है लेकिन यह विधि उन साँडो से वीर्य लेने के लिये बहुत अच्छी है जो शारीरिक रूप से मैथुन करने के अयोग्य होते हैं इस विधि को लागू करने मे बहुत ही दक्षता की आवश्यकता पडती है अत दैनिक कृत्रिम वीर्य सेचन कार्य मे इसका उपयोग नही किया जाता

सारणी 11 – भारतीय साँडो द्वारा एक बार में स्खलित वीर्य का औसत आयतन*

नस्ल	वीर्य (मिली)	नस्ल	वीर्य (मिली)
हरियाना	3 16	अगोल	4 10
कुमायूँ	2 00	अमृतमहल	4 10
साहीवाल	3 80	लाल सिंधी	4 70
थारपारकर	3 80	गिर	5 70
नागौरी	3 60	भारत-यूरोपीय सकरित	3 40

*Singh, *Tech Bull Indian Coun agric Res (Anim Husb)*, No 1, 1965

वीर्य का रख-रखाव – एकत्रीकरण के समय से लेकर उसके उपयोग होने तक वीर्य को अत्यन्त सावधानी से रखना पडता है इसकी ताप अथवा शीत से रक्षा करनी पडती है तथा इसे पानी, हानिकारक रासायनिक पदार्थो तथा वायु और सूर्य की रोशनी से बचाना पडता है वीर्य को तनु करने से पूर्व उसे 25° से कम ताप पर नही रखना चाहिये

वीर्य की विशेषतायें – साँड का वीर्य अपारदर्शक एव दूधिया सफेद रग का होता है और शुक्राणुओ की सान्द्रता के अनुसार यह दूधिया, श्वेतपीत अथवा पानी जैसा पतला हो सकता है वीर्य का आयतन साँड की आयु, कद एव नस्ल पर निर्भर करता है विभिन्न नस्ल के भारतीय साँडो के एक स्खलन का औसत आयतन सारणी 11 मे दिया गया है

साँड द्वारा स्खलित एक बार के वीर्य मे शुक्राणुओ की सान्द्रता निम्नाकित विधियो द्वारा ज्ञात की जाती है

(1) तनुकृत वीर्य मे शुक्राणुओ की सख्या ज्ञात करने के लिये रुधिर कोशिका गणक के प्रयोग से, (2) नेफेलोमीटर की सहायता से तनुकृत वीर्य की रुधिर कोशिका गणक द्वारा मानकीकृत सान्द्रता के वीर्य के नमूने के साथ प्रकाश शोषित करने की क्षमता की तुलना से, (3) बेरियम सल्फेट अथवा रुधिर कोशिका गणक द्वारा परोक्ष गणना के आधार तैयार किये गये अन्य घनत्व मानको के साथ वीर्य के घनत्व की तुलना से, और (4) साँड द्वारा स्खलित एक बार के वीर्य का अपकेन्द्रण करने के बाद उसके कोशिका आयतन की तुलना रुधिर कोशिका गणक द्वारा की गयी परोक्ष गणना के साथ करके भारतवर्ष मे तनुकृत वीर्य मे रुधिर कोशिका गणक द्वारा परोक्ष रूप से शुक्राणुओ की सख्या गिन कर साँड के प्रत्येक स्खलन मे शुक्राणुओ की सान्द्रता का पता लगाया जाता है इस विधि से किसी त्रुटि के हुये बिना शुक्राणुओ की लगभग सही-सही सख्या ज्ञात हो जाती है भारतीय पशुओ की कुछ नस्लो की औसत शुक्राणु सख्या (करोड शुक्राणु/मिली मे) निम्नाकित प्रकार हैं **हरियाना**, 1034, **कुमायूँ**, 701

शुक्राणुओ का परिरक्षण एव भडारण – कृत्रिम वीर्यसेचन मे प्रयुक्त करने के लिये वीर्य को तनु करके उसका आयतन बढा दिया जाता है एक अच्छे तनुकारी में निम्नलिखित गुण होने चाहिये वह विषैला न हो, आसानी से तैयार किया जा सकता हो, उसका मूल्य कम हो, शुक्राणुओ को अधिक समय तक जीवित रखने की शक्ति प्रदान करता हो, उसे आसानी से रखा जा सकता हो, और उसमे पी-एच मे परिवर्तन रोकने की उभयरोधी

क्षमता हो माँड के वीर्य को सुरक्षित रखने के लिये पहले सरफेटो, टार्टरेटो अथवा फॉस्फेटो को जिलेटिन, रक्त-सीरम, ऊतक सम्वर्धं निष्कर्ष आदि के साथ अथवा इनके बिना भी वीर्य तनुकारी के रूप मे प्रयुक्त किया जा चुका है अब इनका स्थान अण्डपीत फॉस्फेट (अ फा) तथा अण्डपीत सिट्रेट (अ सि) तनुकारियो ने ले लिया है और ये भारतवर्ष मे बहुतायत से इस्तेमाल हो रहे हैं अण्डपीत सिट्रेट ग्लाइसीन (अ सि ग्ला), अण्डपीत ग्लाइसीन (अ ग्ला), उवाला हुआ अथवा पास्तुरीकृत, समागीकृत अथवा असमागीकृत दूध, अण्डपीत युक्त अथवा उससे रहित उबाला हुआ या पास्तुरीकृत, क्रीम उतारा दूध, तथा अण्डपीत युक्त अथवा उससे रहित दुग्ध-चूर्ण या क्रीम उतारा दूध वीर्य को तनुकृत करने के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले अन्य पदार्थ हैं सिट्रेटयुक्त उवाला हुआ दूध, अण्डपीत सिट्रेट की ही भाँति अच्छा तनुकारी है अण्डपीत-ग्लूकोस-सोडा वाइकार्वोनेट भी एक अच्छा तनुकारी है यह शुक्राणुओ की ससेचन क्षमता पर कोई प्रभाव नही डालता और सामान्यत वीर्य के दैनिक परिरक्षण मे इसका उपयोग किया जाता है आजकल अण्डपीत सिट्रेट, सल्फानिलैमाइड एव प्रतिजैविक पदार्थो के साथ मिलाकर सभी जगह प्रयुक्त होने लगा है हमारे देश मे गरी के दूध को वीर्य तनुकारी के रूप मे प्रयुक्त करने की, केन्द्रीय वीर्य-वैंक, हेव्वल (वगलौर) मे एक नवीन प्रविधि विकसित की गयी है

'इलिनी परिवर्तनशील ताप तनुकारी' नामक एक नया तनुकारी भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान द्वारा विकसित किया गया है जो कमरे के ताप (15–25°) पर सात दिन तक माँड के शुक्राणुओ को (50% से अधिक) गतिवान एव गर्भधारण कराने के योग्य रख सकता है

वीर्य को तनुकृत किये जाने मे प्रयुक्त होने वाले किसी भी तनुकारक के पी-एच को 7 से अधिक नही होना चाहिये और इसे वीर्य-द्रव के साथ समपरासारी होना चाहिये वीर्य को शारीरिक ताप पर ही तनुकृत किया जाता है वीर्य को उतना ही तनु करना चाहिये जिससे शुक्राणुओ की वीर्यसेचन क्षमता पर कोई बुरा प्रभाव न पडे और उसका अधिक से अधिक पशुओ पर प्रयोग हो सके आमतौर पर वीर्य को 1 10 के अनुपात मे ही तनु किया जाता है, यद्यपि 1 5 से 1 40 तक के अनुपात से भी वीर्यसेचन करने मे सफलता प्राप्त की जा चुकी है तनुकृत वीर्य को विभिन्न तापो 25, 20, 15, 10 तथा 5° वाले पानी मे क्रमश रखकर धीरे-धीरे ठडा करना चाहिये फिर भविष्य मे प्रयुक्त होने के लिये इसे प्रशीतक मे भण्डारित करना चाहिये भारतवर्ष मे कृत्रिम वीर्य सेचन के लिये वीर्य का गहन-हिमीकरण अव्यावहारिक सिद्ध हुआ है

वीर्य का परिवहन—दूरस्थ केन्द्रो पर भेजे जाने वाले वीर्य को परिवहन से पूर्व भली-भाँति वद करना तथा उस पर लेविल लगाना आवश्यक है परिवहन काल मे वीर्य का ताप 10° से नीचे, और जहाँ तक सम्भव हो 3–5° तक रखना चाहिये भारतवर्ष मे कृत्रिम वीर्य सेचन के लिये वीर्य, साधारणत मुख्य केन्द्र से प्राय 8–16 किमी की दूरी पर स्थित उपकेन्द्रो पर भेजा जाता है वायुयान, रेल अथवा सडक द्वारा लम्वी दूरी पर वीर्य का परिवहन करने के लिये वर्फयुक्त, भारी रोधन के सुधरे हुये पात्रो (निर्वात जार, डैनिश पात्र) की आवश्यकता पडती है भारतवर्ष मे इस कार्य के लिये पालिस्टेरीन वक्सो का भी उपयोग किया जा रहा है

वीर्य के परिवहन के लिये अव तक पाँच उपयुक्त पात्रो का अन्वेषण किया जा चुका है इनके नाम हैं पूना मॉडल, वगलौर मॉडल, मथुरा मॉडल, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान मॉडल तथा जापानी मॉडल (जिनका प्रयोग राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्डो मे किया जाता है) पूना तथा वगलौर मॉडल के पात्र अन्यो की अपेक्षा अच्छे माने जाते हैं क्योकि यदि वाहर का ताप 35–45° भी रहे तो भी ये वीर्य को दो-तीन दिन तक 10° से भी कम ताप पर सुरक्षित रखते है

वीर्यसेचन की विधियाँ—फार्म पर रखे जाने वाले विभिन्न जातियो के पशुओ के लिये वीर्यसेचन की विधियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं इस कार्य मे प्रयुक्त होने वाले सभी यन्त्र सूखे एव निर्जर्मित तथा परिचालक के हाथ भी निर्जर्मित एव स्वच्छ होने चाहिये प्रति वीर्यसेचन मे वीर्य की मात्रा विशेषत शुक्राणुओ की सान्द्रता पर निर्भर करती है

गोपशुओ मे प्राय एक वीर्यवाहक नली के द्वारा योनिवीक्षण यन्त्र की सहायता से अथवा उसके विना ही वीर्य स्थापित किया जाता है प्रारम्भ मे योनि के मार्ग द्वारा गर्भाशय-ग्रीवा का पता लगाकर उसमें वीर्य डाला जाता था आजकल मलाशय मे हाथ डालकर गर्भाशय-ग्रीवा को पकडकर और दूसरे हाथ से योनि तल से वीर्य चालक नली को प्रविष्ट किया जाता है मादा मे वीर्य प्रविष्ट करने की यह 'रेक्टम योनि विधि' आजकल अन्य विधियो की अपेक्षा अधिक अच्छी मानी जाती है, क्योकि इसमे सही स्थान पर वीर्य पहुँच जाता है और मादा का गर्भिणी होना निश्चित रहता है इसमे योनिवीक्षण यन्त्र के प्रयोग से पशु की जननेन्द्रिय से रक्तस्राव होने की भी सम्भावना नही रहती

कृत्रिम वीर्य सेचन प्रविधि मे गाभिन करायी जाने वाली गायो और उनके लिये आवश्यक साँडो की सख्या के अनुपात मे काफी सुधार हुआ है और कृत्रिम वीर्य सेचन सेवा के प्रसार मे इसमें और भी अधिक वृद्धि की आशा की जानी चाहिये ज्यो-ज्यो पशु प्रजनन की अन्य प्रायोजनाये प्रगति करेंगी त्यो-त्यो कृत्रिम वीर्यसेचन विधि की भी उन्नति होगी और 1981 तक देश की लगभग 50% गाये इस विधि द्वारा गाभिन की जा सकेंगी इस आधार पर विभिन्न योजना काल मे हमे जितने साँडो की आवश्यकता होगी और उनमे से जितनी उपलब्धि होगी, यह विवरण सारणी 12 में दिया गया है

विभिन्न केन्द्रो पर कृत्रिम वीर्य सेचन के लिये समुचित सख्या मे गायो के न पहुँचने, दूरस्थ केन्द्रो पर वीर्य के परिवहन के उपयुक्त साधन न होने तथा राज्यीय अथवा अन्तर्राज्यीय स्तर

सारणी 12—1951–81 तक भारतवर्ष में प्रजनक साँडो की उपलब्धि*

	1951	1956	1961	1966	1971	1976	1981
गायों के लिये साँड़ो का अनुपात	1 76	1 90	1 120	1 150	1 200	1 290	1 400
आवश्यक साँडों की सख्या (लाख)	9 3	7 4	6 4	4 4	3 3	2 2	1 5
वार्षिक क्षतिपूर्ति (लाख)	3 1	2 46	2 16	1 46	1 1	0 71	0 50
सुधरे साँडों का उत्पादन (लाख)	0 06	0 08	0 13	0 10	0 23	0 25	0 28

*Report of the Working Group on Fourth Five Year Plan for Animal Husbandry, Ministry of Food & Agriculture, New Delhi.

पर इस प्रविधि के किफायती उपयोग मे समन्वय का अभाव होने के कारण साँडो के बहुमूल्य वीर्य को नष्ट होने से बचाने के लिये भारतवर्ष मे अपनाये गये कृत्रिम वीर्य सेचन के उपायो मे सुधार करने की आवश्यकता है कुछ महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार है. (1) प्रत्येक केन्द्र पर कम-से-कम सख्या मे अच्छे साँड रखे जाये तथा शेष साँडो को आवश्यकतानुसार अन्य स्थानो पर भेज दिया जाये, तथा (2) राज्यीय अथवा अन्तर्राज्यीय स्तर पर वीर्य के किफायती वितरण के लिये प्रत्येक राज्य मे एक या दो वीर्य-बैंको की स्थापना की जाय कृत्रिम वीर्य सेचन क्षेत्र एव उसके आस-पास के गाँवो के समस्त देशी साँडो को वधिया करना तथा आवारा पशुओ को हटाना भी आवश्यक है देश के विभिन्न क्षेत्रो मे, जहाँ विभिन्न जलवायु एव वातावरण की परिस्थितियो मे गोपशुओ की विभिन्न नस्ले पायी जाती है, कृत्रिम वीर्यसेचन के विभिन्न पहलुओ पर, फार्म के पशुओ की प्रजनन कार्यिकी के पूर्ण ज्ञान सहित आयोजित, एक समन्वित शोध योजना भारतवर्ष की कृत्रिम वीर्य-सेचन की विचित्र समस्याओ के समाधान मे काफी सहायक होगी

सन्तति परीक्षण – साँड का गुण ही उसके चुने जाने के लिये पर्याप्त नही होता वरन् वाछित गुणो वाली सतति पैदा करने की उसकी क्षमता एक आवश्यक कारक है सतति-परीक्षित साँडो का अभाव ही हमारे देश मे कृत्रिम वीर्यसेचन कार्य की प्रगति मे बाधक बनता रहा है भारतवर्ष मे वैज्ञानिक ढग मे सतति-परीक्षण का समुचित विकास इसीलिये नही हो पाया है, क्योकि यह अधिक खर्चीला एव समय लेने वाला है अभी हाल मे भारत सरकार ने देश मे तीन या चार केन्द्रो पर सतति परीक्षण योजना के कार्यान्वयन की स्वीकृति दी है देश के कुछ राजकीय पशुधन फार्मो पर भी सतति परीक्षण का कार्य किया जा रहा है हिसार (हरियाणा) मे **हरियाना** तथा **मुर्रा** नस्ल के सतति परीक्षित साँड उत्पन्न करने की एक विशाल प्रायोजना चल रही है **कांकरेज** तथा **अंगोल** नस्ल के साँड उत्पन्न करने का ऐसा ही कार्यक्रम अन्य फार्मो द्वारा चालू किये जाने की सम्भावना है गोपशुओ के दुग्धोत्पादन का अनुमान लगाने और उनका वार्षिक उत्पादन आँकने के लिये तथा उनके पालन-पोषण, खान-पान एव देखरेख सबधी आँकडे एकत्र करने के लिये देश के कुछ भागो में अग्रगामी अन्वेषण परियोजनाये भी चल रही है

प्रमुख नस्लो की देखभाल तथा प्रवर्धन – गोपशुओ की प्रमुख नस्लो के लिये ठीक से देखरेख और उनके प्रवर्धन की आवश्यकता होती है इस समय भारतवर्ष में लगभग 140 राजकीय पशुधन फार्म है, जहाँ बीस विभिन्न नस्लो की लगभग 22,000 गाये और उनके बच्चे तथा 13,000 भैसे पाली जाती है ग्रामीण क्षेत्रो मे पशुधन विकास कार्यक्रमो के लिये अच्छे साँड उत्पन्न करने के उद्देश्य से इन फार्मो को खोला गया था कुछ राजकीय फार्म एव समस्त सैनिक फार्म, पशुपालन पद्धतियो के प्रदर्शन केन्द्रो के रूप मे कार्य करते है इन फार्मो ने पशुओ के विकास मे आवश्यक योगदान दिया है राजकीय फार्मो की स्थापना के साथ-साथ पशुओ की विभिन्न नस्लो के वर्तमान रूप के उद्भव का भी इससे पता लगाया जा सका है सैनिक फार्मो को छोडकर अधिकाश राजकीय फार्मो पर अब अच्छी नस्ल के साँड तैयार करने का ही कार्य विशेष रूप से किया जा रहा है इनमे से बहुत से फार्म प्रदेश के पशुपालन विभाग के अधीन है किन्तु कुछ कृषि विभाग अथवा कृषि महाविद्यालयो या पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालयो के तत्वावधान में विद्यार्थियो को प्रशिक्षण देने का कार्य है विभिन्न प्रदेशो मे स्थित ऐसे राजकीय पशुधन फार्मो की सख्या सारणी 13 में दी गयी है

सारणी 13 – भारतवर्ष में राजकीय पशुधन फार्म*

प्रदेश	पशुधन फार्मों की संख्या	प्रदेश	पशुधन फार्मों की संख्या
असम	8	पश्चिमी बगाल	3
आन्ध्र प्रदेश	12	बिहार	8
उड़ीसा	6	मध्य प्रदेश	22
उत्तर प्रदेश	27	महाराष्ट्र	15
केरल	4	मैसूर	9
गुजरात	6	राजस्थान	6
जम्मू एव कश्मीर	2	केन्द्र शासित क्षेत्र एव केन्द्रीय सस्थान	6
तमिलनाड	5		
पजाब	4		
योग	143		

*Building from Below Essays on India's Cattle Economy (सर्व सेवा सघ, कृषि गोसेवा समिति, नई दिल्ली), 1964

सारणी 14 – भारतवर्ष में उपलब्ध प्रजनक साँडो की संख्या*

	गोपशु	भैंसे
केन्द्रित ग्राम योजना	2,042	1,128
वीर्य-बैंक	306	
कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र	822	897
राष्ट्रीय प्रसार सेवा केन्द्र	3,570	1,266
योग	6,740	3,291

*Report of the Working Group on Fourth Five Year Plan for Animal Husbandry, Ministry of Food & Agriculture, New Delhi

इसके अतिरिक्त इस समय यहाँ 35 सैनिक फार्म, 3 सहसैनिक फार्म तथा 5 नवीन एव सूखे पशुओ के फार्म है जिन पर लगभग 20,000 गोपशु पाले जाते है इनमे से कुछ सैनिक फार्मो पर गायो की दुग्धोत्पादन क्षमता बढाने के लिये देशी पशुओ (**लाल सिंधी, साहीवाल**) को विदेशी नस्ल के साँडो (**जर्सी, आयरशायर, होल्स्टाइन-फ्रीजियन, शार्टहार्न** इत्यादि) से गाभिन करा कर बच्चे पैदा करने के प्रयास किये जा रहे है अभी हाल मे इन फार्मो पर **मुर्रा** तथा **नीली-रावी** भैसो के यूथ भी रखे जाने लगे है प्रजनन के लिये सैनिक फार्मो पर अधिकतर प्राकृतिक विधि ही अपनायी जाती है और कृत्रिम वीर्य सेचन प्रविधि का नाममात्र को प्रयोग होता है केवल राजकीय फार्मो पर ही सभी प्रकार के आवश्यक साँडो के उत्पादन के लिये निर्भर रहने पर उनका पालन-पोषण आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नही होगा, अत कुछ चुनिंदा क्षेत्रो मे भी ऐसे साँडो को पालने-पोसने का निश्चय किया गया है ऐसा प्राय उन क्षेत्रो के लिये अधिक उपयुक्त माना गया है जिनमे अच्छी पशु नस्ले मिलती है इसी उद्देश्य से प्रमुख ग्राम योजना चलायी गयी जिसके अन्तर्गत राजकीय पशुधन फार्मो पर तैयार होने वाले शुद्ध नस्ल के वशागत साँडो के प्रयोग से शीघ्रातिशीघ्र पशुधन का विकास किया जाता है विभिन्न योजनाओ के अन्तर्गत प्रजनन कार्य के लिये उपलब्ध गोजातीय तथा भैस जातीय साँडो की कुल सख्या सारणी 14 मे अंकित है

रोग

भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश में पशुधन कृषि की रीढ है अत पशु रोगो पर नियत्रण रखना राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सुधार में आवश्यक योगदान है इस तथ्य को ध्यान मे रखकर भारत सरकार ने देश मे बुरी तरह फैलने वाले महामारी पशु रोगो पर अन्वेषण करने के लिये 1889 मे एक प्रयोगशाला स्थापित की जिसे आजकल भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान के नाम से जाना जाता है प्रारम्भ मे इस सस्थान के पशुओ मे इन रोगो के लिये प्रतिरक्षी उपाय ढूँढ निकालने के लिये घातक रोगो के जनक कीटाणुओ का विशेष रूप से अध्ययन होता रहा इस सस्थान की स्थापना के प्रथम दस वर्षो मे ही पशु-प्लेग विरोधी सीरम तैयार कर लिया गया जिसे गाँव-गाँव मे प्रयुक्त किया जा सके 1906 तक इस सस्थान द्वारा तैयार पशु सम्बन्धी जैविक उत्पादो की तालिका मे गलाघोटू, गिल्टी, टेटनस आदि बीमारियो के लिये अनेक ऐटीसीरम, लगडिया रोग के लिये एक टीका, घोडो मे लैडर्स रोग का पता लगाने वाले पदार्थ मैलीन भी सम्मिलित कर लिये गये

रोगोत्पादक कारको के आधार पर प्रमुख पशु रोगो को वाइरस तथा वैक्टीरियाजन्य रोग, परजीवी रोग, किलनियो द्वारा वहन होने वाले रोग तथा अन्य विकृतिजन्य अवस्थाओ में वर्गीकृत किया जा सकता है इनमे से पोकनी (रिण्डरपेस्ट), खुरपका-मुहपका, गलाघोटू, लगडिया, विषहरी (ऐथ्रैक्स), क्षय रोग, थनैली, सक्रामक गर्भपात, सुर्रा, काक्सीडियोसिस, बैवेसिओसिस, थीलेरियासिस, फैसिओलियासिस (कीडया रोग), नासा कणिका-गुल्म (नासिका ग्रैनुलोमा) तथा ऐम्फिस्टोमिआसिस आदि उपर्युक्त प्रकार के प्रमुख रोग हैं

वाइरस रोग – रिण्डरपेस्ट अथवा पशु-प्लेग (अन्य नाम – माता, बडा रोग, शीतला, मुर्री, मोक, गोटी, महामारी आदि) गायो-भैसो, भेडो-बकरियो तथा सुअरो का एक बहुत ही विनाशकारी वाइरस रोग है 1936–44 तक इसका प्रकोप अधिक था किन्तु गहन टीका योजना के परिणामस्वरूप 1949–53 की अवधि मे इसका प्रकोप धीरे-धीरे कम हो गया है ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारतवर्ष मे कम से कम 4,00,000 गोपशु इस बीमारी से प्रतिवर्ष मौत के घाट उतरते है तथा जो पशु इसके प्रकोप के बाद बच जाते है उनका उत्पादन गिर जाता है सदूषित पशुओ के द्वारा रोग फैलने के डर से उन देशो मे, जो इस बीमारी से मुक्त है, भारतीय पशुओ का निर्यात भी अत्यन्त सीमित है भारत को प्रति वर्ष इस भयकर रोग से लगभग 30 करोड रुपये की क्षति पहुँचती है

इस रोग को उत्पन्न करने वाले विषाणुओ को गोपशुओ तथा भैसो के शरीर मे प्रवर्धित किया जा सकता है जहाँ यह अपनी पूर्ण उग्रता मे होता है अशुद्ध नस्ल के देशी पशुओ की अपेक्षा विशुद्ध नस्लीय अथवा सकर पशु और भैसे इस रोग के प्रति अधिक सुग्राह्य है रोगग्रस्त पशुओ मे मृत्यु दर 8–100% होती है, मैदानी पशुओ मे यह दर 20 से 50% है जुगाली करने वाले आवारा पशुओ को भी यह बीमारी लगती है और वे इसे स्थायी रूप से फैलाते रहते है

लार, आँख तथा नाक से गिरने वाले स्राव और मल-मूत्र मे इस रोग का विषाणु प्रमुख रूप से पाया जाता है यह ज्वरावस्था मे शरीर के अन्दर चक्कर लगाने वाले रक्त मे पाया जाता है और बाद मे यह प्लीहा, लसीका ग्रन्थियो तथा यकृत जैसे अगो मे एकत्रित हो जाता है सदूषित चारा एव पानी के माध्यम से ही यह बीमारी अधिकतर फैलती है सदूषित वायु या पात्र तथा परिचारक भी रोग फैलाने मे सहायक होते है

रोगग्रस्त पशु सुस्त दिखायी पडता है, उसकी आँखे लाल हो जाती है, उनसे पानी बहता है तथा थूथन सूख जाती है पशु को कब्ज हो जाता तथा वह खाना-पीना छोडकर पीठ टेढी करके खडा होता है और उसके शरीर मे कम्पन होता है इन लक्षणो के प्रकट होने के बाद पशु को बदबूदार तथा खून मिले तेज दस्त आने लगते है 7वे से 9वे दिन पशु के तालू, मसूडो तथा भीतर की ओर होठो पर छाले पड जाते है जो इस बीमारी के विशेष लक्षण है ऐसे ही छाले अतडी की दीवाल पर भी पड जाते है मुह मे पडे छालो के कारण पशु चारा-दाना नही खा पाता और तेज दस्तो के कारण वह निरन्तर कमजोर होता चला जाता है इससे पशु का अस्थि-पजर मात्र रह जाता है और 7–10 दिनो मे उसकी मृत्यु हो जाती है

रोगग्रस्त पशु को शीघ्रातिशीघ्र अन्य पशुओ से अलग करके उसे *प्रति पशु-प्लेग सीरम का टीका लगाना चाहिये स्वस्थ पशुओ को* उपर्युक्त वैक्सीन का टीका लगाकर इस रोग से बचाया जा सकता है रोगी पशु के सम्पर्क मे आये हुये सभी पशुओ को सीरम का टीका लगाना चाहिये

प्रति पशु-प्लेग सीरम प्रभाववश्य पशुओ की 10 से 14 दिन तक अस्थायी प्रतिरक्षा करता है अत सक्रिय प्रतिरक्षा उत्पन्न करने के लिये उन्हे फिर से टीका लगाना चाहिये

बकरी-विषाणु वैक्सीन, जिसे 1926 मे गोपशुओ के वाइरस को बकरी के तन्तुओ मे सर्वधित करके तैयार किया गया था, भारतीय गाय-भैसो मे बहुत ही हल्के प्रकार की बीमारी उत्पन्न करने की क्षमता रखता है और इससे लगभग 12 वर्ष के लिये पशुओ की रोग-प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है

खरगोशो से तैयार किया गया वैक्सीन अत्यधिक प्रभाववश्य गाय-भैसो मे बहुत ही हल्की प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है और पशुओ की कार्य-क्षमता एव दुग्धोत्पादन पर कोई कुप्रभाव नही डालता इसका टीका लगाने से पशुओ मे चार वर्ष के लिये रोग-प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है बकरी-विषाणु वैक्सीन की तुलना मे इसे कुछ कम समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है

पक्षीय वाइरस वैक्सीन, जिसे रोगोत्पादक विषाणु को मुर्गी के अण्डे मे सर्वधित करके तैयार किया गया है, उन पशुओ पर प्रयुक्त किया गया जिनके लिये अकेला बकरी-विषाणु वैक्सीन अनुकूल नही था इस वैक्सीन को बहुत ही कम ताप (–40°) पर भण्डारित करना पडता है और इसका परिवहन बहुत ही कठिन होता है

भारतीय पशुओ के लिये बकरी-वैक्सीन अधिक उपयुक्त पाया गया है यूरोपीय तथा सकर पशु और भैसो को जिनमे इसके प्रयोग से तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, खरगोशीय अथवा पक्षीय वैक्सीन का टीका दिया जा सकता है इन तीनो वैक्सीनो की प्रतिरक्षा उत्पन्न करने की क्षमता बनाये रखने तथा आसानी से लाने-लेजाने के उद्देश्य से इनका हिम-शुष्कन और टीका लगाने के लिये इनकी मात्रा का भी मानकीकरण कर दिया जाता है अत्यधिक सवेदनशील पशुओ मे तथा अधिक काल की गर्भावस्था मे इस टीके का प्रयोग नही करना चाहिये

प्रभाववश्य पशु पशु-प्लेग वाइरस को बनाये रखने मे महत्व-पूर्ण कडी का काम करते हैं भारत सरकार ने इस रोग को देश से समूल नष्ट करने के लिये एक योजना बनायी है जिसके अन्तर्गत 7 53 करोड पशुओ को पशु-प्लेग से बचाने के लिये टीके लगाने का लक्ष्य रखा गया है इस कार्य के लिये मैदानी गोपशुओ तथा भैंसों मे बकरी-विषाणु वैक्सीन तथा अत्यधिक प्रभाववश्य पशुओं मे खरगोशीय अथवा खरगोशीय-पक्षीय वैक्सीन का प्रयोग किया जाता है

खुरपका-मुँहपका रोग अथवा **ऐप्यस ज्वर** (अन्य नाम–मुखुर, मुह की बीमारी, मुह-पान की बीमारी, खुरपका, खुरिया, रोरा, खोरा) बहुत ही सक्रामक रोग है जिसे मुह तथा खुरो पर और बहुधा दुधारू पशुओ के अयन एव थनो पर पडे हुये छालो द्वारा पहचाना जाता है यह गोपशुओ की सामान्य बीमारी है और देश मे अपेक्षाकृत हल्के रूप मे फैलती है यह प्राय सभी आयु के पशुओं को प्रभावित करती है और अधिक घातक नही होती छोटे बछडो में मृत्यु दर अधिक होती है किन्तु समस्त रोगग्रस्त बछडो मे से आमतौर पर 2–5% से अधिक नही मरते यह रोग वर्षपर्यन्त किसी भी मौसम मे प्रकोप कर सकता है और इससे प्रतिवर्ष देश की लगभग 40 करोड रुपये की क्षति होती है रोग के प्रकोप मे पशु के उत्पादन तथा कार्यक्षमता पर कुप्रभाव पडता है और पशुपालक को आर्थिक क्षति पहुँचती है गाये स्थायी अथवा अस्थायी रूप से कम दूध देने लगती है तथा उनकी प्रजनन शक्ति का ह्रास होता है रोगग्रस्त नर पशुओ की कार्यक्षमता कम हो जाती है

यह बीमारी प्राय परोक्ष सम्पर्क द्वारा अथवा अपरोक्ष रूप मे सदूषित पानी, खाद, चारा तथा चरागाहो द्वारा फैलती है पशु-परिचारको के गदे हाथ तथा कपडे और चूहे तथा पक्षी भी इस रोग के फैलाने के सहायक बनते है यह रोग एक विषाणु द्वारा फैलता है जो कई रूपो मे पाया जाता है इसके कम से कम चार प्ररूप 'ए', 'ओ', 'सी', तथा 'एशिया आई' तथा कई चर और उप-प्ररूप भी अलग किये गये हैं इनमे से 'ओ' प्ररूप का प्राधान्य प्रतीत होता है ज्वर तथा जीभ एव मुह मे पडे हुये दर्दयुक्त छालो द्वारा इस बीमारी का निदान किया जाता है उसी समय खुरो के पास पैरो की त्वचा पर भी छाले पड जाते है इस रोग का विषाणु आन्तरिक अगो को क्षति पहुँचाने की भी क्षमता रखता है जिससे शरीर-क्रियात्मक गडबडिया उत्पन्न हो सकती हैं बहुत ही छोटे बछडो मे यह बीमारी प्राणघातक सिद्ध होती है अन्य पशु समुचित देखभाल करने से 3 से 4 सप्ताह मे अच्छे हो जाते हैं

अभी तक 'ओ' प्ररूप के वाइरस के सदूषण के प्रति बचाव अथवा रोगहारी ओषधि की खोज नही हो पायी है स्थानिक महामारी होने के कारण इसे टीके द्वारा वश मे लाया जा सकता है इस टीके का प्रभाव 6–12 माह तक रहता है वाह्य क्षतो की चिकित्सा कोलतार तथा कापर-सल्फेट मिश्रण (5 1) द्वारा की जाती है.

रोगग्रस्त पशुओ का वध करने की प्रथा भारतवर्ष में नही है रोग नियत्रण हेतु सफाई तथा अन्य उपाय अपनाने के साथ-साथ 'एफ्थीकरण' की विधि अपनायी जाती है जिसमे रोगी पशु की लार लेकर एक रुई के फाहे द्वारा उसके सम्पर्क मे आये हुये तथा निकटवर्ती समस्त स्वस्थ पशुओ के मसूडो पर मल दी जाती है इस प्रकार बीमारी को शीघ्र ही फैलाकर सामूहिक रूप से उस पर काबू पा लिया जाता है

इस बीमारी के लिये उपयुक्त बहुसयोजक वैक्सीन विकसित करने के लिये देश मे पहले से शोधकार्य चल रहा है भारतवर्ष मे इस बीमारी के बचाव के प्रति अण्डे मे उगाये गये वाइरस अथवा चूहे के मस्तिष्क में उगाये गये वाइरस का टीका देना काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है प्रयोगशाला एव मैदानी परिस्थितियो मे परीक्षित क्रिस्टल वायलेट वैक्सीन कम से कम पन्द्रह महीने की प्रतिरक्षा उत्पन्न करता है इस वैक्सीन को सरलतापूर्वक तैयार और सान्द्रित किया जा सकता है

बैक्टीरियाजन्य रोग – हैमोरेजिक सेप्टीसीमिया अथवा पास्तुरेला रुग्णता (अन्य नाम – गलघोटू, घुर्रका, घोटू, गरगती, घैररिवा) भैंसो तथा गोपशुओ की अत्यन्त जानलेवा बीमारी है और भारतवर्ष मे इसका अत्यन्त प्रकोप होता है इस बीमारी से प्रतिवर्ष लगभग 40,000 गोपशुओ तथा भैंसो की मृत्यु होती है. जिससे राष्ट्र को एक करोड रुपये की हानि होती है बरसात एव जाडो में होने वाली वर्षा के परिणामस्वरूप जिन तराई के भागो मे समय-समय पर पानी भर जाता है वहा इसका प्रकोप अधिक होता है यह गाय-भैंसो का विशिष्ट रोग है और अन्य पशुओ एव मनुष्यो को इसकी छूत नही लगती भैंसे बहुधा इसकी शिकार होती हैं

भैंसो की यह बीमारी **पास्तुरेला सेप्टिका** द्वारा उत्पन्न होती है पूर्णतया स्वस्थ दिखायी देने वाले कुछ पशु भी इन जीवाणुओ को अपनी ऊपरी श्वांस नली मे छिपाये रखते है और उपयुक्त मौसम होने पर इन्ही स्वस्थ वाहको द्वारा रोग प्रारम्भ होता है, फिर एक पशु से दूसरे पशु मे फैलता जाता है और इस प्रकार के अटूट गमनागमन से पशुओ के शरीर के जीवाणुओ मे उग्रता आ जाती है यह बीमारी तीन रूपो मे फैलती है उग्र, शोफ तथा फुफ्फुसशोथ रोग की उग्र अवस्था मे पशु को तेज बुखार चढता है और लक्षण प्रकट होने के 24 घटे के अन्दर पशु मर जाता है शोफ अवस्था मे पशु के गले पर सूजन आ जाती है जिससे पशु को साँस लेने तथा निगलने मे कठिनायी होती है ऐसे पशुओ की मृत्यु दर 70–100% होती है फुफ्फुसशोथ (न्युमोनिया) अवस्था प्राय बछडो में देखने को मिलती है

तेज बुखार तथा कष्टप्रद श्वास-प्रश्वास के साथ शारीरिक क्लेश द्वारा इस बीमारी का निदान किया जाता है गले तथा उसके निकटतम भागो पर सूजन आ जाना इस बीमारी का प्रमुख लक्षण है जैसे-जैसे बीमारी बढती जाती है पशु को साँस लेने मे कठिनायी होती है, उसकी आँखे सूज जाती हैं और जीभ बडी होकर काली पड जाती है बीमारी के प्रकोप के बाद एक या दो दिन तक जो पशु जीवित रह जाते है उनके पेट मे दर्द होने लगता है और खून मिले हुये तेज दस्त आने लगते है साथ ही उनमे कष्टप्रद श्वास-प्रश्वास के साथ ब्राकोन्यूमोनिया के लक्षण भी दिखायी पडते हैं कुछ क्षेत्रो मे यह बीमारी अत्यधिक फैलती है और प्रतिवर्ष वर्षा प्रारम्भ होते ही इसका प्रकोप होता है रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे सल्फा-ओषधियो के प्रयोग से पशु को बचाया जा सकता है किन्तु अल्पकालिक तथा प्राणघातक होने के कारण हर एक पशु की चिकित्सा कर सकना सम्भव नही हो पाता इस कारण प्रभाववश्य क्षेत्र के समस्त पशुओ को वर्षा प्रारम्भ होने से पूर्व बचाव का टीका देकर इस बीमारी पर नियत्रण रखा जाता है

गोपशुओ मे इस बीमारी के प्रति प्रतिरक्षा उत्पन्न करने के लिये भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान में 1953 मे एक तैलीय वैक्सीन तैयार किया गया व्यावसायिक मास निष्कर्ष

वैक्सीन की तुलना मे यह वैक्सीन अधिक प्रतिरक्षा उत्पन्न करने की क्षमता रखता है इस कारण भारतवर्ष में इसका बहुतायत से प्रयोग होता है और इसमे परिणाम भी अच्छे मिले हैं इससे पशु के शरीर मे लगभग 27 मास के लिये प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है यह वैक्सीन अधिक काल तक रखा जा सकता है और भण्डारण की सामान्य परिस्थितियो मे एक वर्ष तक खराब नही होता रेल तथा सडक द्वारा परिवहन की साधारण परिस्थितियो मे इसे सरलतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजा जा सकता है और दस दिन के परिवहन काल मे इसमें कोई खराबी नही आती

रावर्टस प्ररूप I मे मिलते-जुलते **पास्तुरेला सेप्टिका** (कला I) के विलेय ऐण्टीजन के रासायनिक निष्कर्षण पर हाल ही मे भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान द्वारा जो कार्य हुआ है उससे विशुद्ध सपुटिक प्रोटीन का पृथक्करण सम्भव हो गया है इसकी 500 मिग्रा मात्रा पहाडी साँडो मे 1 5 वर्ष के लिये रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न करती है पशु के कद के अनुसार इस वैक्सीन की मात्रा 2–4 मिली है बीमारी की अवस्था देखते हुये 15 मिली अथवा अधिक मात्रा में सीरम दिया जा सकता है

लँगड़िया अथवा लँगड़ी (अन्य नाम – सुजवा गरही, जहरबाद, इकटंकिया गोली) भारतीय गोपशुओ की प्रमुख महामारी है जो विशेषत मैसूर, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश तथा महाराष्ट्र के पशुओ मे अधिक (85%) प्रकोप करती है नये गोपशु विशेष रूप से इसके शिकार बनते हैं 6 माह से लेकर 3 वर्ष तक की आयु वाली भेडो मे भी यह रोग खूब फैलता है भैसो मे इसका बहुत हल्का प्रकोप होता है वर्षा प्रारम्भ होने के साथ ही इस बीमारी का प्रकोप चालू होता है भारतवर्ष मे इस महामारी से प्रतिवर्ष लगभग 21,500 पशुओ की मृत्यु हो जाती है जिन पशुओ को यह बीमारी एक बार ही जाती है उन्हे दुबारा इसकी छूत नही लगती

अधिकाशत यह बीमारी **क्लास्ट्रीडियम शोवोई** तथा कभी-कभी **क्लास्ट्रीडियम सेप्टिकम** नामक जीवाणुओ द्वारा उत्पन्न होती हे सदूषित चारा अथवा मिट्टी से इस बीमारी के जीवाणुओ के स्पोर मुह से होकर पशु के शरीर मे प्रविष्ट होकर इसकी छूत फैलाते हैं शरीर पर लगे हुये घाव अथवा चोट से भी ये जीवाणु शरीर मे पहुँच सकते है इस बीमारी के जीवाणु स्पोर दीर्घकाल तक बिना लक्षण प्रकट किये पशु शरीर मे छिपे रह सकते हैं

यह बीमारी प्राय उग्र अवस्था मे प्रकोप करती है तथा रोगग्रस्त पशु बीमारी के लक्षण प्रदर्शित करने के बाद 48 घटे के अन्दर मर जाता है पशु को तेज बुखार चढता है और उसके एक पुट्ठे (अधिकतर पिछले) पर सूजन आ जाती है यह सूजन तनावपूर्ण, तीक्ष्ण, गर्म तथा दर्दयुक्त होती है सूजन कुहनी के पास से प्रारम्भ होकर बाद मे कधे तथा गर्दन तक फैल जाती है कुछ ही घटो मे सूजन काफी बढी हुयी जान पडती है मृत्यु से तुरन्त पहले सूजन ठडी तथा वेदनारहित हो जाती है तथा उसमे गैस रहने के कारण दबाने पर चुर-चुर की आवाज होती है रोगग्रस्त ऊतको मे सडे मक्खन जैसी खट्टी गध आती है भीतरी अग रक्त-सकुलित हो जाते हैं रोगग्रस्त ऊतको के मास निष्कर्ष से काँच की स्लाइड पर बनाये गये लेप मे रोग के जीवाणु और स्पोर देखने को मिलते हैं निश्चित निदान के लिये हवा मे सुखाये गये रोगग्रस्त मास के टुकडो की जाच करनी चाहिये

रोगोत्पादक जीवाणुओ के स्पोर से मिट्टी के सदूषित होने तथा बीमारी को फैलने से बचाने के लिये रोगग्रस्त पशु के शव को गहरे गड्ढे मे दाबकर ऊपर मे चूना डाल देना चाहिये या उसे जला देना चाहिये

भारतवर्ष में 1934 मे दोनो जीवाणुओ के सम्वर्ध के फार्मेलीनयुक्त मिश्रण से एक बहुसयोजक वैक्सीन तैयार किया गया लँगडिया के ऐटीसीरम का टीका देने मे लगभग दो सप्ताह की अर्जित प्रतिरक्षा उत्पन्न होती है वर्षा प्रारम्भ होने के 3–4 सप्ताह पूर्व ही पशुओ को इस बीमारी मे बचाव के टीके लगाना चाहिये भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान द्वारा तैयार तथा वितरित किया जाने वाला वैक्सीन **क्लास्ट्रीडियम शोवोई** एव **क्लास्ट्रीडियम सेप्टिकम** के संदूषण के प्रति प्रभावकारी है

ऐंथ्रैक्स अथवा प्लीहा ज्वर (अन्य नाम – गरही, गोली, गिल्टी) भारतीय गोपशुओ का सुविख्यात रोग है इस बीमारी से प्रतिवर्ष लगभग 4,790 गोपशुओ तथा भैसो की मृत्यु हो जाती है और यह पूरे देश मे प्रकोप करती हे लेकिन कुछ क्षेत्रो मे इसका प्रकोप अधिक होता है गोपशु विशेष रूप से इसके शिकार होते हैं जिनमे यह उग्र रक्तपूतिता उत्पन्न करती है भेड तथा बकरी जैसे अन्य पशु भी अक्सर शिकार होते हैं भैसो मे यह बीमारी अधिक नही होती ग्रस्त पशु अथवा खाल, बाल जैसे उनसे प्राप्त होने वाले पदार्थ अपने मे ऐंथ्रैक्स के रोगोत्पादक जीवाणु स्पोर लिये रहते हैं जिनके सम्पर्क मे आने पर मनुष्यो मे रोग फैलता है

यह रोग **बैसिलस ऐंथ्रैसिस** नामक जीवाणुओ द्वारा फैलता है जो शोथयुक्त तन्तुओ अथवा रक्त नलिकाओ मे शीघ्र प्रवर्धित हो जाते है ऐंथ्रैक्स स्पोर अत्यन्त प्रतिरोधी होते हैं तथा इन्हे ताप एव जीवाणुनाशी पदार्थों द्वारा नष्ट नही किया जा सकता बैसिलस के स्पोर मे सदूषित चारे तथा पानी द्वारा इस रोग की छूत फैलती है एक पशु से दूसरे पशु को प्रत्यक्ष रूप मे यह रोग बहुत कम लगता है

यह बीमारी अति उग्र, उग्र या कम उग्र अवस्थाओ में प्रकोप कर सकती है रोग की अति उग्र अवस्था मे पशु की एकाएक मृत्यु हो जाती है और उसके मुँह, नथुनों तथा गुदा मार्ग से रक्त मिश्रित झागदार स्राव निकलता है बीमारी की अन्य दो अवस्थाओ मे अत्यधिक पीडा के लक्षणो के साथ पशु को तेज बुखार रहता है पशु एकाएक गिर कर मर जाता है

ऐंथ्रैक्स के क्षत अत्यन्त लाक्षणिक होते है पशु का शव शीघ्र ही सडने लगता है, पेट फूल जाता है तथा गुदा एव योनि के भाग बाहर को निकले प्रतीत होते है, प्लीहा तथा लसीका पर्व बढ जाते हैं मरे हुये पशु के शव की चीडफाड़ नही करनी चाहिये क्योकि उसके रक्त एव अन्य शारीरिक द्रव पशुओ तथा मनुष्यो मे बीमारी फैलाने का माध्यम हैं बिना जीवाणुरहित की गयी हड्डियो से बनाया गया अस्थि-चूर्ण तथा ऐसे पशुओ की खाल भी काफी हानिकर होती है

रोग के उग्र प्रकार एव उसके परिणामस्वरूप पशु की शीघ्र मृत्यु हो जाने के कारण प्राय चिकित्सा सभव नही हो पाती रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे सल्फा-ओषधियो द्वारा पशु की चिकित्सा की जा सकती है

1941 में भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान मे बैसिलस ऐंथ्रैसिस की एक अनुग्र प्रकारान्तर प्रजाति निकाली गयी तब से इस प्रजाति से तैयार किया गया एक जीवित स्पोर वैक्सीन इस देश मे पशुओ मे ऐंथ्रैक्स के प्रति रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न करने के लिये बहुतायत मे प्रयुक्त होता रहा है और इससे काफी अच्छे परिणाम मिले हैं स्पोर वैक्सीन लगभग 6 दिन में अच्छी प्रतिरक्षा

उत्पन्न करता है जो लगभग एक वर्ष तक बनी रहती है टीका लगाने के बाद पशु का ताप बढता है एव स्थानीय प्रतिक्रिया होती है

भारतवर्ष मे प्रभाववश्य क्षेत्रों मे वर्षा प्रारम्भ होने से एक या दो माह पूर्व प्रतिवर्ष समस्त पशुओ को ऐंथ्रैक्स स्पोर वैक्सीन का टीका तथा सदूषित यूथ के पशुओ को एंटी-ऐंथ्रैक्स सीरम का टीका लगाकर इस बीमारी के प्रकोप पर नियन्त्रण रखा जाता है

यक्ष्मा रोग (अन्य नाम—सूखा, क्षय) गोपशुओ का एक दीर्घकालिक एव क्षयकारी रोग है पशुओ मे क्षय रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु का गो-जातीय प्ररूप भैंसो, भेड-बकरियो तथा ऊँटो मे भी रोग फैलाते देखा गया है यह पुराना विचार कि पशुओ मे क्षय रोग विरले ही होता है, अब गलत लगता है, क्योकि पिछले दो दशको के सर्वेक्षण से यह प्रदर्शित होता है कि देश के कुछ यूथो मे यह बीमारी खूब व्याप्त है तथा पजाब और महाराष्ट्र के प्रदेशो मे इस रोग का प्रकोप काफी अधिक है उत्तरी भारत के कुछ पशुधन फार्मो पर भी यह बीमारी काफी फैलती है दक्षिणी भारत मे इस रोग का प्रकोप काफी कम है गोपशुओ की अपेक्षा भैंसो मे यह बीमारी अधिक होती है तथा नये पशुओ की तुलना में प्रौढ गोपशु इसके अधिक शिकार होते है

क्षय रोग का जीवाणु किसी भी मार्ग द्वारा शरीर मे प्रवेश पा सकता है दूध पीने वाले बछडो को इसकी छूत गाय के सदूषित अयन द्वारा लगती है गायो मे अयन का सदूषण काफी अधिक होता है और अयन के सदूषित न होने पर भी इस रोग का जीवाणु दूध के द्वारा सदूषण कर सकता है भारतवर्ष मे क्षय रोग से ग्रस्त अधिकाश गोपशुओ मे क्षत प्राय श्वसनी एव मध्य-स्थानिका लसीका पर्वो मे होते है देखने मे ये पर्व बढे हुये प्रतीत होते है और उनमे कैल्सियम लवण निक्षेपयुत पनीर जैसा गाढा-गाढा पदार्थ भरा रहता है

ग्रस्त अग एव उसमे हुयी क्षति के अनुसार रोग के लक्षणो मे काफी विभिन्नता देखने को मिलती है फेफडे के क्षय मे पशु को विरामी अथवा अल्प विरामी ज्वर तथा सूखी खाँसी आती है और धीरे-धीरे उसका शरीर क्षीण होता चला जाता है अँतडी के क्षय रोग मे पशु को लगातार पतले दस्त आते है अयन के क्षयग्रस्त होने पर वह बढा हुआ प्रतीत होता है तथा उससे निकलने वाला दूध पानी जैसा पतला होता है रोग की अवधि कुछ महीनो से लेकर वर्षो तक की हो सकती है

इस रोग का निदान ट्युबर्क्युलिन-परीक्षण द्वारा किया जाता है 3 मिली साधारण ट्युबर्क्युलिन का त्वचा के नीचे टीका देकर अवत्वक-जाँच की जाती है क्षय रोग से ग्रस्त पशु मे ट्युबर्क्युलिन का टीका देने के 9–12 घटे के अन्दर ताप कम से कम 1 1° से बढा हुआ मिलता है असदूषित पशु मे ऐसी प्रतिक्रिया नही होती इस परीक्षण को प्राय रोग के सही निदान के लिये अपनाया जाता है आजकल भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान मे ट्युबर्क्युलिन का बडे पैमाने पर निर्माण किया जाता है

यदि किसी छोटे गोवृन्द मे क्षय रोग की बीमारी फैल रही हो तो उसके समस्त पशुओ का ट्युबर्क्युलिन-परीक्षण करके प्रतिक्रिया प्रदर्शित करने वाले पशुओ को यूथ से निकाल देना चाहिये बडे यूथो में बैंग-विधि अधिक प्रयुक्त होती है जिसके अन्तर्गत क्षय रोग के लक्षण प्रदर्शित करने वाले सभी पशुओ को यूथ से निकाल दिया जाता है तथा प्रतिक्रिया प्रदर्शित करने वाले पशुओ को स्वस्थ पशुओ से अलग रखा जाता है स्वस्थ पशुओ की समय-समय पर जाँच की जाती है और उनका एक अलग समूह बना लिया जाता है क्षय रोग से ग्रस्त मादाओ के बछडे जन्म के समय प्राय इस बीमारी से मुक्त होते है अत उनको जन्म लेने के तुरन्त बाद मा से विलग करके उनका पालन-पोषण करना चाहिये 6 माह की आयु पर यदि ये बछडे ट्युबर्क्युलिन-परीक्षण नही देते तो इन्हे स्वस्थ पशुओ के यूथ मे मिला लिया जाता है इस विधि द्वारा प्रतिक्रिया प्रदर्शित करने वाले पशु धीरे-धीरे यूथ से निकलते जाते है तथा निरोग पशुओ की सख्या मे वृद्धि होकर स्वस्थ यूथ तैयार हो जाता है फिनलैड, अमेरिका आदि देशो मे अपनायी जाने वाली जाँच तथा वध की नीति भारतवर्ष मे नही लागू की जा सकती, क्योकि कुछ क्षेत्रो मे ट्युबर्क्युलिन-परीक्षण के प्रति धनात्मक परीक्षण देने वाले पशुओ की सख्या उच्च है और उनके विनाश से कार्यभारी बैलो और दूधवाली गायो की सख्या मे विशेष कमी आ जावेगी इसके अतिरिक्त अधिकाश धनात्मक पशुओ मे वर्षो तक इस बीमारी की प्रगामी अवस्था का विकास भी नही हो पाता है

क्षय रोग मे चिकित्सा का बहुत ही कम महत्व है अत्यधिक सदूषित यूथो मे बीमारी पर नियन्त्रण रखने के लिये बी सी जी का टीका देना लाभप्रद है, किन्तु इसके प्रयोग की सामान्यत स्वीकृति इसलिये नही दी जाती कि टीका लगे पशु ट्युबर्क्युलिन-परीक्षण के समय प्रतिक्रिया करते है जिससे वास्तविक रूप मे रोग ग्रस्त पशुओ के साथ इनकी भ्रान्ति हो जाती है

जोन रोग (अन्य नाम—पैरा ट्युबर्क्युलोसिस, असत क्षय रोगी आन्त्रार्ति, बाह, दस्त)—भारतवर्ष मे गोपशुओ की एक सक्रामक बीमारी है जिसे दीर्घकालिक प्रवाहिका एव शारीरिक क्षीणता के लक्षणो द्वारा पहचाना जाता है **माइकोबैक्टीरियम पैराट्युबर्क्युलोसिस** अथवा जोन बैसिलस के अतडी पर आक्रमण करने से इस बीमारी का प्रकोप होता है ऐसा कहा जाता है कि यह बीमारी भारतवर्ष मे विदेशो से आयात किये गये पशुओ से आयी और अब देश के अनेक पशुधन फार्मो मे प्रकोप करती है ग्रामीण क्षेत्र के पशुओ मे यह बीमारी बहुत ही कम देखने को मिलती है सभी नस्लो के गोपशु, भैंसे, भेड-बकरियाँ तथा जगली पशु इसके प्रति प्रभाववश्य होते है

जीवाणुओ से सदूषित चारा खाने अथवा तालाब का गदा पानी पीने से पशुओ मे इसकी छूत फैलती है यद्यपि यह बीमारी सभी आयु वाले पशुओ को होती है किन्तु नयी गाये इसकी अधिक शिकार होती है रोगग्रस्त पशु बिना लक्षण प्रदर्शित किये ही शरीर से जीवाणुओ को निकालते रहते है जो अन्य स्वस्थ पशुओ में सक्रमण फैलाते है

हल्की अपच से प्रारम्भ होकर तेज तथा रुक-रुक कर दस्त आना, शारीरिक क्षीणता तथा जबडे के नीचे सूजन आदि लक्षणो के साथ बीमारी का विकास होता है बढती हुयी शारीरिक क्षीणता के साथ पशु निरन्तर कमजोर होता चला जाता है और अन्त मे उसकी मृत्यु हो जाती है रोगग्रस्त पशु बाहर से पूर्णतया स्वस्थ दिखायी पड सकता है ऐसे पशु मे ब्याने के बाद इस बीमारी के लक्षण प्रकट होते है जोन रोग से ग्रसित पशुओ की प्राय मृत्यु होजाती है किन्तु कुछ पशु अच्छे भी होते देखे गये है

जोनिन-परीक्षण द्वारा इस बीमारी का सही-सही निदान किया जाता है इसमे पशु को जोनिन नामक नैदानिक ऐंटीजन का अत त्वचा टीका लगाया जाता है रोगग्रस्त पशु मे इसके प्रयोग से प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है स्लाइड पर लेप बनाकर तथा क्षत के पदार्थ को अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखकर इस रोग के जीवाणुओ को पहचाना जा सकता है

यह रोग रोगी पशु के मल द्वारा तथा चारा तथा पानी के सदूषित होने से ही फैलता है, अत रोगग्रस्त पशु को स्वस्थ पशुओं से तत्काल ही अलग कर देना चाहिये तथा उसके मल-मूत्र को हटाने का उचित प्रबन्ध करना चाहिये

इस बीमारी में रोगहर चिकित्सा बिल्कुल प्रभावकारी नहीं है 5–10 मिली की मात्रा में जोन बैसिलस के जीवित सवर्ध का पशु में अवत्वक टीका देकर इस बीमारी के प्रति प्रतिरक्षा उत्पन्न की जा सकती है जोन बैसिलस के जीवित सवर्ध को लैनोलिन जैसे उपयुक्त क्षारक में मिलाकर रखा जाता है जिससे टीका लगाने के बाद ये जीवाणु शरीर के अन्दर न पहुँचकर उसी स्थान पर एकत्रित रहते हैं जहाँ पर टीका लगाया जाता है जब तक सूजन रहती है ऐसे पशु बीमारी के प्रति सहनशक्ति बनाये रखते हैं इस टीके की एकमात्र त्रुटि यह है कि ऐसे पशु जोनिन के अतिरिक्त ट्यूबर्क्युलिन-परीक्षण के प्रति भी प्रतिक्रिया प्रदर्शित करने लगते हैं जिससे क्षय रोग की सही जाँच करने में कठिनायी उत्पन्न होती है

गोजातीय थनैली, अयन की सूजन, तथा उसके परिणामस्वरूप अयन के तन्तुओं एव उससे निकलने वाले दूध में होने वाले परिवर्तनों द्वारा पहचानी जाती है यह बीमारी अधिकतर एकाएक प्रकोप करती है और भारतवर्ष के अधिकाश गो-वृन्दो में पायी जाती है

रोगोत्पादक जीवाणुओं के आधार पर इस बीमारी के तीन प्रकार हैं उग्र, कुछ उग्र तथा दीर्घकालिक दैहिक विकार, बढे हुये ताप तथा ज्वर के अन्य लक्षणों के साथ इसका प्रकोप हो सकता है किन्तु इसमें प्राय अयन पर सूजन होने से अधिकतर उसके तन्तुओं की धीरे-धीरे क्षति होती है दूध की मात्रा तथा गुण दोनों पर ही कुप्रभाव पडता है स्थायी रूप में एक अथवा अधिक थन मारे जाने से पशु बिल्कुल ही दूध देना बद कर देता है गाये तथा भैंसें दोनों ही इस बीमारी से ग्रसित होती रहती है

अधिकतर यह बीमारी **स्ट्रैप्टोकोकाइ** तथा **स्टैफिलोकोकाइ** जीवाणुओं द्वारा होती है, किन्तु, **कोराइनेबैक्टीरियम पायोजीन्स, बैक्टीरियम कोलाइ, स्यूडोमोनास एरुजिनोसा** तथा कुछ अन्य जीवाणु भी इसमें भाग लेते देखे गये हैं लगभग 95% पशु रोगोत्पादक **स्ट्रैप्टोकोकाइ** एव **स्टैफिलोकोकाइ** जीवाणुओं द्वारा ही रोगग्रस्त होते हैं

सदूषण के काफी समय बाद ही इस बीमारी के विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं अधिकाश पशुओं में इसका सदूषण छिपी हुयी अवस्था में बना रहता है जैसे-जैसे बीमारी बढती है, पशु का दूध खराब होता जाता है और उसमें शल्क, रेशे, रक्त एव पीव की उपस्थिति हो सकती है. दूध प्राय पानी जैसा पतला पड जाता है और उसमें बडे-बडे थक्के मिलते हैं अयन के ऊतको का धीरे-धीरे क्षय होने लगता है और वह काफी कडा हो जाता है पशुओं में ऐसी दशा बहुधा ब्याने के तत्काल बाद देखने को मिलती है **को पायोजीन्स** द्वारा होने वाली ग्रीष्म थनैली में दूध के गुणो में एकदम परिवर्तन होकर थनों से दुर्गंधयुक्त पीवमय पदार्थ निकलता है

अयन का भौतिक परीक्षण करके तथा अपरोक्ष रूप से दूध में शल्क, क्षारीयता, लवण एव श्वेताणुओं की जाँच करके थनैली का पता लगाया जाता है सबसे विश्वसनीय विधि दुग्ध का जीवाणुवीय परीक्षण होता है

यदि किसी यूथ के एक पशु में थनैली की बीमारी का पता लगता है तो प्रत्येक पशु के दूध का जीवाणुक परीक्षण करना चाहिये **स्टैफिलोकोकाइ** की अपेक्षा **स्ट्रैप्टोकोकस ऐगैलैक्टिए** से सदूषित पशु चिकित्सा से जल्दी ठीक हो जाते हैं अयन से कुल दूध निकाल देने के बाद चार दिन तक नित्य प्रति उसमें 50 मिली आसुत जल में विलयित 10,00,000 यूनिट प्रोकेन पेनिसिलिन-जी का अन्त स्तनीय इजेक्शन देना अधिक गुणकारी है

स्टैफिलोकोकस ऑरियस, स्ट्रैप्टोकोकस डिस्गैलैक्टिए तथा **स्ट्रैप्टोकोकस यूबेरिस** नामक जीवाणुओं से होने वाली थनैली जो उपर्युक्त चिकित्सा से ठीक नही होती, 50 मिली पानी में विलयित ओषधियो के निम्नलिखित मिश्रण का एक दिन के अन्तर पर दिन में तीन बार अत स्तनीय टीका लगाने पर ठीक हो जाती है प्रोकेन पेनिसिलिन-जी 1,00,000 यूनिट, डाइहाइड्रोस्ट्रैप्टोमाइसिन, 100 मिग्रा, सोडियम सल्फामेजथीन (33.5%), 5 मिली, कोबाल्ट सल्फेट, 5 मिग्रा लगभग 75% पशुओं में यह चिकित्सा प्रभावकारी पायी गयी है

कोराइनेबैक्टीरियम पायोजीन्स द्वारा होने वाली थनैली किसी जीव विषाणु के साथ सयोजित होकर उपर्युक्त मिश्रण द्वारा ठीक की जा सकती है

सक्रामक गोजातीय गर्भपात अथवा **ब्रुसेलोसिस** देश के समस्त सगठित पशुधन फार्मों पर प्रकोप करने वाली प्रमुख बीमारी है पशुओं की नस्ल, फार्म की सफाई तथा स्थानीय जलवायु के अनुसार इस बीमारी का आवेग भिन्न यूथों में भिन्न-भिन्न होता है अर्ध-रेगिस्तानी क्षेत्रों में इस बीमारी का प्रकोप नही के बराबर तथा नमीयुक्त क्षेत्रों में काफी अधिक होता है

सामान्यत गाय-भैंसो में होने वाली यह बीमारी बैंग बैसिलस, **ब्रुसेला एबार्टस** द्वारा उत्पन्न होती है बच्चो की मृत्यु, दुग्धोत्पादन में कमी तथा गर्भपात करने वाले पशुओं के स्थायी अथवा अस्थायी रूप से बाँझ हो जाने के कारण इस बीमारी से काफी आर्थिक क्षति पहुँचती है

सामान्यत गर्भपात के फलस्वरूप गाय की योनि से निकले स्राव तथा भ्रूण में इस रोग के जीवाणु काफी अधिक सख्या में रहते हैं इनसे सदूषित चारे अथवा पानी द्वारा इस बीमारी की छूत स्वस्थ पशुओं को लगती है कभी-कभी मैथुन के समय इस बीमारी की छूत गायो को साँडो के अडकोषो में स्थित परजीवियो के कारण लग जाती है

यद्यपि गोपशुओं के गर्भपात पर अभी तक कोई विधिवत् सर्वेक्षण नही किया गया है, किन्तु विभिन्न नस्ल के गोपशुओं में 20,000 गाभिन गायो के हाल के सर्वेक्षण के अनुसार 530 का गर्भपात हुआ कुछ नस्लो में गर्भपात की दर 6% तक थी अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों की तुलना में गर्म तथा शुष्क जलवायु वाले प्रदेशो में इस बीमारी का प्रकोप कम होता है राजस्थान के मध्यवर्ती क्षेत्रो, उत्तर प्रदेश, तथा मध्य प्रदेश में इस बीमारी का प्रकोप कम होता है जबकि तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उडीसा और पजाब में यह बीमारी अधिक है रोगग्रस्त क्षेत्रों में इसका कुल अनुमानित प्रकोप लगभग 30% है कुछ रोगग्रस्त क्षेत्रो में गर्भपात की दर 50% तक देखी गयी है सदूषित गायो में से अधिकाश का एक बार गर्भपात होता है तथा कुछ में दो अथवा तीन बार गर्भपात हो सकता है इसके बाद पैदा हुये बच्चे प्राय ठीक से नही बढ पाते

बीमारी की प्रारम्भिक अवस्था में नर तथा मादा पशुओं में इसके कोई विशिष्ट लक्षण नही दिखायी पडते जैसे-जैसे सदूषण बढता है, इस रोग के जीवाणु गाय के गर्भाशय, अयन तथा अधिस्तनीय

लसीका पर्व मे और नर पशुओं की जनन ग्रन्थियों मे एकत्रित होते जाते है सगर्भा गाय का पाचवे से आठवे माह मे अपरिपक्व गर्भपात होकर उसके गर्भाशय मे असह्य पीडा होना इस बीमारी का प्रमुख लक्षण है

ब्रु एबार्टस द्वारा सदूषित गाये अपने रक्त-सीरम के साथ धनात्मक समूहन की प्रतिक्रिया प्रदर्शित करती है समूहन परीक्षण के लिये एक कॉच की स्लाइड अथवा प्लेट पर गाय के रक्त अथवा सीरम की एक बूद लेकर अभिरजित जीवाणु के गाढे घोल मे मिलायी जाती है धनात्मक पशुओ मे इस परीक्षण के फलस्वरूप कुछ ही सेकण्डो मे स्लाइड अथवा प्लेट पर जीवाणु-पुज बन जाता है 'दुग्ध वलय परीक्षण' अथवा 'एबार्टस बैग रिंग प्रोब' (एबैरि) एक साधारण परीक्षण है जिसमे ऐटीजन की कुछ बूदे (एक बूद प्रति मिली दूध) एक परखनली मे रखे हुये दूध मे मिलायी जाती है और इस मिश्रण को एक घटे के लिये 37° ताप पर एक इनक्यूबेटर मे रख दिया जाता है धनात्मक पशुओ मे इस जाच के परिणामस्वरूप वसा के कण परखनली मे ऊपर आ जाते हैं तथा नीचे एक नीलाभ बैंगनी वलय बन जाता है इसके विपरीत ऋणात्मक पशुओ मे पूरा दूध ही नीला पड जाता है किन्तु यह वलय परीक्षण समूहन परीक्षण के समान विश्वसनीय नही है

यूथ मे से इस बीमारी के उन्मूलन की दो पृथक्-पृथक् विधियाँ 'परीक्षण एव अलगाव' तथा 'परीक्षण और सगरोध' है पहली विधि मे समय-समय पर सभी पशुओ की समूहन परीक्षा की जाती है और इस प्रकार जो पशु धनात्मक पाये जाते है उन्हे यूथ से निकाल दिया जाता है परीक्षण एव सगरोध विधि मे समूहन-जाँच के प्रति धनात्मक तथा ऋणात्मक पशुओ के दो अलग-अलग यूथ रखे जाते है समय-समय पर समूहन जॉच करने से जो पशु धनात्मक पाये जाते हैं उन्हे धनात्मक यूथ मे मिला दिया जाता है इस प्रकार बीमारी के फैलने पर नियत्रण रखा जाता है

शक्ति क्षीण रोगात्मक जीवाणुओ से तैयार किया गया **ब्रुसेला कॉटन स्ट्रेन-19** वैक्सीन का टीका देने से पशुओ मे रोग के प्राकृतिक सदूषण के प्रति प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है इस वैक्सीन का 5 मिली का अवत्वक टीका लगाया जाता है इस वैक्सीन का पूछ के नीचे अथवा अत त्वक टीका लगाना भी गुणकारी पाया गया है प्राय 6 माह से 1 वर्ष तक के बछडो को ही यह टीका लगाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप होने वाली प्रतिरक्षा अधिक सक्षम एव विश्वसनीय होती है प्रौढ गाये इस टीके के प्रति अधिक अच्छी प्रतिक्रिया प्रदर्शित करती है जिससे उनमे बीमारी के प्रकोप मे शीघ्र कमी आ जाती है कार्य करने वाले नर पशुओ को भी यह टीका दिया जा सकता है किन्तु प्रजनन के लिये रखे गये सॉडो मे इसका प्रयोग नही किया जा सकता रोगग्रस्त सॉडो को बधिया करके बैलो की तरह काम मे लाना उत्तम होता है

ब्रुसेला कॉटन स्ट्रेन-19 से बछडो को टीका देने का मुख्य उद्देश्य टीका लगे बछडो का एक ऐसा यूथ तैयार करना है जिसमे सक्रामक गर्भपात रोग के प्रति सहनशक्ति हो जिससे सदूषित पशुओ को निकाल देने के बाद रोगरहित यूथ तैयार हो सके ब्रुसेला कॉटन स्ट्रेन-19 वैक्सीन मनुष्यो के लिये सक्रामक होती है अत इसका सावधानी से प्रयोग किया जाना चाहिये

गोपशुओ मे सक्रामक गर्भपात तथा वध्यता उत्पन्न करने वाले अन्य दो जीवाणु **विब्रिओ फीटस** एव **ट्राइकोमोनास फीटस** है गायो तथा बछियो मे इनके सदूषण का पता लगाने के लिये योनि श्लेष्मा समूहन परीक्षण लाभप्रद है सदूषण के मुख्य स्रोत का पता लगा कर उसके दोष सशोधन द्वारा इस बीमारी का उन्मूलन तथा नियत्रण किया जा सकता है सदूषण से बचाने के लिये प्राकृतिक अथवा कृत्रिम विधियो द्वारा गायो को गाभिन करने के लिये सदूषित सॉडो का प्रयोग नही करना चाहिये

सक्रामक गोजातीय प्लूरो न्यूमोनिया गोपशुओ की एक अति प्राणघातक बीमारी है जो अभी तक केवल असम तक ही सीमित रही है यहाँ 1954–59 की अवधि मे 3,645 पशु ग्रस्त हुये जिनमे से 2,220 की मृत्यु हो गयी यह बीमारी एक जीवाणु **बोवीमाइसीज प्लूरो न्यूमोनिए** द्वारा उत्पन्न होती है जो अपनी रोग-जनकता मे बहुत ही विशिष्ट होकर केवल गोपशुओ पर ही आक्रमण करता है रोगग्रस्त पशु द्वारा छोडी गयी साँस मे ये जीवाणु तैरते रहते है तथा स्वस्थ पशु जब ऐसे वातावरण मे साँस लेते है तो नासिका द्वारा ये परजीवी उनके शरीर मे प्रवेश पाकर रोग उत्पन्न करते है कभी-कभी इस बीमारी से अच्छे हुये पशु जीवाणु-वाहक का कार्य करते है और इनके थूक तथा नासा स्राव से जीवाणु निकलते है तेज बुखार तथा न्यूमोनिया के लक्षणो के साथ दम घुटकर पशु की मृत्यु हो जाती है बहुत से पशुओ मे यह बीमारी चिरकालिक अवस्था प्राप्त कर लेती है. पशु खाना-पीना छोड देता है तथा न्यूमोनिया के लक्षणो के साथ उसे सूखी तथा दर्दयुक्त खाँसी आती है धीरे-धीरे रोगी पशु का शरीर जर्जर हो जाता है और दो माह के अन्दर उसकी मृत्यु हो जाती है

रोगग्रस्त पशुओ को स्वस्थ पशुओ से अलग करके चिकित्सा करनी चाहिये नवीन पशु तथा रोगी के सम्पर्क मे आने वाले समस्त पशुओ को रोगोत्पादक जीवाणुओ के शक्ति क्षीण किये गये सवर्ध का पशु की पूछ के सिरे पर टीका लगाना चाहिये टीका लगाने मे एक वर्ष के लिये प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है असम प्रदेश के गोलपारा जिले मे सामूहिक रूप से पशुओ को टीका लगाकर इस बीमारी पर नियत्रण पा लिया गया है किसी समय यह बीमारी इस क्षेत्र मे भयकर रूप धारण करती थी

परजीवी रोग – वाइरस तथा बैक्टीरियाजन्य रोगो के अतिरिक्त गो तथा भैस वशज पशु, परजीवी प्रोटोजोआ, कृमि तथा कीटो द्वारा उत्पन्न होने वाले विभिन्न रोगो के प्रति भी सवेदनशील होते है. इन बीमारियो से होने वाली क्षति का अनुमान लगाने के लिये भारतवर्ष मे अभी कोई भी विधिवत् सर्वेक्षण नही हुआ है केवल कीटो तथा किलनियो के आक्रमण से पालतू पशुओ मे प्रतिवर्ष लगभग 4 करोड रुपये की क्षति का अनुमान लगाया गया है

प्रोटोजोआ सम्बन्धी रोग – भारतवर्ष मे पालतू पशुओ के प्रमुख परजीवी कीट **ट्रिपैनोसोमा, पाइरोप्लाज्म, काक्सीडिआ, थीलेरिया** आदि **प्रोटोजोआ** है

सुर्रा अथवा **ट्रिपैनोसोमियासिस** (अन्य नाम – सुर्रा, तिसाला, जहरबाद) गाय-भैसो मे **ट्रिपैनोसोमा इवासाइ** द्वारा उत्पन्न होने वाली बीमारी है यह घोडो तथा कुछ-कुछ ऊँटो मे भी प्रवेश पाकर बहुधा प्राणघातक सिद्ध होती है हल्के रूप मे प्रकोप करने पर इसकी अवधि कई दिन से लेकर कई सप्ताह तक की हो सकती है 1954–59 की अवधि मे इससे लगभग 1953 प्रकोप हुये जिनमे 7,831 गोपशु बीमार हुये तथा 4,467 (57 2%) पशुओ की मृत्यु हो गयी रोगग्रस्त पशुओ के रक्त प्रवाह मे ट्रिपैनोसोम पाये जाते है और प्राकृतिक परिस्थितियो मे रक्त चूसने वाली मक्खियो, विशेषकर अश्व-मक्खी (**टैबेनिडी**) तथा घुडसाल

की मक्खी (**स्टोमाक्सिस**) द्वारा दूसरे पशुओ के शरीर मे ले जाये जाते है भारतवर्ष मे यह बीमारी काफी होती है और सामान्यत यहाँ बरसात मे तथा उसके बाद फैलती है

उग्र अवस्था मे सुर्रा का प्रकोप यूथ के अनेक पशुओं को बीमार बना देता है तेज बुखार तथा बेहोशी के लक्षणों के साथ-साथ एक अथवा दो दिन में रोगी पशु की मृत्यु हो जाती है बीमारी के सही निदान के लिये तेज बुखार के समय पशु का रक्त लेकर उसकी जाँच करनी चाहिये

सुरामिन द्वारा सुर्रा रोग की सफलतापूर्वक चिकित्सा की जा सकती है यह ओषधि नैगानोल, ऐंट्रीपाल तथा ऐंट्रीसाइड (क्विनापाइरैमिन सल्फेट) से मिलती-जुलती है सुर्रा के प्रकोप के मौसम मे इन ओषधियो के आवर्ती प्रयोग से पशुओ को इसके सदूषण से बचाया जा सकता है निर्जमित आसुत जल मे 10% घोल के रूप में ऐंट्रीपाल का अत शिरा इजेक्शन दिया जाता है इजेक्शन देने के पूर्व सदैव ताजा घोल तैयार किया जाता है गोपशुओं के लिये इसकी मात्रा 0 5 ग्रा प्रति 454 ग्रा शरीर-भार और यदि आवश्यक हो तो 15 दिन बाद इसकी आधी मात्रा पुन दी जा सकती है 3 मिग्रा प्रति किग्रा शरीर-भार की दर पर ऐंट्रीसाइड का निर्जमित आसुत जल मे बना 10% घोल अवत्वक इजेक्शन द्वारा दिया जाता है 20–30 मिली आसुत जल मे विलयित 1 0–1 5 ग्रा टार्टार इमेटिक (ऐंटिमनी पोटैसियम टार्टरेट) का अत शिरा इजेक्शन यदि चार दिन तक गोपशु को दिया जाता हे तो उसे सुर्रा रोग से छुटकारा मिल जाता हे

इस देश मे गोपशुओ मे सुर्रा के उन्मूलन हेतु निम्नलिखित उपाय किये जाते हैं (1) रोग के गुप्त वाहको का पता लगाना, (2) रोगवाहको तथा रोगग्रस्त पशुओं की चिकित्सा करना, तथा (3) काटने वाली मक्खियो पर नियत्रण रखना गुप्त वाहको का पता लगाने के लिये 'स्टिलबैमिडीन अथवा एम एण्ड बी 744 परीक्षण' सर्वोत्तम है

गोजातीय काक्सीडियोसिस अथवा गोपशुओ का रक्त प्रवाहिका रोग (अन्य नाम – खूनी दस्त, खूनी-इशाल) भारत के गोपशुओं में आमतौर से होने वाली बीमारी है जो **ईमेरिया** की विभिन्न जातियो द्वारा उत्पन्न होती है 1945 तक भारतीय गोपशुओ में **ईमेरिया** की केवल तीन प्रजातियाँ **ईमेरिया जुरनाइ, ईमेरिया स्मिथाइ** तथा **ईमेरिया सिलिण्ड्रिका**, रोग फैलाते देखी जाती थी इनमे से **ईमेरिया जुरनाइ** सबसे प्रमुख एव व्यापक रूप से पायी जाने वाली है गोपशुओ मे रोग फैलाने के लिये उत्तरदायी ईमेरिया की कुछ अन्य जातियाँ भी खोज निकाली गयी है इनमे से कुछ प्रमुख जातियो के नाम इस प्रकार है **ईमेरिया सबस्फेरिका, ईमेरिया बोविस, ईमेरिया बुकिडनोनेंसिस, ईमेरिया वायोमिजेंसिस, ईमेरिया कैनाडेंसिस, ईमेरिया एलाबामेंसिस, ईमेरिया ब्राजीलिएसिस, ईमेरिया थियानेथाइ, ईमेरिया इलिपस्वाइडेलिस, ईमेरिया आबरनेंसिस**, आदि

बछडो मे उग्र काक्सीडियोसिस 'रक्त-प्रवाहिका' का रूप धारण कर लेता हे रोगग्रस्त पशु चारा-दाना छोड देता हे तथा एक सप्ताह के अन्दर उसकी मृत्यु हो सकती है इस सदूषण से पशु की बडी अतडी की श्लेष्मल झिल्ली कट कर नष्ट होने लगती है जिससे उसमे से रक्त बहने लगता है सुस्ती, निराशा, खान-पान मे अरुचि, रक्त मिश्रित दस्त, बढती हुयी शारीरिक क्षीणता तथा कुछ दिनो मे पशु की मृत्यु, ये इस बीमारी के प्रमुख लक्षण है

नाइट्रोफ्यूरैजोन, निकार्बाजीन तथा सल्फा ओषधियों का प्रयोग काक्सीडियोसिस की चिकित्सा मे गुणकारी सिद्ध हुआ है चारे के साथ 1–2% सान्द्रता मे सल्फाडिमिडिन अथवा सल्फाक्विनाक्सेलिन का इस रोग की चिकित्सा मे सामान्य प्रयोग होता है काक्सीडिया के हल्के सदूषण हानिकर नही होते किन्तु विस्तृत सक्रमण बहुत ही हानिकारक होते है पशुशाला को साफ-सुथरा रखने तथा उसमे पशुओं की अधिक भीड न होने देने से इस सक्रमण से छुटकारा मिलने मे सहायता मिलती है

बैबेसिओसिस अथवा रक्त-मूत्र रोग, भारतीय गोपशुओ मे काफी होता है इसका रोगोत्पादक कारक **बैबेसिया बाइजेमिना** है जो शरीर के लाल रक्त कणो को नष्ट करके मूत्र के साथ हीमोग्लोबिन बाहर निकालता है तेज बुखार, रक्ताल्पता, पीलिया, दस्त होना, तथा मूत्र मे खून आना इस बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं **बैबेसिया अर्जेण्टाइना, बै बेरबेरा, बै. बोविस** तथा **बै. मेजर** नामक इस समूह की चार अन्य जातियाँ भी गोपशुओ मे बीमारी उत्पन्न कर सकती हैं

बैबेसिओसिस की चिकित्सा के लिये ट्रिपनब्ल्यू तथा क्विन्यूरोनियम सल्फेट (बैबेसान, एकैप्रिन) दो विशिष्ट ओषधियाँ है रोगी पशु को 1–4 ग्रा की मात्रा मे नार्मल सैलाइन अथवा पानी मे तैयार किया गया ट्रिपनब्ल्यू का 1 या 2% ताजा घोल अत शिरा इजेक्शन द्वारा दिया जाता है 0 5–1 मिली प्रति 454 ग्रा शरीर-भार की दर पर एकैप्रिन अथवा बैबेसान का अवत्वक टीका लगाया जाता है रोग से छुटकारा पाने के लिये एक या दो इजेक्शन ही पर्याप्त होते है

थीलेरियेसिस भारतवर्ष मे गोपशुओं मे प्रकोप करने वाली एक अति कष्टप्रद बीमारी है जिससे काफी बडी सख्या मे पशुओं की मृत्यु हो जाती है यह बीमारी **थीलेरिया ऐनुलेटा** द्वारा उत्पन्न होती है जिसके दो विभेद अब तक खोजे जा चुके है इनमे से एक मुक्तेश्वर विभेद है जो बच्चे एव प्रौढ दोनो प्रकार के पशुओ पर आक्रमण करके लगभग 65% पशुओ को मौत के घाट उतारती है इसका एक अन्य 'जे' विभेद है जो दो सप्ताह से लेकर तीन माह तक के बछडो को रोगग्रस्त करके 10–35% पशुओ की मृत्यु का कारण बनता है **हायलोमा सैविग्नाई** नामक किलनी द्वारा यह बीमारी एक पशु से दूसरे पशु को लगती है

रोगग्रस्त पशुओ मे तेज बुखार, खान-पान मे अरुचि, रक्ताल्पता, पीलिया के साथ लसिकाग्रथि, प्लीहा एव यकृत मे सूजन आदि लक्षणो का विकास होता है रोगी के मसूडो, मुह तथा आँतो पर सूजन आ जाती है, उसे दस्त आने लगते है तथा बछडा माँ के थन से दूध नही पी पाता

थीलेरिआसिस की चिकित्सा के लिये अभी तक किसी विशिष्ट ओषधि की खोज नही हो पायी है इसके सदूषण से बचने के लिये बछडो की रक्षा किलनियो के काटने से करनी चाहिये

थीलेरिया म्युटांस जो भारतीय गोपशुओ के रक्त मे आमतौर पर पाया जाता है, हानिकारक नही है

कृमि रोग – कृमिरुग्णता भारतवर्ष मे गोपशुओं के स्वास्थ्य के लिये एक बहुत बडा अभिशाप है और इसमे पशुओं की शक्ति क्षीण हो जाती है, स्वास्थ्य खराब हो जाता है तथा बैक्टीरियाजन्य एव वाइरसजन्य रोगो के प्रति सहनशक्ति कम होकर पशुधन की बहुत बडी क्षति होती है परजीवी कीटो की लगभग 100 जातियाँ गोपशुओं मे रोग उत्पन्न करती बतायी जाती है इन्हे

अधिकतर फ्लूक, फीता कृमि, गोल कृमि तथा मूत्र कृमि आदि समूहों में वर्गीकृत किया गया है

यकृत-फ्लूक अथवा कीडिया रोग, भारतवर्ष के अनेक तराई वाले क्षेत्रों में पशुधन-उद्योग के समुचित विकास में अवरोध उत्पन्न करता रहा है और भविष्य में लागू होने वाली सिंचाई की वृहत् प्रायोजनाओं के परिणामस्वरूप इस बीमारी में होने वाली आर्थिक क्षति के और भी बढ़ने की सम्भावना है

आमतौर पर पाया जाने वाला यकृत-फ्लूक **फैसियोला जाइगैंटिका** कोबोल्ड (पर्याय **फै इंडिका** वर्मा) भारतवर्ष के गोपशुओं तथा भैंसों में कीडिया रोग उत्पन्न करने के लिये उत्तरदायी है कहा जाता है कि **फै हिपैटिका** लिनिअस नामक एक दूसरा यकृत-फ्लूक पर्वतीय क्षेत्रों में पाया जाता है ये फ्लूक पित्त नली में क्षोभ उत्पन्न करके उसे मोटा कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप उसमें आंशिक अवरोध उत्पन्न होकर यकृत का सिरोसिस तथा शोथ हो जाता है शारीरिक क्षीणता, अपच और बाद में पशु को पतले दस्त आना, इस बीमारी के लक्षण हैं ऐसे रोगियों में जबड़े के नीचे सूजन आ जाती है और उन्हें पीलिया हो जाता है यकृत की क्षति से रोगग्रस्त पशु की एकाएक मृत्यु हो जाती है यकृत-फ्लूकों को नष्ट करने के लिये कार्बन टेट्राक्लोराइड सर्वोत्तम औषधि है 3–8 मिली द्रव, पैरेफिन, मखनिया दूध अथवा मैग्नीशियम सल्फेट के गाढ़े घोल के साथ मिलाकर इसे गोपशुओं तथा भैंसों को पिलाया जाता है इसमें कुछ कम विषैला हेक्साक्लोरोएथेन यकृत-फ्लूक संदूषण के लिये एक दूसरी महौषधि है इसकी 15–45 ग्रा की खुराक गोपशुओं को दी जाती है फ्लूक लारवा के वाहक घोंघों को कापर सल्फेट द्वारा नष्ट करके, गीले तथा दलदली स्थानों को मिट्टी से पाटकर तथा घोंघों की संख्या कम करने के लिये तालाबों में बतखों को छोडकर इस बीमारी के संदूषण को कम किया जा सकता है

गोजातीय नासा शिस्टोसोमिऐसिस अथवा **नासिका कणिकागुल्म** नामक रोग पशुओं में एक रक्त-फ्लूक **शिस्टोसोमा नेसैलिस** दत्ता द्वारा उत्पन्न होता है यह बीमारी हिमाचल प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के अधिकांश भाग को छोड़कर शेष भारतवर्ष में अत्यधिक पायी जाती है पूर्वी तथा दक्षिणी भारत में यह रोग खूब होता है यह बीमारी गोपशुओं मुख्यत बैलों की उत्पादन क्षमता कम करके तथा उन्हें निर्बल बनाकर बहुत बडी आर्थिक हानि पहुँचाती है नथुनों से लगातार स्राव बहना, शोर के साथ साँस लेना तथा कभी-कभी छींकना वे लक्षण हैं जिनसे इस बीमारी का निदान किया जाता है भैंसों में इस बीमारी के कोई विशिष्ट लक्षण देखने को नहीं मिलते 25 मिली प्रति 454 ग्रा शरीर-भार की मात्रा में ऐंटिमोसान (बेयर) का अवत्वक अथवा अंत मांसपेशी इंजेक्शन इस रोग की चिकित्सा में बहुत ही गुणकारी सिद्ध हुआ है कहा जाता है कि इसी प्रकार 1 5 ग्रा अथवा 2 5 ग्रा की खुराक में टारटार इमेटिक का 1 या 2% विलयन 5% ग्लूकोस विलयन के साथ, एकदिन के अन्तर पर 6 बार देने से बीमारी अच्छी हो जाती है घोंघों की संख्या कम करने के लिये यकृत-फ्लूक वाले उपाय अपनाने चाहिये रोग फैलने वाले क्षेत्रों में इस बीमारी पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के संरक्षण में कुछ विशिष्ट परियोजनायें भी चल रही हैं

आमाशय-फ्लूक अथवा **ऐम्फिस्टोम्स** जो सामान्यत अग्र-आमाशय तथा कुछ जुगाली करने वाले पशुओं के यकृत में निवास करते है, गोपशुओं तथा भैंसों में ऐम्फिस्टोम रुग्णता उत्पन्न करते हैं प्रौढ अवस्था में ये फ्लूक कोई हानि नहीं पहुँचाते किन्तु इनकी कुछ अपरिपक्व अवस्थायें भीषण श्लेष्मल आर्त्तार्ति उत्पन्न करके पशुओं को मौत के घाट उतारती हैं अत अधोहनु क्षेत्र में अवत्वक शोथ का अंत संचरण तथा उग्र प्रवाहिका इस बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं भारतवर्ष में गाय-भैंसों में परजीवी रोग उत्पन्न करने वाले प्रमुख आमाशय-फ्लूक **पैराऐम्फिस्टोमम एक्सप्लेनेटम, गैस्ट्रोथाइलैक्स क्रूमेनीफर** तथा **कोटाइलोफोरान कोटाइलोफोरम** हैं इनकी प्रौढ अवस्थायें अधिक रोगजनक नहीं होतीं किन्तु बहुत बडी संख्या में इनकी उपस्थिति पशुओं के लिये प्राणघातक सिद्ध होती है अपरिपक्व परजीवी कीटों द्वारा उत्पन्न ऐम्फिस्टोम रुग्णता को ठीक करना बहुत कठिन होता है पहले कॉपर सल्फेट की एक खुराक देकर तीन से चार बार कार्बन टेट्राक्लोराइड तथा हेक्साक्लोरोएथेन आवश्यक मात्रा में देना काफी गुणकारी है यूथ में एक बार भी किसी पशु में बीमारी का पता लगने पर सभी पशुओं का इलाज करना अधिक अच्छा है रोग के बचाव एवं नियंत्रण के लिये बीमारी के मध्यस्थ पोषी घोंघों की संख्या पर नियंत्रण रखना चाहिये

अग्न्याशय-फ्लूक, यूरीट्रेमा पैंक्रियाटिकम (जैनसन) पर्वतीय क्षेत्रों के गोपशुओं तथा भैंसों के अग्न्याशय में पाया जाने वाला प्रमुख परजीवी कीट है जो पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले में विशेष रूप से पाया जाता है गोपशुओं तथा अन्य शाकाहारी पशुओं की अग्न्याशय वाहिनी में यह कीट मोटापा उत्पन्न करता है और इससे गोजातीय रक्तमेह भी उत्पन्न हो सकता है

फीता कृमि परजीवी प्राय गोपशुओं में रोगजनक नहीं होते किन्तु बछड़ों के शरीर में इनकी अधिक संख्या में उपस्थिति उनकी बढ़ोतरी को कम करती है, निर्बलता लाती है और प्रवाहिका उत्पन्न करती है रोगग्रस्त पशुओं का पेट निकल आता है और उनके शरीर के विभिन्न भागों पर चमकती हुयी सूजन दिखायी पड़ सकती है **मोनीजिया एक्सपैंसा** (रुडोल्फी), **एविटेलिना सेंट्रीपंक्टेटा** और **स्टाइलेसिया ग्लोबीपंक्टेटा** भारतीय गोपशुओं में पायी जाने वाली फीता कृमि की प्रमुख जातियाँ हैं गुबरैला माइट (आरिबैटिड) **मोनीजिया एक्सपैंसा** का मध्यस्थ पोषक है फीता कृमि से छुटकारा पाने के लिये निकोटीन-युक्त कॉपर सल्फेट तथा लेड आर्सेनेट का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी है बछड़ों के लिये इसकी खुराक 1–2 ग्रा है इसे जिलेटिन की कैपसूल में रखकर पशु को खिलाया जाता है और इसके बाद उसे एक खुराक रेंडी का तेल पिलाया जाता है

गोल कृमि –ये गोपशुओं तथा अन्य पशुधन में अनेक बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं इनके अन्तर्गत आमाशय कीट अथवा ट्राइकोस्ट्राजिल कीट, अंकुशकृमि, बडे गोल कृमि, कोडा कृमि, फेफडा कृमि या मेटास्ट्राजिल कीट, स्पाइरूरिड कीट तथा फाइलेरियाजनक कीट आते हैं ये कीट अधिकतर परजीवी कीटों के रूप में आमाशय तथा अंतडी में और कुछ अन्य लसीका ग्रन्थियों, अवत्वक् तन्तुओं अथवा मांसपेशियों में पाये जाते हैं रोगग्रस्त पशु शारीरिक क्षीणता, चेतनता ह्रास तथा अन्य जटिलताओं के शिकार होते हैं

आमाशय कीट, हीमांकस कंटॉर्टस (रुडोल्फी) एवं **मेसिस्टोसिर्रस डिजिटैटस** (लिंस्टो) जुगाली करने वाले पशुओं के आमाशय में पाये जाने वाले प्रमुख परजीवी कीट हैं ये पशुओं का रक्त चूसने के अतिरिक्त आमाशय की दीवाल पर क्षोभ उत्पन्न करते है तथा चारे के पाचन एवं शोषण में बाधा उत्पन्न करते हैं रोगग्रस्त पशुओं में रक्ताल्पता उत्पन्न हो जाती है, उनके जबड़े के नीचे

तथा तलपेट मे सूजन आ जाती है और कभी-कभी इनमे अपच तथा प्रवाहिका के लक्षण भी देखने को मिलते हैं एकाएक इनका भारी सक्रमण होने पर शीघ्र ही लक्षण प्रकट होकर पशु बीमारी से मर जाते है 10 मिली प्रति 454 ग्रा शरीर-भार की दर पर 1% कापर सल्फेट का घोल पिलाने पर रोगी पशु शीघ्र ठीक हो जाते हैं 02–3 ग्रा (अधिकतम) प्रति 454 ग्रा शरीर-भार की दर पर फीनोथायजीन का प्रयोग भी गुणकारी है रोग नियत्रण के लिये समुचित सफाई की व्यवस्था रखना तथा चरागाहो को बदल-बदल कर चराना काफी लाभदायक है

ईसोफैगोस्टोमम (बासिकोला) रेडिएटम (रुडोल्फी) गोपशुओ की बडी अतडी मे आमतौर पर पाया जाने वाला परजीवी कीट है अतडी मे यह कीट पर्विल गुल्म उत्पन्न करके सपूय पर्युदर्याशोथ, प्रवाहिका अथवा अतिसार के लक्षण प्रकट करता है 02–3 ग्रा (अधिकतम) प्रति 454 ग्रा शरीर-भार की मात्रा मे फीनोथायजीन के प्रयोग से ये कीट दूर किये जा सकते हैं

अकुश कृमि, रक्त चसने वाले छोटे परजीवी कीट हैं जो गोपशुओ की छोटी अतडी मे पाये जाते हैं इनकी **मोनोडोटस** मोलिन तथा **बनोस्टोमम** रेलीट नामक जातियाँ गोपशुओ मे आमतौर पर परजीवी रूप मे देखी जाती हैं शारीरिक ऊतको से अपनी खुराक लेने के कारण ये कीट पशु की अतडी की दीवाल को काफी क्षतिग्रस्त कर देते है ये सदूषित चारे से स्वस्थ पशु के शरीर मे प्रवेश करते हैं गोपशुओ मे बढती हुयी रक्ताल्पता, जबडे की सूजन, खान-पान मे अरुचि, निर्बलता तथा शारीरिक क्षीणता अकुश कृमि सदूषण के सामान्य लक्षण हैं नये पशुओ की वृद्धि मारी जाती है श्लेष्मल झिल्ली से कीटो को छुडाने के लिये पहले 300 मिली सोडियम बाइकार्बोनेट (5% विलयन) देकर 20–30 मिली प्रति 100 किग्रा शरीर-भार फीनोथायजीन देकर अकुश कृमि को नष्ट किया जा सकता है कार्बन टेट्राक्लोराइड का प्रयोग भी गुणकारी है अन्य स्ट्राजिल कीटो की भाँति इसका सदूषण रोकने के लिये नियत्रण के कुछ अन्य उपायो को भी अपनाया जा सकता है

गोल कृमि आकार मे बडे होते हैं तथा गोपशुओ की अतडी मे निवास करते हैं गोपशुओ मे सामान्य रूप से पाया जाने वाला **ऐस्कैरिस विटुलोरम** शारीरिक क्षीणता, खान-पान मे अरुचि, उदर शूल, प्रवाहिका तथा अन्य आन्त्रिक गडबडी उत्पन्न करता है रोगग्रस्त बछडो का शरीर भद्दा दिखायी देता है और वे सुस्त, कुपोषित एव निर्बल लगते हैं कभी-कभी उनमे तन्त्रिका जटिलतायें भी विकसित हो सकती हैं यदि समय पर चिकित्सा न की गयी तो इनके सदूषण से काफी अधिक सख्या मे बछडो की मृत्यु हो जाती है

568–1136 मिली रेडी अथवा अलसी के तेल मे मिलाकर 01 मिली प्रति किग्रा शरीर-भार की दर से कीनोपोडियम तेल पिलाकर इसके बाद सैलाइन रेचक देने से ये कीट नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार 568–1136 मिली रेडी अथवा अलसी के तेल मे 7–14 मिली तारपीन या देवदार का तेल मिलाकर पशु को पिलाने और बाद मे उसे सैलाइन रेचक देने से भी लाभ होते देखा गया है पशु को 40 घण्टे तक भूखा रखने के बाद 04 ग्रा प्रति किग्रा शरीर भार पर हेक्साक्लोरोएथेन अथवा रात-भर भूखा रखने के बाद जिलेटिन कैप्सूल मे रखकर 5–30 मिली टेट्राक्लोरोएथेन देकर बाद मे सैलाइन रेचक देना भी गुणकारी है 50 ग्रा प्रति किग्रा शरीर-भार के अनुसार डाइएथिलकार्बामैजीन अम्ल सिट्रेट (हेट्राजान) अथवा 01–02 ग्रा प्रति 454 किग्रा शरीर-भार पर पिपराजीन ऐडिपेट देना भी लाभप्रद है इनके प्रयोग मे पशु को भूखा रखने अथवा बाद मे सैलाइन रेचक देने की भी आवश्यकता नही पडती पशुशाला की सफाई पर विशेष ध्यान देने तथा नये पशुओ की उचित देखभाल करने से इस बीमारी पर नियत्रण रखा जा सकता है

कमची कृमि जुगाली करने वाले पशुओ की बडी आँत मे निवास किया करते हैं भारतवर्ष मे **ट्राइचूरिस ओविस, ट्राइकोग्लोब्यूलोसा** तथा **ट्रा डिस्कलर** प्रमुख जातियाँ पायी जाती है. ये कीट पशु की बडी अतडी मे अनुतीव्र अथवा दीर्घकालिक शोथ उत्पन्न करते हैं प्रति किग्रा शरीर-भार पर 1 मिली *n*-ब्यूटिल क्लोराइड देने अथवा 20–25 ग्रा प्रति 454 किग्रा शरीर-भार पर डाइफेनिलऐमीन पिलाने से कमची-कृमि नष्ट होकर शरीर के बाहर निकल आते हैं

फेफडा कृमि गोपशु तथा अन्य स्तनियो की श्वास-नाल मे पाये जाते हैं **डिक्टियोकालस विविपेरस** गोपशुओ मे श्वसनी शोथ अथवा ब्राकोन्युमोनिया, नासा स्राव एव श्वास कष्ट उत्पन्न करते हैं बीमारी के बढने के साथ पशु लगातार अरक्तक एव क्षीण होता जाता है और उसके जबडे पर सूजन आ जाती है. अधिकतर यह बीमारी बछडो तक ही सीमित रहती है किन्तु, कभी-कभी प्रौढ पशु भी शिकार होते देखे गये हैं फेफडा कृमि की चिकित्सा के लिये डिक्टीसाइड (इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज) प्रभावी होती है ट्राइकोस्ट्राजिल कीटो के नियत्रण के लिये जो उपाय सस्तुत किये गये हैं वे ही फेफडा कृमि के सदूषण से सुरक्षा के लिये उपयोगी हैं रोगग्रस्त पशुओ को पशुशाला मे बाधकर ही चारा-दाना देना चाहिये और उन्हे चरागाहो पर चरने नही भेजना चाहिये रोगी पशुओ के गोबर को बिना उपचारित किये खेतो मे नही डालना चाहिये

पशुओ पर जीवन व्यतीत करने वाले गोल कृमियो का एक बहुत बडा समूह **स्पाइरूरिड** कीटो का है घरेलू मक्खी तथा घुडसाल की मक्खी जैसी कुछ कीट जातिया इनके मध्यस्थ पोषक हैं **हेब्रोनेमा** जातिया गोपशुओ के आमाशय मे पायी जाती हैं जहा ये आमाशय की दीवाल पर अर्बुद उत्पन्न करके क्षोभ अथवा आमाशय शोथ का कारण बनती हैं फेफडो के क्षतिग्रस्त होने पर फुफ्फुस हैब्रोनेमारुग्णता के लक्षण देखने को मिलते हैं आमाशय की श्लेष्मल झिल्ली से कीटो को छुडाने के लिये प्रारम्भ मे पशुओं को सोडाबाइकार्ब की एक खुराक देकर रात-भर भूखा रखने के बाद प्रति 100 किग्रा शरीर भार पर 5 मिली कार्बन डाइसल्फाइड का प्रयोग इस बीमारी मे लाभप्रद है बीमारी की रोकथाम के लिये गोबर को मिट्टी के नीचे दबाना तथा मक्खियो को नष्ट करना आवश्यक है.

फाइलेरिया कीट आकार मे लम्बे तथा पतले होते हैं तथा पालतू पशुओ की कुछ प्रजातियो मे रक्त, लसीका नलिकाओ, सयोजी ऊतको अथवा शारीरिक गुहाओ मे निवास करते हैं **स्टीफेनोफाइलेरिया असमेंसिस** (पाडे), **ओकोसर्का** जातियाँ तथा **पैराफाइलेरिया बोवीकोला** भारतवर्ष के पालतू पशुओ मे प्रकोप करने वाले प्रमुख फाइलेरिया कीट है

स्टीफेनोफाइलेरिया असमेंसिस (पाडे) गोपशुओ के अवत्वक तन्तुओ मे पाया जाता है और उनमे 'डम डम व्रण' अथवा 'ककुद व्रण' उत्पन्न करता है ये कीट ककुद तथा वक्ष की दीवाल के चारो ओर तथा पादागुलियो के निकट पाये जाते हैं इन कीटो से लगातार

वहने वाले घाव उत्पन्न होते हैं जिससे मक्खियाँ वडी सख्या मे आकर्षित होकर रोगी पशु को वेचैन वना देती है उत्तरी भारत की भैंसो मे कर्ण-व्रण भी सम्भवत इन्ही कीटो द्वारा उत्पन्न होता है असम, वगाल, उडीसा, विहार एव आन्ध्र प्रदेश के कुछ भागो मे ककुद-व्रण रोग अधिक व्याप्त है यह मैदानी गोपशुओ का विशिष्ट रोग है पर्वतीय पशुओ मे यह बीमारी नही होती भारवाही पशुओ की काम करने की क्षमता कम करके, दुधारू गायो के दुग्धोत्पादन मे कमी करके, पशुओ की वृद्धि एव विकास मे अवरोध उत्पन्न करके तथा खाल का मूल्य कम करके ये कीट पशुपालक को आर्थिक हानि पहुँचाते है कुछ क्षेत्रो मे कुल गोपशु सख्या के लगभग 1/3 पशु इस बीमारी से ग्रस्त होते हैं ग्रस्त तन्तु को काटकर निकाल देना, उपयुक्त पूतिरोधी ओषधियो तथा 4% टारटार इमेटिक मलहम जैसी प्रति-फाइलेरिया पट्टी का प्रयोग करके इसकी चिकित्सा की जाती है

ओकोसर्का जातिया गाय-भैंसो की महाधमनी की दीवाल मे गाठे उत्पन्न करती देखी जाती हैं **कोलीकायडीस** जाति के रक्त-चूषक कीट इस परजीवी के रोगवाहक के रूप मे कार्य करते हैं

पैराफाइलेरिया वोवीकोला गर्मी तथा वरसात की ऋतु मे भारतवर्ष के अनेक भागो मे पशुओ की त्वचा के नीचे रक्तस्रावी गाँठे उत्पन्न करते है टारटार इमेटिक के 1% घोल की 100 मिली मात्रा अत शिरा इजेक्शन द्वारा देने से रोगी पशु ठीक हो जाते है

वाह्य परजीवी कीट – जोके पशुओ को कष्ट पहुँचाती है, वे उनके शरीर के मुलायम अगो पर चिपक कर रक्त चूसती हैं **हिरुडिनेरिया** तथा **डिनोब्डेला** जातियो की ताजे पानी मे पायी जाने वाली जोके पशुओ के लिये हानिकारक होती हैं क्योकि ये पानी पीते समय पशुओ के मुह, नाक तथा ग्रसिनी मे प्रवेश करके सप्ताहो तक इन्ही भागो पर चिपकी रहती हैं **हीमैडिप्सा** जातियो की पृथ्वी पर पायी जाने वाली जोके नमीयुक्त घने पर्वतीय जगलो मे मिलती है और वहाँ से निकलने वाले पशुओ के शरीर पर चिपक जाती हैं वे अच्छी तरह रक्त चूसकर तृप्त हो जाने के वाद पशु के शरीर से छूटकर नीचे गिर जाती है शरीर के उन स्थानो से खून निकलता है और वहा घाव वन जाते हैं तथा इन घावो की चिकित्सा करनी पडती है नमक अथवा सिरका छिडक कर पशुओ के शरीर से जोकें छुटायी जा सकती है 50,000 से 5,00,000 भाग पानी में एक भाग कॉपर सल्फेट मिलाकर पानी की जोकों को मारा जा सकता है

कुछ कीडे तथा किलनिया काम करते समय तथा आराम के क्षणो में पशुओ को लगातार कष्ट पहुँचाते है इनमे से कुछ कीट पशु की त्वचा को काटकर खराव कर देते हैं तथा उन्हे परोक्ष रूप से क्षति पहुँचाते हैं इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कीट वाइरस, वैक्टीरिया, प्रोटोजोआ तथा अन्य परजीवी रोगो के वाहक के रूप में कार्य करते है और इस प्रकार इन वीमारियो को एक पशु से दूसरे पशु तक फैलाते हैं

इन परजीवी कीटो से पशुधन का ह्रास होता है और देश को काफी आर्थिक हानि होती है. **हाइपोडर्मा** जातियो की वार्वल मक्खियो तथा **आर्निथोडोरास** एव **हायलोमा** जातियो की किलनियो से पशु की खाल के खराव हो जाने से ही भारतवर्ष को करोडो रुपये की क्षति पहुँचती है इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के परजीवी कीटो के आक्रमण से पशु की वृद्धि एव विकास मे वाधा पडती है, ओज मे कमी आती है तथा उनकी उत्पादन-क्षमता घट जाती है

नियत्रण के उपयुक्त उपाय ढूढ निकालने के लिये भारतवर्ष मे **हाइपोडर्मा लिनिएटम** के जीवन-इतिहास तथा जीव परिस्थितियो पर विस्तृत अध्ययन किया जा चुका है वैलो की वार्वल मक्खी पैरो के वालो तथा गलकम्वल पर अपने अण्डे देती हैं इन अण्डो से निकले हुये लारवा पशु की त्वचा मे छेद करके पीठ तक पहुँच जाते है यहाँ पहुँचने पर प्रत्येक लारवा के चारो ओर एक गाठ-सी वन जाती है इस गाठ में ऊपर की ओर एक छिद्र होता है जिससे लारवा साँस लेते हैं पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने के वाद लारवे छेद से वाहर निकल कर अपना विकास करते रहते हैं वार्वल से सदूषित पशु की खाल मे ऐसे अनेक छेद होते जाते हैं जिससे खाल का मूल्य काफी कम हो जाता है अकेले वार्वल मक्खी से पशुओ की खाल से होने वाली क्षति भारतवर्ष मे उत्पादित समस्त खालो के मूल्य का 1/10 है इसके अतिरिक्त वार्वल मक्खी के आक्रमण से पशु के स्वास्थ्य तथा दूध उत्पादन पर भी वुरा प्रभाव पडता है

भारतवर्ष मे वार्वल मक्खी पर नियत्रण रखने के लिये दो उपाय किये जाते हैं एक तो अण्डे देने के मौसम मे (आधे मार्च से आधे जून तक) गोपशुओ के पैरो के वालो को समय-समय पर जलाते रहना, और दूसरे वार्वल मक्खी के लारवा से युक्त गाठो की मरहम-पट्टी करना लारवा को मारने के लिये प्राय तम्वाकू एव चूना और डेरिस चूर्ण का उपयोग किया जाता है उपयुक्त सान्द्रता मे पहली ओषधि के प्रयोग से लगभग 82% लारवे और दूसरी से 100% लारवे नष्ट हो जाते हैं गोपशुओ मे वार्वल मक्खी के सदूषण पर विजय पाने के लिये वेयर एव लिवरकुसन द्वारा निर्मित नेगुवान नामक उत्पाद का उपयोग भी गुणकारी वताया जाता है

किलनियाँ गोपशुओ तथा भैंसो के शरीर मे लग कर उनका रक्त चूसती है, चिपके हुये स्थान पर सूजन उत्पन्न करती है तथा अनेक विशिष्ट वीमारियो के रोगोत्पादक जीवाणुओ को एक पोषी से दूसरे पोषी पर पहुँचाने का कार्य करती है इस प्रकार की किलनियाँ **आर्निथोडोरास** काख, **हायलोमा** काख तथा **हीमैफाइसेलिस** काख वशो के अन्तर्गत आती हैं प्रौढ किलनियाँ गोपशुओ तथा अन्य पालतू पशुओ पर परजीवी हैं किन्तु इनके लारवा एव निम्फ कभी-कभी मनुष्यो पर आक्रमण करते हैं किलनियो से पशुओ मे रक्ताल्पता, वेचैनी, स्वास्थ्य की गिरावट तथा गायो मे दुग्धोत्पादन की कमी जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं इनके काटने से निशान पड जाते हैं जिससे पशुओ की खाले खराव हो जाती है और उनका मूल्य कम हो जाता है

किलनियो का गहन एव वार-वार सदूषण होने पर पशुओ के शरीर से किलनियो को हटाने के अतिरिक्त पशुशालाओ तथा चरागाहो पर भी किलनियो को नष्ट करने वाली ओषधियो का प्रयोग करना चाहिये क्लोरीन युक्त कीटनाशी पदार्थो का प्रयोग इस कार्य के लिये अच्छा है 5% डी-डी-टी अथवा आवश्यक अनुपात मे 1% गामा वी-एच-सी चूर्ण के प्रकीर्णन से भी किलनियाँ दूर हो जाती हैं 0 5% वी-एच-सी अथवा 1–5% डी-डी-टी घोल का छिडकाव भी गुणकारी है 0 5% डी-डी-टी तथा 0 025% लिडेन (विशुद्ध गामा वी-एच-सी) घोल का नियतकालिक छिडकाव करते रहने से किलनियो के सदूषण पर नियत्रण रखा जा सकता है 2 ली हल्के गर्म पानी मे 56 ग्रा डेरिस चूर्ण तथा 28 ग्रा उदासीन सावुन मिलाकर वनाये हुये घोल मे पशु को नहलाने से भी लाभ होता है

माइट, किलनियो की भाँति ही हानिकारक होते हैं . ये

गोपशुओं तथा अन्य पालतू पशुओं के शरीरों पर पाये जाने वाले अत्यन्त छोटे परजीवी हैं ये पशु की त्वचा में घुसकर गलियारे बना लेते हैं और वहीं अपने अण्डे देते हैं **सोराप्टीस कम्युनिस** द्वारा सोराप्टिक खुजली उत्पन्न होती है इस माइट के काटने से त्वचा पर छोटी-छोटी पिटिकायें-सी बनती दिखायी देती है, जिनमें अत्यधिक खुजली उठती है और बाद में बड़े, गीले तथा मोटे खुरट बन जाते हैं **कोरिओप्टीस सिम्बायोटीस** कोरिओप्टिक खुजली उत्पन्न करता है इसके क्षत पिछले पैरों के टखनों तथा पूंछ की जड़ तक ही सीमित रहते हैं **सार्कोप्टीस स्कैबिआइ** (द गियर) द्वारा सारकोप्टिक खुजली गोपशुओं में कम देखी जाती है किन्तु एक बार हो जाने पर इसका प्रकोप ऊपर कथित अन्य दो खुजलियों से अधिक तीव्र होता है यह माइट त्वचा में काफी अन्दर तक घुसकर टेढ़ी-मेढ़ी नालियाँ-सी बनाकर उनमें अपने अण्डे देता है सिर, ग्रीवा के दोनों ओर, अयन, तलपेट, पिछले पुट्ठों में अन्दर की ओर और कभी-कभी पीठ पर ये परजीवी कीट आक्रमण करते देखे गये हैं ग्रस्त अंग की त्वचा मोटी पड़कर झुर्रीदार हो जाती है और उस पर सूखी पपड़ी पड़कर बहुधा वह कटी-फटी-सी दिखायी देती है **डेमोडेक्स फालिकुलोरम** (सिमॉन) द्वारा उत्पन्न होने वाली **डेमोडेक्सी** अथवा पुटिकीय खुजली कभी-कभी नये पशुओं में प्रकोप करते देखी जाती है ये पशु इससे अधिक प्रभावित होते हैं क्षत पहले ग्रन्थियों के रूप में रहते हैं और वे कंधों तथा ग्रीवा के दोनों ओर प्रकट होते हैं जहाँ से वे कभी-कभी धीरे-धीरे शरीर के निकटवर्ती भागों पर भी फैल जाते हैं

यदि ये क्षत थोड़े भाग तक ही सीमित रहते हैं तो हाथ से मरहम-पट्टी करके इनकी चिकित्सा की जा सकती है, किन्तु यदि ये बहुत बड़े क्षेत्र में फैले होते हैं तो पशु को ओषधियुक्त पानी से नहलाकर अथवा उस पर ओषधियुक्त घोल छिड़ककर उपचार किया जाता है यह चिकित्सा नियमित अन्तरालों पर दो या तीन माह तक करनी पड़ती है सारकोप्टिक तथा सोराप्टिक खुजली में गंधक के मलहम (गंधक 2 भाग, पोटैसियम कार्बोनेट 1 भाग, वैसलीन 8 भाग) तथा गंधक (1 13 किग्रा) एवं अलसी के तेल (4 5 ली) के मिश्रण का उपयोग किया जाता है चूना-गंधक घोल में (चूना, 5 4 किग्रा, पिसा गंधक, 10 89 किग्रा तथा पानी, 4 54 ली) पशु को नहलाना भी लाभप्रद है मिट्टी के तेल एवं अलसी के तेल की सम मात्राओं का मिश्रण भी कोरिओप्टिक खुजली में लगाया जाता है क्लोरीनयुक्त हाइड्रोकार्बन इसकी चिकित्सा में अधिक प्रभावकारी है सोराप्टिक तथा कोरिओप्टिक खुजली की चिकित्सा के लिये 0 04–0 08% गामा-समस्थानिक युक्त बी-एच-सी अथवा लिंडेन घोल से 6–10 दिन के अन्तर पर तीन-चार बार पशु को नहलाने से काफी लाभ पहुँचता है जैतून के तेल अथवा बिनौले के तेल में मिश्रित 1–2% रोटेनोन निलम्बन, 25–33% बेन्ज़िल बेंजोएट पायस, 5% टेटमासोल, 0 15% जलीय लिंडेन अथवा 0 25% क्लोरडेन पायस का प्रयोग डेमोडेक्सी खुजली में लाभप्रद बताया जाता है

विविध रोग – गोपशुओं को होने वाले विविध रोगों में से सींग का कैंसर, गोजातीय रक्तमेह तथा फ्लोरीन-विषाक्तता प्रमुख हैं

पशुओं में **सींग का कैंसर** सम्भवत पूरे देश में प्रकोप करता है, किन्तु उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु तथा गुजरात जैसे कुछ प्रदेशों में इस पर विशेष ध्यान दिया गया है छोटे सींग वाले पशुओं की अपेक्षा लम्बे सींगों वाले पशुओं में यह रोग अधिक फैलता है गुजरात एवं उत्तर प्रदेश में किये गये अध्ययन से यह विदित हो चुका है कि गायों की अपेक्षा बैलों में यह रोग अधिक होता है और 5–10 वर्ष की आयु वाले पशु ही अधिकतर इसके शिकार होते हैं इनसे तथा अन्य प्रेक्षणों से ऐसा विश्वास होने लगा है कि बैलों में यह रोग उन्हें बधिया करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न कुछ हारमोन सम्बन्धी असंतुलन से हो सकता है या कुछ पशुओं के सींगों में चोट लगने के कारण भी हो सकता है सींग की जड़ के पास विशेष प्रकार की वृद्धि तथा कुछ अन्य लक्षणों के आधार पर सींग के कैंसर का निदान सरलता से किया जा सकता है कैंसर के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में शल्य चिकित्सा लाभदायक सिद्ध हो सकती है

आंखों में पड़ी हुयी धूल, कीड़े-मकोड़े अथवा अन्य पदार्थों द्वारा उत्पन्न क्षोभ के परिणामस्वरूप नेत्र कैंसर उत्पन्न होता है इसमें भीतरी नेत्र कोण पर अर्बुद का विकास होता है जिसमें पहले नेत्र श्लेष्मला शोथ एवं स्रवण लक्षण प्रकट होते हैं रोग की गम्भीर अवस्था में कैंसर-कोशिकायें लसीका-तंत्र में प्रविष्ट हो जाती हैं और कुछ पशुओं में रोग के क्षत यकृत तथा फेफड़ों तक में फैल जाते हैं रोग की प्रारम्भिक अवस्था में कैंसर वाले अंग को पूरी तरह निकाल देने तथा गम्भीर अवस्था में सम्पूर्ण नेत्र-गोलक को काटकर अलग कर देने से संतोषजनक परिणाम प्राप्त हुये हैं

गोजातीय रक्तमेह गोपशुओं के गुर्दे का एक रोग है जिसमें मूत्र के साथ प्रारम्भ में रुक-रुक कर तथा बाद में लगातार रक्त बाहर निकलता रहता है दो वर्ष से ऊपर की आयु वाले पशुओं को यह बीमारी लगती है और भारतवर्ष में दार्जिलिंग, कुमायूँ, नीलगिरि तथा कुल्लू घाटी जैसे पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले पशुओं तक ही इसका प्रकोप सीमित है इस रोग के कारण हैं अधिक मात्रा में आक्सैलेट, फीनोलेट, सिलिकेट से युक्त वनस्पतियों का चरा जाना, शरीर में खनिज लवणों का अभाव, सिस्टोसोम परजीवी कीटों का आक्रमण और **ऐस्पर्जिलस** फफूँदी, तथा **कोराइनेबैक्टीरियम रीनेल** से मिलते-जुलते जीवाणु जो गुर्दे तथा मूत्राशय में क्षोभ उत्पन्न करते हैं आदि यदि रक्त मिश्रित मूत्र को थोड़ी देर रख दिया जाय तो लाल रक्त कण नीचे बैठ जाते हैं और इतने परीक्षण से बीमारी का निदान हो जाता है इससे मिलती-जुलती एक प्रोटोज़ोआ की बीमारी, **पाइरोप्लाज्म रुग्णता** है जिसमें मूत्र में रक्त कण निलम्बित दिखायी पड़ते हैं और इसी आधार पर रक्तमेह से इसका विभेद किया जाता है यह बीमारी प्राय दीर्घकालिक होती है और अभी तक इसकी कोई भी विशिष्ट चिकित्सा ज्ञात नहीं हो पायी रोग की प्रारम्भिक अवस्था में 8–12 दिन तक नित्य एक लाख यूनिट तैलीय पैनिसिलिन का इंजेक्शन देना लाभप्रद सिद्ध हो सकता है पशुओं को समुचित मात्रा में खनिज लवण, खाने वाला नमक तथा विटामिनयुक्त संतुलित आहार देना चाहिये उनके दैनिक आहार में 56–84 ग्रा कैल्सियम कार्बोनेट अथवा अस्थि-चूर्ण तथा 56 ग्रा खाने वाला नमक होना चाहिये

मूत्रनाल में कैल्सियम तथा मैग्नीशियम कार्बोनेट एवं फॉस्फेट लवणों के संचित होने से भारतीय गोपशुओं में आमतौर से मूत्र अश्मरी बनती देखी जाती है अश्मरी बन जाने से मूत्र मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो जाता है जिससे पशु का मूत्र बंद हो जाता है और उसकी मृत्यु तक हो सकती है **अश्मरी** को शल्य चिकित्सा द्वारा निकाला जा सकता है रोगी पशु को पीने के लिये काफी जल तथा विटामिन ए युक्त रसदार हरा चारा देना

चाहिये पशु आहार मे कैल्सियम, फॉस्फोरस तथा मैग्नीशियम का अनुपात भारतीय मानक सस्थान द्वारा निर्धारित मात्रा के अनुरूप होना चाहिये और दाने की मात्रा कम करके खूब व्यायाम कराना चाहिये

फ्लोरीन रुग्णता अथवा फ्लोरीन विषाक्तता गोपशुओ की एक दीर्घकालिक एव अनजाने मे होने वाली बीमारी है जो लगातार फ्लोरीन लवण लेते रहने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है इसके लक्षण है वृद्धि का रुकना, लगडाहट, धब्बेदार एव टेढे-मेढे दाँत तथा जबडे एव पसली तथा पैरो की हड्डियो पर मोटापा भारतवर्ष में आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश तथा गुजरात मे इस बीमारी के होने की सूचना प्राप्त है दैनिक पशु आहार मे यदि फॉस्फोरस की मात्रा कम हो तथा फ्लोरीन उपस्थित हो तो फ्लोरीन विषाक्तता विशेष रूप से देखी जा सकती है पशु को, विशेष रूप से बरसात के मौसम मे, प्रतिदिन 56 ग्रा अस्थि-चूर्ण खिलाकर इस बीमारी के प्रकोप को रोका जा सकता है इस बीमारी से बचाव के अन्य आवश्यक उपाय पानी में चूना मिलाकर पिलाना, नित्य 28 ग्रा ऐलुमिनियम सल्फेट देना तथा राशन मे लोह, ताम्र तथा मैंगनीज लवणों को मिलाकर पशु को खिलाना है

गोपशुओं तथा भैंसों से प्राप्त होने वाले उत्पाद

हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था विशेषत कृषि पर आधारित है इसमे गोपशु तथा भैंसो का अपना विशिष्ट स्थान है मादा पशुओ से हमे दूध प्राप्त होता है तथा नर पशु ग्रामीण यातायात और कृषि कार्यो के लिये आवश्यक चलशक्ति प्रदान करते है दूध का या तो ऐसे ही उपभोग कर लिया जाता है अथवा इससे मक्खन, घी तथा पनीर आदि पदार्थ बनाये जाते है मास, खाल, हड्डी, सीग, खुर तथा आँत, ग्रन्थियाँ और रक्त जैसे मास-उद्योग के उपजात इससे प्राप्त होने वाले अन्य पदार्थ है

दूध

देश मे काफी बडी पशु सख्या होते हुये भी प्रति व्यक्ति दूध की प्राप्ति बहुत कम है, और उपभोक्ताओ की बढती हुयी माग की अपेक्षा हमारे पशुओ का उत्पादन कम है भारतवर्ष मे दुग्ध-उत्पादन करने वाली इकाइया काफी छोटी तथा बिखरी हुयी है विभिन्न क्षेत्रो मे दुग्ध उत्पादन मे काफी विभिन्नता देखी जाती है और किसी क्षेत्र में पशुओ की सख्या मे दुग्ध उत्पादन का अनुमान नही लगाया जा सकता

देश मे गाय-भैंसो तथा बकरियो से प्राप्त होने वाली दूध की कुल मात्रा 1951 मे 1 740, 1956 मे 1 972 तथा 1961 मे 1 984 करोड टन थी 1965–66 के लिये दुग्धोत्पादन का लक्ष्य 2 54 करोड टन था हमारे देश मे प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसतन 130 ग्रा दूध आता है जो पोषण सलाहकार समिति द्वारा दैनिक उपभोग के लिये स्वीकृत 283 ग्रा की तुलना मे बहुत कम है औद्योगीकरण तथा घनी आबादी के कारण शहरो मे दूध की माँग अधिक है नियोजित डेरी योजनाओ वाले क्षेत्रो को छोडकर कही भी सुसगठित ढग से दूध का वितरण नही किया जाता बहुत से क्षेत्रो मे दुग्ध सहकारी समितियो का अभी तक गठन नही हो पाया है दुग्ध-चूर्ण, शिशु दुग्ध आहार, पनीर, मक्खन, आइस-क्रीम जैसे दूध से बने पदार्थो की माँग निरन्तर बढती जा रही है.

भारतवर्ष मे दुग्ध-उत्पादन, तथा दूध एव दूध से बने पदार्थो के उपभोग एव उपयोग का कोई सही अनुमान अभी तक नही लगाया जा सका फिर भी भारत सरकार के केन्द्रीय साख्यिकी सगठन ने देश मे दूध तथा दुग्धजन्य पदार्थो के उत्पादन का अनुमान लगाने के लिये एक मान्य सूत्र तैयार किया है केन्द्रीय साख्यिकी सगठन द्वारा 1961 मे तैयार किया गया भारतवर्ष मे (प्रादेशिक स्तर पर) गाय-भैंसो से प्राप्त दूध का वार्षिक विवरण सारणी 15 मे अकित है

देश मे उत्पादित कुल दूध (1 984 करोड टन) की मात्रा का 45% दूध 5 10 करोड गायो से तथा 55% दूध 2 423 करोड भैंसो से प्राप्त होता है इसमे शहरी क्षेत्रो का योगदान बहुत कम (11 6 लाख टन) है देश की 3 70% दुधारू गाये शहरो मे रहती है जिनसे दूध का 6% प्राप्त होता है शहरी क्षेत्रो मे भैंसो की सख्या, देश मे पायी जाने वाली दुधारू भैंसो की कुल सख्या की 5 1% है किन्तु ये कुल दुग्धोत्पादन का 7% दूध देती है प्रति गाय तथा भैंस के दुग्धोत्पादन का वार्षिक औसत क्रमश 173 और 491 किग्रा है

बढती हुयी जनसख्या तथा दुधारू गाय-भैंसो की सख्या के आधार पर वर्तमान उत्पादन स्तर के अनुसार भविष्य मे प्रति व्यक्ति कितना दूध उपलब्ध हो सकेगा, इसका विवरण सारणी 16 मे दिया गया है इस सारणी में दिये गये आकडे यह प्रदर्शित करते है कि 1975–76 तक प्रति व्यक्ति प्रतिदिन प्राप्त होने वाले दूध की मात्रा 116 ग्रा से घटकर 113 ग्रा रह जायेगी पोषण सलाहकार समिति द्वारा निर्धारित प्रति व्यक्ति के लिये 283 ग्रा दूध की आवश्यकता की तुलना मे ये आँकडे दूध की प्राप्ति

सारणी 15 – 1961 में भारतवर्ष में गाय-भैंसो से प्राप्त दूध का अनुमानित वार्षिक उत्पादन*

(हजार टन)

प्रदेश	गाय	भैंस
असम	124	35
आन्ध्र प्रदेश	676	1,092
उड़ीसा	299	60
उत्तर प्रदेश	1,153	2,984
केरल	177	44
गुजरात	560	1,032
जम्मू एव कश्मीर	51	60
तमिलनाडु	608	419
पजाब	704	1,758
पश्चिमी बगाल	359	137
बिहार	1,043	789
मध्य प्रदेश	480	580
महाराष्ट्र	702	631
मैसूर	238	344
राजस्थान	1478	935
केन्द्रीय शासित क्षेत्र	101	187
योग	8,753	11,087

**Indian Statis Abstr*, 1967, 62

तथा आवश्यकता के बीच काफी अन्तर प्रदर्शित करते है इन आँकडो से यह भी स्पष्ट है कि देश मे दुग्धोत्पादन की वढोत्तरी के लिये आवश्यक कदम उठाने की तत्काल आवश्यकता है

देश में दुग्धोत्पादन को वढावा देने के लिये दुधारू गाय-भैसो को अधिक मात्रा मे पोपक तत्व तथा हरा चारा दिये जाने तथा छिलका, तैलीय खली और भूसा जैसे समस्त उपलब्ध उपजातो का सदुपयोग करने के विशिष्ट प्रयास होने चाहिये अतिरिक्त दुग्धोत्पादन के लिये चारे की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति के लिये वरसीम जैसे अधिक पोपक चारे उगाने होगे

हमारे देश मे जितना दूध पैदा होता है उसका 39% इसी रूप मे प्रयुक्त हो जाता है शेप दूध, दही, क्रीम, मक्खन, घी, खोवा, आइसक्रीम जैसे विभिन्न दुग्ध-पदार्थ बनाने के काम आता है भारतवर्ष मे (राज्यीय स्तर पर) 1961 मे दूध के उपयोग का विवरण सारणी 17 मे दिया गया है

विभिन्न प्रदेशो मे दूध के उत्पादन तथा उपभोग मे काफी भिन्नता पायी जाती है (सारणी 18) पश्चिमी तथा उत्तरी प्रदेशो की तुलना मे पूर्वी तथा दक्षिणी प्रदेशो मे प्रति व्यक्ति दूध की खपत काफी कम है दूध के उपभोग मे इतनी अधिक भिन्नता का प्रमुख कारण विभिन्न प्रदेशो मे दूध उत्पादन मे प्रचुर विभिन्नता का होना ही है

शहरी क्षेत्रो मे दुग्ध-आपूर्ति सतोषजनक नही है लेकिन इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रो से शहरो मे दूध लाने-लेजाने के लिये समुचित साधनो का अभाव हे जिसके कारण देहाती क्षेत्र मे उत्पादित दूध की विक्री के लिये अच्छे वाजारो की भी कमी है यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रो से 80% पेयदूध प्राप्त होता है किन्तु इसकी माँग अधिकतर शहरो मे ही है शहरी क्षेत्रो मे अधिक सख्या मे दुधारू पशु होने से मनुष्यो तथा पशुओ मे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने का भय रहता है

दुग्ध आपूर्ति योजनायें – शहरी क्षेत्रो मे दुग्ध आपूर्ति के सुधार के लिये भारत सरकार ने एक लाख से अधिक आवादी वाले शहरो तथा कस्वो मे अनेक दुग्ध आपूर्ति योजनाएँ चालू करने की रूपरेखा तैयार की हे

प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत राज्यो मे डेरी के विकास का कार्यक्रम सम्मिलित था जिसमे कस्वो मे दुग्ध आपूर्ति योजनाओ के चलाने की वात थी प्रथम पचवर्षीय योजना की अवधि मे वम्वई दुग्ध आयोजना के अन्तर्गत 'ऐरे दुग्ध कालोनी' की स्थापना हुयी ऐसी ही योजनाएँ पूना, हुवली तथा धारवाड मे भी चलायी गयी दूध का ससाधन करने एव दुग्ध पदार्थो के निर्माण हेतु आनन्द मे एक सहकारी दुग्ध सघ की स्थापना की गयी मध्य प्रदेश, उडीसा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और विहार मे भी अनेक छोटी-छोटी डेरी योजनाये चालू की गयी द्वितीय पचवर्षीय योजना की अवधि मे दिल्ली दुग्ध योजना तथा अहमदावाद दुग्ध योजना का कार्यक्रम निर्धारित हुआ 36 दुग्ध आपूर्ति योजनाओ के निर्धारित लक्ष्य मे से 15 इसी अवधि मे पूरी हो गयी अमृतसर और राजकोट मे दुग्ध सम्वन्धी पदार्थो के वनाने का एक-एक कारखाना खोला गया तथा वरौनी, अलीगढ और जूनागढ फार्म पर तीन ग्रामीण क्रीमरियाँ स्थापित की गयी वीरनपदी, अविशेखापट्टी, विरुधुनगर और युवाकुडी (तमिलनाडु) मे साल्वेज फार्म स्थापित किये गये इसी वीच कुछ सहकारी दुग्ध सघ तथा समितियो का भी गठन किया गया जिसके फलस्वरूप 1958–59 तक देश मे 2,257 सहकारी दुग्ध आपूर्ति समितियाँ तथा 77 दुग्ध आपूर्ति सघ स्थापित हो चुके थे तृतीय पचवर्षीय योजना की अवधि मे ग्रामीण क्षेत्रो मे दुग्ध-उत्पादन सम्वन्धी परियोजनाओ तथा वचे हुये दूध एव दुग्ध पदार्थो को शहरो मे वेचने की सुविधाये उपलब्ध कराने पर अधिक ध्यान दिया गया 55 योजनाओ के निर्धारित लक्ष्य में से दो पूरी हो गयी और 25 पूरी होने की विभिन्न अवस्थाओ मे थी इसके अतिरिक्त द्वितीय पचवर्षीय योजना काल की वची हुयी 21 योजनाये भी इसी अवधि मे पूरी हुयी विभिन्न शहरो मे 16 डेरी तथा 15 अग्रगामी दुग्ध योजनाये प्रारम्भ की गयी छ सुखावक सयत्रो में से तीन कैरा, मेहसाना और दिल्ली मे स्थापित किये गये आनन्द मे एक पनीर बनाने वाला कारखाना खोला गया और दिल्ली दुग्ध प्रायोजना के अन्तर्गत एक ऐसा अन्य कारखाना खोलने का निश्चय किया गया आनन्द मे पशु आहार वनाने का भी एक कारखाना खोला गया

तृतीय पचवर्षीय योजना मे भी सहकारी दुग्ध सघ खोलने का लक्ष्य रखा गया इन सहकारी परियोजनाओ मे निम्नलिखित कार्यक्रम निर्धारित किये गये (1) ग्रामीण दुग्ध उत्पादन के विकास एव उत्पादक सहकारी समितियो के उत्थान हेतु ग्रामीण प्रसार सेवाओ को सगठित करना, (2) दूध के एकत्रीकरण एव वितरण हेतु सहकारी समितियो/दुग्ध सघो का गठन, (3) पशुओ को खरीदने के लिये कर्ज की व्यवस्था, (4) वचे हुये क्षेत्रो से प्राप्त होने वाले दूध की खपत तथा उपयोग के लिये देहातो मे क्रीमरियो की स्थापना करना, और (5) सहकारी साल्वेज फार्मो की स्थापना राज्यो को दी जाने वाली 31 योजनाओ मे से 8 कार्यान्वित हुयी, और 13 इस अवधि में चलती रही दुग्ध पदार्थ वनाने वाले दो कारखानो की सहकारी सघो द्वारा स्थापना भी होनी थी

1968–69 मे डेरी सयत्रो की कुल सख्या वढकर 91 हो गयी, जिसमे 47 तरल दुग्ध सयत्र, 4 दुग्ध-उत्पादक वनाने वाले कारखाने, 3 ग्रामीण क्रीमरियाँ तथा 37 अग्रगामी दुग्ध परियोजनाये सम्मिलित थी इसके अतिरिक्त 34 अन्य दुग्ध परियोजनाये हैं जिनमे अग्रगामी दुग्ध परियोजनाओ तथा 6 दुग्ध-उत्पाद वनाने वाले कारखानो का विस्तार भी सम्मिलित है सभी सयत्रो से कुल मिलाकर औसतन 17 लाख ली दूध प्रतिदिन प्राप्त होता है भारतवर्ष मे (राज्यीय स्तर पर) चलने वाले डेरी सयत्रो की कुल उत्पादन क्षमता और उनसे प्रतिदिन प्राप्त मात्रा का 1968 का विवरण सारणी 19 मे प्रस्तुत है

देश मे दुग्ध-चूर्ण तैयार करने का कार्य द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रारम्भ किया गया तीसरी पचवर्षीय योजना के अत तक सार्वजनिक तथा निजी डेरी उद्योगो की अधिकृत उत्पादन-क्षमता इस प्रकार थी क्रीम उतरा दुग्ध-चूर्ण, 16,256 टन, पूर्णदुग्ध-चूर्ण, 10,160 टन, शिशु दुग्ध आहार, 6,096 टन, सघनित दूध, 8,432 टन, पनीर, 2,438 टन, माल्ट मिश्रित दुग्ध-खाद्य, 3,352 टन, निर्जमित क्रीम, 61 टन, और वटर मिल्क चूर्ण 406 टन इन दुग्ध उत्पादो के लिये भारतीय मानक निर्धारित किये जा चुके है (IS 1165-1967, 1547-1960, 1166-1957, 2785-1964, 1806-1961, 4421-1967, 4238-1967)

दुग्ध आपूर्ति योजनाओ को दुग्ध-चूर्ण, क्रीम उतरा दुग्ध-चूर्ण, शिशु दुग्ध आहार, पनीर और कभी-कभी घी, मक्खन तथा कैसीन जैसे दुग्ध-उपजात तैयार करने थे यह अनुमान लगाया गया था

सारणी 16—वर्तमान उत्पादन स्तर पर आधारित गाय तथा भैंस के दूध की उपलब्धि में वृद्धि*

वर्ष	बढ़ी हुयी जनसख्या† (करोड)	दुधारू पशुओ की बढ़ायी गयी सख्या (करोड)		बढ़ा हुआ वार्षिक दुग्ध उत्पादन (करोड टन)		प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध की उपलब्धि (ग्रा)		
		गाय	भैंस	गाय	भैंस	गाय	भैंस	योग
1960–61	43 8	4 55	2 19	0 787	1 075	49	67	116
1965–66	49 2	4 99	2 48	0 859	1 213	48	68	116
1970–71	55 5	5 48	2 80	0 930	1 371	46	68	114
1971–76	62 5	6 01	3 17	1 029	1 550	45	68	113

*Amble *et al*, *Indian J vet Sci*, 1965, 35, 229 †योजना आयोग द्वारा अनुमानित

सारणी 17—भारतवर्ष में 1961 में दूध का उपयोग*

(हजार टन)

प्रदेश	कुल दुग्धोत्पादन	दूध के रूप मे प्रयुक्त	दुग्ध-पदार्थों मे परिवर्तित दूध						
			दही	क्रीम	मक्खन	घी	खोवा	आइसक्रीम	अन्य
असम	168	95	9		8	42	14		
आन्ध्र प्रदेश	1,782	713	210		210	631	18		
उडीसा	370	222	37			37	18		56
उत्तर प्रदेश	4,212	2,106	211	211	295	842	421	84	42
केरल	233	110	26	†	1	95	1		
गुजरात	1,629	523	127	5	89	852	23	10	
जम्मू एव कश्मीर	115	59	16		†	39	1		
तमिलनाडु	1,038	693	101	31	73	121	16	3	
पजाब	2,485	870	124	75	248	969	149	25	25
पश्चिमी बगाल	517	269	52	5	26	47	10	5	103
बिहार	1,915	986	230		69	607	23		
मध्य प्रदेश	1,093	366	80	2	33	586	25	1	
महाराष्ट्र	1,407	940	107	23	112	155	46	11	13
मैसूर	591	207	47	3	77	237	17	3	
राजस्थान	2,524	883	252	25	51	1,136	177		
केन्द्रीय शासित राज्य	296	174	13	†	5	93	7	1	3

**Indian Statis Abstr*, 1967, 63 †500 टन से कम

कि 1971 तक हमें लगभग 30,480 टन दुग्ध-चूर्ण (पूर्ण तथा क्रीम उतरा), 9,144 टन शिशु आहार, 10,160 टन सघनित अथवा वाष्पीकृत दूध, तथा 2,540 टन पनीर की आवश्यकता होगी यदि तृतीय पचवर्षीय योजना मे प्रस्तावित सभी कारखाने खोल दिये जाते तो इन उत्पादो मे हमारा देश आत्मनिर्भर हो सकता था सारणी 20 मे भारतवर्ष में 1968 मे कार्य कर रहे कारखानो के स्थान उनकी अधिकृत क्षमता तथा उनके द्वारा दुग्ध उत्पादो का निर्माण प्रदर्शित किया गया है

देश मे विभिन्न प्रकार के दुग्ध उत्पादो के निर्माण एव वितरण के ममेकन एव नियत्रण के लिये दुग्ध उत्पाद बोर्ड की स्थापना की गयी विभिन्न दुग्ध परियोजनाओ के सचालन हेतु स्थानीय दुग्ध-समितियो का गठन किया गया है दिल्ली, मद्रास, बगलौर तथा हैदराबाद मे अधिनियमित सलाहकार समितियो का भी गठन किया गया है ऐसा प्रस्तावित किया गया है कि प्रत्येक शहरी दुग्ध-आपूर्ति योजना अधिनियमित सलाहकार समिति के नियत्रण मे कार्य करे शहर की कुल दूध की आवश्यकता को पूरा करने के लिये योजना तैयार करने तथा दूध के उत्पादन, वितरण एव उसके गुणो पर नियत्रण रखने का कार्य भी इसी को सौपा गया है प्रत्येक राज्य मे उच्च दुग्ध बोर्ड होगा जो स्थानीय दुग्ध समितियो द्वारा किये गये काम मे तालमेल करेगा

सारणी 18 – भारत में 1961 में प्रति व्यक्ति दूध का दैनिक उपभोग*

प्रदेश	दैनिक उपभोग (ग्रा)
अण्डमान एव निकोबार द्वीप समूह	65 25
असम	35 44
आन्ध्र प्रदेश	133 28
उडीसा	65 80
उत्तर प्रदेश	224 56
केरल	35 00
गुजरात	104 16
जम्मू एव कश्मीर	135 80
तमिलनाडु	70 00
त्रिपुरा	61 88
दिल्ली	64 12
पजाब	365 96
पश्चिमी वगाल	84 28
बिहार	119 56
मध्य प्रदेश	105 00
मणिपुर	22 96
महाराष्ट्र	66 36
मैसूर	85 40
राजस्थान	182 56
लक्षदीवी द्वीप समूह	7 28
हिमाचल प्रदेश	165 48

*विपणन एव निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मन्त्रालय (कृषि विभाग), नागपुर.

सारणी 19 – भारतवर्ष में 1968 में स्वचालित डेरी सयत्रो से प्रतिदिन प्राप्त होने वाले दूध का लक्ष्य एवं प्रगति*

प्रदेश	चालू योजनाओ की सख्या	प्रतिदिन के लिए निर्धारित क्षमता	प्रतिदिन का औसत उत्पादन
		(लीटर)	
आन्ध्र प्रदेश	3	55,500	49,467
उड़ीसा	1	6,000	4,621
उत्तर प्रदेश+	8	89,200	25,137
केरल	4	28,000	18,857
गुजरात	8	8,32,000	5,68,041
चडीगढ	1	20,000	अनु
जम्मू एव कश्मीर	1	10,000	2,256
तमिलनाडु	7	1,67,000	73,146
त्रिपुरा	1	5,600	3,874
दिल्ली	1	2,55,000	2,20,865
पजाब	1	65,000	35,578
पश्चिमी वगाल	1	2,00,000	1,37,412
बिहार+	3	17,000	12,623
मध्य प्रदेश	1	10,000	9,402
महाराष्ट्र	5	7,76,000	5,03,492
मैसूर	3	64,500	49,370
राजस्थान	1	20,000	4,824
हरियाणा	1	4,000	3,207
योग	51	26,24,800	17,22,172

*डेरी विकास सलाहकार, भारत सरकार, खाद्य एव कृषि मन्त्रालय (कृषि विभाग), नई दिल्ली.

+इन प्रदेशों मे क्रीमरी चल रही है अनु —अनुपलब्ध

दिल्ली राज्य (1953–55), मद्रास (1957–59), और कलकत्ता (1960–62) के शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे दूध के उत्पादन मूल्य का अनुमान लगाने के लिये कृषि साख्यिकी अनुसधान सस्थान (भारतीय कृषि अनुसधान परिपद्) द्वारा वडे पैमाने पर यादृच्छिक प्रतिदर्श सर्वेक्षण किये गये इस कार्यकाल मे दूध और उसके अवयवो के उत्पादन का मूल्य जानने तथा दुग्ध उत्पादन की अर्थ व्यवस्था अध्ययन करने की एक तकनीक विकसित की गयी दुग्ध उत्पादन का अनुमान लगाने के उद्देश्य से इस सस्थान ने कुछ प्रदेशो मे 1956–57 से 1961–62 तक यादृच्छिक प्रतिदर्श सर्वेक्षण भी किये हैं

डेरी उद्योग

भारतवर्ष मे डेरी उद्योग का तेजी से विकास हो रहा है देश मे डेरी उद्योग की अव तक हुयी प्रगति की जानकारी के लिये सार्वजनिक तथा सहकारी क्षेत्रो के तत्वावधान मे चल रहे कुछ प्रमुख फार्मो की कार्य प्रणाली का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है (WIth India—Industrial Products, pt III, 1-38)

सैनिक फार्म – सैनिक अस्पतालो तथा अंग्रेजी फौजी टुकडियो को दूध तथा दुग्ध उत्पादो की पूर्ति हेतु 1890 में इलाहाबाद मे राजकीय डेरी की स्थापना के साथ-साथ सैनिक फार्मो का श्रीगणेश हुआ अपने आय-व्यय के वार्षिक लेखे मे सतुलन रखने के लिये फार्म अर्ध-व्यावसायिक ढग से कार्य करते रहे हैं और भारतवर्ष में सुसगठित डेरी उद्योग के विकास मे इनका वहुत प्रभाव पडा है ये सैनिक डेरी फार्म फौज तथा अस्पताल एव जेल जैसे राजकीय सस्थानो के उपभोग के लिये दूध, मक्खन, क्रीम तथा घी आदि पदार्थ तैयार करते है

इस समय हमारे देश मे 35 फार्म, 3 छोटे फार्म, 5 पशु वच्चो तथा दूध न देने वाले पशुओ के फार्म, 32 फार्म भण्डार-घर तथा 11 सूखी घास जमा करने वाले गोदाम हैं सैनिक फार्मो पर गोपशुओ की कुल सख्या लगभग 20,000 है इन फार्मो से औसतन 52,737 टन दूध, 292 टन मक्खन, 28 टन क्रीम, 32 टन घी तथा

सारणी 20—भारतवर्ष में 1968 में दुग्ध-उत्पाद बनाने वाले कारखानों की स्थिति, अधिकृत क्षमता तथा उत्पादन* (टनो मे)

कारखाने का नाम तथा स्थिति	उत्पाद	अधिकृत क्षमता	वार्षिक उत्पादन
मेसर्स कैरा डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव मिल्क प्रोड्यूसर्स यूनियन लिमिटेड, आनन्द	मीठा सघनित दूध	3,000	
	शिशु दुग्ध आहार	5,000	5,405
	दुग्ध-चूर्ण	4,800	4,137
	पनीर	500	अनु
मेसर्स मेहसाना कोआपरेटिव मिल्क प्रोड्यूसर्स यूनियन लिमिटेड, मेहसाना	सम्पूर्ण दुग्ध-चूर्ण	2,400	2,373
	शिशु दुग्ध आहार	1,500	
मेसर्स सी एण्ड ई मार्टन लिमिटेड, मरहौरा (बिहार)	मीठा सघनित दूध	720	397
मेसर्स ग्लैक्सो लैबोरेटरीज, अलीगढ	शिशु दुग्ध आहार	2,500	3,740
मेसर्स हिन्दुस्तान मिल्क फूड मैन्युफैक्चरिंग क (प्रा) (हॉलिक्स), नवाह	माल्टयुक्त दुग्ध आहार	6,000	5,596
	शिशु दुग्ध आहार	228	
	दुग्ध चूर्ण	228	
मेसर्स फूड स्पेशियैलिटी लिमिटेड (नेसेल्स), मोगा (पजाब)	मीठा सघनित दूध	4,000	6,882
	शिशु दुग्ध आहार	670	829
	सम्पूर्ण दुग्ध-चूर्ण	450	
मेसर्स कैडबरी फ्राई इण्डिया लिमिटेड, बम्बई	माल्टयुक्त दुग्ध आहार	1,003	1,985
मेसर्स इण्डोडान लिमिटेड, मुजफ्फरनगर	मीठा सघनित दूध	1,080	885
मेसर्स हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, एटा (उ प्र)	मीठा सघनित दूध	1,580	745
	शिशु दुग्ध आहार	1,000	772
मेसर्स साउथ इण्डिया रिसर्च इंस्टीट्यूट, विजयवाडा	माल्टयुक्त दुग्ध आहार	144	16
मेसर्स वाइटालोन रिसर्च इंस्टीट्यूट, मद्रास	माल्टयुक्त दुग्ध आहार	315	69
मेसर्स आलवीटोन लैबोरेटरीज, मद्रास	माल्टयुक्त दुग्ध आहार	248	384
मेसर्स फूड, फैट्स एण्ड फर्टिलाइजर्स, वेस्ट-गोदावरी	माल्टयुक्त दुग्ध आहार	600	151
मेसर्स जगजीत डिस्ट्रीब्यूटिंग एण्ड एलाइड इण्डस्ट्रीज, हमीरा	माल्टयुक्त दुग्ध आहार	1,800	663
मेसर्स वायर मीकिन ब्रूअरीज मोहन नगर (उ प्र)	माल्टयुक्त दुग्ध आहार	60	अनु
अमृतसर कम्पोजिट मिल्क प्लाट. वर्का, अमृतसर (पजाव)	दुग्ध-चूर्ण	1,500	460 (67-68के लिये)
राजकोट कजर्वेशन प्रोजेक्ट, राजकोट (गुजरात)	दुग्ध-चूर्ण	600	372
योग		41,926	35,861

*डेरी विकास सलाहकार, भारत सरकार, खाद्य एव कृषि मन्त्रालय (कृषि विभाग), नई दिल्ली

टिप्पणी—लगभग 18,772 टन दुग्ध-उत्पाद तैयार करने के लिये 9 अन्य कारखानों को लाइसेंस दिया गया है अनु—अनुपलब्ध

65,481 टन चारा प्राप्त होता है ये सैनिक फार्म फौजी हेडक्वार्टर्स से सलग्न, सैनिक फार्म के निदेशक के प्रशासनिक नियत्रण मे कार्य कर रहे है

अधिकाश फार्मो पर पशुओ की हाथ से दुहाई की जाती है कई फार्मो पर एक दिन मे 2,273 किग्रा से अधिक दूध का पास्तुरीकरण करने वाले सयत्र लगाये गये है सभी फार्मो पर द्रुतशीतन (चिलिंग) सयत्र लगाने की भी व्यवस्था की जा रही है

सैनिक फार्मो मे नये भर्ती किये गये रगरूटो को डेरी के विभिन्न पहलुओ पर प्रशिक्षण भी दिया जाता है बाहरी लोगो को भी डेरी व्यवसाय सम्बन्धी विधियो की तकनीकी जानकारी करायी जाती है ये फार्म देश के पशुधन का सुधार करने तथा सैनिको को डेरी-उत्पाद प्रदान करने के अतिरिक्त सामुदायिक विकास योजनाओ को उन्नत नस्ल के साँड, तथा निजी पशु-प्रजनको को एक माह की आयु के बछडे नि शुल्क प्रदान करते है 4–6 माह की आयु वाले जितने भी बछडे बच रहते है उन्हे विभिन्न राज्यो मे उपयोग करने के लिये कृषि मन्त्रालय को सौप दिया जाता है

ऐरे मिल्क कालोनी—शहरी क्षेत्रो मे दूध के वितरण के लिये ऐरे नामक स्थान पर (अब महाराष्ट्र प्रदेश मे सम्मिलित) पशुओ के बसाने का कार्य बम्बई दुग्ध परियोजना का एक सफल प्रयोग रहा है शहर से 15,000 प्रौढ पशुओ को हटाकर तथा उनसे प्राप्त दूध का सदुपयोग करने के लिये ऐरे मिल्क कालोनी की योजना तैयार की गयी थी 1948 मे इस योजना पर कार्य आरम्भ हुआ और केवल अधिकृत पशुओ को ही इसमे लिया गया इस प्रकार पशुपालको को अपने बचे हुये पशुओ से छुटकारा लेना पडा पशुपालको तथा परिचारको को कालोनी मे रहने के लिये स्थान दिया गया इस बस्ती के बसाने मे एक शर्त यह रखी गयी कि यहाँ उत्पादित सारा दूध केवल सरकार के हाथ बेचा जाय तथा यह दूध कालोनी की दुग्धशाला मे सरकारी बाल्टियो मे भर कर दिन मे दो बार पहुँचाया जाय हिमाक परीक्षण के आधार पर यदि दूध मे पानी की मिलावट का पता चल जाता है तो दूधिया पर काफी भारी जुर्माना लगाया जाता है इस प्रकार दिये गये भैस के दूध मे औसतन 7.6% वसा और 9.3% वसा-विहीन ठोस पदार्थ होते है दूध की लागत पर लगभग 10% लाभ की छूट दी जाती है जिसमे से उन्हे ऋण लिये हुये धन पर ब्याज तथा आयकर देना पडता है हर छ महीने बाद लागत के ढाँचे की समीक्षा की जाती है ऐसा अनुमान है कि एक अच्छा उत्पादक प्रति मास एक भैस से पर्याप्त लाभ कमा सकता है

कालोनी से क्रय किया गया तथा आनन्द (गुजरात) से प्राप्त दूध केन्द्रीय दुग्धशाला मे ससाधित करके बोतलो मे भरा जाता है 3% वसा तथा 9% वसा-विहीन ठोस पदार्थ युक्त दूध भी ऐरे मिल्क कालोनी की दुग्धशाला मे तैयार किया जाता है बडे बम्बई क्षेत्र मे स्थित लगभग 1,000 वितरण केन्द्रो द्वारा बम्बई के लगभग 15 लाख उपभोक्ताओ को यह दूध वितरित किया जाता है यहाँ नित्यप्रति लगभग 85,846 किग्रा भैस का दूध तथा 85,846 किग्रा टोण्ड दूध बेचा जाता है

ऐरे दुग्ध बस्ती मे एक पशुपालन अनुभाग है जिसमे पशु चिकित्सा, कृत्रिम वीर्यसेचन, दूध न देने वाली भैसो को रखने, पशु बच्चो के पालन-पोषण एव सतति-परीक्षण कार्य की सुविधाये उपलब्ध है

आमूल – कैरा जिला सहकारी दुग्ध उत्पादक संघ लिमिटेड, आनन्द (गुजरात) को आमूल (आनन्द मिल्क यूनियन लिमिटेड) नाम से भी जाना जाता है आमूल अनेक उत्पादो का व्यापारिक नाम है जो किसी तरह के मध्यस्थो के विना सामूहिक कार्य का अत्युत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है 1948 मे इस संघ का शुभारम्भ हुआ जिसमे दो गाँव दुग्ध-उत्पादन समितियो के कुछ सदस्य थे और इसके अन्तर्गत वम्वई शहर की दुग्ध योजना के लिये नित्य 227 ली दूध का पास्तुरीकरण किया जाता था धीरे-धीरे इस संघ ने वर्तमान स्थान वना लिया जिसमे अव 421 समितियाँ तथा 85,000 सदस्य है 1964–65 मे इस संघ ने 60 640 टन दूध एकत्रित किया और इसके कुछ अंश का मक्खन, क्रीम, घी, दुग्ध-चूर्ण, शिशु आहार, कैसीन तथा पनीर वना इन पदार्थो की विक्री से 6 3 करोड रुपये की आय हुयी

यह समिति एक गाँव के 300 से 400 किसानो से दूध लेती है अलग-अलग कृषको से प्राप्त दूध का नमूना लेकर उसमे वसा की प्रतिशतता ज्ञात की जाती है और उसी के अनुसार इन कृषको को दूध के दाम दिये जाते हैं सभी गाँवो के दुग्ध उत्पादको को एक जैसा भुगतान किया जाता है प्रत्येक केन्द्र से प्राप्त दूध का डेरी पर अच्छे तथा खट्टे दूध मे वर्गीकरण किया जाता है अच्छे दूध को अलग तोलकर वसा तथा वसाविहीन ठोस पदार्थ की प्रतिशत मात्रा जानने के लिये उसकी जाँच की जाती है खट्टे दूध को अलग ससाधित करके उससे कैसीन तथा घी वनाया जाता है दूध मे चिकनाई तथा वसाविहीन ठोस पदार्थो की न्यूनतम मात्रा क्रमश 6 5% तथा 9% होनी चाहिये किसानो को अपने दूध की विक्री से नित्य ही लगभग 2–3 रु प्राप्त हो जाते है इसके अतिरिक्त वर्ष भर मे वे जितना दूध संघ के हाथ वेचते है उसी के अनुसार उन्हे भत्ता भी दिया जाता है प्रत्येक सहकारी समिति अपने लाभाश मे से पशुओ को आराम पहुँचाने तथा भवन आदि वनवाने के लिये कृषको को पैसा भी देती है कैरा दुग्ध संघ से प्राप्त धन से दुग्ध एकत्रीकरण केन्द्रो की स्थापना की जाती है दुग्ध-संयत्रो की स्थापना के लिये यूनाइटेड नेशन्स इण्टर-नेशनल चिल्ड्रन्स इमर्जेन्सी फड (यूनीसेफ) की भी सहायता ली गयी हे, और इसके वदले यह दुग्ध संघ वच्चो को नि शुल्क दूध प्रदान करता है जिसमे प्रति वर्ष लगभग 12 लाख रुपये का खर्च वैठता है

1955 मे कैरा दुग्ध संघ ने एक नया कारखाना खोलकर प्रति वर्ष और अधिक दूध की खपत करने के लिये अनेक अन्य ग्राम्य दुग्ध उत्पादक समितियाँ वनायी है 1958 में मीठा संघनित दूध वनाने के लिये एक डेरी कारखाना खोला गया 1960 मे 2,540 टन शिशु-आहार तथा पनीर वनाने के लिये इस कारखाने का विकास किया गया और केन्द्रीय खाद्य औद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर की तकनीकी सहायता से शिशु-आहार प्रायोजना चालू की गयी भारतवर्ष मे पहली वार कैरा दुग्ध संघ ने दुग्ध चूर्ण, संघनित दूध तथा शिशु-आहार तैयार किया है

1963–64 की अवधि मे कुल 6 03 करोड रुपये की आय हुयी जिसमे से 2 7 करोड रुपये का दूध वेचा गया तथा 3 3 करोड रुपये दुग्ध उत्पादो (मक्खन, दुग्ध-चूर्ण, संघनित दूध, कैसीन, शिशु-आहार) की विक्री से प्राप्त हुये 1967–68 मे दूध तथा दुग्ध उत्पादो की विक्री से 13 38 करोड रुपये की आय हुयी

डेरी के कार्य मे रुचि रखने वाली सस्थाओ तथा अन्य दुग्ध परियोजनाओ को तकनीकी राय देने के अतिरिक्त यह संघ देश की विभिन्न दुग्ध परियोजनाओ के लिये लोगो को प्रशिक्षण देने का भी कार्य करता है भारत सरकार, गुजरात तथा अन्य राज्य सरकारो के तकनीकी सलाहकार के रूप मे भी यह संघ कार्य करता है

आमूल का कार्यक्षेत्र अव और भी अधिक वढ गया है भुखमरी से छुटकारा दिलाने के कार्यक्रम के अन्तर्गत 'आक्सफोर्ड अकाल मुक्ति योजना' की सहायता से आनन्द से 7 5 किमी दूर कजारी नामक गाँव मे एक पशु-आहार सयत्र स्थापित किया गया है इस नवीन खाद्य-मिश्रण सयत्र मे तैयार किया गया पशु-आहार 'आमूलदान' के नाम से वाजार मे वेचा जाता है

दूध उत्पादको के वीच आमूल ने कृत्रिम वीर्यसेचन कार्य को काफी लोकप्रिय वनाया है पतला किया हुआ सरक्षित वीर्य आनन्द की दुग्धशाला से दुग्ध एकत्रित करने वाले ट्रको के द्वारा सभी ग्राम्य कृत्रिम वीर्यसेचन उपकेन्द्रो पर भेजा जाता है यह विधि काफी सस्ती, प्रभावी एव लोकप्रिय सिद्ध हुयी है इसमे पूरी-पूरी सेवा नि शुल्क की जाती है सहकारी समितियो के पशुओ की नि शुल्क चिकित्सा के लिये 6 चल-चिकित्सालय भी कार्य कर रहे है

1949–50 मे वगाल मे हेरिंघाटा पशु अनुसधान केन्द्र अथवा केन्द्रीय पशुधन अनुसधान एव प्रजनन केन्द्र की स्थापना हुयी इसका उद्देश्य उन्नत नस्ल की गायो, भैंसो, वकरियो, सुअरो तथा मुर्गियो के वच्चो का वैज्ञानिक ढग से पालन-पोषण करके उनके गुण निश्चित होने तथा सतति के वातावरण के अनुकूल वनाने के वाद वैज्ञानिक ढग से प्रजनन करा कर पशुओ को वितरित करना है इस केन्द्र में पशुओ की देखभाल तथा अन्य सवन्धित विषयो पर अनुसधान करने की भी व्यवस्था है हेरिंघाटा दुग्ध कालोनी न होकर पशु उपनिवेश माना जा सकता है इस केन्द्र पर वर्ष-भर हरा तथा सरक्षित चारा काफी मात्रा मे उपलब्ध रहता है यहा कलकत्ता से वहुत वडी सख्या में गोजातीय पशु भेजे गये है. यहाँ पर रखे गये पशुओं को चरागाहो पर चरने के लिये नही भेजा जाता वरन उन्हे पशुशाला में वाँधकर ही खिलाया जाता है

प्रारम्भ मे जिस यूथ मे 200 हरियाना गाये, 40 मुर्रा भैंसें और 3 साँड थे, उसमे अव 1,800 गायें, 250 भैंसे तथा काफी सख्या में प्रजनक साँड हो गये हैं गहन चुनिदा प्रजनन द्वारा हरियाना नस्ल का एक यूथ तैयार किया गया है जिससे प्रति गाय दैनिक दूध का औसत 3 25 किग्रा से वढकर 4 54 किग्रा हो गया है ग्रामीण क्षेत्रो के स्थानीय पशुओं के सुधार के लिये युवा साँडो का उपयोग किया जाता है इस फार्म पर जर्सी नस्ल के साँडो के वीर्य से हरियाना नस्ल की वर्णसकर वछियाँ तैयार की गयी है गिर, लाल सिन्धी, साहीवाल, थारपारकर तथा हरियाना जैसी लोकप्रिय नस्लो की शरीरक्रियात्मक आनुवशिकी का अध्ययन भी यहाँ किया जा चुका है इस फार्म पर कुक्कुटो, वकरियो तथा सुअरो और चारा एव घास अनुसधान की अलग-अलग इकाइयाँ है यहाँ हरा चारा देने वाली पछेती ज्वार की किस्म तैयार की गयी है जिससे नवम्वर तथा दिसम्वर के वीच भी जव हरे चारे का काफी अभाव रहता है, चारे की पूर्ति की जा सकती है

1949–50 मे प्रायोगिक डेरी पर छोटी-सी पास्तुरीकरण इकाई की स्थापना से कलकत्ता शहर की अर्ध-व्यावसायिक दुग्ध आपूर्ति योजना की नींव पडी यहाँ हेरिंघाटा के निकटवर्ती ग्रामीण

दुग्ध उत्पादकों से दूध एकत्रित किया जाता है प्रारम्भ में इस डेरी में 2 041 ली दूध की नित्य खपत होती थी जो अब बढकर 15,000 ली हो गयी है अब भी कलकत्ता की दूध की माँग अधिकतर शहर में स्थित अनेक खटालों द्वारा उत्पादित दूध से ही पूरी होती है

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में वृहत् कलकत्ता दुग्ध-आपूर्ति योजना को तीन चरणों में चलाने का निश्चय किया गया पहले चरण में 1,272 दुधारू पशु, उनके बच्चों तथा पशु-पालकों को रहने के लिये भवन आदि की व्यवस्था करने का निश्चय किया गया दूसरे चरण में कल्याणी पर ऐसी ही तीन इकाइयाँ स्थापित करने तथा 283 3 हेक्टर का एक चरागाह बनाने की योजना तैयार की गयी तीसरे चरण में 12 अन्य दुग्ध-बस्तियाँ बसाने, कल्याणी पर 929 हेक्टर का एक चरागाह खोलने, सूखे पशुओं के लिये दो पशुशाला बनाने तथा कलकत्ता में नित्य 2,00,000 ली दूध का पास्तुरीकरण करके बोतलों में भरने के लिये एक केन्द्रीय दुग्धशाला खोलने और दुग्ध वितरण हेतु गुमटियाँ स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया

हेरिघाटा केन्द्र में पहले लगभग 607 5 हेक्टर कृष्य भूमि थी जो अब बढाकर 1,212 हेक्टर कर दी गयी है 1,85,000 किग्रा हरे चारे की दैनिक आवश्यकता की पूर्ति अब हेरिघाटा तथा कल्याणी स्थित दोनों फार्मों से होगी

दिल्ली दुग्ध योजना – नवम्बर 1, 1959 को भारत सरकार के खाद्य एवं कृषि मन्त्रालय (कृषि विभाग) ने इस प्रायोजना का श्रीगणेश किया इसके दो प्रमुख उद्देश्य थे एक तो यह कि राजधानी में रहने वाले लोगों को उचित मूल्य पर अच्छा दूध मिले, और दूसरे कि ग्रामीण क्षेत्रों के दुग्ध उत्पादकों को लगातार धनोपार्जक बाजार मिल जाने से अधिकतम दूध का उत्पादन हो सके यह योजना बिना लाभ-हानि के आधार पर चलायी जा रही है और आजकल इसमें 1,94,000 ली दूध का नित्य आदान-प्रदान होता है इसकी दैनिक क्षमता 2,61,300 ली है

दिल्ली की यह दुग्ध योजना, बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता में चलायी गयी ऐसी ही योजनाओं से इस बात में भिन्न है कि इसमें पशु बस्तियों से दूध इकट्ठा न करके ग्रामीण क्षेत्रों से किया जाता है दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा तथा पंजाब के चारों ओर ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित दुग्ध एकत्रीकरण एवं द्रुतशीतन केन्द्रों के माध्यम से यह अपनी दूध की माँग की पूर्ति करती है ऐसे प्रस्तावित 20 केन्द्रों में से केवल 17 को खोलने की मान्यता मिली है, जिनका कार्य पूरा होने की विभिन्न अवस्थाओं में है प्रत्येक केन्द्र में दूध की जाँच करने, तौलने, द्रुतशीतन करने तथा भण्डारण हेतु आधुनिकतम डेरी उपकरण उपलब्ध है और ये इस प्रकार बनाये गये हैं कि इनमें नित्य 15,000 ली दूध सभाला जा सकता है रासायनिक, जीवाणु सम्बन्धी तथा अन्य परीक्षणों द्वारा दूध की विशुद्धता तथा ताजगी की जाँच की जाती है जाडों में दूध की आवश्यक मात्रा प्राप्त करने में कोई कठिनायी नहीं पडती, किन्तु गर्मियों में दूध की इतनी मात्रा प्राप्त करना सरल नहीं होता जितना भी दूध स्वीकृत कर लिया जाता है उसे तौल कर शीघ्रता से 3° तक द्रुतशीतन करके 36 घंटे तक अच्छी अवस्था में भण्डारित रखा जा सकता है क्रय किया गया दूध अधिकतर भैंसों का ही होता है किन्तु बीकानेर से गाय का दूध भी प्राप्त होता है

बाजार भाव पर ही दूध क्रय किया जाता है यह विशेषतया उसमें उपस्थित वसा तथा वसा-विहीन ठोस पदार्थों की प्रतिशतता पर निर्भर करता है फिर इसे दुग्ध एकत्रीकरण केन्द्रों तथा द्रुत-शीतन केन्द्रों पर द्रुतशीतित किया जाता है तत्पश्चात् 7,500 ली धारिता वाली रोधक चल-टंकियों में भरकर इसे दिल्ली स्थित केन्द्रीय डेरी पर ले जाया जाता है जब तक बीकानेर में द्रुत-शीतन केन्द्र की स्थापना नहीं होती तब तक यहाँ की गाय का दूध हिमीकृत अवस्था में रेल द्वारा यहाँ लाया जाता है दूध की कमी को पूरा करने के लिये दिसम्बर 1968 से मेहसाना सहकारी संघ ने नित्य 12 000 ली दूध देना प्रारम्भ कर दिया है

दिल्ली की केन्द्रीय दुग्धशाला में दूध के समाधन एवं भण्डारण तथा मक्खन, घी, आइसक्रीम, सुरस एवं जीवाणुरहित दूध, क्रीम, मखनिया दुग्ध-चूर्ण और सघनित दूध जैसे दुग्ध-उत्पाद बनाने के लिये आधुनिकतम उपकरण प्राप्त हैं इस प्रकार यहाँ आवश्यकता से अधिक दूध का वर्ष-भर उपयोग होता रहता है केन्द्रीय दुग्ध-शाला में नित्य लगभग 5 लाख बोतल दूध तथा दुग्ध-उत्पाद तैयार किये जाते हैं जिन्हें 900 से अधिक विभागीय दुग्ध भण्डारों एवं 10 दुग्ध स्टालों तथा अन्य निजी व्यावसायिक केन्द्रों द्वारा जनता को बेच दिया जाता है प्रारम्भ में 1959–60 में 36 लाख ली भैंस का दूध तथा 44 8 हजार ली गाय का दूध आता था 1967–68 में इसकी अपेक्षा अधिक दूध प्राप्त हुआ आजकल 5 452 करोड ली भैंस का दूध तथा 33 लाख ली गाय का दूध प्राप्त होता है इससे इस योजना द्वारा नित्य 2,60,000 ली दूध का वितरण होता है और इस प्रकार राजधानी की लगभग 35% जनता को दूध मिलता है

दुग्ध-उत्पाद

देश में बनने वाले दुग्ध-उत्पाद विभिन्न प्रकार के होते हैं और ये विभिन्न प्रदेशों के लोगों की रुचि एवं स्वाद के अनुसार तैयार किये जाते हैं पनीर, सघनित दूध तथा दुग्ध-चूर्ण जैसे डेरी उत्पाद भारतवर्ष में बहुत ही सीमित मात्रा में बनाये जाते हैं और उनके उत्पादन आँकडे उपलब्ध नहीं हैं इसके विपरीत दही, मक्खन, घी, खोवा, आइसक्रीम आदि व्यावसायिक स्तर पर तैयार किये जाते हैं (इनके रासायनिक संघटन एवं मानक स्तर के लिये देखें Dairy Industry—WIth India–Industrial Products, pt III, 24-38) 1961 की पशु गणना पर आधारित भारतवर्ष में (प्रादेशिक स्तर पर) कुछ दुग्ध-जन्य पदार्थों का अनुमानित वार्षिक उत्पादन सारणी 21 में दिया गया है

लैक्टिक अम्ल का जामन डालकर दूध को खट्टा करके दही तैयार किया जाता है इसे या तो ऐसे ही खाया जाता है या फिर मक्खन बनाने में उपयोग किया जाता है खाने के लिये गाय तथा भैंस के दूध से दही तैयार किया जाता है भारतवर्ष में उत्पादित कुल दूध (15,68,000 टन) का 8% दही में परिवर्तित कर लिया जाता है

भारतवर्ष में क्रीम का उत्पादन कुछ उन्हीं शहरी केन्द्रों तक सीमित है जहाँ मक्खन की अधिक माँग है इसे अपकेन्द्रण द्वारा दूध से अलग किया जाता है भारतवर्ष में अलीगढ, आनन्द तथा पटना क्रीम व्यवसाय के प्रमुख केन्द्र हैं भारतवर्ष में उत्पादित

सारणी 21—भारतवर्ष में दुग्ध-उत्पादों का अनुमानित वार्षिक उत्पादन*

(टनों में)

प्रदेश	दही†	क्रीम	मक्खन	घी	खोवा‡	आइसक्रीम	छेना§
अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह	7			1	.		
असम	24,173		284	1,422	1,422	1,185	4,266
आन्ध्र प्रदेश	2,41,485	416	8,655	22,095	4,806	2,600	
उड़ीसा	-2,458		.	3,279	3,93		14,754
उत्तर प्रदेश	1,40,655	26,373	17 230	35,164	87,910	49,230	8,791
केरल	4,666		1,704	2,113			
गुजरात	73,693	546	3,824	31,915	3,945	7,588	
जम्मू एवं कश्मीर	15,111		15	2,642	189		
तमिलनाडु	1,23,102	9,854	8,884	9,084	5,151	5,509	
त्रिपुरा	1,516			81			1,010
दिल्ली	3,590	36	87	905	453	785	
पंजाब	1,60,282	12,148	23,620	80,984	50,615	42,180	
पश्चिमी बंगाल	67 122	755	4,195	4,531	3,356	6,712	38,595
बिहार	2,73,244	2,574	7,920	11,880	14,256	20,790	7,128
मणिपुर	356		23	98	155		
मध्य प्रदेश	74,335	246	2,507	32,709	6,873	1,309	
महाराष्ट्र	96,796	3,611	7,610	9,576	18,778	8,642	1,204
मैसूर	35,327	257	4,673	10,269	3,851	3,145	
राजस्थान	1,78,324	1,981	3,170	53,457	34,674		
लक्षदीवी, मिनिकोय एवं अमीनदीवी द्वीप समूह	6			1			
हिमाचल प्रदेश	1,779		65	4,340	393		

*1961 की पशु गणना पर आधारित, विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एवं कृषि मंत्रालय (कृषि विभाग), नागपुर

†लैक्टिक एसिड के जामन द्वारा दूध को खट्टा करके तैयार किया गया ‡गर्म करके वाष्पीकरण द्वारा तैयार किया गया दुग्ध पदार्थ

§अम्ल स्कंदित देशी दुग्ध-उत्पाद

कुल दूध में से 58,000 टन दूध क्रीम बनाने के काम आ जाता है इससे निकला हुआ दूध, सघनित दूध, दुग्ध-चूर्ण, बटर मिल्क तथा पनीर बनाने में प्रयुक्त होता है भैंस के दूध से 10%, गाय के दूध में 6% तथा मिश्रित दूध से 7.5% क्रीम प्राप्त होती है

मक्खन, दुग्ध-वसा, बटर मिल्क तथा पानी का मिश्रण होता है इसमें विशेष गंध तथा फैलने का गुण होता है 1961 की पशु गणना के आधार पर भारतवर्ष में प्रतिवर्ष 94,400 टन मक्खन के उत्पादन का अनुमान लगाया गया है इसमें से 90% से अधिक देशी मक्खन होता है जो दही से तैयार किया जाता है तथा शेष क्रीमरी बटर कहलाता है पंजाब, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, बिहार तथा गुजरात मक्खन बनाने वाले प्रमुख राज्य हैं आनन्द, अलीगढ तथा अन्य शहरी केन्द्रों पर स्थित कुछ डेरियों द्वारा क्रीमरीबटर तैयार किया जाता है देशी मक्खन ऐसे ही खाने अथवा घी बनाने तथा रसोईघरों के काम आता है जबकि क्रीमरी बटर का मेज पर ही अधिक उपयोग होता है

घी स्वच्छ किया हुआ मक्खन होता है जो मक्खन में से पानी निकालने के बाद प्राप्त होता है डेरी उत्पाद के रूप में दूध के बाद इसी का अधिक महत्व है और इसे काफी दिनों तक रखा जा सकता है गर्म जलवायु वाले समस्त देशों में इसे मक्खन से अधिक पसंद किया जाता है भारतवर्ष में दूध का दही जमाकर, उससे मक्खन निकालकर तथा उसमें से पानी को अलग करने के लिये उसे गर्म करके घी बनाने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है घी बनाने के लिये क्रीमरी बटर की अपेक्षा देशी मक्खन अधिक पसन्द किया जाता है क्योंकि इसमें प्राप्त घी में अच्छी गंध आती है और यह देखने में भी अच्छा लगता है 1961 की पशु गणना के आधार पर यह अनुमान है कि भारतवर्ष में प्रतिवर्ष 3,16,500 टन घी तैयार होता होगा, जिसका मूल्य लगभग 402 करोड़ रुपये है उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार घी बनाने वाले प्रमुख राज्य हैं भारतवर्ष में उत्पादित कुल घी का लगभग 79% रसोई घरों में, 19% मिठाइयाँ बनाने तथा 2% अन्य कार्यों में प्रयुक्त होता है

खोवा—यह दूध के पानी को उड़ा करके तैयार किया जाता है इस कार्य के लिये प्रायः भैंस का दूध अधिक पसन्द किया जाता है खोवा या तो ऐसे ही उपभोग में लाया जाता है अथवा मिठाइयाँ

बनाने के काम आता है उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर, बरेली, आगरा, मथुरा, सहारनपुर तथा वाराणसी, बिहार में पटना तथा गया, पंजाब में अम्बाला तथा फीरोजपुर और हरियाणा में रोहतक, खोवा बनाने के प्रमुख केन्द्र हैं भारतवर्ष में 2,40,700 टन दूध खोवा बनाने में प्रयुक्त होता है जो कुल दूध का 0 6% है

आइसक्रीम – यह हिमीकृत एवं सुगंधयुक्त उत्पाद है जिसमें दूध प्रमुख अवयव के रूप में रहता है कुल्फी तथा मलाई की बरफ आइसक्रीम के देशी उत्पाद हैं देश में उत्पादित कुल दूध का 0 5% अथवा 1,49,700 टन दूध आइसक्रीम उत्पाद बनाने में प्रयुक्त होता है मानक विधियों द्वारा बड़े पैमाने पर आइसक्रीम का उत्पाद बड़े शहरों में होता है (IS 2802–1964)

सारणी 22 – 1960–61 में भारतवर्ष में दूध तथा दुग्धोत्पादों की मात्रा एवं मूल्य*

	उत्पाद (हजार टन)	औसत मूल्य (रु /टन)	उत्पाद का मूल्य (करोड रु)
दूध के रूप में**	11,792	514 57	606 78
घी	374	5,774 92	215 87
मक्खन	85	4,833 53	41 51
लस्सी	7,907	157 05	124 18

*Revised and conventional estimates of net products from agriculture, 1960-61—Brochure on Revised Series of National Product for 1960 61 to 1964-65 (Central Statistical Organisation, Department of Statistics, Govt of India), 1967

**घी, मक्खन तथा लस्सी के अतिरिक्त अन्य दुग्धजन्य पदार्थों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला दूध इसमें सम्मिलित है

सारणी 23 – 1960–61 से 1975–76 तक की अवधि में प्रति व्यक्ति दूध की अनुमानित उपलब्धि*

	1960–61	1965–66	1970–71	1975–76
जनसंख्या (करोड)	43 8	49 2	55 5	62 6
दूध का उपभोग करने वाले लोगों की संख्या (करोड)	37 6	42 3	47 7	53 7
283 ग्रा प्रतिदिन के हिसाब से दूध की आवश्यकता (करोड टन)	3 8	4 3	4 8	5 4
गाय तथा भैंसों की संख्या पर आधारित दूध की उपलब्धि (करोड टन)	2 2	2 5	3 2	4 1
योजना के अंत में उपलब्धता (ग्रा)	144	164	198	215

*Report of the Working Group on Fourth Five Year Plan for Animal Husbandry, Ministry of Food & Agriculture (Department of Agriculture), New Delhi

भारतवर्ष में उत्पादित कुल दूध का लगभग 0 4% अथवा 75,750 टन दूध छेना (दूध को फाड़कर बनाया जाने वाला पदार्थ), लस्सी (वसा-रहित बटर मिल्क) आदि जैसे अन्य दुग्ध उत्पाद बनाने के काम आता है 1960–61 के अनुमान के अनुसार दूध तथा दुग्ध उत्पादों की मात्रा तथा उनके मूल्य सारणी 22 में दिये हुये हैं

1960–61 से 1975–76 तक जितनी जनसंख्या होगी तथा दूध की जो अनुमानित उपलब्धि होगी उसके आधार पर प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धि सारणी 23 में दी हुयी है

मांस

मांस की प्राप्ति अधिकतर स्तनियों, विशेषतया शाकाहारी तथा कुछ सर्वाहारी पशुओं से होती है मांसाहारी पशुओं का मांस कभी-कभी ही मनुष्य के उपभोग में आता है गाय-भैंस जाति के पशु, भेड़-बकरियाँ तथा सुअर मांस उत्पादक पशु हैं

यद्यपि भारतवर्ष में मांस की खपत दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है, फिर भी यह यहाँ के लोगों का मुख्य भोजन नहीं है 1961 की जनगणना के अनुसार देश की 67% जनसंख्या मांसाहारी थी इसमें से अधिकांश लोग धार्मिक विरोध के कारण गाय का मांस खाना पसंद नहीं करते तथा कुछ लोग सुअर का मांस नहीं खाते शहर के रहने वाले लोग ही मांस अधिक खाते हैं भारतवर्ष में भेड़ों तथा बकरियों से ही अधिकांश मांस प्राप्त होता है 1958–59 में देश में 1,58,854 टन भेड़ के मांस का तथा 3,19,496 टन बकरी के मांस का उत्पादन हुआ 1960–61 में भारतवर्ष में कुल 1 56,000 टन गोमांस तथा भैंस का मांस उत्पादित हुआ जिसका मूल्य 13 73 करोड रुपये था कुछ प्रदेशों में आंशिक तथा कुछ में पूर्णतया गोवध पर रोक लग जाने से देश में गोमांस तथा भैंस के मांस के उत्पादन में लगातार कमी हुयी है भेड़-बकरियों के मांस में से बकरी के मांस की माँग अधिक है

मांसोत्पादन का सम्बन्ध पशुधन की कुल संख्या, वध्य पशुओं की संख्या तथा विभिन्न पशुओं से प्राप्त होने वाली मांस की समाधित मात्रा से है वध किये जाने वाले पशुओं की संख्या के बारे में उपयुक्त आँकड़े प्राप्त न होने से भारतवर्ष में वार्षिक मांसोत्पादन का सही-सही अनुमान लगाना कठिन है

1958–59 में विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय, नागपुर द्वारा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार भारतवर्ष में वार्षिक अनुमानित मांसोत्पादन 5,11,996 टन था देश में उत्पादित मांस की कुल मात्रा में से बकरी का मांस 44 4, भेड़ आदि का (मटन) 21 5, भैंस का 17 8, गोमांस 11 7 तथा सुअर का मांस (पोर्क) 4 6% था 1958–59 की अवधि में भारतवर्ष में (राज्यस्तर पर) गाय तथा भैंस के मांस का अनुमानित उत्पादन सारणी 24 में अंकित है

विशेषकर बड़े शहरों में मांस की पूर्ति केन्द्रीय स्थानों से प्राप्त मांस से की जाती है जहाँ काफी अधिक मात्रा में तैयार मांस बिकता है ऐसे केन्द्रीय स्थान सार्वजनिक कसाईखाने अथवा पशुवध-गृह हैं जहाँ पशुओं को काटने के पहले उनका निरीक्षण करके बाद में शव परीक्षण भी किया जाता है फिर मांस को साफ करके बाजार के लिये तैयार किया जाता है मांस-उच्छिष्ट निकाल कर अलग फेंक दिया जाता है अथवा किसी अन्य काम में उपयोग कर लिया जाता है पशुवध-गृहों से निकलने वाले अखाद्य

मे मजबूत तथा लचीला हो, अच्छी गध का हो तथा पकाने पर न तो इसमें सकुचन हो और न छीजे तथा 100° पर सुखाने पर भार मे 70 से 75% से अधिक कमी न हो, हल्की गुलाबी-लाल अस्थि मज्जा मे युक्त हड्डियाँ भी रहे, इनका भार मास के भार का 20% हो तथा समुचित अनुपात मे वसा भी रहे जब मास सडने लगता है तो वह पीला, गीला, मुलायम तथा लसदार हो जाता है उसमे से बुरी गध आने लगती है और धीरे-धीरे वह लाल पड जाता है हड्डियो से अलग किये गये विभिन्न पशुओ से प्राप्त मास की विशेषतायें सारणी 25 मे दी गयी हैं

मास के निरीक्षण और प्रमाणित करने मे वध के पूर्व और शव-परीक्षण के परिणाम, वध-गृहो, मास बाजारो, मास की दुकानो तथा अन्य मास उद्योगो जैसे तात निर्माण और उसकी सफाई आदि परिवीक्षण तथा उनके प्रबन्ध पर नियत्रण, पशुओ के वध करने की विधि, मास का सग्रहण, भडारण तथा सरक्षण, स्वास्थ्यकर वध-गृहो का निर्माण, मास का परिवहन तथा विपणन आदि भी सम्मिलित हैं पशु के स्वस्थ तथा खाद्य भागो पर न मिटने वाली स्याही से खाने के लिये स्वीकृत अथवा अस्वीकृत की मुहर भी होनी चाहिये (IS 1982–1962, 2537–1963)

अनुमान है कि भारतवर्ष मे प्रति व्यक्ति मास की वार्षिक खपत 1 6 किग्रा है मास के उत्पादन तथा जनसख्या के अनुसार यह मात्रा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे बदलती रहती है मास का निर्यात करने वाले समस्त यूरोपीय देशो मे मास की खपत अधिक है पश्चिमी तथा केन्द्रीय यूरोप मे भी सामान्यत मास का अधिक उपभोग होता है यूरुगुए, अर्जेण्टाइना, न्यूजीलैंड तथा ऑस्ट्रेलिया जैसे अधिक मास उत्पादित करने वाले देशो मे प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति औसतन 100 किग्रा से अधिक मात्रा मे मास की खपत होती है अमेरिका, इगलैंड, कनाडा तथा पश्चिमी यूरोप के अनेक अन्य देशो मे यह औसत 50–75 किग्रा है दक्षिणी-पूर्वी यूरोपीय देशो मे, कम मात्रा मे मास उत्पन्न होने के कारण मास की खपत काफी कम है यूनान मे प्रति व्यक्ति मास की वार्षिक खपत का औसत 14 किग्रा है तथा चेकोस्लोवाकिया और यूगोस्लाविया के लिये यह औसत 25–30 किग्रा है एशिया के देशो मे मास की खपत कम बतायी जाती है किन्तु, इसके लिये कोई आँकडे उपलब्ध नही हैं

भारतवर्ष में मास का आयात महत्वपूर्ण नही है तथा इसका निर्यात तो न के बराबर है देश मे जितना भी मास उत्पन्न होता है उसका उपभोग यही हो जाता है ससाधन, सरक्षण, भण्डारण तथा परिवहन के समुचित साधनो का अभाव होने के कारण भारतवर्ष मे मास उद्योग का यथेष्ट विकास नही हो पाया है

1960–61 मे भारतवर्ष मे मास तथा मास उत्पादो का उत्पादन तथा मूल्य सारणी 26 मे अकित है

मास की माँग तथा पूर्ति मे काफी बडा अन्तर है जिसे पूरा करने के लिये भेड और बकरी के मास का उत्पादन बढाना होगा खाद्य एव कृषि मन्त्रालय (कृषि विभाग), नई दिल्ली के पशु-पालन विभाग के हेतु चतुर्थ पचवर्षीय योजना के कार्यकारी समूह ने अनुमान लगाया है कि देश मे मास की आवश्यकता 453 4 करोड टन है किन्तु इसकी अनुमानित उपलब्धि केवल 45 27 करोड टन है

पशु-उपोत्पाद

पशुओ के वध किये जाने का मूल उद्देश्य है मनुष्य के लिये मास उपलब्ध कराना मास प्रदान करने के अतिरिक्त पशु के कई अन्य अग भी काफी उपयोगी सिद्ध हो सकते है यदि उन्हे सावधानीपूर्वक एकत्र किया जाय और उनका सरक्षण हो पशुवध गृहो से प्राप्त उपजातो को दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता

सारणी 26 – 1960–61 की अवधि में भारतवर्ष में मास तथा मास-उत्पादो की मात्रा एव मूल्य*

	उत्पाद (हजार टन)	मूल्य (करोड रु)
गोमास	62	6 99
भैंस का मास	94	6 64
बकरी का मास	234	51 80
भेड का मास	114	28 13
सुअर का मास	31	5 74
अन्थियाँ	37	8 37
सिर तथा पैर	87	2 62
वसा (चर्बी)		7 00
अन्य मास-उत्पाद		2 72
योग	659	120 01

*Revised estimates of net products from agriculture 1960-61—Brochure on Revised Series of National Product for 1960-61 to 1964-65 (Central Statistical Organisation, Department of Statistics, Govt of India), 1967

सारणी 27 – पशुवध-गृहो से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थो तथा उपोत्पादो का विवरण*

पशुवध-गृह का अपशिष्ट अथवा उपजात		उपलब्ध मात्रा (टनो मे)	नष्ट होने वाली प्रतिशत मात्रा	कुल मूल्य (लाख रु)
अतडी		44,698	90–100	35 0
श्वासनली		3,965	60–70	1 6
मूत्राशय		1,148 7	10	
रक्त		45,825	64	78 61
अस्थियाँ				
गोपशु	2,489	35,875		
भैंस	3,644			
भेड-बकरी	28,693			
सुअर	1,049			
मास अपशेष		27,705	60	35 0
सीग		4,180		
खुर		6,792	66	3 30

*Survey and Utilization of Agricultural and Industrial By-products and Wastes (Planning Commission, New Delhi), 1963

है खाद्य और अखाद्य खाद्य पदार्थों के अन्तर्गत चर्बी, सुअर की चर्बी, आँतें, ग्रन्थियाँ, पूछ के टुकडे तथा रक्त आते है खाल, ऊन, बाल, हड्डियाँ, मास अपशिष्ट, सीग तथा खुर अखाद्य पदार्थ है ये पशु-उपजात मोमबत्ती, ओलियोमार्गरीन (कृत्रिम वसा), खोल, ताँत, भेषजीय उत्पाद, पशु एव कुक्कुट आहार तथा खाद जैसे विभिन्न पदार्थों के बनाने के काम आते है

देश मे पशुवध-गृहो से इन पशु-उपजातो की वार्षिक उपलब्धि, अपशिष्ट पदार्थों की प्रतिशत मात्रा तथा इन उपजातो एव अपशिष्ट पदार्थों का कुल मूल्य सारणी 27 मे दिया गया है विभिन्न उपोत्पादो मे खाल, बाल, शूक, अस्थि, सीग, खुर और रक्त महत्वपूर्ण है

चर्म तथा खाल – गाय, भैस, ऊँट, घोडे जैसे बडे पशुओ के शरीर का बाह्य आवरण चर्म कहलाता है तथा भेड-बकरी और बछडे जैसे छोटे पशुओ की त्वचा को खाल कहते है कच्चे रूप मे चर्म तथा खाल का बहुत ही सीमित उपयोग है ये पदार्थ विशेषकर चमडा बनाने के काम आते हैं (खाल तथा चमडे आदि के औद्योगिक उपयोग के लिये देखे, With India—Industrial Products, pt IV, 225 & pt V, 207)

भारतवर्ष मे गोपशुओ तथा भैंसो से ही मुख्य रूप से चर्म प्राप्त होता है गाय, बैल तथा बछडो का चर्म भैंस के चर्म से भिन्न होता है और उनके अलग-अलग व्यापारिक नाम होते है ये गोचर्म, वृषभ चर्म, ढोर चर्म, बछडा चर्म तथा ईस्ट इण्डिया चर्म आदि नामो से जाने जाते है भैंस की खाल को प्राय भैंस चर्म कहते है विदेशी व्यापार मे बडे तथा परिपक्व पशुओ की खाल चर्म कहलाती है तथा अविकसित अथवा अर्ध-परिपक्व पशुओ की खाल को शिशु-पशु-चर्म के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है यूरोपीय तथा अमेरिकी चर्म की तुलना मे कम भार होने के कारण भारतीय बैलो की खाल मुख्यत शिशु-पशु-चर्म कहलाती है अन्य देशो मे खाल पशुवध-गृहो से उपजात के रूप मे प्राप्त होती है किन्तु भारतवर्ष मे अपनी मृत्यु से मरने वाले पशुओ की ही खाल उतारी जाती है

अनुमान है कि पशुओ की औसत मृत्यु दर 8–10% अथवा प्रतिवर्ष लगभग 20 लाख पशु है समय से मरने की सूचना न मिल सकने तथा खाल का समुचित उपचार न हो सकने के कारण इनमे से अधिकाश पशुओ का शव नष्ट हो जाता है गोपशुओं, भैंसो तथा अन्य बडे पशुओ की खाले तथा लगभग 60% हड्डियाँ तो एकत्रित कर ली जाती है किन्तु मास, चर्बी, सीग, खुर जैसे शेष पशु-उपजात नष्ट हो जाते है उनके शवो को गीध तथा कुत्ते खा जाते है अथवा मरने के स्थान पर ही शव नष्ट हो जाते है यदि शवो का समुचित उपयोग किया जाय तो उनसे प्रतिवर्ष देश को 40 करोड रुपये की आय हो सकती है मृत पशुओ के शरीर से प्राप्त होने वाले बहुमूल्य पशु उपजातो का समुचित उपयोग न हो सकने के कारण देश को प्रतिवर्ष लगभग 23 19 करोड रुपये की हानि होती है, जिसमे से केवल काम मे न लायी गयी खालो से ही 4 25 करोड रुपये की हानि होती है गिरे हुये पशुओ की खाल बहुधा इतनी अधिक खराब हो जाती है कि उसे अच्छे चमडे मे बदला ही नही जा सकता अनुमान है कि इससे लगभग 3 4 करोड रुपये की वार्षिक हानि होती होगी

बहुत से देशो मे कुल पशु सख्या की तुलना मे मास उत्पादन के लिये वध किये जाने वाले पशुओ की सख्या या उत्पादित खालो का अनुपात काफी अच्छा है इटली तथा अमेरिका मे यह अनुपात क्रमश 44 6 तथा 44 4 है अफ्रीका मे यह अनुपात कुल पशु सख्या का 9 2% ही है भारतवर्ष मे वध किये गये पशुओ से सबसे कम उत्पादन होता है और यह कुल सख्या का केवल 5 7% है

ससार के चर्म उत्पादन मे भारत का योगदान 15 5% है अधिकाश भारतीय खाले कम भार वाली होती है, अत विदेशी बाजारो मे इनकी बहुत माँग है भारतवर्ष का 1960–61 मे खाल तथा चर्म के उत्पादन एव मूल्य का विवरण सारणी 28 मे प्रस्तुत है

1956 की पशु-गणना पर आधारित भारतवर्ष मे शिशु-पशु-चर्म तथा भैंसो की खालो का वार्षिक उत्पादन क्रमश 1 57 करोड तथा 52 8 लाख नग था जिनका मूल्य 13 करोड रुपये से अधिक आँका गया था कुल मृत गाय-भैंसो मे से लगभग एक-चौथाई पशुओ की खाले एकत्रित की जाती है इस तथ्य के अनुसार 1961 मे अनुमानत 2 32 करोड खाले एकत्रित की गयी जिनका मूल्य 27 3 करोड रुपये था 1961 मे भारतवर्ष मे (राज्य स्तर पर) गाय-भैंसा से प्राप्त होने वाली खालो का अनुमानित उत्पादन सारणी 29 मे अकित है

देश मे 50% से अधिक शिशु-खालो का उत्पादन उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिमी बगाल और आन्ध्र प्रदेश मे होता है उत्तर प्रदेश मे सबसे अधिक पशु होने के नाते भारतवर्ष के कुल खाल उत्पादन का 1/8 यही से प्राप्त होता है इसके पश्चात् मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार तथा पश्चिमी बगाल का स्थान है भैंसो की खाले भी सबसे अधिक सख्या मे उत्तर प्रदेश से ही मिलती है

सामान्यत पशु-बच्चो तथा भैंसो से प्राप्त कच्चे चमडे के निर्यात की मनाही है किन्तु इन्हे पका कर तथा रँग कर विदेशो को भेजा जाता है और व्यावसायिक रूप मे इन्हे 'पूर्वी भारत के रँगे हुये चमडे' के नाम से जाना जाता है 1964–65 की अवधि मे लगभग 8 करोड रुपये के मूल्य के रगे हुये चमडो तथा खालो का निर्यात किया गया

कच्चे चमडे का मूल्य उसकी माँग तथा पूर्ति की दशा के अतिरिक्त उसकी गुणता, आकार, प्रकार, भार, तैयारी, उत्पादन का मौसम, उत्पादन क्षेत्र तथा विदेशी बाजार भाव आदि कारको पर निर्भर करता है.

वर्तमान समय मे देहातो मे मरे हुये पशुओ की खाल उतारने का अधिकार प्राचीन पद्धति के अनुसार स्थानीय चमारो को ही प्राप्त है ये लोग मरे हुये पशुओ को प्राय काफी देर मे उठाते है और देशी औजारो से खाल उतारते है इस प्रकार उतारी गयी खाल प्राय घटिया किस्म की होती है

कुछ राज्य सरकारो तथा खादी एव ग्राम उद्योग आयोग जैसे गैर सरकारी सगठनो द्वारा मृत पशुओ के समुचित उपयोग को बढावा देने के कदम उठाये जा रहे है खादी एव ग्राम उद्योग आयोग, कोरा, ग्राम उद्योग केन्द्र, बोरिवली, बम्बई मे एक प्रशिक्षण केन्द्र भी चल रहा है तथा इसने देश के विभिन्न भागो मे खाल उतारने के अनेक केन्द्र भी स्थापित किये है 1961–62 की अवधि मे भारतवर्ष मे 5 खाल उतारने की गहन इकाइयाँ, 226 खाल उतारने के केन्द्र तथा 12 हड्डी पीसने की इकाइयाँ थी जिनसे लगभग 15 लाख रुपये का माल तैयार हुआ अस्थि-चूर्ण तथा मास-चूर्ण बनाने और खाल उतारने और ससाधित करने के उन्नत तरीको को अपनाने के लिये खाद्य एव कृषि मन्त्रालय की गोसदन योजना मे सुसज्जित चमडालयो की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है अब तक ग्यारह गोसदनो मे से ऐसे चमडालयो की स्थापना की जा चुकी है अधिकाश अन्य गोसदनो मे केवल खाल उतारने की ही सुविधायें उपलब्ध है खाद्य एव कृषि सगठन तथा नीदरलैंड सरकार की तकनीकी

एव आर्थिक सहायता से वख्शी-का-तालाव, लखनऊ मे एक आदर्श प्रशिक्षण एव उत्पादन केन्द्र खोला गया है

समुचित ढग से खाल उतारने मे पहले अगले एक पैर के घुटने पर चीरा लगाकर सीधे अधरवक्ष की ओर बढकर दूसरे पैर के घुटने तक सीधी रेखा मे खाल काटते जाते है और घुटनो से नीचे खुरो तक खाल अलग कर लेते है इसी प्रकार घुटनो तथा पिछले पैरो की खाल भी अलग कर लेते है तीसरा चीरा मलाशय अथवा पूछ के पास से प्रारम्भ करके तल पेट पर होता हुआ गर्दन तक लगाते हैं तत्पश्चात शव के किनारो की खाल निकालते हैं आधी खाल उतारा हुआ पशु का शव ऊपर उठाया जाता है और पूछ तथा सीगो के पास की खाल उतारते है अत मे पीठ की खाल उतारी जाती है खाल उतारने के तत्काल बाद उसे खोलकर फैला देते हैं तथा ठडा करके सफाई की जाती है

ताजी उतारी गयी खाल को यदि ठीक से सरक्षित नहीं किया जाता तो उसमे सडन लगने का भय रहता है हमारे यहाँ गीला नमक लगाना, सूखा नमक रगडना तथा खाल को हवा मे सुखाना, चमडा पकाने की ये तीन प्रमुख विधियाँ अपनायी जाती हैं भारतवर्ष मे उत्पादित लगभग 75% खाले धूप मे सुखायी जाती है वध किये गये पशुओ से प्राप्त खालो मे से 80% गीले नमक द्वारा तथा शेष 20% हवा मे सुखाकर तैयार की जाती हैं मृत पशुओ की खाले, जिसके अन्तर्गत देश में उत्पादित 75% से अधिक खाले आती है, प्राय जमीन पर फैलाकर ही सुखायी जाती है खालो को तैयार करने की यह विधि त्रुटिपूर्ण है खालो को इस प्रकार न सुखाकर चोखटे पर तानकर रखना चाहिये खाल को हवा मे सुखाने से नमी 60 से घटकर 20–30% रह जाती है नमक लगाकर तैयार की गयी खाल मे नमी 60% से कम होकर 40% रह जाती है और साथ ही जीवाणुओ की क्रिया भी काफी हद तक कम हो जाती है शुष्क नमक से तैयार की जाने वाली खालो मे पहले गीला नमक लगाया जाता है, उनके ढेर लगाये जाते हैं और फिर धीरे-धीरे इनकी नमी कम करते हुये उन्हे सुखाया जाता हे जैसा कि उत्तर प्रदेश के गोसदनो मे प्रचलित है, नमक, सोडा तथा नैफ्थैलीन के प्रयोग से तैयार की गयी खाले काफी अच्छी होती हैं

चमडे तथा खालो मे पाये जाने वाले सामान्य दोष यान्त्रिक तथा विकृतिजन्य है यान्त्रिक दोष अधिकाशत पशुओ के शरीर पर नम्बर डालने, तथा गोदने, चिकित्सा न किये गये घावो पर दाग पड जाने, कन्धे की त्वचा पर लगातार जुये की रगड लगने, कटने अथवा खरोच लग जाने और कुपोषण अथवा वृद्धावस्था के कारण आ जाते हैं विकृतिजन्य दोष बीमारी तथा परजीवी कीटो द्वारा उत्पन्न होते हैं पशु-प्लेग की बीमारी से मरे पशुओ की खाल से तैयार किया गया चमडा कमजोर होता है इसी प्रकार बीमार पशु की खाल से अच्छा चमडा प्राप्त नही होता ऐथ्रैक्स अथवा विषहरी से मरे पशु की खाल नहीं उतरवानी चाहिये दाद, खाज तथा उकोता प्रमुख चर्मरोग है वार्बल मक्खी (हाइपोडर्मा लिनिएटम) त्वचा के अधिकाश भाग को नष्ट कर देती हे यह मक्खी पशु के घुटनो के नीचे अण्डे देती है जिनसे छोटे-छोटे कीट निकलकर त्वचा मे छेद करके शारीरिक तन्तुओ मे घूमते हुये पीठ की त्वचा मे पहुँच जाते है अपने विकास काल मे ये लारवा पशु की त्वचा मे छेद करके सास लेते है, जिससे खाल से अच्छा चमडा नही बन पाता अधिक चिकने चमडे को लारडार भृग (गुबरैला), तिलचट्टे आदि कीट क्षति पहुँचाते हैं

पिछले तीन अथवा चार दशको मे शव-उपयोग की ओर ध्यान गया है और अपनी मौत मरे तथा वध किये हुये, दोनो प्रकार के पशुओ से प्राप्त उपजातो से अधिकतम लाभ उठाने का यत्न हो रहा है एक औसत कद के भारतीय गोपशु के शव से निम्नलिखित विविध पशु-उपोत्पाद प्राप्त होते हैं खाल, 11 3 किग्रा, मास, 90 7 किग्रा, हड्डी, 18 1 किग्रा, चर्बी, 2 3 किग्रा,

सारणी 28 – 1960–61 में भारतवर्ष में खालो तथा चर्म का उत्पादन एव मूल्य*

प्रकार	उत्पादन (करोड खाले)	औसत मूल्य (रु /खाल)	उत्पाद का मूल्य (करोड रुपये)
गोपशुओ की खाले	1 72	11 81	20 31
भैसो की खाले	0 59	11 86	7 00
योग	2 31		27 31

*Revised estimates of net products from agriculture, 1960-61—Brochure on Revised Series of National Product for 1960-61 to 1964-65 (Central Statistical Organisation, Department of Statistics, Govt of India), 1967

सारणी 29 – 1961 में भारतवर्ष में गोपशुओ तथा भैंसो से प्राप्त खालो का अनुमानित उत्पादन*

(हजार खाले)

प्रदेश	गोपशु	भैसे
अण्डमान एव निकोबार द्वीप समूह	1	1
असम	680	57
आध्र प्रदेश	1,287	890
उडीसा	1,110	135
उत्तर प्रदेश	2,190	1,427
केरल	335	43
गुजरात एव महाराष्ट्र	1,421	294
जम्मू एव कश्मीर	153	34
तमिलनाडु	1,159	327
त्रिपुरा	48	5
दिल्ली	7	29
पश्चिमी बगाल	1,326	133
पजाब	757	553
पाडिचेरी	8	1
विहार	1,656	551
मणिपुर	32	13
मध्य प्रदेश	2,135	482
मैसूर	993	257
राजस्थान	1,314	417
लक्षदीवी, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप समूह	अत्यल्प	अत्यल्प
हिमाचल प्रदेश	152	26
योग	17,364	5,932

*विपणन एव निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मत्रालय (कृषि विभाग), नागपुर

सीग, खुर तथा आँतें आदि, 59 0 किग्रा मास, हड्डियाँ, चर्बी, सीग, खुर तथा पूछ के बालो से प्रति शव औसतन 10–40 रु मिल जाते हैं

पश्चिमी देशो मे शव का उपयोग सरकार की देखभाल मे किया जाता हे और इससे वहुत ही उपयोगी उत्पाद तैयार किये जाते हैं भारतवर्ष में अभी थोडे ही दिनो से शव उपयोग की वैज्ञानिक विधियो की ओर ध्यान दिया जाने लगा है देश की परिस्थितियों मे इन्हे लागू करने के लिये निम्नलिखित तरीके अपनाये जाने के प्रयास हो चुके हैं बडे-बडे कडाहो मे उबालना, बन्द वर्तन में उबालकर भाप को उसके सम्पर्क मे लाना तथा एक हत्थे द्वारा (जो वर्तन में लगा रहता हे) उसे खूब चलाना और अत मे इस वर्तन को भाप से गर्म करके उसमें रखे पदार्थ को नमी-रहित करना उत्तर प्रदेश मे प्रचलित शव को सुखाने की आधुनिकतम विधि मे भाप वर्तन मे रखे पदार्थ के प्रत्यक्ष सम्पर्क मे नही आती यह विधि वहुत ही प्रभावशाली सिद्ध हुयी है क्योकि इससे पदार्थ की नमी इतनी कम हो जाती हे कि उसे अनिश्चित काल तक अच्छी अवस्था मे सचित रखा जा सकता हे

हमारे देश मे पिछले दस वर्षों से अस्थि-पाचक यन्त्रो का उपयोग बढता जा रहा है हड्डी का चूरा वनाने के लिये ईंधन से चलने वाले, परोक्ष रूप से भाप की ऊष्मा से चलने वाले और अपरोक्ष रूप से भाप की ऊष्मा से चलने वाले विभिन्न प्रकार के अस्थि-पाचक यन्त्रो का उपयोग होता है गर्म करने पर हड्डियो की चर्बी पिघलती है और वर्तन की तली की ओर वह जाती हे इससे जिलेटिन भी पिघलने लगती हे तथा सघनित जल मे विलयित हो जाती है एक पृथक्कारी यन्त्र की सहायता से चर्बी को अलग कर लेते हैं तथा सरेस को गाढा होकर नीचे वैठने दिया जाता हैं चर्बी तथा जिलेटिन से विहीन हड्डियाँ अब अस्थिपाचक यन्त्र मे वच रहती हैं इन उत्पादो की किस्म प्रयुक्त हड्डियो के गुणो पर निर्भर करती है केवल ताजी हड्डियो से ही उत्तम वसा तथा सरेस प्राप्त होता है सरेस-जल चिपकाने के काम मे लाया जा सकता है तथा इसे सुखाने एव चूर्ण वनाने के वाद 30% अस्थि-चूर्ण मे मिलाकर पशुओ को खिलाया भी जा सकता है निस्सारित हड्डियो को हवा मे सुखाकर पीस लिया जाता है और इस प्रकार इन्हे पशु-आहार, मुर्गी-आहार अथवा उर्वरक के रूप मे प्रयुक्त होने लायक वना लेते हैं

चर्बी (वसा) – वध किये गये पशुओ की चर्बी खाने तथा मरे हुये पशुओ की चर्बी, सावुन, मोमवत्ती, ग्रीज आदि पदार्थ वनाने के काम आती है 1958–59 मे भारतवर्ष (राज्य स्तर पर) गाय-भैंसो से प्राप्त होने वाली चर्बी का अनुमानित उत्पादन सारणी 30 मे दिया गया है इस पदार्थ को निर्धारित नही किया गया

हड्डियाँ – पशुओ से प्राप्त होने वाली हड्डियाँ प्रमुख पशु-उत्पाद हैं भारतवर्ष में अधिकाश हड्डियाँ अपनी मौत से मरे हुये पशुओ से प्राप्त होती हैं हड्डियो का वार्षिक उत्पादन लगभग 3 7 लाख टन है (सारणी 31) 1959–60 मे एकत्रित की गयी हड्डियो का अनुमानित मूल्य 14 लाख रुपये था

1961 मे भारतवर्ष मे (राज्य-स्तर पर) गोपशुओ तथा भैंसो से प्राप्त होने वाली हड्डियो का अनुमानित वार्षिक उत्पादन सारणी 32 मे अकित है (देखिये, अस्थियाँ, **भारत की सम्पदा**, प्रथम खण्ड, पृष्ठ 52–55)

हड्डियो का सर्वाधिक उत्पादन (15 7%) उत्तर प्रदेश मे होता है इसके वाद मध्य प्रदेश, 11 8%, आन्ध्र प्रदेश, 10 3%, राजस्थान, 9%, विहार, 8 9%, पजाव, 7 9% तथा शेष हड्डियाँ अन्य प्रदेशो से प्राप्त होती हैं अनुमान किया जाता हे कि उपलब्ध हड्डियो की 1/3 से कुछ ही अधिक मात्रा एकत्र हो पाती हे

भारतवर्ष मे लगभग 100 हड्डी पीसने वाली चक्कियाँ तथा कई अस्थि-पाचक इकाइयाँ हैं इनमे से कुछ निर्यात करने हेतु अस्थि-चूर्ण, अस्थि-कण तथा अस्थि-स्नायु तैयार करने के लिये हड्डियो को पीसती हैं और अन्य, विशेषकर दक्षिण भारत की चक्कियाँ, अन्तर्देशीय माँग की पूर्ति हेतु अस्थि-चूर्ण तैयार करती हैं देश के अनेक भागो मे वही मिलने वाली हड्डियो को अस्थि-चूर्ण

सारणी 30 – 1958–59 में भारतवर्ष में गोपशुओ तथा भैंसो से प्राप्त होने वाली चर्बी का अनुमानित उत्पादन*

(टनो मे)

प्रदेश	गोपशु	भैंसे
असम	184 2	23 6
आन्ध्र प्रदेश	475 8	558 2
उडीसा	274 0	68 1
उत्तर प्रदेश	609 1	2,305 7
केरल	82 2	7 1
जम्मू एव कश्मीर	39 9	14 1
तमिलनाडु	667 5	207 9
दिल्ली	4 1	116 8
पश्चिमी वगाल	260 3	119 3
पजाव	337 3	388 8
विहार	4,73 1	230 7
मध्य प्रदेश	726 2	281 2
महाराष्ट्र†	1,339 5	993 1
मैसूर	410 0	184 1
राजस्थान	383 3	317 7
हिमाचल प्रदेश	39 8	12 8
अन्य‡	32 5	20 8
योग	6,850 8	5,850 0

* विपणन एव निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मत्रालय (कृषि विभाग), नागपुर

† भूतपूर्व वम्वई प्रदेश से सम्वधित आँकडे

‡ इसमे अण्डमान एव निकोवार द्वीप समूह, लक्षदीवी, मिनिकोय, अमीनदीवी द्वीप समूह, मणिपुर, तथा त्रिपुरा सम्मिलित है

सारणी 31 – भारतवर्ष में कच्ची हड्डियो की वार्षिक उपलब्धि*

(टनो मे)

	मृत पशु	वधित पशु	योग
गोपशु	2,53,538	9,830	2,63,368
भैंसे	95,730	7,000	1,02,730
घोडे तथा टट्टू	1,363		1,363
ऊँट	1,767		1,767
योग	3,52,398	16,830	3,69,228

*Building from Below Essays on India's Cattle Economy (सर्व सेवा सघ, कृषि गोसेवा समिति, नई दिल्ली), 1964

मे परिवर्तित करके या तो उर्वरक के रूप मे प्रयुक्त करते है अथवा पशु तथा कुक्कुट आहार मे खनिज पूर्ति के लिये इसे मिलाते है चक्कियो के मालिक अथवा अस्थि व्यवसायी हड्डियो को अपने आदमियो से एकत्र कराते हैं अक्तूबर से जून तक (वर्षा ऋतु समाप्त होने के बाद) हड्डियाँ इकट्ठा करने का काम बहुत तेजी से किया जाता है अस्थि चक्कियों, अस्थि-पाचक इकाइयो तथा ग्राम्य उद्योगो मे क्रमश 1,37,518, 132 तथा 356 टन हड्डियो का उपयोग होता है

कच्ची हड्डियो तथा अस्थि-चूर्ण के निर्यात की अनुमति नही है सरेस तथा जिलेटिन बनाने के लिये केवल पिसी हुयी हड्डियो, अस्थि-कणो तथा अस्थि-स्नायु का ही निर्यात किया जाता है 1964–65 मे लगभग 3 करोड रुपये का उपर्युक्त माल निर्यात किया गया था देश मे हड्डियो का उपयोग अस्थि-चूर्ण के रूप मे खाद के लिये तथा पशुओ और कुक्कुटो को खिलाने के निमित्त होता है

सारणी 32 – 1961 में भारतवर्ष में गाय-भैसो से प्राप्त हड्डियो का अनुमानित वार्षिक उत्पादन*

(टनों मे)

प्रदेश	गोपशु	भैस
असम	9,156	970
आन्ध्र प्रदेश	22,973	19,223
उडीसा	15,077	2,192
उत्तर प्रदेश	40,660	23,631
केरल	4,153	738
गुजरात	9,262	5,030
जम्मू एव कश्मीर	2,762	729
तमिलनाडु	18,003	6,435
दिल्ली	169	618
पजाब	17,176	15,048
पश्चिमी बगाल	18,251	2,393
बिहार	26,089	10,455
मध्य प्रदेश	38,058	10,437
महाराष्ट्र	21,944	5,408
मैसूर	15,819	4,958
राजस्थान	26,898	9,877
हिमाचल प्रदेश	3,092	638
अन्य†	1,034	212
योग	2,90,576	1,18,992

*विपणन एव निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मत्रालय (कृषि विभाग), नागपुर †इसमें अण्डमान एव निकोबार, लक्षदीवी, मिनिकोय एव अमीनदीवी द्वीप समूह, मणिपुर तथा त्रिपुरा प्रदेश सम्मिलित है

सारणी 33 – विभिन्न प्रकार के अस्थि-उत्पादो के गुण*

गुण	ताजी अस्थियाँ	जलायी हुयी अस्थियाँ	तैयार किया गया अस्थि-चूर्ण	सुपरफास्फेट (रासायनिक उर्वरक)
N	3	शून्य	2 4	शून्य
P_2O_5	20	36	27 4	17 (16 जल मे विलेय)
सिट्रिक अम्ल मे विलेयता			23 8	1

*Building from Below, Essays on India's Cattle Economy (सर्व सेवा सघ, कृषि गोसेवा समिति, नई दिल्ली), 1964

व्यावसायिक दृष्टि से हड्डियो को दो भागो मे वर्गीकृत किया जा सकता है ताजी तथा धूप मे सुखायी गयी ताजी हड्डियो मे पिघली हुयी चर्बी, सरेस तथा जिलेटिन जैसे कार्बनिक पदार्थ अधिक रहते है धूप मे सुखायी गयी हड्डियो मे कैल्सियम तथा फास्फेट जैसे अकार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा मे होते हैं, जो फास्फेटयुक्त खाद के प्रमुख स्रोत है

ताजी कटी हुयी हड्डियो को ऑक्सलेट निष्कर्षक मे उपचारित करके अशुद्ध अवस्था मे पिघली हुयी पशु-चर्बी प्राप्त की जाती है साबुन तथा कपडा उद्योग मे काम मे लाने के निमित्त इसे और परिष्कृत करके उत्तम चर्बी बना ली जाती है

सरेस तथा जिलेटिन – सरेस, जिलेटिन की अशुद्ध अवस्था है जिसे गर्म पानी तथा भाप द्वारा ग्रीज-रहित हड्डियो से प्राप्त किया जाता है कागज, वस्त्र तथा काष्ठ उद्योगो मे तथा रेगमाल बनाने मे इसका बहुतायत से उपयोग होता है अपनी विशुद्ध अवस्था मे जिलेटिन का उपयोग अधिकतर भोजन मे होता है ग्रीज-रहित सफेद हड्डियो को अम्ल द्वारा उपचारित करके खनिज पदार्थो को विलयित करके जिलेटिन निकाला जाता है ऐसा करने से ओसीन नामक पदार्थ शेष रह जाता है सरेस निकालने के बाद बचा हुआ पदार्थ अस्थि-चूर्ण अथवा सुपरफॉस्फेट बनाने के काम आता है

हड्डियो से सरेस तथा जिलेटिन बनाने की प्रक्रिया मे डाइ-कैल्सियम फॉस्फेट प्राप्त होता है उर्वरक के रूप मे तथा दत-मजन एव पेस्ट बनाने मे इसका उपयोग होता है, जो उत्तम कोटि का होता है और भेषजीय स्तर के अनुकूल होता है उससे कैल्सियम की टिकियाँ बनायी जाती है

वर्तमान काल मे देश मे उत्तम श्रेणी की जिलेटिन की जितनी भी आवश्यकता पडती है उसका आयात करना पडता है राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पूना द्वारा हड्डियो तथा कच्ची खालो से बडे स्तर पर सरेस एव जिलेटिन तैयार करने की एक सफल योजना बनायी गयी जिससे सूखी खालो के भार के अनुसार सरेस तथा जिलेटिन का औसत उत्पादन क्रमश 25 तथा 28% रहा इस प्रकार आयातित गुणता की जिलेटिन प्राप्त होती है जिलेटिन बनाने के इस प्रक्रम का पेटेण्ट लिया जा चुका है (Indian Pat , No 45583, 1951, 49033, 1953)

सरेस मुख्यत मास की डिब्बाबन्दी तथा टैनिग उद्योग के वृथा उत्पादो जैसे कि मास के टुकडे, हड्डी, खाल की कतरन, कान, थूथन, ओठ तथा पूछ से तैयार किया जाता है जो सरेस जिलेटिन तैयार करने के उपयुक्त नही होता उसे दियासलाई, मोटरगाडी, कागज तथा कम्बल बनाने के कारखानो मे, अलमारी बनाने, लकडी के काम, गलीचा निर्माण तथा बनावटी चमडा बनाने के काम मे लाया जाता है खालो की कतरने चमडे के बोर्ड बनाने के काम आती है

हमारे देश मे सरेस बनाने के नौ बडे-बडे कारखाने है जिनकी प्रतिवर्ष 2,880 टन सरेस तैयार करने की क्षमता है. 1961 मे इन कारखानो द्वारा कुल मिलाकर 1,854 टन सरेस तैयार हुआ कुछ कारखानो को उच्च श्रेणी के जिलेटिन तथा ओसीन बनाने की अनुमति भी प्रदान की जा चुकी है देश मे

खाने योग्य भेषजीय तथा फोटोग्राफिक जिलेटिन की बहुत ही सीमित मात्रा में आवश्यकता है, अत इनके निर्यात बढाने के अधिकाधिक प्रयास किये जा रहे हैं (Glue and Gelatin—With India—Industrial Products, pt IV, 141-49)

अस्थि-चूर्ण – हड्डियो का चूरा बनाने वाली अधिकाश चक्कियाँ निर्यात के लिये अस्थि-चूरा तथा गीज़ तैयार करती हैं किन्तु हड्डियो का चूरा बनाते समय उपजात के रूप मे थोडा-सा अस्थि-चूर्ण भी प्राप्त हो जाता है जिसे उर्वरक के रूप मे काम मे लाया जाता है उर्वरक के रूप में अस्थि-चूर्ण का महत्व इस तथ्य पर निर्भर करता है कि वह कितना अधिक महीन पिसा हुआ है

अस्थि-पाचक यन्त्र मे भाप के दाब से हड्डियो को पकाने के परिणामस्वरूप फॉस्फेटयुक्त अस्थि-चूर्ण प्राप्त होता है पाचन की प्रक्रिया मे सरेस तथा पिघली हुयी चर्बी अलग कर ली जाती है इस पाचन से फॉस्फेट के साद्रण मे तथा अन्तिम उत्पाद की सिट्रिक अम्ल विलेयता बढाने मे सहायता मिलती है

भाप दाब के अन्तर्गत कार्य करने वाले अस्थि-पाचक यन्त्रो से परोक्ष रूप से प्राप्त अस्थि-चूर्ण पशुओ को खिलाने के योग्य नही होता क्योंकि इसमे कुछ अशुद्धियाँ रहती हैं

पशुओ को दिये जाने वाले पौष्टिक मिश्रण के रूप मे भी अस्थि-चूर्ण का उपयोग होता है इसका सघटन इस प्रकार होता है प्रोटीन, 22 6, अपरिष्कृत रेशा, 1 98, कैल्सियम, 25, तथा फॉस्फोरस, 22 6%

केरल, तमिलनाडु, मैसूर, उडीसा, पश्चिमी बगाल तथा असम मे उर्वरक के रूप मे तथा मुर्गियो एव सुअरो को खिलाने मे अस्थि-चूर्ण का उपयोग बढ रहा है दक्षिण भारत में बने-बनाये उर्वरक मिश्रणो मे अस्थि-चूर्ण का प्रयोग अत्यन्त प्रचलित है जिससे दक्षिण भारत के अनेक कारखाने सभी हड्डियो का अस्थि-चूर्ण ही तैयार करते हैं कृषि कार्यो मे इसके प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिये केन्द्रीय तथा राज्य सरकारे इन कारखानो को आर्थिक सहायता भी प्रदान करती हैं

अस्थि कोयला – वायु की अनुपस्थिति मे विशेष प्रकार के रिटॉर्ट मे हड्डियो के शुष्क आसवन से अस्थि कोयला तैयार किया जाता है इस प्रकार बचे हुये कोयले को तोडकर उसका श्रेणीकरण किया जाता है चीनी साफ करने वाले कारखानो मे अस्थि-चूर्ण उपयोगी पदार्थ है आसवन करते समय 3–5% अस्थि तेल अथवा डिपिल तेल तथा 8% अमोनिया भी प्राप्त होते हैं प्रथम पदार्थ नाखून पर पालिश करने के काम आता है और बचा हुआ कोयला जूतो पर पालिश करने के काम मे लाया जाता है

विभिन्न प्रकार के अस्थि-उत्पादो की विशेषतायें सारणी 33 मे दी गयी हैं

सारणी 34 – 1958–59 में भारतवर्ष में गोपशुओ तथा भैंसो से प्राप्त होने वाले सींगो तथा खुरो का अनुमानित उत्पादन*

प्रदेश	सींग		खुर	
	गोपशु	भैंसें	गोपशु	भैंसे
असम	501 5	70 9	376 1	59 1
आन्ध्र प्रदेश	1,605 1	1,391 0	1,070 0	1,043 3
उडीसा	810 6	141 7	608 0	118 0
उत्तर प्रदेश	2,610 6	2,412 1	1,740 4	1,809 1
केरल	282 5	59 6	211 9	49 7
जम्मू और कश्मीर	132 9	42 4	99 7	35 3
तमिलनाडु	1,425 3	471 9	950 2	353 9
दिल्ली	13 7	61 4	9 1	46 0
पजाब	1,011 7	864 0	674 5	648 0
पश्चिमी बगाल	1,756 1	204 1	1,170 7	153 1
बिहार	1,347 8	697 9	1,010 9	581 6
मध्य प्रदेश	1,775 1	591 1	1,331 4	492 6
महाराष्ट्र†	2,539 0	893 2	1,269 5	669 9
मैसूर	1,256 3	412 6	837 6	309 4
राजस्थान	1,642 8	651 2	1,095 2	488 5
हिमाचल प्रदेश	132 8	35 0	99 6	29 2
अन्य‡	57 2	24 9	42 8	20 7
योग	18,931 0	9,025 0	12,597 6	6,907 4

*विपणन एव निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मत्रालय (कृषि विभाग), नागपुर †ये आँकडे भूतपूर्व बम्बई प्रदेश से सम्बन्धित है.

‡इसमे अण्डमान एवं निकोबार, लक्षदीवी, मिनिकोय एव अमीनदीवी द्वीप समूह, मणिपुर तथा त्रिपुरा प्रदेश सम्मिलित हैं

सारणी 35 – 1958–59 में भारतवर्ष में गोपशुओ तथा भैंसो से प्राप्त ग्रन्थियो का अनुमानित उत्पादन*

(टनो मे)

प्रदेश	गोपशु	भैंसे
असम	62 5	
आन्ध्र प्रदेश	179 2	102 1
उडीसा	57 0	2 1
उत्तर प्रदेश		2,473 2
केरल	177 8	11 8
तमिलनाडु	268 1	29 3
दिल्ली	.	142 1
पश्चिमी बगाल	608 0	61 0
बिहार	126 8	89 5
मध्य प्रदेश	206 4	77.8
महाराष्ट्र†	681 6	357 2
मैसूर	92 1	29 2
राजस्थान		88 1
अन्य‡	28 6	25 3
योग	2,488 1	3,488 7

*विपणन एव निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मन्त्रालय (कृषि विभाग). नागपुर

†ये ऑकडे भूतपूर्व बम्बई प्रदेश से सम्बन्धित हैं

‡इसमे अण्डमान एव निकोबार, लक्षदीवी, मिनिकोय एव अमीनदीवी द्वीप समूह, मणिपुर तथा त्रिपुरा प्रदेश सम्मिलित है

सींग तथा खुर – मृत पशुओं से प्राप्त पशु-उत्पादों में सींग तथा खुरों का तीसरा स्थान है गोपशुओं, भैंसों तथा भेडों के लगभग 63 5% सींग जिनका मूल्य 65 लाख रुपये है तथा गाय, भैंस, भेड, बकरी, घोडे तथा सुअरों के 66% खुर जिनका मूल्य 33 लाख रुपये है प्रति वर्ष नष्ट हो जाते हैं 1958–59 में गोपशुओं तथा भैंसों से क्रमश 28,000 तथा 20,000 टन सींगों तथा खुरों का उत्पादन बताया जाता है (सारणी 34) 1960–61 में 4 15 करोड रुपये की हड्डियाँ, सींग तथा खुर एकत्र किये गये 1964–65 में उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होने के लिये 16 लाख रुपये के सींगों तथा खुरों का निर्यात किया गया इंगलैंड इन पदार्थों का प्रमुख ग्राहक है जहाँ कुल भारतीय निर्यात का 46% माल खरीदा जाता है इसके बाद पश्चिमी जर्मनी तथा अमेरिका का स्थान है

नाइट्रोजन की मात्रा (14%) अधिक होने के कारण भारतवर्ष में सींगों तथा खुरों के चूर्ण की चाय तथा कॉफी के बागानों में खाद के रूप में प्रयुक्त करने के लिये बडी माग है भैंस के सींगों की कुछ मात्रा कघे, चाकू के बेंट, सुघनी के डिब्बे, बटन, खिलौने तथा शृंगार की वस्तुयें बनाने के काम आती हैं

गोपशुओं के खुरों से प्राप्त ढोर-पद तेल का और अधिक ससाधन करने पर स्टीऐरिक तथा पामिटिक अम्ल प्राप्त होते हैं जो साबुन बनाने के काम आते है तथा ओलीक अम्ल सूक्ष्म यन्त्रों को चिकनाने के काम में लाया जाता है अशुद्ध तेल चर्म परिसज्जा तथा सूत उद्योग में प्रयुक्त होता है

अँतडी – गोपशुओं तथा भैंसों से प्राप्त अतडी से सासेज (गुलमा) की थैलियाँ बनायी जाती हैं वध किये गये पशुओं से प्राप्त आँतों को सावधानी पूर्वक निकालकर उसमें से छेद, चकत्ते तथा दागयुक्त भाग को काटकर निकाल देते हैं तत्पश्चात् उन्हें खूब साफ करके उसका ससाधन करते हैं फिर व्यास के अनुसार इनको अलग-अलग छाँटकर रखते हैं गोपशुओं की आँतों के अतिरिक्त सूखे मूत्राशय तथा ग्रासनली की भी विदेशों में गुलमा तैयार करने के लिये बडी माँग है लगभग 90–100% गोपशुओं तथा भैंसों की बडी आँतें, 80% भैंसों की छोटी आँतें तथा 10–15% भेड-बकरियों की आँतों का कोई उपयोग न हो सकने के कारण देश को लगभग 35 लाख रुपये की क्षति होती है

1958–59 में देश में गोपशुओं तथा भैंसों से प्राप्त होने वाली आँतों का अनुमानित उत्पादन 5,398 6 टन था 1964–65 में भारतवर्ष से लगभग 26 लाख रुपये के मूल्य की आँतों का निर्यात किया गया था यद्यपि पशु की आँतों की विदेशों में काफी माँग है फिर भी अनेक राज्यों में आँतों, ग्रासनली तथा मूत्राशय जैसे पदार्थों को एकत्रित न कर सकने के कारण 50 लाख रुपये तक की हानि होती है भारतवर्ष से विदेशों को भेजे जाने वाले गुलमा की थैलियों के सम्बन्ध में शिकायतें होने के कारण भारत सरकार ने 1 फरवरी 1965 से इसका श्रेणीकरण तथा पूर्व-निरीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया है इसके अन्तर्गत विदेशों को भेजे जाने वाले माल का श्रेणीकरण करके उस पर कृषि-उत्पाद अधिनियम 1937 एव उसके अन्तर्गत निर्धारित नियमों के अनुसार ऐगमार्क चिह्न लगाया जाता है भारतवर्ष में आँतों से थैलियाँ बनाने का अधिकाश कार्य हाथ से किया जाता है (IS 1981–1962)

मृत पशुओं के आमाशय तथा आँतों को अस्थि-पाचक यन्त्र में रात-भर उबलते हुये पानी में रखकर तथा बाद में उसे भाप द्वारा सुखाने से जो पदार्थ प्राप्त होता है वह सुअरों को खिलाने का उपयोगी खाद्य पदार्थ है (देखें, Guts, With India–Industrial Products, pt IV, 202–06)

ग्रन्थियाँ – 1958–59 में भारतवर्ष में लगभग एक करोड रुपये से कुछ अधिक मूल्य की 5,977 टन ग्रन्थियों का उत्पादन हुआ (सारणी 35) ग्रन्थिल उत्पाद दो प्रकार के होते हैं एक तो थायराइड, पिट्युटरी (पीयूषिका), ऐड्रीनल तथा लिंग-ग्रन्थि जैसी नलिकाविहीन ग्रन्थियों से प्राप्त पदार्थ जो हार्मोन कहलाते हैं और दूसरे यकृत जैसी बाह्य स्रावक ग्रन्थियों से प्राप्त होने वाले पदार्थ. इन्सुलिन तथा पीयूषिका हार्मोनों के अतिरिक्त ऐड्रिनैलिन, थायराक्सिन, मेथिल टेस्टास्टेरोन, टेस्टास्टेरोन प्रोपियोनेट आदि जैसे अन्य हार्मोनों का अब सश्लेषण किया जाने लगा है इन ग्रन्थियों का समुचित उपयोग केवल कुछ बडे-बडे शहरों में ही हो पाता है जहाँ ओषधि बनाने वाले कारखाने तत्काल ही इन ग्रन्थियों को पशुवध-गृहों से एकत्रित करके ओषधि निर्माण हेतु प्रयुक्त कर लेते हैं छोटे-छोटे पशुवध-गृहों में जहाँ इनके एकत्रीकरण की सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं वहाँ केवल यकृत ही मनुष्य के उपभोग में आता है बैलों तथा भेडों के यकृत से यकृतसार तैयार किया जाता है जिसमें रक्तोत्पादक गुण होता है 1963 में भारतवर्ष में 456 किग्रा हार्मोन तथा 45,172 ली यकृतसार टीके तैयार किये गये 1962–63 में लगभग 20 लाख रुपये के हार्मोन तथा 1,300 रु के यकृतसार, पित्त तथा पित्त-विरचनों का निर्यात किया गया (देखें, Glandular Products–With India–Industrial Products, pt IV, 95–108, Pharmaceutical Industry, ibid , pt VI, 263–302)

पूछ के बाल – मृत तथा वध किये गये पशुओं के पूछ के गुच्छों के बाल विभिन्न प्रकार के ब्रुश बनाने के काम आते हैं 1961 में देश में गोपशुओं से प्राप्त पूछ के बालों का अनुमानित उत्पादन 288 टन था जिसमें से 30 टन बालों का निर्यात पश्चिमी जर्मनी, इंगलैंड, अमेरिका तथा फ्रास को किया गया इसमें से सबसे अधिक बाल, 55 टन उत्तर प्रदेश, 40 टन मध्य प्रदेश, 28 टन महाराष्ट्र, 26 टन राजस्थान, 22 टन आन्ध्र प्रदेश, 19 टन बिहार तथा 15 टन पश्चिमी बगाल तथा शेष अन्य प्रदेशों से प्राप्त हुये

रक्त – रक्त पशुवध-गृह से प्राप्त होने वाला एक बहुमूल्य पशु-उपजात है यह काफी महत्वपूर्ण पदार्थ है और इसका उपयोग खेतों के लिये खाद, पशुओं के लिये रक्त-चूर्ण तथा मनुष्यों के लिये मास में मिलाकर गुलमा तैयार करने में होता है रक्त से कारखानों तथा ओषधियों में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुयें बनायी जाती हैं ऐल्बुमिन के नुस्खे प्लाईवुड चिपकाने, सूत तथा कागज रगने तथा रँगायी में पहले चमडे को परिसज्जित करने के लिये प्रयुक्त होते हैं

1958–59 की अवधि में देश के पशुवध-गृहों में वधित पशुओं तथा भैंसों से प्राप्त रक्त का अनुमानित उत्पादन 9,800 टन था इसमें से लगभग आधी मात्रा (4,564 टन) केवल उत्तर प्रदेश से प्राप्त हुयी जितना रक्त इकट्ठा किया जाता है उसमें अधिक मात्रा में रक्त नष्ट हो जाता है और जो कुछ एकत्र किया जाता है उसे रक्त-चूर्ण में परिवर्तित करके उर्वरक के रूप में अथवा मुर्गियों के आहार के रूप में प्रयुक्त कर लिया जाता है भारतवर्ष में रक्त एकत्रीकरण की समुचित सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं ऐसा अनुमान किया जाता है कि पशुवध-गृहों में उत्पादित कुल

रक्त का लगभग दो-तिहाई भाग प्रतिवर्ष नष्ट हो जाता है जिसका मूल्य 78 6 लाख रुपये है केवल कुछ ही स्थान ऐसे हैं जहाँ मनुष्य के उपभोग के लिये पशुओ का रक्त एकत्र किया जाता है

रक्त मे 13% से भी अधिक नाइट्रोजन रहता है जिसके कारण इसे नीबू, सब्जियो अथवा तम्बाकू जैसी विशिष्ट फसलो के लिये उर्वरक के रूप मे प्रयुक्त करते हैं अपने असली रूप मे रक्त का उपयोग मैसूर राज्य मे कॉफी की खेती मे किया जाता है तथा रक्त-चूर्ण का असम के चाय के बगीचो मे कुछ सुअर तथा कुक्कुट फार्मो मे रक्त-चूर्ण का उपयोग पशु-आहार के रूप मे भी किया जाता है.

खुले हुये कडाहो मे 4 या 5 घटे तक रक्त को गरम करने के बाद जमे हुये रक्त को दो दिन तक ठडा होने देते हैं तब रक्त-चूर्ण तैयार किया जाता है कभी-कभी रक्त मे भाप प्रवाहित करके उसे सुखा लिया जाता है इस प्रकार तैयार किया गया काला रक्त-चूर्ण सूखी जगह मे रखने पर लगभग एक माह तक नही बिगडता हमारे देश से कुछ रक्त-चूर्ण प्रतिवर्ष इगलैंड तथा जर्मनी को भेजा जाता है

काले चमडे को सिझाने के लिये बैल का ताजा रक्त लाभप्रद होता है चर्मकार प्राय शुष्क रक्त ऐल्बुमिन का अधिक प्रयोग करते हैं क्योकि इसे अधिक समय तक भण्डारित किया जा सकता है

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पूना मे किये गये अन्वेषणो से यह प्रदर्शित हो चुका है कि पशुवध-गृहो से प्राप्त होने वाला गोपशुओ का रक्त, ल्यूसीन, हिस्टिडीन, तथा लाइसीन का प्रमुख स्रोत है और इन ऐमीनो अम्लो को तैयार करने का यह सस्ता कच्चा माल है इस प्रयोगशाला ने गोपशुओ के रक्त से इन ऐमीनो अम्लो के तैयार करने की विधि भी खोज निकाली है भारतीय विज्ञान सस्थान, बगलौर ने विभिन्न प्रकार के पेप्टोन तैयार करने की विधियाँ ढूढ निकाली है

गोबर तथा मूत्र—गोपशुओ का मल-मूत्र खाद का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत है गोबर की कम्पोस्ट से मिट्टी मे ह्यूमस बना रहता है और इसकी उर्वराशक्ति स्थिर रहती है यह मिट्टी मे बिना विश्लेषण किये ही डाली जा सकती है मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिये आजकल गोबर की कम्पोस्ट खाद की बहुत माँग है फिर भी हमारे यहाँ काफी मात्रा मे गोबर रसोई घरो मे जलाने के काम आता है 1956 मे हमारे देश के 20 4 करोड गोपशुओ से लगभग 119 7 करोड टन गोबर प्राप्त होने का अनुमान है जिसमे से दो-तिहाई जलाने तथा एक-तिहाई खाद के काम मे लाया गया

गोबर तथा मूत्र मे नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थ की अधिकता होती है रासायनिक विश्लेषण करने पर गोबर तथा मूत्र से (शुष्क पदार्थ के आधार पर) निम्नलिखित मान प्राप्त हुये कार्बनिक पदार्थ, 80, 78 4, नाइट्रोजन, 1 23, 10 6, फॉस्फोरिक अम्ल, 0 5, 0 2, तथा पोटैश, 0 73, 7 2%

अवायुजीवी परिस्थितियो मे गोबर का किण्वन करने से ज्वलनशील गैसे प्राप्त होती हैं जिनमे 60% मीथेन, 10% हाइड्रोजन तथा 30% कार्बन-डाइऑक्साइड होती है भारतीय कृषि अनुसधान सस्थान, नई दिल्ली मे 1941 में यह प्रक्रम बडे पैमाने पर कार्यान्वित किया गया और बाद मे पूना मे भी इसके साथ प्रयोग हुये यह देखा गया कि एक किलोग्राम गाय के ताजे गोबर से 1,520 ब्रिटिश थर्मल इकाई कैलोरी मान की लगभग 62 4 ली गैस प्राप्त होती है इसे **गोबर गैस** के नाम से जाना जाता है इस गैस को खाना बनाने, बत्ती जलाने तथा किसी हद तक घरेलू उद्योगधन्धो मे प्रयुक्त किया जाता है लगभग 350 किग्रा प्रति वसेमी के दाब पर इस गैस को सिलिण्डर मे भरने पर गैस इजिन, मोटर ट्रक तथा ट्रैक्टर चलाये जा सकते हैं स्कूल तथा कालेज की प्रयोगशालाओ तथा अन्य ऊष्मा प्रदायक एव प्रकाशदाता उपकरणो के लिये भी यह गैस उपयोगी है अपेक्षाकृत एक बडे गोबर गैस जैसे सयत्र से उद्योग-धन्धा चलाने-भर के लिये गैस प्राप्त हो सकती है गोबर के अवायुजीवी किण्वन के बाद बचा हुआ पदार्थ उर्वरक के रूप मे प्रयुक्त हो सकता है

गुजरात का खादी ग्राम पचायत वोर्ड, गोबर गैस उपकरण लगाने वाले कृषक को कुल खर्चे का 50% अनुदान के रूप मे प्रदान करता है गुजरात के विभिन्न भागो मे ऐसे लगभग 100 उपकरण कार्य कर रहे हैं घरेलू उपभोग के लिये गैस प्रदान करने के लिये ऐसे अनेक उपकरण पश्चिमी बगाल मे लगाये जा चुके हैं कुछ उपकरण बिहार तथा उडीसा मे भी सस्थापित हुये हैं ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास मे गैस सयत्र का विशेष योगदान हो सकता है

उर्वरक तथा ईंधन के रूप मे गोपशुओ के गोबर से राष्ट्र को लगभग 270 करोड रुपये की आय होती है 1960–61 मे गोपशुओ के गोबर का अनुमानित उत्पादन लगभग 34 145 करोड टन था

पशु चिकित्सा सम्बन्धी जैविक उत्पाद

भारत मे पशुओ को होने वाले प्राय समस्त प्रमुख रोगो के लिये वैक्सीन तथा सीरम तैयार किये जाते हैं सबसे अधिक मात्रा मे इनका निर्माण भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान, इज्जतनगर मे होता है विभिन्न राज्यो मे भी इनके निर्माण की छोटी-छोटी इकाइयाँ हैं केन्द्रीय इकाई मे प्रतिवर्ष 50 लाख खुराक मे अधिक जैविक उत्पाद तैयार किये जाते हैं 1959–60 मे तैयार की गयी तथा वितरित विभिन्न जैविक उत्पादो की मात्रा सारणी 36 मे दी गयी है

पशु जैविक ओषध उत्पादन का शुभारम्भ सर्वप्रथम 1898 मे भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान, इज्जतनगर मे हुआ और प्रयोग क्षेत्र मे उपयोग के लिये सीमित मात्रा मे प्रति-पशुप्लेग सीरम का वितरण किया गया सर्व प्रथम 1899 मे प्रति-पशुप्लेग सीरम बनाया गया, तत्पश्चात् 1902 मे ऐथ्रैक्स ऐंटीसीरम तैयार किया गया धीरे-धीरे यहाँ अन्य उत्पाद बनने लगे और आजकल यह सस्थान 40 से अधिक विभिन्न जैविक ओषधियो का निर्माण करता है जिसमे विभिन्न प्रकार के वैक्सीन, सीरम तथा नैदानिक पदार्थ सम्मिलित हैं इन जैविक ओषधियो की बढती हुयी माँग को पूरा करने के लिये भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागो मे 9 उत्पादन इकाइयाँ तथा 7 छोटे केन्द्र खोले गये 1932 मे मद्रास मे रानीपेट नामक स्थान मे इनका उत्पादन प्रारम्भ हुआ और उसके बाद बम्बई, कलकत्ता, कटक, गोहाटी, बगलौर, हिसार, हैदराबाद, जयपुर, लखनऊ, मऊ, नागपुर, पटियाला, पटना, पूना और श्रीनगर मे इन्हे तैयार किया जाने लगा भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान को छोडकर जहाँ कि भारतवर्ष मे प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के समस्त जैविक ओषध-उत्पाद तैयार किये जाते है, राज्यीय उत्पादन केन्द्रो द्वारा राज्य मे खर्च होने-भर के कुछ ही जैविक ओषध-उत्पाद तैयार होते हैं कुछ केन्द्र अपने निकटवर्ती प्रदेशो के लिये भी ये पदार्थ तैयार करते है प्रथम पचवर्षीय योजना

(1951–56) के लागू होने के साथ-साथ इन इकाइयो को पर्याप्त कार्यकर्ता तथा उपकरण देकर आधुनिकतम बनाने के प्रयास किये गये. प्रादेशिक केन्द्रो की पूर्ति करने के लिये भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान का जैविक ओषधि उत्पादन विभाग अधिक जैविक उत्पाद तैयार करने के लिये अपनी उत्पादन-क्षमता बढा रहा है भारतवर्ष मे जैविक ओषधियो का उत्पादन पूर्णतया राज्य सरकारो के नियन्त्रण मे है और केवल टेटनस ऐंटी-टाक्सिन तथा टायफाइड एव हैजा वैक्सीन जैसे कुछ उत्पाद ही निजी संस्थाओ द्वारा तैयार किये जाते है

मोटे तौर पर जैविक ओषधि उत्पादो को तीन विभिन्न प्रकारो मे विभाजित किया गया (1) टीका तथा जीव विषाभ जैसे

सारणी 36 – 1959–60 में जैविक उत्पादो का उत्पादन तथा वितरण*

(खुराको मे)

उत्पाद	कुल उत्पादन	कुल वितरण
पशुप्लेग सारम (साधारण)	13,45,950	6,10,950
ऐंथ्रैक्स सीरम	3,64,260	2,58,960
गलघोटू सीरम	5,74,940	4,82,020
लँगड़िया सीरम	4,08,080	3,71,040
गलाघोटू वैक्सीन	22,28,600	21,85,900
लँगड़िया वैक्सीन	17 65,250	14,97,750
कुक्कुट शीतला वैक्सीन	6,47,100	6,46,500
कुक्कुट विशूचिका वैक्सीन	48,100	42,620
गलाघोटू सहौषध वैक्सीन	4,13,610	2,30,880
ऐंथ्रैक्स स्पोर वैक्सीन	4,78,400	4,62,780
भेड तथा बकरी का शीतला वैक्सीन	64,000	48,400
रानीखेत रोग वैक्सीन (हिमशुष्कित)	37,44,600	33,82,400
ट्युबरकुलिन सान्द्र	23,940	19,900
मैलीन आई-डी-पी	14,555	7,940
जोनिन	16,725	15,870
पशुप्लेग अजा-ऊतक वैक्सीन (हिमशुष्कित)	1,94,91,300	1 80,82,500
शश-वैक्सीन (हिमशुष्कित)	2,39,280	40,560
रानीखेत रोग वाइरस (वैक्सीन स्ट्रेन)	18,000	18,000
शश-कुक्कुट वैक्सीन (हिमशुष्कित)	1,21 200	83,000
अह अनुयोजित कुक्कुट शीतला वैक्सीन	1,23,200	1,12,300
साल्मोनेला पुलोरम प्लेन ऐटिजन (मिली)	500	250
ब्रुसेला एबार्टस प्लेन ऐटिजन (मिली)	99,980	95,730
साल्मोनेला एबार्टस इक्वाइन अश्व (मिली)	900	900
दुग्ध-वलय परीक्षण के लिये ए-बी-आर ऐटिजन (मिली)	265	110
ब्रुसेला एबार्टस वैक्सीन (मिली)	26,655	26,655
खुरपका-मुंहपका रोग वैक्सीन (मिली)	6,850	6,850
आंत्रजीव विष वैक्सीन (मिली)	43,000	43,000
कुक्कुट विशूचिका तैल सहौषध वैक्सीन (मिली)	4,000	4,000

*वार्षिक विवरण, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, 1959-60, 71-3

सक्रिय प्रतिरक्षा उत्पन्न करने वाले पदार्थ, (2) ऐंटीटाक्सिन, ऐंटीबैक्टीरियल तथा ऐंटीवाइरल सीरम जैसे निष्क्रिय प्रतिरक्षा उत्पन्न करने वाले पदार्थ, और (3) नैदानिक उत्पाद

टीके – ये पदार्थ शक्तिक्षीण किये हुये वध किये गये या तनुकृत किये गये जीवाणुओ या विषाणुओ से तैयार विरचनो के निलम्बन है इनसे शरीर मे जीवाणुओ या विषाणुओ के प्रतिजन उत्पन्न करने की क्रिया का उत्प्रेरण होता है जिससे उसी प्रकार के जीवाणुओ के सक्रमण के प्रति सक्रिय प्रतिरक्षा उत्पन्न होती है

रानीखेत (न्यू-कैसल रोग) तथा पशुप्लेग जैसे कुछ रोगो के लिये ऐसा टीका तैयार होना सम्भव हो गया है जिसके केवल एक बार प्रयोग करने से जीवन-भर के लिये रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है गलाघोटू, लँगड़िया तथा विषहरी जैसी बहुत-सी अन्य बीमारियो से प्रतिरक्षा पाने मे अभी तक सीमित सफलता मिली है इसके लिये तैयार किये गये तथा प्रयोग मे आने वाले वैक्सीन अपेक्षाकृत थोडे समय के लिये रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न करते है तथा वाछनीय रोधकता के लिये समय-समय पर इनका टीका लगाना पडता है

भारत मे तैयार होने वाले तथा उपयोग मे आने वाले टीको का नाम तथा सक्षिप्त विवरण सारणी 37 मे दिया गया है पशुओ को टीका लगाने के लिये वितरित करने से पूर्व इनकी शुद्धता, सुरक्षा तथा शक्ति के लिये जाँच की जाती है विभिन्न टीको के उत्पादन मे खरगोशो, चूहो, गिनीपिग, भेड-बकरियो, घोडो तथा भैसो का प्रयोग किया जाता है कुछ बीमारियो के प्रतिरोग प्रतिरक्षा उत्पन्न करने के लिये विशिष्ट टीके तैयार करने के लिये दस दिन की आयु के कुक्कुट भ्रूणो तथा पक्षियो का भी उपयोग किया जाता है इन टीको की शक्ति क्षीण न हो जाय इसलिये इन्हे 4° तथा हिमीकरण ताप के बीच भण्डारित किया जाता है अभी हाल मे ही कोशिका सवर्ध वैक्सीन के प्रभाव तथा गोपशुओ मे सामूहिक टीका देने की उपयोगिता पर किये गये अध्ययन से यह प्रदर्शित हो चुका है कि अत्यधिक प्रभाववश्य एव विदेशी नस्ल के पशुओ मे इनके प्रयोग से खरगोशीय तथा खरगोशीय एव पक्षीय वैक्सीन जैसे प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले टीको का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता चला जायेगा खुरपका-मुहपका रोग के वाइरस का कोशिका सवर्ध तैयार करने के शोध कार्य के परिणामस्वरूप बकरी के गुर्दे के कोशिका सवर्ध पर ओ, ए, सी तथा एशिया टाइप I प्रजाति युक्त बहुसयोजक वैक्सीन बनाना सम्भव हो सका है BHK_{21} अविराम कोशिका सवर्ध लाइन्स मे खुरपका-मुहपका रोग का वैक्सीन तैयार करने के अब निरन्तर प्रयास किये जा रहे है

प्रतिसीरम – इन मे प्रति पिण्ड होते है इन्हे उन पशुओ से प्राप्त किया जाता है जिनके ऊनको या रक्त मे अत क्षेपण या सक्रमण द्वारा प्रतिजनो की क्रिया होने लगती है सक्रामक रोगो की रोकथाम तथा चिकित्सा के लिये विशिष्ट प्रतिसीरम प्रयुक्त होते है इन प्रतिसीरमो से तुरन्त ही प्रतिरक्षा प्राप्त हो जाती है इसलिये इनका उपयोग सक्रमित पशुओ की चिकित्सा मे तथा सक्रमित पशुओ के सम्पर्क मे आने वालो को सक्रामक रोगो से प्रतिरक्षा दिलाने के लिये किया जाता है जिससे सक्रमण अधिक न फैले इस प्रकार की प्रतिरक्षा की अवधि 7–10 दिन होती है अत यूथीय रोगो में इस प्रतिरक्षा का महत्व नहीं है अधिक से अधिक ये सहौषधि वैक्सीन कही जा सकती है सीरम उत्पादन के लिये भैसे प्रयुक्त है क्योकि उनसे अधिक रक्त प्राप्त किया जा सकता है.

वैक्सीन की भाँति प्रयोग मे लाने से पूर्व प्रतिसीरम की भी शुद्धता, सुरक्षा एव शक्ति के लिये परीक्षण किये जाते हैं प्रयोग मे लाने के लिये वितरित होने से पूर्व इसे 0–4° के ताप पर भण्डारित रखा जाता है

पशुप्लेग रोग पर काबू पाने के लिये प्रतिपशुप्लेग सीरम का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है आजकल पशुओ को सक्रामक रोगो से बचाने के लिये प्राय सभी बीमारियो के प्रतिसीरम तैयार किये जा चुके है

सारणी 37 – भारतवर्ष में पशुओ को सक्रामक रोगो से बचाने के लिये प्रयुक्त होने वाले प्रमुख टीके*

रोग	टीका	विवरण एव उपयोग
	विषाणुज टीके	
पशुप्लेग	हिमीकृत-शुष्क बकरी तन्तु पशुप्लेग वैक्सीन (फ्रीज-ड्राइड कैप्रीनाइज्ड रिण्डरपेस्ट वैक्सीन)	गाय-भैसो की स्थानीय नस्लो के लिये यह एक उपयुक्त जीवित विषाणु वैक्सीन है इसने गीले बकरी विषाणु वैक्सीन के चलन को बिल्कुल उठा दिया है इसका एक टीका जीवनपर्यन्त रोग से प्रतिरक्षा प्रदान करता है विदेशी तथा सकर नस्ल के पशुओ मे इसका प्रयोग प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है
	हिमीकृत-शुष्क खरगोशीय पशुप्लेग वैक्सीन (फ्रीज-ड्राइड लेपीनाइज्ड रिण्डरपेस्ट वैक्सीन)	यह कम शक्ति वाला जीवित विषाणु वैक्सीन है जिसका विदेशी तथा सकर नस्ल के पशुओ मे सुरक्षापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है.
	हिमीकृत-शुष्क पक्षी जातीय पशुप्लेग वैक्सीन (फ्रीज-ड्राइड एवियनाइज्ड रिण्डरपेस्ट वैक्सीन)	कैप्रीनाइज्ड वैक्सीन के प्रति प्रतिक्रिया प्रदर्शित करने वाले अत्यधिक प्रभाववश्य पशुओ मे इसका प्रयोग होता है
पागलपन	ऐंटीरैबिक वैक्सीन	पागलपन विषाणु से सदूषित भेड की चिकित्सा के लिये यह वैक्सीन खरगोश के मस्तिष्क पर सवर्धित कार्बोलीकृत निलम्बन (5-40%) का बना होता है आमतौर पर बचाव के रूप मे ही इस टीके का प्रयोग होता है
भेड-बकरियो का शीतला रोग	भेड-बकरियों का शीतला वैक्सीन (शीप एण्ड गोट पाक्स वैक्सीन)	कृत्रिम रूप से भेड को सदूषित करके उसकी खाल से खुरट लेकर तैयार किया जाने वाला या सुखाया हुआ भेड शीतला वाइरस वैक्सीन है
रानीखेत रोग (न्यू-कैसल रोग)	हिमीकृत-शुष्क रानीखेत रोग वैक्सीन (फ्रीज-ड्राइड रानीखेत डिजीज वैक्सीन)	मुर्गी के अन्डे पर उगाया गया यह तनुकृत जीवित विषाणु वैक्सीन है इसके टीके से 3-4 वर्ष के लिये पशु के शरीर मे रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है
मुर्गियो का शीतला रोग	कुक्कुट शीतला वैक्सीन (फाउल-पाक्स वैक्सीन)	शीतला रोग से पीडित मुर्गियो तथा कबूतरो के छालो के खुरट को शोषित्र मे सुखाकर तथा पीसकर यह वैक्सीन तैयार किया जाता है
	मुर्गी के भ्रूण से निर्मित कुक्कुट के शीतला वैक्सीन (चिक एम्ब्रियो फाउल-पाक्स वैक्सीन)	यह कुक्कुट शीतला जीवित विषाणु वैक्सीन है जिसे रोग के विषाणुओ को मुर्गी के भ्रूण मे सवर्धित करके तैयार किया जाता है रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न करने के लिये लगभग 6 सप्ताह की आयु पर मुर्गियो को इसका टीका दिया जाता है
	मुर्गी के अण्डे से निर्मित कुक्कुट शीतला वैक्सीन अथवा कपोत शीतला विषाणु वैक्सीन (चिक एम्ब्रियो फाउल-पाक्स वैक्सीन अथवा पिजन-पाक्स वैक्सीन)	मुर्गी के भ्रूण पर सवर्धित यह कपोत शीतला विषाणु वैक्सीन 6 सप्ताह से कम आयु वाले मुर्गी के बच्चो मे रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न करने मे प्रयुक्त होता है
खुरपका-मुंहपका रोग	बहुसयोजक खुरपका-मुंहपका रोग वैक्सीन	यह एक निष्क्रिय रक्त वैक्सीन है जिसमे खुरपका-मुंहपका रोग के विषाणुओ का प्रतिजन होता है

(क्रमश)

सारणी 37—क्रमश

रोग	टीका	विवरण एव उपयोग
		जीवाणुज वैक्सीन
गलाघोटू रोग (गोजातीय पास्तुरेला रुग्णता)	गलाघोटू मास रस वैक्सीन (हैमोरेजिक सेप्टीसीमिया ब्राथ वैक्सीन)	यह टीका **पास्चुरेला सेप्टिका** की एक देशी अति प्रतिजनी प्रजातियो के फार्मोल से वध किये गये यूष सवर्ध से बना होता है इसका एक बार टीका देने से दो माह के लिये अल्पकालीन प्रतिरक्षा उत्पन्न होती है जब तक सामूहिक रूप से टीका देने के लिये गलाघोटू ऐड्जूवेट वैक्सीन उपलब्ध नही होता तब तक वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के थोडे पहले इस टीके के प्रयोग से पशुओ को गलाघोटू रोग के प्रकोप से मुक्त रखा जा सकता है
	फिटकरी अवक्षेपित गलाघोटू ब्राथ वैक्सीन (हैमोरेजिक सेप्टीसीमिया ऐलम प्रेसीपिटेटिड ब्राथ वैक्सीन)	1% फिटकरी डाला हुआ गलाघोटू ब्राथ वैक्सीन का यह विकसित रूप है इसका एक बार टीका देने से 4-6 माह तक की रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न होती है
	गलाघोटू सहौषध वैक्सीन (हैमोरेजिक सेप्टीसीमिया ऐड्जूवेट वैक्सीन)	भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान द्वारा अभी कुछ समय पूर्व तैयार किया गया यह तैलीय सहौषध वैक्सीन बडे उत्साहवर्धक परिणाम दे चुका है इसके एक बार के टीके से लगभग एक वर्ष के लिये प्रतिरक्षा उत्पन्न होती है
लँगडिया रोग	बहुसयोजक लँगडिया वैक्सीन (पालिवैलेंट ब्लैक क्वार्टर वैक्सीन)	यह फार्मोल से वध किये गये यूष सवर्ध की वैक्सीन है जो **क्लास्ट्रीडियम चौवाई** तथा **क्लास्ट्रीडियम सेप्टिकम** सदूषण के प्रति रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न करती है इसके एक टीके से लगभग एक वर्ष के लिये प्रतिरक्षा उत्पन्न होती है
ऐंथ्रैक्स (विषहरी)	ऐंथ्रैक्स स्पोर वैक्सीन	यह वैक्सीन **बैसिलस ऐंथ्रैसिस** की तनुकृत प्रजाति के जीवित बीजाणुओ का ग्लीसरीनयुक्त निलम्बन होता है इसके प्रयोग से उत्पन्न प्रतिरक्षा एक वर्ष तक बनी रहती है
	सैपोनिनयुक्त ऐंथ्राक्स स्पोर वैक्सीन	सैपोनिनयुक्त यह बीजाणु वैक्सीन भारत के कुछ भागो मे प्रयुक्त होती है.
गोपशुओ का सक्रामक गर्भपात (ब्रुसेलोसिस)	**ब्रुसेला एबार्टस** (कॉटन स्ट्रेन-19) वैक्सीन	**ब्रुसेला एबार्टस** की शक्ति क्षीण प्रजाति से तैयार की गयी, यह एक जीवित वैक्सीन है जिन यूथो तथा क्षेत्रो मे ब्रुसेला सदूषण का अधिक प्रकोप होता है वहाँ बीमारी पर नियंत्रण रखने के लिये इसका टीका लगाना उपयोगी सिद्ध होता है
अश्वजातीय सक्रामक गर्भपात (पैराटायफायड)	अश्वजातीय गर्भपात वैक्सीन (इक्वाइन एवार्शन वैक्सीन)	यह वैक्सीन अश्वजातीय **साल्मोनेला एवार्टस एक्वी** के ऐगर धावित फार्मोल से वध किये सवर्ध से बनी होती है इसके एक टीके से निम्न श्रेणी की अल्पकालीन प्रतिरक्षा उत्पन्न होती है, अत थोडे-थोडे अवकाश पर इसके तीन या अधिक टीके लगाने चाहिये
घोडो का गलग्रन्थिल रोग (स्ट्रेंगिल्स)	बहुसयोजक स्ट्रेप्टोकोकाइ वैक्सीन (पालिवैलेंट स्ट्रेप्टोकोकाइ वैक्सीन)	यह वैक्सीन देश के विभिन्न भागो के गलग्रथिल रोग अथवा मिलते-जुलते रोगो से ग्रसित घोडो से प्राप्त स्ट्रेप्टोकोकाइ की 9 विभिन्न प्रजाति के मृत सवर्ध की बनी होती है रोग के बचाव तथा चिकित्सा दोनो के लिये ही यह वैक्सीन उपयोगी है
कुक्कुट विशूचिका रोग (पक्षीय-पास्तुरेलोसिस)	कुक्कुट कालरा वैक्सीन (फाउल-कालरा वैक्सीन)	यह फार्मोल से वध किया यूष सवर्ध वैक्सीन है कुक्कुट कालरा सीरम का इ जेक्शन देने के साथ ही इसका टीका लगाया जाता है

*Seetharaman & Sinha, *Indian Coun agric Res*, *Anim Husb Ser*, No 2, 1963

भारतवर्ष में निम्नलिखित प्रतिसीरम सामान्यतया प्रयुक्त होते हैं पशुप्लेग प्रतिसीरम, गलाघोंटू प्रतिसीरम, लंगड़िया प्रतिसीरम, ऐंथ्रैक्स प्रतिसीरम, कुक्कुट विशूचिका प्रतिसीरम, तथा टेटनस प्रतिसीरम

नैदानिक उत्पाद – आसानी से ज्ञात न हो पाने वाले छिपे हुये संक्रमण अथवा दीर्घकालिक रोगों का निदान करने के लिये अनेक जैविक औषध उत्पादों की आवश्यकता पड़ती है ये ट्यूबरक्युलिन, जोनिन, मैलीन तथा अन्य प्रतिजन पदार्थ हैं गोवृन्द में रहने वाले संक्रमण का पता लगाने के लिये इनका बहुतायत में उपयोग किया जाता है भारतवर्ष में पशुओं के संक्रामक रोगों का निदान करने के लिये प्रयुक्त होने वाले जैविक उत्पादों की सूची सारणी 38 में दी जा रही है

सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्डों एवं प्रायोजनाओं से सम्बन्धित राज्यों में पशु-पालन कार्यक्रम के विस्तार होने के साथ ही जैविक औषध उत्पादों की मांग भी बढ़ी है इस कारण भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान का जैविक औषध उत्पादन विभाग राज्यों तथा कुछ पड़ोसी देशों को इन उत्पादों के प्रदान करने का प्रमुख स्रोत बन गया है

1959–60 की अवधि में विभिन्न जैविक औषध उत्पादों की लगभग 1,60 000 खुराकें पड़ोसी देशों को भेजी गयीं प्रदेशों में विभिन्न जैविक औषध उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये, व्यक्तिगत उत्पादों के तैयार करने का प्रशिक्षण देने के अतिरिक्त, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान जैविक औषध उत्पादों के निर्माण की प्रविधि सिखाने के लिये नौ माह के शिक्षण की भी व्यवस्था करता है

सारणी 38 – भारतवर्ष में पशुओं के संक्रामक रोगों के निदान हेतु प्रयुक्त होने वाले जैविक उत्पाद*

रोग	उत्पाद	विवरण तथा उपयोग
क्षय रोग	ट्युबरक्युलिन (सान्द्रित)	क्षय रोग के जीवाणु के विशिष्ट प्रोटीन-युक्त उत्पाद का पशुओं की त्वचा में टीका देने पर रोगी पशुओं में टीका लगे स्थान पर सूजन तथा दर्द के रूप में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है गोजातीय तथा अन्य स्तनियों में क्षय रोग का सदृपण ज्ञान करने के लिये इस उत्पाद का प्रयोग किया जाता है
	पक्षी जातीय ट्युबरक्युलिन	क्षय रोग जीवाणु की पक्षी जातीय प्रजाति से इसे तैयार किया जाता है और मुर्गियों में क्षय रोग के निदान के लिये प्रयुक्त होता है.
जोन रोग	जोनिन	ट्युबरक्युलिन की भांति ही जोनिन भी तैयार होता है गोपशुओं तथा भेड़ों में जोन रोग के निदान के लिये इसे प्रयुक्त करते हैं
ग्लाडर्स	मैलीन (अधस्त्वक्)	फोफेरेल्लाई मैलिआई से इसे ट्युबरक्युलिन की भांति ही तैयार किया जाता है अतः त्वचा-नेत्रच्छद जांच में जो उत्पाद प्रयुक्त होता है उसका 1 10 अनुपात का घोल यहां प्रयोग किया जाता है. अधस्त्वक् जांच में ग्लांडर्स से पीड़ित पशु टीका लगे हुये स्थान पर प्रतिक्रिया सूजन एवं ताप में वृद्धि से होती है
	मैलीन (अन्तस्त्वचा नेत्रच्छद)	यह सान्द्रित मैलीन का बना होता है तथा आंख की पलक की त्वचा में टीका लगाकर इसे प्रयुक्त करते हैं नेत्र श्लेष्मला रक्ताधिक्य (नेत्रों का लाल हो जाना), आंखों से श्लेष्मा का बहाव तथा पलकों का बन्द हो जाना आदि लक्षण इसकी निश्चित प्रतिक्रिया को प्रदर्शित करते हैं
गोजातीय संक्रामक गर्भपात (ब्रुसेला रुग्णता)	ब्रुसेला एबार्टस दुग्ध वलय परीक्षण प्रतिजन	यह हीमेटाक्सिलिन अभिरंजक से रंजित **ब्रुसेला एबार्टस** प्रतिजन है जिसे प्रायः पूर्ण गोवृन्द पर प्रयुक्त करना अच्छा रहता है अतः केवल एक पशु का दूध न लेकर कई पशुओं का मिश्रित दूध लेकर उसकी जांच करनी चाहिये
	मानक ब्रुसेला एबार्टस सान्द्र प्रतिजन	छेने के पानी तथा सीरम के नमूनों का परखनली समूहीकरण परीक्षण करने के लिये इस प्रतिजन को प्रयुक्त करते हैं
	ब्रुसेला एबार्टस रंजित प्लेट परीक्षण प्रतिजन	यह सान्द्रित क्रिस्टल वायलेट अभिरंजित प्रतिजन है जिसे दूध-छेने के पानी तथा सीरम के नमूनों की शीघ्र-प्लेट-जांच के उपयोग में लाया जाता है
अश्वजातीय संक्रामक गर्भपात (पैराटायफायड)	अश्वजातीय गर्भपात प्रतिजन (एक्वाइन एबार्शन ऐंटिजन)	अश्वजातीय **साल्मोनेला एबार्टस** एक्वी से यह प्रतिजन तैयार होता है. रोग के जीवाणुओं से संदूषित पशु के सीरम में मिलाने पर यह विशेष प्रकार का समूहीकरण प्रदर्शित करता है

*Seetharaman & Sinha, *Indian Coun. agric Res., Anim. Husb Ser*, No 2, 1963

अनुसधान एव विकास

प्रजनन—देश के विभिन्न भागो मे कुछ पशुधन फार्मो की स्थापना करके प्रजनन द्वारा पशुओ के सुधार का प्रथम सुसगठित प्रयास किया गया राष्ट्रीय स्तर पर पशुधन सुधारने की दृष्टि से विशिष्ट नस्लो की विशेषताओ की व्याख्या की गयी तथा प्रजनन एव उत्पादन अभिलेख रखने का मानकीकरण किया गया देश के गोपशुओ की कुछ प्रमुख नस्लो के लिये यूथ पुस्तिकाये भी प्रयुक्त की गयी

क्षेत्रीय आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुये समन्वित राष्ट्रीय गोपशु प्रजनन नीति निर्धारित की गयी देश मे अच्छे सांडो के अभाव के कारण इस नीति के परिचालन मे अवरोध उत्पन्न हुआ और इस पर विजय पाने के लिये बडे पैमाने पर कृत्रिम वीर्यसेचन तथा मुख्य ग्राम योजना का शुभारम्भ किया गया साथ ही विभिन्न राज्यो द्वारा भी पशुधन सुधार हेतु कार्य किये गये और निम्न-कोटि के देशी सांडो से गायो को गाभिन न होने देने के लिये उन्हे सामूहिक रूप से बधिया करने की योजना चलायी गयी

चुनिदा प्रजनन द्वारा पशुधन की प्रगति को बढावा देने के लिये कुछ चुने हुये पशुधन फार्मो पर सतति परीक्षण का कार्य भी किया गया कुछ चुने हुये क्षेत्रो मे क्षेत्रीय परिस्थितियो में भी इस कार्य को प्रारम्भ किया गया बहुसख्यक देशी नस्ल के पशुओ के सुधार हेतु कुछ समय से देश मे श्रेणी-उन्नयन कार्य भी किया जा रहा है और इसमे उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हो रहे है

किसी भी क्षेत्र मे श्रेणी-उन्नयन कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि जिस नस्ल के पशु इसमे सम्मिलित किये जाने है उनमे तथा उनकी सतति मे स्थानीय वातावरण एव जलवायु मे बढने की क्षमता है इस दृष्टिकोण से पशुओ के जलवायु-विज्ञान का अध्ययन भी किया गया अधिक दुधारू नस्ले तैयार करने के लिये विदेशी नस्ल के सांडो द्वारा सकरण करने का कार्य भी प्रारम्भ किया गया

पशु-प्रजनन समस्याओ पर अनेक अनुसधान सस्थान भी कार्य कर रहे है पशु-प्रजनन कार्यो को बढावा देने के लिये व्यक्तियो को तकनीकी प्रशिक्षण देने का कार्य भी इन सस्थानो द्वारा किया जाता है

1944 मे पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान मे पशु आनुवशिकी एव प्रजनन विभाग की स्थापना के साथ इस विषय पर विधिवत अन्वेषण कार्य प्रारम्भ हुआ इस विभाग का प्रमुख कार्य पशु आनुवशिकी और उससे सम्बन्धित विषयो पर आधारभूत एव अनुप्रयुक्त अन्वेषण है उष्णकटिबधीय परिस्थितियो मे वीर्य उत्पादन, पशुओ की विभिन्न प्रजातियो के वीर्य की विशेषताये, वीर्य का सरक्षण एव परिवहन, तथा भारतीय गोपशुओ एव भैंसो का रक्त समूहन आदि विषयो पर देश में उल्लेखनीय अन्वेषण कार्य किया गया

कुछ निजी अनुसधान एव शिक्षण सस्थाओ द्वारा भी पशु आनुवशिकी एव प्रजनन पर अन्वेषण कार्य किया गया है इलाहाबाद कृषि सस्थान मे लाल सिंघी नस्ल की गायो को जर्सी नस्ल के सांडो से गाभिन करा कर एक अधिक दूध देने वाली जरसिन्ध नस्ल तैयार की गयी इस कार्य से भारतीय परिस्थितियो मे सकरण की सम्भावनाओ तथा दुग्धोत्पादन एव स्थानीय वातावरण में बढने की क्षमता की दृष्टि से विभिन्न वर्ग के सकर पशुओ की प्रवृत्ति पर महत्वपूर्ण आँकडे प्रस्तुत हो सके कृषि सस्थान, आनन्द (गुजरात) मे भी पशु-पालन पर आधारभूत एव व्यावहारिक अन्वेषण कार्य किया जा रहा है यह कार्य विशेषत काँकरेज नस्ल के पशुओ के विकास से सम्बन्धित है

पोषण

भारतवर्ष मे गोपशुओ तथा अन्य पशुधन की पोषण सम्बन्धी समस्याओ की जाँच करने के लिये 1925 में नियुक्त 'रॉयल कमीशन ऑन ऐग्रीकल्चर' की सिफारिश पर पहले-पहल बगलौर मे एक सुव्यवस्थित केन्द्रीय प्रयोगशाला की स्थापना की गयी तत्पश्चात् भारतवर्ष मे पशु-पोषण पर अनुसधान कार्य करने के लिये भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान, इज्जतनगर मे ऐसी ही एक प्रयोगशाला खोली गयी 1929 मे अपनी स्थापना के पश्चात् से ही भारतीय कृषि अनुसधान परिषद्, पशु-पोषण पर अनुसधान प्रायोजनाये चला रही है आनन्द (गुजरात), बगलौर (मैसूर), हेरिंघाटा (पश्चिमी बगाल) तथा पालमपुर (पजाब) मे चार प्रक्षेत्रीय पशु-पोषण अनुसधान केन्द्र खोले गये इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न प्रदेशो, पशु चिकित्सा विज्ञान तथा डेरी विज्ञान महाविद्यालयो एव सस्थानो मे अनेक अन्वेषण केन्द्रो की स्थापना हुयी

देश के विभिन्न भागो मे उपलब्ध होने वाले अधिकाश चारेदाने के पोषण मानो का अध्ययन किया गया भारतीय पशुओ के लिये आवश्यक विभिन्न पोषको के आँकडे प्राप्त किये गये इन आँकडो से पता लगा कि गोपशुओ के लिये आवश्यक ऊर्जा-प्रदायक आहार मे 62% तथा पाच्य प्रोटीन में 77% का अभाव है

अभी हाल मे लगाये गये अनुमान के अनुसार पशु-आहार मे 70% पौष्टिक मिश्रण तथा 30% मोटे चारे की कमी है इस कमी को पूरा करने के लिये कुछ उच्च पोषण मान वाले तथा अधिक उपज देने वाले चारो की नयी फसलो का विकास किया गया (सारणी 39) अनेक कृषि-उपजातो का जो आजकल बेकार समझ कर नष्ट कर दिये जाते है, पशुओ को खिलाने के लिये उपयोग किया जा सकता है बहुत से पेडो की पत्तियो मे भी समुचित मात्रा मे पोषक तत्व पाये जाते है और वे खाने मे भी स्वादिष्ट होते है चारे के उत्पादन मे बढावा देने के लिये मिश्रित खेती प्रारम्भ करने के भी प्रयास किये जा रहे है

गन्ने की पत्तियो (अगोले), आम तथा जामुन की गुठलियो, महुये के फूलो, वर्षा वृक्ष की फलियो, इमली के बीजो तथा पँवार के बीज जैसे बेकार पदार्थो मे भी काफी पोषक तत्व होते है पिसी हुयी खोई, शीरा तथा मूगफली की खली का मिश्रण भी बैलो को खिलाने के लिये उपयुक्त पाया गया है बगलौर में घृत-अवशेष भी दूध देने वाली गायो तथा बढने वाली बछियो को सफलतापूर्वक खिलाया गया है सामान्यत प्रयुक्त होने वाले पौष्टिक मिश्रण के 227 ग्रा. की अपेक्षा लगभग 454 ग्रा. घृत-अवशेष में अधिक ऊर्जा होती है

पशु खाद्य पदार्थो का उत्पादन बढाने के लिये मिश्रित खेती की सम्भावनाये सीमित है. कृषि सस्थान, आनन्द (गुजरात) मे किया गया कार्य यह प्रदर्शित करता है कि 2 हेक्टर सिंचित भूमि अथवा 10 हेक्टर असिंचित भूमि एक छोटे परिवार तथा थोडे पशुओ के लिये पर्याप्त खाद्यान्न एव चारा प्रदान कर सकते है हमारे यहा

सारणी 39 – चारे-दाने के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले कुछ खाद्य पदार्थों का पोषण मान*
(%)

खाद्य पदार्थ	प्रोटीन	वसा	रेशा	नाइट्रोजन-रहित निष्कर्ष	राख	कैल्सियम	फॉस्फोरस	कच्चा प्रोटीन	कुल पचनीय पोषक तत्व	स्टार्च तुल्याक
मोटे चारे										
मूज (**सैंकेरम मुजा**)								2 72	56 6	16 80
खोई-शीरा मिश्रण	2 64	0 41	13 60	67 02	16 63	1 25	0 13		47 0	
पँवार का पौधा (**कैसिया टोरा**)	4 68					0 97	0 47	1 83	38 1	10 45
काँस (पकी हुयी) (**सैकेरम स्पोटेनियम**)								0 30		20 00
कटियारा (हरा) (**कार्यमस ग्राक्सीएकैथा**)	11 03	1 23	22 31	51 53	13 90	1 30	0 13	6 30	34 1	20 78
अगोले (**सैंकेरम ग्राफिसिनेरम**)	5 47	1 48				0 58	0 46	2 55	46 2	29 15
वाजरे की भूसी (**पेनिसेटम टायफायडियम**)	5 11	0 82	30 98	50 87	12 22	0 38	0 23	1 12	46 82	28 62
मूगफली का छिल्का	6 56		66 31	22 16		0 27	0 20	0 91	23 82	14 76
कॉफी का छिल्का (**काफिग्रा ग्ररेविका**)	10 02	0 89	40 57	41 10	7 36	0 56	0 36	3 38	42 24	18 27
मैंग्रोव वृक्ष का पत्तियाँ (**ऐविसेनिया ग्राफिसिनैलिस**)	12 26	0 93	11 94	56 70		0 79	0 39	6 25	38 85	32 90
धान की भूसी	6 07		28 00	49 98		0 32	0 83	2 31	29 2	13 00
ज्वार की भूसी	5 33	0 45	29 32	46 80		0 35	0 31	1 01	43 63	26 57
तोरिया का भूसा (**वैसिका नैपस**)	5 94	0 98	50 57	34 77		1 93	0 49	2 54	45 54	15 95
दाने (सान्द्र)										
आम की गुठली (**मंजीफेरा इडिका**)	8 50	8 85	2 81	74 49	5 35	0 19	0 298	6 10	7 00	67 50
महुआ की खली (**वैसिया लैटिफोलिया**)	19 38	12 00				0 28	1 20	7 95	60 03	51 26
महुआ के फूल	8 00	1 38				0 31	0 37	3 68	73 70	55 10
बबूल की फली	14 00					1 00	0 17	16 50	75 50	64 30
जामुन की गुठली (**सिजोजियम जाति**)	8 50	1 18	16 90	51 70	21 72	0 41	0 17	5 82	45 53	45 10
इमली के बीज (**टैमेरिडस जाति**)	15 40	3 89				0 43	0 53	4 32	53 96	50 10
वर्षा वृक्ष की फली (**एटेरोलोवियम सामन**)	15 91	1 51	11 80	67 02	3 76	0 41	0 34	8 90	63 50	58 70
टैपिओका की जड़े (**मैनिहाट यूटिलिसिमा**)	1 94	0 16	2 27	94 43	1 99	0 005	0 16		51 94	
सनई के बीज (**क्रोटालेरिया जशिया**)	35 00	3 70	10 00	46 00	5 30	0 36	1 60	31 15	71 37	67 00
पँवार के बीज (**कैसिया टोरा**)	21 12	7 73			5 56	1 22	1 62	16 64	59 40	54 30
रामतिल की खली (**गिवजोटिया ग्रविसिनिका**)	32 74	4 42	17 64	31 45	3 75	0 84	2 55	32 74	49 40	43 30
खजूर की गुठली	5 99	6 89	10 48	74 08	2 65			0 80	62 00	56 00
मक्का का कुटका	25 62	1 86	6 59	50.28	15 75			20 63	66 96	
मकई का लासा	24 92	3 36	1 76	65 13				23 92	68 51	66 78
वर्जीनियाँ तम्बाकू के बीजो की खली	29 95	10 37	22 33	24 66	12 69			26 33	69 37	56 50
आँते	76 13	13 78	1 03	1 49	7 57	0 162	0 396	60 40	90 20	88 70

*Research in Animal Husbandry A Review (1929-54) ICAR, 1952

60% किसानो के पास 0 4 हेक्टर से भी कम भूमि है, ग्रत मिश्रित खेती केवल तटीय ग्रान्ध्र प्रदेश, गुजरात, पजाव के मैदानी भाग तथा दिल्ली प्रशासनि क्षेत्र, पश्चिमी एव मध्य उत्तर प्रदेश, दक्षिण तमिलनाडु ग्रौर मैसूर मे ही की जा सकती है, जहाँ कि चारे की फसले उगाने के लिये पर्याप्त भूमि उपलब्ध है तथा पानी की भी समुचित व्यवस्था है अन्य स्थानो मे फलीदार चारे की अन्तर्वर्ती फसले उगाने की राय दी जाती है अन्तर्वर्ती फसलो के रूप मे हेरिंघाटा (पश्चिमी वगाल) मे लोविया, ग्रौर माण्ड्या (मैसूर) मे ज्वार, सोयवीन ग्रौर काला तथा हरा चना उगाना उपयोगी सिद्ध हुग्रा है

विशिष्ट डेरी फार्म उद्योग, मिश्रित खेती ग्रौर कृषि योग्य भूमि मे गाय, भैंसो सहित खेती करने की अर्थव्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये राष्ट्रीय डेरी अनुसधानशाला, करनाल तथा कुछ अन्य केन्द्रो पर एक समन्वित प्रायोजना चलायी जा रही है

मध्यम वर्ग के कृपको द्वारा चारे का सरक्षण वहुत ही कम किया जाता है वर्षा ऋतु मे अच्छे पोषण मान वाली हरी घास अपनी अनुपरिपक्व अवस्था में काफी मात्रा मे उपलब्ध होती है, किन्तु मौसम की खरावी के कारण इसे सुखाकर रखना असम्भव-सा हो जाता है परिपक्व घास मे वनायी गयी सूखी घास में पोषक तत्वो की मात्रा कम हो जाती है खाद्य-सरक्षण के अन्य ढगो

की अपेक्षा भारतवर्ष मे साइलेज बनाना अधिक उपयुक्त होने के बाद भी सम्भवत अच्छा साइलेज बनाने मे होने वाली तकनीकी कठिनाइयो के कारण सरकारी तथा कुछ निजी फार्मो पर ही साइलेज बनाकर चारे को सरक्षित रखा जाता है बरसीम जैसे फलीदार चारे के साथ भूसा अथवा पेडो की गिरी टूयी पत्तियाँ मिलाकर साइलेज बनाने से अधिक पौष्टिक एव स्वादिष्ट चारा प्राप्त होता है साइलेज बनाने से भूसे मे पाये जाने वाले रेशो की पाचकता बढ जाती है

बिना कटे मोटे चारे की अपेक्षा जब इसे कुट्टी के रूप मे काटकर पशुओ को खिलाया जाता है तो पशु 25% अधिक शुष्क पदार्थ खा सकते है भूसा के क्षारीय उपचार करने पर उसका स्टार्च तुल्याक 21 से बढकर 36% हो जाता हे तथा जिन पशुओ को क्षार से उपचारित भूसा खाने को दिया जाता है वे अधिक नाइट्रोजन अभिग्रहण कर सकते हैं धान का पुआल एक सामान्य मोटा चारा है जिसमे ऑक्सलेट की अधिक मात्रा होने से कैल्सियम और फॉस्फोरस लवणो के उपापचयन पर बाधा पडती है तनु कास्टिक सोडा विलयन से उपचारित करने से भूसे का पोषण मान बढ जाता है

पशुओ के लिये अनेक पौधे विषैले सिद्ध होते हैं इनमे से ज्वार (**सोर्घम वल्गेयर**), मक्का, स्टार घास (**साइनोडान प्लेक्टोस्टेकियम**) तथा अलसी के सामान्य चारे कुछ परिस्थितियो मे तथा अपनी विकासकालीन कुछ अवस्थाओ मे पशुओ मे हाइड्रोसायनिक अम्ल विषाक्तता उत्पन्न करते पाये गये है साइलेज बनाने पर विषाक्तता उत्पन्न करने वाला कारक भी नष्ट हो जाता है

चारे को पर्याप्त मात्रा मे भण्डारित रखने तथा मौसमी वर्षा के कारण भारतवर्ष मे पशुओ को चराना अपेक्षाकृत कम महत्व रखता है फिर भी, कुछ स्थानों पर पशुओ के चारे के लिये चरागाहो पर अच्छी घासे उगायी जाने लगी है तमिलनाडु के कागायाम क्षेत्र मे कोलुकत्तय घास (**सेंक्रस सिलिएरिस**) का उगाना इसका एक प्रमुख उदाहरण है

सारणी 40 – कुछ देशी घासो का औसत सघटन*

(शुष्क पदार्थ के आधार पर % मान)

	भूसा				
	मसूर	अरहर	मौठ	उर्द	मूगफली
अपरिष्कृत प्रोटीन	8 13	10 74	11 31	11 42	15 01
ईथर निष्कर्ष	0 93	1 97	1 14	1 88	2 88
अपरिष्कृत रेशे	40 35	28 71	34 69	36 16	27 59
नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष	45 69	48 08	42 30	42 21	43 77
राख	4 90	10 57	10 56	8 33	10 75
कैल्सियम	0 84	1 23	2 13	1 49	1 68
फॉस्फोरस	0 09	0 14	0 12	0 14	0 19
कुल पचनीय पोषक	44 18	49 60	54 17	44 20	52 95

*Research in Animal Husbandry A Review (1929-54), ICAR, 1962

देशी घासो के लिये किये गये सर्वेक्षण के अनुसार कुछ घासो मे अच्छे पोषक तत्व पाये जाते है (सारणी 40)

ऐरे दुग्ध-कालोनी, बम्बई मे उगायी गयी पैरा घास से प्रति हेक्टर 370 टन हरा चारा मिलता है जिसमे शुष्क पदार्थ के आधार पर 15% प्रोटीन होता है राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल मे उगायी गयी नेपियर घास (**पेनीसिटम परप्यूरियम**) की सकर प्रजाति **गजराज** से प्रति हेक्टर भूमि से प्रति वर्ष 250–300 टन हरा चारा मिलता है जिसमे शुष्क आधार पर 12% प्रोटीन होता है सकर नेपियर घास बरसीम से भी अधिक उपज देती है

नवम्बर 1962 मे झाँसी (उत्तर प्रदेश) मे भारतीय चरागाह एव चारा अनुसधान सस्थान की स्थापना हुयी हिसार (हरियाणा), कल्याणी (पश्चिमी बगाल), अहमदाबाद (गुजरात), हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) तथा मधावरम (तमिलनाडु) मे इसके क्षेत्रीय केन्द्र खोले गये और इनके साथ कई छोटे-छोटे उपकेन्द्र भी सलग्न कर दिये गये इस सस्थान का प्रमुख कार्य उगाये जाने वाले चारे पर अनुसधान करना तथा गोपशुओ के लिये प्राकृतिक चरागाहो का विकास एव प्रबन्ध करना है इस सस्थान की निम्नलिखित प्रमुख उपलब्धियाँ हैं नाइट्रोजनयुक्त उर्वरको के प्रयोग से (200 किग्रा अमोनियम सल्फेट प्रति हेक्टर) चरागाहो की प्राप्य आय मे (160 र प्रति हेक्टर) वृद्धि करना, **फेसिओलस ऐट्रोपरप्यूरिअस** तथा **एटिलोसिया स्करेबेओइडीज** के प्रवेश से अविकसित घासो के प्रोटीन मे (21%) वृद्धि करना, **सेनक्रस सिलिएरिस, से सेटिगेरस** तथा **क्राइसोपोगान फल्वस** (मऊ प्रजाति) के प्रवेश द्वारा निम्न-कोटि के चरागाहो का विकास, लगातार हरा चारा उपलब्ध कराने के लिये अक्तूबर मे बोयी जाने वाली बरसीम तथा जापानी सरसो जैसी फसले उगाकर मिश्रित खेती करना, मार्च के प्रथम सप्ताह मे पूसा जाइट नेपियर घास बोकर (यह घास बिना अतिरिक्त सिंचाई के एक वर्ष मे प्रति हेक्टर 1,63,200 किग्रा चारा देती है) अप्रैल के अतिम सप्ताह अथवा मई के प्रारम्भ मे नेपियर की पक्तियो के बीच लोबिया की बुआयी करना, शीघ्र बढोतरी के लिये सकर नेपियर के कटे हुये ठूठो को जलाना, बरसीम से 50% अधिक बीज लेने के लिये उस पर वृद्धिरोधक दवाएँ (सी सी सी का 2% सक्रिय अवयव) छिडकना और फसल मे दाने और भूसा की बढोतरी के लिये तथा भूसा में कैल्सियम, फॉस्फोरस एव प्रोटीन की बढोतरी के लिये गेहूँ मे सामान्य वेच (**विसिया सैटाइवा**) का प्रवेश करना इसके अतिरिक्त ज्वार, जई, ग्वार जैसे चारे तथा घासो के जनन-द्रव्य के अधिक उपज देने वाले सवर्ध और कई बार कटायी की क्षमता वाले लोबिया के अधिक उपज देने वाले 15 सवर्धो का यहाँ की भूमि मे उगाने के लिये चयन किया गया

दुग्ध विज्ञान – सुसगठित एव सुव्यवस्थित ढग से देश में डेरी अनुसधान कार्य अधिकतर राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल (हरियाणा) (स्थापित 1955), और इसके दक्षिणी प्रक्षेत्रीय केन्द्र (जिसे पहले 1923 से भारतीय डेरी अनुसधान सस्थान के नाम से जाना जाता था), बगलौर मे किया जाता है पश्चिमी प्रक्षेत्रीय केन्द्र, ऐरे दुग्ध-कालोनी, बम्बई (स्थापित 1961) तथा कलकत्ता मे कल्याणी विश्वविद्यालय के निकट स्थित पूर्वी प्रक्षेत्रीय केन्द्र (स्थापित 1964) नामक दो अन्य केन्द्रो की स्थापना की गयी इनमे इन क्षेत्रो से सम्बन्धित महत्वपूर्ण डेरी समस्याओ पर अनुसधान कार्य किया जाता है

राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल मे चारा उत्पादन,

प्रजनन, पशु-पोषाहार एवं प्रबन्ध, दुग्धोत्पादन एवं उसका ससाधन, दुग्धजन्य पदार्थों के निर्माण एवं उनकी डिब्बाबन्दी तथा प्रसार प्रविधि आदि विषयों पर अन्वेषण कार्य किया जाता है

दक्षिणी प्रक्षेत्रीय अनुसधान केन्द्र, बंगलौर में भारतीय गायों का दुग्धोत्पादन बढ़ाने के लिये गोपशुओं के सकरण पर तथा दक्षिण भारत में डेरी विकास की अन्य समस्याओं पर अन्वेषण कार्य किया जाता है

भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् के बंगलोर में स्थित केन्द्रीय कृत्रिम वीर्यसेचन केन्द्र पर **जर्सी, थारपारकर, साहीवाल** तथा **मुर्रा** नस्ल के साँड पाले गये हैं इनमें एकत्रित वीर्य को कृत्रिम वीर्यसेचन के लिये देश के विभिन्न केन्द्रों पर भेजा जाता है पश्चिमी प्रक्षेत्रीय केन्द्र, बम्बई में प्रजनन कार्य हेतु **लाल सिंधी** नस्ल की गायों का एक यूथ रखा गया है पूर्वी प्रक्षेत्रीय केन्द्र, कल्याणी पर विभिन्न आयु वाले पशुओं के लिये आहार निर्धारित करने तथा पशु-पोषण सम्बन्धी अन्य समस्याओं पर कार्य हो रहा है

भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान संस्थान, इज्जतनगर (उत्तर प्रदेश), भारतीय कृषि अनुसधान संस्थान, नई दिल्ली, इलाहाबाद कृषि संस्थान, इलाहाबाद, कृषि संस्थान, आनन्द (गुजरात) तथा कुछ राज्यीय कृषि और पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालयों में भी गोपशुओं तथा भैंसों के शरीरक्रिया विज्ञान, प्रजनन, आनुवंशिकी, पोषण आदि विषयों पर अन्वेषण कार्य सम्पन्न हो रहा है

दूध तथा घी के रासायनिक विश्लेषण की कुछ मानक विधियों की उपयुक्तता की जाँच करने के लिये भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् की सिफारिश के अनुसार विभिन्न प्रक्षेत्रीय प्रयोगशालाओं में एक समन्वित अनुसधान प्रायोजना चलायी गयी है इनमें से 'त्वरित वसा परीक्षण', 'हसा परीक्षण', 'जीवाणु वलय परीक्षण' तथा 'त्वरित रेसाज़ूरिन अपचयन परीक्षण' उल्लेखनीय हैं

'त्वरित वसा परीक्षण' दूध तथा दुग्धजन्य पदार्थों में चिकनाई का पता लगाने की साधारण विधि है इसमें सामान्य क्षारों से बने एक अभिकर्मक, उभय प्रतिरोधी पदार्थों तथा ऐल्कोहल के एक मिश्रण का प्रयोग होता है यह परीक्षण परम्परागत 'गर्बर' परीक्षण से तुलनीय है

गाय के दूध में भैंस अथवा बकरी के दूध की मिलावट का पता लगाने के लिये 'हसा दुग्ध परीक्षण' नामक एक सीरम-मूलक परीक्षण की खोज की गयी है इस परीक्षण हेतु प्रयोग, क्षेत्रीय परिस्थितियों में दूध की जाँच करने के लिये कार्यकर्ताओं को विशेष प्रकार का उपकरण दिया जाता है क्रीम उतरे भैंस के दूध का खरगोश के शरीर में टीका देने से प्रतिपिण्ड उत्पन्न होता है विशिष्ट सीरम मूलक जाँच-द्रव बनाने के लिये इन्हें एकत्र करके शुद्ध कर लिया जाता है जाँच करने वाले दूध की एक बूंद में इस सीरम की एक बूंद मिलायी जाती है यदि इसमें भैंस के दूध की मिलावट की गयी है तो एक मिनट के अन्दर दूध में उपस्थित कैसीन के कण घनीभूत हो जाते हैं यदि गाय का दूध शुद्ध है तो उसमें कोई परिवर्तन नही होता यह परीक्षण इतना प्रभावशाली है कि यदि 99 भाग गाय के दूध में 1 भाग भैंस के दूध की मिलावट हो तो भी पता लग जाता है

गाय के दूध में 30% या अधिक मात्रा में भैंस के दूध की मिलावट का पता लगाने की दूसरी विधि 'जीवाणु वलय परीक्षण' है इसमें **स्ट्रेप्टोकोकस लैक्टिस** नामक प्रतिजन की एक प्रजाति की अभिरजित कोशिकायें प्रयुक्त होती हैं इस परीक्षण के करने पर गाय के दूध के पृष्ठ पर गहरे लाल रग का वलय अथवा धारी पड जाती है और माध्यम में किसी प्रकार का रग उत्पन्न नही होता गाय के दूध में भैंस का दूध मिला होने पर सतह पर सकीर्ण वलय का विकास होकर दूध का रग लाल पड जाता है और बर्तन की तली पर लाल रग का तलछट बैठ जाता है

क्षीण-जीवाणुयुक्त दूध के परीक्षण हेतु उच्च ताप (45°) पर रेसाज़ूरिन के अपचयन पर आधारित परीक्षण किया जाता है व्यावसायिक पेप्टोन, यीस्ट निष्कर्ष तथा थोडी मात्रा में गोमास निष्कर्ष डालने से अधिक सख्या में वृद्धि करने वाले जीवाणुयुक्त दूध में रेसाज़ूरिन का अपचयन तेजी से होने लगता है इस सिद्धात पर आधारित दो मिनट में सम्पन्न होने वाली 'रेसाजरिन अपचयन परीक्षण' विधि विकसित की गयी जिसमें दुग्धशालाओं में प्राप्त दूध की तत्काल जाँच हो जाती है

अन्य आवश्यक अध्ययन इस प्रकार है दूध में उपस्थित कुल ठोस पदार्थ तथा वसाविहीन ठोस पदार्थों के अनुमापन की विधियों का मानकीकरण, प्रोटीन की मात्रा का पता लगाने के लिये रजक-बधन विधि का प्रयोग, दूध में मिलावट का पता लगाने के लिये विद्युतचालकता विधि का उपयोग दूध में उपस्थित वसाविहीन ठोस पदार्थों का परोक्ष रूप में पता लगाने के लिये तीव्र विद्युतमापी विधि का प्रयोग, तथा एथिलीन डाइक्लोरोट्राइफेनिल ऐसीटिक अम्ल (ई-डी-टी-ए) को प्रयुक्त करके दूध में मैग्नीशियम, कैल्सियम, क्लोराइड, लैक्टोस तथा प्रोटीन की मात्रा का पता लगाने वाली विधियों का अध्ययन.

देशी घी में डालडा की मिलावट का पता लगाने के उद्देश्य से डालडा में तिल का तेल मिलाने की सिफारिश की गयी है डालडा को रतनजोत (**ओनोस्मा हिस्पिडम**) से रँगने का भी सुझाव दिया गया देशी घी में वनस्पति की मिलावट का पता लगाने के लिये एक पेपर क्रोमैटोग्राफिक विधि भी विकसित की गयी है

घी की सफाई करने वाले विशेष प्रकार के बर्तनों में मक्खन को गर्म करके घी बनाने की सुधरी विधि निकाली गयी है दही, खोवा, छेना तथा घरेलू पनीर बनाने की विधियों का भी मानकीकरण किया जा चुका है.

दही, मक्खन, पनीर तथा किण्वित दूध में उपस्थित लैक्टिक जीवाणुओं की उपापचयी क्रियाओं का अध्ययन किया जा चुका है तथा राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान सस्थान, करनाल और इसके बंगलौर स्थित दक्षिणी प्रक्षेत्रीय अन्वेषण केन्द्र द्वारा इन जीवाणुओं के उपयुक्त सवर्ध जनता को वितरित किये जाते हैं गाय के दूध में 'चेड्डर पनीर' बनाने तथा 'गौड पनीर' तैयार करने की विधियाँ भी सफलतापूर्वक विकसित की जा चुकी हैं

पनीर बनाने में प्रयुक्त होने वाले पशुजन्य रेनेट के स्थान पर दूध को जमाने के लिये वानस्पतिक एजाइम खोजने के प्रयास में **वियैनिया क्वागुलेंस** की छोटी-छोटी रसदार फलियों से प्राप्त एक एजाइमयुक्त पदार्थ (वानस्पतिक रेनेट) घरेलू पनीर बनाने में सतोषजनक पाया गया है कुछ जीवाणुज विभेदों (जीवाणुज रेनेट) से प्राप्त ऐसे ही एजाइमयुक्त पदार्थ घरेलू तथा चेड्डर पनीर बनाने में उपयोगी देखे गये हैं

उपभोक्ताओं के आकर्षण हेतु मक्खन में रग मिलाना आवश्यक है मैसूर, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश तथा महाराष्ट्र में पाये जाने वाले **अनाटो** (**बिक्सा ओरेलाना**) नामक पौधे के बीज के छिलके में उपयुक्त रजक पदार्थ प्राप्त होता है

क्रीम उतरे दूध, घृत अवशेष तथा छेने के पानी जैसे उपजातो के समुचित उपयोग के लिये औद्योगिक कैसीन, लैक्टोस तथा विभिन्न खाद्य उत्पाद तैयार करने की विधियो का विकास किया गया है खुले कडाहो मे दूध उबालकर उसमे सघनित दूध तथा ग्रामीण परिस्थितियो मे शुष्क मखनिया दूध तथा बटर मिल्क तैयार करने की विधियो का भी विकास किया गया है

रोग नियंत्रण—भारतीय प्लेग आयोग की सिफारिश के परिणामस्वरूप पशु रोग नियन्त्रण के साधन जुटाने की दृष्टि से पशुओ को होने वाली बीमारियो का पता लगाने के लिये 1889 मे भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान की स्थापना की गयी इसकी दो शाखाये इज्जतनगर तथा मुक्तेश्वर मे है जिनको मिलाकर सस्थान धीरे-धीरे उच्च अध्ययन हेतु अन्वेषण एव प्रशिक्षण केन्द्र बन गया है इसमे पशु जैविक उत्पाद बनाने की सुविधाये भी सुलभ हो गयी है पशुधन की बीमारियो से सम्बन्धित समस्याओ पर कार्य करने के लिये कुछ राज्यो मे भी पशुधन अनुसधान केन्द्र खोले गये है भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् प्रमुख पशु रोगो के नियन्त्रण हेतु प्रायोजनाओ को आर्थिक सहायता देने के अतिरिक्त देश मे चल रहे अन्वेषण कार्यो मे समन्वय स्थापित करती तथा आवश्यक तकनीकी सलाह भी देती है

पशु-प्लेग मे प्रतिवर्ष हजारो पशुओ की मृत्यु हो जाती थी 1954 मे राष्ट्रीय पशु-प्लेग उन्मूलन योजना चलाकर उस पर विजय प्राप्त कर ली गयी है इस बीमारी के नियन्त्रण के लिये एक राज्य से दूसरे राज्य को जाने वाले पशु मार्गो पर यत्र-तत्र जॉच करने की चौकियाँ स्थापित की गयी तथा देश के सीमावर्ती भागो मे 321 किमी प्रतिरक्षित क्षेत्र के साथ 17 सगरोध केन्द्र स्थापित किये गये

1953 मे भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान द्वारा उत्पादित 'ऑयल एड्ज्वेट वैक्सीन' के प्रयोग से पशुओ मे प्रतिरक्षा उत्पन्न करके गलाघोटू रोग पर विजय पा ली गयी है - बीमारी फैलने वाले क्षेत्रो मे सुसगठित फार्मो के पशुओ मे प्रयुक्त होने के लिये उच्च शक्ति के गलाघोटू प्रतिसीरम का उत्पादन भी इसी सस्थान द्वारा किया गया है

रोगी पशु की लार लेकर स्वस्थ पशुओ के मुह पर लगाकर खुरपका-मुहपका रोग पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा चुका है प्रयोगात्मक रूप से सदूषित पर्वतीय गोपशु की जीभ से ऐपिथेलियम लेकर तैयार किया गया क्रिस्टल वायोलेट वैक्सीन मूल्यवान पशुओ मे इस रोग के प्रति प्रतिरक्षा उत्पन्न करने के लिये प्रयुक्त होता है अधिक मात्रा मे वैक्सीन तैयार करने के लिये भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान मे अलग किये गये वाइरस की एक दिन की आयु वाले खरगोशो तथा गिनी-पिगो मे प्रवर्धित करने का कार्य किया जा चुका है

विकास कार्य—केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो द्वारा चलायी गयी अनेक योजनाओ द्वारा पशुधन का सुधार किया जा चुका है और इस सदर्भ मे कुछ योजनाये अब भी कार्य कर रही है

कृषि उत्पाद के निरूपण प्रोग्राम के आधार पर शहरी क्षेत्रो मे दुग्धोत्पादन को बढावा देने के लिये चतुर्थ पचवर्षीय योजना की अवधि मे एक गहन पशु विकास योजना चलाने की सिफारिश की गयी है गाय-भैसो के प्रजनन क्षेत्रो मे विकास खण्डो की स्थापना की जा रही है देश मे गोपशुओ तथा भैसो के विकास मे मुख्य ग्राम योजना का भी काफी योगदान रहा है 1962–63 मे देश मे कुल मिलाकर 420 मुख्य ग्राम खण्ड थे जिनके अन्तर्गत 20 25 लाख प्रजनक गाये तथा 10 49 लाख प्रजनक भैसे थी इन मुख्य ग्राम खण्डों मे 7,770 गो-साँड तथा 1,533 भैसा-साँड तैयार हुये जिन्हे गाय-भैसो को गाभिन करने के लिये प्रयुक्त किया गया पजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, बिहार तथा दण्डकारण्य मे थारपारकर तथा मुर्रा नस्ल के पशु रखने के लिये फार्म खोलने का भी निश्चय किया गया

देश मे स्थापित 150 पशुधन फार्मो मे से 100 फार्म राज्यो के पशु-पालन विभाग के निदेशको के प्रशासनिक नियन्त्रण मे कार्य कर रहे है इन फार्मो पर 22 नस्ल के गोपशु तथा 2 नस्ल की भैसे पाली जाती है कुल मिलाकर 16,660 गाये तथा 4,700 भैसे इन फार्मो पर रखी गयी है

देश मे साँड रखने वाले 13 फार्म है इनमे से सबसे छोटा फार्म 8 हेक्टर का है जो उडीसा मे है इस समय इन फार्मो पर 921 बछडो तथा 52 कटडो का पालन-पोषण किया जाता है.

पहाडी तथा अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे सकरण कार्य करने के लिये जर्सी साँड प्रदान करने के उद्देश्य से हिमाचल प्रदेश मे कतौला तथा मैसूर प्रदेश मे हेसरघट्टा नामक स्थानो पर जर्सी पशु प्रजनन फार्मो की स्थापना की गयी है

देश मे पशुधन उत्थान हेतु राजकीय प्रयासो को बढावा देने के लिये द्वितीय पचवर्षीय योजना मे गोशालाओ के विकास के लिये एक कार्यक्रम निर्धारित किया गया था भारतवर्ष मे ऐसी मान्यता-प्राप्त 691 गोशालाये है जिनमे 14 सुविख्यात नस्लो की 14,053 गाये तथा 1,427 साँड रखे जाते है इनमे से 262 गोशालाओ को सरकार की ओर से तकनीकी तथा आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाती है

देशी साँडो के उन्मूलन हेतु महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पजाब, हरियाणा, आन्ध्र प्रदेश, केरल, मैसूर, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बगाल, उडीसा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, मणिपुर तथा अण्डमान द्वीप समूह मे पशुधन विकास अधिनियम लागू किया गया है अन्य प्रदेशो मे भी ऐसा ही कानून लागू करने पर विचार किया जा रहा है

पशु-ग्रामो मे पैदा चुनिंदा बछडो के पालन-पोषण हेतु सहायता प्रदान करने के लिये द्वितीय पचवर्षीय योजना के उत्तरार्द्ध मे एक बछडा अनुदान योजना चालू की गयी इस योजना के अन्तर्गत लगभग 3,000 बछडो के पालन-पोषण हेतु आर्थिक सहायता प्रदान की गयी

तृतीय पचवर्षीय योजना मे हरियाना तथा मुर्रा नस्ल के पशुओ के पजीकरण हेतु एक कार्यक्रम तैयार किया गया आगामी योजनाओ मे इस पजीकरण मे गिर तथा लाल सिन्धी नस्ल के पशुओ को भी सम्मिलित किया जायेगा.

पाँच प्रदेशो के सघन पशु सख्या वाले 60 गाँवो मे पशुओ का बीमा करने की एक अग्रगामी योजना तैयार की जा रही है बानगी के तौर पर सर्वेक्षण द्वारा पशु-स्वास्थ्य, उनकी कार्य क्षमता तथा विभिन्न कार्यो के व्यय पर आँकडे उपलब्ध करने के लिये दो वर्ष की अवधि मे इस योजना को दो प्रावस्थाओ में कार्यान्वित किया जावेगा

भेड़ें

भेड (स –ऊर्णवती, त और मल –सेमेरी ग्रडु) का ससार की कृषि-अर्थव्यवस्था मे महत्वपूर्ण स्थान है यह बिना जुती, परती भूमियो पर उगी वनस्पतियों और अपतृणो को चर कर मनुष्यो को वस्त्र और आहार प्रदान करने मे सहायक होती है विनम्र होने के कारण इसे अन्य पशुधन के साथ सहज ही पाला जा सकता है भेड से प्राप्त मास और ऊन किसान की नकद आमदनी बढाने में सहायक हैं और मेंगनी की खाद से उनकी भूमि भी उर्वर होती है

पालतू भेड के मूल स्थान के विषय मे बहुत ही कम ज्ञात है केवल इतना ही विदित है कि ईरान, अफगानिस्तान और तिब्बत की उरियल (**ओविस ओरियण्टेलिस** मेलिन), दक्षिणी पूर्वी यूरोप की मूफलो (**ओ म्यूसीमोन** पल्लास) तथा भारतवर्ष मे हिमालयी प्रदेशों की अर्गाली (**ओ. एमोन** लिनिग्रस) जगली भेडो से उसका निकट सम्बन्ध है

अनुमानत ससार मे भेडो की लगभग 200 नस्लें होंगी ये नस्लें दूध, मास और ऊन को ध्यान मे रखते हुये विकसित की गयी है इस प्रकार की 30 नस्लें भारतवर्ष मे आमतौर से पायी जाती है जिनमे मूल-निवासी, अज्ञात-कुल और सकरित प्ररूप भी सम्मिलित हैं ससार की 95 80 करोड भेडो मे से भारतवर्ष मे लगभग 4 करोड भेडे पायी जाती है, भेडो मे भारतवर्ष का विश्व मे पाँचवा स्थान है सारणी 41 मे ससार के ऊन उत्पादन और भेडों की सख्या में भारतवर्ष का अशदान दिखाया गया है

भारतवर्ष मे ऊन उत्पादन करने वाली भेडें भारत के मैदानो और जोरिया क्षेत्र के अन्तर्गत राजस्थान, कच्छ, सौराष्ट्र और उत्तर गुजरात के शुष्क क्षेत्रो मे सकेन्द्रित हैं कश्मीर और उसके निकटवर्ती हिमाचल प्रदेश के जिले तथा गढवाल की पहाडियो मे उत्तम ऊन देने वाली किस्मो को पालने के लिये परिस्थितियाँ अत्यन्त अनुकूल हैं विन्ध्य पर्वत श्रेणियो से नीलगिरि की पहाडियो तक विस्तृत दक्षिणी पठार मे, विशेषत पूर्वी आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु मे भेडो की सर्वाधिक सख्या पायी जाती है इस क्षेत्र की अधिकाश भेडे बालदार होती हैं और इनसे या तो बिल्कुल ही नही या फिर बहुत कम ऊन मिलता है इस क्षेत्र की भेडें अपनी उत्पादकता के लिये प्रसिद्ध हैं और बादूर किस्म का पालन मिश्रित-कृषि-अर्थव्यवस्था मे अति उपयोगी है

1966 मे भारत में भेडे 4 44 करोड आँकी गयी थी (सारणी 42) और इसी वर्ष इन भेडो से 35,300 टन ऊन प्राप्त हुआ 1961 मे इनसे 1,58,854 टन मास और 1 55 करोड खालो के अतिरिक्त खाद की बडी मात्रा (औसतन 0 5 से 0 7 टन प्रति भेड प्रतिवर्ष) भी प्राप्त हुयी केवल भेड और ऊन उत्पादो से 1960–61 मे 44 17 करोड रुपये की राष्ट्रीय आय हुयी और 1963 मे इनसे 18 करोड रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित की गयी

ऊन का वार्षिक उत्पादन प्रति भेड 340 से 1,800 ग्रा तक (औसतन 700 ग्रा) होता है भारत के उत्तरी मैदानो में उत्पादित श्वेत ऊन की विदेशो मे कालीन बनाने के लिये विशेष माँग है भारत 50% से अधिक ऊन-कतरन का निर्यात करता है जिसका मूल्य लगभग 8 करोड रुपये है 1963 मे भारत में ही लगभग 18,870 टन ऊन की खपत, कुटीर उद्योग, कालीन उद्योग और मिलो मे हुयी देश मे जितना ऊनी कपडा बनता है उससे देश के एक-तिहाई से कुछ ही अधिक लोगो की माँग पूरी होती है ऊनी कपडे की बढती हुयी माग की पूर्ति के लिये, भारत ने 1969–70 मे 17 करोड रुपये का 18,400 टन ऊन विदेशों से आयात किया था

भारत मे एक जाति विशेष के ही लोग भेड पालते है ये ऋतुओ और चरागाहो की उपलब्धता के अनुसार एक स्थान मे दूसरे स्थान में घूमते रहते हैं रेवडो के स्वामियो ने इस उद्योग का ताल-मेल कृषि धन्धो के साथ बैठा रखा है वर्षा ऋतु मे जब खेतों मे अन्न की फसले बोयी रहती है तो गडरिये अपनी भेडो सहित पहाडी क्षेत्रो की ओर चले जाते हैं इस प्रकार भेडो द्वारा फसलो के चरे जाने का भय नही रहता और भेडें भी ऐसे ही स्थानो मे पहुँच जाती हैं जहाँ के शुष्क चरागाह भेड-पालन के लिये उपयुक्त होते हैं खरीफ की फसल कट जाने के बाद भेडे उन खेतो मे बचे खरपतवार और घास चरती है और खेतो को अपनी मेंगनी से उर्वर बनाती है कृष्य भूमि के छोटी-छोटी जोतो मे बँट जाने के कारण देश-भर मे मिश्रित-कृषि और अन्योन्याश्रित अर्थ-व्यवस्था का उदय हुआ है जिसमे भेड पालको को कृषि और चरागाह दोनो से ही जीविका मिल जाती है

सामान्यत कोई भी भेड पालक, जीविका निर्वाह के लिये अपने रेवड में कम से कम 50–60 तक भेडें रखता है वे किसान, जो खेती के सहायक धन्धे के रूप मे भेडे पालते हैं, 20–30 मादा भेडो का छोटा रेवड रखते हैं उत्तर भारत के विस्तृत शुष्क मैदानी इलाको के कुछ रेवडो के स्वामी और हिमालयी क्षेत्रों मे चले जाने वाले बहुत से धनी गडरियो के रेवडो में 500–1,000 तक भेडे रहती हैं राजस्थान के कुछ भू-स्वामियो के रेवड 5,000 भेडों तक के होते हैं इन भेडो का पालन-पोषण उनके आश्रित रहने वाले गडरिये परिवार करते हैं इस देश में औसतन 50–60 भेडो के रेवड पर निर्भर रहने वाले एक गडरिया-परिवार का जीवन-स्तर सामान्यत एक साधारण खेतिहर मजदूर की तुलना में ऊँचा होता है

भेडे साधारणतया अधिक वर्षा नही सह सकती. कम वर्षा और शुष्क ठण्डी जलवायु मे भेडे स्वस्थ रहती है 76 सेंमी से कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे भेडे सर्वाधिक सख्या मे पायी जाती हैं जहाँ इससे अधिक वर्षा होती है वहाँ गडरिये बरसात के दिनो मे सूखे भागो की ओर प्रवास कर जाते है और वर्षा बीत जाने पर उन चरागाहो मे फिर से लौट आते हैं निचले जलाक्रान्त स्थानो मे भेड पालने से भेडो को कई रोग हो जाते हैं किसी भी नस्ल की भेडो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने से उनके पोषण तथा उस स्थान के परजीवियो और रोगो के प्रति असक्राम्यता का भय रहता है यद्यपि भेडो को नरम हरी घास प्रिय है किन्तु इसे शुष्क भूमि पर ही उपलब्ध होना चाहिये

कृषि अनुसधान साख्यिकी सस्थान (भारतीय कृषि अनुसधान परिषद्) ने भारतीय भेडो से ऊन की प्राप्ति और भारत मे प्रचलित भेड-पालन की विधियो की जानकारी के विश्वसनीय आँकडे एकत्रित करने के लिये उपयुक्त प्रतिचयन की तकनीको का विकास किया है

सारणी 41 – विश्व के ऊन उत्पादन में भारत का योगदान*

	विश्व			भारत		
	1966-67	1967-68	1968-69	1966-67	1967-68	1968-69
भेड़ें (करोडों मे)	94 50	94 60	95 80	4 13	3 94	3 94
कच्चा ऊन (हजार टनों मे)	2,697	2,748	2,789	32 40	32 40	32 40

* Wool & Woollens of India, Indian Woollen Mills Federation, Bombay, 1971, pp 29-30

सारणी 42 – 1966 में भारत में भेड़ो का वितरण*

(हजारों में)

प्रदेश	सख्या
असम	73
आन्ध्र प्रदेश	8,004
उडीसा	1,182
उत्तर प्रदेश	2,623
केरल	12
गुजरात	1,652
जम्मू एव कश्मीर	1,152
तमिलनाडु	6,621
दिल्ली	10
पजाब	444
पश्चिमी बगाल	640
बिहार	1,247
म य प्रदेश	1,915
मणिपुर, त्रिपुरा, अडमान और निकोबार द्वीप, लक्षदीवी, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप, चडीगढ तथा पाण्डिचेरी	19
महाराष्ट्र	2,205
मैसूर	4,748
राजस्थान	10 323
हरियाणा	517
हिमाचल प्रदेश	1,049
योग	44,436

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Food & Agriculture, Govt of India, 1972

देश में भेड पालने वाले विभिन्न भू-भागो मे चार अग्रगामी नमूना-सर्वेक्षण किये गये थे ये सर्वेक्षण 1959–60 मे गुजरात प्रदेश के जोरिया क्षेत्र मे, 1960–61 मे राजस्थान मे (कोटा मडल को छोडकर), 1962–63 मे हिमाचल प्रदेश और पजाब के कागडा जिले मे, भेडो की सख्या और उनके उत्पादन का अनुमान लगाने के लिये किये गये थे मैसूर प्रदेश मे 1961–62 मे, तटवर्ती जिलो (उत्तरी कनारा, दक्षिणी कनारा और कुर्ग को छोडकर) में मास की प्राप्ति को ध्यान में रखते हुये सर्वेक्षण किये गये भारत की लगभग 40% भेडे इन नमूना-सर्वेक्षणो के अन्तर्गत आ गयी इन आँकडो के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भेडो के रेवडो की सबसे बडी सख्या राजस्थान में और उसके बाद मैसूर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और पजाब के कागडा जिले मे है जोरिया क्षेत्र और राजस्थान प्रदेश मे घुमन्तू रेवडो का प्रतिशत सबसे अधिक है साथ ही इन क्षेत्रो मे स्थिर और घुमन्तू दोनो ही प्रकार के रेवडो में भेडो की सख्या सबसे अधिक है. हिमाचल प्रदेश के रेवड सबसे छोटे होते हैं

भारत मे भेड पालना अभी भी जीवन प्रणाली ही है और इस उद्योग का ठोस आधार पर सघटन करना शेष है अन्य भेड-पालक प्रमुख देशो की भेडो की तुलना मे भारत की औसत भेड निम्नकोटि की है ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड मे उन्नत किस्म की भेडो से 3 6–5 4 किग्रा ऊन प्राप्त होता है जबकि औसत भारतीय भेड मे केवल 700 ग्रा ऊन प्राप्त होता है भारत मे 100 मादा भेडे 60 या 70 ही मेमनो को जन्म देती है जबकि इतनी ही उन्नत भेडे 120–140 मेमने पैदा कर सकती है

ब्रिटेन की अत्यन्त उन्नत और महत्वपूर्ण नस्ले **साउथडाउन, लीसेस्टर** और **लिकन** हैं इन नस्लो के विशुद्ध मेढो का भार 68–113 किग्रा और भेडो (मादा) का 54 4–79 4 किग्रा होता है, किन्तु भारतीय मेढो और भेडो के लिये ये ही मान क्रमश 27 2–36 3 और 18 1–27 2 किग्रा हैं यूरोप मे भी पाली जाने वाली भेडे मिश्रित कृषि अर्थव्यवस्था के लिये उपयुक्त है. इनसे मास, ऊन और दूध, तीनो ही प्राप्त होते हैं दूध देने वाली भेडो की दो महत्वपूर्ण नस्ले बालकन की **जैकेल** और मध्य यूरोप की **लेंडशीप** हैं सुनहरे पैरो वाली **मेरिनो,** स्पेन की मूलवासी है इसके उत्तम ऊन की तुलना किसी भी अन्य ऊन से नही की जा सकती, फलत ससार के ऊन उद्योग मे इसने एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है अब यह नस्ल ऑस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और सयुक्त राज्य अमेरिका मे बडी सख्या में पाली जाती है जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रो और महाराष्ट्र के दक्षिणी पठारो मे उत्तम ऊन वाली नस्लो के विकास के अध्ययन के लिये अमेरिका मे लायी गयी उत्तम ऊन वाली **मेरिनो** किस्म की **रैम्ब्युलेट** और स्थानीय किस्मो से सकरण किये गये हैं 12–15 वर्ष की अवधि में सकरित सतति से प्राप्त ऊन की मात्रा और उसके गुण दोनो मे ही यथेष्ट सुधार हुआ है उष्णकटिबन्धीय देशो की मासदायी भेडो मे ईरान और अफगानिस्तान का मोटी पूछ वाला **दुम्बा** और सोमालिया की मोटी पुट्ठो वाली भेड प्रमुख है मध्य एशिया की **कराकुल** नस्ल की भेड अपनी खाल के लिये प्रसिद्ध है चुनी हुयी भारतीय किस्मो के मास के गुणो पर जो अध्ययन हुये हैं उनसे विदित होता है कि इस देश मे मासदायी नस्ले नही हैं इसीलिये तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और हरियाणा की स्थानीय नस्लो और प्रमुख मासदायी नस्लो के सकरण द्वारा, मासदायी नस्लो के विकास के लिये एक योजना प्रस्तावित की गयी है

भारतीय नस्लें

भारत मे ओविस लिनिअस वश (कुल–बोविडी, उपकुल–कैप्रिनी) की 14 या उससे कुछ अधिक सुपरिचित नस्ले पायी

जाती हैं इन नस्लो के नाम मुख्यत पाले जाने वाले क्षेत्रो के नामो पर ही है इन नस्लो को दो प्ररूपो मे विभाजित करते है बालो वाले और ऊन वाले बालो वाले प्ररूप अपने मास और दूध के लिये और ऊन वाले अपने ऊन के लिये अधिक उपयोगी है. सारणी 43 मे कुछ महत्वपूर्ण नस्लो के शारीरिक माप, भार और औसत ऊन उत्पादन दिये हुये है

भारत में भेड पालने वाले भूखण्डो को मोटे तौर पर चार क्षेत्रो मे विभाजित कर दिया गया है शीतोष्ण हिमालयी, शुष्क उत्तरी, दक्षिणी, और पूर्वी क्षेत्र जिनमे से प्रत्येक मे पृथक्-पृथक् प्रकार की नस्ले पायी जाती है

शीतोष्ण हिमालयी क्षेत्र के अन्तर्गत जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पजाब और उत्तर प्रदेश के पहाडी इलाके हैं जिनमे पूरे वर्ष विभिन्न ऊँचाइयो पर उपयुक्त चरागाहो की सुविधाये प्राप्त है इस क्षेत्र मे लगभग 52 लाख भेडे हैं जिनसे प्रतिवर्ष लगभग 4,720 टन ऊन प्राप्त होता है यह ऊन लम्बे रेशे वाला, मुलायम और महीन होता है और इसकी खपत शाल, लोई, पश्मीना और पट्टू आदि बनाने मे हो जाती है अधिकाश रेवड श्वेत ऊन वाली भेडो के होते हैं किन्तु भूरे और धूसर रग की भेडे भी बडी सख्या मे पाली जाती है उत्कृष्ट रोम वाली और महीन ऊन वाली भेडे 2,400–3,600 मी. ऊँची पर्वत श्रेणियो पर निवास करती हैं जहाँ पर्याप्त वर्षा होती है और प्रचुर चरागाह हैं गढवाल जिले के पूर्वी भाग तथा कम ऊँचाइयो पर निवास करने वाली भेडो का ऊन मोटा होता है कागडा, चम्बा, कुल्लू और कश्मीर की घाटी की भेडो के रेवड नियत समय पर ऊँचे स्थानो पर चले जाते हैं उनका ऊन अच्छे किस्म का होता है

पुंछ, कारनाह और कश्मीरी घाटी नामक विशिष्ट नस्ले जम्मू एव कश्मीर मे पायी जाती हैं **पुछ और कारनाह** नस्ल की भेडो से अपेक्षाकृत मुलायम और अधिक ऊन प्राप्त होता है **कश्मीरी घाटी** नस्ल की भेडे छोटी और अधिकतर रगीन ऊन देने वाली है इनसे मोटे और महीन ऊन का मिश्रण प्राप्त होता है इन नस्लो के अतिरिक्त, **भाकरवाल और भादरवाह** (गद्दी) दो महत्वपूर्ण नस्ले हैं जिनका उद्भव हिमालय की घाटियो मे हुआ और ये बाद मे अधिक ऊँचाइयो की ओर चली गयी हैं **रामपुर-बुशायर** एक अन्य महत्वपूर्ण नस्ल है जिसका जन्म हिमाचल प्रदेश के मासो जिले मे हुआ इन भेडो का ऊन रगीन और नीचे का ऊन मुलायम होता है

ऊँचाई पर स्थित पुछ मे पायी जाने वाली **पुछ** नस्ल की भेडे कश्मीर की सबसे बडी भेडे है अधिकाश भेडे सीग-रहित होती हैं. पूछ छोटी और आधार पर मोटी और कान प्राय लम्बाई मे छोटे होते हैं इनका रग अधिकतर श्वेत होता है ये भेडे ऊन उत्पादन के लिये सर्वोत्तम है इनमे दो या तीन कतरनो मे प्रति वर्ष, प्रति भेड, औसतन 1 6 किग्रा ऊन उतरता है इन भेडो का पालन गर्मियो मे उर्वर चरागाहो मे और जाडो मे बॉधकर एकत्रित घास और चारा खिलाकर किया जाता है

कारनाह तहसील मे 1,200–4,600 मी की ऊँचाई पर पायी जाने वाली **कारनाह** नस्ल की भेडे हृष्ट-पुष्ट होती है इस नस्ल की सर्वोत्तम भेडे कैल के समीप पायी जाती हैं मेढो के

सारणी 43 – विभिन्न नस्लो के शारीरिक नाप, भार और औसत ऊन उत्पादन*

नस्ल		स्कन्ध प्रदेश तक ऊँचाई (सेमी)	स्कन्ध से जघनास्थि तक लम्बाई (सेमी)	वक्ष परिधि (सेमी)		शारीरिक भार (किग्रा)	ऊन की प्राप्ति प्रति भेड प्रति वर्ष (किग्रा)
गुरेज		69 6	72 0	91 4		58 97	1 36–1 81
कारनाह		64 0	68 6	91 4			0 91–1 36
भाकरवाल		50 8		101 6		38 56	1 36–1 81
भादरवाह (गद्दी)		66 0	68 6	91 4		31 75	1 36–1 81
रामपुर-बुशायर		64 0–68 6	63 5–71 0	76 2–78 7		31 75	1 36–1 81
लोही	नर	78 7	76 2	106 6		69 40	2 27
	मादा	67 0	62 0	86 4		36 74	1 36
बीकानेरी	नर	72 0	73 7	101 1		63 50	2 20†
	मादा	62 0	61 0	78 7		36 29	1 50
काठियावाड	नर	73 7	76 2	86 4		45 36	1 36
	मादा	63 5	61 0	73 7		27 22	
दक्कनी		53 3	25 4	71 1–78 7	नर	31 75–36 29	0 349
					मादा	20 4 –24 95	0 24–0 91
माड्या		53 3–68 6	91 4–99 0	86 4–99 0		29 48	
नेल्लोरी	नर	76 2	71 1	86 4		40 82	
	मादा	73 7	68 6	81 3		37 19	

*Lall, *Misc Bull Indian Coun agric Res*, No 75, 1956, 34

†हिसार फार्म मे बीकानेरी मेढो मे दो कतरनो से अधिकतम उत्पादन 5 44 किग्रा रहा

सीग बड़े और मुडे तथा नाक बडी होती है ऊन महीन, मध्यम और छोटे प्रकार की, बालो से रहित और अधिकतर श्वेत होती है दो बार कतरने से प्रति भेड, प्रतिवर्ष 0 90–1 36 किग्रा ऊन मिलता है

भाकरवाल भेडे सहिष्णु और हृष्ट-पुष्ट होती हैं ये घुमन्तू स्वभाव की भेडे कश्मीर की घाटियो और पीर-पजाल पर्वत मे अपेक्षाकृत ऊँचे क्षेत्रो पर पायी जाती है इन भेडो के अनेक रेवड ग्रीष्म ऋतु में कश्मीर की घाटी, लिद्दर और पहलगाव मे चले जाते हैं कुछ भेडो की पूछ मोटी होती है, कान प्राय लम्बे, चौडे और नीचे को लटके हुये, आँखो और थूथन के चारो ओर का भाग भूरे या ताम्र-भूरे रग का होता है इन भेडो का ऊन रगीन और मोटा होता है प्रति भेड से वर्ष मे औसतन 1 6 किग्रा ऊन तीन कतरनो मे प्राप्त होता है इस ऊन का उपयोग स्थानीय रूप मे लोई बनाने मे किया जाता है

भादरवाह (गद्दी) नस्ल की भेडे आकार मे छोटी होती हैं और किश्तवार और जम्मू की भादरवाह तहसील मे पायी जाती हैं जाडो मे इनकी बहुत बडी सख्या कुल्लू और कॉगडा की घाटियो मे आ जाती है और ये ग्रीष्म ऋतु मे पीर-पजाल की सर्वोच्च ऊँचाइयो में विशेषकर पद्दर श्रेणियो मे चरने पहुँच जाती हैं मेढे सीगदार होते हैं और भेडे बिना सीग की होती हैं इनके सारे शरीर पर श्वेत ऊन और मुख पर भूरे रग के बाल होते हैं ऊन चमकदार और महीन होता है एक भेड से वर्ष मे औसतन 1 13 किग्रा ऊन मिलता है जो तीन कतरनो मे उतारा जाता है इस ऊन का कुछ अश अमृतसर के बाजारो और धारीवाल मिलो को भेजा जाता है चमडी के पास के ऊन का प्रयोग कुल्लू के उत्कृष्ट शालो और कम्बलो के बनाने मे किया जाता है

रामपुर-बुशायर हिमालयी क्षेत्रो की एक विशिष्ट नस्ल है इसका शरीर सुगठित, आकार मध्यम और सीग पीछे तथा नीचे की ओर मुडे हुये, आँखे छोटी, कान लम्बे और पूछ छोटी और पतली होती है गर्मी मे बुशायर भेडो के रेवड तिब्बत की सीमा तक पहुँच जाते हैं और जाडो मे शिवालिक की निचली श्रेणियो मे यमुना, टोम और सतलज की घाटियो मे वापस चले आते है इस नस्ल की कई किस्मे पायी जाती हैं क्योकि गर्मी और जाडो मे स्थान बदलते समय अन्य अज्ञात कुल की पहाडी नस्लो से यह सकरित हो जाती है यही नस्ल कुछ कम शुद्ध रूप मे देहरादून जिले की चकराता तहसील मे पहाडी भेडो के साथ पायी जाती है प्रतिवर्ष प्रति भेड से लगभग 1 36–1 81 किग्रा उत्तम ऊन प्राप्त होता है जिसमे से अधिकाश ऊन की खपत वही हो जाती है भूरे रग की भेडो के ऊन से दो-सूती ऊनी कपडा (ट्वीड) बनाया जाता है तिब्बत के सीमावर्ती क्षेत्रो मे बकरियो की भाति इन भेडो से भी बोझा ढोने का काम लिया जाता है उत्तर प्रदेश मे पहाडी भेडो के ऊन गुणो को सुधारने के लिये उन्हे इस नस्ल से सकरित किया जाता है

भारत के शुष्क उत्तरी क्षेत्रो मे जिनके अन्तर्गत राजस्थान, गुजरात, पजाब और उत्तर प्रदेश के मैदान और मध्य प्रदेश के कुछ भाग भी सम्मिलित हैं लगभग 1 238 करोड भेडे पायी जाती है जिनसे प्रतिवर्ष 20,210 टन ऊन मिलता है, जो भारत के ऊन उत्पादन का 63% है इसमे से 11,000–12,000 टन ऊन कालीन-ऊन के रूप मे वर्गीकृत करके निर्यात कर दिया जाता है

राजस्थान, उत्तर गुजरात और मध्य प्रदेश के कुछ भागो की भेडे उन क्षेत्रो के सूखे, गर्मी और जाडे के मौसमो को सहने की अभ्यस्त हैं ये अपना जीवन-निर्वाह बहुत ही कम चारे पर कर लेती है और लम्बी यात्रा और बारम्बार सूखे की कठिनाइयो को सहने मे समर्थ हैं. इस क्षेत्र मे चार ऐसी विशेष नस्ले हैं जो मरुभूमि की परिस्थितियो मे जीवन-निर्वाह करने मे पूरी तरह अनुकूलित हो चुकी हैं ये है लम्बे कानो वाली **लोही**, भूरे सिर वाली **बीकानेरी**, काले मुख वाली **मारवाडी** और गहरे चाकलेटी रग की मुख वाली **कच्छी**

लोही नस्ल पर भारत को किसी समय गर्व था किन्तु अब यह पाकिस्तान के लायलपुर, झग और माटगोमरी जिलो मे पायी जाती है यह लम्बे कानो वाली, तनकर चलने वाली अनोखी नस्ल है जिससे लम्बे रेशे वाला बहुत ही मोटा ऊन, लगभग 1 81 किग्रा प्रति भेड, प्राप्त होता है साथ ही इससे उत्तम मास और काफी मात्रा मे (कभी-कभी 3 63 किग्रा प्रतिदिन तक) दूध भी मिलता है इस प्रकार यह मिश्रित कृषि के लिये अत्यन्त अनुकूल है. भूरा सिर, रोमन नाक और लम्बे चर्मिल कान इस नस्ल के विशेष लक्षण हैं इसके मुख पर ऊन बिल्कुल नही होता. पूछ छोटी, मोटी और डुडी होती है भेडे नियमित रूप से ब्याती हैं और सामान्यतया जुडवा मेमनो को जन्म देती हैं इस नस्ल की कुछ किस्मे राजस्थान मे विभिन्न नामो से पाली जाती हैं, जैसे जोधपुर और जैसलमेर जिलो मे **जैसलमेरी**, जयपुर, टोक और सवाई माधोपुर जिलो मे **मालपुरी** और उदयपुर जिले मे **सोनाड़ी** यह नस्ल बडौदा जिले और गुजरात प्रदेश मे **चरोथरी** कहलाती है बीकानेर और जैसलमेर जिलो की एक विशुद्ध नस्ल **पुगल** है जिसका कुछ कम शुद्ध रूप नागौर और जोधपुर जिलो मे भी पाया जाता है

बीकानेरी नस्ल की भेडे मध्य प्रदेश के कुछ भागो मे, जो पहले बीकानेर रियासत के अन्तर्गत थे, पायी जाती हैं मध्य प्रदेश के इन भागो से लगे हुये राजस्थान, पजाब और उत्तर प्रदेश मे भी ये भेडे खूब मिलती हैं इन हृष्ट-पुष्ट और मध्यम आकार की भेडो का सिर छोटा और कान छोटे नलाकार होते है प्रति भेड से प्रतिवर्ष 1 81–4 08 किग्रा तक ऊन प्राप्त होता है भारतवर्ष मे दूसरी नस्लो की भेडो की तुलना मे इनसे सबसे अधिक ऊन मिलता है इसके अतिरिक्त **मगरा**, **चोकला** या **शेखावाटी** और **नाली** तीन और ऐसी नस्ले हैं जिन्होने इस क्षेत्र की तरह-तरह की भूमि और जलवायु की परिस्थितियो मे अपने को ढाल लिया है **मगरा** भेडे जैसलमेर, नागौर और बीकानेर जिलो के बजरीले मरुस्थली क्षेत्रो मे पायी जाती हैं राजस्थान की भूरे सिर वाली **चोकला** या **शेखावाटी** नस्ल की छोटी भेड से कालीन बनाने लायक उत्तम ऊन प्राप्त होता है इससे प्रतिवर्ष प्रति भेड लगभग 0 90–1 81 किग्रा ऊन प्राप्त होता है ये भेडे चूरू, झुनझुनू और सीकर जिलो मे पायी जाती हैं नाली भेडे निचले क्षेत्रो मे पायी जाती हैं और इनका ऊन मोटा होता है इन भेडो मे **लोही** नस्ल का मिश्रण होता है और ये बीकानेर जिले की उत्तरी सीमा पर और उससे लगे पजाब के भागो मे पायी जाती हैं

मारवाडी भेडे, सहिष्णु होती हैं और इनके बालो से मिला हुआ कालीन बनाने योग्य मोटा सफेद ऊन मिलता है लम्बी टागे, काला मुख और सुस्पष्ट नासिका इनके विशेष लक्षण हैं प्राय इनके गले के नीचे गलचर्म होता है पूछ छोटी और नुकीली होती है ये भेडे सारे जोधपुर जिले और जयपुर जिले के कुछ भागो मे पायी जाती है पाली और बाडमेर जिलो मे ये पाली जाती हैं. ये भेडे स्थान बदलती हुयी उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश

के दूरस्थ क्षेत्रो और कभी-कभी महाराष्ट्र के उत्तरी भागो में पहुँच जाती हैं इनमे रोग और कृमि के प्रति उच्च प्रतिरोध क्षमता होती है इनसे एक वर्ष मे प्रति भेड 0 90–1 81 किग्रा ऊन मिलता है

कच्छी (देशी) नस्ल, सौराष्ट्र के मरुस्थली भागो और उत्तर गुजरात के रेतीले जिलो मे पायी जाती है इसके विशेष लक्षण हैं गहरे चाकलेटी रग का मुख और नाटा मजबूत शरीर इस नस्ल से मिश्रित ऊन मिलता है जो सैनिको के लिये होजरी और ट्वीड बनाने के लिये उपयुक्त होता है गठीली बनावट के कारण इन भेडो का मास उत्तम होता है और अच्छे चरागाह मिलने पर ये दूध भी देती हैं अत इस नस्ल मे भविष्य मे आशा की जा सकती है

काठियावाडी नस्ल, काठियावाड और उसके आसपास के कच्छ के भागो, दक्षिणी राजस्थान और उत्तरी गुजरात मे पाली जाती है इससे मोटा किन्तु लम्बे रेशेवाला ऊन प्राप्त होता है यह नस्ल मध्यम आकार की किन्तु सुगठित होती है इसका रग प्राय श्वेत होता है, केवल टाँगो और मुख पर गहरे भूरे और काले बाल होते हैं इसके ऊन का वार्षिक उत्पादन अनुमानत 1 5 किग्रा है

दक्षिणी क्षेत्र मे, जिसमे महाराष्ट्र, मैसूर, तमिलनाडु, केरल और आन्ध्र प्रदेश सम्मिलित है, भेडो की सख्या शुष्क उत्तरी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक है इस क्षेत्र मे लगभग 2 265 करोड भेडे हैं जिनमे से पूर्वी भागो मे पायी जाने वाली 1 2 करोड भेडो से ऊन प्राप्त नही होता है ये भेडे मास के लिये ही पाली जाती हैं शेष 1 करोड भेडो से 10,700 टन मोटा, रगीन, मुख्यत धूसर रग का ऊन प्राप्त होता है

भेडे दो सुस्पष्ट नस्लो की होती हैं **दक्कनी** और **नेल्लोरी**

दक्कनी नस्ल, राजस्थान की ऊन वाली ओर आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु की बालदार भेडो का मिश्रण है यह नस्ल बम्बई, दक्कन क्षेत्र और मैसूर प्रदेश के कुछ भागो मे पायी जाती है ये छोटी और तगडी होती है और अपना जीवन-निर्वाह अपर्याप्त चरागाहो पर भी कर लेती हैं ऊन रगीन, अधिकतर काले या धूसर रग का होता है यह ऊन निम्नकोटि का होता है और इसमे रेशे तथा बाल मिले-जुले रहते हैं ऊन का औसत वार्षिक उत्पादन प्रति भेड 454 ग्रा है इस नस्ल से अपेक्षाकृत उत्तम ऊन प्राप्त करने की सभावना है इस ऊन की खपत मुख्यत मोटे खुरदुरे कम्बल बनाने मे हो जाती है इसके रेवड मास के लिये पाले जाते हैं

नेल्लोरी भेड बकरियो से मिलती-जुलती भारत की सबसे ऊँचे कद की भेड है इसके मुख और कान लम्बे होते हैं और इसका शरीर छोटे घने बालो से ढका रहता है अधिकतर रेवड बादामी या गहरे लाल-बादामी रग के होते हैं इसकी बहुत छोटी पूछ के सिरे पर बालो का एक गुच्छा रहता है मेढो के सीग मुडे होते हैं और भेडे शृगहीन होती हैं तमिलनाडु मे पायी जाने वाली समस्त भेडो में से 68% इसी नस्ल की हैं ये भेडे जगलो, पहाडी ढलानो, नदी तटो और फसल कट जाने के बाद खेतो मे चरती हैं इस नस्ल से उत्तम मास प्राप्त होता है कृष्य भूमि को उपजाऊ करने के लिये खेतो मे रात मे भेडे बैठायी जाती हैं इस किस्म की अन्य उल्लेखनीय नस्ले **माड्या, यालग** या **तेनगुरी** हैं ये भेडे प्राय लम्बी टाँगो और कृश शरीर वाली तथा बालदार होती हैं इनसे नही के बराबर ऊन प्राप्त होता है मैसूर मे माड्या भेड का मास उत्तम माना जाता है जब कि छोटी **बान्दूर** नस्ल मिश्रित कृषि के लिये उपयुक्त है

पूर्वी क्षेत्र में बिहार, बगाल और उडीसा सम्मिलित हैं जिसमें आर्द्र तथा उष्ण जलवायु के कारण भेड-पालन कोई महत्वपूर्ण व्यवसाय नही है इस क्षेत्र की 30 लाख भेडो मे से अधिकाश मास के लिये ही पाली जाती हैं इन भेडो से प्रति वर्ष प्रति भेड औसतन 113–224 ग्रा मोटा ऊन भी मिल जाता है इस क्षेत्र का कुल ऊन उत्पादन 90,600 किग्रा है इस ऊन का प्रयोग मोटे कम्बल और दरियाँ बनाने मे किया जाता है

विदेशी नस्लें

भारत मे पिछले कुछ वर्षो से देशी नस्ल की मादा भेडो का सकरण विदेशी भेढो से किया जा रहा है इससे देशी नस्लो के गुणो को सुधारने में बडी सहायता मिली है मुख्य विदेशी नस्लें **मेरिनो, रैम्ब्युलेट, शेवियट, साउथडाउन, लीसेस्टर** और **लिंकन** हैं

मेरिनो ससार की सर्वप्रिय और उत्तम ऊन देने वाली नस्ल है जिसका मूलस्थान स्पेन है इसके मुख और पैर श्वेत होते हैं मेढे सीगदार और मादाएँ सीगरहित होती हैं इसके सिर और टाँगो का अधिकाश भाग ऊन से ढका रहता है ये भेडे अपर्याप्त चरागाहो मे प्रतिकूल मौसम को सहकर भी जीवित रह सकती हैं मादा भेडे अन्य किसी भी नस्ल की भेडो से दीर्घजीवी होती हैं और अधिक लम्बी अवधि तक ऊन देती हैं

रैम्ब्युलेट स्पेन की पुरानी मेरिनो भेड की वशज है इसका विकास फ्रास मे हुआ था इन भेडो का सिर बडा, तथा कान और नाक के चारो ओर श्वेत बाल होते हैं मेढे सीगदार और सीगरहित भी होते हैं भेडो के सीग नही होते मेढे का भार 125 किग्रा तक और भेड का अधिक से अधिक भार 90 किग्रा तक होता है इसका शरीर मासदायी नस्लो की भाँति चिकना नही होता इसकी तुलना सर्वोत्तम मासदायी नस्लो से नही की जा सकती फिर भी बाजार मे इसकी काफी माँग रहती है और इससे उच्च कोटि का महीन ऊन भी प्राप्त होता है इसका लगभग सारा शरीर मुख और टाँगे सघन ऊन से ढके रहते हैं **रैम्ब्युलेट** नस्ल उच्च कोटि की प्रजननकर्ता है और विभिन्न प्रकार के चरागाहो में भी अपना निर्वाह कर लेने में इनकी शक्ति अतुलनीय है जब इसका सकरण मध्यम और लम्बे ऊन वाली नस्लो से किया जाता है तो नई पीढी के मेमने काफी चारा खाने वाले अत उत्तम मास देने वाले हो जाते हैं

शेवियट एक मध्यम ऊन वाली नस्ल है जिसका विकास मुख्यत स्काटलैंड मे हुआ इस नस्ल का आकार छोटा, कान खडे, मुख श्वेत, टाँगे श्वेत और छोटे बालो से ढकी और नाक, ओठ और पैर काले होते हैं मेढे का औसत भार 80 किग्रा और मादा का 53 किग्रा होता है इससे केवल 2 5–3 5 किग्रा ही ऊन प्राप्त होता है ऊन हल्की होती है और उसमे कुछ पीतक (ऊर्णवसा और चिकनाई) भी होता है, यह अपेक्षाकृत कम सिकुडने वाली होती है

साउथडाउन एक छोटी भेड है जो मास उत्पादन मे अद्वितीय है शरीर गठीला, नाटा और चौडा, टाँगे दूर-दूर स्थित, सिर चौडा और मुख हल्के भूरे रग का होता है वयस्क होने पर मेढो का भार 80 किग्रा तथा भेडो का 55 किग्रा होता है इसमे एक बार में 2–3 किग्रा ऊन प्राप्त होता है यह नस्ल सबसे पुरानी अग्रेजी नस्ल है बहुत-सी अन्य नस्लो के सुधारने मे इसका योग रहा है

लीसेस्टर दो किस्म की होती है अग्रेजी ग्रोर बार्डर ये भेडे मँझोले ग्राकार की होती है ग्रौर इनकी टॉगो ग्रौर मुख पर रोये नही होते है मादाये विशेष बहुप्रजनक नही होती शरीर का ग्राकार ग्रौर ऊन, लम्बे ऊन वाली नस्लो के ही समान होते है

लिकन इगलैंड की मूल नस्ल है इसकी भेडे बडी होती है ग्रौर इनके कान बडे ग्रौर मोटे तथा सिर चौडा होता है इनका शरीर बेडौल ग्रौर ग्रत्यन्त मासल होता है मादाये काफी बच्चे देने वाली होती हैं किन्तु इनकी गणना उत्तम दूध देने वाली भेडो मे नही की जाती इनसे लम्बे रेशो वाला उत्तम ऊन ग्रच्छी मात्रा मे (प्रतिवर्ष 5–7 किग्रा) प्राप्त होता है इस नस्ल का उपयोग सकरण ग्रौर नई नस्लो के विकास मे सफलतापूर्वक किया गया है

ग्रॉस्ट्रेलियन मेरिनो भेड ग्रौर उसकी ऊन की श्रेणी ससार-भर मे प्रसिद्ध है ग्रॉस्ट्रेलिया मे 1850 मे केवल 1 7 करोड भेडे थी जो 1890 के पूर्वार्द्ध मे बढकर 10 करोड हो गयी ग्रॉस्ट्रेलिया मे भेडो की सख्या ससार की कुल सख्या के 1/6 से भी कम है, किन्तु इन भेडो से ससार का 1/3 ऊन प्राप्त होता है उत्तम मेरिनो ऊन का तो 50% उत्पादन ग्रॉस्ट्रेलिया मे ही होता है

न्यूजीलैड की 70% से कुछ ग्रधिक भेडे **रोमनी-मार्श** नस्ल की ग्रौर केवल 2–3% **मेरिनो** नस्ल की है ग्रर्ध-सकरित ग्रौर ग्रन्यथा सकरित नस्लो मे से प्रत्येक 12% पायी जाती है ग्रन्य नस्ले जैसे **कोरीडेल्स** ग्रौर ग्रल्प सख्याग्रो मे ब्रिटेन की मास ग्रौर लम्बे ऊन वाली नस्ले भी पायी जाती है जिनका प्रयोग सकरण मे किया जाता है

दक्षिणी ग्रफ्रीका मे ससार की 4% भेडे पायी जाती है ग्रौर ससार के कुल ऊन का 5% उत्पादन होता है ग्रधिकाश ऊन उत्तम मेरिनो किस्म का होता है 1966–67 से 1968–69 तक विभिन्न देशो मे भेडो की कुल सख्या ग्रौर कच्चे ऊन के उत्पादन के ग्रॉकडे सारणी 44 मे दिये गये है

सारणी 44 – विभिन्न देशो में ऊन का उत्पादन*

देश	भेडो की सख्या (लाख मे)			कच्चे ऊन का उत्पादन (हजार टन मे)		
	1956-67	1967-68	1968-69	1966-67	1967-68	1968-69
अर्जेण्टाइना	487	440	450	200	19'	180
ऑस्ट्रेलिया	1,644	1,669	1,746	800	805	855
तुर्किस्तान	347	359	370	44	44 9	45 3
दक्षिणी अफ्रीका	368	370	386	132	139	140
न्यूजीलैंड	600	605	599	322	330	336
पाकिस्तान	103	103	103	20 4	20 4	20 4
ब्रिटेन	290	280	268	59 4	58 1	57 6
भारत	413	394	394	32 6	32 6	32 6
सयुक्त राज्य अमेरिका	239	221	212	107	103	96 6
सोवियत सघ	1,355	1,385	1,406	371	395	413

* Wool & Woollens of India, Indian Woollen Mills Federation, Bombay, 1971, 29-30

प्रबन्ध

पालतू जानवरो मे भेडे, प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी ग्रनुकूलन के लिये बेजोड है ये पहाडो, पहाडियो, मैदानो, मरुभूमियो ग्रौर कष्टकृष्य भूमियो से प्राप्त विभिन्न प्रकार के चारो को खाकर बदले मे मनुष्य को ऊन, मेमने, मास ग्रौर खाले प्रदान करती है उचित पोषण के साथ ही साथ कुशल प्रबन्ध, नस्ल के भीतर वरण ग्रौर सकरण को भी मान्यता दी जाती है प्रजनन करने वाली भेडो का कम खर्च मे पालन, मेमनो की बडी सख्या ग्रौर उनकी निरन्तर ग्रौर शीघ्र वृद्धि, दुग्धपान ग्रवस्था मे उनका मोटा होना, ग्रौर स्वच्छ तथा भारी ऊन की प्राप्ति ये सभी बाते पर्याप्त पौष्टिक ग्राहार ग्रौर ग्रच्छे प्रबन्ध पर निर्भर करती है

सयुक्त राज्य ग्रमेरिका मे भेड पालने की चार सामान्य पद्धतियाँ प्रचलित है, जो कृषीय ढाँचे मे ठीक बैठती है ये पद्धतियाँ है चारण क्षेत्र, फार्म, विशुद्ध नस्ल से प्रजनन ग्रौर मोटे मेमनो का उत्पादन

भारत मे सफल प्रबन्ध पद्धतियो मे भेड की किस्मो ग्रौर जलवायु के ग्रनुसार ग्रन्तर देखा जाता है ऐसे फार्मो मे जहाँ रेवडो की ग्रौसत सख्या चरागाहो मे रेवडो की सख्या मे (60 या उससे ग्रधिक) बहुत कम होती है, बहुत-सी ऐसी पद्धतियाँ ग्रपनायी जाती है जो चरागाहो मे व्यवहृत नही होती इसी प्रकार चरागाहो के प्रबन्ध मे उपयुक्त मानी गयी बहुत-सी पद्धतियाँ फार्म के रेवडो के लिये किंचित ही उपयोगी होती है

भेड की ग्रायु सामान्यत 10–12 वर्ष है, किन्तु उनकी उपयोगी ग्रायु, नस्ल, स्थान ग्रौर बाजार की माँग पर निर्भर करती है भेड-पालन को लाभदायक बनाने के लिये ग्रनुत्पादक भेडे नष्ट कर दी जानी चाहिये ग्रौर केवल स्वस्थ तथा उपयोगी भेडो को ही पालना चाहिये इसलिये जिन क्षेत्रो मे भेडो को पालना हो वहाँ के चरागाहो की परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुये सावधानी से नर ग्रौर मादा भेडो की नस्लो का चुनाव करना चाहिये भारत मे भेडे 40–50 के छोटे रेवडो मे पाली जाती है प्रत्येक रेवड मे एक मेढा होता है इस प्रकार मिश्रित कृषि-व्यवस्था मे ठीक लागत पर मास ग्रौर ऊन मिलता रहता है इस पद्धति के बहुत से लाभ है जैसेकि पालक सही-सही ग्रभिलेख रख सकता है ग्रौर मेढो के ग्रवगुण शीघ्र ही जान सकता है, प्रजनन के लिये ग्रावश्यक सख्या मे मेढो को रखकर, शेष नर मेमनो को प्रतिवर्ष मास के लिये बेच दिया जाता है नर मेमनो को दूध छुटाने के पश्चात् जब वे ग्रधिकतम वृद्धि पर होते है सगम करने के पहले बेच देना चाहिये

कुशल प्रबन्ध का मुख्य ध्येय ऊन ग्रौर मास का ग्रधिक उत्पादन है. यह नस्ल के वरण ग्रौर पोषण की विधियो पर निर्भर करता है ग्रच्छे मेढे मे उसकी विशेष नस्ल के सभी वाछित लक्षण होने चाहिये, साथ ही उसे प्रजनन-काल मे ग्रौर उसके बाद भी हृष्ट-पुष्ट बना रहना चाहिये उसकी छाती चौडी, धड स्थूल ग्रौर उभरी पसलियो से युक्त, पीठ समतल, कमर चौडी, पैर मजबूत, गरदन पुष्ट ग्रौर सिर सुडौल होना चाहिये.

सगम-काल के पूर्व मेढो को रेवड मे भली-भाँति बसा देना चाहिये ऐसी सूचना है कि कम ग्रायु के मेढो को ग्रधिक ग्रायु वाली भेडो से ग्रौर वयस्क मेढो को कुमारी भेडो के साथ सगम कराने से ग्रच्छे मेमने मिलते है प्रजनन-काल मे मेढो के भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिये क्योकि ग्रधिकाश मेढे इस ग्रवस्था मे

ठीक से चरना बन्द कर देते हैं इस काल में मेढों को स्वस्थ बनाये रखने के लिये उन्हे श्रेष्ठ चारे अथवा सान्द्र आहार हाथ से खिलाने चाहिये प्रजनन काल की समाप्ति पर मेढों को रेवड से अलग कर देना चाहिये क्योंकि यदि इसके बाद वे सगम करेंगे तो नियत समय के पश्चात ही मेमने होंगे एक मेढा प्रतिवर्ष 30–40 भेडो को गाभिन करने की क्षमता रखता है

भेडे सामान्यत 9–14 महीने की आयु मे सगम के योग्य हो जाती है और 7 वर्ष तक प्रजनन-योग्य बनी रहती है इसके पश्चात् अनुत्पादक भेडो को चुनकर अलग कर दिया जाता है जिन क्षेत्रों मे चरागाहो मे चारे का अभाव रहता है वहाँ भेडो को तीसरी या चौथी ब्यांत के बाद ही अलग कर दिया जाता है वयस्क भेडे उचित दाम पर बडी कठिनाई से मिलती है इसलिये अपेक्षित नस्ल की शिशु-भेडो को दूध छूटने के बाद ही या उन बडी भेडो को जिनसे पहले ब्यांत में ही श्रेष्ठ मेमने मिल चुके हो, खरीद लेना चाहिये

सफल प्रजनन के लिये भेड को 2½–3 वर्ष की आयु का या लगभग चार दाँत का होना चाहिये सम-शारीरिक गठन और मेमना-उत्पादन-क्षमता भेड मे अपेक्षित गुण हैं और इन्ही गुणो के आधार पर रेवड पालने मे आर्थिक सफलता मिल सकती है मादा भेड का शरीर लम्बा अच्छा है यदि ऊँचाई कम हो और पिछला धड चौडा तथा स्तन सुडौल होने चाहिये इनमे चारा खोजने और मेमनो के पोषण और रक्षण की आदत होनी चाहिये मादा भेड का चुनाव उसके बाह्य आकार की अपेक्षा उसकी क्षमता के आधार पर किया जाता है ऊन उत्पादन के लिये पाली जाने वाली नस्लो मे अधिकाश ऊन मादा भेडो से ही प्राप्त होता है मेमनो मे ऊन उत्पादन का गुण मादा भेड से ही मिलता है सफल भेड-पालन के लिये भेड को मेमने पिलाने के लिये पर्याप्त दूध देना चाहिये सगम से लगभग दो सप्ताह पूर्व से मादा भेडो को या तो कुछ दाना भी खिलाया जाता है या उन्हे ऐसे नये चरागाहो मे ले जाया जाता है जहाँ काफी चारा मिल सके यह विधि उत्तेजना प्रणाली कहलाती है जब कभी जल्दी-जल्दी मेमनो की आवश्यकता होती है तो ऐसा करने से मादा भेडो का मदकाल समय से कुछ पूर्व हो जाता है गर्भकाल मे मादा भेडो का उचित पोषण करने से जीवित मेमनो की सख्या बढती है और निर्बल तथा अपग मेमनो की सख्या घटती है इससे रोग भी कम होते हैं, भेड का दूध बढता है तथा ऊन की माता एव गुणो मे सुधार होता है

जब तक मेढे भली-भाँति चिह्नित न हो और मादा भेडो की प्रजनन-तिथियो के उचित अभिलेख न रखे हुये हो तब तक सगम कराते समय निश्चित कर पाना कठिन हो जाता है कि कौन-सा मेढा उर्वर है और कौन सा बन्ध्य जब भेडो का प्रसवकाल पास आ जाता है तो उन्हे उपयुक्त बाडो मे निवास देना चाहिये और प्रतिकूल मौसम से उनकी रक्षा करनी चाहिये

प्रसव के बाद कुछ दिनों तक भेडो की देखभाल मे सावधानी बरतनी चाहिये पहले 48 घण्टो तक, अथवा जब तक नवजात मेमने अपनी टाँगो पर खडे होकर माँ का दूध पीने मे समर्थ न हो ले, समुचित देखरेख की आवश्यकता पडती है मातृहीन या धाई माँ के न होने पर मेमनो को पहले हाथ से खीस और फिर दूध पिलाना पडता है जब मेमने 7–14 दिन की आयु के बीच हो तभी उन्हे बधिया करा देना चाहिये पूँछ के चारो ओर मल एकत्रित होने पर मक्खी या मैगट बाधक बन सकते है अत चाकू या गरम लोहे से पूँछ काट दी जाती है प्रजनन रेवडो मे होनहार दिखाई पडने वाले मेमनो की, बधिया मेमनो की और बिकाऊ मादा मेमनो की पूँछें काट देनी चाहिये और पहचान के लिये तरह-तरह के चिह्न बना देने चाहिये विशुद्ध प्रजनक मेमनो पर भी चिह्न बनाये जाते हैं जिसमे नर और मादाओ की वशावली की पहचान की जा सके चरवाहे गडरिये प्राय अपने-अपने मेमनो की छाती रग देते है जिससे रेवडो के मिल जाने पर भी वे अपने-अपने पशुओ की पहचान कर लेते है

भेडो को लम्बे-चौडे अथवा अधिक लागत पर तैयार निवास स्थानो की आवश्यकता नही पडती भेडो के बहुत से बडे और छोटे रेवड ठण्डे प्रदेशो मे भी अल्प या बिना किसी आश्रय के पाले जाते हैं भेडो की रक्षा के लिये बनाये गये बाडे ऊँची भूमि पर होने चाहिये खिलाने के उपस्कर, उनको दिये जाने वाले आहार तथा शाला मे उनके लिये नियत स्थान के अनुसार बदलते रहते है सूखी घास के टॉडो और दाने वाली नादो की आवश्यकता वही पडती है जहाँ भेडे एक ही स्थान मे रहती हैं और फार्म मे उगाये गये चारे पर पाली जाती हैं खुली और बन्द दोनो ही कार की खाने की नाँदो का प्रयोग सामान्य है

आहार

भारतवर्ष मे भेडे अपना जीवन निर्वाह प्राय जगली घासो, बूटियो और खेतो के अपशिष्ट उत्पादो पर करती है ये कम नमी वाली नरम घासो को पसन्द करती है क्योंकि नरम घास मे परिपक्व घास की अपेक्षा अधिक प्रोटीन होता है सामान्यत भेड के शारीरिक विकास के लिये सान्द्र आहार विशेष परिस्थितियो मे ही आवश्यक होता है भेडो के भोजन मे प्रोटीन, खनिज (विशेषत कैलसियम और फॉस्फोरस), कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन और तन्तु होने चाहिये पानी की समुचित मात्रा भी आवश्यक है भेडो को पानी देने के लिये अर्ध-वृत्ताकार सीमेन्ट की चरही कुछ ऊँचाई पर स्थायी रूप से रख दी जाती हैं

फलीदार चारे और खली मे प्रोटीन की मात्रा प्रचुर होती है मोठ या मटकी (**विगना ऐकोनिटीफोलियस**), मूंग (**वि ऑरियस**), उर्द (**वि मुगो**), कुल्थी (**डालीकास बाईफ्लोरस**), रिजका (**ल्यूसर्न**) और बरसीम जैसे सामान्य फलीदार पौधो की पत्तियाँ भेडो को प्रिय हैं भारतवर्ष के चरागाहो मे भी कई प्रकार के जगली फलीदार पौधे उगते है मेमनो को शकरकन्द की लतायें प्रिय है अगाथी (**सेसबानिया इजिप्टिएका**) भी भेडो के लिये अच्छा चारा है

सामान्यत आयु और शरीर के भार के अनुसार हर भेड को प्रतिदिन 1–2 किग्रा फलीदार चारे की आवश्यकता होती है चरागाहो मे जब फलीदार चारो की विशेष कमी होती है या अकाल के दिनो मे भेडो को प्रोटीन देने की आवश्यकता होती है तो मूगफली, तिल या कुसुम की खली जैसे सान्द्र दिये जा सकते हैं भेडो को हृष्ट-पुष्ट रखने के लिये 110–225 ग्रा तक खली पर्याप्त होती है चारे मे प्रोटीन की कमी से भेडे दुर्बल हो जाती हैं और ऊन का उत्पादन भी घट जाता है इसलिये रेवड के स्वामी को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये कि भेडो को नरम घास और फलीदार चारे मिलते रहे भेडो मे खनिज पदार्थों की पूर्ति के लिये सामान्य लवण, चूना और निर्जमित हड्डी के चूरे की समान मात्रायें मिलाकर देनी चाहिये.



मेरिनो मेढा



लिंकन मेढा



रेम्ब्युलेट मेढा

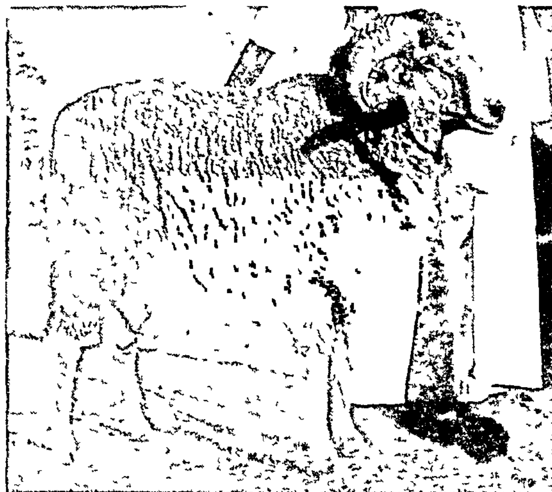


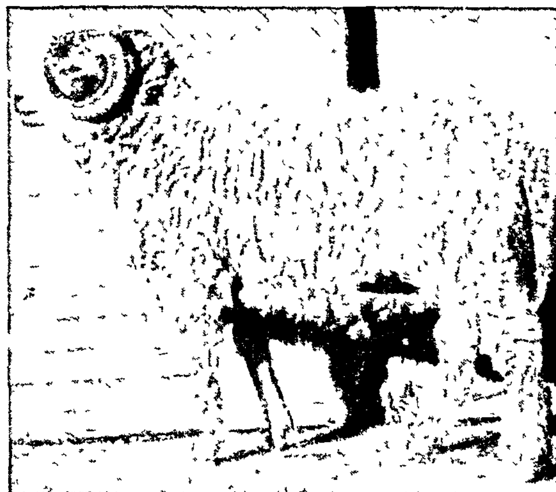
साउथडाउन मेढा

भेड़ें : विदेशी नस्लें


रेम्ब्युलेट × रामपुर-बुशायर


रेम्ब्युलेट × कश्मीरी


मेरिनो × दक्कनी


रेम्ब्युलेट × दक्कनी

भेड़ें : संकरित नस्लें

भेडो की चराई की विशेष देखरेख करनी चाहिये जिससे उन्हें कम नम किन्तु नरम घास मिल सके गीली घास मे पर-जीवियो के होने की सभावना रहती है और अधिक बढी हुयी घास में प्रोटीन की मात्रा पर्याप्त नही होती बहुत से किसान अपनी भेडो को खरीफ की फसल कट जाने के बाद उन्ही खेतो मे उगी हुयी नरम घासो और खरपतवारो पर चरने देते है दिन मे वे अपनी भेडो को उन फलीदार फसलो को भी चरने के लिये छोड देते है जो भेडो पर उगायी जाती है वर्षा के दिनो मे जब खेत में धान्य फसले बो दी जाती है तो भेडे पहाडो पर ले जायी जाती है इस प्रकार फसलो को हानि भी नही पहुँचती और भेडो को कम नमी वाले चरागाहो मे चारा भी मिल जाता है शरद ऋतु मे जब फसलें कट जाती है तो भेडो को खेतो से पर्याप्त अपतृण और घास प्राप्त हो जाते है और इस क्रिया मे अपरोक्ष रूप मे भेडो की मेंगनी और मूत्र गिरने से खेत भी उर्वर हो जाते है ग्रीष्म ऋतु मे भेडो को दूब (**साइनोडान डैक्टाइलान**) और कुन्द (**इशेमम पाइलोसम**) जैसी सहिष्णु घासो और शरद-कालीन फसलो की ठूठियो पर पाला जाता है जहाँ बबूल (**अकेशिया**) की फलियाँ मिल सकें वहाँ वे भेडो को खिलानी चाहिये किन्तु जो रेवड पर्वतो और पहाडियो पर चले जाते है वे ऊँचाई पर स्थित चरागाहो मे ही चरते रहते है और सर्दियो मे ही घाटियो की ओर लौटते हैं

यदि मेढो को सगम ऋतु के पूर्व चरागाहो से अतिपौष्टिक आहार न मिल सके तो इस समय प्रजनन के लिये चुने मेढो को कुछ विशेष आहार दिये जाने चाहिये दाने की मात्रा मेढो के डीलडौल और भार के अनुसार होनी चाहिये प्राय मेढो को उतना ही आहार पर्याप्त होगा जितना कि भेडो को होता है. मेढो को दिन मे अलग से चारा देते समय उन्हे विशेष राशन दिया जा सकता है प्रजनन के लिये प्रयुक्त होने वाले मेढो को चरायी के अनुसार 200–450 ग्रा तक मिश्रित दाना (गरमी मे—दला हुआ चना 2 भाग, गेहूँ का चोकर 1 भाग और नमक 1 भाग, जाडो मे—दला हुआ ग्वार बीज 2 भाग, गेहूँ का चोकर 1 भाग और नमक 1 भाग) देना चाहिये

सगम के दो सप्ताह पूर्व भेडो को मोटा होने तथा प्रजनन हेतु तैयार होने के लिये ऐसे क्षेत्रो मे भेज दिया जाता है जहाँ अच्छे चरागाह हो भेडो को भरपेट अच्छी सूखी फलीदार घास या 200–250 ग्रा मक्का, जौ, जई या ज्वार आदि के दाने खिलाकर भी मद मे लाया जा सकता है प्रजनन के लिये मदोत्तेजक आहार देने के पूर्व अधिक मोटी भेडो को दुबला कर लेना चाहिये

स्वस्थ मेमने प्राप्त करने के लिये गर्भकाल मे भेडो को उचित पौष्टिक आहार देना आवश्यक है गर्भावस्था मे मोटे चारो और चरागाह मे उपलब्ध हरे चारो को मिलाकर खिलाना सफल सिद्ध हुआ है छोटे अन्न, ठूठियाँ और घास द्वारा भेड की पौष्टिक आवश्यकतायें बहुत अश तक पूरी हो जाती हैं फसल कट जाने के बाद, मादाओ के रेवड को खेतो से थोडा चारा, दाना, अपतृण और हरियाली मिल जाती है यदि इस पोषण में अधिकतर सूखी बिना-फली की घास और अपतृण ही हो तो इसका सतुलन ऐसे आहार देकर किया जाना चाहिये जिसमे प्रोटीन अधिक हो और विटामिन ए भी हो फलीदार फसलो के चारे, अच्छी गुणता की घास, मक्का या ज्वार के साइलेज मे विटामिन ए की आवश्यक मात्रा मिल जाती हे प्रोटीन के सामान्य साद्र आहारो मे मूगफली, तिल और कुसुम की खली के नाम गिनाये जा सकते हैं पोषण की दृष्टि से गर्भावधि के उत्तरार्ध की अपेक्षा पूर्वार्ध कम महत्वपूर्ण है भेडो को गर्भावधि के पूर्वार्ध मे जो राशन दिया जाता है, उसमे उत्तरार्ध मे 110 ग्रा दाना बढा दिया जाता है और धीरे-धीरे उसे 225 ग्रा. कर दिया जाता है शीरा भी दिया जा सकता है.

प्रसव के बाद राशन मे साद्रो की मात्रा कम कर दी जाती है और दाने की मात्रा बढा दी जाती है यदि बडे रेवडो की देखरेख करनी हो तो प्रसव के प्रथम दस दिनो मे फलीदार सूखी घास खिलायी जा सकती है यदि चरागाहो मे पोषक तत्वो मे पूर्ण पर्याप्त चारा हो तो किसी भी अतिरिक्त राशन की आवश्यकता नही पडती जब चरागाहो की कमी हो या वे सूख चुके हो तो ऊपर से सूखी घास, साइलेज और दाना देना चाहिये

मास के लिये पाले जाने वाले मेमनो को प्रतिदिन एक भाग गेहूँ का चोकर, दो भाग दाने और एक भाग खली का मिश्रण, 110–450 ग्रा मिश्रण प्रतिदिन प्रति मेमने को उसकी आयु और उसके शारीरिक भार के अनुसार दिया जाना चाहिये ऊन कतरने के बाद भी भेडो को यही खाना देना होता है ऐसा न करने पर भेडो का स्वास्थ्य बुरी तरह से गिरने की सभावना है

प्रजनन

अच्छे भेड-पालक का ध्येय ऐसी अधिक से अधिक भेडो को पालना होता है जिससे उसे आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त मात्रा मे ऊन और मास मिल सके इसे ध्यान मे रखते हुये उसको ऐसी विशेष नस्लो और प्ररूपो के मेढो और भेडो का चुनाव करना चाहिये जो स्थानीय जलवायु और चरागाहो की परिस्थिति के लिये अनुकूलित हो किसी विशेष किस्म की भेड को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर पालने मे उसका स्वास्थ्य बिगड जाने की काफी सभावना रहती है अत प्रजनन कार्य के लिये नस्ल और प्ररूप का चयन बहुत सावधानी से करना चाहिये

साधारणत अधिक वर्षा के क्षेत्रो मे पाले गये रेवड शुष्क क्षेत्रो मे अधिक स्वस्थ रहते है किन्तु इसके विपरीत शुष्क क्षेत्रों मे पली भेडे अधिक वर्षा के क्षेत्रो में ले जायी जाने पर बुरी तरह से प्रभावित होती है, अत स्थानीय रेवडो मे से उत्तम भेडो का चयन करके, वरणात्मक प्रजनन द्वारा या नये रक्त को सन्निविष्ट करते हुये ही, प्ररूप मे अपेक्षित गुणो का समावेश कराना ठीक होता हे भारतवर्ष मे बीकानेर जिले की **चोकला** नस्ल की भेडे और कच्छ के पश्चिम मे नलिया क्षेत्र की **कच्छी** नस्ल की भेडे ऊन के गुण-धर्म की दृष्टि से उत्तरी भारत के मैदानो मे सर्वोत्तम मानी जा सकती है दक्षिणी राजस्थान की कलमुही भेडो के घुमन्तू रेवड भी महत्वपूर्ण नस्ल के होते है हिमाचल प्रदेश की **रामपुर-बुशायर** और कश्मीर की **पुंछ** और **कारनाह** भेडे उत्कृष्ट पहाडी नस्ले है मिलीजुली **दक्कनी** नस्ल की भेडो की ऊन की लम्बाई और गुण स्थिर नही होते इनका ऊन रगीन और घटिया होता है **नेल्लोरी** भेड दक्षिण भारत की बालदार भेडो की वास्तविक प्रतिनिधि है मैसूर प्रदेश के **माड्या** जिले मे विशिष्ट मासदायी भेडे पायी जाती है और **बांदूर** नस्ल किसानो के पालने के लिये सबसे अधिक उपयोगी है

किसी विशेष क्षेत्र के लिये सर्वाधिक उपयुक्त भेड का चयन कर लेने के पश्चात् यह भी तय कर लेना चाहिये कि रेवड में कितनी भेडे रखी जाये या खरीदे जाने वाले झुड की आयु क्या हो इस देश मे मिश्रित कृषि के अन्तर्गत छोटे-छोटे रेवड जिनसे

पर्याप्त ऊन तथा मांस मिल सके पालने की प्रवृत्ति है नये रेवड को सगठित करते समय मादा भेडों का चुनाव सावधानी से करना चाहिये इसके लिये अनव्यायी नयी भेडों की अपेक्षा ज्ञात अच्छी प्रजनन-क्षमता वाली भेडे अपेक्षित है

भारत मे भेडो के 3 मुख्य प्रजनन-काल है ग्रीष्म (मार्च–अप्रैल), पतझड और वर्षा (जून–जुलाई, कभी-कभी जून–अगस्त) और शीत (अक्तूबर–नवम्बर) इन ऋतुओ मे भेडे प्राय हर 17–19 दिन बाद मद मे आती है और यह मदकाल 20–24 घण्टे तक बना रहता है मद का अन्तिम समय प्रजनन के लिये अनुकूलतम होता है

किसी रेवड मे मद मे आयी भेडो की प्रतिशतता न केवल उनकी आयु पर ही निर्भर करती है वरन् उस ऋतु मे चरागाहो की प्राप्ति पर भी निर्भर रहती है ग्रीष्म ऋतु मे अनुमानत केवल 15–20%, पतझड के आरम्भ मे 60–80% और शीत ऋतु मे बहुत ही कम भेडो के मद मे आने की सभावना रहती है गर्भावधि साधारणत 142–152 दिन है भेडे, बकरियो से इस बात मे भिन्न है कि वे नियमित रूप से वर्ष मे केवल एक बार या कभी-कभी 14 महीने मे दो बार ब्याती है जिन मेमनो का जन्म गर्मी मे गर्भाधान के फलस्वरूप होता है, वे स्वस्थ होते है, क्योकि भेडो को गर्भकाल मे प्रचुर चारा मिलता रहता है किन्तु बहुत से गडरिये जाडो मे मेमने चाहते है क्योकि उनके रेवड मानसूनी फसलो पर निर्वाह कर सकते है गर्मी मे उत्पन्न मेमने स्वस्थ नही होते मेमनो को नियत समय से, या तो मानसून के अन्त मे या शीत ऋतु के मध्य मे पैदा होना लाभदायक है इस प्रकार नये मेमनो की देखरेख अच्छी तरह हो सकती है और उनके प्रबन्ध मे श्रम तथा धन का व्यय कुछ ही समय तक होता है

पशुओं को समुन्नत बनाने की अनेक विधिया है जिनमे से तीन मुख्य है (1) सजातिक प्रजनन, (2) सकरण, और (3) उन्नतकरण

सजातिक प्रजनन, निकट सम्बन्धी पशुओ का प्रजनन है और यह गुणो को प्रवर्धित करने मे उपयोगी है श्रेष्ठ भेडे प्राप्त करने की सबसे उत्तम विधि उत्कृष्ट गुणो वाले मेढो का चुनाव करके परीक्षण द्वारा यह जान लेना है कि उनमे से कौन-कौन अच्छी सतति दे सकते है यदि इन मेढो मे से उत्पन्न कुछ मेमने मूल मादा भेडो के रेवड से अच्छे गुणो वाले होते है, तो उनको प्रजनन के लिये चुन लिया जाता है इस प्रकार चुने गये मेढो का निकटतम सम्बन्धी से सगम कराकर अच्छी सततियाँ प्राप्त की जा सकती है इस प्रकार चुने हुये गुण प्रति पीढी बढते जाते है सजातिक प्रजनन के फलस्वरूप अवाछनीय गुणो से युक्त मेमनो को छाटकर अलग कर देना चाहिये रेवड के स्वामी को चाहिये कि मेढो का चयन उनके गठन पर न करके उनके क्षमता सम्बन्धी अभिलेखो के आधार पर करे

सकरण केवल उन्ही परिस्थितियो मे करना चाहिये जब नयी नस्ले विकसित करनी हो इस विधि की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सकरण के लिये प्रयुक्त होने वाली नस्लो की विशेषताये पूरी तरह ज्ञात हो और प्रजनन की योजना विधिवत् अपनानी हो जब दो असम्बद्ध नस्लो का सकरण किया जाता है तो पहली सतति मे सकर-ओज आ जाता है जिससे शारीरिक वृद्धि तीव्र तथा मास और ऊन की प्राप्ति अधिक होती है यदि इस सतति मे अन्तर्प्रजनन होने दिया जाय तो आने वाली पीढियाँ सकरजातीय और अपने मूल वशजो के उत्तम गुणो से विहीन होगी अत यह आवश्यक है कि विशुद्ध नस्लो के रेवडो के सकरण से उत्पन्न पहली पीढी के सकरित पशुओ के प्रजनन मे सावधानी बरती जाय कभी-कभी पहली पीढी के इस सकरित रेवड को अधिक ओज देने के लिये एक तीसरी नस्ल से प्रजनन किया जाता है. भारतीय नस्लो के लिये अभी सकरण की उपयुक्त प्रणालियो का विकास नही हो सका है

देश मे उत्तम ऊन वाली **मेरिनो** भेडो के विकास के लिये पजाब, जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र मे स्थानीय किस्मो का सकरण मेरिनो मेढो से किया जा रहा है विभिन्न कोटि की पहली (सकर$_1$), दूसरी (सकर$_2$) और तीसरी (सकर$_3$) सकर पीढियाँ इन प्रदेशो मे तैयार की गयी है जिससे ऊन मे सुधार हुआ है, जैसे ऊन का अधिक महीन होना, मज्जा मे कमी और रोमावली का अधिक सघन होना बारम्बार विशुद्ध मेरिनो मेढो मे प्रजनन द्वारा इन सकरित भेडो का ऊन मेरिनो के समान बन जाता है ऐसे प्रयोगो से राजकीय पशुधन फार्म, हिसार ने हिसारडेल नाम की एक नयी उत्तम ऊन वाली नस्ल का विकास किया है

जब भेडो के ऊन गुणो मे या मास उत्पादन मे सुधार लाना होता है तो उन्नतकरण का कार्य हाथ मे लिया जाता है यह सुधार निरन्तर विशुद्ध नस्ल के मेढो का सकरण अज्ञात कुल की भेडो से करके किया जा सकता है शुद्ध वशज मेढो से प्राप्त नर मेमने, वाछित सुधार एव बल न आ पाने तक बेच दिये जाते है पहली पीढी मे 50% सुधार होगा किन्तु यदि पाँचवी पीढी तक शुद्ध वंशज उत्तम मेढो मे प्रजनन न किया गया तो सुधार स्थिर नही रह सकता यह विधि काफी सरल है किन्तु रेवड के स्वामी को यह ज्ञात होना चाहिये कि इस प्रकार सुधारी गयी भेडो मे अनुकूलन का गुण ही सबसे महत्वपूर्ण है

कृत्रिम वीर्यसेचन

उत्तम पोषण, प्रबन्ध और प्रजनन के अतिरिक्त, भारतीय पशुओ मे उत्पादन बढाने का एकमात्र उपाय इनके आनुवशिक सघटन मे सुधार है इस बात को ध्यान मे रखते हुये कि देश मे ऐसे जनको की सख्या अत्यन्त सीमित है जो अपनी प्रेपण शक्ति के लिये मान्य है, यह उद्योग करना चाहिये कि स्टाक के आनुवशिक सघटन मे जितनी जल्दी सुधार हो सके कर लेना चाहिये इस प्रकार का सुधार केवल कृत्रिम वीर्यसेचन विधि द्वारा सम्भव है जिससे कई मादाये केवल एक ही स्खलन से सेचित करायी जाती है इस विधि मे ऐसे एक मेढे से, जो उत्कृष्ट मेमनो को जन्म देने मे समर्थ है, 30–40 भेडो का एक रेवड सेचित कराया जा सकता है इनके वीर्य को निम्न ताप पर सचित किया जा सकता है और भेडो का मदकाल आने पर उसे तनु करके उसका प्रयोग किया जा सकता है वीर्य को अड-पीतक साइट्रेट और बाइकार्बोनेट-फॉस्फेट जैसे तनुकारको मे 0–1° या 15–20° तक प्रतिरक्षित रख कर उसकी आयुष्मता बढायी जा सकती है जब मेढे बहुत मँहगे होते है या कुछ ही समय मे बहुत-सी भेडे एक साथ मद मे आ जाती है या जब मेढा अत्युत्तम प्रजनक होता है तो कृत्रिम वीर्यसेचन बहुत लाभकर होता है

रोग

भेडो को कई प्रकार के ससर्ग और असंसर्ग-जन्य रोग हो जाते है किसी विशेष क्षेत्र मे पाली और प्रजनित की जाने वाली भेडो मे

उस क्षेत्र के रोगो के प्रति प्रतिरोधकता उत्पन्न हो जाती है परन्तु वातावरण बदल देने पर प्रतिरोधकता घट जाती है भेडो मे रोगो के कुछ मुख्य कारण है बाडो में भेडो की अधिक सख्या, निचली और गीली भूमि पर चराना और वातावरण तथा भोजन का एकाएक बदलना

अन्य पशुधन के विपरीत भेडो मे किसी बीमारी के लक्षण सरलता से समझ मे नही आते गभीर रूप से रोगग्रस्त हो जाने पर भी भेडे अपनी समान्य दिनचर्या करती रहती है रोगी होने के लक्षण है असामान्य आचरण, तेज ज्वर, जुगाली बन्द कर देना, कठिनाई से श्वास लेना, खॉसना, छीकना, प्रवाहिका और निश्चेष्ट मुद्रा यूथी वृत्ति के कारण किसी भी प्रकार का सक्रामक रोग तेजी से फैल जाता है अत उसकी रोकथाम तत्काल ही होनी चाहिये

भारतवर्ष मे प्रतिवर्ष ससर्गज रोगो से तमाम भेडे मरती है- इनमे से कुछ रोग, जैसे कि गोले और सीले क्षेत्रो के रोग, क्षेत्र विशेष मे होते है यदि आरोग्य भेडो की अकस्मात् मृत्यु तेज ज्वर, कठिनाई से सास लेने, चर्म की लालो, तेज दर्द, गभीर प्रवाहिका और शरीर के किसी अग मे असामान्य सूजन से हो तो यह समझना चाहिये कि रोग प्राय बैक्टीरिया या वाइरस-जन्य है इन रोगो से भेडो को मरने से बचाने के लिये समय पर निदान और चिकित्सा होनी चाहिये

गिल्टी रोग अति सक्रामक है, यह **बैसिलस ऐंथ्रैसिस** के कारण उत्पन्न होता है इसकी छूत प्रदूषित आहार, जल और मक्खियो द्वारा फैलती है गले के भीतर और जिह्वा मे असामान्य सूजन और तेज ज्वर इसके मुख्य लक्षण है रोगी भेड 6 घण्टे के भीतर मर जाती है रोग के प्रारम्भ मे सल्फा ओषधि और पेनिसिलिन का प्रयोग लाभदायक सिद्ध होता है ऐथ्रैक्स स्पोर वैक्सीन का टीका लगाने से एक वर्ष के लिये प्रतिरक्षा हो जाती है ऐथ्रैक्स प्रतिसीरम से भी छूत फैलने से बचाव हो सकता है रोग को फैलने से रोकने के लिये कडी स्वास्थ्य व्यवस्था रखनी चाहिये और छूत से ग्रस्त पशुओ के शवो को सावधानी से नष्ट कर देना चाहिये

ब्रैक्सी एक अन्य अति तीव्र विषरक्तता है जो **क्लास्ट्रीडियम सेप्टिकम** के जीव-विषो के द्वारा उत्पन्न होती है जब जाडे की ऋतु मे भेडे नीचे चरागाहो मे उतर कर तुषार से पूर्ण घासे और जडे चरती है तो उन्हे रोग की छूत लग जाती है ग्रसित भेडे 4 घटे के भीतर मर जाती है **क्ला. सेप्टिकम** से तैयार फार्मेलीनीकृत सम्पूर्ण कल्चर वैक्सीन के द्वारा भेडो को प्रतिरक्षित करके इस रोग से बचाया जा सकता है

आंत्रविषरक्तता भेडो का एक घातक रोग है जो **क्लास्ट्रीडियम वेलशाई** प्ररूप डी के एप्सिलॉन जीव-विष से उत्पन्न होता है इस रोग से ग्रस्त भेडो को आक्षेप आते है और वे एकाएक मर जाती है छूत फैले रेवड की भेडो की क्षति अति प्रतिरक्षित सीरम और टीका देकर घटायी जा सकती है 6 माह के पश्चात् पुन टीका लगाया जा सकता है जहाँ तक सम्भव हो यह सावधानी बरतनी चाहिये कि भेडो को अधिक चारा न दिया जाय और जल्दी-जल्दी चरागाह न बदले जाये

रक्तस्रावी पूतिजीवरक्तता एक भयानक रोग है जो प्राय निचले क्षेत्रो मे **पास्तुरेला हीमोलाइटिका** के कारण होता है तेज ज्वर, भूख न लगना, नाक से पानी बहना, तेज साँस और रक्त-सहित प्रवाहिका इस रोग के लक्षण है रोगी भेड की कुछ ही घटो मे या दो दिन के भीतर मृत्यु हो जाती है प्राय इस रोग मे आंत्रविषरक्तता का भ्रम हो जाता है रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे पशु को सल्फा ओषधि और पेनिसिलिन देकर रोगमुक्त किया जा सकता है विशिष्ट कारकजीवो से युक्त सरक्षी टीके अभी नही बन पाये है

खुरगलन भी एक ससर्गज रोग है जो भेडो मे **स्पाइरोकीटा पेनोर्या** नामक स्पाइरोकीट के साहचर्य मे **फ्यूजीफार्मिस नोडोसस** के कारण होता है इसमे पाँव के खुर का भाग निचले कोमल ऊतको से विलग हो जाता है यह रोग सभी आयु की भेडो मे होता है और देश के कुछ रेवडो मे ही होता है सर्दी के महीनो मे यह उग्र रूप धारण कर लेता है दिन मे दो बार आधे-आधे घण्टे के लिये 10% कॉपर सल्फेट अथवा 2% फार्मेलीन के घोल मे पैर डालकर ग्रस्त पशुओ को खडे रहने देना चाहिये

पास्तुरेलोसिस, पास्तुरेला मल्टोसिडा या पा. हीमोलाइटिका के कारण होने वाला एक उग्र ज्वर वाला रोग है इस रोग के मुख्य लक्षण है ज्वर, भूख न लगना, नाक से पानी बहना, खॉसी और श्वास कष्ट और अन्त मे मृत्यु इसमे श्वसनी फुफ्फुसशोथ हो सकता है प्रारम्भिक अवस्था मे सल्फा ओषधि और पेनिसिलिन से रोकथाम सभव है फार्मेलीन से मारे गये **पा. मल्टोसिडा** से तैयार एक तेल-सह ओषध टीके को लगाकर भेडो की रक्षा इस जीव से फैलने वाले सक्रमण से की जाती है यदि भेडे **पा हीमोलाइटिका** से ग्रस्त हो तो टीके मे इसको भी मिला देना चाहिये

भेडो मे सालमोनेला रुग्णता के कारण **सालमोनेला एबार्टस-ओविस** जीव से पैराटाइफायडी गर्भपात और **सा. टिफिमुरियम** से पैरा-टाइफायडी पेचिश का सक्रमण होता है प्राय मेमनो के जन्म के 6 सप्ताह पूर्व गर्भपात आरम्भ होता है सक्रमण की तीव्रता के अनुसार, भेडो मे पेचिश कुछ घटो से लेकर अधिक से अधिक 5 दिन तक चलती है पैराटाइफायडी गर्भपात के लिये कोई ओषधि ज्ञात नही है सक्रमित भेडो से बच्चे पैदा नही कराने चाहिये पैराटाइफायडी पेचिश मे सल्फा ओषधियो का प्रयोग किया जा सकता है

स्ट्रक, क्लास्ट्रीडियम वेलशाई प्ररूप सी के बीटा-जीव-विष द्वारा उत्पन्न तुरन्त जान लेने वाली विषरक्तता है हाल ही मे भारत के कुछ भागो मे यह रोग पाया गया है जाडो और वसन्त ऋतुओ मे जब चारा कम होता है, तो भेडे इस रोग से प्रभावित हो जाती है ग्रस्त पशुओ के उदर मे पीडा रहती है और वे प्राय अपनी पिछली टाँगे फैलाकर खडे होते है इस रोग से होने वाली मृत्यु दर अधिक होती है **क्ला वेलशाई** प्ररूप सी के एक फार्मेलीनीकृत टीके का प्रयोग प्रतिरक्षा करने मे किया जा सकता है

भेडो को प्राय न्यूमोनिया हो जाता है जिससे उन्हे रोगमुक्त कर पाना कठिन है यह रोग ससर्गज नही है खॉसी, जुकाम और ज्वर रोग के साधारण लक्षण है यूकैलिप्टस तेल या बेंजाइन की कुछ बूदे एक बाल्टी उबलते पानी मे डालकर वाष्प के अत श्वसन से जुकाम और फुफ्फुस दाब की अधिकता कम हो जाती है

भेडो के अन्य ससर्गज जीवाणुवीय रोगो मे जोन्स रोग, मेमनो की पेचिश, लिस्टर रुग्णता, दुर्दम शोफ, लेप्टोस्पाइरा रुग्णता और यक्ष्मा सम्मिलित है

ससर्गज दुग्ध रोधक रोग की उत्पत्ति प्ल्यूरोनिमोनिया वर्ग के एक

जीव से होती है वयस्क भेड़े, विशेषतया दुग्धकाल मे इस रोग की शिकार होती है पंजाब मे इस रोग के फैलने की सूचना है ज्वर, स्तनशोथ, कृशता और कभी-कभी गर्भपात हो जाना इस रोग के सामान्य लक्षण है स्टोवारसाल का सोडियम लवण इस रोग के उपचार मे उपयोगी सिद्ध हुआ है

वाइरस-जन्य संसर्गज रोग भी जीवाणवीय रोगो के समान ही घातक होते हैं इनमे से भारतीय भेड़ो को होने वाले महत्वपूर्ण रोगो का वर्णन आगे किया जा रहा है

नील जिह्वा रोग एक निस्यदनीय वाइरस द्वारा जन्य है और इसकी छूत रेत मक्खी (**कोलीकायडीस** जाति) के काटने से फैलती है हाल ही मे महाराष्ट्र प्रदेश मे इसके होने की सूचना प्राप्त हुयी है ज्वर, भूख न लगना, मुख की श्लेष्मिक झिल्ली का लाल होकर बदरंग बैंगनी और नीले रंग की हो जाना, मुख के भीतर छाले पड़ना और झागदार लार गिरना इसके मुख्य लक्षण है कभी-कभी इस रोग मे ग्रस्त भेड़े लँगड़ी हो जाती है इस रोग से मृत्यु दर 30% होती है प्रतिरक्षा के लिये मुर्गी के परिवर्धित भ्रूण मे पारित तनूकृत विभेदो का प्रयोग किया जाता है इस रोग मे वाइरस की विविधता को ध्यान मे रखते हुये बहुसयोजक टीका आवश्यक है

पूयस्फोटक त्वकशोथ वाइरस जन्य है और अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे भेड़ो की चेचक रोग से मिलता है ज्वर, भूख न लगना और सुस्ती, इस रोग के प्रारम्भिक लक्षण हैं इसके बाद शरीर के जिन भागो के रोम गिर जाते है वहाँ लाल चकत्ते पड़ जाते हैं ये चकत्ते कुछ समय बाद द्रवहीन गाँठो मे बदल जाते हैं 15–18 दिन मे इन गाँठो पर पपड़ी पड़ जाती है वयस्क भेड़ो की अपेक्षा कम आयु की भेड़ो मे ग्रस्त पशुओ की मृत्यु संख्या अधिक है गाँठो से तैयार किये गये टीके से प्रतिरक्षा हो सकती है

पूयस्फोटिका (एक्थीमा) निस्यदनीय वाइरस के कारण होता है और भेड़ो से मनुष्यो मे भी पहुँच सकता है यद्यपि यह घातक नही है किन्तु इससे मेमनो और बकरी के बच्चो को काफी हानि पहुँचती है इसमे मुह और ओठ के कोनो मे मस्से निकल आते है और नथनो, कानो, गालो, आँखो, टाँगो और खुरसंधि आदि अंगो पर फैल सकते हैं मस्सो मे पीव आ जाता है, फूटने पर एक पीला-सा द्रव रिसता है और तब खुरण्ट बन जाते हैं ये खुरण्ट काले पड़ कर गिर जाते हैं और कोई निशान नही छोड़ते शीघ्रता से फैलने के कारण इसके उपचार से कोई लाभ नही होता खुरण्टो को पूतिरोधी लगाकर छुड़ाया जा सकता है 50% ग्लिसरीन सेलाइन में 1% सूखे खुरण्टो का निलम्बन लगाने से भेड़ो को प्रतिरक्षित करना सभव है

खुरपका या मुहपका रोग बहुत ही संक्रामक है यह एक निस्यदनीय वाइरस के कारण जनित है यद्यपि यह घातक नही होता फिर भी इसके कारण काफी आर्थिक क्षति पहुँचती है इसके मुख्य लक्षण हैं ज्वर, मुख एवं अंगुलियो के जोड़ो के बीच और थनो पर फफोले बनना गायो-भैंसो की अपेक्षा भेड़ो मे इस रोग की उग्रता कम होती है मुख के फफोले प्राय छोटे होते हैं और पैरो के क्षत बहुत बड़े नही होते इस रोग का कोई विशेष उपचार ज्ञात नही है, किन्तु पूतिरोधी पट्टी करने से कुछ आराम मिल सकता है क्रिस्टल वायलेट वैक्सीन से प्रतिरक्षण सभव है एप्थीकरण (संक्रमित पशुओ की लार को स्वस्थ पशुओ के मसूड़ो पर मलने) से रेवड़ मे इस रोग के फैलने की अवधि घट जाती है

रैबीज एक तीव्र और शीघ्र घातक, निस्यदनीय वाइरस द्वारा जनित, मस्तिष्क सुषुम्नाशोथ है संक्रमिक मासाहारी जन्तुओ के काट लेने पर 17–18 दिन बाद भेड़ो में इस रोग के लक्षण पहले-पहल प्रकट होने लगते हैं. एक दूसरे को टक्के देना, कामोत्तेजना, बेचैनी और घास-फूस को कुचलना इसके सामान्य लक्षण हैं यह रोग 1 से 4 दिन तक चलता है इसका कोई उपचार ज्ञात नही है कृत्रिम रूप से संक्रमित भेड़ो के मस्तिष्क और सुषुम्ना के फीनॉलीकृत निलबन का 10 मिली, सात बार सुई द्वारा लगाने से प्रतिरक्षण सभव है

रिंडरपेस्ट या पशु-प्लेग एक घातक वाइरस जनित रोग है लेकिन प्राय इससे भेड़े आक्रान्त नही होती यह रोग दूषित जल और आहार द्वारा फैलता है तेज ज्वर, दुर्गन्धयुक्त तीव्र प्रवाहिका, कृशता और लार टपकना इसके मुख्य लक्षण हैं इसका कोई उपचार ज्ञात नही है पशु-प्लेग प्रतिसीरम के टीके लगाने मे लगभग 10–14 दिन तक अस्थायी प्रतिरक्षण हो जाता है खरगोशीय या खरगोशीय-पक्षीय पशु-प्लेग वैक्सीन द्वारा अधिक काल तक सक्रिय प्रतिरक्षा सभव है

स्क्रेपी भेड़ो और बकरियो के तन्त्रिका तन्त्र का निस्यदनीय वाइरस रोग है यह 1 5 वर्ष से कम आयु की भेड़ो मे नही होता उत्तर प्रदेश के कुछ भागो मे इस रोग के होने की सूचना है इसका संक्रमण वाइरस से संदूषित चरागाहो से होता है अति उत्तेजना, कम्पन, खुजली और चाल मे लड़खड़ाहट इसके सामान्य लक्षण हैं पुट्ठो मे आक्षेप और अंगघात भी हो सकता है यह रोग प्राय घातक होता है. किन्तु कभी-कभी एकाध पशु बच भी जाते हैं इसका कोई प्रभावी उपचार ज्ञात नही है इस रोग से प्रतिरक्षित करने वाला वैक्सीन भी अभी ज्ञात नही हो सका है

मेष चेचक अति संक्रामक वाइरस रोग है जो कुछ क्षेत्रो मे फैलता है मेमनो मे यह घातक होता है वयस्क भेड़ो में इससे मृत्यु संख्या अधिक नही होती है किन्तु यह उनके बल को तोड़ देता है इसकी छूत संदूषित चारो, बर्तनो और परिचारको द्वारा फैलती है मुख के अन्दर, पिछली टाँगो के बीच और अयन पर पूयस्फोटिकाओं का प्रकट होना, तेज ज्वर, भूख न लगना और चरने मे असमर्थता इस रोग के मुख्य लक्षण हैं रोग प्राय 2–3 सप्ताह तक चलता है इसका कोई विशेष उपचार अभी तक ज्ञात नही है फफोलो के द्रव मे सम भाग ग्लिसरीन मिलाकर एक विश्वसनीय वैक्सीन बनाया जाता है भेड़ मे इस वाइरस के किसी अनुग्रह विभेद से बनी लसीका और जिलेटिनी पदार्थ का प्रयोग भी प्रभावी वैक्सीन के रूप मे किया जा सकता है

भेड़ो के असंसर्गज रोगो मे प्रथम आमाशय का फूलना, नाभि और जोड़ो के रोग, थनो की क्षति और कटि का पक्षाघात सम्मिलित हैं

पेट का फूलना भेड़ो का एक अति सामान्य रोग है जो विशेष रूप से वर्षा ऋतु मे होता है यह चारे में आकस्मिक परिवर्तन, अधिक खाने, पौधो के विष या आतर परजीवियो के कारण हुयी निर्बलता से हो सकता है उदर के ऊपरी बाये भाग का फूलकर काफी फैल जाना, तेजी से साँस चलना और बेचैनी इस रोग के मुख्य लक्षण हैं एक चम्मच तारपीन का तेल और 112 ग्रा तिल के तेल को साथ मिलाकर देने से प्रथम आमाशय मे गैस का बनना बन्द हो जाता है यदि रोग बहुत ही बढ़ चुका हो तो प्रथम आमाशय को बायी ओर से छेद दिया जाता है

नार या पूँछ काटते समय या बधिया करते समय जो घाव होते है उनके द्वारा सक्रामक जीव पहुँच कर नाभि और जोडो के रोग पैदा करते है इससे घुटनो और अन्य जोडो मे सूजन आ जाती है ग्रस्त पशुओ का उपचार सल्फा ओषधि और एण्टीबायोटिक देकर किया जा सकता है

चूचको को क्षति पहुँचाने वाले रोग को थनैला कहते है थनो की सावधानी से देखभाल करनी चाहिये

पजाब मे भेडो और बकरियो को वर्षा ऋतु के बाद कटि-पक्षाघात होता है किन्तु उससे भेडो मे मृत्यु अधिक होती है लड-खडाती चाल, पिछली टाँगो की गति मे असमन्वय और सामान्य भू-लुठन तथा कभी-कभी तेज ज्वर इस रोग के मुख्य लक्षण है रोग की अवधि 1–2 सप्ताह की होती है कहा जाता है कि थायमिन के प्रयोग से रोग अच्छा हो जाता हे

यकृत फ्लूक, फीताकृमि, आमाशयकृमि और फुफ्फुसकृमि आदि भेडो के अन्तरपरजीवी है भेडे इनको चरते समय ग्रहण कर लेती है ये कृमि मुख्यत परपोषी भेडो का रक्त चूसते है और उनकी पाचन-शक्ति को नष्ट कर देते है अरक्तता, भार का घटना, जबडे के नीचे सूजन और प्रवाहिका इन परजीवियो के आक्रमण के मुख्य लक्षण है भेडो मे पाये जाने वाले सामान्य यकृत फ्लूक **फैसिओला जाइगैंटिका** कोबोल्ड और **डाइक्रोसीलियम डेण्ड्रिटिकम** (रुडोल्फी) है **मोनीजिया एक्सपैंसा** (रुडोल्फी) एक सामान्य फीताकृमि है जो भेडो और बकरियो की आत्र-भित्ति पर सलग्न रहता है **ईसोफैगोस्टोमम** जातियो के कारण भेडो की आत्र मे गठीले अर्बुद बन जाते है आमाशय कृमियो या तार कृमियो मे **हेमाकस कानटार्टस** (रुडोल्फी) और **मेसिस्ट्रोसिर्रस डिजिटेटस** (लिस्टो) सम्मिलित है फुफ्फुसकृमि **वेरिस्ट्रांगलस न्यूमोनिकस** भालेराव की उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बगाल के कुछ पहाडी इलाको की भेडो तथा बकरियो की श्वासनिकाओ मे पाये जाने की सूचना है

यकृत कृमियो के सक्रमण का उपचार टेट्राक्लोर एथिलीन द्वारा किया जाता है आमाशय कृमियो के लिये सबसे सस्ता उपचार 1% कॉपर सल्फेट (नीला-थोथा) का घोल है चरागाहो मे फसलो के हेर-फेर से परजीवियो का आपात कम हो जाता है 4 5 ली. 1% कॉपर सल्फेट (नीला-थोथा) मे 28 ग्रा निकोटिन सल्फेट मिलाकर देने से गोलकृमि और फीताकृमि परजीवियो की सख्या घट जाती है आत्र परजीवियो से उत्पन्न प्रवाहिका को रोकने के लिये अरण्डी के तेल मे तारपीन का तेल मिलाकर दी जाती है पानी मे खडिया और कत्थे का चूर्ण मिलाकर देने से भी लाभ होता है

बाह्य-परजीवियो के अन्तर्गत टिक, माइट और जुए आते है ये उन स्थानो पर वृद्धि करते है जहाँ अधिक भेडे एक स्थान पर रखी गयी हो या मौसम नम और गरम हो, जैसे कि मानसून के आरम्भ और अन्त मे होता है टिक की मुख्य जातियाँ **हायलोमा ईजिप्शिअम** (लिनिअस), **इक्सोडेस रिसिनस** (लिनिअस) और **ऑर्निथोडोरास सेविग्नाई** (ऑडूइन) है **सोरोप्टीस** जाति, भेडो के रेवडो मे पडने वाला एक सामान्य माइट है **बोविकोला ओविस** (लिनिअस) नामक भेड-जू के कारण ऊन को गभीर क्षति होती है टिक और माइट प्राय पशु की गरदन, कधो और गुदा के आसपास चिपक जाती है ये भेड का रक्त चूसती है इनसे भेडो मे बेचैनी और चिडचिडापन उत्पन्न होता हे टिको के कारण आवर्ती ज्वर आता है और ये कई प्रकार के सचारी रोगो का सचारण भी करते है भेडो का स्कैब, चर्म पर विस्फोट निकलने का सामान्य रोग है जो भेडो के शरीर पर स्कैब माइट के कारण होता है इन बाह्य-परजीवियो के कारण प्राय चमडी पर घाव बन जाते है जिनमे मक्खी के सुडे पडने की सभावना रहती है

भेडो को डी-डी-टी और गैमैक्सेन भरे टबो मे डुबकी लगवा कर इन परजीवियो को नष्ट किया जा सकता है और चूना गधक और निकोटिन सल्फेट के घोल मे डुबकी देकर भी भेडो की माइटो को नष्ट करते है यदि भेड के शरीर पर लगे घावो की देखरेख न की जाये तो नीली मक्खी उनमे अडे दे देती है अण्डो से मैगट निकल कर चमडी के भीतर प्रवेश कर जाते है और मास को खराब कर देते है इन्हे निकालने के लिये तारपीन के तेल मे डुबोकर रुई के फाहे को घाव के अन्दर भरते है बोरिक अम्ल और सल्फेनिलैमाइड जैसी मन्द पूतिरोधी पट्टी से घाव भर जाते है

भेड़ो से प्राप्त उत्पाद

ऊन, भेड का मास, खाल और खाद मुख्य भेड-उत्पाद है इनके अतिरिक्त भेडो की कुछ नस्लो से दूध भी मिलता है जिसकी खपत मुख्यत स्थानीय रूप से हो जाती है

कश्मीर और निकटवर्ती शीतोष्ण क्षेत्रो की भेडे अपने उत्तम ऊन के लिये, बीकानेर की मगरा और चोकला नस्ले तथा जोरिया क्षेत्र की कच्छी नस्ल उत्कृष्ट कालीन-योग्य ऊन के लिये और नेल्लोरी माड्या और तेनगुरी नस्ले मास के लिये पाली जाती है

ऊन

सारणी 45 मे भारत मे 1961 मे ऊन का अनुमानित वार्षिक उत्पादन (राज्यवार), सारणी 46 मे भारत मे ऊन का औसत वार्षिक उत्पादन (क्षेत्रो के अनुसार), सारणी 47 मे भारत मे विभिन्न नस्लो से औसत वार्षिक ऊन की प्राप्ति दी गयी है ऊन, भेड की रक्षा करता है और स्वास्थ्य भी बनाये रखता है इसलिये ऊन को कतरते समय इस बात की सावधानी बरतनी चाहिये कि ऊन उस समय कतरा जाय जब मौसम शीतोष्ण हो भारत मे जाडो के बाद फरवरी से मार्च तक, जब खेतो मे काफी चारा मिलता रहता है और वर्षा ऋतु के अन्त मे अगस्त से सितम्बर तक का समय ऊन कतरने के लिये सबसे उपयुक्त होता है ऊन कतरने से पहले भेडो को स्नान कराया जाता है और कतरने के लिये तेज धार वाली कैंची का प्रयोग किया जाता है

वयस्क भेडो से कतरा या उपाडा हुआ ऊन 'जीवित ऊन' कहलाता है और मेमनो से कतरा गया ऊन 'होग ऊन' कहलाता है ऊन के कुल उत्पादन का एक छोटा अश मरी हुई भेडो की खालो से भी उतारा जाता है और इस ऊन को 'उपाडा ऊन' या 'लाइम्ड' या 'टैनरी ऊन' कहते है भेड के कन्धो और धड के दोनो ओर से सबसे अच्छा ऊन और उससे कुछ कम अच्छा ऊन पीठ के निचले हिस्से तथा कमर और टागो के ऊपरी भाग मे प्राप्त होता है गुणो और प्राप्ति की दृष्टि से पहली कटाई (वसन्त ऋतु) का ऊन दूसरी कटाई (वर्षा ऋतु) के ऊन से अपेक्षाकृत अच्छा होता है कतरन का भार प्राय प्रति भेड 0 5 किग्रा मद्रास मे, 2 2 किग्रा राजस्थान मे और प्रति मेमना 227 ग्रा बिहार मे, 1 किग्रा (राजस्थान) तक घटता-बढता रहता है

सारणी 45 – भारतवर्ष में 1961 में ऊन का अनुमानित वार्षिक उत्पादन*

(टनो मे)

प्रदेश	कतरा हुआ ऊन			उपाडा हुआ ऊन	योग (कतरा और उपाडा)
	वयस्क भेडो से	मेमनो से	योग		
आन्ध्र प्रदेश	2 543 3	353 3	2,896 6	263 1	3,159 7
उत्तर प्रदेश	2,171 8	191 0	2,362 8	3 6	2,366 4
केरल				0 9	0 9
गुजरात	1,220 2	116 6	3,151 2†	32 7	3,183 9
जम्मू और कश्मीर	595 6	77 6	673 2	22 7	695 9
तमिलनाडु	497 6	91 2	588 8	1,375 3	1,964 1
दिल्ली	6 8	1 4	8 2	45 4	53 6
पजाब	1,307 7	124 3	1,432 0	83 9	1,515 9
पश्चिमी बगाल	160 6	26 3	186 9	233 1	420 0
विहार	313 0	39 5	352 5	10 0	362 5
मध्य प्रदेश	602 8	67 6	670 4	26 8	697 2
मैसूर	2,016 7	372 9	2,389 6	90 3	2,479 9
महाराष्ट्र	1,658 3	201 8	1,860 1	47 2	1,907 3
राजस्थान	11,473 2	1,622 5	13,095 7	49 4	13,145 1
हिमाचल प्रदेश	552 0	49 0	601 0	1 8	602 8
योग	25,119 6	3,335 0	30 269 0†	2 286 2	32,555 2
प्रतिशत (%)			93 0	7 0	100 0

*विपणन और निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मत्रालय (कृषि विभाग), नागपुर
†इसमे घुमन्तू भेडो से प्राप्त 1,814 4 टन ऊन भी सम्मिलित है

सारणी 46 – भारत में कच्चे ऊन का क्षेत्रो के अनुसार औसत वार्षिक उत्पादन*

क्षेत्र	भेडो की सख्या (लाख)	ऊन उत्पादन (टन)
शीतोष्ण हिमालयी	52 0	4,720
शुष्क उत्तरी	123 8	20,210
दक्षिणी	226 5	10,700
पूर्वीय	30 0	90 6
योग	432 3	35,720 6

*भेड और ऊन विकास अधिकारी, भारतीय कृषि अनुसधान परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्राप्त आँकडो से

श्रेणीकरण और वर्गीकरण

कतरा हुआ ऊन कृषि उत्पादन (श्रेणीकरण और अकन) 1937 के अधिनियम और 1961 के ऊन श्रेणीकरण और अकन के उपवन्धो के अनुसार श्रेणीकृत किया जाता है उत्पादको को श्रेणी के प्रमाणपत्र देने के लिये विभिन्न स्थानो पर ऐसे श्रेणीकरण केन्द्र स्थापित किये गये हैं, जिनमे कई अधिकृत लपेटने वाले और गट्ठर वनाने के प्रेम होते हैं यहाँ ऊन का परीक्षण होता है और ऊन की श्रेणी का प्रमाणपत्र दिया जाता है ऐगमार्क के अन्तर्गत 1955 मे ऊन की स्वच्छता, रग और किस्म के आधार पर श्रेणीकरण करना अनिवार्य हो गया है ऊन को श्रेणीवद्ध करते समय सामान्य गुणो को ध्यान मे रखा जाता है जैसे ऊन मे अधिक सीलन न हो, वह खुरदुरा और मिलावट से मुक्त हो ऊन के श्रेणीकरण नियम वन जाने से निर्यात किये जाने वाला भारतीय ऊन सभी दृष्टियो से उत्तम कोटि का हो गया है और इस प्रकार ऊन के परिवहन, व्यापार और लिवरपूल के नीलामो मे निर्यात और विक्रय आदि मे जो व्यय होता है उसमे लगभग 10% की वचत हो जाती है

सारणी 46 में देश के महत्वपूर्ण ऊन-उत्पादक क्षेत्रों में प्राप्त देशी ऊनों का विवरण दिया गया है। इन ऊनों को मोटे तौर पर चार वर्गों में श्रेणीकृत किया जाता है।

भारत में ऊन का कोई भी सुव्यवस्थित वर्गीकरण प्राप्त नहीं है। निर्यात वाणिज्य के लिये वर्गीकरण की प्रणाली भेड़ के प्ररूप और नस्ल के अनुसार न होकर क्षेत्रीय नाम पद्धति पर आधारित है। निर्यात व्यापार में माने गये मुख्य वर्ग निम्नलिखित हैं: जोरिया (उत्कृष्ट श्वेत, प्रथम श्वेत, प्रथम पीला, हल्का धूसर बादामी), हरनाई (श्वेत, धूसर), बीकानेरी (अति श्वेत उत्कृष्ट हल्का पीला, प्रथम पीला, आसन्न श्वेत, धूसर, काला, मोटा), राजपूताना (श्वेत, पीला, धूसर), विर्वारिक (श्वेत, धूसर) बियावर (श्वेत पीला, बादामी, धूसर), मारवाड़ (श्वेत, पीला, धूसर), बीकानेर क्षेत्रीय ऊन (श्वेत, पीला) और सामान्य काला और धूसर।

उत्कृष्ट तन्तु – प्रायः ऊन की श्रेष्ठता का निर्णय ऊन तन्तु के व्यास या महीनपन, तन्तु की लम्बाई, मजबूती, लचीलापन, लहरदार, लोमशता (मज्जाशता), रंग, चमक, जुटने के गुणों, सिकुड़ने की मात्रा, ऊन पर नमी का प्रभाव और उत्पादन की ऋतु के आधार पर किया जाता है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि ऊन जितना ही महीन, लचीला और समान तन्तुओं का होगा उसकी कताई उतनी ही अच्छी होगी। यह भी महत्वपूर्ण होता है कि सम्पूर्ण कतरा हुआ ऊन यथासम्भव एक-सा महीन हो और प्रत्येक तन्तु का व्यास पूरी लम्बाई में एक-सा हो। लहरदार और अधिक लचीला महीन ऊन अधिक दाम पर बिकता है। इसी प्रकार लम्बे तन्तुओं वाला ऊन भी मँहगा बिकता है। लम्बे तन्तुओं वाला मोटा ऊन और अधिक प्रतिशत घुंघराले बालों वाला ऊन सस्ता बिकता है।

संरचना – विशुद्ध ऊन का तन्तु लचीला, टिकाऊ, आर्द्रताग्राही और गरम बनाये रखनेवाला तथा सहज ही ज्वलनशील नहीं होता। तन्तु को गीला करने पर ऊष्मा निकलती है। ऊन के तन्तुओं की संरचना कोशीय होती है और बालों में जो कठोर मध्यभाग अथवा कठोर कोशिकाओं का जो केन्द्रीय अभ्यन्तर होता है वह ऊन के तन्तु में नहीं होता। ऊन की रंजक अवशोषकता और रंग बनाये रखने की क्षमता अपेक्षाकृत मोटे बालों से कहीं अधिक होती है। बालों का कड़ा मध्यांश कताई के समय मरोड़ का और रंजकों के प्रति अवशोषण का प्रतिरोध करता है। ऊन के तन्तुओं से कते धागे और उनसे बुने ऊनी कपड़ों में नमदे की भाँति जुड़ जाने का विशेष गुण पाया जाता है। ऊन के तन्तुओं का व्यास 12–80 मा (μ) होता है। ऊन के उत्तम तन्तु अपेक्षाकृत महीन और लचीले होते हैं और उनसे मुलायम तथा सातत्य धागा प्राप्त होता है जो मृदु साबुन से युक्त गरम जल से धोने पर सिकुड़ता है। भारतीय ऊन अपने लचीलेपन और अपघर्षक प्रतिरोध में अद्वितीय है। संसार के अन्य ऊनों में इन गुणों का सर्वथा अभाव पाया जाता है। बालदार ऊन का धागा निम्न गुणता का तथा छूने में रूखा होता है और इसी कारण उससे बना कपड़ा अधिक टिकाऊ नहीं होता। सारणी 49 में विभिन्न प्रकार के भारतीय ऊनों के अभिलक्षण और उनके उपयोग दिये हुये हैं। भारतवर्ष में राजस्थान प्रमुख ऊन उत्पादक प्रदेश है जहाँ से देश के ऊन के वार्षिक उत्पादन का 45% प्राप्त होता है।

राजस्थान में लगभग 73 लाख भेड़ों का ऊन कतरा जाता है। कतरित ऊन साफ तथा श्रेणीबद्ध करके 145–150 किग्रा

सारणी 47 – भारत में विभिन्न नस्लों से औसत वार्षिक ऊन की प्राप्ति*

नस्ल	प्रदेश	प्रति भेड़ ऊन की प्राप्ति (ग्रा)
कश्मीर घाटी	जम्मू एवं कश्मीर	681
पुंछ	जम्मू एवं कश्मीर	681
करनाह	जम्मू एवं कश्मीर	681
लोही	पंजाब	1,360
रामपुर-बुशायर	हिमाचल प्रदेश	907
नाली	राजस्थान	1,814–3,175
चोकला	"	1,360–2,270
मगरा		1,360–2,270
मालपुरा		681–1,134
मारवाड़ी		681–1,134
पुगल	"	1,360–1,814
सोनाड़ी		454–1,134
जैसलमेरी	"	1 587
कच्छी पाटनवाड़ी	गुजरात	1,134–1,360
कच्छी मारवाड़ी	"	1,587–1,814
छोटानागपुरी	बिहार	170– 227
शाहाबादी	"	34
दक्खनी	महाराष्ट्र	454– 681
बेल्लारी	आन्ध्र प्रदेश तथा मैसूर	34– 40

*भेड़ और ऊन विकास अधिकारी, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्राप्त आँकड़ों से

सारणी 48 – भारत में विभिन्न श्रेणियों के ऊनों का उत्पादन*
(टनों में)

क्षेत्र	मोटा	मध्यम I	मध्यम II	महीन
शीतोष्ण हिमालयी	518	1,816	867	204
शुष्क उत्तरी	6,199	6,992	3,268	1,317
दक्षिणी	9,398†			"
योग	16,115	8,808	4,135	1,521

*भेड़ और ऊन विकास अधिकारी, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्राप्त आँकड़ों से

†अधिकतर रंगीन और मोटा ऊन

सारणी 49 – भारत की मान्यताप्राप्त भेड नस्लो के ऊनो के अभिलक्षण तथा उनके उपयोग*

भेड की नस्ल	तन्तु के अभिलक्षण और ऊन के उपयोग
महीन ऊनदायी नस्ले	
चोकला (राजस्थान) वरणात्मक प्रणाली से प्रजनित हिसारडेल (हरियाणा) दक्कनी रेम्ब्युलेट सकरित (पूना)	मज्जा अल्प, तन्तु लम्बाई मे कम, रग श्वेत, शरद्कालीन कतरन प्राय श्वेत (चोखला, पीली), कपडा बनाने मे प्रयुक्त
महीन मध्यम ऊनदायी नस्ले	
गद्दी और रामपुर-बुशायर (उत्तरी हिमालयी), गुरेज, कारनाह और भादरवाह (जम्मू तथा कश्मीर)	मज्जा अल्प, तन्तु लम्बाई मे मध्यम, रग श्वेत, शरद्कालीन कतरन श्वेत, मोटा कपडा बनाने मे प्रयुक्त
बियागी (उत्तरी हिमालयी) मेवाती (हिमाचल प्रदेश, पजाब और उत्तर प्रदेश) बागरी और सूतर (पजाब)	मज्जा अल्प, तन्तु लम्बाई मे मध्यम' रग श्वेत, शरद्कालीन कतरन पीली, मोटा कपडा बनाने मे प्रयुक्त
बीकानेरी	मज्जा मध्यम (मिलेजुले तन्तु), तन्तु लम्बाई मे मध्यम, रग श्वेत, शरद्कालीन कतरन पीली, कालीन और कपडा बनाने मे प्रयुक्त
उत्कृष्ट श्रेणी और कालीन योग्य ऊनदायी नस्ले	
नाली (राजस्थान और पजाब)	मज्जा अधिक (मिलेजुले तन्तु), तन्तु लम्बे तथा हाथी दाँत जैसे श्वेत, शरदकालीन कतरन अति पीली, कालीन और कपडा बनाने मे प्रयुक्त
मगरा, जैसलमेरी (राजस्थान)	मज्जा मध्यम (मिलेजुले तन्तु), अधिक (मगरा), तन्तु लम्बाई मे मध्यम (मगरा), लम्बे (जैसलमेरी), रग अति श्वेत (मगरा), श्वेत (जैसलमेरी), शरद्कालीन कतरन पीली, कालीन और कपडा बनाने मे प्रयुक्त
निम्न श्रेणी और कालीन योग्य ऊनदायी नस्ले	
मारवाडी और पुगल (राजस्थान)	मज्जा मध्यम (मिलेजुले और बालदार तन्तु), तन्तु लम्बाई मे मध्यम, रग श्वेत, शरद्कालीन कतरन पीली, मोटे कालीनो और कम्बलो में प्रयुक्त.
पाटनवाडी और जोरिया (उत्तरी गुजरात)	मज्जा अल्प, तन्तु लम्बाई मे मध्यम, रग श्वेत, शरद्कालीन कतरन पीली, मोटे कालीनो और कम्बलो मे प्रयुक्त
मोटी ऊनदायी नस्ले	
मालपुरा (राजस्थान), कच्छी (उत्तरी गुजरात), बुदेलखड (हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश), पजाब पहाडी और पजाब देशी (पजाब)	मज्जा अधिक, तन्तु लम्बाई मे मध्यम, रग श्वेत, शरद्कालीन कतरन पीली (बुन्देलखड, श्वेत), मोटे कालीनो और कम्बलो मे प्रयुक्त
लोई (पजाब)	मज्जा मध्यम, तन्तु लम्बाई मे मध्यम, रग श्वेत, शरद्कालीन कतरन पीलो, मोटे कालीनो और कम्बलो मे प्रयुक्त
बहुत मोटा ऊन देनेवाली नस्ले	
मुजाल (पजाब), हरसुद (मध्य प्रदेश), सोनाडी (राजस्थान)	मज्जा अधिक खुरदुरा, बालदार, तन्तु लम्बे (सोनाडी मध्यम), रंग श्वेत (हरसुद, श्वेत और रगीन), शरद्कालीन करतन पीली (हरसुद, श्वेत और रगीन), मोटे कम्बलो मे प्रयुक्त
छोटा नागपुरी और शाहाबादी (बिहार)	मज्जा अत्यधिक, बालदार, तन्तु कम लम्बे, श्वेत और रगीन, शरद्कालीन करतन श्वेत और रगीन, मोटे कम्बलो मे प्रयुक्त
दक्कनी, हसन, बेल्लारी, नेल्लोर और बादुर (प्रायद्वीपीय पठार)	मज्जा मध्यम, खुरदुरे बालोदार तन्तु, लम्बाई मे मध्यम, श्वेत और रगीन, शरद्कालीन कतरन श्वेत और रगीन, मोटे कम्बलो मे प्रयुक्त

*Data from Shri Ram Institute for Industrial Research, New Delhi, *India & Pakistan Wool, Hosiery & Fabrics*, 1967, 91-93, Sule, *Wool & Wool India* (Spec No), 1968, 5(2), XLVI-XLVII

के गट्ठरो मे बाँधकर पाली, बियावर, बीकानेर और केकरी में व्यापार मे प्रयुक्त विभिन्न नामो जैसे **बीकानेरी, राजपूताना, मारवाडी, जैसलमेरी, बियावरी, केकरियान, जोरिया** आदि, से बेच दिया जाता है अन्य ऊन के बाजारो मे जैसे उत्तर भारत मे फाजिल्का, पानीपत और दिल्ली से दक्षिण पूर्व में राजकोट तक भी थोडा ऊन बेचा जाता है श्रेणीकरण, तन्तु की लम्बाई, रग और खुरदुरे ऊन की मात्रा के अनुमार कुल मिलाकर राजस्थानी ऊनो के 90 मुख्य प्रकार ज्ञात ह

राजस्थान मे वसन्त ऋतु मे कतरा हुआ ऊन श्वेत और शीत ऋतु मे कतरा हुआ ऊन पीला, भूरा, धब्बेदार और रग मे कुछ भिन्न होता है इस प्रदेश मे 1956 मे भिन्न-भिन्न रगो के ऊनो के उत्पादन की मात्रा (टनो मे) इस प्रकार थी श्वेत, 4,812, श्वेत आभा का, 545, पीला, 7,627, और रगीन, 409

राजस्थान मे उत्पादित ऊन का औसतन 60% (8,172 टन) प्रतिवर्ष सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और रूस को निर्यात कर दिया जाता है कच्चे और गट्ठर बँधे ऊन की

पर्याप्त मात्रा कारखानों, कालीन उद्योग वालों और हाथ से कातने वालों द्वारा देश में ही खरीद ली जाती है

संसाधन – राजस्थान में ऊन का संसाधन और उसका उपयोग पूर्णतया हस्तकला के ही रूप में है बीकानेर, जोधपुर और उदयपुर कमिश्नरियों के कुछ भागों में ऊन की कताई और बुनाई गौण धन्धे हैं अनुमान है कि राजस्थान में भेड़-पालन, ऊन को साफ करने, उसके विपणन और संसाधन द्वारा लगभग 10 लाख लोगों को परोक्ष या अपरोक्ष रूप में, भेड़ों और ऊन के उद्योग द्वारा जीविका मिलती है बीकानेर और जोधपुर कमिश्नरियों के कातनेवाले लोग ऊन से बहुत महीन धागा निकालने के लिये प्रसिद्ध हैं प्रतिवर्ष लगभग 900 टन ऊन की खपत गद्देदार कालीन, कम्बल, लोई, ट्वीड बनाने और निर्यात के लिये हाथ से काता हुआ ऊन का धागा बनाने में होती है ऐसी बनी हुयी वस्तुओं का मूल्य पर्याप्त ऊँचा होता है यहाँ से कालीनों का निर्यात ब्रिटेन, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका को किया जाता है शालों और ट्वीडों की खपत राजस्थान में ही हो जाती है फैल्ट और नमदे देश के अन्य भागों में भेज दिये जाते हैं कता हुआ ऊन निकटवर्ती प्रदेशों में कालीन बुनने के लिये चला जाता है

कालीन बुनना एक कुटीर उद्योग है और इसके मुख्य केन्द्र उत्तर प्रदेश में भदोही, मिर्जापुर, आगरा और शाहजहाँपुर हैं, राजस्थान में जयपुर, पंजाब में अमृतसर, जम्मू और कश्मीर में श्रीनगर, आंध्र प्रदेश में वारंगल, और मैसूर प्रदेश में बंगलौर हैं हाथ-करघे से बनायी गयी वस्तुओं के लिये उत्तर प्रदेश अग्रणी है और अनुमान है कि इस राज्य में हर दस जुलाहों में से एक इस उद्योग से जीविकोपार्जन करता है

औसतन 4,540 टन भार के ऊनी कालीन तथा कम्बल संसार के 40 देशों को जैसे ब्रिटेन, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, स्विटज़रलैंड, मलेशिया इत्यादि को निर्यात किये जाते हैं इनका मूल्य 4 5 करोड़ रुपये है

उपयोग – भारतीय ऊन निम्नकोटि के होते हैं और कम दामों पर बिकते हैं इनसे पहनने के उत्तम वस्त्र नहीं बनाये जा सकते भारत में उत्पादित ऊन का आधा अंश देशी कम्बल बनाने में होता है शेष आधे की खपत मिलों तथा कालीन उद्योग में हो जाती है उत्तम कोटि का ऊनी कपड़ा बनाने वाली भारतीय मिलें ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड से आयातित ऊन के धागे पर आश्रित हैं भारत में तैयार ऊन, मिश्रित तथा बालदार किस्म का होता है इसलिये इनका उपयोग निम्न-कोटि के धुने हुये मोटे धागे बनाने में किया जाता है ऊनी कपड़ा बनाने के लिये दो प्रकार से पूनियाँ बनायी जाती हैं धुन कर तन्तुओं को मिली-जुली ढीली अवस्था में धागा खींचने के लिये छोड़कर और उस विधि से जिसमें तन्तुओं को कंघे से काढ़कर समान्तर करके धागा कातने के लिये पूनियाँ बनायी जाती हैं जो कपड़ा धुनकी हुयी पूनियों से कते धागे से बनता है वह ऊनी कपड़ा कहलाता है और समान्तर तन्तुओं वाली पूनियों से कते धागे से बना ऊनी कपड़ा वर्स्टेड कहलाता है धागे की बारीकी का निर्णय पूनी को अधिकतम सीमा तक कात कर किया जाता है, जो धुनी हुयी ऊन की पूनी में 234 मी और कंघी किये हुये ऊन में 512 मी तक होती है कातने के बाद इससे अट्टियाँ बनायी जाती हैं 454 ग्रा में जितनी अट्टियाँ चढ़ जायँ उसी के अनुसार ऊन के धागे की गणना (काउंट) निर्धारित की जाती है कपड़ा बनाते समय मजबूत तन्तु ही बचे रह सकते हैं कमजोर तन्तु टूटकर या तो गाँठें या फालतू ऊन के टुकड़े जिन्हें 'नायल्स' कहते हैं, बनते हैं (Woollen Industry, With India—Industrial Products, pt IX)

यद्यपि भारत में ऊन का उद्योग एक प्रकार से सारे देश में बिखरा हुआ है, फिर भी यह उद्योग मुख्यत महाराष्ट्र और पंजाब में केन्द्रित है अनुमानत इस उद्योग में 25 करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुयी है भारत में कुल मिलाकर ऊन की 257 संगठित इकाइयाँ हैं जिनमें से 36 केवल कताई की, 195 केवल बुनायी की और 26 मिश्रित इकाइयाँ हैं भारत से प्रतिवर्ष 1 करोड़ रुपये की ऊनी होजरी पश्चिमी एशियाई देशों को निर्यात की जाती है ऊनी और वर्स्टेड कपड़ों के थानों का निर्यात मूल्य 44 लाख रुपये से अधिक है 1953-54 में 90 लाख किग्रा ऊनी माल का निर्यात हुआ था किन्तु पिछले कुछ वर्षों में यह मात्रा बढ़कर औसतन 1 6 करोड़ किग्रा तक पहुँच गयी है

भारतीय ऊन के भौतिक अभिलक्षण – अभी कुछ समय पहले तक भारत में उत्पादित ऊन के भौतिक अभिलक्षणों का विस्तृत अध्ययन नहीं हो पाता था किन्तु ऊन के बाजार से लाये और कतरन के कुछ नमूनों का विश्लेषण केन्द्रीय आयुध विभाग प्रयोगशाला, कानपुर और विक्टोरिया जुबली तकनीकी संस्थान, बम्बई, में किया जाता है रेशमी और कृत्रिम रेशमी मिलों की अनुसंधान संस्था (SASMIRA—स्थापित 1950), बम्बई, अन्तर्राष्ट्रीय मानकीकरण कार्यालय द्वारा प्राकृतिक तंतुओं (जिनमें ऊन भी सम्मिलित है) के परीक्षण द्वारा मान्य तटस्थ परीक्षण गृह है

ऊन अनुसंधान संस्था (WRA—स्थापित 1963), बम्बई द्वारा ऊन के सम्बन्ध में आधारभूत और व्यावहारिक अनुसंधान किये जाते हैं जब तक इस संस्था का ऊन अनुसंधान संस्थान स्थापित नहीं हो जाता तब तक विक्टोरिया जुबली तकनीकी संस्थान, बम्बई में ही ऊन के भौतिक और रासायनिक अभिलक्षणों का परीक्षण होता रहेगा इस संस्था का कार्य अधिकतर योजना-निर्दिष्ट है और इसका सम्बन्ध भारतीय ऊनों और अन्य तंतुओं के मिश्रणों का विकास, ऊन धोने के पानी में से मोम की पुन प्राप्ति, ऊन के धागे के गुणों और उत्पादन का सर्वेक्षण जैसे अध्ययनों से है

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा देश के मुख्य भेड़-पालन क्षेत्रों में ऊन के गुणों सम्बन्धी विस्तृत अनुसंधान सम्पन्न कराये जा रहे हैं श्रीराम औद्योगिक अनुसंधान संस्थान, दिल्ली ने भी भारतीय ऊन के भौतिक और रासायनिक लक्षणों से सम्बन्धित उपयोगी आँकड़े प्रस्तुत किये हैं

भारतीय ऊनों के प्रमुख अभिलक्षणों की सीधी-सीधी तुलना अन्य देशों के ऊनों से करना सम्भव नहीं है क्योंकि ये विभिन्न किस्मों के होते हैं और इनके गुण भी भिन्न-भिन्न होते हैं भारतीय भेड़ों से प्राप्त ऊन प्राय मोटा और मिलाजुला होता है और अधिकतर कम्बल, मोटी ट्वीड, कालीन और दरियाँ बनाने के काम में लाया जाता है भारतीय मोटे ऊन के तंतु अनुप्रस्थ काट में उत्तम ऊन के तंतुओं से अपेक्षाकृत अधिक दीर्घवृत्तीय होते हैं इनका समोच्च रेखा-अनुपात लगभग 1 3 होता है, इस कारण इनसे एक समान और सुसम्बद्ध धागों का उत्पादन नहीं किया जा सकता महीन, मध्यम तंतु का ऊन केवल कुछ ही संकरित और छंटी हुयी प्रजनित भेड़ों से प्राप्त होता है.

कालीनों के ऊन के भौतिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि यह चार विभिन्न प्रकार के तन्तुओं का बना होता है ऊन, बाल,

मिलेजुले ततु और खुरदुरे तथा बाल-मिश्रित ततु रंगीन तनु भी विभिन्न अनुपातों में पाये जाते हैं और कुछ नस्लों का ऊन तो रंगीन ही होता है ऊन में विभिन्न प्रकार के तन्तुओं का अनुपात नस्लों के अनुसार बदलता रहता है और ऊन और बालों के अंशों पर ही मुख्यत ऊन का घटिया या बढ़िया होना निर्भर करता है

देश में विभिन्न नस्लों की भेडों से कतरे ऊनों के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ है कि इनमें शुद्ध ऊन और बालदार तन्तुओं का अनुपात काफी बदलता रहता है दक्षिणी क्षेत्र की भेडों की कतरन पूर्णरूपेण बालदार होती है जबकि उत्तरी क्षेत्रों की भेडों पर ऊन अधिक और बाल कम होते हैं पूर्वीय क्षेत्र के अधिक वर्षा वाले भागों की नस्लों के ऊन में पश्चिमी क्षेत्रों के शुष्क और अर्धशुष्क भागों की भेडों के ऊन से अपेक्षाकृत अधिक बाल होते हैं इस प्रकार भेडों के ऊन के तन्तुओं के अभिलक्षण जलवायु और वातावरण पर निर्भर करते हैं सबसे उत्तम ऊन की कतरन केवल पहाडों पर रहने वाली भेडों में प्राप्त होती है जहाँ की जलवायु ठंडी और शुष्क होती है

भारतीय ऊन की उत्तमता भेड की नस्ल और ऋतु के साथ बदलती रहती है भारतीय ऊन के व्यास का विचरण गुणाक **ऑस्ट्रेलियन मेरिनो**-70^s ऊन से काफी अधिक होता है प्रायद्वीपी क्षेत्रों के ऊन 36^s–40^s के होते हैं जबकि उत्तरी भारत के मैदानों के ऊन 40^s–56^s के हैं इनमें से कुछ ऊन तो 60^s के भी होते हैं हिमालयी क्षेत्रों के ऊन मोटे और मध्यम कोटि के होते हैं सारणी 50 में विभिन्न किस्मों के भारतीय ऊनों और 70^s वाले ऑस्ट्रेलियन मेरिनो ऊन के भौतिक अभिलक्षण दिये गये हैं

राजकीय पशुधन फार्म, हिसार में विकसित **हिसारडेल** नस्ल का ऊन 60^s–62^s का होता है और छ मास तक बढने पर रेशे की लम्बाई 3 8–5 00 सेमी हो जाती है सामान्यत मोटे ऊनों के तंतु महीन ऊनों से अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं, इसलिये भारतीय ऊनों के तन्तु सकरित या मेरिनो ऊनों से लम्बे होते हैं भारत में एक ही नस्ल की भेडों में ऊन की रेशा-लम्बाई में काफी अन्तर पाया जाता है

भारत के मोटे ऊन अधिकतर कम लहरदार या सीधे होते हैं **चोकला** और सकरित ऊन लहरदार होते हैं किन्तु उनकी लहर अत्यधिक परिवर्तनशील होती है और तन्तु के व्यास से इसका अधिक सम्बन्ध नहीं है महीन ऊनों में लहर साधारणत उनकी विशिष्ट द्विपार्श्विक वल्कुट-सरचना के कारण मानी जाती है भारतीय ऊनों की सरचना इस प्रकार की नहीं होती सभवत भारतीय भेडों के पोषण में ताम्र की न्यूनता के कारण ही उनका ऊन कडा और सीधा होता है

मज्जा के कारण भारतीय ऊनों की तन्यता में यथेष्ट अन्तर रहता है उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकतर कालीन बनाने के लिये उत्पादित ऊनों की मिश्रित कतरनों में से छाँटे गये मज्जा-विहीन महीन तन्तुओं की शुष्कतन्यता अधिकतर 2,000–3,000 किग्रा/वसेमी पायी गयी ये मान अन्य देशों के ऊनों से अधिक भिन्न नहीं हैं भारत के सभी मज्जाविहीन ऊन, **मेरिनो** ऊन की तुलना में कम प्रसरण (टूटने के विन्दु पर) सहन कर सकते हैं.

भारतीय ऊन चमकदार, श्वेत से लेकर हाथीदाँत के रंग तक के होते हैं पीले वर्ण के ऊन हल्के पीले से लेकर गहरे पीले रंग तक के होते हैं कुछ दक्षिण भारतीय ऊन धूसर, भूरे या काले भी होते हैं पीली ऊनों में पीलेपन की मात्रा 3–12 5 तक होती है और उत्तरी भारत के मैदानों में अक्तूबर–मार्च तक कतरे हुये ऊनों में 1 0–3 0 तक रहती है पहाडी क्षेत्रों और प्रायद्वीपी

सारणी 50 – भारतीय ऊनों के विभिन्न प्रकारों के भौतिक लक्षण*

ऊन की किस्म	तन्तु का औसत व्यास: सीमा (μ)	तन्तु का औसत व्यास: विचरण गुणाक (%)	मज्जायुक्त तन्तु (%)	औसत रेशा लम्बाई का परास (सेमी)
उत्तरी भारत के मैदान				
नाली (पंजाब)	30–40	35–50	25–50	12–18
हिसारडेल (सकरित) (हरियाना)	0–25	10–20		5–8
मगरा (राजस्थान)	30–40	35–50	40–60	9–12
चोकला (राजस्थान)	20–35	20–30	5–30	8–12
सोनाडी (राजस्थान)	40–60	40–60	40–70	8–11
मारवाडी (राजस्थान)	35–45	30–40	20–40	8–13
मालपुरा (राजस्थान)	40–60	50–70	50–70	8–10
जैसलमेरी (राजस्थान)	30–40	40–50	30–50	11–16
पाटनवाटी (उत्तरी गुजरात)	30–40	30–40	20–40	8–12
स्थानीय ऊन (उत्तर प्रदेश)	40–50	40–50	70–90	3–8
स्थानीय ऊन (विहार)	40–70	40–50	40–50	8–15
छोटा नागपुरी (विहार)	60–80	50–60	80–90	4–6
शाहाबादी (विहार)	60–70	50–60	80–90	4–7
प्रायद्वीपीय पठार				
दक्कनी (महाराष्ट्र)	35–50	40–60	10–20	4–7
दक्कनी रैम्ब्युलेट सकरित (महाराष्ट्र)	20–22	10–15		4–6
वेल्लारी (मैसूर)	40–60	40–50	30–50	6–11
हिमालयी क्षेत्र				
गद्दी (हिमाचल प्रदेश)	28–32	25–30	10–20	7–10
हिसारडल सकरित (कुल्लू)	20–25	20–25		5–8
गुरेज (जम्मू-कश्मीर)	30–40	25–35	10–20	7–13
कारनाह (जम्मू-कश्मीर)	30–40	25–35	10–20	6–15
भादरवाह (जम्मू-कश्मीर)	25–50	40–50	20–30	7–12
रामपुर-बुशायर (हिमाचल प्रदेश और उत्तरी पंजाब)	30–40	30–40	10–30	6-11
नीलगिरि क्षेत्र				
नीलगिरि (ऊटकमंड)	22–28	20–25	10–20	7–13
नीलगिरि-रोमनी मार्श सकरित (ऊटकमण्ड)	25–32	20–30	10–20	7–13
ऑस्ट्रेलियन मेरिनो ऊन 70 प्ररूप	18	5–10		5–10

*Sule, *Wool & Wool India* (Spec No), 1958, 5(2), LIII

पठार के ऊन श्वेत होते हैं और उनमें पीलेपन की मात्रा 1 5 से मे भी कम रहती है

भारतीय ऊन किसी दी गयी आर्द्रता पर **मेरिनो** ऊन से कम आर्द्रताग्राही होते हैं सारणी 51 में 25° और 65% आपेक्षिक आर्द्रता पर कुछ भारतीय ऊनों में आर्द्रता की मात्रा दी गयी है

सारणी 51—कुछ भारतीय ऊनों में आर्द्रता की मात्रा* (%)

ऊन का नमूना	क्षेत्र	65% आ आ और 25° पर अनुकूलित सूखे ऊन मे	65% आ. आ और 25° पर पुन शोषित अति आर्द्र ऊन मे
नली	पजाब के पहाडी क्षेत्र	14 4	17 8
हिसारडेल (सकरित)	पजाब के पहाडी क्षेत्र	15 1	17 1
हिसारडेल (सकरित)	पजाब के मैदान	13 5	15 5
लोही	,,	14 1	16 1
चोकला	राजस्थान	14 4	17 3
नाली	,,	13 7	16 2
पाटनवाडी	उत्तरी गुजरात	13 5	16 1
दक्कनी	पूना	13 6	16 3
नीलगिरि	ऊटकमड	13 6	15 6
नीलगिरि रोमनी-मार्श (सकरित नस्ल)	ऊटकमड	14 0	16 1

*Sule, *Wool & Wool India* (Spec No), 1968, 5(7), LVII.
आ आ—आपेक्षिक आर्द्रता

ऊन का उलझना (ऊन के तन्तुओ का -धुलते समय इस प्रकार आपस मे उलझ जाना कि फिर वे अलग न हो सके) मुख्यत ऊन के दो भौतिक गुणो के कारण होता है, ये है विभेदक घर्षणी प्रभाव (वि घ प्र) और ऊन के तन्तुओ की प्रत्यास्थता उच्च विभेदक घर्षणी प्रभाव और प्रत्यास्थता के कारण ऊन के तन्तु आपस मे अच्छे जुडते है भारतीय ऊनो का विभेदक घर्षणी प्रभाव जालिका-रूपीय शल्कीय सरचना के कारण कम होता है और इसकी प्रत्यास्थता भी कम होती है इसलिये इनके उलझने की क्षमता भी कम होती है किरीटीय या शल्कीय सरचना के कारण मेरिनो ऊन का विभेदक घर्षणी प्रभाव उच्च होता है और इसलिये ऊन की जुडने की क्षमता भी उच्च होती है विभिन्न भारतीय नस्लो के ऊनो के जुडने के गुणो के आँकडे प्राप्त नही है किन्तु यह पाया गया है कि सकरित भेडो के ऊन मे उलझने की क्षमता अधिक होती है इस क्षमता से कुछ लाभ है तो कुछ हानियाँ भी है उत्तम मेरिनो ऊन से बनायी हुयी होजरी और खुली सरचना वाले ऊनी कपडो के बनाने से पूर्व कपडे के फैलाव को एक-सा बनाये रखने और धुलायी के समय अधिक गुत्थियाँ बनना रोकने के लिये, ऊन को विशेष रूप से उलझनरोधी उपचार देने पडते है भारतीय ऊन होजरी के लिये उपयुक्त नही है किन्तु फेल्ट उत्पादो, कम्बलो और महिलाओ के कोटो, ट्वीड, सर्ज आदि कपडे बनाने मे इनका श्रेष्ठतर उपयोग हो सकता है

भारतीय मज्जारहित ऊन के तन्तुओ का पानी मे प्रतिबल-विकृति सम्बन्ध सामान्यतया मेरिनो ऊन से कुछ भिन्न है जैसे कि टूटने के बिन्दु पर प्रसरण कुछ कम तथा किसी दिये हुये भार पर प्रसरण अधिक और आर्द्रतन्यता कम होती है

भारतीय ऊन का स्थायी समुच्चय (उबलते पानी मे एक घण्टे रखने के बाद की स्थायी तनन सीमा) मेरिनो ऊन की तुलना मे और पीले ऊनो का स्थायी समुच्चय श्वेत ऊनो से अपेक्षाकृत कम होता है

मुलायम वस्त्र बनाने के लिये अन्य रेशो के साथ भारतीय ऊन नही मिलाये जा सकते, क्योकि ये भगुर, मोटे तथा कडे होते है

सभी कच्चे ऊनो मे कुछ-न-कुछ अशुद्धियाँ होती है और इनका अनुपात भेड की नस्ल के ऊपर निर्भर करता है इन अशुद्धियो मे चर्बी (तैल ग्रन्थियो का स्राव) और ऊर्ण-वसा या स्वेद (स्वेदोत्पादक ग्रथियो का स्राव) भेड के शरीर से निकलते है कच्चे ऊन मे चर्बी और ऊर्ण-वसा का अश भेड की नस्ल के अनुसार बदलता रहता है अन्य अशुद्धियाँ, जैसे धूल और वनस्पति-पदार्थ वातावरण पर निर्भर करते है स्वच्छ शुष्क ऊन की प्राप्ति की गणना करते समय केवल चर्बी, ऊर्ण-वसा और नमी का ही लेखा रखा जाता है, और धूल और वनस्पति-पदार्थ को समाविष्ट नही किया जाता है जो कि एक ही रोमावलि मे 5–20% तक (स्वच्छ सूखे ऊन मे भार के अनुसार) हो सकते है सारणी 52 मे विभिन्न भारतीय ऊनो के नमूनो मे रोमावलि की मात्रा दी गयी है

सभी भारतीय ऊनो मे मेरिनो ऊन की अपेक्षा कच्चे ऊन से अधिक स्वच्छ और सूखे ऊन की प्राप्ति होती है पीले रग के ऊनो मे चर्बी की मात्रा अपने अनुरूप श्वेत ऊनो से बहुत कम होती है भारतीय ऊनो मे चर्बी की मात्रा सकरित और मेरिनो भेडो मे निश्चित रूप मे कम होती है सामान्यत भारतीय ऊनो मे ऊर्ण-वसा की मात्रा मेरिनो ऊन से अधिक होती है और उत्तरी भारत के मैदानो की भेडो के ऊन की ऊर्ण-वसा अन्य क्षेत्रो की भेडो की तुलना मे अत्यधिक क्षारीय होती है

ऊन की चर्बी एक मूल्यवान गौण-उत्पाद है अपने विशुद्ध रूप मे इसका उपयोग लैनोलिन के नाम से विभिन्न कान्ति-वर्धको मे होता है इसमे कोलेस्टेरॉल और आइसो-कोलेस्टेरॉल पाये जाते है जो हार्मोनो के सश्लेषण मे प्रमुख अन्तर्वर्ती है ऊन मे चर्बी की मात्रा प्राथमिक (प्रा) और गौण (गौ) पुटको के स्वरूप पर निर्भर करती है, और गौ/प्रा अनुपात एव पुटको के घनत्व की समानुपाती होती है अधिकतर भारतीय भेडो की नस्लो का गौ/प्रा अनुपात 0 5–3 0, मेरिनो भेड का 15–30 और सकरित भेडो का 4–15 होता है निम्न गौ/प्रा अनुपात और निम्न पुटक घनत्व के कारण भारतीय ऊनो मे चर्बी की मात्रा सकरित या मेरिनो ऊनो की तुलना मे कम होती है

भारतीय ऊनो के साथ जो वनस्पति-पदार्थ पाये जाते है वे है हिमालयी क्षेत्रो, उत्तरी भारत के मैदानो और (नीलगिरि को छोडकर) प्रायद्वीपी पठारो के अन्य ऊनो मे **जैन्थियम स्ट्रूमेरियम** के काकल बर, राजस्थान और उत्तरी गुजरात के मैदानो से प्राप्त ऊनो मे सैड बर और उत्तरी गुजरात के ऊनो मे तिपतिया बर, घासे, टहनियाँ और काटे आदि सामान्य रूप से ग्रीष्म और शरद ऋतुओ की तुलना मे शीत और वसन्त ऋतुओ मे एकत्र किये गये ऊन मे इन बरो की मात्रा अधिक होती है यान्त्रिक विधि मे या रगड द्वारा बिना रेशो को तोडे इन बरो को अलग करना कठिन है केवल कार्बनीकरण द्वारा ही यह पदार्थ नष्ट किया जा सकता है

रासायनिक गुण और सघटन—ऊन स्क्लेरोप्रोटीन है और बाल, सीग, पख तथा अन्य अधिचर्म ऊनको से इनका निकट सम्बन्ध है जो सामान्यत केराटिन कहलाते है ऊन के प्रोटीन का

सारणी 52 – विभिन्न भारतीय ऊनो की रोमावलि के मूलतत्व*

ऊन का नमूना	ऊर्ण वसा का पी-एच	ऊर्ण वसा (स्वच्छ सूखे ऊन के भार का %)	चर्बी (स्वच्छ सूखे ऊन के भार का %)	औसत प्राप्ति कच्चे ऊन से (स्वच्छ सूखे ऊन का %)
गगा-सिंध के मैदान				
नाली (पजाब), बसन्त ऋतु की श्वेत कतरन	8 0–9 5	25–50	6–17	55–65
नाली (पजाब), पीले रग की शरतकालीन कतरन	9 0–10 5	10–25	0– 3	65–75
(राजस्थान) पीले रग की शरतकालीन कतरन:				
नाली	9 0–10 5	10–25	0– 3	65–75
सोनाडी	8 5–9 5	10–20	0– 3	70–80
मारवाडी	8 5–9 5	10–20	0– 3	70–80
मालपुरा	8 5–9 5	15–25	0– 3	65–75
जैसलमेरी	8 5–9 5	20–30	2– 5	65–75
चोकला	8 5–9 5	10–20	0– 2	70–80
लेई (पजाब) पीले रग की शरतकालीन कतरन	8 0–9 0	5–20	0– 2	70–80
लोई (पजाब) बसन्ती श्वेत कतरन	7 5–8 5	10–25	5–10	65–75
प्रायद्वीपी पठार				
चुनिदा दक्कनी (पूना) श्वेत वसन्तकालीन कतरन	7 0–8 0	20–30	10–15	55–65
चुनिदा दक्कनी (पूना) पीले रग की शरतकालीन कतरन	7 0–8 0	15–25	7–10	65–75
दक्कनी-रेम्ब्युलेट सकरित (पूना) श्वेत वसन्तकालीन कतरन	7 0–8 0	15–25	20–30	60–70
दक्कनी-रेम्ब्युलेट सकरित (पूना) श्वेत शरतकालीन कतरन	7 0–8 0	20–35	20–30	55–65
हिमालयी क्षेत्र				
गद्दी (कुल्लू) श्वेत शरतकालीन कतरन	7 0–8 0	10–20	6–10	65–75
हिसारडेल सकरित (कुल्लू) श्वेत शरतकालीन कतरन	7 5–8 5	20–30	8–12	55–65
नीलगिरि क्षेत्र				
नीलगिरि (ऊटकमड) श्वेत वसन्तकालीन कतरन	7 5–8 5	20–30	15–20	55–65
नीलगिरि-रोमनी-मार्श, सकरित (ऊटकमड), श्वेत वसन्तकालीन कतरन	7 5–8 5	10–25	6–10	55–65
ऑस्ट्रेलियन मेरिनो-70 श्वेत वार्षिक कतरन	7 0–7 5	10–20	25–35	50–60

*Sule, *Wool & Wool Indıa* (Spec No), 1968, 5,2), LI

ऐमीनो अम्ल सघटन इस प्रकार है आर्जिनीन, 10 6, हिस्टिडीन, 1 1, लाइसीन, 3 3, फेनिल ऐलानीन, 4 0, मेथियोनीन, 0 6, थ्रियोनीन, 6 7, टायरोसीन, 5 6, सिस्टीन, 13 7, ल्यूसीन, 8 1, आइसो-ल्यूसीन, 4 5, और वैलीन, 5 7 ग्रा / 16 ग्रा N ऊन मे अन्य प्रोटीनो से गन्धक की मात्रा अधिक होती है ऊन कम-से-कम एक इमीनो और 17 ऐमीनो अम्लो से निर्मित पॉलीपेप्टाइड शृखलाओ का बना होता है वृद्धि के समय सिस्टीन के अवक्रमण से कुछ और ऐमीनो अम्ल बनते है पॉलीपेप्टाइड शृखलाये वलय अथवा कुडली के आकार मे रहती है और अतर तथा अत शृखला हाइड्रोजन बन्धो, अत शृखला सहसयोजक बन्धो (डाइसल्फाइड बन्धो) और अत शृखला वैद्युत सयोजक बन्धो (लवण बन्धो) के द्वारा बनती है जब रेशो को पानी मे ताना जाता है तो वलित शृखलाये अन्तर-शृखला हाइड्रोजन बन्धो के टूट जाने के कारण खुल जाती है किन्तु जब ऊन का रेशा शुष्क अवस्था मे ही ताना जाता है तब हाइड्रोजन बन्ध नही टूटते और इस प्रकार शृखलाये वलित ही बनी रहती है

ऊन के रेशे के तीनो आकृतिक अवयवो का, जिनके नाम, उपचर्म, वल्कुट और मध्याश (या अभ्यन्तर) है, रासायनिक सघटन भिन्न-भिन्न होता है उपचर्म चपटी प्लेट जैसी आच्छादी कोशिकाओ (0 5 मामी मोटी और 8–20 मामी लम्बी) का बना होता है बाह्य और अन्त उपचर्म प्रोटीन होते है जिनमे अणु-मकरण की मात्रा शेष तन्तुओ से अधिक और तन्तुको की मात्रा कम होती है वल्कुट, ऊन का 90% होता है और यह तकुवे की आकृति की वल्कुट कोशिकाओ (100 मामी लम्बी और 4 मामी मोटी) से निर्मित होता है, जिनमे तन्तुक और सूक्ष्म तन्तुक अन्त स्थापित रहते है सूक्ष्म तन्तुक वलित पॉलीपेप्टाइड शृखलाओ के समूह से बने होते है उत्तम ऊनो की द्विपार्श्विक वल्कुट सरचना दो परस्पर बटे हुये अर्ध-सिलिण्डरो से बने रेशे से मिलती-जुलती है जबकि मोटे ऊनो मे इस प्रकार की सरचना नही पायी जाती कुछ मोटे ऊन के तन्तुओ मे, तन्तु की अनुप्रस्थ काट मे, दोनो प्रकार के वल्कुट अरीय पाये जाते है मज्जा या केन्द्रीय क्रोड मे एक वायु कोटरिका होती है जो रेशे के भीतर प्रकाश के परावर्तक का कार्य करती है उत्तम मेरिनो ऊन मज्जा-विहीन होता है किन्तु अधिकाश भारतीय ऊनो में मज्जा रहता है यह मज्जा अविच्छिन्न हो सकता है जैसे लोमश रेशो मे, या खण्डो मे विभाजित जैसा कि विषमाग रेशो मे

भारतीय ऊन मे गन्धक (सिस्टीन) की कम और लैन्थियोनीन की अधिक मात्रा होने के कारण यह मेरिनो ऊनो से भिन्न है इसका कारण उत्तरी भारत के मैदानो मे, विशेषत शरत् ऋतु मे, भेड के ऊन के रेशो पर क्षारीय ऊर्ण-वसा की क्रिया है अधिकतर भारतीय ऊनो मे गन्धक की मात्रा 2 8–3 1% होती है पीले रग की ऊन मे गन्धक कम होता है केवल भेड प्रजनन फार्म, पूना मे पाली गयी, चुनिन्दा दक्कनी भेडो (ठौर पर खिलायी) के ऊन से ही उच्चतम और मेरिनो के ऊन के बराबर (3 4–3 7%), गन्धक की मात्रा (4%) से युक्त ऊन प्राप्त होती है भारतीय ऊनो मे गन्धक और ऐमीनो अम्लो की मात्रा का विवरण सारणी 53 मे दिया हुआ है

विभिन्न नस्लो की भेडो के ऊन-प्रोटीन (केराटिन) में नाइट्रोजन की मात्रा लगभग एक समान सूचित की गयी है दक्कनी × मेरिनो और दक्कनी × रैम्ब्युलेट के ऊनो का समग्र औसत

के प्रभाव और मास के गुणो के सुधार के लिये विदेशी नस्लो के प्रवेश के सम्बन्ध मे खोज हो रही है

भेड फार्म, थायावाडे (पूना) मे **बांदूर** नस्ल के साथ किये गये अध्ययन से पता चला है कि विभिन्न आयुओ पर ससाधित मास की प्रतिशतता नही बदलती अफगानिस्तान की **टर्की और गालजवी** सर्वोत्तम मासदायी नस्ले है इनमे से कुछ **बांदूर** नस्ल को सकरित करने के लिये आयात की गयी है भेड प्रजनन अनुसंधान केन्द्र चिन्यापल्ली (आन्ध्र प्रदेश) मे **नेल्लोर और माड्या** नस्ल की भेडो पर मास उत्पादन की दृष्टि से अध्ययन हो रहा है उनके शवो के अध्ययन से पता चला है कि टागे और जोड संसाधित किये गये भार का एक-तिहाई होते है भेड फार्म, चिंगलपेट (तमिलनाडु) में **मेरीनो भेडे मांड्या** भेडो के साथ सकरित की गयी है और उनसे प्राप्त होने वाले मास पर अध्ययन किया जा रहा है

भारत मे 1960–61 से 1975-76 तक मे होने वाली भेडो की सख्या और प्राप्य मास तथा ऊन के अनुमान सारणी 60 मे दिये गये है

खालें—ऊन सघटन के परिपेक्ष्य मे खालो की ऊतिकी के अध्ययन की एक समन्वित अनुसधान योजना, उत्तर प्रदेश (लखनऊ), राजस्थान (बीकानेर) और महाराष्ट्र (पूना) मे चालू है इस योजना का ध्येय विभिन्न प्रकार की पुटिकाओ की वृद्धि और उनके विकास का अध्ययन और ऊन के लक्षणो को खाल सरचना के प्रतिरूप से सह-सम्बन्धित करना है

प्रजनन—भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् द्वारा ग्रामीण क्षेत्रो मे सकरण की एक योजना का प्रयास किया जा रहा है न्यूजीलैंड ने "भूख के विरुद्ध अभियान" (फ्रीडम फ्रॉम हगर कैम्पेन) प्रोग्राम के अन्तर्गत 410 **रोमनी-मार्श और साउथडाउन** भेडो का एक रेवड भेट किया है इन भेडो को उपयुक्त अनुसधान फार्मो पर रखा गया है जहाँ इन्हे भारतीय जलवायु से अनुकूलित करके सकरण परीक्षणो के लिये तैयार किया जा रहा है सकरित विभेद स्थानीय भेडो को उन्नत करने के लिये ग्रामीण क्षेत्रो मे वितरित कर दिये जायेगे सयुक्त राज्य अमेरिका से भी 400 **रेम्बुलेट** भेडो का एक रेवड इसी योजना के अन्तर्गत भेटस्वरूप आया है जो केन्द्रीय भेड और ऊन अनुसंधान सस्थान, मालपुरा (राजस्थान) मे रखा गया है

1958 से सोवियत सघ से प्राप्त भेडो की कुछ नस्लो पर परीक्षण किये जा रहे है इनमे सोवियत **मेरिनो, स्टेवेरोपोलास्किया** (सोवियत **रेम्बुलेट**) और **क्युबाइशेव** (सोवियत **रोमनी-मार्श**) प्रमुख है 1964 मे 428 सोवियत **मेरिनो** भेडो का एक रेवड राज्य व्यापार निगम के द्वारा आयात किया गया जिसका उपयोग स्थानीय भेडो को उन्नत बनाने मे किया जा रहा है

प्रथम पचवर्षीय योजना के पूर्व देश मे चार भेड प्रजनन फार्म थे जहाँ छोटे पैमाने पर भेडो की विदेशी नस्लो को बसाकर परीक्षण किये जाते थे. द्वितीय पचवर्षीय योजना के काल मे मेढो के उत्पादन के लिये 10 बडे भेड फार्म और 29 छोटी प्रजनन इकाइयाँ स्थापित की गयी 1969 तक 51 फार्म और 19 मिश्रित पशुधन फार्मो मे उत्कृष्ट भेडो के रेवड पाले जा रहे थे सारणी 61 मे इन फार्मो का राज्यवार विवरण दिया गया है प्रत्येक फार्म पर अब ऐसी सुविधाये प्राप्त है कि प्रतिवर्ष वे कम से कम 25 उत्कृष्ट मेढे पैदा कर सके और मेढो का कुल उत्पादन 2,500 हो

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भेड और ऊन प्रसार केन्द्रो के द्वारा रेवड के स्वामियो से सीधा सम्पर्क बनाने के प्रयास किये गये योजना के अन्तिम कुछ वर्षो मे इस प्रकार के 305 केन्द्र खोले गये प्रत्येक केन्द्र को आसपास के क्षेत्रो की 3,000 से 4,000 भेडो की देखरेख करनी पडती थी तीसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 137 अतिरिक्त केन्द्रो की स्थापना हुयी प्रत्येक केन्द्र 10,000–15,000 भेडो की देखरेख करता है इस प्रकार 70 लाख से 1 करोड भेडे 'भेड और ऊन सुधार' योजनाओ के अन्तर्गत आ जाती है इस समय 439 भेड और ऊन प्रसार केन्द्र (मेढो के केन्द्रो को सम्मिलित करते हुये) है और इन केन्द्रो मे 14,000 मेढे है फलस्वरूप तृतीय योजना के प्रथम तीन वर्षो मे 2 5 लाख सुधरी हुयी सतति का जन्म हुआ

विविध—ऊन के आयात को यथासभव घटाने और देशी ऊनो के उचित विपणन के लिये, ऊन कतरने और ऊन को श्रेणीकृत करने की एक योजना राजस्थान मे बडे पैमाने पर आरम्भ की गयी है ऊन श्रेणीकरण और विपणन के प्रशिक्षण के लिये एक और केन्द्र जयपुर मे स्थापित किया गया है नवलगढ मे एक ऊन श्रेणीकरण केन्द्र और जयपुर मे एक विपणन केन्द्र भी स्थापित किया जा रहा है आशा की जाती है कि यह श्रेणीकरण और विपणन केन्द्र, अपनी देखभाल मे रखी गयी लगभग 1 करोड भेडो से प्राप्त कुल ऊन की मात्रा को सभाल सकेगे

पूना मे स्थापित, एक प्रशिक्षण केन्द्र राज्य सरकारो से प्रतिनियुक्त अधिकारियो को भेड और ऊन उत्पादन के आधारभूत पक्षो, जैसे भेडो के प्रजनन की प्रणालियाँ, फार्म व्यवस्था और आर्थिक व्यवस्था, चारा उत्पादन, भेडो का स्वास्थ्य आदि पर प्रशिक्षण देता है

सारणी 60—भारत में मास और ऊन की सम्भावित प्राप्ति*
(1960–76)

	1960–61	1965–56	1970–71	1975–76
भेडो की सख्या (लाखो मे)	402 6	431 0	463 1	52 10
वध के लिये उपलब्ध सख्या (लाखो मे)	136 8	146 5	162 1	182 1
औसत ससाधित भार (किग्रा मे)	9 6	10 03	10 62	11 26
कुल मास की प्राप्ति (टनो मे)	1,31,842	1,46,886	1 72,207	2,04,917
ऊन की औसत प्राप्ति (ग्रा)	826	876	922	972
कुल ऊन उत्पादन (टनो मे)	33,260	37,707	42,637	49,535

*पशुपालन के लिये चतुर्थ पचवर्षीय योजना, खाद्य और कृषि मत्रालय (कृषि विभाग), नई दिल्ली द्वारा बनायी गयी कार्य समिति की रिपोर्ट.

सारणी 61—भारत में भेड फार्म और प्रजनन इकाइयां*

प्रदेश	भेड फार्म	प्रजनन फार्म या इकाइयां	ऊन या प्रजनन अनुसधान केन्द्र
असम	डिफू	..	...
आन्ध्र प्रदेश	पेनूकोंडा	महबूबनगर, चिन्तल देवी	ऊन टेक्नालाजिकल प्रयोगशाला राजेन्द्र नगर, हैदराबाद
उडीसा	..	चिपलिमा	...
उत्तर प्रदेश	वारापेट्टा (पिथोरागढ)	मथुरा, पांगू (पिथोरागट), केशरकठ (चमोली), डुडा (उत्तर काशी), कालसी (अल्मोडा), चकराता (देहरादून), सैदपुर (झासी), माल्जदूर (मथुरा), बाबूगढ (मेरठ)	केन्द्रीय भेड और ऊन अनुसंधान केन्द्र, पशुलोक, चमोली
गुजरात	नखताराना	पाटन, मोरवी	..
जम्मू और कश्मीर	वनिहाल, विल्लावर, हाचीगाम	अण्डेरवार	...
पश्चिमी बंगाल	..	कालिमपोंग, कल्याणी	...
बिहार	..	टेकरा (गया), गौरीकर्मा, छत्रा	...
तमिलनाडु	कुट्टुप्कम, सत्तूर, नानगुनेरी	होसर, चेट्टिनाड, पडुकोट्टाई, अभिशेकपट्टी	ऊटकमड, छिवसलेन उपकेन्द्र (केन्द्रीय भेड और ऊन अनुसंधान संस्थान, कोडाईकनाल)
मध्य प्रदेश	...	टीकमगढ, मदसौर, शिवपुरी	...
महाराष्ट्र	रजनी	कोल्हापुर, तुल्जापुर, औरंगाबाद, तायावडे (पूना), पडेगांव, मुडुद, पोहोर, भीलाखेड	..
मैसूर		अंगवादी (जिला बीजापुर), सुल्तानी (बेलगांव जिला), धगूर (मड्या जिला), हेसार घाटा	...
राजस्थान	कोडमडेसर, मडोर, पोकरन, जोरबीर, जयपुर	...	केन्द्रीय भेड और ऊन अनुसधान संस्थान, मालपुरा
हरियाणा		हिसार	...
हिमाचल प्रदेश		सिराजकुल्लू, हमीरपुर, जिओरी (सराहन), करछम, किन्नौर, चम्बा	केन्द्रीय भेड और ऊन अनुसधान संस्थान, कुल्लू का उपकेन्द्र

*भेड और ऊन विकास अधिकारी, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली से प्राप्त आँकडे

भेड पालन, भेड प्रजनन और ऊन तकनीक पर अध्ययन करने के लिये मालपुरा (राजस्थान) में एक केन्द्रीय भेड और ऊन अनुसधान संस्थान आरम्भ किया गया है जिसके दो उपकेन्द्र, एक हिमाचल प्रदेश की कुल्लू घाटी में और दूसरा तमिलनाडु के कोडाईकनाल में हैं.

बकरियाँ

बकरियाँ, भेडो की समवर्गी है किन्तु उनसे अधिक सहिष्णु और फुर्तीली होती है बकरो की ठोडी के नीचे बालो का गुच्छा होता है आजकल की बकरियाँ एशिया और यूरोप की (कैप्रा जातियो की) जगली बकरियो की एक या अधिक किस्मो की वशज बतायी जाती है ये मनुष्य द्वारा पाले जाने वाले पहले पशुओ मे से है

बकरियाँ आर्थिक दृष्टि मे लाभकारी होती है इनमे दूध, माम, बाल तथा चमडा मिलता है अनेक प्रकार के पौधो को कुतरने की आदत के कारण बकरियो से वनरोपण के क्षेत्रो मे अधिक हानि होती है बकरी-पालन का कार्य मस्ता होता है और भारत मे यह बहुत से भूमिहीन श्रमिको का प्रमुख व्यवसाय है बकरी ने अपने को देश के सभी क्षेत्रो की प्राकृतिक दशाओ के अनुकूल ढाल लिया है देश के कुछ क्षेत्रो मे दूध देने वाली नस्ले पाली जाती है, लेकिन अधिकतर बकरियाँ माम के लिये ही पाली जाती है बकरियो का दूध आसानी से पच जाता है और यह बच्चो, बीमारो तथा वृद्धो के लिये अच्छा होता है बकरियाँ अधिक बच्चे देती है ये 14 महीने मे दो बार ब्याती है और प्रत्येक बार मे दो या तीन बच्चे देती है इस प्रकार बकरी पालने वाले को निश्चित रूप मे आमदनी होने का भरोसा रहता है

1966 की पशु-गणना के अनुसार भारत मे 6,411 करोड बकरियाँ थी जो कि विश्व की समस्त बकरियो की सख्या की लगभग एक-चौथाई है (सारणी 62) बकरियो की कुल सख्या मे 1956 से 1961 तक 9 8% तथा 1961 से 1965 तक 5 1% की वृद्धि हुयी बकरियो की सबसे अधिक घनी आबादी पश्चिमी बगाल मे है, इसके बाद उत्तर प्रदेश, केरल और तमिलनाडु का स्थान आता है 1961 मे भारत मे बकरी के दूध का अनुमानित वार्षिक उत्पादन 6,28,150 टन तथा एक ब्यॉत (दूध देने की अवधि) मे प्रति बकरी औसतन 58 किग्रा था बकरियो से 3,19,496 टन मॉस (1958–59 के लिये अनुमानित), उत्पादन के अतिरिक्त 9 8 करोड रुपये के मूल्य की 3 1 करोड खाले तथा 1 07 करोड रुपये के मूल्य के 7,580 टन बाल भी प्राप्त हुये (1961 के लिये पहले से किये गये काम चलाऊ आकलन के अनुसार) देश की ग्राम्य अर्थव्यवस्था बकरियो की सख्या तथा उनकी देखरेख पर बहुत कुछ निर्भर है

देश मे अधिकतर बकरियाँ अज्ञात कुल की है यद्यपि कुछ क्षेत्रो मे उत्तम नस्ले भी पायी जाती है हिमालय क्षेत्र, शुष्क उत्तरी भाग, दक्षिणी भाग और पूर्वी भाग, ये चार ऐसे प्रमुख क्षेत्र है जहाँ विशेष प्रकार की नस्ले भली प्रकार पाली जाती है भारत मे बकरियो की 15 नस्ले पायी जाती है

भारतीय नस्लें

हिमालय क्षेत्र, जिसमे जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पजाब और उत्तर प्रदेश सम्मिलित है, उच्च गुणो के बालो वाली कुछ विशिष्ट नस्लो की बकरियो के लिये विख्यात है सफेद बालो वाली हिमालयी बकरी पुष्ट देह वाली होती है इसके बधिया बकरो का उपयोग पर्वतीय क्षेत्रो मे व्यापारिक माल ढोने के लिये किया जाता है इनसे उपलब्ध होने वाले बालो से भी आय होती है पाले जाने वाले स्थानो के अनुसार इन नस्लो के तीन भिन्न-भिन्न नाम है **चम्बा, गद्दी और कश्मीरी** ये कॉगडा और कुल्लू की घाटियो, चम्बा, सिरमूर और हिमाचल प्रदेश मे शिमला तथा जम्मू की पहाडियो के भागो मे पायी जाती है छोटी पश्मीना बकरी छोटे कद की, सुन्दर, तेज चलने वाली तथा अद्वितीय होती है और हिमालय मे 3,350 मी से अधिक ऊँचाई पर तथा तिब्बती पठार पर पाली जाती है गिलगिट, लद्दाख और हिमाचल प्रदेश मे लाहूल तथा स्पिती घाटियो मे भी यह बडी सख्या मे पायी जाती है तिब्बती शरणार्थियो के आगमन मे पहले यह अनुमान लगाया गया था कि लद्दाख मे 50,000 बकरियाँ पाली जाती थी और अब यह सख्या बढकर 1,80,000 हो गयी है बकरियो के झुड मुख्यतया लद्दाख के चॉगथॉग इलाके मे 3,660–4,270 मी की ऊँचाई पर पाले जाते है इनसे अत्यन्त मुलायम और गरम पशु-रोये प्राप्त होते है जिनका प्रयोग कश्मीर और कुल्लू घाटियो मे अच्छे किस्म के कपडे बनाने मे किया जाता है सर्दी के बाद कघा करने से बकरी के नीचे की सुन्दर खाल निकल आती है इससे प्रत्येक बकरी से 21 से 56 ग्रा तक बहुमूल्य बाल प्राप्त हो जाते है यदि बाहरी खाल के मोटे बाल महीन रोओ मे मिल जाते है, तो वस्त्र तैयार करने से पहले उन्हे अलग कर लेते है **चेगू** बकरियाँ स्पिती, याकसार, कश्मीर और तिब्बत के ऊँचे पहाडो पर पायी जाती है इनसे पश्मीना, उत्तम मास तथा प्रतिदिन लगभग 225 ग्रा दूध मिलता है

भारत के शुष्क उत्तरी इलाको मे बकरियो की कुछ महत्वपूर्ण नस्ले पायी जाती है **जमुनापारी,** बकरियो की सबसे बडी एव अत्यन्त शाही नस्ल है, जो अधिकाशत इटावा जिले मे और मध्य प्रदेश मे यमुना तथा चम्बल नदियो के बीच मे अधिकतर पायी जाती है, जहाँ की जलवायु तथा चरागाहो की दशाये इनके पालने के लिये अत्यधिक उपयुक्त है चक्करनगर, सहसन और आसपास के अन्य गॉव इन बकरियो के लिये सुप्रसिद्ध है **जमुनापारी** बकरियो की आकृति विशाल, कद ऊँचा, टॉगे लम्बी, चेहरा उत्तल, कान बडे लटके हुये तथा उन्नत रोमन नाक होती है वे किसी भी मानक लाक्षणिक रगो के लिये प्रजनित नही की जाती इनका शरीर आमतौर पर सफेद तथा गर्दन और चेहरा लाल-भूरा या हल्के भूरे रग का होता है कत्थई या काले धब्बो वाली बकरियाँ भी मिलती है **जमुनापारी** बकरियो की पिछली टॉगो पर लम्बे और मोटे बाल होते है, चमडी चमकदार होती है और सीग छोटे तथा चपटे होते है ये वही अच्छी तरह पनपती है जहाँ चरने के लिये विपुल छोटी-छोटी झाडियो वाले चरागाह होते है

जमुनापारी बकरी द्विकाजी पशु है, जिसमे अच्छा मास तथा अच्छे गुण का दूध भी प्राप्त हो सकता है इसीलिये यह ग्रामीण तथा शहरी इलाको मे बहुत से परिवारो की आमदनी का प्रमुख स्रोत है, चुनिदा बकरे 127 सेमी ऊँचे और बकरियाँ 102 सेमी ऊँची होती है दूध के लिये पाली गयी बकरियाँ 250 दिन की दुग्ध अवधि मे 363–544 किग्रा दूध (3 5% वसा) देती है उत्तर प्रदेश मे इस नस्ल से प्रतिदिन अधिकतम दूध

4 85 किग्रा प्राप्त हुआ इस नस्ल का उपयोग नयी नस्लो, जैसे **बीतल** बकरी, के विकास मे किया जाता है मूलभूत प्रजननकारी स्टाक के बनाये रखने तथा इसकी किस्म को बढाने के लिये उत्तर प्रदेश सरकार ने 1938-39 मे **जमुनापारी** बकरी प्रजनन योजना प्रारम्भ की थी

बीतल नस्ल मुख्यतया पजाब मे पायी जाती है यह **जमुनापारी** नस्ल के समान होती है परन्तु इससे आकार मे छोटी होती है और उतनी वजनी नही होती बकरो के आमतौर पर दाढी होती है बकरियो के सफेद रग पर लाल और कत्थई रग के घने धब्बे होते है बकरियाँ एक दिन में 1 8 किग्रा दूध देती हैं और 177 दिन की दुग्ध अवधि मे दूध की अधिकतम मात्रा 591 5 किग्रा होती है

मारवाडी, **मेहसाना** और **झालावाडी** नस्लो का विकास पहाडी बकरियो तथा **जमुनापारी** बकरियो के मेल से हुआ है, ये हिमालयी बकरियो से मिलती-जुलती हैं ये सकर नस्ले राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश मे पायी जाती हैं बकरियो की इन नस्लो मे विभिन्न रगो का सयोग पाया जाता है ये प्रतिदिन लगभग 0 75–1 00 किग्रा दूध देती हैं

काठियावाडी बकरी का जन्म-स्थान कच्छ, उत्तरी गुजरात तथा दक्षिणी राजस्थान है इसकी चमडी काली होती है तथा गर्दन पर लाल धब्बे होते है यह प्रतिदिन लगभग 1 25 किग्रा दूध देती है

बरबरी नस्ल की उत्पत्ति शायद पूर्वी अफ्रीका के ब्रिटिश सोमालिया मे बरबेरा स्थान मे हुयी इसके बाल छोटे-छोटे और सीग सीधे होते है यह बकरी दिल्ली मे, उत्तर प्रदेश मे अलीगढ, एटा, इटावा, आगरा और मथुरा, और हरियाणा मे गुडगॉव, करनाल, पानीपत और रोहतक के शहरी क्षेत्रो मे लोकप्रिय है इन बकरियो के रग मे बडी असमानता पायी जाती है अधिकतर सफेद रग पर लाल तथा कत्थई रग के धब्बे पाये जाते हैं इनका पोषण बाधकर ही होता है और 108 दिन के दूध देने की अवधि मे ये प्रतिदिन 0 90–1 25 किग्रा तक दूध (5% वसा) देती है ये एक बार मे कई-कई और 12-15 महीने मे दो बार बच्चे देती हैं

शुष्क उत्तरी इलाके की तीन प्रमुख नस्लो के शरीर के माप तथा औसत दैनिक दुग्ध उत्पादन सारणी 63 मे दिये गये है

दक्षिणी इलाके मे तीन पृथक्-पृथक् नस्ले पायी जाती हैं जिनके नाम है **बरारी, सूरती** और **दक्कनी** **बरारी** महाराष्ट्र के नागपुर और वर्धा जिलो मे तथा मध्य प्रदेश के निमाड जिले मे पायी जाती है यह ऊँची काले रग की बकरी है जो प्रतिदिन 0 63 किग्रा दूध देती है

सूरती तथा इससे मिलती-जुलती **मालाबारी (तेलिचेरी)** नस्ल का विकास सभवत अरब की छोटी दुधारू बकरियो मे हुआ है मोटे तौर से **सूरती** नस्ल **बरारी** के समान होती है तथा इसकी टाँगे छोटी और सफेद होती है ये बम्बई, नासिक और सूरत मे लोकप्रिय है यह अपने इलाके के नाम से ही पुकारी जाती है यह अधिक दूध देने वाली बकरी है और एक दिन में 2 25 किग्रा तक दूध देती है मारथेण्डम (त्रिवेन्द्रम) मे यह प्रतिदिन 1–2 किग्रा तक दूध देती हैं

दक्कनी और इससे अत्यधिक मिलती-जुलती **उस्मानाबादी** नस्ले मुख्यत दक्षिण मे पश्चिमी आध्र प्रदेश मे पायी जाती हैं इनका आकार और भार मध्यम होता है तथा ये मैदानो की बकरियो के मिश्रण से उत्पन्न हुयी है इनका रग आमतौर पर काला होता है सफेद और काले रग का या सफेद और लाल रग का मिश्रण अधिक पाया जाता है ये प्रतिदिन 1 35–2 25 किग्रा दूध देती है

मालाबारी (तेलीचेरी) नस्ल का मूल स्थान उत्तरी केरल है यह दो या अधिक प्रकारो का मिश्रण है जिसमे सूरती रक्त की प्रधानता रहती है इसका रग एक समान नही होता है और यह प्रतिदिन 0 9 से 2 8 किग्रा दूध देती है

जलवायु मे विभिन्नता होने और भारी वर्षा के कारण पूर्वी क्षेत्र अधिक दूध देने वाली बकरियो के पालने के लिये उपयुक्त नही है इस इलाके की बकरियो को प्राय अल्प चारे पर ही पालते है इस इलाके मे **बगाली** बकरी पायी जाती है, जो काली, भूरी और सफेद इन तीन रगो की होती है इसकी टाँगे छोटी, परन्तु शरीर भारी तथा इसका मांस श्रेष्ठ समझा जाता है बकरे का भार 14 0–15 3 किग्रा और बकरी का 8 4–13 5 किग्रा होता है बकरियाँ वर्ष मे दो बार ब्याती है और हर बार जुडवा बच्चे उत्पन्न होते है बगाली बकरी की खाल उत्कृष्ट कोटि की होती है तथा इसकी मॉग भारत तथा विदेशो के जूता उद्योग के लिये अधिक है, लेकिन इससे दूध कम मिलता है

असम की पहाडियो की बकरियाँ कॉगडा और कुल्लू घाटियो की सफेद पहाडी बकरियो के समान होती है और पृथक् नस्ल के रूप मे मान्य है

सारणी 62 – 1966 में भारत में बकरियो का वितरण*

(हजार मे)

राज्य	सख्या	राज्य	सख्या
अडमान-निकोबार द्वीप समूह	10 131	नागालैंड	12 417
असम	1,594 571	पजाब	621 427
आन्ध्र प्रदेश	3,758 439	पश्चिमी बगाल	4,834 894
उडीसा	3,081 139	पाण्डिचेरी	11 476
उत्तर प्रदेश	8,136 104	बिहार	7,801 141
केरल	1,189 218	मणिपुर	5 970
गुजरात	2,771 339	मध्य प्रदेश	6,606 457
चडीगढ	3 933	महाराष्ट्र	5,121 337
जम्मू एव कश्मीर	605 501	मैसूर	2,783 682
तमिलनाडु	3,770 847	राजस्थान	10,323 396
त्रिपुरा	56 198	हरियाणा	517 341
दादरा और नगर हवेली	12 753	हिमाचल प्रदेश	460 765
दिल्ली	14 345	लक्षद्वीवी, मिनिकोय, अमीनदीवी द्वीप समूह	2 023
योग	64,106 844		

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Food & Agriculture, Govt of India, 1972

विदेशी नस्लें

कुछ विदेशी नस्ले जो अधिक दूध देती है और मोहेयर (विशिष्ट प्रकार का रोयाँ) उत्पन्न करती है भारत मे सकर नस्ले

सारणी 63 – शुष्क उत्तरी इलाके की बकरियों के शरीर का माप तथा औसत दैनिक दुग्ध उत्पादन*

नस्ल	नाक के अगले सिरे से पूंछ का नोक तक की लंबाई (सेमी)	जमीन से कंधे तक ऊँचाई (सेमी.)	प्रौढ़ का शरीर भार (किग्रा)	प्रति बकरी औसत दूध की प्राप्ति (किग्रा)
जमुनापारी				
बकरा	127–137	91–102	68 0–90 0	
बकरी	116–127	76–86	45 0–65 0	2 25–2 7
बीतल				
बकरा	127–132	91–99	65 8–86 1	
बकरी	107–122	76–83	45 4–61 2	1 8
बरबरी				
बकरा	96–112	66–76	36 3–45 4	
बकरी	91–114	61–71	27 2–36 3	1 13

*Lall, *Farm Bull , Indian Coun agric Res* , No 4, 1954, 6

विकसित करने के लिये उपयुक्त पायी गयी हैं इनमे **अल्पाइन**, **नूबियन**, **सानेन**, **टोगनबर्ग** और **अंगोरा** प्रमुख नस्लें हैं

अल्पाइन बकरियों का उद्भव फ्रान्सीसी और स्विटजरलैंडीय आल्पस इलाकों मे हुआ ये गर्म जलवायु मे भी ठीक रहती हैं इनके कान उठे हुए और चेहरा दबा हुआ होता है, रग तरह-तरह का जैसे काला, कत्थई, सफेद या इनमे से किन्ही रगों का मिश्रण होता है प्राय इनके सीग होते है बकरे का औसत भार 65–80 किग्रा और बकरी का 50–60 किग्रा होता है यह नस्ल भी अन्य नस्लो के बराबर दूध देती है दूध मे मक्खन-वसा औसतन 3–4% होती है इस नस्ल का आयात भारतीय अवस्थाओं मे आयात की गयी बकरियों पर, ठौर पर खिलाये जाने का प्रभाव देखने के लिये, लुधियाना जिले (पजाब) के 'हीफर प्रोजेक्ट' के अन्तर्गत, विशाल सख्या मे किया गया है

नूबियन बकरी **जर्सी** नस्ल के नाम मे जानी जाती है यह नस्ल सबसे पहले मिस्र मे प्राप्त **नूबियन** नस्ल तथा भारत मे प्राप्त **जमुनापारी** नस्ल के बकरो तथा ब्रिटिश बकरियों के सकरण से विकसित की गयी **नूबियन** का रग सफेद, काला, लाल तथा कत्थई या फिर इन रगो का कोई मिश्रण होता है इसका चेहरा अन्य विदेशी नस्लो से भिन्न होता है, नाक रोमन तथा कान लम्बे लटके हुये होते हैं बकरो तथा बकरियों दोनो के ही सीग होते हैं बकरो का भार 65–80 किग्रा और बकरियों का 50–60 किग्रा होता है इसके दूध देने की अवधि मे इससे प्रतिदिन 6 6 किग्रा तक दूध प्राप्त होता है दूध मे औसत मक्खन-वसा 4–5% होती है

सानेन बकरी स्विटजरलैंड की नस्ल है जिसके दाढी होती है और नही भी होती, कान सीधे या आगे को नुकीले होते है इसका कद छोटा होता है, कभी-कभी लम्बे बालो की झालर होती हे जो पीठ और पिछले पुट्ठों पर लटकती रहती है रग पीत-श्वेत या हल्का बादामी होता है प्रकार के अनुसार रग मे अन्तर हो सकता है अमेरिका मे यह नस्ल निरतर दूध देते रहने के कारण लोकप्रिय है इस नस्ल की 8–10 माह दूध देने की अवधि मे औसतन 2–5 किग्रा दूध प्रतिदिन मिलता हे दूध मे औसत मक्खन-वसा 3–4% होती है

टोगनबर्ग की उत्पत्ति स्विटजरलैंड मे हुयी इस बकरी के सीग नही होते, इसके कान खडे होते हैं और चेहरा सपाट या दबा हुआ होता है कद छोटा होता है और पीठ और पिछले पुट्ठों पर लटकती हुयी लम्बे बालो की झालर होती भी है और नही भी होती इसका रग बादामी होता है चेहरे पर आँखो मे थूथन तक, कानो के अगले भाग, टागो से घुटने तक जाँघ के नीचे और पूछ के चारो ओर सफेद धब्बे पाये जाते हैं इस प्ररूप मे अन्तर भी पाये जा सकते हैं यह इगलैंड और अमेरिका मे दूध देने वाली महत्वपूर्ण बकरी है इसका प्रतिदिन का औसत दुग्ध उत्पादन 5–6 किग्रा है दूध मे मक्खन-वसा 3–4% होती है

अंगोरा बकरी, जिसका मूल स्थान तुर्की तथा एशिया माइनर है, दुधारू नही होती, परन्तु इससे कीमती और महत्वपूर्ण कपडो के लिये रोयें प्राप्त होते है, जो व्यापार मे मोहेयर कहलाते हैं उत्तरी भारत की सिवालिक पहाडियो की प्लायोसीन चट्टानो मे प्राप्त बकरी के जीवाश्मों से इस बात की पुष्टि होती है कि इस बकरी का उद्गम स्थान हिमालय ही है और मोहेयर उद्योग का भारत मे प्रवेश इस काल का नही है अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीका के शुष्क इलाको मे इस बकरी को पालने मे सफलता प्राप्त हुयी है अंगोरा बकरी का कद छोटा होता है, इसकी टाँगे अत्यधिक छोटी होती हैं देखने मे बकरी जैसी न लगकर ये भेड जैसी जान पडती है इसकी पीठ सपाट होती है और पूछ की तरफ ढाल नही होता इसका शरीर वर्गाकार तथा हृष्ट-पुष्ट, सिर छोटा, कान चपटे, नुकीले और लटके हुये होते हैं सीग धूसर रग के, मेढों के सीग पीछे और बाहर की ओर सर्पिल, चमडी गुलाबी रग की और रगीन धब्बो मे मुक्त होती है पूछ छोटी और सीधी होती हे शुष्क जलवायु मे गर्मी और सर्दी के बीच अत्यधिक भिन्नताओ मे भी यह अच्छी तरह पनपती है

बकरी के लोम सुन्दर होते हैं और शरीर से सफेद छल्ले के रूप मे छितराते हुये या लम्बे घेरों मे लटकते हैं लोम अथवा **मोहेयर** गठन मे उत्तम, उच्च तनन शक्ति के और देखने मे कान्तिवान होते हैं भारत मे कश्मीर, पजाब, हिमाचल प्रदेश और उत्तरी उत्तर प्रदेश के शुष्क हिमालयी इलाके इस बहुमूल्य नस्ल के पालने के लिये उपयुक्त हैं सफेद हिमालयी बकरियाँ **अंगोरा** से अधिक मिलती-जुलती हैं और इनका सकरण किया जा सकता है संकर बकरियो मे प्राप्त बाल ज्यादा अच्छे होते हैं और इनका उपयोग आयातित मुलायम ऊन के स्थान पर किया जा सकता है

भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् के प्रोत्साहन से उत्तर प्रदेश मे **अंगोरा** बकरो का समावेश हुआ है जिसका लक्ष्य **गद्दी** अथवा सफेद पहाडी बकरियो के साथ सकरित करके प्रदेश मे **मोहेयर** उद्योग की स्थापना करना है

आहार और प्रबन्ध

ग्रामीण क्षेत्रो मे बकरियों को एकमात्र चरायी करके पाला जाता है यह पशु सभी प्रकार की वनस्पतियो, जैसे पत्तियो, कलिकाओ, टहनियो, घासो, खरपतवारो, जगली पौधो, सब्जियो तथा फलो के छिलको, ऊपर से काटी गयी झाडियो, पौधो की काटी

गयी शाखाओं तथा काली बेरी, गोखरू और कीकर जैसे तीक्ष्णवर्धी पौधों को खाकर पल जाता है

ठौर पर खिलाने के लिये अच्छी सूखी घास, मुखायी कुरकुरी पत्तियाँ, और थोड़ा-सा नमक बकरियों के लिये उत्तम चारा है दुधारू बकरियों को मूंगफली की खली के समान रातबों को चने, मक्का और भूसी के समान भाग के साथ मिलाकर भी कभी-कभी खिलाया जाता है बकरी के आहार में कैल्सियम, फॉस्फोरस और नमक जैसे खनिज आवश्यक होते हैं 2% खनिज मिश्रण को सामान्यत रातब में मिला लिया जाता है बकरियों को बहुत से विटामिनों आमतौर से ए, डी और ई की आवश्यकता होती है अधिक दुधारू बकरियों के बच्चों के आहार में संश्लिष्ट विटामिनों को मिला लिया जाता है

भारत में अच्छे चरागाहों के अभाव के कारण तथा रातब के रूप में खिलाये जाने वाले अनाजों की कमी तथा मँहगाई के कारण बकरियों में पोषणज न्यूनतायें देखी जाती है प्रोटीन की न्यूनता दूर करने के लिये घास या मुखायी हुयी घास (हे) के रूप में फलीदार चारे खिलाने चाहिये दूध देने की अवधि में बकरियों की दैनिक आवश्यकता आमतौर पर 450–565 ग्रा रातब मिश्रण और 1 80 किग्रा मोटा चारा है

सामान्यत नर बच्चे मादा की तुलना में भारी होते हैं जन्म के समय **बीतल** नस्ल के नर मेमने का भार 3 0 किग्रा तथा मादा का 2 7 किग्रा होता है दूध छुड़ाने पर या बकरी की मृत्यु हो जाने के अतिरिक्त इन्हे अधिकाशत माता के दूध पर ही छोड दिया जाता है चार माह की आयु में ही इनका दूध छुडा देना चाहिये तथा पेडो की पत्तियों जैसे ठोस आहार को पूरी तरह से खाने देना चाहिये, जिसे ये जन्म के 2–3 सप्ताह बाद ही कुतरना प्रारम्भ कर देते हैं कच्छ में कुछ बकरी-पालक मेमनों को दूध छुड़ाने से लगभग दो माह पूर्व से मखनिया दूध देना शुरू कर देते हैं उत्तर प्रदेश के एटा जिले में **बरबरी** बकरियों को हाथ से खिलाया जाता है नर मेमने मादा बकरी की तुलना में अधिक खाते हैं लेकिन उन्हे अधिक मात्रा में नही खिलाना चाहिये क्योंकि ये मोटे होने से आलसी तथा कम प्रजननशील हो जाते हैं स्वस्थ बकरे को प्रतिदिन 1 86 किग्रा रातब मिश्रण (दाना) देना चाहिये मैथुन काल में यह मात्रा बढा देनी चाहिये पूर्ण विकसित **जमुनापारी** बकरे को जब ठौर पर खिलाया जाता है तब उसे प्रतिदिन 6 8–9 0 किग्रा हरे चारे की आवश्यकता होती है बकरों को स्वस्थ रखने के लिये उन्हे प्रतिदिन 3 2–4 8 किग्रा चारा चरना आवश्यक है

एक मेमने को पहले तीन दिन तक दिन में पाँच बार 56–112 ग्रा दूध पिलाना चाहिये 2 सप्ताह या अधिक आयु के मेमनो को निम्नलिखित अवयवों से युक्त (भार के अनुसार) मेमना-प्रारम्भक खिलाना चाहिये दली हुयी पीली मक्का, 45 चावल की पालिश, 20, गेहूँ का चोकर 15, मूंगफली की खली, 10, सूखा दूध, 8, और खनिज मिश्रण, 2 भाग, विटामिन ए (निर्जलीकृत-स्थायी), 200, विटामिन डी (निर्जलीकृत-स्थायी), 60, और प्रति-जैविक (ओरोमाइसीन, टैरामाइसीन), 80 अंश प्रति करोड अंश जब मेमने इन आहार और फलीदार चारे को खाने लगे तो दूध की मात्रा धीरे-धीरे कम कर देनी चाहिये नमक तथा स्वच्छ जल तो सदैव ही मेमनो के लिये उपलब्ध रहना चाहिये

बकरियों का सामान्य दैनिक आहार (सभी आयु के लिये). रिजका या सूखी बरसीम 1 5 किग्रा रसदार घासें, साइलेज या जडें 1 किग्रा, सान्द्र मिश्रण 1 किग्रा है इस मिश्रण को दली मक्का 75 किग्रा ज्वार 75 किग्रा, गेहूँ का चोकर 25 किग्रा, मूंगफली की खली या अलसी की खली 25 किग्रा, नमक 2 5 किग्रा, भपाई हड्डी का चूरा 1 5 किग्रा, और चूना पत्थर 1 किग्रा से तैयार किया जाता है इस मिश्रण में 14% प्रोटीन रहता है

अच्छी प्रकार तैयार की गयी सूखी घास जैसे रिजका और बरसीम दुधारू बकरी का उत्तम और सस्ता पोषण है लुधियाना में बकरी पालने वाले बकरियों को मूंगफली का मोटा चारा देते हैं तथा इसका पत्तीदार भाग या तो बेच दिया जाता है या अन्य पशुओं को खिला दिया जाता है

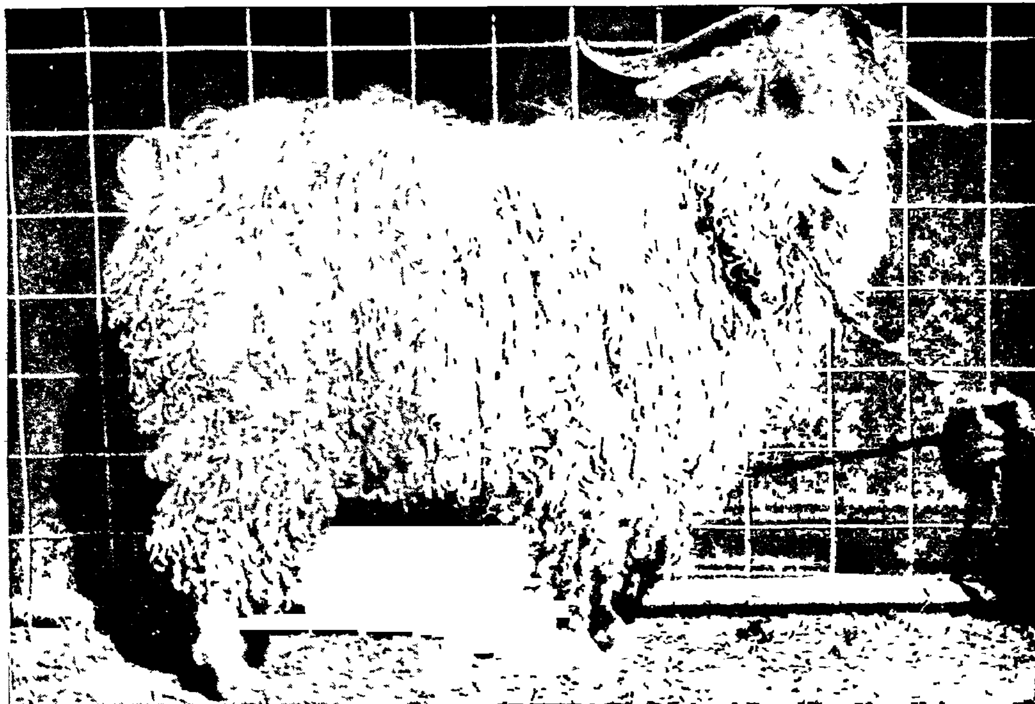
अच्छे आहार और प्रबन्ध से बकरियों की दूध देते रहने की अवधि बढने में सहायता मिलती है कुछ भारतीय नस्लें चौदह महीने में दो बार बच्चे जनती हैं इसी कारण उनका दुग्धकाल दस माह से कम होता है

बकरों का आहार बकरियों के समान ही होता है परन्तु वे अधिक चारा खाते हैं क्योंकि ये काफी हृष्ट-पुष्ट होते हैं मैथुन काल में इनको अधिक रातब खिलाना चाहिये.

बकरियों को खराब मौसम तथा जंगली जानवरों से बचाने की आवश्यकता होती है इनके आवास ऐसे स्थानों पर होने चाहिये जहाँ अच्छी तरह से हवा आ-जा सके, पर्याप्त जगह हो, जल निकास अच्छा हो और पर्याप्त प्रकाश मिलता हो इमारत के एक कोने में 'लीन-टु' प्रकार का बाडा (3 0 मी × 1 5 मी) बकरियों को रखने के लिये सस्ता रहता है दो बकरियों तक के बाधने के लिये 1 3 मी × 1 1 मी स्थान में एक ठौर बनाकर, 100 या अधिक बकरियों को रखने और खिलाने की व्यवस्था करने के लिये अनेक ठौरों वाले नियमित आवास बना लेने चाहिये बकरी के आवास की योजना जलवायु, दशाओं और बाँधे जाने वाले झुड के अनुसार बनायी जाती है कम वर्षा वाली (50–76 सेमी) शुष्क जलवायु में एक तरफ से खुला हुआ लम्बा बाडा, जिसमें मौसम का असर कम पडे, अच्छे जल-निकास वाली नींव के ऊपर बनाना चाहिये बकरों में खास तौर से मैथुनकाल में दुर्गन्ध आती है इसलिये इनको दुधारू बकरियों से पृथक रखना चाहिये

प्रजनन

दूध और मांस की दृष्टि से बकरियों का नियोजित प्रजनन अधिक लाभकर है प्रजनन काल, जलवायु पर निर्भर करता है और भिन्न-भिन्न स्थानों पर पृथक-पृथक होता है मई–जून तथा जुलाई में सगम कराने पर एटा (उत्तर प्रदेश) में अक्टूबर–नवम्बर तथा दिसम्बर में बकरियाँ बच्चे जनती हैं, जबकि हिसार (हरियाणा) में मार्च से जुलाई तक सगम होने पर अगस्त से नवम्बर के महीनो में बच्चे पैदा होते हैं यह देखा गया है कि शरद ऋतु में ब्यायी बकरियाँ गर्मियों में ब्यायी बकरियों की अपेक्षा अधिक दूध देती हैं आयात की गयी बकरियों का सामान्य प्रजनन काल सितम्बर से फरवरी अथवा मार्च के प्रारम्भ तक होता है **बरबरी** और **बगाली** बकरियाँ वर्ष में भिन्न-भिन्न समय पर बच्चे दे सकती हैं **बीतल** और **जमुनापारी** बकरियाँ जुलाई–सितम्बर में बच्चे देती हैं परन्तु सभी बकरियों के प्रजनन-काल में काफी भिन्नता होती है



अगोरा बकरा



पश्मीना बकरा

प्रजनन के लिये चुने हुये बकरे असली प्रकार के और अधिक सामर्थ्य और ओजपूर्ण होने चाहिये इनमे किसी प्रकार की न्यूनता या रोग नही होना चाहिये जब प्रजननकारी बकरे का चयन किया जाता है तब इसकी वशावली की पिछली एक या दो पीढियो के बारे मे जानकारी कर लेनी आवश्यक होती है मैथुन के समय बकरे को काफी व्यायाम कराना चाहिये और स्वच्छ घेरे मे रखना चाहिये

सामान्यत अभिजनक बकरे दो से तीन वर्ष की आयु तक अच्छे रहते है एक वयस्क बकरा वर्ष मे 80–100 बकरियो मे मैथुन करने की क्षमता रखता है सगम के लिये तरुण बकरे की उपयुक्त आयु दस माह है, और वह जब तक तीन वर्ष का न हो ले तब तक वर्ष मे तीस से अधिक बकरियो पर इसका प्रयोग नही करना चाहिये दो मैथुनो के बीच का अन्तर नवीन बकरो के लिये लगभग दो सप्ताह का और पुराने बकरो के लिये दो-तीन दिन का होना चाहिये यदि बकरो को स्वस्थ दशा मे रखा जाये तब कोई भी बकरा बारह वर्ष तक प्रजनन कार्य के लिये सक्षम रह सकता है जब बकरी मद मे आती है तो उसको बकरे के पास ले जाया जाता हे और एक या दो बार तक मैथुन होने तक साथ-साथ रखा जाता है

दस-पन्द्रह माह की आयु की बकरियाँ प्रजनन के लिये उपयुक्त हो जाती है हिसार फार्म पर जहाँ **बीतल** बकरियो के रेवड को चरागाहो पर पाला जाता है बकरियाँ लगभग पन्द्रह मास मे वयस्क हो जाती है और पहला मेमना लगभग पाँच माह बाद पैदा होता है बकरियाँ सामान्यत एक साथ दो बच्चे देती है परन्तु पाँच मेमनो को एक साथ जन्म देते हुये भी देखा गया है जुडवा बच्चे पैदा होने की घटना, नस्ल, वातावरण और बच्चे देने की क्रम सख्या पर निर्भर करती है सरकारी पशुधन फार्म, हिसार मे **बीतल** बकरियो मे औसतन 35% एक, 54 4% दो, 6 3% तीन और 0 4% चार बच्चो को जन्म देते देखा गया है **जमुनापारी** नस्ल मे 19–50% (औसत 35%) और **बरबरी** नस्ल मे 47–70% जुडवा बच्चे होते है सगर्भता काल मे बकरी की जैसी अवस्था रहती है उसका भी प्रभाव बच्चे के गुण पर पडता है. बकरी को अच्छी प्रकार से खिलाना चाहिये, टहलाना चाहिये और वर्षा तथा ठण्ड मे बचाना चाहिये वर्ष मे मादा को एक बार प्रजनन करने देना चाहिये और बच्चे देने के सात-आठ माह बाद फिर सगम कराना चाहिये बच्चे जनने की बारम्बारता नस्ल पर निर्भर करती है बरबरी नस्ल की बकरियाँ अठारह माह मे दो बार बच्चे देती है बकरियाँ पाँच-सात वर्ष की आयु मे अधिकतम क्षमता प्राप्त कर लेती है और छठे ब्यॉत के बाद बकरियो को रखना आर्थिक दृष्टि मे लाभकर नही है

बकरियो के नियोजित प्रजनन के लिये वाछनीय गुणो वाली उचित नस्ल का चुनाव आवश्यक है अच्छी वशावली और सतोषजनक दूध देने वाली बकरियो की सन्ततियो मे वे ही गुण ला सकना आसान होता है इसी तरह विदेशी बकरो का सकरण देशी बकरियो से कराया जाता है तो आशाजनक फल प्राप्त होते है पजाब सरकार ने 1964 मे गहन कृषि जिला कार्यक्रम के अन्तर्गत दुधारू बकरी योजना, लुधियाना, प्रारम्भ की जिसका प्रमुख उद्देश्य भारत मे उन्नत दुधारू बकरियो का चयन करना और उनका अधिक दूध उत्पादन के लिये विदेशी बकरो मे सकरण कराना था

भारत मे बकरी के प्रजनन की बहुत-सी पद्धतियाँ है विभिन्न पद्धतियो का सक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है

उन्नयन (अपग्रेडिग) – यह प्रजनन की एक सस्ती और उत्तम पद्धति है, जिसमे ज्ञात नस्ल के शुद्ध प्रजनित नर का सगम उसी नस्ल की या अज्ञात पूर्वजो की मादाओ से किया जाता है इस विधि का उद्देश्य एकरूपता लाना तथा सतति मे उत्तम उत्पादक गुणो का समावेश करना है

अन्त प्रजनन – यह अत्यन्त निकट सम्बन्धियो के मध्य होने वाली प्रजनन पद्धति है और किसी नस्ल मे विशिष्ट गुणो को स्थिर करने मे लाभदायक है यदि जनको मे अवाछनीय कारक पाये जाते है तो सतति मे भी वही लक्षण आयेगे इसलिये इस विधि द्वारा वाछित गुणो के साथ कुछ अवाछित गुण भी आ जाते है

अर्धनिकट अत.प्रजनन (लाइनब्रीडिंग) –यह विख्यात विधि है और अन्त प्रजनन का कामचलाऊ रूप है, इसमे लाभ-हानि की कम गुजाइश रहती है यह वह पद्धति है जिसमे सम्बन्ध कम गहन होता है और जिसमे मिलन कराने का उद्देश्य सतति परीक्षित प्रजनको के समान उत्तम नर प्रजनको को प्राप्त कराना होता है प्राय छोटे-छोटे प्रजनक नर या मादा के उत्तम गुणो के लाने के लिये इस पद्धति का उपयोग करते है

सजातीय सकरण – ऐसे पशुओ का वह मिलन है जो एक ही नस्ल के होते है, परन्तु उनमे 4–6 पीढियो तक की वशावली मे कोई घनिष्ठ सबध नही रहता यह सुरक्षित पद्धति है क्योकि ऐसा नही हो सकता कि बिना किसी प्रकार से सम्बन्धित दो पशु अवाछित जीनो का वहन करे और उसे अपनी सन्ततियो तक पहुँचा दे इस विधि का उपयोग केवल दूध के उत्पादन को बढावा देने के लिये किया जाता है

सकरण – विभिन्न नस्लो के दो शुद्ध पशुओ का मिलन सकरण कहलाता है इसमे एक नस्ल के शुद्ध नर को दूसरी नस्ल की उच्च श्रेणी की मादा से सगम कराया जाता है सकर पशु अन्त जात पशुओ की तुलना मे अधिक ओजपूर्ण होते है

त्रि या चतु सकरण विधि – आजकल पशु-पालक तीन या चार विभिन्न विभेदो या नस्लो के परस्पर सकरण को अपनाते है विभेदो अथवा नस्लो के सकरण द्वारा सकर ओज पाना तथा मास और दुग्ध उत्पादन बढाना सभव है जटिल आनुवशिकता के कारण यह सभव है कि पहली पीढी मे सभी गुण न आ पाये, परन्तु बकरियो की सन्तति मे आकार, ओज, प्रजनन शक्ति तथा दुग्ध उत्पादन सम्बन्धी जीनो की अभिवृद्धि की जा सकती है

कृत्रिम वीर्यसेचन

बकरियो मे कृत्रिम वीर्यसेचन लाभकारी होता है यदि उसे गोपशुओ मे अपनायी जाने वाली पद्धति के अनुसार ही उपयोग मे लाया जा सके और परीक्षित नरो को भली-भाँति स्थापित किया जा चुका हो अच्छी वशावलियो की कुछ दुधारू बकरियो जैसे **अल्पाइन, नूबियन** और **टोगनबर्ग** नस्लो की बकरियो का आयात भारत मे हुआ है और इनका मेल देशी नस्लो के साथ किया गया है बानगी के तौर पर सन्तति परीक्षण कार्यक्रम मे देशी तथा आयात की गयी दोनो प्रकार की बकरियो का उपयोग सकरण किये जाने वाले बकरो की शक्ति जानने के उद्देश्य से किया गया यदि एक बार उत्तम नर के रूप मे कोई बकरा मिल जाये तो उसका प्रयोग कृत्रिम वीर्यसेचन की विधि से व्यापक रूप से किया जा सकता है

बकरियों में कृत्रिम वीर्यसेचन का विकास उस सीमा तक विकसित नहीं हो सका है, जितना कि गोपशुओं में है बकरों के वीर्य के रख-रखाव, परीक्षण तथा परिवहन में कुछ छोटी-छोटी समस्यायें सामने आती हैं इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये अनुसंधान जारी है प्रजनन कार्यक्रम के लिये कृत्रिम वीर्यसेचन द्वारा उपयुक्त बकरे का चयन सुगम बनाने के लिये भारतीय दुधारू बकरी संघ द्वारा लुधियाना में बकरों तथा बकरियों दोनों की वंशावलियों को प्रदर्शित करने के लिये पंजीयन प्रमाणपत्र रखे जाते हैं

परजीवी और रोग

बकरियों में बहुत-सी बीमारियाँ और रोग लगते हैं जानवरों में आन्तरिक तथा बाहरी परजीवी ऐसी बीमारियाँ उत्पन्न करते रहते हैं, जिनसे मवेशियों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और दूध तथा मांस का उत्पादन कम हो जाता है

सामान्यतः बकरियाँ अत्यन्त सहिष्णु और अन्य पशुओं की तुलना में जीवाणुओं और विषाणुओं द्वारा उत्पन्न रोगों में कम ग्रसित होती हैं बकरी स्फोट, सांसर्गिक प्लूरोन्यूमोनिया, गिल्टी रोग, और अन्य जीवाणुज संक्रमण, खुरपका और मुहपका रोग, जोन्स रोग, अधरांगघात और प्रवाहिका बकरी के सामान्य संस्पर्श रोग हैं

बकरी स्फोट एक सामान्य रोग है जिसमें तुरन्त की ब्यायी बकरियों के थनों तथा अयन पर ग्रन्थियों के आकार के क्षत हो जाते हैं यह रोग दुधमुंहे मेमनों के मुंह तथा ओठों में फैल सकता है रोगग्रस्त बकरी दूध नहीं देती और सामान्यतः दूध की मात्रा घट जाती है ऐसे पशुओं को अलग कर लेना चाहिये, और दुहने के पहले मंद पूतिरोधी मरहम जैसे सल्फानिलैमाइड मरहम लगाने के बाद गर्म सिंकाई करके द्वितीयक संक्रमण को रोकना चाहिये सप्ताह में दो बार इप्सम लवण का उपयोग भी लाभकारी होता है फार्मों पर भेड-टीका लगाने से उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुये हैं

संस्पर्श प्लूरोन्यूमोनिया बकरियों का एक घातक रोग है इसका प्रभाव सभी आयु की बकरियों में होता है खाँसी, छींक आना और नासा-स्राव तथा भूख का कम हो जाना इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं रोगग्रस्त पशुओं को उपचार के लिये एकान्त में रखना चाहिये महामारी होने पर पशुओं को रोग प्रभाव से मुक्त करने के लिये एक नया टीका निकाला गया है

ऐन्थ्रैक्स एक अन्य घातक रोग है जो बहुत-सी बकरियों में होता है यह रोग अचानक प्रकट होकर भयंकर रूप धारण करता है यह रोग **बैसिलस ऐंथ्रैसिस** द्वारा तब उत्पन्न होता है जब बकरियाँ गर्म मौसम में घास-पात की कमी होने पर चरागाहों में चरती हैं जब मनुष्य रोगग्रस्त पशुओं के सम्पर्क में आते हैं तो उन्हें भी यह रोग हो जाता है यह रोग तमिलनाडु, मैसूर और महाराष्ट्र प्रदेशों में अधिक फैलता है, किन्तु छुटपुट रूप में सारे भारत में पाया जाता है बकरियों में यह रोग ज्यादातर उग्र होता है पशु डाँवाडोल होकर फिरता है, काँपने लगता है, बेचैन हो जाता है, साँस लेने में कठिनायी होती है, रक्तस्राव होता है तथा वह ऐंठने लगता है रोगग्रस्त इलाकों में ऐंथ्रैक्स प्रतिसीरम देकर इस रोग से छुटकारा पाया जाता है

ब्रुसेलोसिस या **माल्टा ज्वर** एक संक्रामक रोग है जो **ब्रुसेला मेलिटेंसिस** द्वारा फैलता है इस रोग से बकरियों में गर्भपात हो जाता है रोगग्रस्त प्राणियों के दूध से भी यह रोग मनुष्यों को लग जाता है इस रोग का निदान रक्त-परीक्षण या दूधवलय परीक्षण द्वारा किया जा सकता है टीका लगाने से इस रोग का बचाव हो जाता है

विब्रियोसिस, सर्पिल आकार के **विब्रियो फीटस** नामक जीवाणु द्वारा फैलता है रोगग्रस्त बकरों से मैथुन कराने या कृत्रिम वीर्यसेचन में वीर्य के रोगग्रस्त रहने पर यह संक्रमण फैलता है दूषित जल और चारे में भी संक्रमण होता है स्ट्रैप्टोमाइसिन से उपचार के बाद बकरियों में सामान्य प्रजनन क्षमता पुनः आ जाती है

लेप्टोस्पाइरोसिस नामक रोग **लेप्टोस्पाइरा पामोना** द्वारा फैलता है इससे दूध उत्पादन में भारी कमी आ जाती है और बकरियों की वृद्धि रुक जाती है यह संक्रमण सामान्यतः पोखरों तथा तालाबों और झीलों से फैलता है टीका लगाकर तथा संक्रमण के कारकों का निवारण करके इस रोग को रोका जा सकता है

स्तनशोथ (थनैली) दुधारू बकरियों का उग्र रोग है यह विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं से उत्पन्न होने वाला जटिल रोग है अयन के ग्रस्त भाग का उपचार पेनिसिलिन इंजेक्शन लगा कर किया जाता है

किलाटी लसीकापर्वशोथ रोग **कोराइनेबैक्टीरियम ओविस** द्वारा उत्पन्न होता है इसमें जबड़े, स्कन्ध या बगल में सूजन आ जाती है रोगग्रस्त बकरियों को अलग कर देना चाहिये और क्षतों का उपचार करना चाहिये इस अवस्था का कोई विशिष्ट उपचार नहीं है

बकरियों का खुरपका और मुंहपका रोग भारत के अनेक भागों में सामान्य है इस रोग में जीभ, ओठ, गाल, तालू और मुंह के अन्य ऊतकों तथा पैर की विदर के ऊपर तथा बीच की चमड़ी की श्लेष्मा कला पर व्रण बनने लगते हैं बरसात या गर्मी के महीनों में यह रोग फैलता है इसी समय प्रवाहिका तथा निमोनिया भी हो जाता है रोगग्रस्त बकरियों को अलग करके उपचार करना चाहिये

हाल ही के अन्वेषणों से पता चला है कि बकरियाँ यक्ष्मा (ट्यूबर्कुलोसिस) से छुटकारा नहीं पाती रोगग्रस्त बकरियों में यह रोग गोपशुओं की तुलना में अधिक तेजी से फैलता है फेफड़े तथा वक्ष लसीका ग्रन्थियाँ इससे प्रभावित होने वाले प्रमुख अंग हैं रोगी पशुओं की शीघ्र ही ट्यूबर्कुलिन परीक्षा करा लेनी चाहिये भयंकर रूप से रोगग्रस्त रेवड़ों में इस रोग का नियंत्रण करने के लिये बी सी जी का टीका लाभकारी होता है

जोनरोग संभवतः भारत में बाहर से आया है यह रोग आजकल देश के बहुत से व्यवस्थित फार्मों में व्याप्त है यह क्षयकारी रोग है, यह यक्ष्मा के समान ही बैसिलस द्वारा उत्पन्न होता है रोगग्रस्त पशु में ज्वर, खाँसी और भूख के कम हुये बिना ही मांस घट जाता है तथा क्षीणता धीरे-धीरे बढ़ती जाती है कभी-कभी और आवर्ती प्रवाहिका होने से पशु में दुर्बलता एवं निर्जलीकरण में वृद्धि होती है और अन्त में पशु मर जाता है रोग का पता लगाने के लिये जोनिन परीक्षण लाभकर है

अधरांगघात या पूर्ण अंगघात तमिलनाडु, मैसूर, उड़ीसा और पंजाब में फैलता बताया गया है पंजाब में भेड़ तथा बकरियों में कटि अंगघात बरसात के बाद होता है पशुओं का लड़खड़ाना, पिछली टाँगों का पटकना तथा सामान्यतः भू-लुंठित होना इस रोग के लक्षण हैं कभी-कभी देह का ताप भी बढ़ जाता है यह रोग

सुअर

भारत जैसे घनी आबादी वाले देशों में कम लागत पर उपलब्ध सुअर पशु-प्रोटीन महत्वपूर्ण है थोडी लागत से उच्च पोषण मान का खाद्य-मास प्रदान करने के मामले मे अन्य फार्म-पशुओं की अपेक्षा यह सर्वश्रेष्ठ है अनेक पश्चिमी देशों में तथा भारत मे भी जहाँ सुअर के मास तथा मास उत्पाद (1966–67 के अनुमान के अनुसार 33,495 टन) कुल वार्षिक मास उत्पादन के 5% हैं, सुअर उद्योग का राष्ट्रीय आय में काफी योग है जिन दशाओं मे सुअर पाले जाते हैं उनके कारण सुअर का मास बकरी के मास की अपेक्षा अधिक पसद नही किया जाता भारत में सुअर-पालन आर्थिक रूप से नीच जातियो का सहायक पेशा है परन्तु हाल ही मे शुद्ध नस्लों के प्रविष्ट होने के कारण उनके प्रजनन, आहार तथा मास के विपणन की उन्नत विधियो के अपनाने के कारण यह आशा बँधने लगी है कि इस उद्योग मे देश की अर्थव्यवस्था मे काफी सहयोग मिलेगा सुअर पालने में नाममात्र की लागत बैठती है इसे घरेलू उद्योग के रूप मे अपनाया जा सकता है

1956 की गणना के अनुसार भारत में सुअरो की सख्या लगभग 50 लाख आँकी गयी है सुअरो की सख्या का राज्यवार वितरण सारणी 70 मे दिया हुआ है

सुअरो की सबसे अधिक सख्या उत्तर प्रदेश मे और सबसे कम जम्मू और कश्मीर में है

सुअर बडे तेज प्रजनक है और वर्ष मे दो बार बच्चे जनते हैं तथा प्रत्येक बार मे 6–8 या 12 छौनों को जन्म देते हैं छौने तेजी से बढते हैं और लगभग 6–8 माह मे उनका भार 68 किग्रा या अधिक हो जाता है इस अवस्था में इनका वध किया जा सकता है. खाद्य के अतिरिक्त सुअर की चर्बी का उपयोग भोजन पकाने में भी किया जाता है सुअर से प्राप्त उत्पाद, जैसे सुअर का साधारण या नमकीन मास, हैम, गुलमा, चर्बी आदि की माग स्थानीय उपभोग तथा निर्यात दोनों के लिये बढती जा रही है सुअर के शूकों की माँग विदेशी बाजारो में है सुअर के कमाये हुये चमडे का उपयोग जीनों, बटुओं तथा गुटकों की जिल्दो आदि के बनाने मे किया जाता है

सुअर, **सुस** लिनिअस वशीय है (गण–**आर्टियो डेक्टाइला**, उपगण–**सुइफॉर्मिस**, कुल–**सुइडी**) इनमें पालतू जातियो के अतिरिक्त हिमालय की तलहटी मे पायी जाने वाली कुछ जगली जातियाँ जैसे सामान्य भारतीय जगली सुअर, **सुसस्क्रोफा क्रिस्टेटस** वैगनर और नाटा सुअर **सु सॅलवेनियस** (हॉगसन) सम्मिलित हैं आजकल जो सुअर पाये जाते हैं वे धीरे-धीरे जगली सुअरो से पालतू बनाये गये हैं नवजात छौनो मे पायी जाने वाली गहरी भूरी अनुदैर्घ्य धारियाँ पुरखो की देन हैं और ये आयु के बढने के साथ-साथ लुप्त होती जाती हैं

भारत में चार प्रकार के सुअर पाये जाते हैं जगली सुअर, पालतू या देशी सुअर, विदेशी नस्लें तथा उन्नयित सुअर देशी सुअर की उत्पादकता बढाने तथा उत्तम मास प्राप्त करने के लिये यू के, न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया जैसे अन्य देशो मे सकरण के लिये उत्तम गुण की नस्लों का आयात किया जाता है

भारतीय नस्लें

भारतीय जगली सुअर **सुसस्क्रोफा क्रिस्टेटस** (स – वाराह, हि – सुअर, बारवा, बद, बुरा जानवर, त – पन्नी, क – हाण्डी) निचले जगलो या वनो और हिमालय पर 4,500 मी की ऊँचाई तक पाया जाता है यह जानवर नाक से आमाशय तक लगभग 1 5 मी लम्बा और स्कन्ध तक 71–91 सेमी ऊँचा तथा भार मे 136 किग्रा होता है पश्चिमी बगाल मे पाया जाने वाला जगली सुअर पजाब और दक्खिन मे पाये जाने वाले सुअर की अपेक्षा अधिक भारी होता है जगली सुअर का थूथन लम्बा, पसली छोटी तथा टाँगे लम्बी होती है नर मादाओं से बडा होता है तरुण सुअर का रग मोर्चई धूसर होता है परन्तु आयु के साथ-साथ गहरा रक्ताभ-भूरा हो जाता है तथा इसके बालो के सिरे धूसर हो जाते हैं विरल बाल तथा पूरे अयाल या काले कडे बालो के अयाल जो गर्दन से पीठ तक लटकते रहते हैं जगली सुअर में लाक्षणिक होते हैं इसमे ऊनी रोमावलि नही पायी जाती नरो मे दात अच्छी प्रकार विकसित होते हैं, ऊपर तथा नीचे के दाँत बाहर की ओर मुह से बाहर निकले रहते हैं जगली सुअर अत्यन्त चुस्त होता है और जब क्रुद्ध हो जाता है तो मनुष्यों पर हमला कर बैठता है

जगली सुअरी सभी मौसमो मे अत्यधिक बच्चे देती है ब्याने से पहले मादा छौनो के लिये बाडा तैयार करती है तथा घास और तिनकों का बिछावन बनाती है चार माह की गर्भावधि के बाद 6–8 छौने पैदा होते हैं ये 10–20 के झुड मे चलते हैं सर्वभक्षी होने के कारण, ये पौधो, जडो, कद, कीट, साँप, उच्छिष्ट, सडे हुये मास आदि का भोजन करते हैं कोई भी अन्य पशु, फसलो को इन पशुओ से अधिक हानि नही पहुँचाते जगली सुअर से बहुत कम शूकर उत्पाद मिलते हैं लेकिन इनका मास स्वादिष्ट होता है

सुसस्क्रोफा अण्डमानेन्सिस ब्लाइथ, अण्डमान द्वीप समूह के जगलो मे पाया जाने वाला जगली सुअर है

नाटा सुअर, **सु सालवेनियस** (हॉगसन) सिक्किम, नेपाल, भूटान और असम मे हिमालय की तलहटी में स्थित अत्यधिक नमी वाले जगलो मे पाया जाता है यह रात्रिचर है और ऊँची घासो मे रहना पसन्द करता है, इसीलिये कभी-कभी ही दिखायी देता है यह 5–20 के झुडो मे रहता है पशु के कधो पर चौडाई लगभग 32 मिमी तथा थूथन से पूछ के ऊपरी भाग तक 66 सेमी होती है इसका भार 7 7 किग्रा, रग भूरा और काला होता है स्पष्ट रूप से अयाल नही होते इसके नीचे के बाल ऊन जैसे नही होते गर्दन के पीछे तथा पीठ के बीच के बाल लम्बे होते हैं लेकिन कानो पर के बाल छोटे होते हैं इसकी आदत जगली सुअर के समान होती है

चाहे पालतू सुअर हो या देशी सुअर, जगली अवस्था से पालतू होने पर धीरे-धीरे वे नवीन परिस्थितियो मे ढलने पर भी एक अलग समूह के रूप मे पाये जाते हैं इन सुअरो के लक्षण तथा रग देश के भीतर के विभिन्न क्षेत्रो की स्थलाकृति और जलवायु की दशाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं ये विभिन्न रगो में जैसे काला, भूरा, किट्टू, धूसर और यहाँ तक कि इनमे से किन्ही दो रगो के मिश्रण में भी पाये जाते हैं इनकी प्रकृति तथा सरचना

सारणी 70 – भारत में 1966 में सुअरों की संख्या का वितरण*
(हजारों में)

राज्य	संख्या	राज्य	संख्या
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	21,314	दादरा और नगरहवेली	0 160
असम	422 799	दिल्ली	6 053
आन्ध्र प्रदेश	581 871	पंजाब	44 883
उड़ीसा	180 138	पश्चिमी बंगाल	143 676
उत्तर प्रदेश	1,162 279	पाण्डिचेरी	1 788
केरल	111 928	मणिपुर	73 926
गुजरात	1 657	मध्य प्रदेश	378 095
चण्डीगढ़	1 608	महाराष्ट्र	181 122
जम्मू और कश्मीर	0 485	मैसूर	207 078
तमिलनाडु	474 891	राजस्थान	83 347
त्रिपुरा	36 627	हिमाचल प्रदेश	2 869
योग		49,75 419	

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Agriculture, Govt of India, 1972

में भी काफी अन्तर होता है सुअर-पालन विधियों से भी देशी सुअरों में भिन्नता आ जाती है

देशी सुअरों का चेहरा लम्बोतरा और नथनों की ओर नुकीला होता है गर्दन और पीठ पर आने वाले बाल मोटे, लम्बे और कड़े होते हैं, जबकि बगलों तथा जांघों पर के बाल पतले और छोटे होते हैं इनका सिर और कन्धा पिछले भाग की तुलना में भारी होता है, पीठ कुछ-कुछ धनुषाकार और पुट्ठा नीचे की ओर लटका होता है कान छोटे और मझोले आकार के, पूंछ घुटने तक लटकती हुयी और बालों के गुच्छों से युक्त होती है मादाओं में 6–12 चूचुक (स्तन) होते हैं प्रौढ़ सुअरों का भार 168 किग्रा तक होता है

अधिकतर देशी सुअरों का वध करके उनका ताजा मांस उपभोग में लाया जाता है सुअरों का वध कई प्रकार से किया जाता है बिहार में इन्हें मारने के लिये तेज और नुकीले सिरों वाली बाँस की पट्टियों का प्रयोग किया जाता है सुअरों को उनके सिर पर भारी भोथरे औजार से प्रहार करके मूर्छित करके स्थिर कर देते हैं अथवा उनकी देह में चाकू भोंकने से पहले कार्बन डाईऑक्साइड स्थिरीकारक का प्रयोग किया जाता है

विदेशी नस्लें

भारत में सुअर की विदेशी नस्लों का प्रवेश हो चुका है परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है जिससे यह पता चल सके कि इन नस्लों का आयात सबसे पहले और फिर उसके बाद में कब-कब हुआ प्रमुख नस्लों जैसे **बर्कशायर, लार्ज ह्वाइट यार्कशायर, मिडिल ह्वाइट यार्कशायर, लैंडरेस, हैम्पशायर, टामवर्थ और वेसेक्स सैडिल-बैक** का आयात यू के और अन्य पश्चिमी देशों से किया गया आज की नस्लें इन्हीं प्रमुख नस्लों की सन्ततियाँ हैं, जिन्होंने अपने आपको भारतीय परिस्थितियों में ढाल लिया है

बर्कशायर उन्नत अंग्रेजी नस्लों में सबसे पुरानी सुअरों की नस्ल है और व्यापक रूप से पाली जाती है यह मध्यम आकार की विशिष्ट नस्ल है जो सामान्यत चिकनी, पर्याप्त लम्बी, भारी और सामान्य आकार की है, टाँगें भी मध्यम आकार की, अच्छी और औसत लम्बाई की हड्डियों वाली होती हैं पशु का रंग काला और नाक छोटी तथा ऊपर उठी हुयी, चेहरा दबा हुआ और कान सीधे किन्तु कुछ आगे झुके हुये होते हैं शरीर पर्याप्त चौड़ा और पीठ चौड़ी, जंघा और कन्धे सामान्यतया चिकने और मांसल होते हैं इस सुअर का मांस अच्छी किस्म का होता है अच्छे बर्कशायर सुअर लगभग 6 माह में बेचने योग्य आकार के हो जाते हैं इस नस्ल के प्रौढ़ सुअर और सुअरियों का भार क्रमश 272–385 और 204–294 किग्रा होता है

लार्ज ह्वाइट यार्कशायर का मूल स्थान यू. के है जब इसका संकरण अन्य उपयुक्त नस्लों के साथ किया जाता है तो अच्छी किस्म का शूकर मांस प्राप्त होता है भारत में इस नस्ल का आयात यू के, न्यूजीलैंड या ऑस्ट्रेलिया से होता है इसका आकार विशाल और चेहरा लम्बा तथा कुछ-कुछ दबा हुआ होता है देह सुन्दर, सफेद, बिना घुंघर वाले बालों से ढकी होती है चमड़ी गुलाबी रंग की झुर्रियों से रहित तथा लम्बे और औसत दर्जे की रोमावलि से युक्त होती है कान पतले, लम्बे और कुछ-कुछ आगे झुके हुये तथा किनारे पर बालों से युक्त होते हैं. गर्दन लम्बी और कन्धे तक भरी हुयी, छाती चौड़ी तथा गठीली होती है स्कन्ध अधिक बड़े नहीं होते हैं पीठ कुछ-कुछ धनुष की तरह मुड़ी हुयी और कमर लम्बी और चौड़ी तथा पुट्ठे चौड़े और विकसित होते हैं

जंघा मांसल और घुटनों तक तथा पूंछ ऊँचाई पर लगी होती है टखने मजबूत और सीधे तथा पैर साफ होते हैं इस नस्ल के प्रौढ़ सुअरों और सुअरियों का भार क्रमश 295–408 और 227–317 किग्रा होता है यह नस्ल अपने विशिष्ट प्रकार के शूकर मांस के लिये प्रसिद्ध है यह विभिन्न प्रकार की जलवायु में रहने में सक्षम है

यू के की लार्ज एवं स्माल ह्वाइट यार्कशायर नस्लों के संकरण से **मिडिल ह्वाइट यार्कशायर** नस्ल निकली है यह नस्ल सबसे पहले 1885 में पशु-पंजिका में दर्ज की गयी थी यह सहिष्णु नस्ल है और इसका उपयोग अन्य नस्लों के विकास के लिये किया जाता है देशी सुअरों को सुधारने के लिये भारत में इसको यू के तथा अन्य देशों से मंगाया गया है

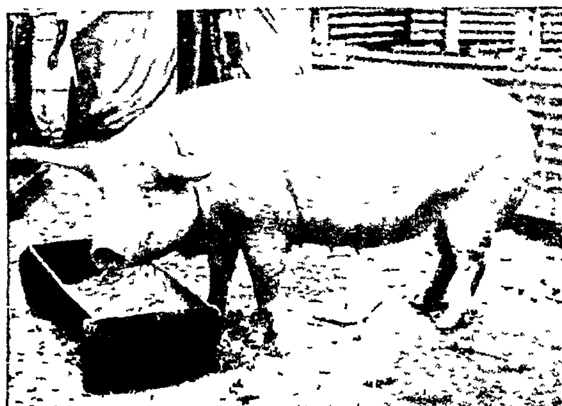
मिडिल ह्वाइट यार्कशायर औसत आकार का सुअर है जिसका उपयोग शूकर मांस के लिये होता है इसका भार हल्का, मांस अच्छा, रंग सफेद तथा सिर छोटा, चेहरा दबा हुआ, ऊपर की ओर उठा हुआ, चौड़ा और कानों के बीच में होता है चमड़ी चिकनी तथा बिना झुर्री की होती है गर्दन, सिर से कन्धे तक एकसार होती है कान लगभग खड़े परन्तु कभी-कभी बाहर की ओर मुड़े होते हैं. जांघ चौड़ी तथा खुरों तक मांसल होती है हड्डियाँ छोटी-छोटी होने के कारण सज्जित करने पर काफी प्रतिशत मांस निकलता है यह अच्छा चरने वाला पशु है और छुट्टा रहता है यह कई बार बच्चे देता है, सुअरियाँ शीघ्र ही वयस्क हो जाती हैं और अच्छी जननी बनती हैं इस नस्ल के प्रौढ़ सुअरों और सुअरियों के भार क्रमश 249–340 और 181–282 किग्रा होते हैं

लैण्डरेस सफेद सुअर होता है और इसके कान कटे, बगलें

लार्ज ह्वाइट यार्कशायर सुअरी और उसके बच्चे



लार्ज ह्वाइट यार्कशायर सुअर



लार्ज ह्वाइट यार्कशायर सुअरी

सुअर : भारत में सफलतापर्वक प्रजनित विदेशी सुअर

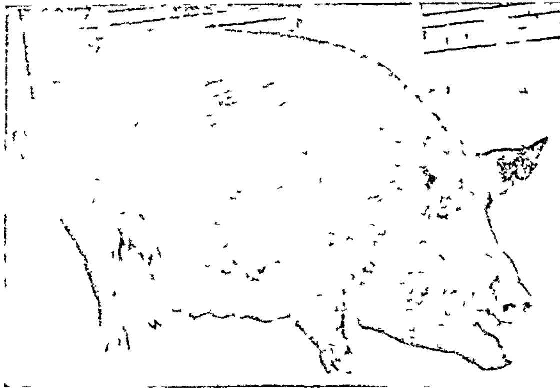


मिडिल ह्वाइट यार्कशायर सुअर

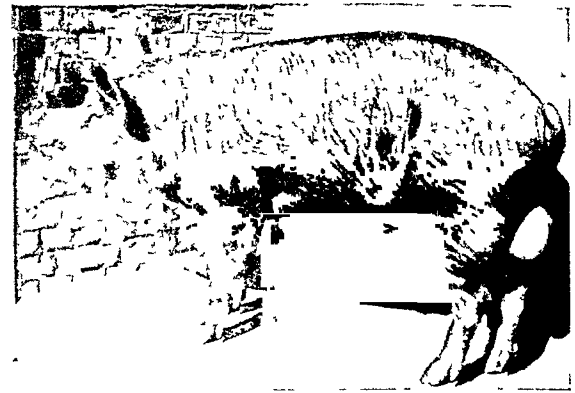


मिडिल ह्वाइट यार्कशायर सुअरी

सुअर भारत मे सफलतापूर्वक प्रजनित विदेशी सुअर



टामवर्थ सुअरी



टामवर्थ सुअर



हेम्पशायर सुअरी



हेम्पशायर सुअर

सुअर विदेशी नस्लें

लम्बी, अच्छी जाँघो से युक्त होती हैं इससे श्रेष्ठ शूकर मास प्राप्त होता है यह सुअर स्विटजरलैंड का मूलवासी है सबसे पहले इसका प्रवेश ब्रिटेन में 1949 मे हुआ, इसका वहा की लोकप्रिय नस्लो मे द्वितीय स्थान है **लैण्डरेस** सुअर, शव गुणो मे **लार्ज ह्वाइट यार्कशायर** से उत्तम होता है 25 सप्ताह की आयु के सुअरो का भार 52 5 किग्रा होता है

अमेरिका मे **हैम्पशायर** का विकास अठारहवी सदी के पूर्वार्द्ध मे यू के से सुअरो का आयात करके किया गया हैम्पशायर काला सुअर है जिसकी देह के इर्द-गिर्द और सामने की टाँगो पर सफेद पेटी होती है, सिर तथा पूछ काले और कान खडे होते है यह नस्ल अन्य मास वाली नस्लो की अपेक्षा छोटी होती है तथा इसकी टाँगे छोटी होती हैं सुअरिया अधिक बच्चे देती हैं

टामवर्थ ब्रिटिश साम्राज्य की चिर परिचित नस्लो मे से है इसका रग सुनहरा-भूरा, सिर लम्बा तथा सकीर्ण, थूथन लम्बा तथा कान खडे होते हैं इसकी पीठ मजबूत और कन्धे पतले होते हैं इससे उत्तम किस्म का शूकर मास प्राप्त होता है सुअरियाँ अनेक बच्चे देने वाली होती हैं प्रौढ सुअर का भार 300 किग्रा तक होता है.

वेसेक्स सैडिलबैक मुख्य रूप से शूकर मास वाली अग्रेजी नस्ल है इसे मास उत्पादन के लिये सरलतापूर्वक अनुकूलित किया जा सकता है यह बहुप्रजनन के लिये प्रसिद्ध है इसकी गठन मासल होती है इस नस्ल का सिर, गर्दन, पिछला हिस्सा, पिछली टाँगे और पूछ काली, सिर लम्बा तथा थूथन सीधा और कान न फडफडाने वाले तथा बाहर को निकले होते है आठ सप्ताह के सुअरो का भार 21 5 किग्रा होता है.

प्रबन्ध

अन्य फार्म पशुओ की तरह सुअर अपनी बहुप्रजनक, अधिक वृद्धि दर, शीघ्र प्रौढता एव अतिरिक्त डेरी अवशेषो और धान्यो को पोषक तथा स्वादिष्ट मास मे बदलने की क्षमता के कारण प्रसिद्ध है इनसे उत्तम खाद प्राप्त होती है इस प्रकार कोई भी किसान कुछ ही सुअर पाल कर अपने फार्म की उपज के व्यर्थ पदार्थो का उपयोग कर सकता है और अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकता है

भारत मे सुअर पालने वालो की आर्थिक दशा खराब होने के कारण सुअर पालने मे व्यावहारिक रूप से कोई सुधार नही हो पाया है साथ ही यहा के सुअर-पालको का पश्चिमी देशो का सा न तो नवीनतम ज्ञान है और न सुअर-पालन विधियो का अनुभव ही है साथ ही देश मे अखिल भारतीय या क्षेत्रीय स्तर पर देशी या आयातित उन्नतशील नस्लो के सुधार के लिये कोई सुअर प्रजनन सस्था भी नही है केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारो द्वारा द्वितीय पचवर्षीय योजना के उत्तरार्द्ध मे सुअर सुधार योजनाओ के लागू करने से अभिलिषित गुणो के सुअरो का उत्पादन हुआ है और सुअर उद्योग मे उन्नति के लक्षण दिखायी देने लगे हैं

इस समय भारत मे सुअर विपणन के लिये कोई सगठन नहीं है, जिसके कारण बाजार मे सुअरो के भार और देह सरचना के मानक निश्चित नही हो पाये हैं सुअर-मास उत्पादन करने वाले कारखाने सामान्यत सुअरो को व्यक्तिगत प्रजनको या ठेकेदारो से खरीदते है और अपना मानक स्वय निश्चित करते हैं

सुअर पालने की विभिन्न पद्धतियो मे निम्नलिखित प्रमुख हैं

खुला सुअरवाडा – आधुनिक सुअर बाडो मे सुअरो को विशाल घेरो मे मुक्त रूप से घूमने के लिये छोड दिया जाता है ऊँची जमीन के ऊपर साधारण छायादार स्थान बना दिये जाते हैं जिससे इच्छानुसार सुअर इनके नीचे आराम कर सकते है भारत के ग्रामीण क्षेत्रो मे सुअरो को इसी ढग से पाला जाता है लेकिन ब्याने वाली सुअरी को जमीन के नीचे बने अड्डे मे रखा जाता है जो उसी आकार के खुले हुये आँगन से जुडा हुआ होता है जिसमे सुअरी तथा उसके बच्चे माँद मे आ सके.

खूटे में बाँधकर – सुअरो को लम्बी चमडे की पट्टी या जजीर से खूटो मे इस ढग से बाध दिया जाता है कि वे आराम से चारो ओर घूम सके इस पद्धति के अन्तर्गत पाले जाने वाले सुअरो के लिये भिन्न-भिन्न स्थानो पर आवश्यकतानुसार छोटे उठाऊ बाडे बना दिये जाते हैं ऐसे उठाऊ बाडे ऐसे स्थानो से दूर रखे जा सकते हैं जहाँ सक्रामक रोग फैलते हैं

सुअरबाडा – इस पद्धति मे सुअरो को कुछ काल तक भीतर और कुछ काल तक बाहर रखा जाता है इमारत के आकार के अनुसार छोटे-छोटे बाडे बनाकर बाहर जाने के लिये रास्ता रखा जाता है वही सुअर खाते हैं तथा घूमकर सीमित व्यायाम करते हैं और अन्दर ही सो जाते हैं

गहन आवास व्यवस्था – यह पद्धति सामान्यत उन स्थानो पर अपनायी जाती है जहाँ सुअरो को बडे पैमाने पर रखने तथा पालने की आवश्यकता होती है

ऐसे विदेशी तथा सकर सुअरो को, जिन पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से बने सुअर-घरो मे रखा जाता है ये घर या तो डच प्रकार के हो सकते हैं जैसे उत्तर प्रदेश सरकार के केन्द्रीय डेरी फार्म, अलीगढ मे बने हुये हैं, या वैसे जैसे इलाहाबाद कृषि सस्थान, इलाहाबाद ने उपयोग के लिये बनाये है डच प्रकार के सुअर आवासो मे एक विशाल केन्द्रीय गृह होता है, इसमे एक तरफ ब्याने के लिये बाडो की पक्ति होती है, जिनमे से प्रत्येक बाडे की माप 3 7 मी. × 2 5 मी होती है दूसरी ओर उसी माप का व्यायाम-बाडा होता है इसमे खस्सी सुअरो को कीचड मे लोटने के लिये 1 83 × 1 22 × 0 23 मी का स्थान रहता है बाडे की बगल की दीवारे ठोस होती हैं तथा छत कम से कम 4 5 मी ऊँची होती है, इसका फर्श सीमेंट का, नालियाँ उपयुक्त प्रकार की तथा खिडकियाँ होती हैं खस्सी सुअरो को रखने के लिये पृथक कमरे होते हैं ये आवास खर्चीले होते हैं तथा भारत मे कुछ व्यापारिक तथा सैनिक सुअरशालाओ मे ही इनका उपयोग किया जाता है इलाहाबाद कृषि सस्थान की सुअरशाला मे दोनो ओर गहरी नाली, बीच मे ईट का चबूतरा तथा एक तरफ व्यायाम बाडा (2 5 × 7 5 मी) तथा बीच के चबूतरे पर लोहे का छोटा दरवाजा होता है इन बाडो के दूसरे छोर पर दो आयताकार बाहरी स्थान शेडो का कार्य करते हैं इन शेडो मे सीमेंट से खुली ईंटो की चिनाई करके (कबूतर मुकवो की तरह) सीधी दीवारे खडी की जाती हैं ऐस्बेस्टास सीमेंट की चादरो की छत खम्भो पर टिकी रहती है जो पीछे की ओर 1 35 मी ऊँचे और शेड के आगे की ओर 1 91 मी ऊँचे होते हैं पानी तथा चारे की नाँदे जस्तेदार लोहे की चादरो से बनायी जाती हैं गर्मियो मे ठडक पहुचाने के लिये ईट का बना छोटा लोटने का स्थान भी रखा जाता है जिसमे 203–254 सेंमी. गहरा पानी रह सके. ये सुअर-आवास सस्ते होते है तथा आर्द्र क्षेत्रो के लिये सर्वोत्तम होते हैं

आहार

लाभकारी सुअर-पालन आर्थिक दृष्टि से संतुलित आहार प्रदान करने पर निर्भर करता है जिसमें फार्म अवशेषों तथा उपोत्पादों, कूड़े, कसाई-घर के उपोत्पादों, खराब आटे, सड़े गले अनाजों, इत्यादि का पूरा-पूरा उपयोग होता हो सुअरों में ऐसे उत्पादों की बहुत बड़ी मात्रा को उपयोग में लाने तथा इनको आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक पोषक मान वाले खाद्य मांस में बदलने की क्षमता होती है भारतीय परिस्थितियों में सुअर के लिये आदर्श खाद्य मक्के का दलिया तथा गेहूँ या चावल की भूसी, मूंगफली की खली और दालें हैं इसके अतिरिक्त, मछली या रक्तचूर्ण, नमक, हरे चारे जैसे बरसीम (ट्राइफोलियम एलेक्सेंड्रिनम), मेथी (ट्राइगोनेला जाति), कुल्थी (डालिकस बाइफ्लोरस) तथा नेपियर घास की मुलायम पत्तियाँ भी इनके भोजन हैं लेकिन खाद्य पदार्थ की मात्रा तथा उसका प्रकार, खिलाये जाने वाले सुअर के प्रकार के अनुसार बदलते रहते हैं बढ़ने वाले सुअरों को अधिक प्रोटीन, खनिज तथा विटामिनों की आवश्यकता होती है सामान्यतः सुअर को 450 ग्रा प्रतिदिन प्रतिमास आयु के अनुसार आहार देना चाहिये, जब सुअर को मोटा करना हो तो देह भार में प्रति 450 ग्रा वृद्धि के लिये प्रतिदिन 900 ग्रा अतिरिक्त आहार खिलाना चाहिये यदि अत्यधिक चर्बी-युक्त पॉर्क की आवश्यकता हो तो सुअरों को मक्का दी जा सकती है और यदि कम चर्बीदार बेकन तथा हैम प्राप्त करना है तो मक्का के साथ मखनियाँ दूध और मट्ठा मिलाना चाहिये अथवा प्रोटीन की कमी को पूरा करने के लिये समान मात्रा में चना मिलाया जा सकता है बढ़ने वाले सुअरों को पर्याप्त पीने का पानी देना चाहिये

प्रजननकारी सुअरियों के आहार में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है इन्हें पूरे वर्ष हरा चारा खिलाना चाहिये प्रजननकारी सुअरियों और छोटी सुअरियों को प्रजनन काल के पूर्व प्रति दस दिन या प्रति सप्ताह पहले से अतिरिक्त आहार की आवश्यकता होती है इस उपचार को 'उत्तेजित करना' कहते हैं तथा यह जानवरों को शीघ्र ही तथा नियमित रूप से मद में लाने तथा गर्भ धारण करने की प्रायिकता को बढ़ाने में सहायक होता है गर्भिणी सुअरियों को, विकसित होने वाले भ्रूण के लिये, मांसपेशियों तथा हड्डियों के निर्माण हेतु काफी प्रोटीन तथा खनिज मिलने चाहिये सुअरियों को मोटा न होने देने के लिये गर्भावस्था में स्टार्चयुक्त आहार में कमी कर देनी चाहिये सुअरियों के लिये निर्धारित मिश्रित आहार ये हैं मक्का, 27 2 किग्रा, पिसी जौ या गेहूँ, 13 6 किग्रा, मछली का चूरा, 4 5 किग्रा या मक्का, 22 7 किग्रा, पिसा जौ, 11 34 किग्रा, गेहूँ का चोकर, 6 8 किग्रा और मछली का चूरा, 4 5 किग्रा

सेम, मटर, बन्दगोभी, शलजम, चुकन्दर, आलू आदि को भी आहार में मिला देने से लाभ होता है गर्भधारण की प्रारम्भिक अवस्था में सुअरी को यदि काफी हरा चारा मिलता रहे तो उसे प्रतिदिन 1 35 किग्रा रातब मिश्रण की आवश्यकता पड़ती है गर्भधारण के बाद की अवस्थाओं में सुअरी को लगभग 2 70 किग्रा मिश्रण खिलाने की आवश्यकता होती है ब्याने के तुरन्त बाद हल्का भोजन देना चाहिये, जिसमें गर्म दूध में गेहूँ की भूसी खिलायी जा सकती है कुछ दिनों तक आहार में शीरे की भी थोड़ी मात्रा दी जा सकती है आहार को धीरे-धीरे बढ़ाकर 2 7 से 3 6 किग्रा कर देना चाहिये और दिन में तीन बार खिलाना चाहिये जब बच्चे एक माह से अधिक के हो जायें तो माता के आहार में प्रति छौने पर 450 ग्रा की वृद्धि कर देनी चाहिये 12 छौनों वाली सुअरी को प्रतिदिन लगभग 6 35 किग्रा चारे की आवश्यकता होती है

7 या 8 सप्ताह की आयु के बाद ही छौनों को नियमित आहार दिया जाता है इस आयु तक छौने माँ के दूध पर पलते हैं दूध छुड़ाने के बाद छौनों को अलग बाड़े में रखा जाता है और धीरे-धीरे उन्हें सामान्य आहार पर पाला जाने लगता है प्रारम्भ में इन्हें दली हुयी जई के समान सूखे दानों पर रखा जाता है और बाद में तरल चारे में गेहूँ की भूसी, जौ या गेहूँ तथा मखनिया दूध में दली हुयी मक्का खिलाते हैं ज्यों-ज्यों छौने बढ़ते जाते हैं, तरल चारे में कमी की जाती है और हरे चारे में वृद्धि करके धीरे-धीरे नियमित आहार देने लगते हैं जिसे दिन में 4–5 बार खिलाते हैं

प्रजनन-काल में अच्छी शक्ति, पौरुष तथा ओज बनाये रखने के लिये सुअरों को उसी प्रकार तथा उतनी ही मात्रा में चारे की आवश्यकता पड़ती है साथ ही खुले स्थान में काफी व्यायाम की भी आवश्यकता होती है इनकी सामान्य खुराक में प्रोटीन-बहुल खाद्यों जैसे सोयाबीन, मछली-चूर्ण, मांस-चूर्ण, डेरी-उप-उत्पादों इत्यादि को बढ़ा देना चाहिये यह भी अपेक्षित है कि पूरे साल हरा चारा मिलता रहे

जिन सुअरों को खिलाकर मोटा किया जाता है उन्हें प्रजनक सुअरों की अपेक्षा 50% अधिक चारे और चरने के लिये काफी चरागाह की आवश्यकता होती है मोटे तौर पर दाने की आवश्यकता जानवर के शरीर भार की लगभग 3% होती है मोटे होने के समय, अच्छा चरागाह होना चाहिये और एक भाग गर्त अवशेष तथा एक भाग सोयाबीन की खली में 20 भाग मक्का का मिश्रण मिलाकर खिलाना चाहिये

प्रजनन

सुअर उच्च प्रजनन-क्षमता के लिये प्रसिद्ध हैं ये स्वास्थ्यकर अवस्था में सामान्यतया वर्ष में दो बार बच्चे जनते हैं व्यवहार में तीन प्रकार के प्रजनन आते हैं अन्तर्प्रजनन बहिर्प्रजनन और संकरण अन्तर्प्रजनन निकट संबंधी पशुओं के मिलाने की विधि है और यह तभी काम में लायी जाती है, जब किसी विशेष पशु के कतिपय उत्तम गुणों को प्रकट करना हो लगातार अन्तर्प्रजनन से उत्पादन की मात्रा तथा गुण में ह्रास होता है बहिर्प्रजनन में असंबंधित या दूर के संबंधित पशुओं का मिलन होता है सामान्यतः व्यापारिक प्रजनक इसे व्यवहार में लाते हैं इस विधि से सामान्यतया काफी परिवर्तन आता है परन्तु इसमें प्रजनक को अत्यन्त सावधानी के साथ चयन करने की आवश्यकता पड़ती है संकर प्रजनन में विभिन्न शुद्ध नस्लों के सुअरों का संगम होता है और इस विधि में भी जोड़े का सावधानी के साथ चयन करना आवश्यक है

ठीक तरह पाले-पोसे सुअर सामान्यतया आठ माह की आयु में मैथुन के लिये तैयार हो जाते हैं, लेकिन पहले के कुछ महीनों तक इन्हें कम ही प्रयोग में लाना चाहिये अंधाधुन्ध प्रजनन से बचने के लिये सुअरों को अलग बाड़े में रखना जरूरी है स्वस्थ तथा सक्रिय बनाये रखने के लिये इन्हें पर्याप्त व्यायाम कराना चाहिये और प्रजनन-काल में ही इन्हें मैथुन करने देना चाहिये.

साधारणत एक वर्ष मे एक सुअर लगभग 50 सुअरियो को गाभिन कर सकता है किन्तु इससे अधिक सुअरियो पर इस्तेमाल करने से छौने छोटे होगे और वे अधिक शक्तिवान तथा स्वस्थ भी नही होगे ठीक प्रयोग करने पर एक सुअर लगभग 6 वर्ष की आयु तक सगम कर सकता है

प्रजनन के लिये सुअरियो को उत्तम वशावली वाले पशुओ मे से चुनना चाहिये और अन्त प्रजनन रोकने के लिये सबधित पशुओ को मैथुन नही करने देना चाहिये अच्छी सुअरी से सामान्यत इतने बडे बच्चे होते है जिन्हे वह अपना दूध पिला सकती है यह लक्षण सतति मे चला जाता है, अत पशुधन के लिये यह अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है

जब सुअरियाँ लगभग दो वर्ष की हो जाती है तो वे पूर्ण वयस्क हो जाती है, यद्यपि कुछ छौनियो मे 8 या 9 माह की आयु मे ही वयस्कता के लक्षण प्रकट होने लगते है नयी छौनियो को कम उम्र मे गाभिन नही कराना चाहिये अन्यथा इससे पशु का विकास रुक जाता है तथा कुपोषण के कारण सतति पर प्रभाव पडता है सुअरियो और नयी सुअरियो मे मद के लक्षण प्रकट होते ही तुरन्त ही सुअर से सगम करा देना चाहिये ऐसी सुअरियो को बाकी सुअरियो से अलग रखना चाहिये और ब्याने के समय उन्हे अलग बाडे मे ले जाना चाहिये

सुअरियो मे गर्भावधि लगभग 112–116 दिन की होती है, इस अवधि मे इनका भार बहुत नही बढना चाहिये और इनकी हालत गिरनी भी नही चाहिये अच्छी स्वस्थ सुअरियाँ वर्ष मे दो बार एक बार दिसम्बर–जनवरी और दूसरी बार जुलाई–अगस्त मे बच्चे जनती है सामान्यत अप्रैल–जून में उत्पन्न होने वाले छौने वर्ष के अन्य किसी समय पैदा होने वाले बच्चो की तुलना मे ठीक से नही बढ पाते

पहले कुछ दिनो तक छौने बहुत तेजी से बढते है. जो छौने अगली टागो के पास के स्तनो पर चिपके रहते है वे आमतौर से बडे तथा पुष्ट होते है कम दूध होने या एक बार में अधिक बच्चे होने पर या तो कोई दूसरी धाय सुअरी या कम बच्चो वाली सुअरी या बोतल द्वारा कृत्रिम आहार की व्यवस्था की जानी चाहिये जिन सुअरो को प्रजनन के लिये नही रखना हो उन्हे चार सप्ताह का हो जाने पर और 12 घटे तक भूखा रखकर खस्सी करा देना चाहिये जब सुअर तीन माह के हो जाये तो इन्हे धीरे-धीरे विशिष्ट सान्द्र आहार देना प्रारम्भ करना चाहिये जब छौने लगभग 8–10 सप्ताह के हो जायें तो उनका दूध छुडा देना चाहिये तथा दिन मे तीन बार मखनिया दूध पिलाना चाहिये और धीरे-धीरे दाना खिलाना प्रारम्भ करना चाहिये

प्रजनन-क्षमता को उच्च स्तर पर बनाये रखने के लिये नियमित छटनी आवश्यक है यह कार्य छौनो के दूध छोड देने के बाद और सेने वाली सुअरियो की वैयक्तिक क्षमता की जाँच मे खरी उतरने के बाद करना चाहिये ऐसी प्रौढ सुअरियाँ जो अच्छी दशा तथा अच्छे बाह्य लक्षणो के होने पर भी अच्छे आकार वाले 6 छौनो को तैयार नही कर पाती उन्हे मोटाये जाने वाले पशुओ के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया जाता है दोषपूर्ण स्तन वाली, और खराब बच्चे पैदा करने वाली सुअरियो को बहिष्कृत कर देना चाहिये. केवल अच्छी आकृति के छौने उत्पन्न करने वाली तथा उनका भली-भाँति पोषण करने वाली सुअरियो का ही चयन करना चाहिये यहाँ तक कि उनकी शारीरिक दशा बहुत अच्छी नही भी रहे तब भी अगले प्रजनन काल तक उन्हे बनाये रखना चाहिये. बच्चा देने वाली सुअरी तथा प्रजनक सुअर की प्रजनन सरचना से सम्बधित विस्तृत यूथ-अभिलेखो से प्रजनक अपने प्रजनन कार्य के लिये उत्तम समूह का चयन कर सकेगा इसी प्रकार सुअरो, जननी सुअरियो, नये और मोटाये गये पशुओ के आहार-अभिलेखो के विवरण से इन पशुओ की क्षमता के निर्धारण मे सहायता मिलेगी

भारत मे देशी सुअरो के उन्नयन का कार्य नियमित रूप से उत्तर प्रदेश के आगरा, मेरठ, एटा, मैनपुरी, फरुखाबाद, मुजफ्फरनगर और सहारनपुर जिलो, तथा पजाब और दिल्ली के कुछ भागो मे किया जाता है, जहाँ पर सुअरो को पालने के लिये सस्ते सान्द्र खाद्य उपलब्ध है उत्तर प्रदेश मे प्रतिवर्ष काफी सख्या मे शुद्ध नस्ल के **मिडिल ह्वाइट यार्कशायर** सुअर 10 रु के नाममात्र के मूल्य पर प्रजनको को दिये जाते है और बदले मे उनसे सरकारी शूकर मास फैक्टरी के लिये अच्छे दामो पर श्रेणीकृत सतति की खरीद की जाती है इस श्रेणी उन्नयन कार्य से अनेक उन्नत सुअर-यूथ प्राप्त हुये है.

रोग

अन्य फार्म पशुओ की तरह सुअरो मे भी जीवाणुओ, विषाणुओ, कवक और बाह्य तथा आन्तरिक परजीवियो द्वारा उत्पन्न अनेक रोग फैलते है इनमे अनेक न्यूनता रोग भी होते है

जीवाणुज रोग – सुअर प्लेग, पास्चुरेला सुइसेप्टिका बैसिलस द्वारा उत्पन्न सक्रामक रोग है यह प्राय स्वस्थ सुअरो की श्वसन नली मे पाया जाता है, पशु के कमजोर हो जाने पर यह रोग जोर पकडता है इसमे तेज ज्वर रहता है, भूख नही लगती, साँस लेने में कठिनाई होती है तथा कभी-कभी गले पर उग्र सूजन आ जाती है और प्रवाहिका या पेचिश हो जाती है सारे शरीर पर रक्तस्रावी धब्बे दिखायी पडने लगते है तथा नाक, गुदा और मूत्रागो से रक्तस्राव होने लगता है निमोनिया भी हो सकता है रोगग्रस्त पशुओ को अलग हटाकर उपचार करना चाहिये सुअर-बाडो को पूरी तरह निसक्रमित कर लेना चाहिये तथा सम्पर्क मे आये पशुओ को प्रति-रक्तस्रावी सेप्टीसीमिया सीरम का टीका लगा देना चाहिये रक्तस्रावी सेप्टीसीमिया टीका, रोग निरोधक उपचार के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है

शूकर विसर्प सस्पर्श रोग है, यह **एरिसिपेलोथ्रिक्स रूसियोपैथियो** बैसिलस द्वारा उत्पन्न होता है, जो सुअरो की आहार नली मे पाया जाता है यह रोग जून–अक्टूबर के महीनो में सर्वाधिक होता है, इसमे तेज ज्वर चढता है और भूख नही लगती फिर चमडी पर कुछ उठे हुये हीरे की आकृति के क्षत उत्पन्न हो जाते है अथवा कानो, नितम्बो, जघो तथा पेट आदि पर लाली छा जाती है सुरक्षा के लिये सम्पर्क मे आने वाले समस्त सुअरो को प्रतिसीरम की खुराक देनी चाहिये जिससे एक पखवाडे तक के लिये रोग प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है और इसी अवधि मे इन्हे मोटा करके वध किया जा सकता है दीर्घकालीन तथा तीव्र रोग क्षमता के लिये अप्रैल और मई मे एक साथ एक बगल मे सीरम का इजेक्शन लगाया जाता है तथा दूसरी बगल में वैक्सीन का टीका लगाया जाता है

ब्रुसेला एबार्टस स्विस के द्वारा अकाल गर्भपात हो जाता है. सुअरी और शिशु सुअरी को दूषित भोजन करने या सक्रमित सुअर से मैथुन करने के फलस्वरूप सक्रमण हो जाता है गर्भपात के पश्चात् भ्रूण और सदूषित पशु बिछाली को नष्ट कर देना चाहिये और सुअरियो का

प्रतिरोधी लोशन से उपचार करना चाहिये जिस सुअरी का गर्भपात हुआ है उसके रक्त सीरम में यदि समूहनग्राही परीक्षण मिला है तो यूथ के सभी पशुओं का परीक्षण किया जाना चाहिये और सदूषित पशुओं का वध कर देना चाहिये

गिल्टी रोग घातक होता है और **बेसिलस ऐंथ्रेसिस** द्वारा फैलता है ज्वर के साथ गला सूज जाता है और प्रवाहिका, पेचिश, तथा श्वसन व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाते हैं फलत पशु की मृत्यु हो जाती है यह रोग मनुष्यों में फैल सकता है अत शव को खुला नही छोडना चाहिये, और ठीक से नष्ट कर देना चाहिये रोग आरम्भ होने पर प्रति-ऐंथ्रेक्स सीरम का उपयोग करना चाहिये और अधिक ग्रस्त स्थानो पर रोग निरोधक उपचार के रूप मे ऐंथ्रेक्स स्पोर टीका लगाना चाहिये

यक्ष्मा एक अन्य दीर्घकालिक सम्पर्श रोग है इसके लक्षण ज्वर तथा देह के किसी भी भाग मे गँठीले क्षत पड जाना है रोग के अधिक बढ जाने पर लसीका ग्रन्थियो, यकृत, फेफडो, प्लीहा, सधियो तथा अन्य अवयवो पर यक्ष्मा ऊतक के पिंड बन जाते हैं पक्षी तथा गो-जाति दोनो ही प्रकार के **माइकोबैक्टीरियम ट्युबर्क्युलोसिस** नामक बैसिलस सुअरो पर आक्रमण करते हैं गो-जाति के बेसिलस से सामान्य यक्ष्मा उत्पन्न होती है छौने यक्ष्माग्रस्त माता से सक्रमित होते हैं यूथ मे जब रोग के होने का सदेह हो, तो ट्यूबर्क्युलिन अभिक्रिया के लिये पशुओ की जाँच करा लेनी चाहिये सक्रामक शवो और बिछावन को नष्ट कर देना चाहिये इस रोग मे पीडित कुक्कुट तथा गो-पशुओ को सुअरो से मिलने की छूट नही देनी चाहिये मट्ठा, मखनिया दूध, इत्यादि जैसे डेरी उप-उत्पादो को बिना निर्जर्मीकरण के नही खिलाना चाहिये

विषाणु रोग—सुअर ज्वर या सुअर विशूचिका अत्यन्त सक्रामक रोग है, जो छनकर निकल सकने वाले विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है यह रोग केवल सुअरो को ही प्रभावित करता है इसके लक्षण हैं ज्वर चढना, भूख न लगना, शिथिलता, वमन, प्रवाहिका, श्वास लेने मे कठिनाई तथा कानो, पेट तथा टाँगो की अन्त सतह की चमडी पर लाल या नील-लोहित धब्बो का पडना उग्र अवस्था मे सुअर मर जाते हैं, रक्त तथा रोगग्रस्त पशु के मल-मूत्र मे पाया जाने वाला विषाणु जू, कुत्तो, चिडियो, परिचारको आदि के द्वारा फैल सकता है रोगग्रस्त पशु को अलग रखकर उपचार करना चाहिये सुअरबाडो को अच्छी तरह धोकर नि सक्रमित कर लेना चाहिये रोग के निवारण के लिये विशिष्ट प्रतिसीरम का टीका लगाना चाहिये प्रशीतक मे सुखाया हुआ खरगोशीय सुअर ज्वर टीका भारतीय पशु चिकित्सा शोध सस्थान द्वारा तैयार किया जा चुका है, जिसका उपयोग रोग निरोधक के लिये किया जा सकता है

सुअर-माता भी निस्यदनीय विषाणु द्वारा उत्पन्न होने वाला अत्यधिक सासर्गिक रोग है इसमे ज्वर चढता है, भूख नही लगती, और कानो, गर्दन, जाँघो की आन्तरिक सतह तथा देह की निचली सतह की चमडी पर छाले उपट जाते हैं पाचन-मार्ग मे व्रण उत्पन्न हो जाते है तथा अधिक रोगग्रस्त सुअरो में निमोनिया हो जाता है रोगग्रस्त जानवरो को अलग करके उनका उपचार करना चाहिये पोटैशियम परमैंगनेट के गर्म पानी से घावो को धोना चाहिये तथा बोरिक अम्ल और वैसलीन से पट्टी कर देना चाहिये यदि सभी रोगग्रस्त पशुओ का वध कर दिया जाय तो यह रोग अन्य पशुओ मे नही फैलता

खुरपका और मुहपका निस्यदनीय विषाणु द्वारा पैदा होने वाला एक अन्य अत्यधिक सासर्गिक रोग है अधिक ज्वर, जल-स्फोट बनना तथा मुह मे छाले पडना, ये इस रोग के कुछ लक्षण हैं पैर के छाले अत्यन्त दुखदायी होते हैं जिससे पशु ढग मे चल नही पाता है छौनो मे यह रोग घातक है रोगग्रस्त पशु को अलग कर लेना चाहिये तथा उपचार करना चाहिये एक प्रतिशत कॉपर-सल्फेट या फिनाइल लोशन पैरो के छालो पर लगाना तथा 2% फिटकरी के लोशन मे मुह के छालो को साफ करने से लाभ पहुँचता है इस रोग का कोई प्रभावोत्पादक टीका उपलब्ध नही है

छौनो को इन्फ्लुएजा निस्यन्दनीय विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है द्वितीयक रोग कारक **हीमोफिलस इन्फ्लुएजा सुइस** की उपस्थिति में यह रोग अधिक बढ जाता है यह सस्पर्शी रोग है और छौनो मे अति सामान्य है इसकी पहचान ताप के बढने तथा नाक और आँखो से पानी बहने से हो जाती है निमोनिया, फुफ्फुमावरणशोथ (प्लूरिसिस) और विशेष रूप से पिछली टाँगो में सधिशोथ हो सकते हैं रोगग्रस्त सुअरो को अलग रखना चाहिये और गरम शुष्क बाडे मे जिसमें काफी बिछावन हो, रखना चाहिये सूचना है कि सोलूसेप्टैजीन (20%) या सल्फामैथाजीन (0 5%) विशेष रूप से सधियो के ग्रस्त होने पर लाभकर होते हैं

सक्रामक पेचिश, काक्सीडिया द्वारा उत्पन्न होती है और नये सुअरो मे फैलती है इसका उपचार उपयुक्त आन्त्रीय पूति-रोधी तथा कषायो के द्वारा किया जाता है

नाभि रोग या सन्धि रोग एक सक्रामक रोग है जो नवजात छौनो मे होता है इसका सक्रमण **एशेरिशिया कोलाई** द्वारा होता है और नाभि से बढता हुआ यह यकृत और सधियो तक पहुच जाता है, जिससे पीलिया, पेचिश तथा लगडापन उत्पन्न होते हैं ऐसे बाडो की उचित रूप मे सफाई, जहाँ बच्चे जनते हो तथा स्वस्थ पशुओ का नि सक्रमण करने मे इस रोग को दूर करने मे सहायता मिलती है उग्र स्थिति में सल्फानिलेमाइड या प्रोमेप्टेजीन देने की सलाह दी जाती है

कवक रोग—एक्टिनोमाइसीजता सुअरो की आहार नाल मे पाये जाने वाले **स्ट्रेप्टोथ्रिक्स एक्टिनोमाइसीज** कवक द्वारा उत्पन्न होता है इसमे सुअर के अयन मे गिल्टीदार सूजन आ जाती है और एक या अधिक स्तनग्रन्थियो मे क्षत हो जाते हैं आमाशय तथा आँतो में भी क्षत फैल सकते हैं जिसके कारण पाचन मे बाधा पडती है तथा सामान्य दुर्बलता आ जाती है यदि अन्यथा उपयोगी न हो तो रोगग्रस्त पशुओ का सामान्यत वध कर दिया जाता है सल्फापिरिडीन या कोलाइडी आयोडीन से उपचार किया जा सकता है बाहरी क्षतो के उपचार के लिये शल्य उपचार आवश्यक हो सकता है

परजीवी—अन्त परजीवियो में से आँत्र कृमि विशेष रूप से बढने वाले सुअरो के लिये हानिकर होते हैं कम खिलाये गये या उपेक्षित या गन्दे कमरो मे रहने वाले और गन्दी वस्तुओ को खाने वाले सुअर कृमियो से शीघ्र ग्रस्त हो जाते हैं काँटेदार सिर वाले कृमि **मैक्राकैन्थोरिंकस हिरुडीनेसियस ट्रैवेसोम** (=एशिनोरिंकस गिगास) तथा सामान्य गोल कृमि **ऐस्कैरिस लम्ब्रीकोइडीस** लिनिअस सुअरो के दो प्रमुख आन्त्रीय परजीवी हैं इससे ग्रस्त छौनो की बाढ रुक जाती है, वे लाभदायक नही रह पाते और कमजोर हो जाते हैं उनका मास घट जाता है और चमडी खुरदरी हो जाती है, उन्हे दस्त की बीमारी लग जाती है,

और कभी-कभी तो पूरी आँत कृमियों से भर जाती है प्रति 45 किग्रा देह-भार पर 2 मिली कीनोपोडियम का तेल तथा उसके बाद रेंडी के तेल का विरेचन देने से आँतों से कृमि निकल जाते हैं

सुअर कभी-कभी फुफ्फुस कृमि, **मेटास्ट्रांगिलस ऐलांगेटस** से ग्रस्त हो जाते हैं जिसके कारण सांस लेने में कष्ट होता है, खांसी आती है तथा नाक मे पानी बहने लगता है ये कृमि अपने जीवन-क्रम की एक अवस्था सुअर के पाचक-मार्ग में व्यतीत करते हैं अत आंत्र कृमियों के किये गये उपचार से संक्रमण को सीमित रखने मे सहायता मिलती है रोगग्रस्त जानवरों का वध किया जा सकता है और अन्यों को दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है स्थान बदलने मे कृमि संक्रमण के नियन्त्रण मे सहायता मिलती है

यकृत पलूक का संक्रमण उन सुअरों मे सामान्यतया होता है, जो गड्ढों तथा घोंघों से युक्त स्थिर पानी वाले तालाबों, निचली भूमि के चरागाहों में पहुचते रहते हैं **फैसीओला-जाइगैंटिका** कोबोल्ड सामान्य यकृत पलूक है, जिससे सुअरों मे *रक्ताल्पता, कमजोरी तथा पाचन मे बाधा उत्पन्न होती है* रोग निरोधक उपचार के रूप में सुअरों को दूषित चरागाहों मे नही जाने देना चाहिये और ताजे पानी के घोंघों को कॉपर सल्फेट (1 भाग प्रति 50,00,000 भाग पानी) के उपयोग से नष्ट कर देना चाहिये कार्बन टेट्राक्लोराइड या हैक्साक्लोरएथेन परजीवी के नियन्त्रण मे प्रभावकारी होते हैं

शूकर-फीता कृमि, **टीनिया सोलियम** लिनिअस और प्रदोत कृमि, **ट्रिकिनेला स्पिरैलस** (ओवेन), दो अन्य प्रमुख आँत के कृमि हैं जो परजीवी हैं इनकी लारवा अवस्था सुअर की पेशियों को क्षति पहुँचाती है तथा "रोमान्तिका संक्रमित मांस" उत्पन्न करती है यदि यह मांस कच्चा या आधा पका खाया जाये, तो मनुष्यों में भी संक्रमण हो जाता है सुअरों मे इस संक्रमण को रोकने के लिये मनुष्यों की विष्ठा से सुअरों को दूर रखकर सावधानी बरतनी चाहिये सुअर में **ट्रिकिनेला** कृमियों के लारवापुटी का कोई उपचार नही है संक्रमण के निवारण के लिये उस क्षेत्र मे पाये जाने वाले चूहों को नष्ट करना तथा चूहे से दूषित खाद्य पदार्थ को सुअरों को न खाने देने से ही इसकी रोकथाम हो सकती है जहा चूहे उत्पात मचाये ऐसे स्थानों से प्राप्त कचडे को पका लेने के बाद ही सुअरों को खिलाना चाहिये

सुअरों की त्वचा के दो *सामान्य* परजीवी जूं, **हीमेटोपिनस सुइस** लिनिअस और खारिस पैदा करने वाली माइट, **सार्कोप्टीस स्कैबिआइ** (द गियर) हैं पहला परजीवी *अत्यन्त सामान्य* है इससे अधिक संक्रमण होने पर सुअर बेचैन तथा दुबला हो जाता है खारिस पैदा करने वाला माइट चमडी मे घुस जाता है और अण्डे देता है और लगभग दो से तीन सप्ताह मे सम्पूर्ण जीवन-चक्र पूरा कर लेता है तेज खुजली उठने पर सुअर ग्रस्त अंग को रगडता या खुजलाता है जिससे उसकी हालत बिगड जाती है और पशु दुबला हो जाता है इन दोनों परजीवियों को रोगग्रस्त हिस्से पर अपरिष्कृत पेट्रोलियम लगाकर नष्ट किया जा सकता है शुद्ध गंधक 450 ग्रा, ओलियम पाइसिस 56 मिली, लिकर पोटैश 56 मिली और द्रव पैराफिन 1 12 मिली से बने मरहम के लगाने से लाभ होता है यदि संक्रमण व्यापक हो, तो रोगग्रस्त सुअरों का वध कर देना चाहिये सुअर बाडो को पूरी तरह निसंक्रमित करके सफेदी करा देनी चाहिये

न्यूनता रोग – जब आहार मे खनिजो की कमी होती है तो अन्य पशुधन की तुलना मे सुअर जल्दी रोगग्रस्त हो जाते हैं जब सुअर बाडो की दीवालों या बिछावन इत्यादि को चाटने लगे तो खनिज की कमी समझना चाहिये, जिसके कारण उन्हे पेचिश हो जाती है तथा वृद्धि रुक जाती है

लोहे तथा तांबे की न्यूनता आहार मे फैरस सल्फेट और कॉपर-सल्फेट की उपयुक्त मात्रा मिलाकर पूरी की जा सकती है

कैल्सियम तथा फॉस्फोरस की कमी इन खनिजों मे अधिकता वाले खाद्य पदार्थों को खिलाने से पूरी हो जाती है विटामिन-डी के पूरक के रूप मे कॉड, शार्क या हालिवट यकृत तेल की थोडी मात्रा देने से कमी पूरी हो जाती है रिकेट और अस्थिमृदुता का उपचार इसी प्रकार किया जाता है आहार मे कैल्सियम की कमी के कारण सुअरियों मे दुग्ध-ज्वर (प्रसवीय अल्प कैल्सियम रक्तता) हो जाता है इन्हे कैल्सियम-बहुल खुराक दी जाती है तथा ग्लूकोस के साथ मैग्नीशियम क्लोराइड का अवत्वक इंजेक्शन लगाते हैं

छौनो मे आयोडीन की कमी से उनके बाल उड जाते हैं. इसके लिये सुअरियों को सामान्य खुराक मे उपयुक्त मात्रा में पोटैशियम आयोडाइड दिया जाता है

अविटामिनता से सुअरों के स्वास्थ्य, वृद्धि और दैनिक कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है समुचित स्वास्थ्य के लिये सुअरों को विटामिन ए, बी, डी और ई आवश्यक हैं इनको हरे चारे सब्जियाँ, चुकन्दर, गेहूँ का चोकर, मावुत दाना (मक्का), कॉड या हालिबट यकृत तेल, सान्द्र आहार के साथ खिलाये जा सकते हैं

सुअर-बाडो से प्राप्त उत्पाद

सुअरों से शूकर मांस, नमक लगाकर धुआँ दिया गया शूकर मांस, रॉन, गुलमा, चर्बी, खाल तथा शूक प्राप्त होते हैं इनमें से शूक और चर्बी प्रमुख उपोत्पाद है उत्तरी भारत के एक या दो आधुनिक शूकर मांस कारखानों को छोडकर अधिकांश सुअर-बाडा उत्पादों की बाजार मे पूर्ति छोटे पैमाने पर तैयार करने वाले करते हैं जो सभी प्रकार के सुअरों का इस्तेमाल करते हैं ये सुअर-बाडो से प्राप्त उत्पादों के उचित निरीक्षण के लिये कोई प्रबन्ध नही करते

सुअरों को वध के पूर्व 24 घण्टे तक उपवास कराते हैं और पूर्ण विश्राम करने देते हैं क्योंकि अच्छे स्तर तथा संरक्षण योग्य उत्पाद प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है सुअरों का वध पहले ही प्रहार मे करना चाहिये और बाद मे गले की शिराओं का रक्त निकालने के लिये गर्दन मे दो-धार वाले चाकू से प्रहार करना चाहिये फिर शव को धोते हैं तथा गर्म पानी से अच्छी तरह साफ करते हैं और बाद में विभिन्न प्रकार के उत्पाद तैयार करने के लिये विभिन्न अंगों को काट-काट कर अलग-अलग कर लेते हैं 1960–61 मे कसाईखानों मे काटे गये सुअरों की संख्या सारणी 71 मे दी गयी है

सुअर मांस – सुअर के मांस को पॉर्क कहते हैं इसके विभिन्न नाम पशु के शरीर के उन भागों के अनुसार रखे गये हैं जिनसे मांस प्राप्त किया जाता है बेकन, पशु की पीठ तथा बगल से प्राप्त मांस है तथा हेम, जांघ के पीछे से अथवा पिछली टॉग और घुटने के बीच से प्राप्त किया जाता है भारत सरकार के विपणन और निरीक्षण निदेशालय द्वारा 1966–67 मे किये गये आकलन के

सारणी 71 – भारत में 1960–61 में वध किये गये सुअरों की कुल सख्या*

राज्य	सख्या
आन्ध्र प्रदेश	621
उत्तर प्रदेश	7,992
केरल	1,213
तमिलनाडु	5,868
दिल्ली	13,247
पजाव	7,108
महाराष्ट्र	15,165
मैसूर	1,401
राजस्थान	290
योग	52,905

*विपणन और निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मत्रालय, नागपुर

सारणी 72 – भारत में 1966–67 में सुअर मास का आकलित उत्पादन*

(टनो मे)

राज्य	सुअर मास का उत्पादन	राज्य	सुअर मास का उत्पादन
अडमान और निकोवार द्वीप समूह	67 4	दिल्ली	799 8
		पजाव	918 0
असम	5,057 0	पश्चिमी वगाल	12,298 0
आन्ध्र प्रदेश	784 0	पाण्डिचेरी	3 53
उडीसा	453 0	विहार	391 2
उत्तर प्रदेश	2,084 0	मणिपुर	688 0
केरल	478 8	मध्य प्रदेश	6,176 0
गुजरात	52 2	महाराष्ट्र	1,812 8
गोवा, दमन और दीव	194 5	मैसूर	484 8
तमिलनाडु	353 0	राजस्थान	179 6
त्रिपुरा	89 8	हिमाचल प्रदेश	97 6
योग			33 494 8

*विपणन और निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मत्रालय, नई दिल्ली

अनुसार, सुअर माम और मास उत्पाद भारत मे उत्पादित कुल माम के केवल 5 प्रतिशत हैं (सारणी 72)

पॉर्क के उत्पादन का सुअरो की कुल सख्या, वध किये गये सुअरो की सख्या तथा ससाधित मास की मात्रा मे घनिष्ठ सबध पाया जाता है प्रति पशु मास की मात्रा अनेक कारको, जैसे शरीर भार, आकृति और नस्ल पर निर्भर करती है

कुछ सरकारी कारखानो के अतिरिक्त दिल्ली तथा कलकत्ता जैसे शहरो मे भी सुअर का मास तथा माम-उत्पादो का उत्पादन करने वाले कुछ कारखाने हैं इन कारखानो का अनुमानित वार्षिक उत्पादन (टनो में) इस प्रकार है मैसर्स इसेक्स फार्म, दिल्ली (250), केन्द्रीय डेरी फार्म, अलीगढ (130), इल्मेक, कलकत्ता (50), फास्टर वेल, गिटवाको फार्म और इण्टरनेशनल फूड पैकर्स (प्रत्येक 10) वोरिवली वेकन फैक्ट्री, वम्वई (महाराष्ट्र) की क्षमता सुअर माम तथा मास-उत्पादो के लिये प्रतिदिन 100 सुअरो को ससाधित करने की है

सुअर मास का उपयोग ताजे सुअर मास के रूप मे या समाधन के वाद किया जाता है भेड माम तथा वकरी मास की तरह ताजे सुअर के मास की मांग केवल शहरो मे ही नही वरन् गाँवो मे भी है गाँव के लोग इसे ताजा खाते हैं, जवकि शहरी लोग इसे केवल ताजी अवस्था मे ही नही वरन् वेकन, हैम तथा गुल्मा के रूप मे भी खाते हैं सुअर का मास वहुत स्वादिष्ट होता है और उत्पादो मे अनेक रूपो मे समाधित तथा सरक्षित किया जाता है सगहागारो मे इसे लम्वी अवधि तक रखा जा सकता है

सुअर का मास जल्दी खराव हो जाता है अत इसे उचित अवस्था मे रखना तथा सरक्षित करना चाहिये माम स्वस्थ एव निरोगी पशुओ मे जो रोगमुक्त एव स्वास्थ्यकर परिस्थितियो में पाले गये हो, प्राप्त करना चाहिये भारतीय मानक सस्थान ने मास वाले जानवरो तथा उनके उत्पादो की मरणोतर तथा मरने से पूर्व जाँच करने के लिये विनिर्देश जारी किये है (IS· 1723-1960, 1982-1962, 2476-1963)

शूक – सुअर, हॉग तथा जगली सुअरो के वाल कडे, तार जैसे और मजवूत होते हैं ये साधारणतया पीठ और गर्दन से प्राप्त किये जाते हैं जानवरो की जघा तथा पेट पर भी छोटे वाल पाये जाते हैं सुअर के वाल मोटे तथा दृढ और जड से सिरे तक पतले होते हुये किनारे पर नुकीले हो जाते हैं तथा इनके छोर फटे हुये और कशाकार होते हैं, जिसके कारण वे वार्निश तथा पेण्ट करने के लिये अत्यन्त उपयुक्त है जीवित पशु से प्राप्त शूक शव से प्राप्त होने वाले शूको की अपेक्षा उत्तम होते हैं. भारतीय सुअरो के वाल मोटे तथा मजवूत तथा सभी रगो में मिलते हैं विवर्ण शूको को केन्द्रीय चर्म अनुसधान सस्थान, मद्रास द्वारा विकसित एव मानकीकृत प्रक्रम द्वारा विरजित करके श्वेत रग में वदला जा सकता है (देखे शूक, भारत की सम्पदा–प्राकृतिक पदार्थ)

देश में सुअर-शवो से खाल नही उतारी जाती, वरन् 4–6 मिनट तक उन्हे गर्म पानी के तालाव मे झुलसाने से शूक ढीले हो जाते हैं गर्म पानी मे झुलसाने के वाद घण्टी के आकार के दस्ती अवघर्षको से शूक अलग कर लिये जाते हैं जो शूक नही खुरचे जाते उन्हे झुलसा कर जला देते हैं

सुअरो के वाल उत्पादन मे भारत का स्थान चीन के वाद आता है 1960–61 में 1 52 करोड रुपये के मूल्य के 3 82,000 टन वालो का उत्पादन हुआ यह मात्रा उपलब्ध मात्रा की केवल आधी है वालों के उत्पादन करने वाले प्रमुख क्षेत्र उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और पजाव हैं सज्जित शूको का प्रमुख व्यापार केन्द्र उत्तर प्रदेश मे कानपुर तथा मध्य प्रदेश में जवलपुर हैं 70% शूको का निर्यात अकेले कानपुर से होता है शूको की प्रमुख किस्म देशी शूक उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश से प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती हैं उत्तम शूक या दार्जिलिग-शूक, दार्जिलिग जिले मे हिमालय की निचली पहाडियो तथा असम के कुछ स्थानो मे प्राप्त होते हैं भारतीय सुअरो के शूक तीन रगो में मिलते हैं सफेद, काले और धूमर इनको पुन तीन कोटियो मे वर्गीकृत किया गया है अत्यधिक दृढ, दृढ या अर्ध-दृढ अथवा मुलायम

व्यापारिक शूक जीवित सुअरो के गले के पृष्ठ भाग से इस तरह निकाले जाते है कि जडे अक्षत रहे जिससे उनकी दृढता और कठोरता मे कमी न आये

सुअर के बाल समस्त सामान्य पशुओ के बालो से सर्वाधिक कीमती होते है और मुख्यतया दाढी बनाने और शरीर धोने वाले ब्रुशो से लेकर पेण्ट करने तथा रगने वाले विभिन्न प्रकार के ब्रुशो के बनाने के काम आते है इनका इस्तेमाल क्रिकेट बॉल के ऊपरी खोल बनाने तथा जूतो का तल्ला चढाने मे होता है

देश मे शूको को एकत्र करने वाले बाजार उत्तर प्रदेश मे आगरा, इलाहाबाद, आजमगढ, फैजाबाद और जौनपुर, महाराष्ट्र मे अमरावती और नागपुर, बिहार मे सन्थाल परगना, पश्चिमी बगाल मे कलकत्ता, दार्जिलिग और कालिमपोग, तथा आन्ध्र प्रदेश मे काकिनाडा है शूको के निर्यात के लिये बम्बई मुख्य बन्दरगाह है यू के, अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी और जापान मे कुल निर्यात का क्रमश 58, 28, 8 और 4% जाता है भारत शूको के निर्यात से 2 5 करोड रुपये वार्षिक की विदेशी मुद्रा कमाता है

निर्यात के लिये शूको के गुणो को निश्चित करने के लिये शूको की श्रेणियो के मानकीकरण की आवश्यकता हुयी है क्योकि उनके गुणो मे ह्रास हुआ है तथा विदेशी क्रयकर्ताओ ने यदा-कदा शिकायते की है (IS 1844–1962) फलत पैकिंग सतर्कता से न करने तथा विभिन्न आकार और रगो के शूको को मिलाने से रोकने के लिये 1954 मे ऐगमार्क श्रेणीकरण चालू किया गया शूको को तभी निर्यात होने दिया जाता है, जब वे श्रेणीकरण तथा विपणन (सशोधित) नियम 1962 के अनुसार उचित रूप से श्रेणीकृत तथा चिह्नित हो और भारत सरकार के कृषि विपणन सलाहकार द्वारा प्रमाणित हो

ऐगमार्क श्रेणीकरण योजना के अन्तर्गत निर्यात किये जाने वाले शूको के गुणो का अनुमान उनकी लम्बाई, रग, गठन और बाह्य पदार्थो के मिलावट के न होने के आधार पर किया जाता है शूको की 18 श्रेणिया है जिनकी लम्बाई 51 से 159 मिमी और इससे अधिक भी होती है और दो क्रमागत श्रेणियो के बीच 6 8 मिमी का अन्तर होता है 51 मिमी से कम लम्बे शूको को छोटी श्रेणी के अन्तर्गत रखा जाता है इस योजना का प्रबन्ध कानपुर मे एक पृथक् निरीक्षणालय मे विभिन्न केन्द्रो पर रखे गये कर्मचारियो द्वारा किया जाता है केन्द्रो मे बालो का समाधान किया जाता है और उन्हे निर्यात के लिये पैक किया जाता है नमूनो का सतर्कतापूर्वक भौतिक विश्लेषण किया जाता है और जो स्वीकृत निर्देशो के अनुरूप होते है उनपर ऐगमार्क लगा दिया जाता है ऐगमार्क के अन्तर्गत श्रेणीकृत सभी प्रकार के भेजे गये माल मे रग, श्रेणी, आकार (लम्बाई), किस्म, पैकिग का स्थान, पैक करने की तिथि और शुद्ध भार से अकित समुचित लेबिल होना चाहिये अपेक्षित गुण नियत्रण योजना के प्रारम्भ होने मे निर्यातित बालो के गुणो मे सुधार हुआ और दस वर्ष के भीतर बिक्री मे चौगुनी वृद्धि हुयी

गुलमा – हड्डियो तथा चमडी से मुक्त ताजे कटे हुये सुअर के मास से **गुलमा** तैयार किया जाता है हैम, नमकीन बेकन मास इत्यादि के बनाने मे शव के अन्य हिस्सो से बचा हुआ स्कध तथा छँटे हुये मास का उपयोग गुलमा बनाने मे किया जाता है गुलमा के लिये चुने गये मास को 2–3 प्रतिशत नमक मिश्रण मिलाकर पूरी रात रखा जाता है गुलमा के डिब्बो को सोडायुक्त गर्म पानी से धोकर तैयार किया जाता है छोटे आकार के गुलमा के लिये भेड की आँत की पतली नलियो का उपयोग किया जाता है गुलमा को स्वादिष्ट बनाने के लिये काली मिर्च, पैप्रिका, इलायची और मस्कैट-नट जैसे मसाले उचित मात्रा मे डाले जाते है

गुलमा का कीमा बनाने से पहले 25% नमक मिला ताजा मास तथा 13% वसायुक्त मास मिलाया जाता है फिर पूरे ढेर को काटने वाली मशीन से दो बार कीमा बनाया जाता है और बाद मे गेहूँ का आटा (750 ग्रा /4 5 किग्रा) तथा मसाले तब तक मिलाये जाते है जब तक कि ये मास मे पूरी तरह अवशोषित नही हो जाते इसके बाद इस मथे हुये मास को पात्रो मे भर दिया जाता है और इससे तुरन्त गुलमा थैलियाँ (गट) भर ली जाती है और 450 ग्रा और 900 ग्रा के पैकिटो मे भरकर बेचने के लिये तैयार कर ली जाती है

मास उत्पादो के गुण मे सुधार लाने तथा इन उत्पादो को कतिपय मानको के अनुरूप लाने के उद्देश्य से भारतीय मानक सस्थान ने विनिर्देश जारी किये है (IS 1723-1960, 1981-1962, 2475-1963, 2476-1963, 3060-1965, 3061-1965)

सुअरो के शव से मिलने वाले अन्य उप-उत्पाद, वसा, आँत, ग्रन्थियाँ, रक्त, खुर आदि है विपणन तथा निरीक्षण निदेशालय ने 1958-59 मे भारत मे इन उत्पादो के वार्षिक उत्पादन का आकलन किया है प्राप्त आकडे सारणी 73 मे दिये हुये है

सारणी 73 – 1958–59 में वध किये गये सुअरो से प्राप्त उत्पादो का अनुमानित वार्षिक उत्पादन*

(मात्रा टनो मे)

राज्य	वसा	आँत	ग्रन्थियाँ	रक्त	खुर
असम	374 5	202 8	203 2	249 7	19 5
आन्ध्र प्रदेश	40 6	26 4	26 4	32 5	2 5
उडीसा	15 9	12 4	10 3	14 3	1 2
उत्तर प्रदेश	141 5	79 6	62 4	88 5	6 7
केरल	8 4	5 9	4 6	6 3	0 5
तमिलनाडु	16 3	8 9	8 9	10 9	0 9
दिल्ली	31 8	17 7	16 0	20 4	1 7
पंजाब	44 3	28 2	19 5	33 2	2 4
पश्चिमी बगाल	778 3	496 2	316 7	535 1	30 4
बिहार	2 0	1 2	1 4	1 2	0 1
मध्य प्रदेश	309 9	251 8	252 2	309 9	24 2
महाराष्ट्र‡	103 2	61 9	67 2	72 2	6 5
मैसूर	27 0	21 1	19 0	24 3	2 0
राजस्थान	2 3	1 7	1 5	1 8	0 1
हिमाचल प्रदेश	4 5	3 4	3 0	3 6	0 3
अन्य†	49 9	29 9	32 5	39 9	3 1
योग	1,950 4	1,249 1	1 044 8	1443 8	102 1

* विपणन एव निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एव कृषि मत्रालय (कृषि विभाग), नागपुर

† अण्डमान और निकोबार, लक्षदीवी, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप, मणिपुर और त्रिपुरा राज्य ‡ भूतपूर्व बम्बई राज्य

सारणी 74 – सुग्ररो की नस्लो, प्रजनन केन्द्रो, फार्मो तथा इकाइयो का विवरण*
(1 अप्रैल 1968 के अनुसार)

राज्य	स्थान	नस्लें†	राज्य	स्थान	नस्लें†
असम	शिलाग	LWY, BERK	त्रिपुरा	गान्धीग्राम	MWY
	खानपाड़ा	LWY, HAMP	नागालैंड	गास्पानी	LWY
	तूरा	LWY		तूला	LWY
	हैफलाग	LWY		तिजित	LWY
	खाईकोल	LWY	पजाव	नाभा	LWY
	कालियापानी	LWY		लुधियाना	LWY
	वरहामपुर	अप्राप्य		खरार	LWY
	दीफू	LWY		जालन्धर	LWY
आन्ध्र प्रदेश	गन्नावरम्	LWY	पश्चिमी वगाल	हरिंघाटा	LWY, LR, TW, WSB×B,
	मुकाटयाला	LWY			LWY,LR,D×LWY,WSB×
उडीसा	भज नगर	MWY	विहार	राची	LWY LR
	चिपलिमा	LWY		गोरीर्म्म	LWY
उत्तर प्रदेश	अलीगढ	MWY, LWY, चारमुखा HAMP TW, LR		जमशेदपुर	LWY
				होतवार	LWY
	अराजीलाइन्स (वाराणसी)	MWY	मणिपुर	इम्फाल	यार्कशायर
			मध्य प्रदेश	अधारताल	अप्राप्त
केरल	मन्नूथी	LWY LWY, MWY	महाराष्ट्र	आरे	LWY, LR
	थेंलायोलाप्रम्वा	LWY		याथावाडे (पूना)	LWY
	अकामाली	LWY		नागपुर	LWY
	मुनायाड	LWY		औरगाबाद	LWY
	परस्साला	LWY	मेसूर	हेसारघट्टा	LWY, SB, LR
तमिलनाडु	होसुर	LWY	राजस्थान	अलवर	LWY LR
	पुडुकोट्टाई	LWY		वस्सी (जयपुर)	LWY
	काट्टूपक्कम्	LWY	हरियाणा	हिसार	LWY
	ओर्थानाद	LWY		अम्वाला	LWY
	चेट्टिनाद	LWY	पांडिचेरी	करिचामानिकम्	LWY
	अलामाघी	LWY	नेफा	पासीघाट	LWY, WSB स्थानिक

*सहायक पशुपालन कमिश्नर (सुअरशाला विकास), खाद्य एव कृषि मत्रालय (कृषि विभाग), नयी दिल्ली से प्राप्त आँकडे

†LWY, लार्ज ह्वाइट यार्कशायर, MWY, मिडिल ह्वाइट यार्कशायर, BERK, वर्कशायर, HAMP, हैम्पशायर, LR, लड रेस, TW, टामवर्थ, WSB, वेसेक्स सैडिल वैक, SB, सेडिल वैक

सुग्रर की चर्वी – सुग्रर की उपचारित चर्वी लॉर्ड कहलाती है ताजे शवो से प्राप्त वसा को छोटे-छोटे टुकडो मे काट लेते हैं तथा उन्हे भट्टी के ऊपर उवालते हैं जव चर्वी उवलने लगे तो शोधित चर्वी को अलग कर लेते हैं तथा विजातीय कणो को हटाने के लिये महीन छलनी से छान लेते है इसके वाद इसे विभिन्न आकार के निर्जर्मित टीन के डिव्वो में भरकर मुहरवद कर देते हैं विभिन्न स्थानो पर भेजने के पूर्व डिव्वावद उत्पादो को ठण्डे तथा शुष्क स्थान मे रखा जाता है लॉर्ड का उपयोग खाना पकाने के अतिरिक्त सावुन, स्नेहक, मोमवत्ती और ग्रीस वनाने में किया जाता है चमडे को वाटर-प्रूफ वनाने के लिये इसमे भी ससिक्त (रचाई) किया जाता है

थायराइड, पीयूषिका, अग्न्याशय जैसी ग्रन्थियाँ हारमोन विरचनो को तैयार करने मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है पेप्सीन, थाइरोक्सीन, पिट्यूट्रिन, इन्सुलिन, यकृत निष्कर्ष, टैस्टोस्टेरोन इत्यादि जैसी उपयोगी ओपधियाँ भी इन्ही ग्रन्थियो से तैयार की जाती है इन ग्रन्थियो के एकत्र करने तथा सरक्षित रखने के लिये पर्याप्त सुविधायें न होने के कारण भारत में इनका यथेष्ट मात्रा में उपयोग नही हो पाता

यद्यपि खुर, सुग्रर उप-उत्पादो का कुछ ही प्रतिशत हैं किंतु वे अत्यन्त महत्वपूर्ण अग हैं इनका उपयोग चर्म उद्योग में जूतो का तेल वनाने में होता है और इनसे वटन, कघी, चाकू के हत्थे आदि फैन्सी सामान वनाये जाते हैं ये चूर्ण के रूप मे उर्वरक की तरह भी प्रयुक्त होते हैं

सुग्रर के खुरो का चूर्ण वना लिया जाता है जो तम्वाकू उर्वरक के रूप में तथा प्लास्टर और प्लास्टिक के साँचे वनाने के काम आता है

रक्त एक मूल्यवान उप-उत्पाद है रक्त-चूर्ण का उपयोग पशुधन तथा कुक्कुटों के लिये आहार के रूप में और खाद के रूप में भी किया जाता है इसका उपयोग प्लाईवुड में प्रयुक्त होने वाले ऐल्बुमिन के बनाने तथा रँगने से पूर्व चमड़े का प्रसाधन करने, और कपड़ों तथा कागज को रँगने में किया जाता है

अनुसंधान और विकास

सुअर-पालन भारत में नीच जाति के गरीब लोगों का व्यवसाय रहा है, इसीलिये सुअर पालने में अभी तक कोई उन्नति नहीं हुयी है भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने 1959-60 में सहकारी सुअर विकास योजना प्रारम्भ की इस योजना के अन्तर्गत अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश), हरिंघाटा (पश्चिमी बंगाल), बम्बई (महाराष्ट्र) और गन्नावरम् (आन्ध्र प्रदेश) में एक साथ प्रजनन केन्द्र तथा बेकन फैक्ट्रियाँ तथा विभिन्न स्थानों पर सुअर प्रजनन फार्म और सुअरशाला विकास खण्ड स्थापित किये गये हैं संकर प्रजनन द्वारा सुअरों की नवीन नस्लों को विकसित करने के उद्देश्य से सात राज्यों में तीन मिली-जुली योजनायें चालू हैं सुअरशाला विकास कार्य में देशी सुअरों के श्रेणी-उन्नयन हेतु यार्कशायर, लैंडरेस आदि जैसी उन्नत नस्लों का उपयोग किया जाता है प्रजनन केन्द्रों में शुद्ध नस्ल के सुअरों की वृद्धि की जाती है और उन्हें किसानों में वितरित किया जाता है विभिन्न सुअर-प्रजनन केन्द्रों तथा इकाइयों पर शुद्ध नस्ल के 10,000 तक सुअर उपलब्ध हैं सारणी 74 में सुअर की नस्लों, प्रजनन केन्द्रों तथा इकाइयों का निर्देश है

घोड़े तथा टट्टू

घोड़े (संस्कृत – अश्व)—विश्व के इतिहास को मोड़ देने में अपने अत्यधिक प्रभाव के कारण पशुधन में अश्व जाति के पशुओं का महत्वपूर्ण स्थान है मानव मात्र के आर्थिक कल्याण में भी इनका काफी हाथ रहा है पूर्व ऐतिहासिक काल से ही घोड़ों का उपयोग युद्ध तथा शान्ति दोनों के समय किया जाता रहा है भारत, फारस तथा मिस्र में इनका पालन होता रहा है तथा परिवहन के साधन के रूप में इन्हें प्रशिक्षित किया जाता रहा है

घोड़े मनुष्यों से भी 20 लाख वर्ष पहले से पाये जाते रहे हैं घोड़ों की आधुनिक नस्लें संभवत पूर्व ऐतिहासिक पूर्वजों की संततियाँ हैं, जो पहले पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों ही अर्धगोलार्द्धों में पायी जाती रही हैं पहला अश्वीय पूर्वज **योहिप्पस** लगभग 6 करोड़ वर्ष पूर्व (तृतीयक ईयोसीन युग का प्रारम्भ) उत्तरी अमेरिका में रहता था ज्यों-ज्यों दलदलों का स्थान जंगल तथा घास के मैदान लेते गये त्यों-त्यों घोड़ों के स्वरूप में काफी अन्तर आता गया जैसे लम्बी टाँगें, छोटे टखने और उठा हुआ सिर इस वृद्धि का सबसे बड़ा अवगुण यह हुआ कि वे शत्रुओं से अपने को छिपा न सकते थे इसलिये उनमें दौड़ने की सामर्थ्य का काफी विकास हुआ इस प्रकार अर्वाचीन घोड़े का विकास-क्रम वातावरण में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप अनेक अनुकूलनों का प्रतिफल है

आज घोड़ा, गण—पेरिसोडेक्टाइला, कुल—एक्विडी, तथा वंश—इक्वस लिनिअन में सम्मन्धित है इस वंश में चार समूह हैं धारीहीन देह, छोटे कान और संकीर्ण खुरों वाला समूह (इक्वस), धारीहीन देह, लम्बे कान और संकीर्ण खुरों वाला गर्दभ समूह (**ऐसिनस**), धारीदार देह और चौड़े कानों वाला ग्रीवी का जेब्रा समूह (**डोलिकोहिप्पस**) और धारीदार देह, संकीर्ण कानों वाला, सिर और लम्बी गर्दन वाला जेब्रा समूह (**हिप्पोटिग्रिस**) इसमें से प्रथम दो समूह भारत में और अन्तिम दो समूह एशिया तथा अफ्रीका के अन्य भागों में पाये जाते हैं

घोड़ों में दो स्पष्ट प्रकार होते हैं उत्तरी डन जाति जो आज भी मंगोलिया के जंगली टट्टू का प्रतिनिधित्व करती है, प्रजेवाल्स्की घोड़ा, **इक्वस प्रजेवाल्स्की** पोलियाकोव कहलाता है, और गोबी मरुस्थल में पाया जाता है. आज भी संसार में पाये जाने वाले घोड़ों में असली जंगली जाति यही है यह लगभग 12 मुट्ठी (एक मुट्ठी=10 1 सेमी) ऊँचा होता है सिर बेढंगा, अयाल छोटे तथा खड़े किन्तु ललाट केश-रहित होता है इसका रंग फीका पीला होता है तथा थूथन हल्का और तंग और गधे जैसे पाँव होते हैं सूचना है कि भारतीय जंगली गधा **इक्वस हेमिनस खुर** लेसन रणकच्छ (गुजरात) में पाये जाते हैं

दूसरी जाति इ हैं **ओनागर** बोट्टाएर्ट कैम्पियन तथा भूमध्य सागरीय इलाकों में पायी जाती हैं यह पतली चमड़ी वाला, कम भारी, चलने में तेज, अधिक बुद्धिमान जानवर है तथा **इ. प्रजेवाल्स्की** की अपेक्षा गहरे रंग का होता है कहा जाता है कि यह घोड़ा अरब बर्ब तथा तुर्क नस्लों का पूर्व ऐतिहासिक पूर्वज है आजकल के भारतीय घोड़े भूमध्यवर्ती क्षेत्रों से आये हुये हैं

समस्त विश्व में घोड़ों की लगभग 60 विभिन्न पालतू नस्लें हैं इन सबकी संख्या यान्त्रिक परिवहन के फलस्वरूप तेजी से गिरी है और आजकल घोड़ों का उपयोग खेल-कूद में बहुतायत से होता है अमेरिका में विगत 35 वर्षों में घोड़ों की संख्या 2 5 करोड़ में घटकर 40 लाख हो गयी है भारत में 1966 में घोड़ों तथा टट्टुओं की संख्या 11 लाख 48 हजार थी भारत में 1966 में घोड़ों तथा टट्टुओं का वितरण सारणी 75 में दिया गया है

परिवहन में यान्त्रिकीकरण के फलस्वरूप घोड़ा प्रजनन की व्यवस्था के पिछड़ जाने पर भारत में अब भी देशी नस्लों के कुछ कीमती घोड़े हैं जिनमें और आगे विकास करने तथा प्रवर्धन की क्षमता है देशी नस्लों से उच्च कोटि के पोलो टट्टू, सवारी के घोड़े, तांगे में चलने वाले टट्टू और लद्दू घोड़ों की पूर्ति हो सकती है देश के बहुत से इलाकों में, खासतौर से पहाड़ी तथा अर्धपहाड़ी इलाकों में, केवल ये ही परिवहन के काम आते हैं आजकल भारतवर्ष में घोड़ों की 6 प्रमुख शुद्ध नस्लें मिलती हैं इनके नाम हैं **काठियावाड़ी या कच्छी, मारवाड़ी या मलानी, मणिपुरी, भूटानी या भूटिया, स्पिती और चुम्मारती** **अरबी** तथा **थारोब्रेड** इंगलिश विदेशों से लायी गयी नस्लें हैं

भारतीय नस्लें

काठियावाड़ी या कच्छी राजस्थान में पायी जाने वाली भारत की सर्वोत्तम नस्लों में से है यह सुविधाजनक और बलिष्ठ है तथा

सारणी 75 – भारत में 1966 में घोडो तथा टट्टुओ का वितरण*

(हजार मे)

राज्य	सख्या	राज्य	संख्या
असम	43 848	पजाब	36 326
आन्ध्र प्रदेश	48 896	पश्चिमी बगाल	27 384
उडीसा	66 616	बिहार	115 878
उत्तर प्रदेश	229 845	मणिपुर	0 803
केरल	0 426	मध्य प्रदेश	150 042
गुजरात	70 403	महाराष्ट्र	101 004
जम्मू और कश्मीर	65 797	मैसूर	64 874
तमिलनाडु	17 140	राजस्थान	63 085
त्रिपुरा	1 774	हरियाणा	23 928
दिल्ली	5 165	हिमाचल प्रदेश	14 512
नागालैंड	0 508	अन्य	0 174
योग		1148 427	

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Agriculture, Govt of India, 1972

अपनी चाल और गति के लिये प्रसिद्ध है तथा इनमे उष्णकटिबन्धीय गर्मी और तीव्र ठड मे कार्य करने की क्षमता होती है इसकी ऊँचाई 12–15 मुट्ठी (1 2–1 5 मी) होती है तथा वक्ष परिधि 1 37–1 52 मी होती है यह मारवाडी नस्ल से अधिक मिलती-जुलती है लगता है कि दोनो के पूर्वज अरब घोडे साँड ही थे जो भारत के पश्चिमी किनारे पर जहाज के डूब जाने के कारण काठियावाड तथा बम्बई के जगलो मे रहने लगे इस घोडे का सिर अरबी घोडे से मिलता-जुलता है इसके खुर हँसिया के समान तथा कान झुके हुये होते हैं रग लालाभ-भूरा, कुम्मैत-भूरा, बादामी, धूसर, चितकबरा तथा कुछ क्रीम सा होता है पालिताना अश्वशाला, गुजरात, जिसकी स्थापना 1860 मे हुयी थी,, देश मे काठियावाडी टट्टुओ के प्रजनन मे भाग लेने वाली देश की सबसे पुरानी अश्वशाला है

मारवाडी या **मलानी** राजस्थानी घोडा है जो मारवाड, जयपुर, जोधपुर तथा उदयपुर मे पाया जाता है यह अत्यधिक साहसी और पुष्ट होता है तथा हर दशा मे रहने की पर्याप्त शक्ति रखता है, इसकी चाल अच्छी होती है पर यह अनिश्चित स्वभाव का होता है अधिकाँश पशुओ का रग लालाभ-भूरा तथा कुम्मैत होता है, लगभग 5% पशु क्रीम रग के होते हैं यह घोडा देखने मे शाही तथा सुन्दर होता है और धार्मिक अवसरो पर इसकी अधिक माँग होती है यह मोटे अनाजो तथा चारो पर अच्छी तरह पलते है इसकी ऊँचाई 14–15 मुट्ठी (1 4–1 5 मी) और भार लगभग 360 किग्रा होता है इस समय देश मे यह परिवहन का एकमात्र तेज साधन है कलाबाजी दिखाने के लिये सरकस के मालिक भी इसको प्रशिक्षित करते है

मणिपुरी टट्टू कई शताब्दियो से मणिपुर रियासत मे पाले जाते रहे है यह नस्ल अपनी भव्यता, सहनशीलता तथा रफ्तार के लिये प्रसिद्ध है कद छोटा होने पर भी पशु की देह सुगठित और समानुपाती होती है यह दृढ और कभी न फिसलने वाला होता है इसकी ऊँचाई 11–13 मुट्ठी (1 1–1 4 मी) तथा देह का भार लगभग 295 किग्रा होता है इसका उपयोग पोलो खेलने, दौड मे भाग लेने तथा लादने वाले पशु के रूप मे किया जाता है ये फौजी सामान ढोने वाले टट्टुओ के रूप मे उपयोगी है किन्तु जो पशुधन इस समय है उसके सुधार के लिये बिल्कुल ध्यान नही दिया जा रहा है

भूटानी या **भूटिया** नस्ल पजाब से भूटान तक हिमालय पर्वत के निचले इलाको मे पायी जाती है यहाँ प्रजनन का अधिकाश कार्य पहाडी जातियाँ करती है घोडे के मुख्य लक्षण है देह गठी हुयी, मस्तक चोडा, गर्दन छोटी और मोटी, छाती चौडी, कधे सीधे, कमर मजबूत, हड्डियाँ अच्छी, उदर उत्तम पसलीदार, पुट्ठे गोल मासल, टाँगे स्थूल, बालदार और पूछ लम्बी तथा गरदन के बाल लम्बे खडे होते हैं अच्छे टट्टू की ऊँचाई लगभग 13 0–13 2 मुट्ठी (1 31–1 33 मी) और भार 270 से 360 किग्रा तक होता है बधिया टट्टुओ की सख्या अधिक होती है, जो सवारी करने तथा लादने के काम आते हैं

स्पिती टट्टू काँगडा जिले के कुल्लू उपविभाग मे स्थित स्पिती घाटी मे पाये जाते है यह विशेषतया सहिष्णु तथा न फिसलने वाला प्राणी है इसकी ऊँचाई लगभग 12 मुट्ठी (1 21 मी) होती है इसकी देह सुविकसित होती है और हड्डियाँ मजबूत होती है इसकी टाँगो पर लम्बे मोटे बाल होते है इसका रग गहरा धूसर, लोहे जैसा धूसर या पिंगल होता है, कभी-कभी रग कुमैत और काला भी मिलता है क्रीम रग अत्यन्त विरल है यह नस्ल केवल ठण्डे भागो में वृद्धि करने मे सक्षम है तथा प्रतिकूल अवस्थाओ को जैसे चारे की कमी, लम्बी यात्रा आदि भी सह सकता है स्पिती इलाके के वासियो की आय का प्रमुख स्रोत टट्टू पालन है इस नस्ल के टट्टुओ का आयात लाहूल मे किया जाता है, जहाँ इसे सवारी तथा परिवहन के काम मे लाया जाता है यह कुल्लू घाटी तथा लद्दाख मे एक पृथक् नस्ल मानी जाती है इस पशु को अपेक्षित आकार का बनाये रखने के लिये अन्त प्रजनन किया जाता है व्यापारिक उद्देश्य से बछेडे को चार वर्ष की आयु मे बधिया कर दिया जाता है इनकी पूछ नही काटी जाती क्योकि प्रजनक इसे अलाभकर मानते हैं

दूसरी जाति जिसे **चुम्मारती** कहते है तिब्बत की चुम्मारती घाटी से आयी है और किन्नौर जिले तथा हिमाचल प्रदेश के आस-पास के इलाको मे पायी जाती है स्पिती तथा चुम्मारती के शारीरिक गठन मे बहुत कम अन्तर होता है (ऊँचाई, 1 27–1 29 मी, लम्बाई, 1 34–1 36 मी, और वक्ष परिधि, 1 34–1 42 मी) इस नस्ल की घोडियो को आयरलैंडवासी आयातित **कोनेमारा** टट्टुओ से सकरित करते हैं

विदेशी नस्लें

अरबी घोडा विदेशी नस्ल का है जिसका उपयोग अश्व प्रजनन के लिये भारत मे बहुत पहले से होता आ रहा है इस नस्ल के घोडे बुद्धिमान होते है तथा इनमे अत्यन्त सहनशीलता होती है शुद्ध नस्ल के अरबी घोडो का रग कुम्मैत, धूसर, लालाभ-भूरा या भूरा होता है ये सफेद या काले भी होते हैं टागो, चेहरे तथा नाक पर सफेद धब्बो का होना असामान्य नही है उत्तम घोडे की ऊँचाई 15 मुट्ठी (1 5 मी) होती है वयस्क अरबी घोडो का

भार 385 से 454 किग्रा होता है अरबी घोडे अन्य घोडो की नस्लों को सुधारने के लिये बीजू पशुओ का काम करते हैं इन नस्लो को अरबी घोडो का स्वरूप, वृद्धि और सहनशीलता उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त हुयी है भारत मे मैसूर लैन्सर नामक एक प्रसिद्ध रेजिमेंट (सैन्य दल) थी 17वी शताब्दी से मैसूरी घोडो मे वलिष्ठ अरबी पैतृक गुणो के होने का उल्लेख है जब ईस्ट इडिया कम्पनी ने सबसे पहले कुनीगल मे फार्म स्थापित किया

थारोब्रेड इंग्लिश नस्ल लगभग 65 वर्ष पूर्व भारत मे ब्रिटिश सेना अधिकारियो द्वारा प्रविष्ट की गयी जिसका उद्देश्य घुडसवार तथा सशस्त्र सैन्य के पशुओ का सुधार करना था इसने अपनी कार्य कुशलता के उत्तम स्वरूप के कारण सभी नस्लो से बाजी मार ली है यह एक समाग नस्ल है जो दीर्घकाल से कार्य कुशलता के लिये सतत चयन के परिणामस्वरूप विकसित हुयी है यह घुडदौड के लिये सर्वोत्तम होता है 1750 मे **थारोब्रेड** नस्ल इगलैंड मे एक पृथक् नस्ल मानी गयी थी तथा सामान्य अश्व पुस्तिका मे इसे दर्ज किया गया था **थारोब्रेड** नस्ल का सिर सुन्दर, चेहरा छोटा और सीधा और कधे ढलवाँ होते है, इसकी ऊँचाई 15 से 16 मुट्ठी (1 5–1 6 मी) तथा भार 454 किग्रा से भी अधिक हो सकता है इसका रग कुम्मैत और लालाभ-भूरा होता है अन्य रग भी पाये जाते हैं चेहरे तथा टॉगो पर सफेद धब्बो का होना सामान्य है

देश मे **थारोब्रेड** नस्ल के पशुओ का आयात मुख्यतया यू के, आयरलैंड, फ्रास और ऑस्ट्रेलिया से किया जाता है **थारोब्रेड** घोडो के साथ देशी नस्ल की घोडियो का सकरण कराने मे भारतीय नस्लें उत्पन्न होती हैं

प्रबन्ध

घोडे अपने जीवन का 9/10 भाग अस्तबलो मे बिताते हैं इसलिये इनकी अधिक देखरेख करनी चाहिये और जहाँ तक हो सके इन्हे आराम देना चाहिये अस्तबलो को रोशनीदार, हवादार तथा वात प्रवाह मे मुक्त होना चाहिये खाद की नालियाँ ऐसी बनी हो कि अमोनिया वाष्प पशुओ के पास न फटके अस्तबलो मे घोडो को इधर-उधर घूम सकने के लिये स्थान होना चाहिये चारादान तथा सूखी घास के रैक इस प्रकार से बने हो जिससे पशु आराम से चारा खा सके सोने के लिये घोडो के नीचे गेहूँ के सूखे भूसे की स्वच्छ बिछाली डाल देनी चाहिये

घोडो की देह पर नित्यप्रति ब्रश और खरहरा करना चाहिये और चमडी की धूल, गन्दगी, पसीने तथा रूसी को रगड करके साफ करते रहना चाहिये अयाल तथा पूछ को नित्यप्रति धोना चाहिये तथा सँवारना चाहिये खुरो की नियमित सफाई होनी चाहिये तथा जानवर को चगा रखने के लिये टॉगो की मालिश करनी चाहिये आवश्यकतानुसार घोडे की देह के बालो को काट देना चाहिये जिससे कठिन कार्य के बाद पसीना आ जाने पर पशु को असुविधा न प्रतीत हो घोडो को ठीक तथा सक्रिय रखने के लिये इन्हें हर 6–8 सप्ताह मे एक बार ठीक से नाल बाँधना चाहिये घोडो से दैनिक कार्य लेते रहने से उनकी शारीरिक दशा ठीक रहती है

आहार

घोडो से जैसा काम लेना हो उसी के अनुसार अच्छी तरह खिलाने की आवश्यकता होती है परिश्रम करने वाले घोडो को भारी पशुओ की अपेक्षा अधिक ऊर्जा प्रदायक चारो की आवश्यकता होती है भारी घोडो को अधिक कच्चा चारा देना चाहिये जो घोडे बिना चबाये चारा निगलते हैं उन्हे पकाया घोडचना (**डालिकॉस बाइफ्लोरस** लिनिअस) और राई की कुट्टी या गेहूँ का भूसा खिलाना चाहिये इस देश मे सभी आहार पदार्थो मे से घोडचना घोडो के लिये सर्वोत्तम है यह स्थूल तिनका चारो के लिये उपयोगी प्रोटीन पूरक है जिस प्रकार उत्तर भारत मे चने (**साइसर एरीटिनम** लिनिअस) को खिलाया जाता है उसी तरह से दक्षिणी भारत मे घोडो को घोडचना खिलाने का रिवाज है अधिक काम करने वाले, प्रशिक्षण मे लगे, दौडने वाले तथा शिकारी घोडो को मौसम मे इसके अतिरिक्त दाना खिलाया जाता है उबलते पानी मे चोकर के साथ अलसी उबाल कर ठडा होने देते हैं तथा गुनगुना हो जाने पर खिलाते हैं भूख कम होने पर घोडो को शीरा देना चाहिये

ऊर्जा प्रदायक चारो के अतिरिक्त घोडो को अपना पाचन ठीक रखने के लिये तथा आवश्यक खनिजो की पूर्ति के लिये पर्याप्त मात्रा मे अच्छी सूखी घास, विरजित हरे चारे और कुरमुरी घास की आवश्यकता होती है

घोडो के लिये अतिरिक्त विटामिनो की ज्यादा आवश्यकता नही पडती क्योकि वे चारे से ही अपनी सभी आवश्यकताये पूरी कर लेते हैं नित्यप्रति की खुराक मे थोडी-सी गाजर मिला लेने से वह इसके पाचन मे उद्दीपक का कार्य करती है

घोडे को दिन मे तीन या चार बार खिलाना चाहिये चारे का अधिक भाग शाम को खिलाना चाहिये जिससे रात मे चारे को पचाने के लिये पशु को पर्याप्त समय मिल सके चारा-दाना देते समय किसी प्रकार का विघ्न नही पडना चाहिये यहाँ तक कि खरहरा करना तथा अस्तबल की सफाई भी छोड देनी चाहिये इसकी सफाई बाद मे करनी चाहिये घोडे ताजा पानी पीना पसद करते हैं चारा देने से पहले पानी पिलाना चाहिये

परिश्रम करने वाले घोडे को चराना शारीरिक क्रिया के हिसाब से ठीक नही है क्योकि चारे मे कार्बोहाइड्रेट की कमी हो जाने से इसकी कार्य-क्षमता घट जाती है लेकिन गाभिन और बच्चे वाली घोडियो तथा दूध पीते बछेडो को चराना आवश्यक है

प्रजनन

यद्यपि भारत मे घोडो का प्रजनन बहुत पहले से चला आ रहा है किन्तु 1795 मे ईस्ट इडिया कम्पनी के आगमन के पश्चात् ही विधिपूर्वक चालू हुआ देशी नस्लो का सुधार करने तथा उनकी सख्या मे वृद्धि करने के लिये भारत मे घोडो के प्रजनन की दो पद्धतियाँ चालू की गयी अबधित पद्धति तथा बधित पद्धति

अबधित पद्धति—इस पद्धति के अन्तर्गत प्रजनन ऐच्छिक है छावनियाँ बिना शुल्क लिये घोडियो को गाभिन करने के लिये अपने घोडे उधार देती थी और खुले बाजार से सतति खरीदती थी

बधित पद्धति—प्रजनको को निःशुल्क जमीन दी जाती थी तथा प्रजनन के उद्देश्य से घोडो तथा खच्चरो के लिये अनुदान दिये जाते थे सेना छावनियाँ अपने घोडे मैथुन के लिये निःशुल्क देती थी लेकिन इस प्रजनन के 18 माह तक सन्तति पर उनका अधिकार होता था इसके बाद प्रजनक उसे बेचने के लिये स्वतत्र होता था लेकिन अब ये दोनो पद्धतियाँ व्यवहार मे नही हैं

भूतपूर्व नरेशों के अश्व-पालन के निजी स्थान होते थे और इनमे से कुछ अभी तक काम कर रहे हैं इनमे से भोपाल, मजरी, कुनीगल, हेमारघट्टा और काठियावाडी पालीताना के अश्व-पालन गृह प्रमुख हैं इनमे से कुछ निरन्तर घुडदौड के लिये घोडे पैदा करते हैं

देश मे लगभग 36 अश्व फार्म हैं जो मैसूर, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, पजाब और उत्तर प्रदेश मे हैं कुछ प्रसिद्ध अश्व फार्मों के नाम हैं मैसर्स पूना स्टड फार्म प्राइवेट लिमिटेड, पूना, यर्वदा स्टड और कृषि फार्म, पूना, महाराष्ट्र स्टड और कृषि फार्म, पूना, मजरी स्टड फार्म प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, दोआवा स्टड और कृषि फार्म, पिसावा, अलीगढ, भोपाल स्टड और कृषि फार्म प्राइवेट लिमिटेड, भोपाल, सीवानिया स्टड फार्म, भोपाल, कोल्हापुर स्टड फार्म, कोल्हापुर और कुतब स्टड कृषि फार्म, नई दिल्ली इन अश्व फार्मों से मुख्यतया दौड के लिये घोडे तैयार किये जाते हैं देश मे घोडा-प्रजनन का सबसे पुराना केन्द्र भोपाल है और इसने घुडदौड बाजार को सबसे बडा योगदान दिया है

इस समय भारत सरकार का अश्व-प्रदायक और पशु चिकित्सा निदेशालय, रक्षा मत्रालय का एकमात्र सगठन है जो भारत मे सर्वोत्तम प्रजनन कार्य कर रहा है राज्यो के निजी प्रजनन केन्द्रो तथा अश्व फार्मों के माध्यम से यह निदेशालय रक्षा आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये उपयुक्त प्रकार के घोडे तैयार करता है इस निदेशालय ने खच्चर प्रजनन कार्य भी अपने हाथ ले रखा है यह निदेशालय आयात किये गये शुद्ध रक्त के घोडो की सहायता से स्थानीय नस्लो मे सुधार करता है इस कार्य के लिये आधार भूत पशुओ का आयात यू के, फ्रास, इटली, पोलैंड, यूगोस्लाविया, अर्जेन्टाइना और ऑस्ट्रेलिया से किया जाता है

पिछले कुछ वर्षों से विभिन्न प्रान्तो मे पशु चिकित्सा विभागो ने घोडा तथा खच्चर प्रजनन मे रुचि लेनी प्रारम्भ की है सरकारी पशुधन फार्म, हिसार (हरियाणा), हिंगोली स्टड (महाराष्ट्र), खच्चर प्रजनन केन्द्र, पशुलोक, ऋषिकेश (देहरादून), पहाडी टट्टू और खच्चर प्रजनन फार्म, जीओरी (हिमाचल प्रदेश) मे कार्य चल रहा है

आजकल घोडो के सुधार मे जो अन्य एजेन्सियाँ देश के विभिन्न भागो मे कार्यरत है वे टर्फ क्लब और राष्ट्रीय घोडा प्रजनन समितियाँ तथा भारत की प्रदर्शनी समितियाँ हैं

देशी नस्लो के सुधार का उद्देश्य नस्ल की सहनशक्ति बढाना है ग्रामीण जनता परिवहन के लिये मुख्य रूप से पशुओ पर निर्भर है, अत ऐसी भारतीय नस्ल को विकसित करने की आवश्यकता है जो सभी कार्यों के लिये उपयुक्त हो

हिमाचल प्रदेश के पशु-पालन विभाग ने तीसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत किन्नोर के सीमावर्ती जिले मे घोडो तथा खच्चरो के प्रजनन की एक योजना सम्मिलित की थी इस योजना का आधार स्टाक **कोनेमारा स्पिती** और **चुम्मारती** घोडा नस्लो तथा गधा नस्लो का था

प्रजनन के लिये घोडो की अधिक उपयुक्त नस्ल वह है जो सब प्रकार के दोषो से मुक्त हो और असली प्रकार की हो यह आवश्यक नही कि उत्तम प्रजनक घोडी सवारी के लिये उत्तम सिद्ध हो, साथ ही प्राय अच्छी शिकारी घोडी मे वे गुण वर्तमान नही हो सकते जो अच्छी प्रजनक घोडी मे पाये जाते हैं नस्ल की अनवरत उत्तमता तथा उसके उच्च मानक को बनाये रखने के लिये उत्तम सतति रखना सर्वाधिक अपेक्षित है प्रजनन उद्देश्य के लिये सर्वोत्तम वश का मध्यम घोडा भाग्य से उत्पन्न सर्वोत्तम घोडे से अधिक उपयोगी होता है

घोडो मे प्रजनन वर्ष की विशेष ऋतु तक सीमित रहता है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान मे परिवेश और जलवायु की दशाओ के अनुसार परिवर्तित होती रहती है प्रजनन कार्य मई–अगस्त मे कराया जाता है जब पशु मद मे आते हैं यह मदकाल औसतन दस दिन तक रहता है एक नर, अपनी आयु के अनुसार 30–40 मादाओ के साथ सगम कर सकता है जो पशु जून–जुलाई मे मैथुन करते है उनमे गर्भधारण दर उत्तम बतायी जाती है मिलन के लिये सही समय ज्ञात करने तथा मादाओ को मद मे लाने के लिये सैनिक अश्व गृहो मे टट्टुओ का उपयोग किया जाता है घोडियो की औसत गर्भावधि 335 दिन की होती है जब मादाये एक मास के भीतर ही जनने वाली हो उन्हे विशेष प्रकार के बच्चा देने वाले कमरो (ठौर) मे ले जाया जाता है बच्चा देने के 5–13 दिन बाद मादाये पुन मद मे आती हैं 6 माह की आयु तक धीरे-धीरे दूध छुडा देना चाहिये

रोग

घोडे अन्त तथा बाह्य दोनो ही प्रकार के परजीवियो के शिकार होते हैं फ्लूक, फीता कृमि तथा गोल कृमि अन्त परजीवी हैं और मक्खियाँ, जू, टिक (चीचडी) और माइट बाह्य परजीवी हैं

घोडे के समस्त रोगो मे घोडो का दक्षिणी अफ्रीकी रोग अधिक भयकर होता है ये निस्यदनीय विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है अप्रैल 1960 मे जयपुर (राजस्थान) मे घोडो मे यह महामारी प्रथम बार फैली शीघ्र ही यह रोग देश के अन्य क्षेत्रो मे फैला और इसके फलस्वरूप अश्व-धन की बडी क्षति हुयी 17,800 घोडे रोगग्रस्त हुये जिनमे से 16,162 मर गये 1960 मे महाराष्ट्र और 1961 मे मध्य प्रदेश, रोग की सर्वाधिक चपेट मे रहा मैसूर, राजस्थान, जम्मू और कश्मीर, आन्ध्र प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश मे घोडे बडी सख्या मे मरे

रोग को निम्न लक्षणो से पहचाना जाता है ज्वर रहना, अवत्वक ऊतको का शोफ, नेत्र श्लेष्मला, कुछ उदरीय भागो मे रक्तस्राव और शरीर गुहाओ मे सीरम का एकत्र होना फेफडो पर अधिक शोफ हो जाता है तथा वक्षगुहा में सीरम एकत्र हो जाता है दक्षिणी अफ्रीका मे इस रोग का मौसम होता है, यह अधिकतर गर्मी के महीनो मे तथा बरसात के मौसम मे तभी फैलता है जब इसके रोगवाहक, विशेष रूप से कुलिसिड मच्छर, बहुतायत से पाये जाते हैं भारत मे इसका हृदयी रूप ही देखने मे आता है इसके लक्षण हैं ज्वर हो जाना तथा अवत्वक् शोफ, ऊतक शोफ तथा अधिनेत्रगुहा के ऊपर पलको पर सूजन आ जाना, कभी-कभी ओठो तथा कपोलो पर भी शोफ हो जाता है इसमे उग्र नेत्रश्लेष्मला शोफ हो जाता है तथा आसू बहने लगते हैं रोगग्रस्त जानवरो के पेट मे दर्द होता है जो उसके जल्दी-जल्दी लेटने तथा उठने से पहचाना जा सकता है अत्यन्त कठिनायी से कष्ट पूर्वक साँस लेने के कारण जानवर की मृत्यु हो जाती है

नियत्रण के लिये रोगग्रस्त घोडो का विलगन या वध कर देना चाहिये साथ ही स्वास्थ्यकर अवस्था मे शवो को नष्ट कर देना चाहिये, रोगवाहक कीटाणुओ को नष्ट करने के लिये पशुओ के

शरीर पर और पशुओं के आवासों में डी डी टी का छिडकाव करना चाहिये रोगग्रस्त पशुओं का घूमना बन्द कर देना चाहिये रोकथाम के लिये घोडो को टीका लगाना अच्छा रहता है भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान, इज्जतनगर में उत्पादित बहुयोजी वैक्सीन लगाने से घोडो को इस रोग से 6 वर्ष की अवधि के लिये असक्राम्यता प्राप्त हो जाती है किन्तु पशुओं को यह रोग न लगे इसलिये उन्हे यह टीका प्रतिवर्ष लगवा देना चाहिये

आर्थिक महत्व – घोडा प्रजनन किसी भी प्रजनक के लिये कभी भी लाभदायक उद्योग नही रहा। ऐसी परिस्थितियो मे इस उद्योग का सवर्धन एव विकास अकेले सरकार ही कर सकती है जिन देशो मे घोडा प्रजनन मे उन्नति दिखायी पडती है वहाँ उस राज्य की सरकार ने उद्योग को बढाने मे पर्याप्त धन व्यय किया है उत्तर मे दुर्गम पहाडी इलाको मे पहुँचने तथा मैदानो के सुदूर पिछडे स्थानो मे सुरक्षा तथा कम खर्चीले यातायात के साधन के रूप मे घोडो की इतनी अधिक आवश्यकता है कि घोडो का नियोजित वैज्ञानिक प्रजनन अवश्यम्भावी बन गया है

घोडा प्रजनन का उद्देश्य घुडदौड, घोडा-गाडी, सवारी करने वाले घोडे तथा सैनिक घोडो की अच्छी किस्मे तैयार करना है जिससे देश इन मदो मे आत्मनिर्भर हो सके घुडदौड ससार मे माना हुआ खेल है, और इससे घोडा प्रजनन उद्योग को अनेक प्रकार मे सहायता मिलती है इससे अच्छे गुणो वाले घोडो के लिये उत्तम बाजार भी तैयार होता है तथा प्रजनको को नस्लो के सुधारने का प्रोत्साहन भी मिलता है

घोडी के दूध मे वसा अश कम होने के कारण यह मानव दूध के लगभग समान है इसे यदा-कदा ताजा परन्तु सामान्यतया किण्वित दशा मे ही प्रयोग किया जाता है किण्वित उत्पाद कुमिस से दही नही बनता, यह चिकना होता है, स्वाद अम्ल जैसा और गन्ध अम्ल तथा ऐल्कोहल जैसी होती है कहा जाता है कि कुमिस उत्तम पाचक है तथा इसका उपयोग फुफ्फुसी यक्ष्मा और चिरकारी जठरशोथ के उपचार मे किया जाता है जठर और ग्रहणी व्रणो, पेचिश और टाइफाइड आदि में भी इसका उपयोग किया जाता है भारत मे घोडो से प्रतिअलर्क टीका तैयार किया जाता है

अनुसधान और विकास

यान्त्रिक परिवहन के सूत्रपात से घोडो का महत्व घटा है लेकिन उत्तरी सीमाओ पर सैनिको तथा सामान को लाने-लेजाने तथा पहाडी इलाको के सुधार के लिये घोडो की माँग बढी है जिससे घोडो तथा खच्चरो के विकास-कार्यक्रम की आवश्यकता बढ गयी है क्योकि पहाडी इलाको मे परिवहन के एकमात्र साधन ये ही पशु है देश मे पहली दो पचवर्षीय योजनाओ मे घोडा प्रजनन पर कोई ध्यान नही दिया गया था तीसरी पचवर्षीय योजना मे पहाडी क्षेत्रो मे एक प्रजनन फार्म और दस अश्व फार्म केन्द्रो की व्यवस्था करने का आयोजन था चौथी पचवर्षीय योजना काल मे ऐसे ही पाँच फार्मो को व्यवस्थापित करने का प्रस्ताव है जिनमे से हिमाचल प्रदेश, पजाब, जम्मू और कश्मीर, उत्तर प्रदेश तथा पूर्वी क्षेत्र मे प्रत्येक मे एक-एक फार्म होगा प्रत्येक फार्म का सबध अनेको अश्वशालाओ से होगा और प्रजनको को गाभिन कराने की सुविधाये नि शुल्क प्रदान की जायेगी

गधे तथा खच्चर

गधे तथा खच्चर, घोडो से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है परन्तु एक या दो छोटे-छोटे अन्तर है – जैसे, इनकी पिछली टाँगे रच-भर भी लालाभ-भूरे रग की नही होती जैसा कि घोडो मे पिछली टाँगो पर खुरो के नीचे पाया जाता है, तथा आवाज श्वाँसरोधक रेकने की होती है गधो का गर्भकाल लगभग 12 माह का होता है जो घोडो से एक माह अधिक है खच्चर वन्ध्य होते है

गधे और खच्चर (गण–पैरिसोडैक्टाइला, कुल–इक्विडी) उत्तम भारवाही पशु है ये भारत, मिस्र, सूडान, सोमालीलैंड, फारस और चीन के पहाडी भागो मे भारी बोझा ढोने के काम मे लाये जाते है इनके आकार और प्रकार में बहुत अतर पाया जाता है सामान्यतया सेना मे गधो का उपयोग लद्दू जानवरो के रूप में नही किया जाता नर गधो का इस्तेमाल सामान्यतया खच्चर प्रजनन के लिये किया जाता है

गधे

गधे कई प्रकार से जगली गधो से भिन्न है भारतीय जगली गधा **एकुअस हेमिनस खुर लेसन** जेबरा-जैसा सुन्दर पशु है जो गुजरात राज्य में कच्छ के रन तथा लद्दाख तक ही सीमित पाया जाता है इसकी स्कन्ध तक ऊँचाई 9 से 12 मुट्ठी (0 93–1 21 मी) होती है, लेकिन पालतू गधे की ऊँचाई औसतन केवल 9 25 मुट्ठी (0 92 मी) होती है जगली गधे का रग पीठ से पूछ की जड तक चमकीला पीला होता है स्कन्ध, पीठ तथा बगलो से पुट्ठो तक का रग बादामी होता है कान छोटे, जेबरा के समान होते है इसके विपरीत पालतू गधे का रग काला-धूसर या मैला-भूरा और कान लम्बे होते है पालतू गधे की तुलना मे जगली गधे का स्वर कर्कश होता है

भारत मे दो प्रकार के गधे सामान्य है छोटा धूसर और बडा सफेद पहले का रग गहरा धूसर होता है तथा इसमे जेबरा के समान धारियाँ पायी जाती है यह भारत के अधिकाश भागो मे पाया जाता है दूसरे का रग हल्के धूसर से लगभग सफेद तक होता है और यह कच्छ मे पाया जाता है छोटे धूसर गधे की औसत ऊँचाई 0 81 मी तथा बडे सफेद गधे की 0 93 मी होती है

जगली गधे न तो कभी पालतू गधी के साथ अन्त प्रजनन करते है, न ही उनसे या किसी अन्य पालतू जानवरो के बीच मिलते-जुलते है पालतू गधे वर्ष के किसी भी समय मैथुन करते है लेकिन जगली गधे एक विशेष ऋतु (अगस्त-अक्टूबर) मे ही मैथुन करते है 11 मास की गर्भावधि के बाद बच्चे अगले वर्ष जुलाई–सितम्बर मे पैदा होते है

राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पजाब, गुजरात और तमिलनाडु मे गधो की काफी बडी सख्या मिलती है भारत मे गधो का राज्यवार

सारणी 76 – भारत में 1966 में गधो का वितरण*
(हजारो मे)

राज्य	सख्या	राज्य	सख्या
असम	1 897	पंजाव	66 392
आन्ध्र प्रदेश	67 450	पश्चिमी वगाल	1 306
उडीसा	14 095	पाण्डिचेरी	0 177
उत्तर प्रदेश	196 745	विहार	32 810
केरल	0 310	मध्य प्रदेश	54 659
गुजरात	111 785	महाराष्ट्र	65 891
चण्डीगढ	0 156	मैसूर	48 657
जम्मू और कश्मीर	13 612	राजस्थान	199 673
तमिलनाडु	100 690	हरियाणा	69 625
दिल्ली	3 795	हिमाचल प्रदेश	4 625
योग		1054 350	

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Agriculture, Govt of India, 1972

सारणी 77–भारत में 1966 में खच्चरो की सख्या का वितरण*

राज्य	सख्या	राज्य	संख्या
असम	661	नागालैंड	10,157
आन्ध्र प्रदेश	705	पजाव	4,507
उडीसा	1,100	पश्चिमी वगाल	595
उत्तर प्रदेश	27,365	विहार	1 519
केरल	8	मणिपुर	2
गुजरात	703	मध्य प्रदेश	2,202
चण्डीगढ	27	महाराष्ट्र	1,316
जम्मू और कश्मीर	6,899	मैसूर	643
तमिलनाडु	745	राजस्थान	886
दादरा और नगर हवेली	50	हरियाणा	6,921
दिल्ली	1,276	हिमाचल प्रदेश	6,488
योग		74,775	

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Agriculture, Govt of India, 1972

वितरण सारणी 76 मे दिया गया है 1966 के आँकडो से पता चलता है कि 1961 की अपेक्षा उनकी सख्या मे 3 8% की कमी हुयी

गधे मूलत लद्दू पशु है और ये पहाडो तथा मैदानो मे दूर-दूर तक भारी वोझा ढोने के लिये काम मे लाये जाते है ये परिवहन के सस्ते और सर्वसुलभ साधन है, जिन्हे कामगर, धोवी, मकान वनाने वाले, कुम्हार, कसेरे आदि पसन्द करते है

आहार और प्रवन्ध

गधो पर अपेक्षाकृत कम ध्यान देने की तथा थोडे ही राशन की आवश्यकता होती है ये घटिया चारे पर अच्छी तरह पल जाते है और वर्षा, ठड मे अनावरित रह सकते है इस पशु के लिये मोटे तौर पर चारे की दैनिक आवश्यकता इस प्रकार है दाना, 1 36–2 27 किग्रा , चारा, 9 00–12 00 किग्रा और भूसा, 4 54 किग्रा

ये पशु आमतौर से समूह मे यात्रा करते है और विशेष सहिष्णु तथा उपयोगी भारवाही पशु है इनकी चाल लगभग 3 किमी प्रति घण्टा है तथा ये दिन-भर में 24 किमी या इससे अधिक रास्ता तै कर लेते है सामान्यतया बच्चो को काम के लिये प्रयुक्त नही किया जाता केवल वयस्क गधे अपने आकार तथा नस्ल के अनुसार 22 से 68 किग्रा तक वोझा ले जाते है

प्रजनन

भारत मे सुसगठित रूप से गधा-प्रजनन कार्य नही हुआ है जहाँ तक सभव हो, नर तथा मादाओ को अलग-अलग रखना चाहिये घटिया सन्तति जनने से रोकने के लिये अस्वस्थ गधो को वधिया करने की सलाह दी जाती है फिर भी कतिपय मानक नस्लो के नर गधे इटली, स्पेन और फ्रास से मुख्यतया खच्चर-प्रजनन के लिये मँगाये जाते है

विगत अनेक वर्षो से भारत सरकार मैदानी गधो की नस्लो को सुधारने के लिये तथा अच्छे गुणो वाले खच्चरो के पालने के लिये कठिन प्रयास करती आरही है प्रजनन कार्य के लिये नर गधो की पूर्ति की जाती है और अच्छे खच्चरो के लिये पुरस्कार दिये जाते है

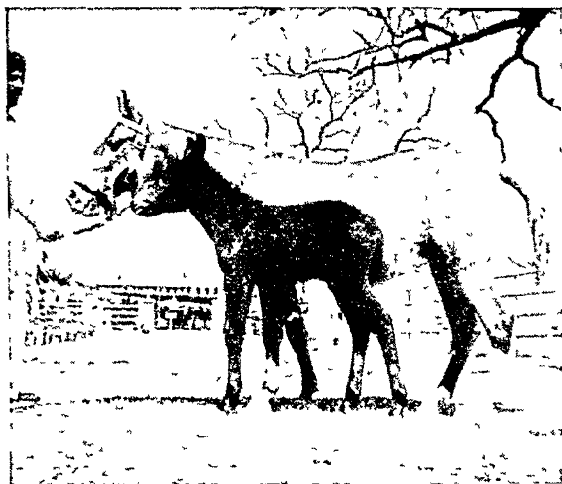
खच्चर

खच्चर, घोडी तथा गधे के सकरण से उत्पन्न होते है इनमे आकार, रफ्तार, ओज, शक्ति तो मादा के अनुसार तथा स्वरूप, प्रवृत्ति, सहिष्णुता, धैर्य, सहनशीलता, दीर्घजीविता, कठोरता और न फिसलने के गुण नर के अनुसार होते है इनकी ऊँचाई 12 से 15 मुट्ठी (1 32–1 65 मी) होती है चार वर्ष की आयु मे ये परिवहन के लिये तथा पाच वर्ष मे कठिन कार्य के लिये तैयार हो जाते है

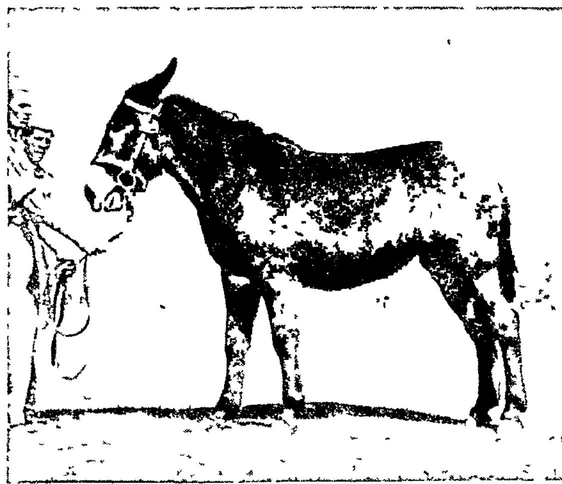
सेना मे दो प्रकार के खच्चर सामान्य उपयोग मे आते है, इनके नाम है सामान्य सेवा और पर्वतीय तोपखाने के लद्दू खच्चर सामान्य सेवा के खच्चर के लिये सैनिक विनिर्देश इस प्रकार है आयु, 4–18 वर्ष, ऊँचाई, 13–14 2 मुट्ठी (1 32–1 47 मी), भार, 225–300 किग्रा , और वक्ष परिधि, 1 47 मी से कम नही पर्वतीय तोपखाने के लद्दू खच्चर के लिये सेना विनिर्देश इस प्रकार है आयु, 4–18 वर्ष, ऊँचाई, 14–14 3 मुट्ठी (1 42–1 50 मी), पिण्डली न्यूनतम, 17 8 मिमी , वक्ष परिधि, 1 63 मी या अधिक, तथा भार, लगभग 350 किग्रा

काठी को छोडकर ले जाने वाले वोझे का भार प्रथम तथा द्वितीय प्रकार के खच्चरो मे क्रमश 73 तथा 145 किग्रा है वडे भारी य। द्वितीय प्रकार के खच्चर तोपो के ढोने के लिये आवश्यक है पीठ की आकृति स्कध प्रदेश से पुट्ठे तक सीधी होनी चाहिये पीठ उभरी हुयी, पेशियो से भरी हुयी चौडी तथा शीर्ष पर समतल और छोटी, पर वोझा की काठी रखने के लिये पर्याप्त लम्बी होनी चाहिये

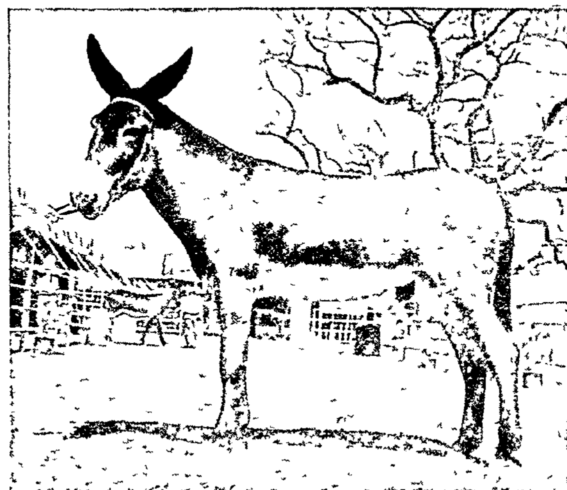
भारत मे खच्चरो की सख्या मे लगातार वृद्धि होती रही है, 1966 की गणना से पता चलता है कि 1961 की सख्या से



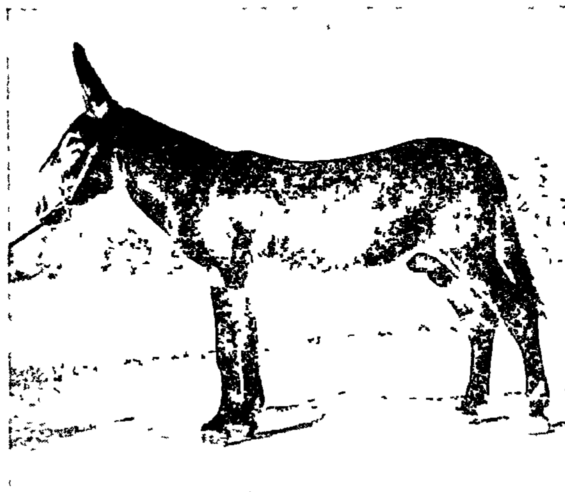
सामान्य सेवा के लिये भारतीय खच्चर प्रजनक घोडी बच्चे के साथ



पर्वतीय तोपखाने का शिशु-खच्चर



भारतीय गधा साँड़



अमेरिकी गधा साँड

गधे और खच्चर

41% की वृद्धि हुयी भारत मे खच्चरो का राज्यवार वितरण सारणी 77 मे दिया गया है उत्तर प्रदेश, पजाव, जम्मू और कश्मीर, हरियाणा, नागालैंड तथा हिमाचल प्रदेश मे खच्चरो की सख्या काफी है जबकि अन्य प्रान्तो मे इनकी सख्या नगण्य है

आहार और प्रवन्ध

घोडो की ही तरह खच्चरो को भी खिलाया जाता है आहार की आवश्यक मात्रा जानवर के आकार पर निर्भर करती है, परन्तु ये घोडो की अपेक्षा कम आहार पर रह सकते है और ये चारे की गुणता की विल्कुल परवाह नही करते भारत मे खच्चरो के दैनिक आहार की मात्रा इस प्रकार है (किग्रा मे) सूखा चारा या सूखी रिजका घास या भूसा, 5 4–9 0, दला हुआ चना, 1 1, दला हुआ धान या जौ, 1 4–2 5, चोकर, 0 9, और नमक, 14–28 (ग्रा) तोप ढोने वाले, सिगनल सेवा मे लगे तथा हल्का वोझा ढोने वाले खच्चरो को अधिक सूखी घास की आवश्यकता होती है, जवकि सैनिक परिवहन, लद्दू और भारवाही खच्चरो को अधिक दले धान या जौ की आवश्यकता होती हे प्रजननकारी पशुओ को नियमित अन्तराल से पर्याप्त आहार देना चाहिये

खच्चरो के जत्थे वनाकर ऐसे स्थानो पर चरने के लिये प्रशिक्षित किया जा सकता है जहाँ चरने की सुविधाये उपलब्ध हो ये ज्यादा पानी नही पीते और सामान्य रूप से प्यास सहन कर लेते है

पैदल यात्रा के समय खच्चर या तो पीछे-पीछे चलते है या उन्हे हाँका जाता है इनकी चाल प्रति घण्टा 5–6 5 किमी होती है और ये एक दिन मे 32–40 किमी की दूरी तै कर सकते है प्रशिक्षित करने पर ये तग सडको तथा ऊँची पहाडियो पर सुरक्षापूर्वक भारी वोझा ले जाते है

खच्चर अच्छे तैराक होते है काफी गहरी धारा को हिल-हिल कर पार कर जाते है खच्चरो के खुर अधिक न घिसे इसलिये घोडो की तरह उनमे भी नाल लगा देने चाहिये एडी की ओर पॉवो के वढने की आशका रहती है अत उचित अनुपात मे रखने के लिये उन्हे काटते रहना चाहिये. खच्चरो को सदैव जजीर मे वॉधना चाहिये क्योकि वे रस्सो को चवाकर नष्ट कर देते है

प्रजनन

उत्तम प्रकार के खच्चर का प्रजनन नर और मादा के सतर्क चयन पर निर्भर है मानक नस्लो के गधे तथा घोडी का सकर प्रजनन कराने पर पुष्ट खच्चर पैदा होते है

भारत सरकार के रक्षा मत्रालय के **रिमाउण्ट तथा वेटेरिनरी सर्विस निदेशालय** ने खच्चर प्रजनन पर काफी ध्यान दिया है तथा सामान्य कार्यो के लिये और पहाडो पर सैनिक सामान ढोने के लिये खच्चरो की उपयुक्त नस्ले विकसित की गयी है विदेशी खून का समावेश सहायक सिद्ध हुआ हे इस निदेशालय के अधीनस्थ इक्वाइन प्रजनन स्टड फार्मो ने उत्तम प्रजनन कार्य किया है इस समय दो सैनिक स्टड फार्म है, जिनमे से एक सहारनपुर मे तथा दूसरा वावूगढ (उत्तर प्रदेश) मे है, लेकिन ये अभी तक सेना की खच्चरो की आवश्यकता पूरी करने मे असमर्थ रहे है

भारत सरकार ने भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् तथा राज्यो के पशु-पालन विभाग की सहायता से चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत मे खच्चर प्रजनन के लिये व्यवस्था की है देश मे पाच अन्य इक्वाइन प्रजनन स्टड फार्म, जिनमे एक-एक हिमाचल प्रदेश, पजाव, जम्मू और कश्मीर, उत्तर प्रदेश तथा पूर्वी इलाके मे प्रस्थापित किये जाने की सभावना है इस योजना के अन्तर्गत गधा प्रजनन फार्म भी खोला जायेगा प्रत्येक फार्म, प्रजनको को नि शुल्क नरो की सुविधा प्रदान करेगा

ऊँट

ऊँट विशालकाय एव सहिष्णु पशु है इसकी गर्दन और टाँगे लम्बी होती है और पीठ पर वडा कूवड होता है ऊँट शुष्क क्षेत्रो मे रहने के अभ्यस्त होते है, सूखा सह सकते है तथा विना पानी के कई दिनो तक रह सकते है ये ऐसे मोटे चारे भी खा लेते है जो अन्य शाकाहारी जानवरो के लिये उपयुक्त नही होते ऊँटो का उपयोग अनेक प्रकार के कार्यो के लिये किया जाता है तथा कृपि, कर्पण और सूखे इलाके मे परिवहन के लिये ये आर्थिक रूप से अत्यन्त अपरिहार्य होते है ऊँट पशुधन का महत्वपूर्ण अग है और गोपशु तथा भैसो के वाद ही ये द्विकाजी पशु माने जाते है (देखे, भारत की सम्पदा, खण्ड 1, पृष्ठ 126–28)

ऊँट, गण—**आर्टियोडैक्टाइला**, कुल—**कैमेलिडी** तथा वश—**कैमेलस** लिनिअस के सदस्य है ये दो प्रकार के होते है अरवी या एक कूवड वाले ऊँट (**कैमेलस ड्रोमेडैरियस** लिनिअस) और वैक्ट्रियायी या दो कूवड वाले तुर्किस्तानी ऊँट (**कै बैक्ट्रिएनस** लिनिअस) अरवी तथा वैक्ट्रियायी इन दोनो मे से कोई भी ऊँट अव जगली अवस्था मे नही पाया जाता है यद्यपि कुछ अर्धजगली झुड है जिन्हे पकडा नही जा सका आजकल भारत मे एक कूवड वाले ऊँट की एकमात्र जाति **कै ड्रोमेडेरियस** ही पायी जाती है यह महाराप्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पजाव, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश आदि मे पायी जाती है

1966 की गणना के अनुसार विश्व-भर मे ऊँटो की सख्या लगभग 46 लाख थी जिसमे से भारत मे 10 लाख, सूडान तथा सोमाली लैण्ड मे, प्रत्येक मे 5 लाख तथा पाकिस्तान मे 3 5 लाख ऊँट थे शेप मध्य एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका के अन्य भागो मे फैले हुये है ऊँट-पालन मे भारत प्रमुख देशो मे से एक है राजस्थान, हरियाणा और पजाव मे ऊँट काफी सख्या मे पाये जाते है उत्तर प्रदेश तथा गुजरात मे भी अपेक्षाकृत अधिक सख्या मे ऊँट पाये जाते है और वे विभिन्न कामो मे लगे हुये है 1966 की गणना के अनुसार भारत मे ऊँटो की कुल सख्या मे 13 8% की वृद्धि हुयी हे भारत मे 1966 मे ऊँटो का राज्यवार वितरण सारणी 78 मे दिया गया है

भारत मे ऊँटो की अत्यधिक सघनता राजस्थान मे गगानगर जिले मे है जहाँ इन्हे अधिकाशत कृपि कार्यो के लिये पाला जाता है इसके वाद चूरू तथा झुनझुनू जिलो के नाम लिये जा सकते है जैसलमेर और वाडमेर जिले (राजस्थान), हिसार (हरियाणा) और फिरोजपुर जिले (पजाव) मे ऊँटो की काफी

सख्या पायी जाती है उत्तर प्रदेश के मेरठ तथा आगरा जिले और महाराष्ट्र के उत्तरी भागो मे भी अच्छी सख्या मे ऊँट पाये जाते हैं कच्छ (गुजरात) मे विशाल सख्या मे ऊँट मिलते हैं सुर्रा रोग के फैलने के कारण 1945 में राजस्थान मे ऊँटो की सख्या कम हो गयी थी

भारत मे दो प्रकार के ऊँट पाये जाते हैं यह वर्गीकरण उनके काम के आधार पर लद्दू ऊँट तथा सवारी ऊँट मे किया जाता है

बोझा ढोने वाले या लद्दू ऊँट बडे तथा बलिष्ठ होते हैं और मैदानी तथा पहाडी भागो मे समान रूप से काम करने के अभ्यस्त होते हैं मैदानी ऊँट रेगिस्तानी या तटवर्ती (साहिली) किस्म के होते हैं पहाडी किस्में गठीली होती हैं और इनकी टाँगे छोटी होती हैं और मैदानी ऊँटो की अपेक्षा इनकी पेशी का विकास अधिक होता है ये 300–375 किग्रा तक बोझा लेकर प्रति घण्टा 3 5 किमी की चाल से दिन-भर मे 32 किमी दूरी तै कर लेते हैं ये 3 और 12 वर्ष के बीच सक्रिय रहते हैं

सवारी के ऊँट हल्के होते हैं इनका सिर छोटा, गर्दन पतली, पैर छोटे, छाती चौडी तथा पेशियाँ अच्छी तरह विकसित होती हैं उत्तम सवारी के ऊँट बिना रुके 96–113 किमी चले जाते हैं ये 10–11 किमी प्रति घण्टा की औसत चाल से कुछ दिनों तक प्रतिदिन 40 किमी यात्रा कर सकते हैं रेगिस्तानी ऊँट तीन प्रकार के होते हैं बीकानेरी, जैसलमेरी और सिंधी

भारत मे पाये जाने वाले ऊँट की सबसे प्रमुख नस्ल बीकानेरी है, यह देश मे अत्यन्त व्यापक है लगभग 50% ऊँट इसी नस्ल के हैं, 25% मे बीकानेरी खून होता है और बाकी अन्य प्रकार के ऊँट हैं

बीकानेरी ऊँट अधिकतर बीकानेर कमिश्नरी के शुष्क रेतीले भागो मे, मुख्यत पश्चिमी और दक्षिणी इलाको मे पाये जाते हैं जहाँ वर्षा बहुत ही कम तथा मौसमी होती है तथा वनस्पति के नाम पर छोटी-छोटी झाडियाँ पायी जाती हैं इसका भार मैदानी ऊँट की अपेक्षा कम होता है और इसकी ऊँचाई 1 9–2 13 मी होती है

भारी ऊँटो का उपयोग बोझा ढोने तथा हल्के ऊँटो का उपयोग सवारी के लिये किया जाता है ऊँट का उपयोग खेती के कामों मे भी किया जाता है क्योंकि लगातार कठिन काम के लिये यह अधिक उपयुक्त है इसमे अत्यधिक सहनशीलता पायी जाती है अच्छा सवारी ऊँट प्रतिदिन 56 किमी की चाल से 130–160 किमी की दूरी तै कर सकता है और 224–261 किग्रा तक बोझा ले जा सकता है

इससे सम्बद्ध नस्ल **झिपरा** की है, जिसका आकार छोटा होता है तथा देह की गठन अच्छी होती है यह राजस्थान मे बीकानेर कमिश्नरी में पाया जाता है

जैसलमेरी ऊँट राजस्थान के जोधपुर कमिश्नरी के जैसलमेर जिले मे पाया जाता है इसकी देह बीकानेरी ऊँट की अपेक्षा हल्की होती है तथा अग अधिक सुस्पष्ट होते हैं इसकी ऊँचाई 1 88–2 00 मी होती है इसका उपयोग मुख्यतया सवारी करने तथा हल्का बोझा ढोने मे किया जाता है बिना चारा तथा पानी के यह लम्बी दूरी (16 किमी प्रति घण्टा की चाल से एक रात मे 193 किमी) चल सकता है. इसमे बीकानेरी ऊँट के बराबर या उससे अधिक सहन करने की क्षमता होती है

सिन्धी ऊँट पाकिस्तान तथा सिंध प्रान्त के थारपारकर जिले से सलग्न राजस्थान की जोधपुर कमिश्नरी की सीमाओ पर अधिकतर पाया जाता है यह शरीर मे छोटा होता है और गर्दन कम झुकी हुयी तथा छोटी होती है इसकी दो नस्लें पायी जाती हैं माहरी या सवारी का ऊँट और लद्दू या बोझा ढोने वाला ऊँट माहरी बहुत कुछ जैसलमेरी जैसा होता है जबकि लद्दू तटवर्ती या साहिली नस्ल जैसा होता है राजस्थान मे जो अन्य महत्वपूर्ण नस्लें काफी सख्या मे मिलती हैं, उनके नाम हैं **मारवाडी, जालौरी, मेवाडी, शेखावाटी या बागरी, मेवाती और कच्छी**

मारवाडी ऊँट जैसलमेर और जालोर जिले तथा पाकिस्तान की ओर बाडमेर जिले की सीमा को छोडकर समस्त जोधपुर कमिश्नरी मे पाया जाता है इसके शरीर की बनावट काफी भारी होती है और शरीर के अग लम्बे तथा सपिंड होते हैं इनकी ऊँचाई 1 91–2 18 मी होती है यह तीन-चार दिनो तक 12 घण्टे मे 80 किमी की दूरी तै कर सकता है मारवाडी ऊँट खेती तथा परिवहन दोनो मे काम आते हैं तथा कभी-कभी इन पर सवारी भी की जाती है **जालौरी** ऊँट, जो मारवाडी तथा जैसलमेरी दोनो का मिश्रण है, लूनी नदी के दक्षिण मे पाये जाते हैं इनका आकार मारवाडी ऊँटो की अपेक्षा छोटा होता है तथा टाँगे कम लम्बी होती हैं इनका उपयोग कर्षण तथा सवारी दोनो के लिये किया जाता है

मेवाडी (भिण्डा) ऊँट राजस्थान के समस्त उदयपुर और कोटा कमिश्नरियो मे पाया जाता है यह गठीला पशु है जो डील मे अपेक्षाकृत छोटा और 1 8 मी ऊँचा होता है इसका उपयोग लद्दू जानवर के रूप मे अधिकतर किया जाता है

सारणी 78 – भारत में 1966 में ऊँटो का वितरण*

राज्य	सख्या
आन्ध्र प्रदेश	643
उत्तर प्रदेश	49,387
गुजरात	45,670
चण्डीगढ	346
जम्मू और कश्मीर	2,303
तमिलनाडु	109
दिल्ली	2,212
पजाब	1,18,522
बिहार	122
मध्य प्रदेश	19,384
महाराष्ट्र	1,935
मैसूर	986
राजस्थान	6,53,447
हरियाणा	1,32,384
हिमाचल प्रदेश	670
अन्य	52
योग	10,28,172

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Agriculture, Govt of India, 1972

इस नस्ल को सुधारने के लिये इस इलाके के ऊँट प्रजनको ने ऊँटनियो को गर्भित कराने के लिये मेवाडी नस्ल के ऊँटो का स्टड स्थापित किया है मकर नस्ले देखने मे अधिक अच्छी होती हैं और आकार मे भी वडी होती हैं इस क्षेत्र में लगभग 30% ऊँट सुधरी नस्ल के होते है

शेखावाटी या बागरी ऊँट राजस्थान की जयपुर कमिश्नरी मे सीकर तथा झुनझुनू जिलो मे पाये जाते हैं ये पजाब मे भी पाये जाते हैं कुछ स्थानो मे इन्हे राजस्थान से लाया जाता है यह ऊँट शरीर मे बडा किन्तु सहनशक्ति मे बीकानेरी ऊँट से घटिया होता है इसका उपयोग कृषि कार्यो, परिवहन तथा सवारी मे किया जाता है

मेवाती ऊँट राजस्थान मे अलवर और भरतपुर जिलो में पाया जाता है यह मजबूत जानवर है, इसके शरीर की बनावट भारी होती है, इसमे सहन-क्षमता अच्छी होती है, फलत इसका प्रयोग बोझा ढोने, सवारी करने तथा खेत जोतने मे किया जाता है

कच्छी ऊँट कच्छ (गुजरात) मे पाया जाता है यह **मारवाडी** ऊँट मे हल्का होता है

तटवर्ती या साहिली ऊँट उत्तर प्रदेश तथा पजाब के ऐसे जिलो में पाये जाते हैं जहाँ नदियो तथा नहरो से पर्याप्त जलपूर्ति होती है पशुओ की ऊँचाई 1 9–2 1 मी होती है ये भारी बोझा ढोते हैं इनकी चाल मन्द होती है तथा ये 3 किमी प्रति घण्टा की चाल से चलते हैं

प्रवन्ध

ऊँटो का प्रवन्ध, उनकी नस्ल, स्थान तथा उनसे लिये जाने वाले कार्य के अनुसार बदलता रहता है

ऊँटो को उपयुक्त तथा सामान्य सायबानो मे रखना चाहिये, जो एक ओर से खुले हो तथा जहाँ धूप, वर्षा और सूखे से बचाव हो सके जब ऊँटो को सेना के लिये रखा जाता है तो ऊँटो के लिये नियमित आवास बनाना आवश्यक हो जाता है मदकाल के समय ऊँट सामान्यत दुखदायी होते हैं और इसीलिये इस मौसम मे नरो को मादाओ से पृथक् रखना चाहिये जानवरो को लकडी से बनी नाक की खूटी, तथा सन या बकरी और ऊँट के बालो के मिश्रण से बनी नकेल से बाधना चाहिये ऊँटो को रोग मे मुक्त तथा स्वच्छ बनाये रखने के लिये समय-समय पर खरहरा करना तथा सफाई करनी चाहिये इन पर ऐसी जीन कसी होनी चाहिये जो इनकी पीठ तथा कूवड पर घाव उत्पन्न न कर दे जुताई मे प्रयुक्त ऊँटो पर भिन्न प्रकार का जुआँ प्रयुक्त होता है

उन इलाको में जहाँ जाडे मे अत्यधिक ठड पडती है ऊँटो मे मोटी रोमावलि बढ जाती है जिसे वसन्त मे काट देना चाहिये कम्बलो तथा अन्य गरम कपडो को बनाने के लिये बाल उत्तम कच्ची सामग्री है ऊँट के बालो मे बने कम्बल ऊनी कम्बलो की अपेक्षा गरम होते हैं जगली छोटे ऊँटो से उत्तम बाल प्राप्त किये जाते हैं पजाब के ऊँटो के बाल मार्च या अप्रैल मे कतरे जाते हैं, प्रति ऊँट औसतन 0 90–1 35 किग्रा बाल प्राप्त होते हैं, परन्तु ठण्डे देशो मे 5 4 किग्रा तक बाल मिल सकते हैं ऊँट के वछेडो को मानसून आने तक नही कतरा जाता क्योकि बालो से गरम हवा के झोको से बचाव होता है बाल कतरने के बाद, ठण्ड से बचाने के लिये रात मे ऊँट के ऊपर कम्बल डाल देते हैं गरम इलाको मे ऊँटो के लम्बे बाल नही उगते, इसलिये बाल कतरने की आवश्यकता नही होती एक बार बाल कतरने के बाद ऊँट की देह पर **तारामीरा** या सरसो का तेल मल देना चाहिये तेल लगाने के 48 घण्टे बाद ऊँट की देह पर मिट्टी मल देनी चाहिये, इसे तीन दिन तक लगे रहने देना चाहिये इसके बाद यह स्वय ही गिर कर अलग हो जाती है इससे त्वचा परजीवियो के आक्रमण से बचने मे, विशेषतया जब जाडो मे रोमावली काफी सघन हो जाती है, सहायता मिलती है

आहार – काम न रहने पर ऊँट चर कर जीवन यापन करते है किन्तु जब भारी काम लिया जा रहा हो अथवा जब उन्हे खुले में छोडने की सुविधा न हो, तब उसे ठौर पर खिलाना चाहिये चराने या ठौर पर आहार देने की पद्धति स्थान-स्थान पर पशु से लिये जाने वाले कार्य के अनुसार बदलती रहती है गर्मियो मे उसे झाडियो तथा पेडो से आवश्यक भोजन उपलब्ध हो जाता है लेकिन जाडो मे पूरक आहार की आवश्यकता होती है

देश मे खिलाने की दो विधियाँ काम मे लायी जाती हैं बाडा बनाकर चरागाहो मे चराना और ठौर पर आहार कराना (स्टाल फीडिंग) बाडा बनाने का अधिक चलन है, इसे पशु भी पसन्द करते है और इसमे खर्च भी कम होता है परिवहन तथा कृषि कार्यो के लिये पाले गये ऊँट पूर्णतया या अशत ठौर पर आहार करते हैं यदि चराई से काम नही चलता तो ठौर पर खिला कर पूर्ति की जानी चाहिये जो पूरक आहार दिया जाय उसमे या तो हरा अथवा सूखा चारा या चारे के साथ दाना होना चाहिये हरे चारे सामान्यत गर्मियो मे और सूखे चारे सर्दियो मे दिये जाते हैं चारे की निम्नलिखित फसले दी जाती हैं हरी मौठ (**विग्ना-एकोनिटिफोलियस**), मूग (वि **ऑरियस**), ग्वार (**सायमोप्सिस सोरेलिआयडीज**), सैंजी (**मेलिलोटस पार्वीफ्लोरा**), तारामीरा (**एरूका-सटाइवा**), शफताल (**ट्राइफोलियम** जाति) और सरसो (**ब्रासिका कैम्पेस्ट्रिस**), ताजा चना, गेहूँ, जौ, मक्का और घास, वृक्षो की पत्तिया जैसे नीम (**अजैडिरेक्टा इडिका**) और शीशम (**डाल्बर्जिया सीसू**), बबूल की फलियाँ तथा खेतो की घास-पात पूरक चरायी मे काम आते हैं सामान्यतया दिये जाने वाला सूखा चारा या तो पेडो या झाडियो की धूप मे सुखायी गयी पत्तियाँ होती है या सरक्षित चारे की फसले जैसे झरबेरी या पाला (**जिजीफस नुम्मुलेरिया**) या ज्वार (**सोर्घम वल्गेर**) के सूखे डठल गेहूँ, जौ, मोथ, मूग, चना और ग्वार के डठलो तथा बीज चोलो से तैयार भूसे ऊँटो के लिये उत्तम सूखा चारा है और पजाब मे बहुतायत से खिलाये जाते हैं कुट्टी बनायी गयी सूखी घास चारे के रूप मे खिलायी जाती है

जिन ऊँटो से कठिन काम लिया जाता है तथा जिन्हे चरने नही दिया जाता उन्हे ठौर पर खिलाया जाता है इन्हे चारे के अतिरिक्त दाने की भी आवश्यकता होती है मोटे चारे की दृष्टि से मटर का भूसा (मिसा भूसा) उत्तम सूखा चारा है भारत मे कई प्रकार के रातव जिनमे ज्वार, जई, सेम, बिनौला, मक्का तथा चोकर मिले होते है, ऊँटो को दिये जाते है, लेकिन दला हुआ चना उत्तम समझा जाता है जिन ऊँटो को दाना अच्छा नही लगता, उन्हें कई दिनो तक ललचा करके स्वाद उत्पन्न कराया जाता है भारत मे काम करने वाले ऊँटो को प्रतिदिन ठौर पर खिलाये जाने वाले आहार की मात्रा इस प्रकार है (किग्रा मे) ज्वार या दाना, 1 8, गेहूँ का भूसा, 9 0 या सूखा चारा, 13 5 चरने का उत्तम प्रवन्ध होने पर आहार मे प्रतिदिन 1 8 किग्रा दाना और 3 6 किग्रा मोटा चारा रहना चाहिये

प्रजनन

वर्ष के अधिक भाग में ऊँट में मैथुन की इच्छा दबी हुयी रहती है पशु केवल कुछ माह तक ही मद में रहते हैं नर ऊँट 6 वर्ष से कम आयु में लैंगिक रूप से परिपक्व नहीं होते मोटे तौर से मदकाल अन्तिम आधे शरत् मौसम से, दिसम्बर से मार्च तक चलता है और अधिकांशत पशु के आहार तथा कार्य पर निर्भर करता है मौसम में एक साँड ऊँट 30–50 ऊँटनियों से सगम कर लेता है तथा 22 वर्ष तक मैथुन करने योग्य बना रहता है

ऊँटनी 4 वर्ष की आयु में गर्भधारण करने योग्य हो जाती है और 5 वर्ष की आयु में बच्चा जनती है सामान्यतया ऊँटनियाँ 20 वर्ष की आयु तक बच्चा दे सकती है, परन्तु कुछ 30 वर्ष तक बच्चे देती रहती है ऊँटनियों में मद-चक्र सामान्यतया नवम्बर से मार्च तक चलता है इसके लिये जनवरी और फरवरी उत्तम काल है यदि मादा प्रथम समागम के 15–20 दिन पश्चात् तक अपनी पूछ नहीं उठाती तो इसे पुन ऊँट के पास ले जाना चाहिये मादा से एक बच्चा उत्पन्न होता है, गर्भावधि 11–13 माह की होती है तथा माँ बच्चे को एक वर्ष तक दूध पिलाती है भारतीय ऊँटनियों में गर्भपात सामान्य घटना है और यह सामान्यतया चारे की कमी या सुर्रा रोग के कारण होता है लद्दू ऊँटों के प्रजनन के लिये सुन्दर नथुने, उभरी हुई आँखों और छोटे कान तथा ओंठो वाले साँड ऊँट का चयन करना चाहिये साँड ऊँट 6 या 8 वर्ष का तथा विकसित कूबड वाला होना चाहिये सिर छोटा तथा औसत लम्बाई वाली गर्दन पर ठीक से व्यवस्थित होना चाहिये छाती गहरी, किन्तु चौडी नहीं होनी चाहिये तथा वक्ष के घेरे को कधे की ऊँचाई से अधिक होना चाहिये पिछले पैर सुविकसित होने चाहिये

ऊँट प्रजनन में राजस्थान अग्रणी है इस राज्य में 300 या इससे अधिक ऊँटनियों के यूथ मिलते हैं गगानगर जिले के सिचित क्षेत्र को छोडकर सम्पूर्ण बीकानेर कमिश्नरी में ऊँट प्रजनन होता है सामान्यतया एक साँड प्रत्येक 50 ऊँटनियों पर रखा जाता है तथा उत्तम साँड चुनने में सावधानी भी रखी जाती है अच्छे साँड ऊँट का उपयोग करने के लिये कभी-कभी ऐसे दो या तीन ऊँटों के यूथ को मिला देते है इस कमिश्नरी के पश्चिमी भाग मे अधिक प्रजनन होता है

जोधपुर कमिश्नरी का जैसलमेर जिला **बीकानेरी** मिश्रित नस्लों के प्रजनन के लिये प्रसिद्ध है यहाँ पर चरने के लिये तमाम परती जमीन है और ऊँट-पालक अच्छी किस्म के ऊँट तैयार करने मे काफी रुचि लेते हैं जोधपुर, बाडमेर, जालौर और नागौर जिलो मे भी ऊँट प्रजनन किया जाता है अरावली पहाडियो की तलहटी मे स्थित पाली और सिरोही जिलो मे भी कुछ-कुछ प्रजनन कार्य किया जाता है

उदयपुर कमिश्नरी मे पहाडियो पर चरने की सुविधाये उपलब्ध है, जहाँ ऊँटो के यूथ पाले जा सकते हैं लेकिन इस भाग मे उत्तम नस्लें नहीं है अत स्थानीय जातियों को सुधारने के लिये जोधपुर कमिश्नरी से मानक साँड लाये जाते है सूचना है कि उदयपुर तथा चित्तौड़गढ जिले मे सघन प्रजनन चालू है

सीकर, झुनझुनू और अलवर जिलो को छोडकर शेष जयपुर कमिश्नरी मे 50 ऊँटो के यूथ पाले जाते है अनेक स्थानो पर साँड ऊँट भी रखे जाते है, और वे मादाओं को गाभिन करने के काम आते है

राजस्थान राज्य की कोटा कमिश्नरी मे ऊँटो के कुछ यूथ ऐसे है जिन्हे चरने की सर्वोत्तम सुविधा प्राप्त है इस क्षेत्र में एक यूथ मे 300 से भी अधिक ऊँटनियाँ रहती है

ऊँट प्रजनन मे कच्छ (गुजरात) का स्थान राजस्थान के बाद आता है यहाँ चरने के लिये प्रचुर जमीन है जो प्रजनन कार्य के लिये अधिक उपयुक्त है गुजरात राज्य के उत्तरी भाग में साबरकाँठा, बनासकाँठा और मेहसाना जिलो मे प्रजनन कार्य सीमित है

कुछ ऊँट-पालक (रेबाडिये), हरियाणा के रोहतक, करनाल, हिसार और गुडगाँव जिलो तथा राजस्थान की सीमा से मिले हुये पजाब के फिरोजपुर जिले मे ऊँटो के पालने का कार्य करते है लेकिन एक भी पालक के पास 15 से अधिक ऊँट नहीं रहते ठीक यही दशा भटिंडा और महेन्द्रगढ जिलो मे है

उत्तर प्रदेश मे चम्बल तथा यमुना नदी के किनारे-किनारे मेरठ, मथुरा और इटावा जिलो मे जहाँ अच्छे चरागाह है थोडा-बहुत ऊँट-पालन किया जाता है

रोग

गिल्टी रोग (पजाब-शूल) ऊँटो का अतिसामान्य रोग है देश के आर्द्र क्षेत्रो मे लगभग 30% ऊँटो मे यह रोग फैलता है यह रोग **बैसिलस एँथ्रैसिस** द्वारा उत्पन्न होता है तथा इस रोग के आक्रमण के कुछ घण्टे बाद ही मृत्यु हो जाती है सक्रमण, पानी या चारे मे होता है, अत सम्पर्क मे आने वाले अथवा सक्रमित क्षेत्रो मे चरने वाले समस्त ऊँटो को अलग-अलग रखना चाहिये

निमोनिया ऊँटो का सामान्य रोग है जो विशेष रूप से पजाब मे होता है तथा इससे भारी हानि होती है यह प्राय सुर्रा रोग से सम्बन्धित होता है

मोरा सासर्गिक इफ्लुएजा है और सामान्यतया पजाब मे ठण्डे मौसम मे होता है यह तेजी से फैलता है इससे अनेक पशु मरते है इसमे सल्फा ओषधियाँ प्रभावकारी होती है

अलर्क (रैबीज) विशेषतया उत्तर प्रदेश मे ऊँटो मे पाया जाता है राज्य के पशु-चिकित्सा विभाग से रोग के नियत्रण के लिये नि शुल्क उपचार कराया जाता है

ऊँट स्फोट (माता) अधिकाशत एक वर्ष की आयु के ऊँटो मे होता है और लगभग 70% बच्चे इस रोग के शिकार होते है इसके किसी विशिष्ट रोगकारी जीव का पता नहीं चला है ग्रस्त पशु सामान्यत अच्छा हो जाता है रोगनिरोधी टीका इस रोग की दवा है.

झूलिग, ऊँट का सामान्य रोग है जो सामान्यतया ठण्डे मौसम मे तथा कभी-कभी गरमी मे होता है यह रोग तेजी से फैलता है, इसमे चमडी पर रेशेदार गरम और कष्टदायक अर्बुद निकल आते है जो फूटकर पीब उत्पन्न करते है और फिर ताजे निशान पड जाते हैं रोगकारी जीव अज्ञात है किन्तु यह कवकजन्य है यह सम्पूर्ण पजाब तथा कच्छ मे भी फैलता है, परन्तु यह मरुस्थली इलाको मे शायद ही पाया जाता है लगभग 20% ऊँट इस रोग के शिकार होते है पहले सक्रमण से क्षतो पर पारे का लाल आयोडाइड लगाते है तथा तीन दिन बाद पोटैसियम परमैंगनेट के चूर्ण से पुन पट्टी बाँध देते है चार-चार दिन के अन्तर पर ऐसी तीन पट्टियाँ करने से घाव भर जाते है इन क्षतो पर फिनाइल या कार्बोलिक अम्ल का उपयोग भी कारगर होता है

सर्रा या ट्रिपेनोसोमता ऊँटों में होने वाला घातक संसर्गज रोग है जो ट्रिपैनोसोमा इवान्सी से उत्पन्न होता है देश में लगभग 20% ऊँट इस रोग के शिकार होते हैं इस रोग के कारण बहुत-सी ऊँटनियों का गर्भपात हो जाता है सुर्रा रोग मानसून के मौसम (जुलाई–अक्टूबर) में अत्यधिक पायी जाने वाली खून चूसने वाली मक्खियों (टबेनिडी) द्वारा एक पशु से दूसरे पशु तक ले जाया जाता है यह रोग उग्र या चिरकारी हो सकता है कभी-कभी यह तीन-चार वर्षों तक बना रहता है और कभी-कभी तुरन्त अच्छा भी हो जाता है यदि रोगग्रस्त जानवरों को बिना उपचार के छोड़ दिया जाय, तो वे बहुत बड़ी संख्या में मर जाते हैं

रोग-निरोधी तथा रोगहर दोनों ही साधन अपनाने होते हैं भूतपूर्व जोधपुर रियासत में 1945 में इस रोग का प्रकोप पराकाष्ठा पर था उस समय एन्ट्रीपोल और एन्ट्रीसाइड जैसी ओषधियों का इस्तेमाल किया गया था पहली अन्तःशिरा और दूसरी अवत्वक् इंजेक्शन द्वारा दी गयी इस उपचार से न केवल रोग चला जाता है वरन् पुनःसंक्रमण की आशंका नहीं रह जाती

ऊँट में होने वाले अन्य संसर्गी रोग पशुप्लेग, लंगड़िया, गलाघोंटू, यक्ष्मा और टेटनस हैं लेकिन ये बहुत कम होते हैं

कुमरी (पेशियों की कँपकँपी), कारुली (शिरानाल शोथ), और सन्धिझिल्ली शोथ ऊँटों के असांसर्गिक रोग हैं

खाज, माइट से उत्पन्न होने वाला (रोगकारी जीव सार्कोप्टीस कैमेली) चमड़ी का रोग है, जो जानवरों की कार्य-क्षमता को कम कर देता है रोग उन सभी स्थानों में जहाँ ऊँट रहते हैं पाया जाता है, लेकिन सूखे भागों में अधिक पाया जाता है राजस्थान के ऊँट इस रोग से अधिक प्रभावित होते हैं और कच्छ के सबसे कम लगभग 30% ऊँटों की संख्या इस रोग से ग्रस्त होती है इस रोग के नाशक जीवों के नियन्त्रण में गैमेक्सेन प्रभावकारी है

ऊँटों को प्रभावित करने वाले अन्य त्वचा रोग हैं सम्पर्शी, ऊतक्षय, छाजन, रूसी और अधिमांस ज, टिक (चींचड़ी), घोड़े की मक्खी, घरेलू मक्खी और मच्छर, त्वचा के प्रमुख परजीवी हैं

आर्थिक महत्व – देश के विभिन्न राज्यों में मृदा जलवायु तथा वर्षा के अनुसार ऊँटों का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिये किया जाता है उनका उपयोग खेत जोतने बोझा ढोने तथा व्यापार में किया जाता है गाड़ी चलाने, रहट द्वारा पानी खींचने, अनाज गहाने, तेल-घानी तथा देशी आटा-चक्की चलाने तथा गन्ने का रस निकालने में उनका उपयोग होता है जिन इलाकों में परिवहन के अन्य साधन नहीं होते वहाँ ऊँटों का उपयोग परिवहन में करते हैं

रेतीले इलाकों में बैलों की जोड़ी की तुलना में ऊँट अधिक लाभदायक होते हैं, ऐसे इलाकों में ये गाड़ी द्वारा डेढ़-गुना बोझा ढोते हैं यदि जमीन मुलायम रहे तो सामान्यतया ऊँट 8 घण्टे में 0.5–0.6 हैक्टर जमीन जोत लेता है यह पीठ पर 250 किग्रा तथा गाड़ी में लगभग 555 किग्रा बोझा ले जाता है

देश की सुरक्षा में ऊँटों का महत्वपूर्ण योगदान है राजस्थान की रेतीली सीमा पर, जहाँ स्काउट तथा पुलिस के गश्ती दस्ते स्थायी रूप से रखे जाते हैं वहाँ ऊँट ही परिवहन का महत्वपूर्ण साधन है सुरक्षा सेना में ऊँटों का दस्ता महत्वपूर्ण लड़ाकू इकाई है

ऊँट उत्पाद

ऊँटों से बाल, चमड़ी, मांस, कच्ची अस्थियाँ, दूध तथा खाद जैसे व्यापारिक उत्पाद प्राप्त होते हैं.

ऊँटों के बाल अपनी मृदुता, हल्केपन, टिकाऊपन और निम्न ऊष्मा चालकता के कारण अत्यन्त मूल्यवान समझे जाते हैं बालों का संग्रह भारत में मई-जून में किया जाता है, जब ऊँटों से बाल गिराने का समय होता है अथवा उन्हें वर्षा में एक बार काटा जाता है भारतीय ऊँटों की पीठ, गर्दन, टाँगों तथा जाँघों पर लम्बे बाल होते हैं सामान्यतः पीठ के बाल नहीं काटे जाते ठण्डे इलाकों में प्रति वर्ष प्रत्येक ऊँट से लगभग 5.4 किग्रा बाल प्राप्त होते हैं परन्तु भारत में प्रति पशु औसतन लगभग 900 ग्रा बाल मिलते हैं

ऊँटों में मिश्रित रोमावली पायी जाती है जिसमें ऊपर तो मोटे बाल रहते हैं और उनके नीचे ऊन जैसे बाल पाये जाते हैं इन्हें कता करने की मशीन द्वारा स्थूल बालों (टाप्स) तथा छोटे रेशों (नॉइल्स) से पृथक् कर लिया जाता है बालों का व्यापारिक श्रेणीकरण मोटे बालों की उपस्थित मात्रा पर निर्भर करता है सबसे अच्छे बाल किशोर ऊँटों से प्राप्त होते हैं

मुलायम तथा उत्तम बालों से कम्बल, धुस्से तथा उत्तम कोटि के लबादे तथा ड्रेसिंग गाउन तैयार किये जाते हैं ऊन में मिलाकर इनसे बुने हुये कपड़े तैयार किये जाते हैं ऊँट के बालों से बने कम्बल ऊनी कम्बलों से श्रेष्ठ होते हैं बकरी के बालों में मिलाकर इनसे मोटे कपड़े तैयार किये जाते हैं जिनका उपयोग ऊँटों की जीन तथा बोरे बनाने में किया जाता है मोटे बालों का उपयोग डोरी, रस्सी, तेल-घानी थैले तथा मशीन के पट्टे बनाने में किया जाता है मोटे रेशों से बने बोरों का इस्तेमाल राजस्थान में चारा और दाना ले जाने के लिये किया जाता है दाढ़ी के बालों का उपयोग चित्र बनाने के ब्रुशों में किया जाता है

भारत में ऊँट के बालों का अनुमानित राज्यवार वार्षिक उत्पादन सारणी 79 में दिया गया है

ऊँट के कच्चे बालों में रेशा 75–85, वसा 4–5, रेत तथा धूल 15–25% होती है रेशे व्यास (9–40 मा.) में एक समान होते हैं ऊँट के बालों का मूल्य उनकी लम्बाई मृदुता, चमक तथा रंग पर निर्भर करता है भारत में प्रायः ऊँटों के बालों का रंग भूरा होता है मुलायम तथा चमकदार बाल अधिक दाम पर बिकते हैं, गहरे रंगों के ऊँचे दाम मिलते हैं मैदानों में मौसमी दशाओं के कारण, ऊँटों से काटे गये बाल छोटे

सारणी 79 – भारत में 1961 में ऊँट के बालों का अनुमानित वार्षिक उत्पादन*

राज्य	(मात्रा टनों में)
उत्तर प्रदेश	14.53
गुजरात	4.40
पंजाब	95.10
मध्य प्रदेश	5.34
राजस्थान	242.52
योग	361.89

*विपणन तथा निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एवं कृषि मंत्रालय (कृषि विभाग), नागपुर.

तथा रुक्ष होते है और अपेक्षाकृत कम दामो पर विकते हैं यह अनुमान लगाया गया है कि ऊँट के वालो के कुल उत्पादन का 50% निर्यात कर दिया जाता है

ऊँट की खाल का उपयोग सन्दूक तथा सूटकेस बनाने मे किया जाता है इसका मुख्य उपयोग तेल या घी रखने के लिये बडी थैलियाँ (कुप्पा) बनाने मे किया जाता है इससे अच्छा चमडा नही बनता।

ऊँट का मास चीमड तथा खुरदुरा होता है यह स्वादिष्ट नही होता. इसकी आँत की भित्तियो का उपयोग छोटे-छोटे शोभाकारी फ्लास्को के बनाने मे किया जाता है कूवडो से प्राप्त होने वाली चर्वी पिघला करके ग्रीज के रूप मे काम मे लायी जाती है ऊँटो की ताजी हड्डियो से चूरा बनाया जाता है, जो एक उर्वरक है 1961 के अनुमान के अनुसार राजस्थान, पजाव, गुजरात और उत्तर प्रदेश से क्रमश 1,321, 518,102 और 89 तथा अन्य प्रान्तो से 45 टन हड्डियाँ प्राप्त हुयी

ऊँट पालको के लिये ऊँटनी का दूध उपयोगी भोजन है यह प्लीहा, जलशोथ और पीलिया रोगो की दवा है दिन-भर मे ऊँटनी से 10 8 किग्रा दूध मिलता है इस दूध में वसा कम परन्तु नाइट्रोजनी पदार्थ अधिक होते हैं इसकी गन्ध चर्वी जैसी होती है तथा जो इसका सेवन नही करते उनके लिये यह मृदुरेचक है दूध से तैयार किये गये हलवे का आयात भारत में किया जाता है कुमिस नामक किण्वित उत्पाद भी इससे बनाया जाता है

रेगिस्तानी इलाको में ऊँट के गोवर का उपयोग ईंधन की तरह किया जाता है इसमें नौसादर पाया जाता है इसकी खाद अन्य पशुओ की खाद से अच्छी होती है इससे अच्छी उपज मिलती है

अनुसधान और विकास – देश मे वैज्ञानिक रीति से ऊँटो को पालने के बहुत कम प्रयास हुये हैं फलस्वरूप सारे देश में, यहाँ तक कि फौजी टुकडियो में भी दोगली या सकर नस्ल पायी जाती है बीकानेरी ऊँट अपनी सहन-क्षमता और कृषि तथा परिवहन मे उपयोगिता के कारण प्रसिद्ध है जैसलमेरी नस्ल को चुनिदा प्रजनन द्वारा सुधारा जा सकता है और इसका उपयोग अन्य राज्यों में श्रेणी-उन्नयन करने मे किया जा सकता है प्रजनन के लिये अच्छे साँड ऊँट सरलता से प्राप्त नही होते इसीलिये भारत में ऊँट प्रजनन के लिये कृत्रिम वीर्यसेचन प्रारम्भ करने के लिये विस्तार से अध्ययन किया जा रहा है प्रजनन, आहार और प्रवध, तथा ऊँट के रोगो पर आवश्यक प्रेक्षण करने के लिये भारत सरकार ने बीकानेर मे ऊँट प्रजनन फार्म की स्थापना की है इस फार्म में 400 ऊँटो का यूथ रखा गया है तथा बीकानेरी ऊँटो की शुद्ध नस्ल प्राप्त करने के लिये प्रयत्न हो रहे हैं

याक

याक, वास (पेफागस) ग्रुनियन्स लिनिअस [हि–बनचौर (जगली), चौर गाय (पालतू)], (गण–आर्टिओडेक्टाइला, कुल–वोविडी) तिव्वत और मध्य एशिया के आस-पास के देशो का वासी है यह जगली अवस्था मे हिमालय के अत्यधिक वीरान और ठण्डे क्षेत्रो मे रहता है और अन्य स्तनियो की अपेक्षा अधिक ऊँचाई (4 3–6 0 किमी) पर पाया जाता है धूसर रग के थूथन, सिर और गर्दन को छोडकर इसका शेष शरीर गहरा भूरा या प्राय काला होता है पालतू याक का आकार छोटा होता है इसके रग में भिन्नता होती है इसका रंग सफेद या चितकवरा होता है

भारत मे याक जम्मू और कश्मीर प्रान्त की लद्दाख घाटी मे तथा हिमाचल प्रदेश की पगी, चीनी, लाहूल और स्पिती घाटियो मे और कुछ सख्या मे उत्तर प्रदेश में गढवाल में पाया जाता है मोटे तौर पर याको की कुल सख्या 24,000 होगी इनके सकर इनसे दुगुने होंगे भारत मे 1966 मे याक की सख्या के राज्यवार आँकडे सारणी 80 मे दिये गये हैं लाभकारी पशु को सुरक्षित रखने के लिये सस्थापित फार्म न होने से याको की सख्या कम होती जा रही है

जगली याक भारी डील का पशु है, इसका सिर नमित, कधे ऊँचे उठे हुये, कमर सीधी तथा पैर छोटे और मजबूत होते हैं रूखे मोटे वाल पार्श्वो, छाती, कन्धो जाँघो तथा पूछ की निचली आधी लम्बाई तक लटके रहते हैं और सीगो के बीच वालो का गुच्छा होता है तथा गर्दन पर लम्बे अयाल होते हैं प्रौढ याक की ऊँचाई कधे तक लगभग 1 67 मी होती है और कभी-कभी 1 83 मी तक हो सकती है इसका भार 544 किग्रा तक होता है अच्छे सीगो की लम्बाई 64–74 सेमी तक होती है याकिनी प्रतिवर्ष औसतन 385 5 किग्रा दूध देती है गर्मियो मे याक अक्सर छोटी झाडियाँ तथा घास के गुच्छे और नमकीन मिट्टी खाता है तथा पिघली वरफ पीता है मैथुन का काल पतझड के अन्त में होता है यह अप्रैल मे वच्चा जनती है जब हरी घास से इसके चारे की पूर्ति हो जाती है

सदियो से हिमालय की ऊँचाइयो पर याक का प्रजनन पालतू जानवरो के साथ इसका अन्त प्रजनन कराकर होता रहा है इसकी दो सकर नस्लें ज्ञात हैं सीगदार (जो) और सीगरहित (जुम) ये दोनो शुद्ध सकर नस्लें हैं पालतू याक शुद्ध नस्लो की अपेक्षा उच्च ताप सहन कर सकता है ठड सहन कर सकने, कठिन से कठिन पहाडी मार्ग में पैर न फिसलने तथा मोटे-मोटे चारे पर भी निर्वाह कर सकने के कारण यह मनुष्य के लिये अपरिहार्य है

स्पिती और पगी के पठारी इलाको तथा घाटियो के उत्तरी भागो मे याको को प्रजनन के लिये पाला जाता है याक साँडो का

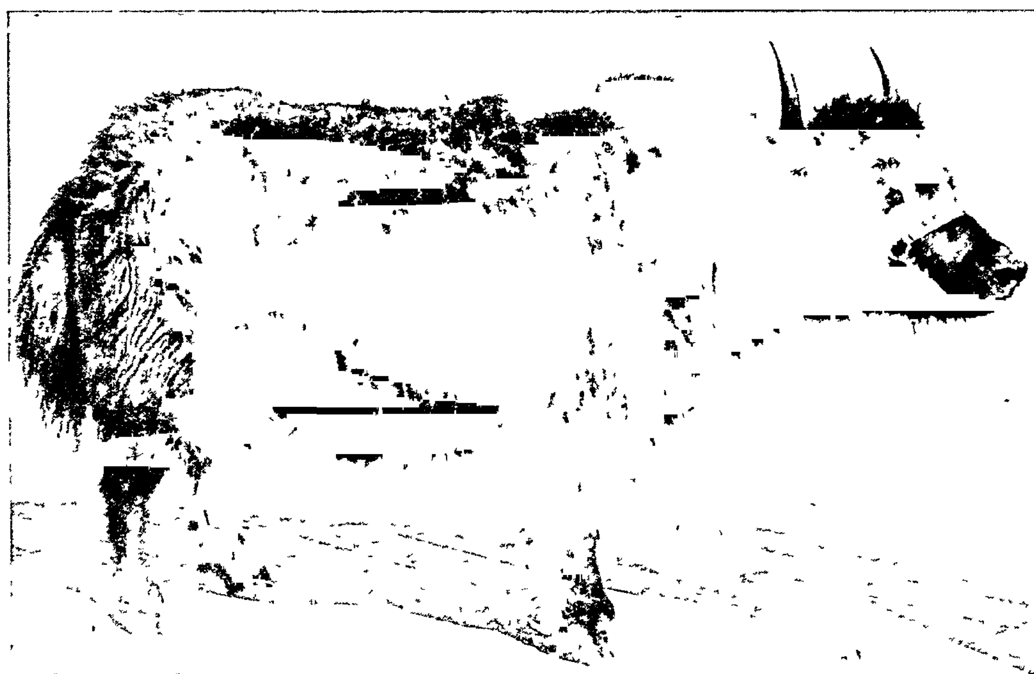
सारणी 80 – 1966 में भारत में याकों की सख्या*

राज्य	सख्या
उत्तर प्रदेश	718
जम्मू और कश्मीर	13,562
हिमाचल प्रदेश	3 2.6
योग	17 546

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Agriculture, Govt of India, 1972



नर याक



मादा याक

उपयोग पहाडी गायो के सकरण मे किया जाता है हाल ही मे याक गायो का उपयोग शुद्ध प्रजनन के लिये किया जाने लगा है बास वश के अन्य सदस्यो, जैसे कि जगली भैसा, बेन्टेग, गायाल, जीबू और यूरोपीय गोपशुओ और याक मे अत प्रजनन कराया जाता है लेकिन भारत मे अभी तक भैसो के साथ कोई अन्त प्रजनन नही किया गया

सकर याको के शरीर का आकार मध्यम होता है किन्तु जब उन्नत देशी नर याको का प्रयोग किया जाता है तो ये कई प्रकार से अपने दोनो जनको को पछाड देते है बधिया किये जाने पर इनसे अच्छा मास मिलता है और मास तथा खाल के गुण याक से श्रेष्ठ होते है ये सकर याक से बलिष्ठ तथा भारी बोझा ले जाने मे समर्थ होते है, लेकिन इनमे सहन शक्ति कम होती है इनके खुर मुलायम होते है और गरम जलवायु के लिये अधिक अनुकूल होते है दूध उत्पादन मे ये याक, गाय तथा कभी-कभी देशी पालतु गोपशुओ से भी बढ जाते है सकर पशुओ के दूध मे पालतू पशुओ के दूध से वसा की मात्रा अधिक होती है

याक से दूध, मास, खाल तथा ऊन प्राप्त होते है यह मनुष्यो तथा सौदा के लिये परिवहन का काम देता है तथा जुताई के भी काम आता है यदि याक न रहे तो वीरान हिमालयी इलाको मे यात्रा तथा व्यापार करना अत्यन्त दुस्साध्य हो जाय याक का मास तथा दूध मनुष्य के काम आते है याक की खाल का उपयोग ऊँचाइयो पर रहने वाले ढीले जामे के रूप मे करते है इसके लम्बे बालो से कपडे, चौर तथा रस्सियाँ बनायी जाती है तथा तम्बुओ के ऊपर चढाने के लिये खोल बुना जाता है इसकी अस्थियाँ, सीग तथा खुर खाद के रूप मे काम आते है

पशुधन उत्पादों का रसायन

दूध तथा दूध के उत्पाद

सर्वोत्तम ज्ञात आहारो मे से दूध एक है तथा इसका महत्व प्रागैतिहासिक काल से ही मनुष्यो को ज्ञात रहा है प्राचीनकाल मे सम्भवत दूध की अधिकता के कारण दही और घी जैसे दूध उत्पादो का प्रयोग होता था डेरी-उद्योग के विकास के साथ ही अब मक्खन, पनीर, वाष्पीकृत दुग्ध तथा दुग्ध-चूर्ण जैसे कृत्रिम उत्पाद तैयार किये और उपयोग मे लाये जा रहे है भारत में दूध की पर्याप्त मात्रा (लगभग 60%) दही, मक्खन, घी, खोआ, रबडी, छेना जैसे उत्पादो मे परिवर्तित कर दी जाती है

दूध. पशुओ की स्तनी ग्रन्थियो का स्राव होता है यह सामान्यत गाय अथवा भैस से बच्चा जनने के कम से कम 72 घण्टे के बाद से अथवा खीस (पेउसी) रहित होने पर प्राप्त होता है बकरी, भेड, गधी, ऊँटनी तथा घोडियाँ अन्य दुग्ध-उत्पादक पशु है

गाये और भैसे भारत के प्रमुख दुधारू पशु है बकरियो (सूरती नस्ल) तथा भेडो (काठियावाडी नस्ल) से भी कुछ दूध प्राप्त होता है 1966 की पशुधन-गणना के अनुसार भारत मे दुधारु पशुओ मे से 2 करोड 10 लाख गाये तथा 1 करोड 47 लाख भैसें थी कुल दूध आपूर्ति का लगभग 45% गायो से तथा लगभग 55% भैसो से प्राप्त होता है देश की दुधारू गायो तथा भैसो की प्रमुख नस्ले इस प्रकार है

गाये – साहीवाल, हरियाना, मालवी, मेवाती, लाल सिन्धी, गिर, कांकरेज, खिल्लारी, थारपारकर, देवनी, रथ, डाँगी और अगोल.

भैसे – मुर्रा, नीली रावी, सूरती, जाफराबादी, मेहसाना, नागपुरी तथा भदावरी

गुणधर्म

दूध, श्वेत और अपारदर्शी द्रव है जिसमे वसा पायस के रूप मे, प्रोटीन तथा कुछ खनिज पदार्थ कोलाइडी निलम्बन मे तथा कुछ खनिज और विलेय प्रोटीनो के साथ लैक्टोस वास्तविक विलयन मे विद्यमान रहते है ताजे निकाले गये दूध का पी-एच मान 6 6 (परास 6 5–6 7) तथा अनुमाप्य अम्ल 0 12 से 0 15 % होता है वास्तव में ताजे निकाले गये दूध मे बहुत कम अम्ल रहता है और इसका पी-एच, कार्बन डाइऑक्साइड, सिट्रेट, केसीन इत्यादि की उपस्थिति के कारण उदासीन से कुछ कम रहता है सम्पूर्ण दूध का विशिष्ट घनत्व सामान्यतया 15 5° पर 1 030–1 035 (औसतन 1 032) होता है सम्पूर्ण दूध (अतिशीतित) का घनत्व —5 2° पर अधिकतम होता है तथा जैसे-जैसे ताप लगभग 40° तक बढाया जाता है, घनत्व घटता जाता है 20° पर दूध का अपवर्तनाक 1 3440 से 1 3485 के बीच रहता है सम्पूर्ण दूध तथा इसके उत्पादो की विस्कासिता ताप एव ठोस अवयवो की मात्रा और व्यासरण की दशा पर निर्भर करती है सम्पूर्ण दूध की विस्कासिता 25° पर लगभग 2 0 सेन्टीप्वायज होती है और केसीन मिसेल तथा वसा गोलिकाये इसके लिये उत्तरदायी है दूध का पृष्ठ-तनाव 20° पर 50 डाइन/सेमी होता है इसकी पृष्ठ-सक्रियता इसमे उपस्थित प्रोटीनो, वसा, फॉस्फोलिपिडो तथा मुक्त वसा अम्लो से सम्बन्धित है समागीप्रकरण प्रक्रम से दूध का पृष्ठ-तनाव ठीक उसी प्रकार बढता है जैसे उष्मा द्वारा जीवाणुनाशन बढता है दूध का हिमाँक सामान्यत –0 53° से –0 57° के बीच पाया जाता है और दूध मे उपस्थित लैक्टोस तथा क्लोराइड हिमाँक के अवनमन के लिये उत्तरदायी होते है

सघटन

विभिन्न स्तनियो मे प्राप्त दूध के अवयव लगभग एक ही होते है परन्तु उनकी मात्रा मे काफी अन्तर पाया जाता है सारणी 81 मे विभिन्न स्तनियो का और सारणी 82 मे विभिन्न दुधारू नस्लो के दूधो का पूर्ण सघटन प्रस्तुत किया गया है

जल – दूध का अधिक भाग जल होता है, जो जाति एव नस्ल के अनुसार 82 से 90% तक परिवर्तित होता रहता है यह जल दूध के अन्य अवयवो के लिये सवाहक का कार्य करता है दूध मे जल की थोडी मात्रा लैक्टोस तथा लवणो से जलयोजित तथा प्रोटीन के साथ बन्धित भी रहती है

वसा – वसा दूध का सबसे अस्थिर अश है और यह निलम्बन मे निम्न गलन बिन्दु वाले विभिन्न ग्लिसराइडो की छोटी-छोटी गोलिकाओ के रूप मे (व्यास गाय का दूध, 3–8μ, भैस का दूध, 4–10μ) विद्यमान रहता है वसा गोलिकाओ के आकार एव

सारणी 81 – विभिन्न स्तनियो के दूधों का औसत सघटन* (%)

जाति	जल	वसा	प्रोटीन	कुल ठोस पदार्थ	वसा रहित ठोस	लैक्टोस	राख
मनुष्य	87 43	3 75	1 63	12 57	8 82	6 98	0 21
गाय	86 61	4 14	3 58	13 39	9 25	4 96	0 71
भैंस	82 76	7 38	3 60	17 24	9 86	5 48	0 78
वकरी	87 00	4 25	3 25	13 00	7 75	4 27	0 86
भेड	80 71	7 90	5 23	19 29	11 39	4 81	0 90
ऊँटनी	87 61	5 38	2 98	12 39	7 01	3 26	0 70
घोड़ी	89 04	1 59	2 69	10 96	9 37	6 14	0 51
गधी	89 03	2 53	2 01	10 97	8 44	6 07	0 41

*Fundamentals of Dairy Chemistry, edited by B H Webb & A H. Johnson, 1965

सारणी 82 – भारतीय नस्लो की कुछ गायो, भैंसो, वकरियो तथा भेडो के दूधो का औसत सघटन* (%)

नस्ल	कुल ठोस पदार्थ	वसा	प्रोटीन	वसारहित ठोस	लैक्टोस	राख
गाय						
लाल सिन्धी	13 66	4 90	3 42	8 76	4 91	0 70
गिर	13 30	4 73	3 32	8 67	4 84	0 66
थारपारकर	13 25	4 55	3 36	8 70	4 83	0 68
साहीवाल	13 37	4 55	3 33	8 82	5 04	0 66
दोगली (सकर)	13 13	4 50	3 37	8 63	4 92	0 67
भैस (मुर्रा)	15 75	6 56	3 86	9 19	5 83	0 70
वकरी (सूरती)	13 50	4 50	3 49	9 00	4 18	0 77
भेड (काठियावाडी)	16 30	6 04	4 84	10 26	4 99	0 81

*Basu *et al*, *Rep Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 8 1962

सख्या में परिवर्तन होता रहता है यह पशु की नस्ल तथा दूध दुहने की विधि पर निर्भर करता है ज्यो-ज्यो दुग्धकाल वढता जाता है, ये गोलिकायें छोटी तथा सख्या मे और अधिक वढती जाती है हाथ की दुहाई की अपेक्षा मशीन द्वारा दुहाई से प्राप्त गोलिकायें समान आकार की होती है समागीकरण से वसा-गोलिकाओ का आकार छोटा हो जाता है इससे भडारण-अवधि मे होने वाली पृथक्करण की प्रवृत्ति भी कम हो जाती है

दुग्ध-वसा का स्वाद अत्यन्त स्निग्ध होता है जिससे वसायुक्त दुग्ध उत्पादो मे चिकनापन और स्वाद आ जाता है दूध का 98 से 99% अश मिश्रित ट्राइग्लिसराइडो से निर्मित है और इन ग्लिसराइडो का सयोग दूध की अपनी विशेषता होती है दुग्ध-वसा मे असख्य ट्राइग्लिसराइड विद्यमान हो सकते हैं क्योकि दूध मे 64 वसा अम्ल पाये जाते है सारणी 83 मे विभिन्न पशुओ के दुग्ध-वसा के घटक अम्लो की सूची दी हुयी है व्यूटिरिक, कैप्रोइक,

सारणी 83 – कुछ दुग्ध वसाओं के घटक वसा अम्ल (भार %)*

अम्ल	भैंस†	गाय‡	वकरी†	भेड†	ऊँटनी†	घोडी**
व्यूटिरिक	4 1	4 0	3 0	3 3	2 1	0 4
कैप्रोइक	1 4	1 8	2 3	2 8	0 9	0 9
कैप्रिलिक	0 9	1 0	3 9	3 8	0 6	2 6
कैप्रिक	1 7	1 9	8 6	7 8	1 4	5 5
लॉरिक	2 8	2 2	4 6	5 4	4 6	5 6
मिरिस्टिक	10 1	12 9	11 5	12 2	7 3	7 0
पामिटिक	31 1	31 3	24 7	23 5*	29 3	16 1
स्टीऐरिक	11 2	8 3	9 3	6 9	11 1	2 9
ऐराकिडिक	0 9	0 9	0 1	1 9		0 3
ओलीक	33 2	28 0	30 5	28 3	38 8 }	42 4
आक्टाडेकाडिनोइक के रूप मे	2 6	3 8	1 5	4 1	3 8 }	
असतृप्त C_{20-22}		0 7				5 1

*Hilditch & Williams, 159–60, 147

**निम्नलिखित सूक्ष्म मात्रिक असतृप्त घटक सम्मिलित हैं, डेसेनाइक, 0 9, डोडेसेनाइक, 1 0, टेट्राडेसेनाइक, 1 8, तथा हेक्साडेसेनाइक, 7.5%

†गौण असतृप्त अम्लों सहित ‡निम्नलिखित सूक्ष्म मात्रिक असतृप्त घटक सम्मिलित हैं डेसेनाइक, 0 1, डोडेसेनाइक, 0 3, टेट्राडेसेनाइक, 1 2, तथा हेक्साडेसेनाइक, 1 6

कैप्रिलिक तथा कैप्रिक अम्लो को उनके अधिक अनुपात मे उपस्थित रहने के कारण उनकी तीव्र गन्ध तथा स्वाद से पहचाना जाता है ये वाष्पशील अम्ल अन्य प्राकृतिक वसाओं में इतने वडे अनुपात में नही पाये जाते दूध में विषम कार्वन परमाणु सख्या तथा प्रशाखित शृखला वाले अम्ल भी उपस्थित रहते हैं दुग्ध वसा में वसा अम्लो की मात्रा पशु द्वारा ग्रहण किये चारे की किस्म तथा उसकी मात्रा, दुग्धकाल तथा पशु की नस्ल द्वारा प्रभावित हो सकती है दुग्ध-वसा में कोलेस्टेरॉल पाया जाता है, इस प्रकार यह फाइटोस्टेरॉल युक्त वनस्पति वसाओ से भिन्न होता है दूध में 0 2 से 1 0% फॉस्फोलिपिड उपस्थित रहते हैं यथा, लेसिथिन, फॉस्फेटिडिल, सेरीन, फॉस्फेटिडिल इथेनॉलऐमीन, फॉस्फेटिडिल कोलीन, स्फिगो-माइयेलिन तथा इनासिटॉल और सेरेब्रोसाइडेस इनमें से कुछ फॉस्फोलिपिड घी को अधिक काल तक भडारित रहने में प्रतिउपचायक का कार्य करते हैं

प्रोटीन – दूध मे उपस्थित कुल प्रोटीनो का लगभग 80% कैसीन होता है जो दूध का प्रमुख प्रोटीन है इसके मस्तु (छेने का पानी) में उपस्थित लैक्टैल्वुमिन तथा लैक्टोग्लोवुलिन शेष 20% पूरा करते हैं कैसीन कम से कम तीन प्रोटीनों, α–, β– तथा γ–कैसीन का मिश्रण होता हे भैंस के दुग्ध-कैसीन मे α–कैसीन 44 5, β–कैसीन 52 4 तथा γ–कैसीन 3 1% पाया जाता है, जवकि गाय के दुग्ध-कैसीन मे इन अशो की मात्रायें क्रमश 54 5, 39 1 तथा 6 4% है

कैसीन निकाल लेने के वाद दूध का वचा हुआ तरल अश मस्तु (छाछ) कहलाता हे इसमें उपस्थित प्रोटीन मस्तु प्रोटीन

अथवा दुग्धसीरम प्रोटीन कहे जाते है सीरम प्रोटीन मे लैक्टैल्बुमिन तथा लैक्टोग्लोबुलिन रहते हैं लैक्टैल्बुमिन मे तीन पृथक् प्रोटीन होते है α-लैक्टैल्बुमिन (22%), β-लैक्टोग्लोबुलिन (59%) तथा सीरम ऐल्बुमिन (6%) लैक्टोग्लोबुलिन मे दो इम्यूनोग्लोबुलिन, यूग्लोबुलिन तथा स्यूडोग्लोबुलिन सघटित रहते है और ये सीरम प्रोटीनो का शेष 13% होते है

उपर्युक्त प्रोटीनो के अतिरिक्त दूध मे प्रोटियोस-पेप्टोन अश भी सूक्ष्म मात्रा मे पाया जात। है गाय तथा भैंस के दूध के प्रोटियोस पेप्टोन के औसत मान क्रमश 308 7 मिग्रा तथा 282 5 मिग्रा / 100 मिली है

दुग्ध प्रोटीनो मे सभी आवश्यक ऐमीनो अम्ल पर्याप्त मात्रा में तथा सतुलित अनुपातो में विद्यमान रहते है उनमे लाइसीन एव वैलीन विशेषतया प्रचुर मात्रा मे होते हैं जो अनाज के प्रोटीनो मे सामान्यत न्यून मात्रा मे पाये जाते है सम्पूर्ण दूध के प्रोटीनो मे मुख्यत कैसीन मे सिस्टीन की कमी कुछ हद तक लैक्टैल्बुमिन द्वारा पूरी हो जाती है, क्योकि इसमे ऐमीनो अम्ल की अधिकता होती है

सारणी 84 – गाय के दूध तथा उसके उत्पादो के प्रोटीन निर्मायक आवश्यक ऐमीनो अम्ल*
(ग्रा /16 ग्रा N)

स्रोत	आर्जिनीन	हिस्टिडीन	लाइसीन	ट्रिप्टोफेन	फेनिल एलानीन	मेथियोनीन	थ्रियोनीन	ल्यूसीन	आइसो-ल्यूसीन	वैलीन
सम्पूर्ण दूध	4 3	2 6	7 5	1 6	5 7	3 4	4 5	11 3	8 [illegible]	8 4
सम्पूर्ण दूध (सिन्धी नस्ल)	3 9	1 8	11 6	1 2	3 8	2 4	5 7	8 9	3 2	6 [illegible]
सम्पूर्ण दूध (दोगली नस्ल)	2 2	1 9	6 1	1 2	2 9	2 4	4 4	8 6	3 9	5 7
खीस	2 8	2 6	7 2	2 0	3 6	2 0	9 6	10 1	2 4	7 9
कैसीन	3 6–4 2	1 7–4 2	6 0–8 8	1 0–1 5	5 0–6 4	2 6–3 5	3 6–4 9	9 2–14 4	5 0–8 3	5 3–8 0
लैक्टैल्बुमिन	3 2–4 0	1 4–2 3	6 2–10 5	1 2–2 5	3 4–5 4	1 8–2 7	4 0–6 0	10 4–17 4	4 2–7 8	4 0–6 6
β-लैक्टोग्लोबुलिन	2 8–3 2	1 5–1 8	11 0–12 6	1 8–2 1	3 2–4 6	2 5–3 6	4 6–6 0	15 1–16 9	5 9–8 4	5 5–6 6
वाष्पीकृत दूध	3 2	2 5	7 2	1 4	4 9	1 9	4 6	10 0	7 2	6 4
दूध, सम्पूर्ण सूखा	3 5	2 4	8 1	1 4	4 6	2 2	4 8	11 8	6 5	6 2
मखनियाँ दूध, सूखा	3 0–3 1	2 3–3 3	7 3–8 3	1 0–1 4	4 5–5 4	2 1–2 5	4 1–4 5	9 3–10 6	6 0–7 3	5 9–6 0
पनीर (चेद्द र)	3 5	3 2	8 2	1 6	6 4	3 5	3 7	9 0	7 1	7 8
दही	1 5	1 9	5 7	1 2	3 0	1 9	5 9	10 2	3 2	6 2
मट्ठा या छाछ, सूखा	3 1	2 6	6 7	1 3	4 1	2 1	4 4	9 5	7 5	7 7
खोआ	3 1	2 0	5 8	1 2	3 4	2 2	4 9	9 9	3 2	6 1
दही का पानी, सूखा	1 8	1 2	4 7	0 6	3 0	1 2	4 7	7 1	5 9	4 7
मानव दुग्ध प्रोटीन†	4 3	2 8	7 2	1 9	5 6	2 2	4 6	9 8	7 5	8 8

*Kuppuswamy *et al*, 132-35 †मानव दुग्ध प्रोटीन के ये मान तुलना के लये दिये गये है

सारणी 85 – भैंस के दूध तथा उसके उत्पादो के प्रोटीन निर्मायक आवश्यक ऐमीनो अम्ल*
(ग्रा /16 ग्रा N)

स्रोत	आर्जिनीन	हिस्टिडीन	लाइसीन	ट्रिप्टोफेन	फेनिल एलानीन	मेथियोनीन	थ्रियोनीन	ल्यूसीन	आइसो-ल्यूसीन	वैलीन
सपूर्ण दूध, मुर्रा[1]	3 0	2 3	8 8	1 0	3 9	2 9	5 5	10 7	4,4	6 1
सपूर्ण दूध, मेहसाना[2]	3 4	2 0	7 0	1 4	4 6	2 8	4 6	9 5	5 7	5 4
संपूर्ण दूध, सूरती[3]			7 0	1 6	4 6	2 3	5 0	19 7	5 1	5 6
खीस[1]	3 8	2 3	6 6	1 9	3 9	1 8	9 0	8 2	2 6	7 7
कैसीन[4]			8 2	1 3	5 5	2 5	4 6	10 2	7 0	6 9
मखनियाँ दूध, सूखा[1]	3 1	2 1	9 1	1 2	3 4	2 9	6 0	10 1	3 4	7 6
दही[1]	1 7	1 7	7 9	1 1	2 7	1 6	4 8	9 6	2 8	6 2
खोआ[1]	2 3	2 0	8 0	1 2	2 9	2 1	4 1	10 8	3 4	6 7
दही का पानी[4] (छाछ)			9 5	1 1	5 3	2 6	3 9	8 7	5 3	4 1

[1]Venkateswara Rao & Basu, *Proc Soc biol Chem India*, 1954, 12, 19, 21 22, [2]Joshi & Raj, *Indian J Dairy Sci*, 1954, 7, 139; [3]Raj & Joshi, *J Sci industr Res*, 1955, 14C, 185, [4]Raj & Joshi, *Indian J med Res*, 1955, 43, 591

लैक्टैल्बुमिन तथा β–लैक्टोग्लोबुलिन सभी आवश्यक ऐमीनो अम्लो के लिये भली-भाँति सतुलित रहते हैं गाय के दूध तथा इसके उत्पादो के प्रोटीनो का आवश्यक ऐमीनो अम्ल सघटन सारणी 84 मे दिया गया है

भैंस, भेड, बकरी, सुअरी तथा गधी के दूधो के प्रोटीनो के ऐमीनो अम्ल गाय के दुग्ध प्रोटीन के समान होते हैं भैंस के दूध तथा इसके उत्पादो मे प्रोटीनो का आवश्यक ऐमीनो अम्ल सघटन सारणी 85 मे तथा अन्य पशुओ के दुग्ध प्रोटीनो का सारणी 86 मे दिया गया है

गाय के दुग्ध-प्रोटीनो मे सुपाच्यता, जैविक मान तथा वृद्धिप्रदायक-मान अधिक होते हैं और ये शिशुओ के पोषण के लिये माँ के दुग्ध-प्रोटीनो के समान होते हैं फिर भी ऐसी सूचना प्राप्त है कि मनुष्यो के पोषण की अपेक्षा प्रायोगिक पशुओ के पोषण मे इसका पोषक मान सम्पूर्ण अण्डे के प्रोटीनो से घटिया होता है भैंस तथा बकरी दोनो के ही दुग्ध-प्रोटीनो का जैविक मान तथा सुपाच्यता लगभग उसी कोटि की होती है जैसी गाय के दुग्ध-प्रोटीनो की होती है, किन्तु बकरी के दुग्ध-प्रोटीनो का वृद्धिप्रदायक मान कम होता है दूध तथा दुग्ध उत्पादो के जैविक मान तथा सुपाच्यता गुणक सारणी 87 मे प्रस्तुत किये गये है

प्रोटीन-रहित नाइट्रोजन पदार्थ – प्रोटीनो के अतिरिक्त दूध में ऐमीनो अम्ल, यूरिया, यूरिक अम्ल, क्रिएटिन, क्रिएटिनीन तथा हिप्प्यूरिक अम्ल जैसे प्रोटीन-रहित नाइट्रोजन पदार्थ भी पाये जाते हैं दूध के कुल नाइट्रोजन का लगभग 5% प्रोटीन-रहित नाइट्रोजन होता है गाय, भैंस, बकरी तथा भेडो के दूध के प्रोटीन-रहित नाइट्रोजन अवयवो के औसत मान सारणी 88 मे दिये गये हैं

कार्बोहाइड्रेट – दूध मे उपस्थित शर्कराओ मे लैक्टोस प्रमुख है यह लैक्टिक अम्ल जीवाणुओ द्वारा शीघ्रता से किण्वित होकर लैक्टिक अम्ल उत्पन्न करता है जो दूध की खटास का मूल कारण है लैक्टोस के अतिरिक्त गाय के ताजे दूध मे मुक्त ग्लूकोस तथा गैलैक्टोस भी सूक्ष्म मात्रा मे उपस्थित रहते हैं लैक्टोस, दूध तथा उत्पादो के पोषक मान मे सहायक होता है तथा कुछ दूध उत्पादो के गठन और मिश्रयता के लिये भी महत्वपूर्ण है यह उच्च ताप पर गरम किये गये डेरी-उत्पादो को रग तथा स्वाद प्रदान करता है पनीर, दही, मक्खन जैसे सवर्धित डेरी उत्पादो के निर्माण मे भी यह सहायक है

खनिज – भारतीय गाय तथा भैंस के दूध मे पाये जाने वाले खनिज सारणी 89 मे दिये गये हैं यद्यपि दूध मे 1% से भी कम मात्रा मे खनिज पाये जाते है, किन्तु वे समागीकरण के पश्चात वसा गोलिकाओ की उष्मा स्थिरता तथा पिण्डीकरण को प्रभावित करते हैं

दूध पथ्य, कैल्सियम का एक प्रमुख स्रोत है सामान्यतया भैंस के दूध मे गाय के दूध की अपेक्षा कैल्सियम, फॉस्फोरस तथा मैग्नीशियम अधिक रहता है गाय के दूध की अपेक्षा भैंस के दूध मे कोलाइडी कैल्सियम की मात्रा अधिक और अकार्बनिक फॉस्फोरस की कम होती है ऐसा उल्लेख किया गया है कि दूध मे लोहा, ताँबा, ऐलुमिनियम, बोरॉन, जस्ता, मैंगनीज, कोबाल्ट, आयोडीन, फ्लोरीन, मालिब्डेनम, निकेल, लीथियम, बैरियम, स्ट्रान्शियम, रोबिडियम तथा सिलिका भी उपस्थित रहते हैं साधारण दूध मे क्लोराइड तथा लैक्टोस का अनुपात प्राय स्थिर रहता है यह अनुपात, असाधारण दूध मे विशेषकर थनैली रोग से पीडित पशु मे, काफी बढता जाता है

सारणी 86 – बकरी, भेड तथा गधी के दूधो के प्रोटीनो के निर्मायक आवश्यक ऐमीनो अम्ल*
(ग्रा /16 ग्रा N)

	बकरी	भेड	गधी
आर्जिनीन	5 3	1 1	3 7
हिस्टिडीन	2 1	2 2	1 4
लाइसीन	9 5	5 4	7 9
ट्रिप्टोफेन	1 2	1 4	2 4
फेनिल ऐलानीन	3 7	3 9	2 0
मेथियोनीन	2 0	2 7	3 9
थ्रियोनीन	6 6	5 9	4 9
ल्यूसीन	8 4	10 0	8 9
आइसोल्यूसीन	2 6	3 1	3 5
वैलीन	4 2	6 5	4 6

*Venkateswara Rao & Basu, *Proc Soc biol Chem India*, 1954 12, 19

सारणी 87 – दूध तथा दुग्ध उत्पादो के प्रोटीनो के पोषक मान* (%)

स्रोत	पोषण भार	जैविक मान	सुपाच्यता गुणाक
गाय का दूध			
सम्पूर्ण	10	75 6–82 8	88 3–94 8
	15	50 6	86 8
सघनित		84 6	98 8
वाष्पीकृत		89 4	91 8
सम्पूर्ण, सूखा	3	93 0	
मखनियाँ, सूखा	5	89 0	90 0
	10	83 0	90 0
छेना	11	67 2	97 0
पनीर	8	76 0	100 0
दही	8	66 4	97 8
खोआ	10	68 7	89 9
दही के पानी का चूर्ण (बेलन द्वारा सुखाया)		81 8–83 5	74 9–81 3
कैसीन		89 0–94 7†	
लैक्टेल्बुमिन	5	66 0	95 0
भैंस का दूध			
सम्पूर्ण	10	66 7	82 0
	15	53 9	82 4
बकरी का दूध			
सम्पूर्ण	10	67 7	85 5
	15	50 4	85 2

*Kuppuswamy *et al*, 128–31, †मानव मे उपापचय प्रयोगो द्वारा निर्धारित

एंजाइम – दूध मे पाये जाने वाले एंजाइमो मे लिपेस, एरिल एस्टरेस, कोलीनएस्टरेस, क्षारकीय फॉस्फेटेस (पास्तुरीकरण के समय नष्ट हो जाता है, इसीलिये उसकी अनुपस्थिति पास्तुरीकरण की सफलता का अभिसूचक है), अम्ल फॉस्फेटेस (उष्मा-निरोधी परन्तु धूप मे अस्थायी), जैन्थीन ऑक्सिडेस, लैक्टोपरऑक्सिडेस, प्रोटियेस, α–तथा β–ऐमिलेस, कैटेलेस (रोगग्रस्त स्तनो के दूध मे अधिकता रहती है और इसीलिये असाधारण दूध की पहचान के लिये बुनियादी परीक्षण का काम करती है), एल्डोलेस, कार्बोनिक ऐनहाइड्रेस तथा सम्भवत सेलुलेस, रोडोनेस तथा लैक्टेस सम्मिलित हैं

विटामिन – दूध, थायमीन तथा राइबोफ्लैविन का एक अच्छा स्रोत है, इसमे अन्य विटामिन बी भी होते हैं विटामिन बी की मात्रा, दुग्धकाल, पोषण, प्रबन्ध तथा ऋतु के द्वारा प्रभावित होती है गाय का दूध विशेषकर, विटामिन ए तथा कैरोटीन का एक अच्छा स्रोत है विटामिन ए की मात्रा गाय द्वारा खाये हुये चारे के प्रकार तथा आनुवंशिक कारको द्वारा प्रभावित होती है ग्रीष्म ऋतु मे हरे चारे से इसकी मात्रा मे वृद्धि होती है सूचना है कि पशुओ को टोकोफेरॉल पिलाने से दूध मे विटामिन ए की मात्रा बढ जाती है दूध मे विटामिन डी की मात्रा कम रहती है यह पशुओ के चारे द्वारा प्रभावित होती है ग्रीष्म ऋतु मे हरे चारे से इसकी मात्रा मे वृद्धि होती है सूचना है कि पशुओ को टोकोफेरॉल पिलाने से दूध मे विटामिन डी की मात्रा कम रहती है यह पशुओ के चारे द्वारा प्रभावित होती है दूध, विटामिन सी का एक अपर्याप्त किन्तु विटामिन ई का अच्छा स्रोत है गायो को अन्त शिरा, अन्त पेशी और मुख द्वारा विटामिन ई देने से उनकी दुग्ध-वसा मे विटामिन ई का स्तर बढता है कहा जाता है कि गायो के कोलेस्टेरॉल वसा मे टोकोफेरॉल की मात्रा वर्षा मे उच्चतम तथा ग्रीष्म एव शरद ऋतुओ मे कम और सूखे मौसम मे अप्रभावित रहती है गाय, भैंस, बकरी तथा भेड के दूध मे विटामिन की मात्राये सारणी 90 मे दी गयी है

गैस – आयतन के अनुसार दूध मे लगभग 10% विलेय गैसे पायी जाती हैं जिनमे कार्बन-डाइऑक्साइड प्रमुख है वायुमण्डल मे खुला छोड देने पर दूध मे नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन जैसी गैसे प्रवेश पा लेती हैं गरम किये गये दूध मे ऐल्बूमिन के अपघटन के कारण हाइड्रोजन-सल्फाइड तथा इसके सजातो की उपस्थिति भी सम्भाव्य है

दूध का स्वाद – दूध का बढिया हल्का मीठा स्वाद इसमे उपस्थित लैक्टोस, वसा, प्रोटीन, लवण तथा कुछ अज्ञात पदार्थो के सयुक्त प्रभाव के कारण होता है दूध मे अवाञ्छित स्वाद पशु द्वारा खाये गये चारे, दलहनी साइलेज तथा कुछ खरपतवार के कारण हो सकता है जीवाणुओ की वृद्धि के कारण इसमे फलदार, भुसौरी, माल्टी अथवा अम्लीय स्वाद आ जाता है जब कि लाइपेस एंजाइम के कारण इसमे विकृत गंधिता हो जाती है ससाधन के फलस्वरूप दूध मे पकी हुयी गन्ध आ जाती है तथा ऑक्सीकारी अभिक्रियाओ के कारण तरल दूध मे कार्डबोर्ड की तरह की, सपूर्ण सूखे दूध तथा घी मे चर्बी की तरह की और अन्य डेरी-उत्पादो मे धात्विक अथवा पेन्ट की तरह की गन्ध आने लगती है

दूधो के संघटन में परिवर्तन – दूध का सघटन, पशु के व्यक्तित्व, नस्लीय परिवर्तनो, ऋतु परिवर्तन तथा मौसम, पशु की आयु तथा उसका स्वास्थ्य, चारे की प्रकृति, दुग्धकाल, पशु-अयन का अग और दुहाई की विधि पर बदलता रहता है दुग्धकाल मे दूध की वसा

सारणी 88 – दूध के प्रोटीन-रहित नाइट्रोजन अवयव*
(मिग्रा N/100 मिली)

अवयव	गाय	भैंस	बकरी	भेड़
कुल नाइट्रोजन	526 20	597 70	591 70	753 60
प्रोटीन-रहित नाइट्रोजन	25 82	27 60	32 39	43 29
यूरिया	11 60	11 38	21 03	14 26
ऐमीनो अम्ल	4 04	5 13	5 37	9 60
क्रिएटिनीन	0 44	0 37	0 42	0 43
यूरिक अम्ल	0 54	0 24	0 20	0 19
क्रिएटिन	0 62	0 92	0 64	1 02
अमोनिया	0 26	0 26	0 25	0 29
अनिर्धारित नाइट्रोजन	8 32	9 30	4 48	17 50

*Venkatappaiah, M Sc Thesis, University of Bombay, 1951

सारणी 89 – दूध का खनिज संघटन*
(प्रति 100 ग्रा)

अवयव	गाय	भैंस
राख,%	0 77	0 84
कैल्सियम, मिग्रा	136 30	186 80
फास्फोरस, मिग्रा	99 85	130 10
लोहा, माग्रा	111 00	132 00
क्लोराइड, मिग्रा	120 00	90 00
साइट्रेट, मिग्रा	210 00	220 00
सल्फेट, मिग्रा.	16 52	15 31
सोडियम, मिग्रा.	43 12	32 08
पोटैशियम, मिग्रा	131 98	107 06
मैग्नीशियम, मिग्रा	13.67	15 50
तांबा, माग्रा	20 00	22 60
जस्ता, माग्रा	1,124 00	1,336 00

**Annu Rep Indian Coun agric Res*, 1965.

सारणी 90 – दूध में विटामिन की मात्रा*
(प्रति लीटर)

	गाय	भैंस†‡	बकरी	भेड
विटामिन ए, अ इ	1,560 00	1,600 00	2,704 00	1,460 00
थायमिन, मिग्रा	0 42	0 40	0 40	0 69
राइबोफ्लैविन, मिग्रा	1 57	1 00	1 84	3 82
निकोटिनिक अम्ल, मिग्रा	0 85	1 00	1 87	4 27
विटामिन बी, मिग्रा.	0 48		0 07	
पैन्टोथेनिक अम्ल, मिग्रा	3 50		3 44	3 64
बायोटिन, माग्रा	35 00		39 00	93 00
फोलिक अम्ल, माग्रा	2 30		2 40	2 40
विटामिन $बी_{12}$, माग्रा.	5 60		0 60	6 40
विटामिन सी, मिग्रा	16 00	10 00	15 00	43 00

*Kirk & Othmer, XIII, 515; †Nutritive Value of Indian Foods, 141, ‡ मान प्रति किग्रा.

की मात्रा बदलती रहती है इसकी मात्रा प्रसव के पश्चात् अधिक रहती है तथा दुग्धकाल के प्रथम माह मे कुछ घट जाती है और शेष दुग्धकाल मे लगातार बढ़ती जाती है गाय के सध्या के दूध में सुबह के दूध की अपेक्षा वसा की मात्रा अधिक होती है सूखे मौसम मे दूध की मात्रा घटती ही जाती है, जिसके साथ वसा-रहित ठोस भी कम हो जाता है किन्तु वसा की मात्रा बढ जाती है दूध के सघटन पर पशु के मदचक्र अथवा कामोत्तेजना का प्रभाव पडना वास्तविक किन्तु असगत है पशुओ के थनैला रोग के कारण उनके दूध के सघटन मे अत्यधिक परिवर्तन होता है जिससे वसा और वसारहित ठोस की मात्रा घट सकती है जब तक स्तन मे सूजन न हो, दूध के सघटन पर खुरपका-मुंहपका रोग का प्रभाव नही पडता

खीस – खीस एक गाढा, सामान्यत पीले रग का लसीला द्रव होता है जो पशु की स्तनीय ग्रथियो के स्रवण से बच्चा जनने के दिन से प्रथम कुछ दिनो तक प्राप्त होता है यह चिपचिपा तथा अम्लीय होता है यह तीव्र गन्ध, तीखे स्वाद तथा हल्के पीले रग का और प्रचुर असक्राम्य ग्लोबुलिन युक्त होता है प्रसव के प्रथम तीन दिनो तक प्राप्त खीस उबालने पर अथवा साधारण ताप पर ही जम जाता है, क्योंकि इसमें गरमी पाकर जमने वाले प्रोटीनो की अधिकता रहती है जैसे-जैसे दुग्धकाल बढता जाता है, खीस की वसा तथा वसारहित ठोसो की मात्रा घटती जाती है और दुग्धकाल के प्रथम सप्ताह के अन्त तक यह मात्रा घट कर न्यूनतम हो जाती है इसका सघटन प्रसव के कुछ ही घण्टो मे बदल जाता है तथा जो सघटन सात दिन के पश्चात् रहता है वही दुग्धकाल की अधिकाश अवधि मे पाया जाता है गाय तथा भैंस के दूधो का सघटन, बच्चा जनने के प्रथम घण्टे तथा 48 घण्टो बाद क्रमश इस प्रकार बदलता है कुल ठोस, 26 54–15 63, 26 98–16 87, वसारहित ठोस, 20 46–9 99, 19 68–10 02, वसा, 6 1–5 6, 7 6–6 9, प्रोटीन, 16 46–4 67, 15 48–5 08, लैक्टोस (+राख), 4 00–5 32, 4 22–4 93%

परिरक्षण

उष्णकटिबन्धी तथा उपोष्ण देशो में ताजे दूध को ठीक रखने में कई कठिनाइयाँ आ जाती है क्योकि वहाँ के उच्च ताप के कारण दूध थोडे ही समय तक मीठा रह पाता है कभी-कभी दूध को बहुत दूर-दूर तक भेजना आवश्यक हो जाता है और दुग्ध उत्पादन की गन्दी परिस्थितियो के कारण दूध मे जीवाणुओ की सख्या पहले से ही काफी अधिक हो जाती है इन सूक्ष्म जीवो द्वारा सदूषण के कारण दूध मे परिवर्तन आ जाता है जिससे यह उपयोग तथा डेरी उत्पादो के निर्माण के योग्य नही रह जाता. सूक्ष्म जीवो की वृद्धि के कारण दुग्ध तथा दुग्ध उत्पादो में लैक्टिक अम्ल (लैक्टोबैसिलसो द्वारा 3% तक), गैस (अम्ल निर्माण के साथ) बनते है, और दूध लसदार, चिपचिपा और क्षारयुक्त हो जाता है कभी-कभी लाइपेस के द्वारा मक्खन-वसा का जल अपघटन, केसीन के प्रोटीन अपघटन के परिणामस्वरूप दूध का तिक्त स्वाद तथा रगो मे परिवर्तन भी सूक्ष्म जीवो द्वारा होते देखे जाते है स्वस्थ अयनो से प्राप्त दूध मे भी जीवाणु उपस्थित रहते है जिनमे माइक्रोकोकस अधिक तथा स्ट्रेप्टोकोकस और दडाकार जीवाणु कम सख्या मे पाये जाते है

दूध को फार्म पर तथा परिवहन के समय उसके पास्तुरीकरण, जीवाणुनाशन, सघनन अथवा शुष्कित करते समय शीतित करके, तथा लवण और शर्करा डालकर परासरणी दाब मे वृद्धि करके उसमे सूक्ष्म जीवो की वृद्धि के लिये प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं जिसमे दूध के रख-रखाव के गुण मे सुधार हो जाता है

सूक्ष्मजीवो की वृद्धि को रोकने के लिये दूध का दुहने के पश्चात् शीघ्र ही 0–4° तक शीतित कर दिया जाता है, और जब तक इसे पुन डेरी-सयन्त्रो मे ससाधन के लिये न भेजा जाय तब तक इसी ताप पर रखा जाता है डेरी-सयन्त्रो मे दूध का ससाधन उसकी सफाई से अर्थात् अपकेन्द्री-निर्मलकारी की सहायता से तलछटो को पृथक करने से प्रारम्भ होता है सफाई से न केवल तलछट वरन् दूध मे उपस्थित कुछ श्वेताणु तथा जीवाणु भी पृथक हो जाते है

हौज-पास्तुरीकरण के पहले दूध का समागीकरण कर लिया जाता है इसमे दूध को 60° पर गरम करके उसमे पाये जाने वाले लाइपेस एजाइम को निष्क्रिय बनाकर, उच्च दाब द्वारा उसे एक छेद मे से होकर पम्प किया जाता है समागीकरण करने से बडे आकार की वसा गोलिकाये छोटी हो जाती हैं जिससे वे ऊपर आकर क्रीम की सतह नही बना पाती

पास्तुरीकरण – पास्तुरीकरण से दूध मे पाये जाने वाले सूक्ष्म रोग-वर्धक जीव नष्ट हो जाते है इस विधि के अन्तर्गत दूध को एक निश्चित ताप पर निश्चित समय तक गरम किया जाता है हौज-जैकेट का प्रयोग करके धारक विधि द्वारा अथवा "अल्प-अवधि-उच्च-ताप" (अ अ उ ता अथवा फ्लैश-पास्तुरीकरण) विधि के द्वारा दूध को पास्तुरीकृत किया जाता है यह विधि बडे पैमाने पर दूध के पास्तुरीकरण के लिये प्रयुक्त की जाती है धारक विधि मे दूध को 63° पर आधा घण्टा तक गरम करके उसे तुरन्त ठण्डा कर दिया जाता है 'अल्प-अवधि-उच्च-ताप' विधि में दूध का लगातार पास्तुरीकरण चलता रहता है इस विधि मे कच्चे दूध को एक ओर से पम्प करके वाछित ताप पर निर्धारित समय तक गरम किया जाता है और तुरन्त ठडा करके बोतलो में भर दिया जाता है इस विधि मे दूध को 72° पर 16 सेकेण्ड तक गरम करते हैं पास्तुरीकरण से दूध मे उपस्थित गोजातीय गुलिका बैसिलस तथा अन्य स्पोर न बनाने वाले रोगजनक जीवाणुओ के साथ-साथ अवाछित गन्ध तथा स्वाद उत्पन्न करने वाले अन्य जीवाणु भी नष्ट हो जाते है कुछ जीवाणु-उत्पादक रोगजनक, जैसे, क्लास्ट्रीडियम बोटूलिनम तथा क्ला परफ्रिजेन्स जो पास्तुरीकरण के द्वारा नष्ट नही होते वृद्धि करके विष उत्पन्न करने के पश्चात् ही हानि पहुँचाते है सामान्य प्रशीतित सचयन के अन्तर्गत इन जीवाणुओ की वृद्धि रुक जाती है 63° (अथवा अधिक) ताप पर क्यू-ज्वर उत्पादक जीवाणु भी नष्ट हो जाते है पास्तुरीकरण से दूध के भौत-रासायनिक गुणधर्मो तथा पोषण मान पर विशेष प्रभाव नही पडता

जीवाणुनाशन – जीवाणुनाशन द्वारा भी दूध को जीवाणु-मुक्त किया जा सकता है दूध को बोतलो अथवा डिब्बो मे भरकर 100° ताप पर भिन्न-भिन्न अवधियो तक गरम करके जीवाणुओ से रहित किया जाता है यह निर्जर्मित दूध पास्तुरीकृत दूध की अपेक्षा काफी अधिक समय तक (लगभग एक सप्ताह तक) खराब नही होता

पौष्टीकरण – विटामिन डी प्रचुर न होने से कभी-कभी दूध मे विटामिन डी युक्त पदार्थो को डालकर उसकी मात्रा बढायी

जाती है दूध में विटामिन डी के स्तर को परावैंगनी किरणों के किरणन से भी बढाया जा सकता है, क्योंकि किरणन से 7-डिहाइड्रो-कोलेस्टेरॉल (प्रो-विटामिन डी) विटामिन डी$_1$ में बदल जाता है किरणित किये गये यीस्ट को गायो को खिलाने से भी दूध में विटामिन डी की मात्रा बढ सकती है (डेरी-उद्योग में प्रयुक्त विभिन्न ससाधनो के विस्तृत विवरण के लिये देखें, With India—Industrial Products, pt III, 1-38)

दूध का अपमिश्रण

भारत में दूध के लिये वे ही वैधानिक मानक स्वीकृत हुये हैं जो विदेशों में है इस सम्बन्ध में देश के कुछ ही भागो के आंकडे उपलब्ध हैं खाद्य अपमिश्रण निरोधक अधिनियमो के अन्तर्गत दूध की वैधानिक सघटन सीमायें (सारणी 91) दी गयी हैं और ऐसा दूध जो इन न्यूनतम सीमाओ तक नही पहुँचता उसे अपमिश्रित करार दिया जाता है

दूध के घटको के सामान्य स्तर मे परिवर्तन के लिये उसमे या तो दुग्ध-चूर्ण मिलाया जाता है अथवा दूध से वसा पृथक् कर ली जाती है बाजारो में दूध की आपूर्ति न हो सकने के कारण अपमिश्रण सामान्य हो गया है हाल ही मे राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान फार्म से प्राप्त दूध तथा स्थानीय ठेकेदारो से खरीदे गये दूधो के सघटन की तुलना की गयी है परिणामो से यह ज्ञात हुआ है कि फार्म के दूध में वसा की मात्रा 6 3 से 8 2 तथा वसा-रहित ठोस की मात्रा 9 6 से 10 5% थी बाजार के दूध मे वसा 6 0–6 5% और वसारहित ठोस 9 0–9 5% निकला बाजार के सभी नमूनो मे 10–25% जल मिलाया गया था

गायो तथा भैंसो के दूध के रासायनिक सघटन मे अत्यधिक अन्तर होने के कारण, भैंस के दूध मे पानी या मखनियाँ दूध की मिलावट करके उसे गाय का दूध कह कर बेचा जाता है राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल में 'हसा परीक्षण' नाम से एक परीक्षण विधि विकसित की गयी है जिसकी सहायता से गाय के दूध मे 3% तक मिलाये गये भैंस के दूध का पता लगा लिया जाता है भारत के विभिन्न राज्यों मे इस परीक्षण का सफल प्रयोग किया गया है गाय के दूध मे मिलाये गये भैंस के 5% दूध तक की उपस्थिति का पता भी 'वर्ण प्रकाश लेखी' विधि द्वारा लगाया जा सकता है दूध में अपमिश्रित जल, दूध को गाढा करने वाले पदार्थ (जैसे शर्करा तथा स्टार्च) और मखनियाँ दूध और दुग्ध-चूर्ण की पहचान करने के भी परीक्षण ज्ञात हैं

दूध तथा इसके उत्पादो के सघटन, सूक्ष्म जैविकीय गुण, पास्तुरीकरण की सफलता तथा प्रतिजैविको, जीवनाशी पदार्थों अथवा रेडियो-सक्रियता से हुये सदूषण के निर्धारण के लिये उनके विभिन्न परीक्षण किये जाते हैं दूध के तत्काल परीक्षण के लिये राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल में आवश्यक उपकरणो से लैस लकडी का एक बक्सा बनाकर मानकित किया गया है (IS: 3864–1966)

सारणी 91 – कुछ राज्यो में दूध के लिये (%) वैधानिक मानक*

राज्य	गाय का दूध		भैंस का दूध	
	न्यूनतम वसा	न्यूनतम वसारहित ठोस	न्यूनतम वसा	न्यूनतम वसारहित ठोस
पजाब	4 0	8 5	6 0	9 0
महाराष्ट्र	3 5	8 5	6 0	9 0
उत्तर प्रदेश	3 5	8 5	6 0	9 0
बिहार	3 5	8 5	6 0	9 0
पश्चिमी बगाल	3 5	8 5	6 0	9 0
तमिलनाडु	3 5	8 5	5 0	9 0
दिल्ली	4 0	8 5	6 0	9 0
गुजरात	3 5	8 5	6 0	9 0
उड़ीसा	3 0	8 5	5 0	9 0
असम	3 5	8 5	6 0	9 0

*Prevention of Food Adulteration Rules, 1955, as amended upto July, 1963

दुग्ध-उत्पाद

पिछली शताब्दी मे डेरी उद्योग मे कई महत्वपूर्ण प्रगतियाँ हुयी तथा इस अवधि मे दूध के रसायन एव जीवाणु-विज्ञान के सम्बन्ध मे जो ज्ञान प्राप्त किया गया है उससे न केवल दूध तथा दुग्ध उत्पादो के ससाधन का नियत्रण हो सका है, बल्कि उसके आधार पर नये उत्पादो का निर्माण भी किया जाने लगा है अन्य क्षेत्रो में की गयी प्रगतियो के फलस्वरूप डेरी उद्योग मे और भी उन्नतियाँ हुयी है, जिनमे से प्रमुख हैं प्रशीतन, पास्तुरीकरण, दूध रखने के यन्त्रो का विकास, परीक्षण विधियाँ, गुणता नियत्रण, पशु प्रजनन तथा प्रबन्ध और मानव पोषण का ज्ञान इन्ही प्रगतियो के फलस्वरूप भारत की शहरी दुग्ध-आपूर्ति-परियोजनाये सम्भव हो सकी है इसके साथ-साथ ससाधित पनीर, क्रीम, आइसक्रीम, सघनित दुग्ध, सूखा दूध, नवजात शिशु आहार इत्यादि का उत्पादन भी सम्भव हो सका है भारत की बडी-बडी दुग्ध आपूर्ति परियोजनायें तथा दूध एव विभिन्न दुग्ध-उत्पादो के उत्पादन का विस्तृत विवरण इसी ग्रथ के गो तथा भैंस जातीय पशु नामक अध्याय मे दिया गया है

दूध के रख-रखाव मे तथा द्रव रूप मे इसकी बिक्री मे कठिनाई होने के कारण अधिक दूध को ऐसे दुग्ध-उत्पादो मे परिणित कर लिया जाता है जिन्हे काफी समय तक रखा तथा सुविधानुसार दूर-दूर तक बिक्री के लिये भेजा जा सकता है देश मे उत्पादित दूध का अधिकाश (60%) विभिन्न दुग्ध-उत्पादो मे परिवर्तित कर लिया जाता है इसका 2/3 भाग केवल घी के रूप मे तथा शेष भाग दही और पनीर इत्यादि के रूप मे और साथ ही साथ मिठाई बनाने के लिये खोआ, छेना, रबडी (खुले तसलो में शर्करा के साथ आंशिक जलवियोजन करने से प्राप्त थक्केदार क्रीम) के रूप में प्रयुक्त होता है

भारत के कुछ प्रमुख दुग्ध-उत्पादो का रासायनिक सघटन सारणी 92 में दिया गया है

दही – भारत मे लगभग समस्त स्थानो पर दही प्रयोग में लाया जाता है दही बनाने के लिये पूर्ण अथवा मखनिया दूध (वसा

सारणी 92 – कुछ दुग्ध उत्पादो का रासायनिक सघटन*

(खाद्य अश के प्रति 100 ग्रा पर)

उत्पाद	जल (ग्रा)	प्रोटीन (ग्रा)	वसा (ग्रा)	कार्बो-हाइड्रेट (ग्रा)	खनिज (ग्रा)	कैल्सियम (ग्रा)	फास्फोरस (मिग्रा)	लोहा (मिग्रा)	विटामिन ए मान (अ इ)	थायमीन (मिग्रा)	राइबोफ्लेविन (मिग्रा.)	निकोटिनिक अम्ल (मिग्रा.)	विटामिन सी (मिग्रा)
मक्खन†	19 0		81 0		2 5				3 200				
गाय का घी, ताजा, अधिक नमी युक्त	8 0		92 0		0				2,000				
गाय का घी, ताजा, कम नमी युक्त	0 5		99 5						2 000			.	
घी, भैंस का	100 0		100 01	-					900		..	.	
दही‡	89 1	3 1	4 00	3 0	0 8	149	93	0.3	102	0 05	0 16	0 1	1
लस्सी (मट्ठा)	97 5	0 8	1 1	0 5	0 1	30	30	0 8					
मखनियाँ दूध (द्रव)	92 1	2 5	0 1	4 6	0 7	120	90	0 2			.	0 1	1
मखनियाँ दुग्ध-चूर्ण (गाय का)	4 1	38 0	0 1	51 0	6 8	1,370	1,000	1 4	0	0 45	1 64	1 0	5
सपूर्ण दुग्ध-चूर्ण (गाय का)	3 5	25 8	26 7	38 0	6 0	950	730	0 6	1 400	0 31	1 36	0 8	4
सघनित मीठा गाय का दूध**	25 0	8 2	10 0	55 0	1 8	275	229	0 2	510	0 05	0 39	0.2	10
वाष्पित, साधारण गाय का दूध**	73 7	7 0	7 9	9 9	1 5	243	195	0 2	400	0 05	0 36	0 2	10
छेना (गाय के दूध का)	57 1	18 3	20 8	1.2	2 6	208	138		366	0 07	0 02		3
छेना (भैंस के दूध का)	54 1	13 4	23 0	7 9	1 6	480	277		..	.			
पनीर	40 3	24 1	25 1	6 3	4 2	790	520	2 1	273				.
खोआ (सपूर्ण भैंस के दूध का)	30 6	14 6	31 2	20 5	3 1	650	420	5 8	.	.	..	..	
खोआ (मखनियाँ भैंस के दूध का)	46 1	22 3	1 6	25 7	4 3	990	650	2 7					
खोआ (सपूर्ण, गाय के दूध का)	25 2	20 1	25 9	24 8	4 0	956	613		497	0 24	0 41	0 4	

*Nutritive Value of Indian Foods, 81-82, 117, 140-141, **Wu Laung *et al* Agric Handb , U S Dep Agric , No 34, 1952, 39

† इसमे विटामिन डी भी लगभग 40 अ इ /100 ग्रा रहता है ‡ इसमे 32 0 मिग्रा सोडियम तथा 130 मिग्रा पोटैसियम भी प्रति 100 ग्रा मे पाया जाता है

रहित दूध) को उबाल कर और उसे 37° तक ठडा करके उसमें लगभग 2% सवर्ध (लैक्टिक अम्ल जीवाणु अथवा मिश्रित सवर्ध) डालकर भली-भाँति मिलाकर उसी ताप पर छोड दिया जाता है अच्छे जामन का प्रयोग करने पर 6 से 10 घण्टे मे 0 9–1 0% अम्लीयता का दही प्राप्त होता है अच्छे दही के प्रमुख लक्षण है . स्वाद, गाढापन, तथा दही का पानी न होना

पश्चिमी बगाल जैसे भारत के कुछ भागो मे मीठा दही बनाया जाता है इसके लिये वाछित स्वाद को ध्यान में रखते हुये दूध में लैक्टिक अम्ल जीवाणु सवर्ध डालने के पूर्व 14–25% चीनी मिलायी जाती है

'खाद्य अपमिश्रण निरोधक अधिनियम', 1955 के अनुसार दही को या तो गाय अथवा भैंस के दूध को खट्टा करके बनाना चाहिये चीनी तथा गुड के अतिरिक्त इसमे ऐसा कोई अवयव नही रहना चाहिये जो दूध मे न पाया जाता हो

मट्ठा (लस्सी) – मट्ठा या लस्सी भारत का एक सामान्य पेय है दही को मथ करके वसा अलग कर ली जाती है और बचे हुये अम्लीय मट्ठे (लस्सी) को ऐसे ही अथवा उसमे शर्करा, क्रीम तथा सुगंधि मिलाकर प्रयोग मे लाया जाता है मखनियाँ दूध से बनाये गये दही से भी लस्सी तैयार की जाती है भारतीय मानक सस्थान ने मट्ठे के चूर्ण के मीठे क्रीम का विनिर्देशन किया है सूखे मट्ठे को पशु-आहार के रूप में तथा बेकरी उत्पादो में प्रयोग किया जा सकता है (IS 5163-1969)

दही तथा लस्सी का सघटन सारणी 92 में दिया हुआ है

सघनित दूध तथा वाष्पित दूध – सम्पूर्ण दूध से क्रीमसहित जल का कुछ अश पृथक् करके और चीनी मिलाकर अथवा बिना चीनी डाले दूध को गाटा करके 'सघनित दूध' तैयार किया जाता है इसमे 'वाष्पित दूध' तो सम्मिलित रहता है परन्तु इसके अन्तर्गत 'सूखा दूध' तथा 'दुग्ध-चूर्ण' नही आते 'खाद्य

अपमिश्रण निरोधक अधिनियम' के अनुसार इसमे शर्करा के अतिरिक्त कोई अन्य परिरक्षक नही रहना चाहिये इसमे कम-मे-कम 31% दूध के ठोस अवयव होने चाहिये जिसका 9% वसा के रूप मे रहे मखनियाँ दूध से भी, शर्करा डालकर अथवा शर्करा के विना ही गाढा बनाकर, सघनित दूध तैयार किया जा सकता है इस मीठे दूध में वसासहित दूध के ठोस अवयवो की कुल मात्रा 26% तथा विना शर्करा वाले सघनित दूध मे 20% से कम नही रहनी चाहिये सघनित दूध तैयार करने का मुख्य उद्देश्य द्रव दूध के आयतन को कम करके उसे दूर-दूर तक लाने-लेजाने और अधिक समय तक परिरक्षित रखने मे सुभीता पैदा करना है सघनित दूध को पानी से तनु करके सरलता से ताज़ा द्रव दूध बनाया जा सकता है इसे नवजात शिशु-आहार, आइसक्रीम, बेकरी उत्पादो तथा मिठाइयाँ बनाने के लिये प्रयुक्त किया जाता है

गाय के मीठे सघनित दूध तथा विना शर्करा वाले वाष्पित दूध का सघटन सारणी 92 में दिया गया है

दुग्ध-चूर्ण – दूध को कम ताप पर शुष्कित करके दुग्ध-चूर्ण या सूखा दूध बनाया जाता है जिससे पुन द्रव दूध तैयार किया जा सकता है दुग्ध-चूर्ण बनाने के प्रमुख उद्देश्य है . (1) दूध के ठोस अवयवो को लम्बी अवधि तक परिरक्षित करना, (2) दूर-दूर तक दूध के परिवहन व्यय मे कमी लाना, (3) संकटकाल मे अथवा दूध की कमी वाले क्षेत्रो मे दूध की आपूर्ति करना, और (4) नवजात शिशु आहार तैयार करना

बडे पैमाने पर दुग्ध-चूर्ण तैयार करने के लिये फुहार अथवा रोलर-शुष्कन विधि अपनायी जाती है समस्त दुग्ध-चूर्ण उत्पादन का लगभग 95% फुहार-शुष्कन विधि से ही प्राप्त किया जाता है इस विधि के अन्तर्गत, पूर्व सघनित दूध को एक बडे शुष्कन कक्ष मे छिडकते हैं उसी समय कक्ष मे गरम वायु भेजी जाती है जिससे दूध की छोटी-छोटी बूदे तुरन्त सूखकर कक्ष के फर्श पर सूखे चूर्ण के रूप मे गिरने लगती हैं

फुहार-शुष्कन विधि द्वारा तैयार किये गये पूर्ण दुग्ध-चूर्ण का स्वाद फीका होता है, तथा बाद मे वसा के ऑक्सीकरण के फलस्वरूप इसमे चर्वीदार तथा अवाछित गध आ जाती है इसीलिये इसकी डिब्बाबन्दी या तो नाइट्रोजन अथवा नाइट्रोजन और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के मिश्रण मे की जानी चाहिये

रोलर-शुष्कन विधि मे, दूध को या तो ऐसे ही अथवा निर्वात कडाहो मे सघनित करने के पश्चात् वाष्प द्वारा गरम धातु के बेलनो के ऊपर डाला जाता है ये बेलन धीरे-धीरे घूमते तथा अन्दर से वाष्प द्वारा गरम होते रहते हैं बेलनो पर, दूध की सूखी तह को खुरचने वाली धातु की पत्ती से अलग करके पीस लेने के बाद छान लेते है काफी अधिक ताप पर सुखाये जाने के कारण बेलन-शुष्कन विधि द्वारा तैयार किये गये सूखे दूध की विलेयता फुहार-शुष्कन विधि द्वारा तैयार शुष्कित दूध की अपेक्षा कम होती है रोलर-शुष्कन विधि द्वारा तैयार किये गये सूखे दूध को विस्कुट, रोटी तथा शिशु-आहार बनाने के लिये प्रयुक्त करते है फुहार-शुष्कन विधि द्वारा तैयार किया गया सूखा दूध जल मे 99% तक विलेय होता है और इसे फिर से द्रव दूध बनाने के लिये काम मे लाते है

पूर्ण तथा मखनियाँ दूध से बनाये गये दुग्ध-चूर्णो का सघटन सारणी 92 मे दिया गया है ताजे बने हुये खुले रखे दुग्ध-चूर्ण मे जल की मात्रा केवल 2–3% होगी दुग्ध-चूर्णो का कणाकार

सारणी 93 – दुग्ध-चूर्ण के लिये आई एस. आई. विनिर्देश*

	संपूर्ण दुग्ध-चूर्ण	मखनियाँ दुग्ध-चूर्ण
आर्द्रता (%), अधिकतम	3 0	3 5
कुल दुग्ध ठोस (%), न्यूनतम	97 0	96 5
विलेयता (%), न्यूनतम		
रोलर विधि से सुखाया	85 0	85 0
फुहार विधि से सुखाया	98 5	98 5
कुल राख (%), अधिकतम	7 0	9 0
वसा (%), न्यूनतम	26 0	1 5
अनुमाप्य अम्लता (लैक्टिक अम्ल के रूप मे) (%), अधिकतम	1 0	1 25
जीवाणु संख्या/ग्रा अधिकतम	50,000	50,000

* IS 1165–1957

5 तथा 1,000 माइक्रॉन के बीच होता है फुहार-शुष्कन विधि द्वारा निर्मित दुग्ध-चूर्ण के कण गोलाकार होते हैं जबकि रोलर-शुष्कन विधि द्वारा तैयार किये गये दुग्ध के कणो का रूप और आकार निश्चित नही है

दुग्ध-चूर्ण की विलेयता उसके गुणो की निर्देशक होती है दूध को अधिक ताप पर सुखाना, सुखाने के पूर्व दूध की अम्लता तथा चूर्ण मे उपस्थित अधिक नमी इसकी विलेयता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है

दुग्ध-चूर्ण श्वेत अथवा हरी आभा लिये हुये श्वेत से लेकर हल्के क्रीम रग का होना चाहिये तथा इसमे ढेले और भूरे अथवा काले रग के धब्बे नही होने चाहिये दुग्ध-चूर्ण धूल, बाह्य पदार्थो, परिरक्षको, रजको तथा हानिकारक या विषैले पदार्थो से मुक्त होना चाहिये दुग्ध-चूर्ण के लिये स्थापित आई एस आई के विनिर्देशन सारणी 93 मे दिये गये हैं

शिशु आहार – शिशु आहार या तो गाय अथवा भैस के दूध या दोनो के मिश्रण को फुहार-शुष्कन अथवा रोलर-शुष्कन विधि द्वारा सुखाकर बनाया जाता है दूध की वसा का अश पृथक करके उसमे विभिन्न कार्बोहाइड्रेट, जैसे सूक्रोस, डेक्सट्रोस तथा डेक्सट्रिन, माल्टोस और लैक्टोस तथा फॉस्फेट एव सिट्रेट जैसे लवण और विटामिन ए, बी, सी, एव लोहा तथा कैल्सियम मिलाकर दूध को परिवर्तित किया जा सकता है

आनन्द दुग्ध सगठन (अमूल), भारत का पहला सहकारी सगठन है जिसने केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर के तकनीकी सहयोग से 1960 से ही शिशु-दुग्ध आहार बनाना आरम्भ किया आरम्भ मे इस कारखाने की दैनिक उत्पादन क्षमता 11 टन थी और इससे प्रतिवर्ष औसतन 2,540 टन शिशु-दुग्ध आहार तैयार किया जाता था यह उत्पाद भैस के ताजे दूध से भारतीय शर्तो के अनुसार अनुकूलन तथा मानकीकरण करने के पश्चात् बनाया जाता है और यह आयातित विदेशी शिशु आहार के समान होता है आई एस आई के विनिर्देशन के अनुसार इसमे प्रोटीन, 22%, वसा, 18 0% तथा दही तनाव, 3 5% पाया

जाता है इस दुग्ध-चूर्ण मे, भार के अनुसार 7 गुना जल मिलाकर फिर से शिशुओ के लिये आदर्श दूध प्राप्त किया जाता है जिसमे 2 75% प्रोटीन तथा 2 25% वसा रहती है शिशु दुग्ध आहारो के सचयन गुणो पर सम्पन्न अन्वेषणो से यह ज्ञात हुआ है कि नाइट्रोजन के साथ डिब्बावन्द दुग्ध-चूर्ण, वायु मे डिब्बावन्द चूर्ण की अपेक्षा दुगनी अवधि तक सुरक्षित रहता है अमूल शिशु दुग्ध आहार मे नमी, 3 0, कार्बोहाइड्रेट (लैक्टोस तथा शर्करा), 52 0, राख, 5 0, कैलिसयम, 1 0, फॉस्फोरस, 0 8, तथा लोहा, 0 004 ग्रा /100 ग्रा , विटामिन ए, 1,500 तथा विटामिन डी, 400 अ इ और विटामिन वी$_1$, 0 6, विटामिन वी$_2$, 1 0, नियासिनामाइड, 6 0, पिरिडॉक्सिन, 0 03, तथा विटामिन सी, 30 0 मिग्रा /100 ग्रा पाये जाते है

मुख्यत शिशु दुग्ध आहार दुग्ध-चूर्ण से ही वनाये जाते है जिनमे स्टार्च तथा दुग्ध वसा के अतिरिक्त अन्य कोई वसा नही होनी चाहिये आई एस आई विनिर्देश के अनुसार शिशु दुग्ध आहार में नमी, ≯3 5, कुल दुग्ध ठोस, ≯20 0, कुल कार्बोहाइड्रेट (स्यूक्रोस, डेक्सट्रोस तथा डेक्सट्रिन, माल्टोस अथवा लैक्टोस को मिलाकर), ≮35 0, कुल राख, ≯8 5, HCl मे अविलेय राख, ≯0 01, दुग्ध वसा, 10 0–28 0 तथा जल विलेयता, ≮85 (रोलर द्वारा शुष्कित), ≮98 5% (फुहार द्वारा शुष्कित), विटामिन ए, ≮1 500 अ इ /100 ग्रा , लोहा, ≮4 0 मिग्रा /100 ग्रा जीवाणु सख्या/ग्रा , ≯50,000 तथा कॉलीफार्म सख्या/ग्रा , ≯10 (IS 1547-1960) होनी चाहिये

माल्ट सार तथा दूध के मिश्रण से रोलर अथवा फुहार-शुष्कन विधि द्वारा माल्टी दूध वनाया जाता है यह वच्चो, अपाहिजो तथा स्वास्थ्य लाभ करने वालो के लिये आहार के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है वहुत अच्छे स्वाद के साथ इसमें माल्टोस तथा डेक्सट्रिन जैसे सुपाच्य कार्बोहाइड्रेट भी रहते है माल्टी दूध मे कोकोआ चूर्ण मिलाकर इसे और भी स्वादिष्ट वनाया जा सकता है जिससे अत्यन्त स्वादिष्ट पेय भी वन सकता है भारतीय मानक सस्थान ने माल्टी दुग्ध आहार तथा कोकोआ चूर्ण मिले हुये माल्टी दुग्ध आहार के लिये विनिर्देशन दिये हैं (IS 1806-1961, 2003-1962)

क्रीम—क्रीम दूध का एक प्रमुख व्यापारिक उत्पाद है जो विदेशी वाजारो मे काफी मात्रा में मिलता है जवकि भारत मे इसे वनाकर तुरन्त प्रयोग कर लिया जाता है कभी-कभी इसे घी वनाने के लिये व्यवहृत किया जाता है इसके उत्पादन तथा उपभोग के आँकडे उपलब्ध नही हैं

क्रीम बनाने के लिये दूध को परापकेन्द्रीय पृथक्कारी मे पेरा जाता है जिससे क्रीम तथा मखनिया दूध अलग-अलग हो जाते है क्रीम, अधिक वसा वाला दूध है जिसमें वसा की मात्रा 50% तक पायी जाती है इसे आइसक्रीम, मक्खन, तथा अनाजो के साथ और कॉफी मे मिलाकर तथा मथकर दही-चीनी जैसे खाद्य बनाने के लिये काम मे लाते है

मक्खन—यह दो विधियो से तैयार किया जाता है (1) क्रीम विधि, तथा (2) देशी विधि क्रीम-मक्खन वनाने का मुख्य उद्देश्य अधिक वसायुक्त उत्पाद प्राप्त करना होता हे जिसे सीधे रोटी, विस्कुट इत्यादि के साथ प्रयोग मे लाया जा सके हस्तचालित एक ऐसी मक्खन-मथनी (ऊपर से नीचे पलटने वाली) वनायी तथा मानकीकृत की गयी है (IS 2703-1964), जिससे एक वार मे 10 या 20 किग्रा मक्खन तैयार होता है इस मक्खन मे ≮ 80% दुग्ध-वसा तथा ≯ 16% जल होना चाहिये इसमे 2 5% तक लवण मिलाया जा सकता है तथा अनाटो द्वारा इसमे रग भी प्रदान किया जा सकता है इसमें परिरक्षक मिलाना वर्जित है मक्खन को स्वादिष्ट वनाने के लिये इसमे 40 अश प्रति करोड अश तक डाइऐसीटिल डाला जा सकता है

देशी मक्खन केवल दूध, क्रीम, गाय अथवा भैस के दूध की दही द्वारा विना कोई लवण, रग अथवा परिरक्षक डाले तैयार किया जाता है इसे खाना बनाने अथवा घी वनाने के लिये प्रयोग में लाते है इसमे जल 20% से अधिक तथा दुग्ध-वसा 76% से कम नही होनी चाहिये इस मक्खन मे उपस्थित कुल दही (0 7–1 0%) का 0 3–0 5% केसीन, तथा 0 15–0 25% तक लैक्टोस होता है मक्खन मे राख की मात्रा 0 012% रहती है

मक्खन के नमूने एकत्रित करने की विधि तथा उसके भौतिक, रासायनिक एव जीवाणुकीय परीक्षणो के लिये भारतीय मानक सस्थान ने विनिर्देशन दिये है (IS 3507-1966)

घी (मक्खन तेल)—भारत में, साधारण ताप पर रखे गये मक्खन की सरचना ठीक नही रह पाती तथा वह शीघ्र ही खराव हो जाता है इसीलिये इससे घी वना लिया जाता है घी वनाते समय इसका जीवाणुनाशन हो जाता है जिससे यह सूक्ष्मजीवो अथवा रासायनिक क्रियाओ द्वारा सदूषण के कारण खराव नही होता घी अनिवार्यत मखनिया वसा है जो मक्खन अथवा क्रीम को गरम करके तथा खौलाकर इसमे से जल को पूर्णतया निकालने के पश्चात् प्राप्त होता है भारत में अधिकाश घी, भैस के दूध से तैयार किया जाता है घी वनाने के लिये गाय के दूध का प्रयोग वहुत कम मात्रा में तथा भेड और वकरी के दूध का प्रयोग तो और भी कम मात्रा में किया जाता है भारत मे तैयार किये गये कुल घी का 4/5 भाग खाने की चीजो को पकाने अथवा तलने के लिये प्रयोग में लाया जाता है शेष भाग हलवाइयो द्वारा मिठाई वनाने और कुछ मात्रा कच्ची ओषधियाँ वनाने, सुघनी अथवा मालिश के लिये प्रयोग मे लायी जाती है

घी वनाने के लिये भारत मे मुख्य रूप से दो विधियाँ अपनायी जाती है क्रीम-मक्खन से, जो क्रीम को मथकर तथा यात्रिक विधि से पृथक् किया जाता है, तथा देसी विधि से दही या मलाई को मथकर निकाले गये मक्खन से अधिकाश उत्पादन देशी विधि से किया जाता है क्रीम-मक्खन से घी वनाने का प्रचलन वडी डेरियो में है जहाँ वचे हुये मक्खन को घी मे परिवर्तित कर लिया जाता है ऐसे उत्पादो की विक्री सीमित मात्रा में होती है विहार के कुछ भागो मे, यात्रिक विधि से पृथक् की गयी क्रीम से मक्खन की भाँति खौलाकर घी वनाया जाता है क्रीम से वनाया गया घी वहुत अच्छा होता है तथा इस विधि से छोटे अथवा वडे सभी तरह के उत्पादक घी का उत्पादन सुगमता से कर सकते है

देशी विधि मे, सवसे पहले गुनगुने दूध में (उवालने के वाद) पिछले दिन के मट्ठे अथवा दही को (2–10%) जामन के रूप मे मिलाकर दही वनाते है इस दही को मिट्टी अथवा पीतल के वर्तन मे लकडी की मथानी मे 20–30 मिनट तक मथा जाता है और जो मक्खन सतह पर आ जाता है उसे हाथ से मथानी मे से विलग करके अगुलियो के वीच मे दवाकर सग्रह करते है इस मक्खन को मध्यम तथा स्थायी आँच पर तव तक गरम किया जाता है जव तक उसका पूरा पानी समाप्त न हो जाय विभिन्न स्थानो तथा परिस्थितियो मे वनाये गये घी के गुणो मे विविधता होती है लोहे

सारणी 94 – विभिन्न नस्लो की गायो, भैंसो, बकरियो तथा भेड़ो के दूध से प्राप्त घी के गुण*

वैश्लेषिक स्थिरांक	गाय					मुर्रा भैंस	सूरती बकरी	काठियावाड़ी भेड़
	दोगली नस्ल (आयरशायर×सिंधी)	गिर	साहीवाल	सिंधी	थारपारकर			
ब्यूटिरो-अपवर्तनांकमापी (बी आर.) सूचकांक, 40° पर	43 03	43 10	42 90	42 85	43 05	42 04	42 60	43 40
आर एम मान	27 26	26 42	26 60	27 00	29 20	32 54	26 35	32 82
पोलेन्स्की मान	1 75	1 72	1 80	1 70	1 94	1 41	5 30	2 67
कर्शनर मान	22 70	21 80	22 00	21 33	25 70	28 52	19 96	26 93
साबुनीकरण मान	227 00	227 10	227 30	227.18	230 30	230 09	229 30	231 60
आयोडीन मान	33 60	33 50	33 20	32 80	33 90	29 40	35 10	36 04
रग (लॉवीवाण्ड पीत, इकाइयां / ग्रा)	9 00	9 00	8 00	8 40	9.50	0 80	1 10	1 40
विटामिन ए (अ इ /ग्रा.)	24 20	22 57	22 76	23 11	21 89	21 90	23 91	23 89

*Basu *et al*, *Rep Ser*, *Indian Coun agric Res*, *No* 8, 1962

अथवा पीतल के वडे कडाहो मे रखकर तथा 70–85° पर गरम करके इस घी को परिष्कृत किया जाता है गरम करने के पश्चात् उसे 2–5 घण्टो तक रख छोडा जाता है और फिर उपरिस्तर पर वने मल को अलग करके टिनो मे भरकर ठण्डे स्थानो मे दो दिन के लिये छोड दिया जाता है जिससे इसका समुचित क्रिस्टलीकरण हो जाय अथवा दाने वन जायें

देशी विधि, क्रीमरी मक्खन विधि तथा सीधे क्रीम से घी की उपलब्धि क्रमश· 86 6, 90 2 तथा 92 3% होती है

घी की विशुद्धता तथा उसके गुणो की पहचान उसके भौत-रासायनिक लक्षणों से की जाती है सारणी 94 मे विभिन्न नस्लो की गायो, भैंसो, वकरियो तथा भेडो से प्राप्त घी के विश्लेषण स्थिरांको के औसत मान दिये गये हैं भैंस का घी ठोस रहने पर सफेद तथा तरल अवस्था मे हल्का पीला रहता है हरे चारे के उपभोग मे वरसात मे भैंस के घी का रग हरापन लिये होता है गाय का घी पीलापन लिये हुये तथा वकरी और भेड का घी गहरे पीले रग का होता है गाय के घी का राइकर्ट मान अपेक्षाकृत कम तथा ब्यूटिरो अपवर्तनाक मापी (बी आर) मान अधिक होता है भैंस के घी का राइकर्ट मान अधिक तथा वी आर मान कम होता है वकरी तथा भेड दोनो के घी का पोलेन्सकी मान उच्च होता है

घी का सघटन मुख्यत उस दूध के सघटन पर निर्भर करता है जिससे घी वनाया जाता है एक ही नस्ल के पशुओ मे, आहार के अनुसार घी का सघटन प्रभावित होता है अच्छे घी में सुहावनी गध तथा रुचिकर स्वाद होना चाहिये तथा विकृतगधिता और अन्य आपत्तिजनक गध तथा स्वादो से मुक्त होना चाहिये गाय तथा भैंस के घी का सघटन सारणी 92 मे दिया गया है गाय के घी मे कैरोटीन तथा विटामिन ए की मात्रायें बहुत हद तक उनके आहार पर निर्भर करती हैं पशुओ को कैरोटीनयुक्त आहार देने से घी मे विटामिन ए की मात्रा वढायी जा सकती है घी मे विटामिन ए की मात्रा काफी हद तक स्थिर रहती है किन्तु छ माह तक भडारन करने से इसकी मात्रा घटकर लगभग आधी हो जाती है और एक वर्ष तक भडारित रहने पर पूरा विटामिन ए नष्ट हो जाता है धूप में 30 मिनट तक तथा परावैगनी प्रकाश में केवल 10 मिनट तक खुला छोड देने पर घी का सम्पूर्ण विटामिन ए नष्ट हो जाता है

ऐगमार्क विनिर्देश के अनुसार विभिन्न श्रेणियो के घी को सारणी 95 मे दी गयी शर्तें पूरी करनी होती हैं

खाद्य अपमिश्रण निरोधक अधिनियम 1955 (31 मार्च, 1962) के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यो तथा केन्द्र शासित प्रदेशो मे तैयार किये गये घी के निम्नलिखित मानक होने चाहिये मुक्त वसा अम्ल (ओलीक अम्ल के रूप में), ≯ 3%, तथा जल, ≯ 0 3%. गुजरात में सौराष्ट्र तथा कच्छ और राजस्थान में जोधपुर मंडल, पश्चिमी वगाल मे विष्णुपुर क्षेत्र तथा मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के कपास उगाने वाले क्षेत्रों मे तैयार घी का ब्यूटिरो अपवर्तनाक मापी मान 40° पर 41 5–45 0 और शेष राज्यो के घी का यही मान 40 0–43 0 होता है देश के विभिन्न भागो के घी का न्यूनतम राइकर्ट मान 21, 24, 26 अथवा 28 सस्तुत किया गया है घी को वौडोइन परीक्षण नही देना चाहिये

घी को अत्यधिक अपमिश्रित किया जाता है तथा इसके सामान्य अपमिश्रक हाइड्रोजनीकृत वनस्पति तेल (वनस्पति) हैं वनस्पति उत्पाद नियत्रक (भारतीय गजट, अक्टूबर 21, 1950, एस आर ओ, 780) द्वारा प्रकाशित आदेश के अनुसार हाइड्रोजनीकृत वसा की पहचान सुगम हो गयी है तदनुसार हाइड्रोजनीकृत वनस्पति तेल मे कच्चे अथवा परिशोधित तिल के तेल की मात्रा 5% से कम नही होना चाहिये अन्तिम उत्पाद मे इसका पता वौडोइन परीक्षण द्वारा लगाया जा सकता है इस परीक्षण मे घी तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (आ घ, 1 19) के 1 . 1 मिश्रण मे से 10 मिली लेकर उसमे 6–8 बूद 2% ऐल्कोहलीय फरफ्यूरॉल मिलाकर भली-भाँति हिलाया जाता है. घी मे हाइड्रोजनीकृत तेल होने पर वह लाल हो जायेगा और यह रग 10 मिनट तक वना रहेगा

घी में अपमिश्रित वनस्पति वसाओ का पता फाइटोस्टेरॉल ऐसीटेट परीक्षण द्वारा भी लगाया जा सकता है. यह परीक्षण

सारणी 95—ऐगमार्क घी के भौत-रासायनिक लक्षण

स्थिराक	गाय का घी	भैंस का घी	विशेष	सामान्य
बी आर पाठ्याक, 40° पर	40 5–42 5	40 5–42 5	40 5–42 5	40 5–52 5
जल (%), अधिकतम	0 5	0 5	0 5	0 5
आर एम मान	26–28	≮30	≮28	≮28
पोलेन्स्को मान	1 5–2 5	1 0–1 75	1 0–2 0	1 0–2 0
कर्शनर मान	20–25	≮25		
मुक्त वसा अम्ल (% ओलीक अम्ल), अधिकतम	1 5	1 5	1 5	2 5
गलन विन्दु, अधिकतम	34°	34°	34°	34°

टिप्पणी . फाइटोस्टेरॉल ऐसोटेट तथा बौडोइन परीक्षण परिणाम नहीं देते

इस तथ्य पर आधारित है कि घी में कोलेस्टेरॉल पाया जाता है तथा वानस्पतिक वसाओं में फाइटोस्टेरॉल और उनके ऐसीटेट का गलन विन्दु भिन्न-भिन्न होता है अत यदि घी से प्राप्त स्टेरॉल ऐसीटेट का गलन विन्दु 115° से अधिक हो तो यह समझना चाहिये कि वानस्पतिक वसायें मिली हुयी हैं लेकिन इस परीक्षण से घी में मिलायी गयी पशु-चर्बियों की पहचान नहीं हो पाती

मक्खन-वसा अथवा घी में विकृतगंधिता तीन प्रकार से आती है व्यूटिरिक, कीटोनी तथा ऑक्सीकारी व्यूटिरिक विकृतगंधिता फफूंदियों की क्रिया के द्वारा उत्पन्न मुक्त व्यूटिरिक अम्ल के कारण उत्पन्न होती है जबकि ऑक्सीकारी विकृतगंधिता सामान्यतया घी को लम्बी अवधि तक रखे रहने पर ऑक्सीजन अथवा वायु से क्रिया करके उत्पन्न होती है मुक्त अम्लता से ताम्र जस्ता तथा निकेल जैसी धातुओं की सूक्ष्म मात्रा के सदूषण से तथा प्रकाश में खुला रखने से घी का ऑक्सीकरण उत्प्रेरित होता है जिसके फलस्वरूप उसमें मछली जैसी या तेल जैसी तथा चर्बी जैसी घटिया गध आने लगती है अत. यह आवश्यक है कि बहुत कम अम्लता वाला घी तैयार किया जाये उसे धातुओं के सदूषण से बचाया जाये तथा प्रकाश से बचाने के लिये उसे टिन के डिब्बों मे बन्द करके रखा जाये

घी बनाते समय अवशेष के रूप में एक तलछट बच जाती है जिसकी वार्षिक उपलब्ध मात्रा 45 लाख किग्रा तक आंकी गयी है यह तलछट हल्के से लेकर गाढे भूरे रंग की होती है यह दुग्ध वसा, प्रोटीन और राख का अच्छा साधन है गाय तथा भैंस के दूधों से बने मक्खन के घी अवशेषों का सघटन क्रमश इस प्रकार मिला है जल, 14 4, 13 4, वसा, 32 4, 33 4, प्रोटीन, 36 0, 32 6, लैक्टोस, 12 0, 15 4, तथा राख, 5 2, 5 2% घरों में तैयार किये गये घी-अवशेष को या तो पकाये गये चावल में मिलाकर अथवा रोटियों पर लगाकर खाया जाता है, किन्तु बड़े पैमाने पर घी बनाने वाले केन्द्रों पर इसे यों ही फेंक दिया जाता है राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, बगलौर स्थित दक्षिणी क्षेत्रीय केन्द्र ने यह प्रदर्शित किया है कि इस अवशेष से हल्के भूरे रंग का एक खाद्य पेस्ट बनाया जा सकता है जो खाने के पदार्थों मे लगाने तथा चाकलेट और टाफियां बनाने के काम आ सकता है.

छेना—छेना, अम्ल-स्कदित सामान्य दूध का एक महत्वपूर्ण उत्पाद है जिसे रसगुल्ला और संदेश नामक प्रमुख भारतीय मिठाइयों के बनाने के लिये प्रयुक्त किया जाता है इसे आशिक रूप से मक्खन निकाले गये अथवा पूर्ण मखनिया दूध में खट्टे दही के पानी, नीबू के रस अथवा सिट्रिक अम्ल जैसे अम्लीय पदार्थ डालकर तैयार किया जाता है. ये अम्लीय विलयन उबलते हुये दूध में डाले जाते हैं. दही के पानी को मलमल के कपडे द्वारा छान देते हैं तथा अवशेष के बचे हुये दही के पानी को भी निचोड कर अलग कर देते हैं यह उत्पाद, पश्चिमी देशों में बनाये जाने वाले पनीर जैसा होता है गाय तथा भैंस के दूध से बनाये गये छेने का सघटन सारणी 92 में दिया गया है छेना में ≮15% वसा नहीं रहनी चाहिये तथा इसमें स्कदन के लिये प्रयुक्त पदार्थों के अतिरिक्त ऐसे एक भी अवयव नहीं रहने चाहिये जो दूध में न पाये जाते हों

पनीर—दूध के स्कदित करने के पश्चात दही के पानी को छान देने पर बचा अवशेष पनीर होता है इसमें वसा तथा प्रोटीन की प्रतिशतता अधिक तथा जल और जल-विलेय अवयवों की मात्रा दूध की अपेक्षा कम होती है पनीर बनाने तथा पकाने के लिये कई प्रकार की रासायनिक, एजाइमी, सूक्ष्म-जैविक तथा भौतिक विधियां काम में लायी जाती हैं दूध के स्कदन के लिये रेनिन एजाइम अथवा रेनिन और अम्ल (सामान्यत प्रवर्तक सवर्ध द्वारा उत्पन्न लैक्टिक अम्ल) का प्रयोग करके पनीर बनाते हैं. सभी प्रकार के पनीरों के पकने के लिये कुछ सप्ताहों से लेकर दो वर्ष तक का समय आवश्यक होता है पकने से पनीर में सुगध तथा स्वाद आ जाता है

पनीर की बहुसख्यक किस्में होती हैं परन्तु उनमें से अधिकतर दो दर्जन विशिष्ट किस्मों के रूपान्तर हैं अधिकाश पनीर गाय के दूध से बनाये जाते हैं परन्तु प्रमुख किस्म राकफोर्ट भेड के दूध से बनती है. बकरी के दूध से भी कई प्रकार के पनीर तैयार किये जाते हैं बनावट के आधार पर पनीरों को कठोर (चेड्डार, स्टिल्टन, स्विस इत्यादि), कोमल (ब्रिक तथा लिम्बर्गर) तथा मध्यम (कमेमबर्ट) किस्मों में वर्गीकृत किया जा सकता है. इनका पक्वन करने वाले जीवाणुओं (लैक्टोबेसिलाई) और फफूंदियों (पेनिसिलियम राकफोर्टाई) जैसे सूक्ष्म जीवों के अनुसार भी पनीरों को वर्गीकृत किया जाता है

कठोर किस्म की पनीरों के विशेषतायें हैं . कम नमी का होना तथा काफी दिनों तक परिरक्षित रहना इन्हें ससाधित पनीर के बनाने के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है कोमल पनीरों में नमी की बहुलता होती है तथा बनाने के बाद तुरत उपभोग करने के ही उद्देश्य से इन्हें बनाया जाता है

कुटीरों में बना पनीर कोमल तथा असंसाधित होता है जिसमें 80% तक जल रहता है यह पास्तुरीकृत मखनिया दूध से बनाया जाता है तथा यह बनाने के तुरन्त बाद ही प्रयोग के उपयुक्त रहता है और इसको काफी समय तक पकाना अनिवार्य नहीं होता यह दो सप्ताह से अधिक समय तक अच्छा नहीं रह पाता

पनीर, पश्चिमी देशों का प्रमुख आहार है किन्तु भारत में इसका उपयोग नहीं किया जाता, क्योंकि इसको बनाने के लिये पशु जामन (रेनेट) काम में लाया जाता है विगत कुछ वर्षों से ही ससाधित पनीर का उत्पादन व्यापारिक स्तर पर हो रहा है तथा इसका वार्षिक उत्पादन लगभग 500 टन ही है भारत के प्रमुख पनीरों को दो किस्मों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

सारणी 96 – विभिन्न प्रकार के पनीरो का संघटन*

पनीर	वसा	प्रोटीन	लैक्टोस	जल
कुटीर या घरों मे तैयार	4 0–4 9	12 7–21 0	0 2–1 1	71 0–79 9
स्विस	30–34	26–30	3–5	30–34
चेड्डार	30–37	21–26	3–7	32–44
राकफोर्ट	31–34	19–24	5–7	37–41
ब्रिक	28–34	20–24	2–5	40–43
अमूल (ससाधित)†	32 5	25 0	.	38 0

*V. B Singn, 162 †अमूल, आनन्द से प्राप्त सूचना

कठोर (चेड्डार, वेदाम तथा गोदा, इत्यादि), तथा कोमल (पनीर, सूरती पनीर, वन्दल, अमेरिकी कुटीर पनीर, इत्यादि) भारत मे राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल द्वारा भैस के दूध को ब्रिक, करनाल (चेड्डार के समान) तथा ससाधित पनीर उत्पादन के काम मे लाया जाता है पहले भैस का दूध पनीर बनाने के लिये अच्छा नही माना जाता था क्योकि भैस के दूध से बने पनीर में लम्बी अवधि तक पक्वन करने के वाद भी वढिया स्वाद-गन्ध लाना कठिन रहता था ब्रिक तथा करनाल पनीर 6–7 सप्ताह के पक्वन के वाद प्रयोग लायक हो जाते है राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान, करनाल, तथा आनन्द मिल्क यूनियन, आनन्द द्वारा वनाये जाने वाले ससाधित पनीर, आयातित गाय के दूध से वनाये पनीर के तुल्य होता है

पनीर अधिक सुपाच्य होता है तथा यह प्रोटीन, वसा, कैल्सियम और अनेक अन्य विटामिनो का उत्तम स्रोत है (सारणी 92) विभिन्न प्रकार के पनीरो के प्रमुख अवयव सारणी 96 मे दिये गये हैं कठोर तथा ससाधित पनीरो के लिये आई एस आई विनिर्देशन क्रमश इस प्रकार हैं (शुष्क भार के आधार पर) जल, ≯43, ≯ 45, दुग्ध वसा, ≮42, ≮40, तथा लवण (मिलाया गया NaCl), ≯3, ≯3% (IS 2785–1964)

खोआ – खोआ आशिक रूप से सुखाया गया दुग्ध-उत्पाद है जो दूध को शीघ्रता से वाष्पीकृत करके प्राप्त किया जाता है इसे तव तक सुखाते है जव तक उसमे ठोस की मात्रा 70–75% नही रह जाती खोआ ऐसे भी खाया जाता है किन्तु इसका उपयोग मिठाइयाँ वनाने के लिये मुख्यत किया जाता है गाय तथा भैस के दूध मे खोआ की मात्रायें क्रमश 18 3 तथा 21 0% होती हैं. गाय तथा भैस के खोये का सघटन सारणी 92 में दिया गया है खोआ का सामान्य अपमिश्रक धान्यो का आटा है सामान्य ताप पर खोआ औसतन 7–9 दिनो तक ठीक रहता है किन्तु 13° पर भडारन करने अथवा चीनी डालने पर यह 30 दिनों तक टिका रह सकता है

आइसक्रीम – आइसक्रीम, दूध का जमा हुआ उत्पाद है जिसका भारत मे काफी व्यापार होता है यह उत्तम दुग्ध उत्पाद है जो पोषक होता है तथा समुचित भडारन दशाओ मे लम्बी अवधि तक परिरक्षित किया जा सकता है आइसक्रीम मे विभिन्न दुग्ध ठोसो की अलग-अलग मात्रायें पायी जाती हैं तथा इसमे शर्करा तथा सुगन्ध और रगप्रदायक पदार्थ डाले जाते है स्वादिष्ट वनाने तथा चिकनाहट प्रदान करने के लिये इसमे पूर्ण दूध, मीठी क्रीम तथा अलोना मक्खन मिश्रित किया जाता है सीरम ठोसो अथवा वसा-रहित ठोसो की आपूर्ति, दूध, क्रीम, मखनियाँ दूध तथा पूर्ण दुग्ध-चूर्ण और सघनित दूध के रूप में की जाती है उत्पादो मे दृढता प्रदान करने के लिये जिलेटिन तथा सोडियम एल्जिनेट जैसे स्थायी-कारी डाले जाते हैं आइसक्रीम मे अनेक प्रकार के स्वाद प्रदायक पदार्थ प्रयुक्त किये जाते हैं जिनमे सवसे अधिक वैनीला का प्रयोग होता है कई प्रकार के फलो को मिलाने से आइसक्रीम मे उन्ही फलो का स्वाद आ जाता है देशी आइसक्रीमो में कुल्फी (नट आइसक्रीम) तथा मलाई की वरफ (जमाया हुआ मीठा दूध तथा मलाई) सामान्य हैं

आइसक्रीमो के सघटन मे काफी भिन्नता पायी जाती है इनमे भार के अनुसार ठोस पदार्थों की मात्रा 36% तथा दुग्ध-वसा 10% से कम नही होनी चाहिये, किन्तु यदि उनमे फल अथवा नट या दोनों ही मिले हो तो दुग्ध-वसा की मात्रा भार के अनुसार 8% से कम नही रहनी चाहिये इसमे किसी प्रकार के स्टार्च, मधुरता प्रदायक कृत्रिम पदार्थ अथवा अन्य वाह्य पदार्थ नही रहने चाहिये मखनिया दूध से निर्मित आइसक्रीम मे दुग्ध वसा के अतिरिक्त दुग्ध-ठोसो की मात्रा 8 5% से कम नही होनी चाहिये. मिश्रित आइसक्रीम, सघटन मे, आइसक्रीम के समान ही होती है, अन्तर केवल इतना ही होता है कि मिश्रित आइसक्रीम में स्टार्च अथवा अन्य अहानिकारक पूरक रह सकते हैं किन्तु वसा और कुल दुग्ध ठोस पदार्थों की मात्रा आइसक्रीम की निर्धारित मात्रा के अनुसार ही होनी चाहिये

दूध तथा दुग्ध-उत्पादो के पोषण मान

पूर्ण दूध एक सतुलित सम्पूर्ण आहार है तथा पोषण की दृष्टि से यह अकेले ही पोषण का काम कर सकता है यदि वसा तथा वसा-विलेय विटामिनो की कमी को पूरा कर दिया जाय तो मखनियाँ दूध भी (अर्थात् वह दूध जिसमें से वसा निकाल ली गयी हो) सम्पूर्ण आहार का काम कर सकता है

कई प्रकार के ससाधन करते समय दूध मे समान्यतया रासायनिक अथवा भौतिक परिवर्तन होते हैं जिससे उसके पोषण मान पर प्रभाव पड सकता है उपभोग करने के पूर्व वहुधा दूध को उवाला जाता है उवालने से दूध के कुछ तत्वो का आशिक ह्रास हो सकता है और उसका पोषण मान घट जाता है गाय तथा भैस के दूधो को उवालने के कारण उनके पोषण मान मे हुयी कमी को जानने के उद्देश्य से जो परीक्षण किये गये हैं उनसे यह पता चला है कि कच्चे तथा उवाले हुये दोनो ही प्रकार के दूधो को आहार के रूप मे अकेले देने पर चूहो की वृद्धि-दर सामान्य रही.

दुग्ध-वसा – दुग्ध-वसा पूर्ण रूप से पच जाती है अन्य पशु-वसाओ तथा वनस्पति-वसाओ की अपेक्षा दुग्ध-वसा के पोषण मान पर काफी शोध कार्य हुआ है जव दुग्ध-वसा को चावल जैसे आहार मे मिलाकर उपयोग मे लाते हैं तो यह अन्य वसाओ से उत्तम वैठती है विकृतगधी दुग्ध-वसा के प्रयोग मे चुहियो की प्रजनन क्षमता तथा पोषण क्षमता पर वुरा प्रभाव पडता है.

गाय का घी, अन्य पशु वसाओ तथा वनस्पति वसाओ की अपेक्षा अधिक सुपाच्य होता है उदर मे चार घण्टे पचने के पश्चात गाय के घी की आपेक्षिक अवशोषण-दर अन्य पशु वसाओ

तथा हाइड्रोजनीकृत वसाओ की अपेक्षा अधिक रहती है. कृत्रिम आहारो में 5% तक गाय का घी मिलाकर खिलाने से चूहो की वृद्धि अन्य वसाये देने की अपेक्षा कुछ अच्छी रहती है किन्तु सार्थक अन्तर नही प्राप्त होते

दूध तथा दुग्ध उत्पादो मे कोलस्टेरॉल रहने के कारण इन्हे ऐथिरोकाठिन्य रोग का कारण बताया गया है यद्यपि शरीर मे सश्लिष्ट कोलस्टेरॉल की मात्रा, दूध या दुग्ध-उत्पादो मे गृहीत कोलस्टेरॉल की सामान्य मात्रा से 10 से 20 गुनी अधिक होती है दूध मे कुछ ऐसे रक्षक पदार्थ पाये जाते है जो धमनी भित्तियो मे कोलस्टेरॉल का निक्षेपण नही होने देते और धमनी भित्तियो द्वारा ह्रासी रोगो के विरुद्ध प्रतिरोध मे सहायक बनते है

प्रोटीन – दूधो के प्रोटीन पोषणता मे परिपूर्ण माने जाते है उनमे सभी आवश्यक ऐमीनो अम्लो की पर्याप्त मात्राये विद्यमान रहती हैं घटिया चावल-आहारो मे मिलाये जाने के लिये ये उत्तम पूरक का काम करते है ये विभिन्न दलहनो, आलू, मक्का, रागी तथा गेहूँ के प्रोटीनो के लिये भी पूरक का काम करते है

दुग्ध-उत्पादो के प्रोटीनो मे उपस्थित आवश्यक ऐमीनो अम्ल तथा उनके पोषक मान सारणी 84, 85 और 87 में दिये गये हैं

छेना, दही तथा खोआ जैसे दुग्ध-उत्पाद चावल जैसे घटिया आहार के साथ पूरक सम्बन्ध प्रदर्शित करते है दही के पानी (छाछ) मे प्राप्य प्रोटीनो से अनाजो के प्रोटीनो की, विशेषतया गेहूँ के प्रोटीनो की, कमी पूरी हो जाती है मट्ठे तथा मक्का या गेहूँ के प्रोटीनो मे और पनीर तथा गेहूँ के प्रोटीनो के मध्य पारस्परिक पूरक सम्बन्ध प्रदर्शित किये जा चुके है

पकाने पर कच्चे केसीन के जैविक मान तथा सुपाच्यता गुणाको मे सुधार होने की सूचना है मनुष्यो के पकाये हुये केसीन का पोषक मान गेहूँ के ग्लुटेन तथा मूगफली के प्रोटीनो से अधिक गोमास के प्रोटीनो के लगभग समान और अण्डे के प्रोटीन से घटिया होता है फिर भी इसकी पुष्टि नही हो पायी है कि लैक्टैल्बुमिन मनुष्यो के लिये केसीन से अच्छा होता है या नही दही के पानी (छाछ) के प्रोटीन का वृद्धिकारक मान चाहे वे उष्मा द्वारा स्कदित हो, अपोहित किये गये हो अथवा लौह-जटिलो (फेरिलैक्टिन) के रूप मे हो, सदैव उच्च होता है

यद्यपि मखनियाँ दूध तथा दही के प्रोटीन के पोषण मान पर फुहार-शुष्कन विधि से सुखाने पर नाममात्र का ही प्रभाव पडता है, परन्तु बेलन-शुष्कन से हानिकारक प्रभाव पडता है कच्चे, वाष्पित अथवा सघनित दूधो के प्रोटीनो का पोषण मान लगभग समान होता है, किन्तु सान्द्रण करते समय लाइसीन की कुछ हानि हो जाती है खोआ के प्रोटीनो का जैविक मान तथा सुपाच्यता, दुग्ध प्रोटीनो की अपेक्षा कम होती है क्योकि उष्मा-ससाधन के फलस्वरूप खोये के आर्जिनीन और लाइसीन की मात्रा घट जाती है फिर भी खोआ के प्रोटीनो का वृद्धिकारी मान दुग्ध प्रोटीनो के बराबर ही होता है

कई अन्वेषणों से यह ज्ञात हुआ है कि ताजे तथा किण्वित दूधो के पोषक मान मे कोई विशेष अन्तर नही होता एक प्रतिवेदन के अनुसार दही के प्रोटीनो का जैविक मान दूध के प्रोटीनो की अपेक्षा सम्भवत इसलिये कम होता है क्योकि उसको खट्टा बनाते समय उसके आर्जिनीन, लाइसीन तथा मेथियोनीन का ह्रास हो जाता है परन्तु उनके वृद्धिकारी मान मे कोई अन्तर नही आता

लैक्टोस – दूध मे उपस्थित लैक्टोस शरीर द्वारा अवशोषित न होकर रक्त प्रवाह मे पहुँचने तथा शरीर द्वारा प्रयुक्त होने के पूर्व ग्लूकोस तथा गैलैक्टोस शर्कराओ में विखण्डित हो जाता है लैक्टोस के अम्लीय किण्वन हो जाने से कैल्सियम तथा फॉस्फोरस का अच्छी तरह उपयोग होता है इसके अतिरिक्त, लैक्टोस से उत्पन्न गैलैक्टोस, बालको में मस्तिष्क की प्रमुख सरचना इकाइयो के सेरेब्रोसाइडो के सश्लेषण में तथा तत्रिकाओ के मज्जा-आच्छदो मे प्रयुक्त हो सकता है जब दूध को दही मे बदल दिया जाता है तो लगभग 40% तक लैक्टोस कम हो जाता है और उसकी अम्लता मे भी वृद्धि हो जाती है

वसा-विलेय विटामिन – दूध मे प्राय विटामिन ए तथा कैरोटीन दोनो ही पर्याप्त स्थायी है परन्तु दूध के पास्तुरीकरण के समय उनकी कुछ मात्रा नष्ट हो जाती है दूध का जीवाणुनाशन अथवा वाष्पीकरण करने के लिये उसे अधिक गरमाने के कारण 35% तक विटामिन ए नष्ट हो जाता है अलोने मीठे क्रीम-मक्खन की अपेक्षा नमकीन पाचित-क्रीम-मक्खन मे विटामिन ए की हानि अधिक होती है यह हानि सचयन में हुयी त्रुटियो के फलस्वरूप चर्बी, तेल और मछली की तरह गन्ध तथा विकृतगंधिता के उत्पन्न हो जाने के कारण होती है भैंस की दुग्ध-वसा मे पाया जाने वाला विटामिन ए गाय की दुग्ध-वसा के विटामिन ए की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है यदि सचयन के समय मोम लगे परतदार कागज के डिब्बो का प्रयोग किया जाता है तो प्रकाश के कारण होने वाले विटामिन ए की हानि रुक जाती है

पनीर बनाने के लिये उसका पक्वन करते समय भी विटामिन ए की कुछ मात्रा नष्ट हो जाती है विटामिन ए का लगभग 17% गाढे जीवाणुनाशित दूध के ससाधन के समय नष्ट हो जाता है, उसके पश्चात् 6 माह के भीतर ही सामान्य ताप पर सग्रहीत दूध के 10% विटामिन ए की और हानि हो जाती है अत ऊष्मा-ससाधित दुग्ध-उत्पादो को, विशेषतया जब इन्हे नवजात शिशुओ के आहार के लिये प्रयोग मे लाना हो तो, इनमे अलग से विटामिन ए मिला देना चाहिये

भारतीय परिस्थितियो मे, दुग्ध-उत्पादो के निर्माण तथा सचयन के समय वसा विलेय विटामिन की हानि अपेक्षाकृत ज्यादा होती है अत उत्पादो के पोषण मान मे सुधार लाने के लिये इनमे विटामिनो का पौष्टीकरण आवश्यक हो जाता है

जल-विलेय विटामिन – ऊष्मा उपचार तथा भडारन अवधि मे होने वाला ऑक्सीकरण ही वे प्रमुख कारण है जिनसे दूध मे पाये जाने वाले जल-विलेय विटामिनो का ह्रास एव विनाश होता है ऊष्मा उपचार के द्वारा थायमीन की भी कुछ मात्रा नष्ट हो जाती है पास्तुरीकरण के समय इसका 10% तक तथा जीवाणुनाशन करते समय 30–50% तक विनाश होता है वाष्पित दूध तथा खोआ, रबडी इत्यादि देशी दुग्ध-उत्पादो को बनाते समय दूध मे उपस्थित विटामिन बी$_6$ की भी प्रचुर मात्रा नष्ट हो जाती है दूध को लगभग दो घण्टे तक धूप में खुला छोड देने पर भी इसका 15–46% विटामिन बी$_6$ नष्ट हो जाता है

पास्तुरीकरण, जीवाणुनाशन तथा वाष्पित दूध बनाते समय निकोटिनिक अम्ल तथा राइबोफ्लैविन अधिक स्थायी रहते है

दूध विटामिन बी$_{12}$ का एक उत्तम स्रोत है

खनिज – दूध को 65° पर 30 मिनट तक गरम करने से विलेय कैल्सियम की मात्रा मे 20% और एक घण्टे तक उबालने पर 40% की कमी होती है सामान्य सचयन के लिये अथवा रबडी,

खोआ इत्यादि देशी दुग्ध-उत्पादो को बनाने के लिये प्रयुक्त ससाधनो के समय बाहरी सदूषण के द्वारा दूध मे लोहे की मात्रा काफी बढ जाती है दूध की ऑक्सीकृत स्वाद-गध, तथा मक्खन और सम्पूर्ण दुग्ध-चूर्ण की चर्बी तथा मछली-जैसी सडी महक सग्रह अथवा ससाधन के समय क्रीम अथवा दूध मे ताम्र आ जाने के कारण होती है

पशुओ द्वारा आहार मे ग्रहण की गयी बढती हुयी खनिजो की मात्रा से दूध मे मैंगनीज, ताम्र तथा कोबाल्ट की मात्रा पर कोई लक्षित प्रभाव नही पडता किन्तु आयोडीन अथवा फ्लोरीन की मात्राये उनके आहार मे ली गयी मात्रा से सुगमता से प्रभावित हो जाती है

दुग्ध उपजात

दूध के सघटको का या तो प्रत्यक्ष पृथक्करण द्वारा अथवा उनमे रासायनिक या सूक्ष्मजैविकीय परिवर्तन लाकर इससे कई उपजात तैयार किये जा सकते है लैक्टोस, केसीन तथा लैक्टैल्बुमिन को प्रत्यक्ष रीति से पृथक् किया जा सकता है रासायनिक विधियो से दूध से प्राप्त सोडियम और कैल्सियम केसीनेट को आहार के रूप मे प्रयोग किया जाता है अम्लो अथवा एजाइमो द्वारा केसीन का जल-अपघटन करके अधिक ऐमीनो अम्ल वाले उत्पादो तथा आहारो मे मिलाने के लिये विशिष्ट स्वादो अथवा विभिन्न सूक्ष्म-जीवो के सवर्धन के लिये प्रयुक्त माध्यम के लिये नाइट्रोजन का एक स्रोत प्राप्त किया जा सकता है

लैक्टोस — दूध से केसीन, पनीर अथवा छेना बनाने के पश्चात् बचे हुये छाछ से लैक्टोस तैयार किया जाता है छाछ, यदि पहले से अम्लीय नही है तो इसे अम्लीय बनाकर तथा उबाल आने तक गरम करके छान लिया जाता है, स्वच्छ द्रव को निर्वात कडाह मे 60° ताप पर तब तक सान्द्रित करते है जब तक उसमे ठोस की मात्रा 60% नही हो जाती इसके पश्चात् इसे क्रिस्टलन के लिये छोड देते है क्रिस्टलो के पहले धान को जल निष्कर्षक मे ले जाते है और अस्थि-कोयला की उपस्थिति मे पुन क्रिस्टलित करके इसे परिशुद्ध कर लिया जाता है बगलौर के राष्ट्रीय डेरी अनुसधान सस्थान मे छोटे पैमाने पर लैक्टोस तैयार करने की एक समुचित विधि का मानकीकरण किया जा चुका है छाछ से 2 8–3 0% अपरिष्कृत लैक्टोस प्राप्त होता है

लैक्टोस मे स्यूक्रोस की अपेक्षा मिठास प्रदान करने की क्षमता 1/6 है किन्तु जल मे अल्प विलेय होने के कारण उत्पादो को तैयार करने मे इसका कम प्रयोग होता है लैक्टोस को पथ्य आहारो तथा ओषधि निर्माण मे भी प्रयोग किया जाता है पेनिसिलिन के उत्पादन में माध्यम के अवयव के रूप में इसकी विशेष उपयोगिता है व्यापारिक लैक्टोस के आई एस आई विनिर्देशन इस प्रकार है लैक्टोस, ≮ 90 0, नाइट्रोजन, ≯ 0 05, वसा, ≯ 2 5, अम्लता, परीक्षण पुष्टि के अनुसार; कुल राख, ≯ 1 5%, सीसा, ≯ 25 भाग प्रति लाख भाग मे, आर्सेनिक, ≯ 10 भाग प्रति लाख भाग मे और विशिष्ट घूर्णन, 52 0–52 6° (IS 1000-1959)

केसीन — सम्पूर्ण मखनियाँ दूध का चयनात्मक अवक्षेपण करके तथा छाछ अलग करने के पश्चात् अवक्षेप को धोकर और सुखाकर खाद्य केसीन तैयार किया जाता है केसीन लगभग श्वेत अथवा पीत-श्वेत-पीत रग का होता है यह उत्तम पोषक प्रोटीन है तथा प्रोटीनयुक्त आहारो को तैयार करने के लिये व्यवहार मे लाया जाता है प्राकृतिक खट्टा (लैक्टिक) केसीन, प्लाईवुड तथा चाय की पेटियो के उद्योगो मे प्रयुक्त सरेस तैयार करने के काम आता है यह केसीन लैक्टिक अम्ल जीवो मे उत्पन्न अम्लता द्वारा मखनियाँ दूध के केसीन का अवक्षेपण करके प्राप्त किया जाता है हमारे देश मे केसीन केवल कुटीर-उद्योग के रूप मे तैयार किया जाता है

खाद्य केसीन तथा सरेस बनाने के लिये प्रयुक्त प्राकृतिक खट्टे (लैक्टिक) केसीन के लिये आई एस आई के विनिर्देशन क्रमश निम्नलिखित है नमी, ≯ 10 0, ≯ 12, वसा (शुष्क भार के आधार पर), ≯ 1 5, ≯ 2 0, नाइट्रोजन (शुष्क भार के आधार पर), ≯ 14 5, ≯ 14 0, कुल अम्लता (0 1 N NaOH, मिली/ग्रा), 6-14, ≯ 10 5, मुक्त अम्लता (0 1 N NaOH मिली/ग्रा), ≯ 5 6, कुल राख (शुष्क भार के आधार पर), ≯ 2 5, ≯ 4 0, तथा अम्ल-अविलेय राख (शुष्क भार के आधार पर), ≯ 0 1%, खाद्य केसीन की जीवाणु सख्या, ≯ 50,000, कोलीफार्म सख्या, ≯ 10 , तथा फफूँदी सख्या, ≯ 50/ग्रा. (IS 1167-1965, 850-1957).

सपीडित केसीन को कैल्सियम, सोडियम तथा पोटैशियम केसीनेट जैसे क्षारकीय धातु केसीनेटो में परिवर्तित किया जा सकता है सोडियम केसीनेट को नवजात शिशु तथा अपाहिजो के आहारो मे प्रयुक्त किया जाता है जबकि फेरिक केसीनेट बलवर्द्धक तथा रक्त परिशोधक है इसका बिस्मथ लवण एक पूतिरोधी मरहम-पट्टी के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है शुष्क केसीन को केसीन के जलअपघट्य बनाने के लिये भी उपयोग मे लाते है जिसके लिये प्रयुक्त प्रोटीन अपघटक एजाइमो मे ट्रिप्सिन, पैपेन, पैंक्रिएस तथा फफूँदी अथवा जीवाण्विक एजाइमें सम्मिलित है

छाछ के उपजात

छाछ प्रोटीन — पनीर अथवा केसीन बनाते समय प्राप्त छाछ मे लैक्टोस, लवण तथा प्रोटीन (जिसमे लैक्टोग्लोबुलिन प्रमुख है) पाये जाते है जिन्हे पृथक् करके मनुष्य तथा पशु-आहारो मे प्रयोग किया जाता है छाछ को उबालकर तथा प्रोटीनो का स्कदन करके शुद्ध प्रोटीन (जिसका व्यापारिक नाम लैक्टैल्बुमिन है) प्राप्त किया जाता है पोषक उत्पादो को बनाने के लिये इसका जल-अपघटन किया जा सकता है.

लैक्टोबैसिलस बुल्गैरिकस का प्रयोग करके सूक्ष्मजैविकी विधि द्वारा छाछ से लैक्टिक अम्ल प्राप्त किया जा सकता है. छाछ से ऐल्कोहलीय पेय तैयार करने के प्रयत्न भी किये जा रहे है जिसमे वर्ट, छाछ-मदिरा तथा पौष्टिक छाछ सम्मिलित है छाछ से यीस्ट बनाने के भी प्रयास हुये है यीस्ट को वर्धित करने के लिये छाछ मे पोषक तत्व मिला लिये जाते है इसके लिये अमोनियम सल्फेट, डाइपोटैशियम फॉस्फेट तथा 0 1–0 5% यीस्ट निष्कर्ष का प्रयोग किया जाता है प्रति लीटर छाछ से 13–23 ग्रा यीस्ट प्राप्त होता है

छाछ से कई तरह के अन्य पदार्थ भी तैयार किये जा सकते है इनमे राइबोफ्लैविन तथा विटामिन B_{12}, ऐसीटोन तथा ब्यूटेनाल, छाछ का सिरका, लैक्टोबायोनिक अम्ल तथा अधिक वसा वाले यीस्ट प्रमुख है छाछ का सिरका (जिसमे 4 5–6 0%अम्ल हो) बच्चो तथा अनियमित पाचन वाले व्यक्तियो के लिये अत्यन्त उपयोगी बताया गया है खाद्य उद्योगो के लिये लैक्टोबायोनिक

अम्ल अत्यन्त उपयोगी है तथा कैल्सियम लैक्टोबायनेट (जिसमे 70% लवण हो) औषधियों में कैल्सियम का एक प्रमुख स्रोत सिद्ध हुआ है यह यीस्ट वसा अर्गोस्टेरॉल तथा स्टेरॉल का एक उत्तम स्रोत है

छाछ को छाछ-पनीर बनाने के लिये भी आधारस्वरूप प्रयुक्त किया जाता है इसे लैक्टिक अम्ल जीवाणु, **पेनिसिलियम राकफार्टाई, स्ट्रेप्टोकोकस डाइऐसीटिलैक्टिस** इत्यादि के संवर्धन-माध्यम के लिये भी प्रयोग मे लाने की सलाह दी गयी है ह्वेकुमिस जैसे किण्वित डेरी उत्पादो मे छाछ के उपयोग की संस्तुति की गयी है **लैक्टोबैसिलस बुल्गैरिकस** द्वारा किण्वन तथा परवर्ती ससाधन से छाछ से रोमन्थी पशुओ के लिये उपयोगी पशु-आहार तैयार किया जाता है

मास तथा मांस के उत्पाद

गाय, भैंस, भेड़, मेमना, वकरी, सुअर तथा कुक्कुटादि से साफ किये हुये प्राप्त गोश्त को मास कहते हैं मुर्गे-मुर्गी के मास का वर्णन कुक्कुट पालन के अन्तर्गत अलग से दिया गया है गोपशुओ, भेडो तथा सुअरो के मास को क्रमश बीफ (गोमास), मटन (भेड-वकरी का मास) तथा पॉर्क (सुअर का मास) कहा जाता है सभी मासो मे कुछ न कुछ वसा पायी जाती है तथा पॉर्क मे वसा की मात्रा अधिक होती है वसा या तो वाह्य आवरण के रूप मे पेशी-तन्तुओ के साथ मिली रहती है या अन्त कोशिकीय निक्षेप के रूप मे पायी जाती है पेशी ऊतक मे चरवीरहित मास होता है, बीफ या मेमनो का मास गहरा लाल और छोटे बछडो के मास और पॉर्क का रग हल्का गुलाबी होता है

प्रत्येक पशु से प्राप्त प्रसाधित मास की मात्रा मुख्य रूप से उनके सजीव (जिंदा) भार, आकार तथा नस्ल और स्थलाकृतीय एव जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियो पर निर्भर करती है सजीव भार के आधार पर भारतीय बीफ पशुओ से औसतन 35 से 45%, भेड और वकरियो से लगभग 4% तथा सुअरो से 60–65% प्रसाधित मास प्राप्त होता है

मृत पशु की लाश को वगली तथा पुट्ठो मे विभक्त करने के पश्चात् परम्परानुसार अनेक उपखडो मे काट लिया जाता है वडे खडो को सामान्यतया जोडो के पास से काटा जाता है बहुत हद तक मास की महत्ता इन्ही खडो के आकार तथा दिखाव-बनाव पर निर्भर करती है काटे गये खण्डो की किस्म लाश के भार, प्रकार तथा श्रेणी के अनुसार होती है विभिन्न बीफ तथा भैंसे के खण्डो के अन्तर्गत पुट्ठे का मास, कमर का खण्ड, वगली, पसली, वर्गाकार काटे गये अग्रभाग, छाती का मास, पिडली तथा गोल टुकडे आते हैं मटन तथा वकरी के मास मे टॉगे, कमर, अग्रभाग, छाती, पिडली तथा कधो के खण्ड काटे जाते हैं पॉर्क के टुकडो मे पुट्ठा (खाल सहित अथवा विना खाल का), कधा, कमर, कटिलम्बिनी पसलियो का अग्रभाग तथा कमर का पश्च भाग काट कर रखे जाते हैं

प्रसाधित मास के अतिरिक्त लाश के कुछ और भाग तथा अग जिन्हे छिछडी कहते हैं मास के रूप मे बेचे जाते हैं खाद्य छिछडी मे जीभ, अग्न्याशय, गुर्दा, हृदय, यकृत, अतडी (पशु के प्रथम तथा द्वितीय आमाशय-रुमेन तथा जालिका) तथा पूछ सम्मिलित रहते हैं जबकि अखाद्य छिछडी मे खाल, वाल, हड्डियाँ, सीग और खुर प्रमुख हैं रक्त तथा मास और वसा के अन्य छीजन भी खाद्य और अखाद्य दोनो ही पदार्थो के रूप मे प्रयोग मे लाये जाते हैं

मांस की किस्म तथा गुणता

ताजा मॉस सामान्यत हल्के गुलाबी रग का, कडा और सूक्ष्म कणो वाला, मखमल की तरह चिकना तथा रसीला होता है वसा पूरे मास मे अच्छी तरह वितरित रहती है मास की अच्छाई अनेक कारको पर निर्भर करती है पशु की नस्ल, लिंग, आयु तथा वध्य पशु का आहार और लाश की खाल उतारने, उसको प्रसाधित करने तथा रख-रखाव की विधि आयु की वृद्धि के साथ-साथ मास मोटे कणो वाला शुष्क तथा रेशेदार, चिपचिपा और गाढे रग का होता जाता है मास मे सुहावनी और ताजी महक होनी चाहिये तथा इसकी वसा, ठोस हाथी दाँत की तरह सफेद होनी चाहिये किन्तु श्लिपीय तथा जलीय नही होनी चाहिये

नये स्वस्थ पशुओ का मास, वृद्ध तथा दुर्वल पशुओ की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होता है लेकिन अत्यन्त कम उम्र के पशुओ का मास काफी मृदुल और जलीय होता है उसमे स्वाद नही होता ऐसी सूचना है कि सर्वोत्तम मास प्राप्त करने के लिये भेड, वकरियो तथा सुअरो की आयु छ माह से एक वर्ष तक तथा गोपशुओ की आयु एक वर्ष से तीन वर्ष तक होनी चाहिये वधिया किये हुये तथा मोटे पशुओ का मास वृद्ध तथा दुर्वल पशुओ की अपेक्षा वढिया किस्म का होता है भारत मे मटन अधिकाशत भेडो से प्राप्त होता है नयी भेडो से प्राप्त मांस अच्छी किस्म का होता है वृद्ध भेडो का मास गाढे रग का रूक्ष तथा कम स्वादिष्ट होता है मास प्राप्त करने के लिये मेमनो तथा वकरी के बच्चो की लाश का मानक भार 3 5–4 5 किग्रा तथा मटन और वकरियो के गोश्त के लिये उनकी लाश का मानक भार 7–9 किग्रा होता है

गोमास चमकीला, गाढे चेरी-लाल रग का, महीन दानेदार तथा मखमली होता है यह सगमरमर के रग जैसी वसा से ढका रहता है ताजे गोमास मे एक हल्की विशिष्ट गध होती है वृद्ध तथा निम्नकोटि के पशुओ से प्राप्त मास वहुधा गाढे रग का रूक्ष रेशेवाला तथा शुष्क होता है और इसकी वसा अपेक्षाकृत अधिक पीली होती है

भैंस का मास गोमास की अपेक्षा अधिक लालाभ भूरे रग का तथा कम और मोटे रेशे वाला होता है विरले ही उपभोक्ता भैंस के मास तथा बीफ (गोमॉस) मे पहचान कर पाते हैं भैंस के मास तथा वसा की गध कस्तूरी की गध जैसी होती है तथा बीफ की वसा की अपेक्षा अधिक श्वेत, शुष्क तथा कम चिपचिपी होती है

मटन हल्के से लेकर ईंटिया-लाल रग का चमकीला तथा झिलमिलाता हुआ होता है इसमे मध्यम सुदृढता, गाढापन लिये हुये श्वेत, कठोर और स्वच्छ वसा होती है, जो अधिक मात्रा मे त्वचा के नीचे की पेशियो तथा गुर्दो के चारो ओर पायी जाती है वसा गधहीन और चर्वी की तरह होती है जो शीघ्र जम कर खस्ता और सुदृढ हो जाती है (IS . 887–1968) मटन के टुकडे छोटे होते हैं तथा विना चरवी का मास श्वेत, भुरभुरा और पपडीदार वसायुक्त चमकीला गुलावी होता है

वकरी के मास तथा मटन को एक दूसरे की उपस्थिति मे पहचान पाना कठिन होता है परन्तु वकरी का मास गहरे रग का, लक्षणिक गन्धयुक्त तथा अपेक्षाकृत स्थूल गठन का होता है तथा हो सकता है कि इसकी सतह पर वाल चिपके रहे इसमें वसा कम

होती है और उसका रग पीताभ होता है तथा मटन वसा की तरह यह जमकर सुदृढ नही होती है

पॉर्क का रग पशु की आयु तथा उसकी पोषण परिस्थितियो और शरीर के जिस भाग का गोश्त है उसके अनुसार बदलता रहता है कभी-कभी एक ही लाश मे फीके तथा गाढे दोनो रग की पेशियाँ देखी गयी है यह गोश्त सुदृढ तथा सूक्ष्म दानो वाला, सगमरमरी तथा हल्की लाल आभा लिये हुये धूसर-गुलाबी रग का होता है इसकी वसा बिलकुल श्वेत तथा बीफ और मटन की अपेक्षा अधिक तेलयुक्त और चर्बीदार होती है गोश्त की त्वचा जितनी सुदृढ, चिकनी तथा बिना शिकन वाली होगी पॉर्क उतना ही अच्छी किस्म का होगा.

भारतीय मानक सस्थान ने बीफ तथा भैस के गोश्त के लिये (IS 2537–1963), मटन तथा बकरे-बकरी के मास के लिये (IS 2536–1963) तथा पॉर्क और सुअर के गोश्त के लिये (क्रमश IS 1723–1960 : 2476–1963) विनिर्देशन निर्धारित किये है लाश के जिन विभिन्न गुणो के आधार पर मास का श्रेणी-निर्धारण किया जाता है वे है रचना (सामान्य बनावट, लाश अथवा टुकडो की रूपरेखा), परिसज्जा (वसा की किस्म, मात्रा, रग तथा वितरण) तथा गुणता (मोटाई, सुदृढता और रेशो तथा सयोजी ऊतको की मजबूती) लाश के भार (35–45 किग्रा और 45–55 किग्रा) के अनुसार पॉर्क को दो श्रेणियो मे वर्गीकृत किया जाता है

ऊँट का मास स्थूल दानेदार, मोटा और घटिया मिठास लिये हुये होता है इसमे जल 80% तथा बहुत कम मात्रा मे वसा पायी जाती है किन्तु ग्लाइकोजन विद्यमान रहता है

परिरक्षण तथा ससाधन

मास बहुत जल्दी खराब हो जाता है अत समुचित ससाधन तथा सग्रहण के द्वारा ही इसे ताजा रखा जा सकता है खराब हो जाने पर मास लसदार या चिपचिपा और गहरे भूरे रग का हो जाता है तथा इसकी गध और स्वाद अप्रिय लगने लगते है जब पशु का वध किया जाता है तो उसमे शव-काठिन्य (पेशियो का कठोरीकरण तथा सकुचन) आ जाता है, साथ ही उसमें लैक्टिक अम्ल और अन्य अम्ल (ग्लाइकोजन ऊतको से) उत्पन्न होने लगते है और ऊष्मा निकलती है 24 घण्टो मे इस क्रिया के अधिकतम सीमा पर पहुँचने के पश्चात् शव-काठिन्य मे धीरे-धीरे उतार आने लगता है तथा पेशियाँ पुन कोमल और ढीली हो जाती है शव-काठिन्य के पश्चात् जो परिवर्तन होते है वे प्रशीतन ताप पर मन्द हो जाते है

जिन विभिन्न कारणो से मास खराब होता है उनमे सूक्ष्म-जीव, वायु, प्रकाश तथा एजाइम है, जिनमे से सूक्ष्म-जीव प्रमुख है मास मे उपस्थित अधिसख्यक जीवाणुओ के कारण उसका स्वाद घटिया होने लगता है, रग उडने लगता है तथा अन्त मे अपघटन हो जाता है फफूँदियो के विकास के फलस्वरूप मास मे इनकी आपत्तिजनक वृद्धि दिखायी पडती है तथा ये अवाछित गध और गन्ध-स्वाद उत्पन्न करती है वायु के प्रभाव से मास मे रगहीनता, वसीय ऊतको मे विकृतगधिता तथा निर्जलीकरण हो जाता है प्रकाश मे खुला रखने पर मास के वर्णक फीके पड जाते है, विकृतगधिता बढती है, साथ ही साथ मास ऊतको मे उपस्थित एजाइम जल-अपघटनीय परिवर्तन लाते है

प्रशीतन तथा हिमीकरण, ससाधन, धूमन, निर्जलीकरण, डिब्बाबन्दी तथा किरणन जैसी कई विधियो का प्रयोग करके मास का परिरक्षण किया जाता है भारत मे व्यापारिक मात्रा मे मास का परिरक्षण नही किया जाता यद्यपि विकसित देशो मे इसे व्यापक पैमाने पर अपनाया जाता है कुछ स्थानो पर केवल पॉर्क को हैम, बेकन तथा गुलमा जैसे विभिन्न उत्पादो के रूप मे परिरक्षित तथा ससाधित किया जाता है

प्रशीतन तथा हिमीकरण – भारत मे अधिकतर कच्चे मास को ताजा ही बेच दिया जाता है और सामान्यत अधिक मात्रा मे इसका भडारन नही किया जाता, जबकि पश्चिमी देशो मे मास तथा उसके उत्पादो को लम्बी अवधि तक सचयन के लिये शीतित भडार व्यापक मात्रा मे उपलब्ध है ग्रीष्म ऋतु मे कभी-कभी मास को बरफ मे 12–36 घटे तक सचित किया जाता है केवल बडे-बडे नगरो मे ही यात्रिक प्रशीतन की सहायता ली जाती है प्रशीतन के फलस्वरूप लाश की ऊष्मा शीघ्रता से कम हो जाती है और इससे शव-काठिन्य क्रिया मन्द पड जाती है तथा उसमें अनुकूलतम परिरक्षक गुण आ जाते है

मास के हिमाक (–2 2°) से ऊपर द्रुतशीतन तापो पर उसके सचय को 'प्रशीतन सचयन' तथा हिमाक से निम्न तापो पर सचयन को 'हिमीकृत सचयन' कहा जाता है –1 0° से +1 5° ताप तथा 88–92% आपेक्षिक आर्द्रता लाशो के द्रुतशीतन की अनुकूलतम परिस्थितियाँ है मास को लम्बी अवधि तक सचित करने के लिये हिमीकृत सचयन का प्रयोग किया जाता है और इसके लिये –23° से –18° उपयुक्त ताप है मास को सम्पूर्ण लाश के रूप मे तथा बडे अथवा उपभोक्ताओ के लिये काटे गये छोटे टुकडो के रूप मे सचित किया जा सकता है हिमीकरण करने के पूर्व इसे रेशेदार गत्तो मे लपेट कर अथवा लकडी के बक्सो मे रखकर पैक कर दिया जाता है ब्लास्ट-हिमीकरण तथा पट्टिका-हिमीकरण दो ही विधियाँ आजकल व्यापारिक स्तर पर हिमीकरण के लिये अपनायी जा रही है पहली विधि का उपयोग बीफ के टुकडो तथा छोटी लाशो जैसी अनियमित आकृति वाली वस्तुओ के लिये किया जाता है तथा नियमित आकार की वस्तुये दूसरी विधि द्वारा हिमीकृत की जाती है इन दोनो विधियो द्वारा पदार्थो का हिमीकरण शीघ्रता से हो जाता है तथा ये विधियाँ प्रशीतित मास का वायु मे –10° से –15° पर मन्द गति से हिमीकरण करने से अच्छी है क्योकि पिघलने पर विलेय पोषक तत्वो के टपक कर बह जाने से होने वाली हानि तथा उपभोक्ता द्वारा की जाने वाली आपत्तियाँ, तीव्र-हिमीकृत मास मे बहुत कम होती है हिमीकृत मास तथा मास उत्पादो को –18° पर निम्नलिखित अवधियो तक सचित किया जा सकता है बीफ, 6–18, मेमना, 6–16, बछडे का मास, 4–14, पॉर्क, 4–12, कटलेट बीफ, 4–6, पॉर्क गुलमा, 2–6, धमित हैम तथा बेकन, 4 और बीफ यकृत, 2–4 माह

ससाधन – मास पकाने के लिये सामान्यत चार विधियो का प्रयोग किया जाता है ये है मीठा-अचार बनाना, शुष्क लवण समाधन, शुष्क-ससाधन तथा अन्त क्षेपण ससाधन

हैम तथा इसके टुकडो का अधिकतर मीठा-अचार ससाधित किया जाता है जिसके अन्तर्गत मास को लवण, लवण-जल, शर्करा अथवा अन्य मिठास देने वाले पदार्थो तथा थोडे से सोडियम नाइट्रेट के साथ मिश्रित करके बडी-बडी जलरोधी टकियो मे रखकर 2–4 5° ताप पर 15–45 दिनो के लिये छोड दिया जाता है.

लवण तो ऊतको में से जल निकाल कर उन्हें कठोर तथा शुष्क बना देता है, किन्तु शर्करा उन्हें मुलायम बनाती है तथा लवणो की रुक्षता को उदासीन करके उत्पाद के स्वाद में सुधार लाती है सोडियम नाइट्रेट मास के आकर्षक लाल अथवा गुलाबी रंग को बनाये रखने मे सहायक है

शुष्क-लवण विधि मे लवण को मास के ऊपर रगडकर तथा चारो तरफ नमक रखकर इसका चट्टा लगा दिया जाता है इसका प्रयोग वडे तथा भारी टुकडो के परिरक्षण के लिये किया जाता है

शुष्क-ससाधन जो बेकन के परिरक्षण के लिये व्यवहृत किया जाता है, लवण, शर्करा और सोडियम नाइट्रेट को मास की परतो के बीच मे छिडक कर उसे विना दवाये जलरोधी वर्तनो मे पैक कर दिया जाता है मिश्रण में निकलने वाले रस के द्वारा ही मास स्वय धीरे-धीरे पक जाता है

अन्तःक्षेपण अथवा "धमनीय" विधि मे ससाधन के लिये प्रयुक्त अवयवो के विलयन को खोखली सुइयो मे भरकर, पुट्ठो तथा कधो की खुली हुयी धमनियो मे डालकर दाव द्वारा प्रवेश करा दिया जाता है इस विधि से ससाधन करने मे वहुत कम समय लगता है

मास तथा उसके उत्पादो के परिरक्षण के लिये प्रयुक्त एव मान्य कुछ प्रमुख योगशील पदार्थ, ऐस्कार्बिक अम्ल, आइसो-ऐस्कार्बिक अम्ल तथा उसके लवण, ब्यूटिलीकृत हाइड्रॉक्सी एनिसोल, अमोनियम हाइड्रॉक्साइड, हाइड्रोक्लोरिक, लैक्टिक, फॉस्फोरिक तथा टार्टरिक अम्ल, स्टीऐरिल सिट्रेट, क्लोरटेट्रासाइक्लिन, ऑक्सीटेट्रा-साइक्लिन इत्यादि है ओज़ोन तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड और कुछ रजक पदार्थ भी योगशील पदार्थो के रूप मे प्रयोग किये जाते है

धूमन – हैम तथा वेकन जैसे मासो को ससाधन के साथ-साथ धूमित भी किया जाता है ससाधित टुकडे धूमन के पहले जल का छिडकाव करके धो लिये जाते हैं मास का धूमन न केवल परिरक्षी का कार्य करता है वरन् प्रशीतन के विना ही उत्पादो के सचयन गुणो मे सुधार भी करता है और उत्पादो को विशिष्ट स्वाद भी प्रदान करता है धूमन-गृहो मे गैस वर्नरो अथवा लकडी के धुयें द्वारा ऊष्मा पहुँचाकर धूमन किया जाता है धूमन ताप सामान्यत 46° के नीचे ही रखा जाता है धूमन अवधि तथा ताप, उत्पाद के अनुसार वदलते रहते हैं वेकन को सामान्यतया 55° ताप पर 18–24 घण्टे तक धूमित किया जाता है ससाधित वेकन के धूमन से प्राप्त उत्पाद मे एक विशिष्ट धुयेंदार गध तथा हल्का और मीठा स्वाद होता है भारतीय मानक सस्थान ने धूमित वेकन के विनिर्देशन दिये है (IS 2475-1963) धूमित तथा ससाधित हैम का स्वाद मीठा और रुचिकर होता है

धूप में सुखाना – द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश (विशेषकर आगरा जिले मे) भैस के मास की छिपटियो को लवण तथा पोटैशियम नाइट्रेट से रजित करके लगभग चार दिनो तक धूप में सुखाकर मास (वर्मा मास या बिल्टाग) की काफी माला तैयार की जाती थी वलूचिस्तान के कुछ भागो मे दुम्वा मास (मोटी पूछवाली भेडो से प्राप्त) को हल्की आँच पर तव तक गरम करते है जव तक उसका रग लाल न हो जाय, फिर टुकडो के ऊपर असैफोटिका की जडो तथा लवण का मिश्रण लगाकर उन्हे धूप में सुखा दिया जाता है

निर्जलीकरण – मास, विशेषतया वकरे के मास, के निर्जलीकरण के लिये कई कारखाने स्थापित किये गये है मास की फाँको को 10% लवण विलयन में तीन मिनट तक डुवोने के पश्चात् उन्हें ट्रे मे फैलाकर 63–68° ताप वाली निर्जलीकारी सुरगो में 8–10 घण्टे तक सुखाया जाता है देखने में पत्तको की तरह लगने वाली इन सूखी फाँको में लवण लगाकर टिन के डिब्वो में पैक करके सील कर दिया जाता है टिनो में एक छोटा-सा छेद करके उन्हे एक गरम कक्ष (71°) में 3 घण्टे तक रखने के पश्चात् छेद वन्द कर दिये जाते है पशुवध करने से लेकर निर्जलीकरण तक के सम्पूर्ण प्रक्रम में 22 घण्टे लगते हैं निर्जलीकृत मास में कुछ कमियाँ रहती है अत. उपभोक्ता इसे कम पसद करते है

डिब्वावन्दी – विना प्रशीतन किये ही परिरक्षण के लिये मास को सर्वप्रथम डिब्वो मे वद कर देते है जिससे जीवाणुनाशन के लिये उन्हें उच्च ताप पर काफी गरम करना पडता है सयुक्त राज्य अमेरिका मे कई प्रकार के मास उत्पादो की डिब्वावदी की जाती है डिब्वावदी किये जाने वाली वस्तुओ में वीफ के टुकडे प्रमुख है. इसके अतिरिक्त हैम, पॉर्क (कधा, कमर तथा अन्य टुकडे), मटन इत्यादि की भी डिब्वावदी की जाती है नवजात शिशु आहारो के लिये विशेष रूप से विभिन्न शाक-भाजियो और मासयूप के साथ मिलाकर कई प्रकार के मासो की डिब्वावदी की जाती है जीवाणुओ के विनाश के लिये आवश्यक ताप और समय, उत्पाद की प्रकृति, उसके पी-एच मान, ससाधन के लिये प्रयुक्त लवणो की उपस्थिति तथा डिब्वो के आकार और रूप पर निर्भर करते है कुछ उत्पादो को गरम अवस्था में ही डिब्वो में पैक कर दिया जाता है तथा अन्यो को ठण्डा ही डिब्वो पर लेवल न लगाना पडे, इसके लिये रोगन लगे अथवा विना रोगन वाले या अश्ममुद्रित डिब्वो को काम मे लाया जा सकता है डिब्वावदी करने के पूर्व कभी-कभी मास को पकाया या ससाधित किया जाता है जिससे इसे डिब्वे मे इस प्रकार भरा जा सके कि डिब्वे मे भरी वस्तुयें भली-भाँति दिखायी पडें प्राथमिक पक्वन के पश्चात् मास से वसा, उपास्थियो, अस्थियो इत्यादि को अलग करके और यदि आवश्यकता हुयी तो इसे छोटे-छोटे टुकडो में काट कर डिब्वो मे वद और निर्वात अवस्था में सील करके विसक्रमित कर दिया जाता है भारतीय मानक सस्थान ने डिब्वावन्द मटन तथा वकरे के मास के लिये विनिर्देशन प्रस्तुत किये है (IS : 3044–1965)

किरणन – किरणन द्वारा मास का प्रतिरक्षण सर्वथा नवीन विधि है किरणन की दो तरह की विधियाँ ज्ञात है : अन-आयनकारी (सूक्ष्म-तरगो, अवरक्त तथा पराबैंगनी विकिरणो का प्रयोग) तथा आयनकारी (कैथोड तथा गामा विकिरणो का प्रयोग) प्रथम विधि में विकिरणो की वेधक क्षमता कम होने से वसा मे ऑक्सीकारी विकृतगधिता उत्प्रेरित होती है और मास के रजक पदार्थ विरजित होने लगते है. इनका जीवाणुनाशी प्रभाव केवल 2600 Å के विकिरणो द्वारा ही होता है दूसरी विकिरणन विधि को 'शीत-जीवाणुनाशन' विधि भी कहा जाता है इसमे किसी प्रकार की ऊष्मा उत्पन्न हुये विना ही सूक्ष्म जीव मर जाते हैं परन्तु इमसे वसा मे क्षय तथा विकिरण के कारण अरुचिकर गध आ जाती है जीवाणुनाशन के लिये विकिरण की जितनी माला प्रयुक्त होती है उसकी अपेक्षा प्रशीतन, प्रतिजैविकी तथा रसायनो के साथ कम ही माला में विकिरण अधिक व्यावहारिक वनाये जाते हैं

उपयोग तथा संघटन

उपयोग

रसोई मे पकाने जैसे उपयुक्त उपचार के बाद मास मे एक रुचिकर स्वाद-गध आ जाती है जिससे आमाशयी स्रावो का उद्दीपन होता है और वह सुगमता से पच भी जाता है मास के पतले खण्डो को शुष्क ऊष्मा द्वारा और मोटे खण्डो को नमी की उपस्थिति मे गरम करके पकाते है न्यून ताप पर पकाने मे समय अधिक लगता है, पकाते समय छीजन भी कम होता है और जो उत्पाद मिलता है वह रसदार होता है मास को उच्च ताप की अपेक्षा न्यून ताप पर पकाने से उसका रग भूरा नही पडता मास को सामान्यत प्याज, हरे पदार्थ तथा मसालो के द्वारा ससाधित करके कई प्रकार से खाया जाता है इसका उपयोग पुलाव बनाने (चावल के साथ पकाये जाने पर) तथा भून कर और तल कर, टिक्की, कटलेट जैसे व्यजन तैयार करने के लिये भी किया जाता है यह शोरवा, कढी और सैंडविच बनाने में भी प्रयुक्त होता है भारतीय मानक सस्थान ने कढीयुक्त माम तथा बकरे के मास के लिये विनिर्देशन तैयार किये हैं (IS. 3044–1965) कीमा से कोफ्ता, कबाव, दम तथा पट्टी इत्यादि बनाये जाते है

भारत मे उत्पादित मास को अधिकतर ताजा पकाकर खाने के लिये व्यवहार मे लाया जाता है केवल पॉर्क, मटन और बीफ की थोडी मात्राये विभिन्न प्रकार के उत्पादो के रूप मे ससाधित तथा प्रतिरक्षित की जाती है उपर्युक्त खण्ड तथा जोड केवल वहाँ-वहाँ पर मिल सकते है जहाँ-जहाँ की अधिकाश जनसख्या पाश्चात्य विधि से तैयार मास, यथा भुना मास, चाप, टिक्की आदि अधिक पसन्द करती है बीफ, मटन तथा बकरे का मास अधिकतर स्थानो पर वैसे ही बेचा जाता है लाश को पहले प्रमुख अगो के अनुसार, फिर खाद्य अशो के अनुसार काट कर ढेरो मे मिश्रित करके मिझाते और पकाते है

उपलब्ध आँकडे बताते है कि मास का उपभोग ग्रामीण क्षेत्रो की अपेक्षा नगरो में अधिक होता है भारत की अधिकाश जनसख्या भावनात्मक तथा कुछ अन्य विचारो के कारण गोमास (बीफ) नही खाती पॉर्क को यूरोप तथा अमेरिका मे अत्यन्त सुस्वादु भोजन माना जाता है फिर भी भारत मे अभी तक प्रचलित नही हो सका है.

भारत मे 1960–61 मे मास का अनुमानित उत्पादन इस प्रकार था बकरे का मास, 35 5, मटन, 17 3, भैंस का मास, 14 3, बीफ, 9 4, पॉर्क, 4 7, ग्रथियाँ, 5 6, सिर और पैर, 13 2% फिर भी जितना मास उपलब्ध है उससे केवल 20% माँग ही पूरी हो जाती है

संघटन

मास उच्च कोटिक तथा शीघ्र पाच्य प्रोटीनो, वसा, फॉस्फोरस, लोहा, विटामिन ए तथा बी–विटामिनो का अच्छा स्रोत है इसमे पाये जाने वाले विशिष्ट पोषक तत्वो की अपेक्षित मात्रा यथेष्ट सतुलित रहती है मास के छिछडो मे (पशुओ के यकृत, गुर्दा, हृदय तथा जिह्वा मे) प्रोटीनो तथा विटामिनो की मात्रा विशेषतया अधिक होती है यकृत के खण्डो मे विटामिन ए विशेषतया अधिक होता है (सारणी 97)

सारणी 97 – विभिन्न प्रकार के मासो के खाद्य भागो का संघटन*

	गोमांस-पेशी	भैंस का मास (कन्धे की पट्टिया)	बकरे का मास	बकरे का यकृत	बकरे की मांसपेशी	भेड़ का यकृत	सुअर की मासपेशी
जल, %	74 3	78 7	74 2	76 3	71 5	70 4	77 4
प्रोटीन, %	22 6	19 4	21 4	20 0	18 5	19 3	18 7
वसा, %	2 6	0 9	3 6	3 0	13 3	7 5	4 4
कार्बोहाइड्रेट, %						1 3	.
खनिज, %	1 0	1 0	1 1	1 3	1 3	1 5	1 0
कैल्सियम, मिग्रा /100 ग्रा	10	3	12	17	150	10	30
ऑक्सैलिक अम्ल, मिग्रा /100 ग्रा.	25				7		.
फॉस्फोरस, मिग्रा /100 ग्रा.	190	189	193	279	150	380	200
लोह, मिग्रा./100 ग्रा	0 8				2 5	6 3	2 2
सोडियम, मिग्रा /100 ग्रा	52				33	73	
पोटैशियम, मिग्रा /100 ग्रा	214				270	166	
विटामिन ए, अ. इ /100 ग्रा	60				31	22,300	0
थायमीन, मिग्रा /100 ग्रा	0 15				0 18	0 36	0 54
राइबोफ्लेविन, मिग्रा /100 ग्रा	0 04				0 27	1 70	0 09
निकोटिनिक अम्ल, मिग्रा /100 ग्रा	6 4				6 8	17 6	2 8
विटामिन सी, मिग्रा /100 ग्रा.	2		.			20	2

*Nutritive Value of Indian Foods, 80–81, 115–16, 140

पशु की जाति जिससे मास के टुकडे काटे गये हो, वध के पूर्व पशु का चराने के कारण मोटापन, खाडा करने तथा कतरने और ससाधन विधियो के प्रत्यक्ष प्रभाव और उपभोग के समय प्रयुक्त पकाने की विधियो पर, मास का सघटन निर्भर करता है दुर्बल मास मे नमी और प्रोटीनो की माता अधिक तथा स्थूल या अत्यन्त स्थूल मास मे प्रोटीन और नमी की माता कम रहती है किन्तु वसा अधिक पायी जाती है ताजे मास के टुकडो के खाद्य भाग (1 सेमी मोटे वसा आवरण वाले मध्यम श्रेणी के खण्ड) तथा पतली पेशियो वाले मास के सघटन के औसत मान क्रमश इस प्रकार है नमी, 62, 70, प्रोटीन, 17, 20, वसा, 20, 9, तथा राख 1, 1%, ऊष्मा मान, 250, 160 कै/100 ग्रा विभिन्न मासो के खाद्य भागो का सघटन सारणी 97 मे और मास के विशिष्ट खण्डो तथा उनके उत्पादो का अनुमानित सघटन सारणी 98 में प्रदर्शित है विभिन्न अगो के मास तथा उनकी दुर्बल कटी हुयी पेशियो का सघटन एक-जैसा होता है

बकरी के मास तथा बकरी के मस्तिष्क, हृदय, यकृत, फेफडो

सारणी 98—मास के विशिष्ट खड तथा मास उत्पादो का सघटन*
(प्रति 100 ग्रा)

मास की किस्म	जल (ग्रा)	प्रोटीन (ग्रा)	वसा (ग्रा)	राख (ग्रा)	कैल्सियम (मिग्रा)	फास्फोरस (मिग्रा)	लोह (मिग्रा)
गोमास							
पसली	59 0	17 4	23 0	0 8	10	149	2 6
कमर	57 0	17 4	25 0	0 8	10	134	2 5
पृष्ठ भाग	55 0	16 2	28 0	0 8	9	131	2 4
आते	69 0	19 5	11 0	1 0	11	180	2 9
अग्रभाग	65 0	18 6	16 0	0 9	11	167	2 8
सुअर का मास							
कमर या चाप	58 0	16 4	25 0	0 9	10	186	2 5
रागे (ताजी)	53 0	15 2	31 0	0 8	9	168	2 3
मेमना							
चाप	51 9	14 9	32 4	0 8	9	138	2 2
टांग	63 7	18 0	17 5	0 9	10	213	2 7
कधा	58 3	15 6	25 3	0 8	9	155	2 3
बछडे का मास							
कमर	69 0	19 2	11 0	1 0	11	207	2 9
आतें	70 0	19 5	9 0	1 0	11	200	2 9
कधा	70 0	19 4	10 0	1 0	11	199	2 9
अगो का मास (वीफ)							
मस्तिष्क	78 0	10 4	8 6	1 4	16	330	3 6
हृदय	77 0	16 9	3 7	1 1	9	203	4 6
गुर्दा	75 0	15 0	8 1	1 1	9	221	7 9
यकृत	70 0	20 0	3 5	1 4	7	358	6 6
जीभ	68 0	16 4	15 0	0 9	8	199	6 9
मास उत्पाद							
गोमास का कोमा	55 0	16 0	28 0	0 8	9	128	2 4
सूखा गोमास	48 0	34 3	6 3	11 6	20	404	5 1
संसाधित गोमास	54 2	15 8	25 0	5 0	9	125	2 4
रागे (ससाधित एवं धूमित)	42 0	16 9	35 0	5 4	10	136	2 5
सुअर की पीठ और टागें (संसाधित)	20 0	9 1	65 0	4 3	13	108	0 8
सुअर का गुलमा (ताजा)	41 9	10 8	44 8	2 1	6	100	1 6
सुअर या गोमास का गुलमा (ससाधित)	60 0	14 2	20 5	2 7	8	100	1 5
कीमा (संसाधित)	62 0	14 8	15 9	3 3	9	112	2 2

सारणी 99 – कुछ पशु ऊतकों एव उनके छिछडो के प्रोटीनो का ऐमीनो अम्ल सघटन*
(ग्रा /16 ग्रा नाइट्रोजन)

ऐमीनो अम्ल	यकृत	गुर्दा	मतिष्क	केरोटिन	मास की चर्वी का खाद	मास की छीजन	सम्पूर्ण वीफ रक्त**	रक्त-चूर्ण
आर्जिनीन	6 6	6 3	6 6	10 7	5 9	7 0	4 2	3 7
हिस्टिडीन	3 1	2 7	2 8	1 0	2 7	2 0	5 9	4 9
लाइसीन	6 7	5 5	6 5	3 2	7 2	7 0	8 0	8 8
टाइरोसीन	4 6	4 8	4 1	5 1	2 9	3 2	3 8	3 7
ट्रिप्टोफेन	1 4	1 7	1 6	1 4	0 7	0 7	1 5	1 3
फेनिल ऐलानीन	6 1	5 5	5 8	3 7	5 1	4 5	७ 2	7 3
सिस्टीन	1 4	1 ɔ	1 8	10-17	.	1 0	1 8	1 8
मेथियोनीन	3 2	2 7	3 0	1 0		2 0	1 5	1 5
थ्रिओनीन	4 8	4 6	5 8	7 2	3 0	4 0	6 6	6 5
ल्यूसीन	8 4	8 0	7 4	10 0	7 7	8 0	15-20	12 2
आइसोल्यूसीन	5 6	5 6	5 1	5 0	2 7	6 3	2 0	1 1
वैलीन	6 2	5 3	4 8	6 0	5 4	5 8	5-6	7 7

*Block & Mitchell, *Nutr Abstr Rev*, 1946-47, 16, 249, **Kuppuswamy *et al*, 158–59

और गुर्दों के समान वकरी के मास के छिछडे, जिनका भारत मे प्रचुर माता में उपयोग होता है, उनके सघटन के औसत मान सारणी 100 मे दिये गये है

नाइट्रोजनी अवयव

चाहे जिस जाति के स्तनी पशु हो उनके पेशी ऊनको में 21–22% प्रोटीन (शुष्क भार के आधार पर 73–88%) पाया जाता है वीफ के विभिन्न अगो मे प्रोटीन की माता भिन्न-भिन्न होती है. मस्तिष्क अग मे 10 6 तथा यकृत में 23 7% प्रोटीन रहता है

मास के प्रमुख प्रोटीनो को पेशी प्रोटीन, सयोगी ऊतक प्रोटीन तथा रक्त प्रोटीन में वर्गीकृत किया जा सकता है पेशी प्रोटीनो में ग्लोबुलिन जटिल ऐक्टोमायोसिन अधिक माता मे पाया जाता है जो पेशियो के सकुची गुणधर्मो का नियामक है इसमे ऐक्टिन तथा मायोसिन दो प्रकार के प्रोटीन सन्निहित रहते हैं कुल पेशी प्रोटीनो मे मायोसिन (अणुभार, 8,50,000) 38% तथा ऐक्टिन 13% पाया जाता है ऐक्टिन दो रूपो में रहता है जी-ऐक्टिन नामक एकलक रूप तथा एफ-ऐक्टिन (रेशेदार) बहुलक रूप पेशी ऊनको मे थोडी माता कोलैजेन रेटिकुलिन तथा इलैस्टिन की भी पायी जाती है जिनमे सयोगी ऊनक प्रोटीन, श्वसन रगद्रव्य मायोग्लोबिन, न्यूक्लियो प्रोटीन, एजाइम तथा अन्य प्रोटीन यौगिक उपस्थित रहते हैं कोलैजेन त्वचा तथा नसो, अस्थियो और सयोगी ऊनको के त्वचीय भाग के प्रमुख सघटक है और इलैस्टिन स्नायुओ का मुख्य घटक है केराटिन ऐसे प्रोटीन है जो वालो, सीगो तथा खुरो मे पाये जाते है.

मास, प्रोटीन, लाइसीन तथा मेथियोनीन के अच्छे स्रोत है चाहे जिस पशु जाति, खण्ड अथवा अग से प्राप्त किया जाय, मास प्रोटीनो के निर्मायक ऐमीनो अम्लो की माता विलकुल स्थिर होती है फिर भी, जिस प्रोटीन में सयोगी ऊतको की माता अधिक हो, उनमें प्रोलीन, हाइड्रॉक्सी-प्रोलीन तथा ग्लाइसीन की अधिकता रहती है तथा ट्रिप्टोफेन और टायरोसीन की न्यूनता रहती है विभिन्न प्रकार के प्रोटीनो का ऐमीनो अम्ल सघटन सारणी 101 मे दिया गया है तुलनार्थ चूजो की पेशियो, अण्डो तथा दूध के प्रोटीनो के मान भी साथ-साथ दिये हुये है वीफ प्रोटीनो मे सिस्टीन की न्यूनता रहती है तथा घोडे के माम के प्रोटीनो में से ट्रिप्टोफेन न्यून होता है पशु ऊतको तथा मास के छिछडो के प्रोटीनो का ऐमीनो अम्ल सघटन सारणी 99 मे प्रदर्शित है

मास के प्राय सम्पूर्ण प्रोटीन पचनीय (98–100%) होते हैं, उनका जैविक मान भी अधिक होता है विभिन्न स्तरो मे गृहीत मास तथा मास उत्पादो के प्रोटीनो के सुपाच्यता गुणाक तथा जैविक मान सारणी 102 मे दिये गये है खोजो से यह पता चला है कि पूरक प्रोटीनो के विना केवल मास प्रोटीनो की पर्याप्त माता देते रहने से जीवो की समस्त दैहिक कियाये तथा सामान्य वृद्धि सुचारु रूप से चलते रहते हैं अध्ययनो से यह भी पता चला है कि वृद्धि के लिये वीफ प्रोटीन, मत्स्य प्रोटीन के समान अनुकूल है वीफ प्रोटीन, यद्यपि सम्पूर्ण अण्डे के प्रोटीनो से कुछ घटिया है, परन्तु केसीन, गेहूँ के ग्लुटेन तथा मूगफली के प्रोटीनो से उत्तमतर होता है मटर, अण्डा तथा खाद्यान्न प्रोटीनो के लिये मास प्रोटीन पूरक के रूप मे महत्व रखता है

ससाधन, पकायी, डिब्बावन्दी, हिमीकरण, निर्जलीकरण, किरणन तथा प्रतिजैविकी जैसी अभिक्रियाओ के द्वारा मास प्रोटीनो के पोषण मानो पर पडने वाले प्रभावो का व्यापक अध्ययन किया गया है व्यापारिक स्तर पर ससाधन तथा मास उत्पादन के लिये प्रयुक्त विधियाँ सामान्यतया उसके पोषण मानो को प्रभावित नही करती डिब्बावन्दी के लिये ऊष्मा-ससाधन का ऐमीनो अम्लो की माता पर कोई प्रभाव नही पडता, फिर भी अत्यधिक ऊष्मा-ससाधन नही करना चाहिये, यदि निम्न तापो पर मास का निर्जलीकरण प्रभाव नही पडता

सारणी 100 – बिहार तथा उत्तर प्रदेश से प्राप्त बकरे के मांस तथा उसके छिछडे का औसत संघटन*

	मास	हृदय	यकृत	फेंफडा	गुर्दा	मस्तिष्क
जल, %	74 6–77 6	76 8–79 6	64 6–74 3	77 8–79 7	77 6–79 7	73 8–77 1
वसा, %	1 0–2 8	3 3–5 8	3 2–13 8	1 5–2 7	1 8–3 1	9 3–11 0
प्रोटीन, %	18 8–20 1	14 6–17 2	18 5–21 3	14 6–17 3	15 5–16 6	9 6–12 5
खनिज पदार्थ, %	0 66–1 15	0 72–0 97	0 98–1 70	1 10–1 46	0 95–1 41	0 76–1 57
कैलोरी मान, कै /100 ग्रा	90–108	93–120	108–205	79–95	82–98	135–152
कुल लोहा, मिग्रा /100 ग्रा	6 6–12 0	13 7–15 8	18 7–39 1	16 7–21 8	13 3–21 1	6 4–10.2
आयननीय लोहा, मिग्रा /100 ग्रा	1 05–1 27	1 55–1 66	1 8–1 95	1 02–1 12	2 3–2 59	0 43–0 53
कैल्सियम, मिग्रा /100 ग्रा	10 2–23 0	6 9–25 1	7 0–21 6	8 6–18 3	10 9–34 4	9 1–26 0
फॉस्फोरस, मिग्रा /100 ग्रा	190–270	170–270	250–400	200–250	230–380	210–380
थायमीन, माग्रा /100 ग्रा	63 6–148 4				.	
निकोटिनिक अम्ल, मिग्रा./100 ग्रा	0 43–0 98					
ऐस्कार्बिक अम्ल, मिग्रा /100 ग्रा.			8 78–9 90	8 80–9 89		10 12–10 61

*Sen Gupta, *J Indian chem Soc , industr Edn*, 1951, **14**, 134

सारणी 101 – विभिन्न मास प्रोटीनो का ऐमीनो अम्ल संघटन

(कच्चे प्रोटीन का % मान)

ऐमीनो अम्ल	गोजातीय[1] मास	सुअर का[1] मास	मेमना[1] का मास	घोडे का[2] मास	ससाधित[1] मास	सयोजी ऊतक (कोलैजन)[1]	चूजो की पेशियाँ[2]	सम्पूर्ण अण्डे का प्रोटीन[3]	गाय के सम्पूर्ण दूध का प्रोटीन[2]
आर्जिनीन	6 6	6 4	6 9	6 3	6 6	7 6	7 1	6 4	4 3
हिस्टिडीन	2 9	3 2	2 7	3 6	2 8	0 7	2 3	2 1	2 6
आइसोल्यूसीन	5 1	4 9	4 8	6 3	4 9	1 9		8 0	8 5
ल्यूसीन	8 4	7 5	7 4	8 0	7 4	3 6		9 2	11 3
लाइसीन	8 4	7 8	7 6	8 7	7 4	4 0	8 4	7 2	7 5
मेथियोनीन	2 3	2 5	2 3	3 2	2 2	0 7	3 2	4 1	3 4
फेनिल ऐलानीन	4 0	4 1	3 9	5 9	4 0	3 6	4 6	6 3	5 7
थ्रियोनीन	4 0	5 1	4 9	4 4	3 9	2 0	4.7	4 9	4 5
ट्रिप्टोफेन	1 1	1 4	1 3	1 5	1 0	0 0	1 2	1 5	1 6
वैलीन	5 7	5 0	5 0	5 8	5 2	0 9		7 3	8 4
ऐलानीन	6 4	6 3	6 3		6 4				
ऐस्पार्टिक अम्ल	8 8	8 9	8 5		9 1				.
सिस्टीन	1 4	1 3	1 3	1 0	1 5		1 3	2 4	1 0
ग्लूटैमिक अम्ल	14 4	14 5	14 4		12 9				.
ग्लाइसीन	7 1	6 1	6 7		8 0			2.2	2 3
प्रोलीन	5 4	4 6	4 8	.	5.2			.	
सेरीन	3 8	4 0	3 9		4 2				
टाइरोसीन	3 2	3 0	3 2	3 9	2 9	1 1	4 3	4 5	5 3

[1]Science of Meat and Meat Products, 198, [2]Block & Mitchell, *Nutr Abstr Rev* , 1946-47, **16**, 249

सारणी 102 – मास प्रोटीनो के पोषण मान*

मास की किस्म	पोषण स्तर (%)	जैविक मान (%)	सुपाच्यता गुणाक (%)
ताजा मास			
गोजातीय			
सम्पूर्ण		68 0	97 6
आतें	10	78 1	99 6
पसली	10	78 0	98 0
टिक्की		84 0†	97 0†
सुअर का मास			
खस्सी		74 0	100 0
कमर	10	79 0	100 0
संसाधित मास			
गोजातीय			
शुष्कित	10	68 6	97 3
निर्जलीकृत	10		97 1
उबाला हुआ	7	60 0	98 6
आटोक्लैवित		59 0	98 5
भूना हुआ		76 9	98 9
शुष्कित तथा वसा निकाला हुआ व्यापारिक	2-5	69 4	99 0
बकरे का शुष्कित मास	10	60 4	95 2
भैंस का शुष्कित मास	10	59 5	94 7
निर्जलीकृत सुअर का मास	10		98 2
ग्रथियाँ तथा छिछड़े			
गोजातीय			
हृदय	10	74 0	100 0
गुर्दा	10	77 0	99 0
यकृत	10	77 0	98 0
शुष्कित यकृत	5	57 0	88 0
जिलैटिन	10	25 0	96 0

*Kuppuswamy *et al*, 152-54

† मानवीय उपापचय प्रयोगो द्वारा निर्धारित

मास के समस्त नाइट्रोजन का 8–14% अप्रोटीन नाइट्रोजन के रूप मे रहता है मास मे उपस्थित अप्रोटीन नाइट्रोजनी पदार्थो में मुक्त ऐमीनो अम्ल, ग्लूटाथायोन, क्रियेटीन, प्यूरीन तथा कार्नोसीन क्षारक, यूरिया और फ्लेविन सम्मिलित है

कार्बोहाइड्रेट – ताजे पेशी मासो में अनिवार्यत कार्बोहाइड्रेट (<1%) नही रहता कई अगो के मासो मे ग्लाइकोजन तथा ग्लूकोस (4% तक) की कुछ मात्रा पायी जाती है

खनिज अवयव – मास लोह का अच्छा स्रोत है और यह यकृत, जीभ तथा गुर्दे में अधिक मात्रा में पाया जाता है. मास फॉस्फोरस का भी अच्छा स्रोत है परन्तु इसमें कैल्सियम नही रहता विभिन्न अगो के मासो मे खनिजो की मात्रा पेशी मासो की अपेक्षा अधिक रहती है कुछ मासो तथा मास उत्पादो मे खनिज अवयवो की मात्राओ का सकलन सारणी 103 मे दिया गया है मास मे उपस्थित सूक्ष्म-मात्रिक तत्वो मे ऐलुमिनियम, मैंगनीज़, तावा, जस्ता, सीसा, टिन, कोवाल्ट और आयोडीन (वीफ मे 0 03–0 04 तथा बछडे के मास मे 0 025–0 038 मिग्रा /किग्रा) रहते हैं पकाने तथा ससाधन करने से मास की खनिज मात्रा एव उनकी उपलब्धि पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता

विटामिन – मास बी-विटामिनो का उत्तम स्रोत है सुअर जैसे मासदायी पशुओ के आहार में उपस्थित विटामिनो का प्रभाव उनसे प्राप्त मास की विटामिन मात्रा पर पडता है परन्तु रोमन्थी पशुओ मे ऐसा नही होता क्योकि उनके प्रथम *आमाशय* मे बी-विटामिनो का सश्लेषण होता है किसी विशिष्ट जाति के पशुओ के मास के विभिन्न खण्डो मे बी-विटामिनो की मात्रा मे अधिक अन्तर नही रहता किन्तु जाति वदलने पर मात्रायें बदलती रहती हैं पॉर्क के ताज़े खण्डो मे अन्य लाल मासो की अपेक्षा कई गुना थायमीन होता है एक ही जाति के पशु के विभिन्न अगो के मासो मे विटामिन की मात्राये अलग-अलग होती हैं किन्तु विभिन्न पशुओ के किसी एक विशेष अग के मास मे विटामिनो की मात्रा समान होती है विभिन्न ताजे कटे अगो के माँसो की विटामिन मात्रायें सारणी 104 में प्रदर्शित की गयी है बी-विटामिनो के अतिरिक्त अग मास विटामिन ए, डी, ई, तथा के, के भी अच्छे स्रोत हैं परन्तु पेशी मासो मे इन विटामिनो की मात्रा नगण्य होती है

ससाधित तथा डिब्बाबन्द मासो मे थायमीन, राइबोफ्लैविन और निकोटिनिक अम्ल, विटामिनो की मात्रा, मास के प्रकार तथा उत्पाद के ऊष्मा-ससाधन की मात्रा पर निर्भर करती है ससाधन के फलस्वरूप थायमीन की आशिक हानि के अतिरिक्त अधिकाश विटामिनो पर इसका कोई प्रभाव नही पडता मास उत्पादो मे अभिग्रहीत थायमीन की मात्रा, आयनकारी किरणनो द्वारा उपचारित मास मे 40% से लेकर हल्के ससाधन तथा धूमित उत्पादो मे 85% तक होती है ससाधित मास उत्पादो का औसत थायमीन अभिग्रहण मान 75% होता है डिब्बाबन्दी में थायमीन अभिग्रहण न्यूनतम रहता है ससाधन तथा पकायी के समय राइबोफ्लैविन तथा निकोटिनिक अम्ल का विनाश अपेक्षाकृत कम होता है और उनकी हानि भी नगण्य होती है आयनकारी किरणन द्वारा मास का निर्जलीकरण करने पर 25% राइबोफ्लैविन नष्ट हो जाता है यदि मास में बी-विटामिनो का सरक्षण करना है तो यह आवश्यक होगा कि हिमीकृत मास के हिमद्रावण तथा पकायी के समय बूद-बूद करके टपकने वाले द्रव को फेका न जाय क्योकि इसमे ताजे मास मे पहले से उपस्थित बी-विटामिनो का 10-15% अश बना रहता है

रजक पदार्थ – मास को रग प्रदान करने वाला मायोग्लोबिन नामक रजक पदार्थ विभिन्न रासायनिक रूपो मे पाया जाता है यह एक जटिल प्रोटीन है जिसका एक अश प्रोटीन (ग्लोबिन) का तथा दूसरा पेप्टाइड-रहित अश हीम का होता है जिसमे लोह का एक परमाणु और पारफिरिन रहते हैं ताजे मासो मे उपस्थित मायोग्लोबिन तथा उसके ऑक्सीकृत रूपो के आपेक्षिक अनुपात के अनुसार ही उत्पाद का रग गहरा बैंगनी अथवा चमकीला लाल निश्चित होता है ताजे मास में एक अज्ञात लाल रजक पदार्थ भी पाया जाता है जो पकाने पर भूरा नही पडता मास के अन्य पेशी रजक पदार्थो मे साइटोक्रोम भी सूक्ष्म मात्रा मे पाया जाता है

एंजाइम – मास मे पाये जाने वाले एंजाइम पशुओ की वृद्धि तथा मास के पक्वन के समय होने वाले परिवर्तनो में महत्वपूर्ण योगदान

सारणी 103 – मास उत्पादो के खाद्य भागो में उपस्थित खनिज*

आहार	सोडियम	पौटैसियम	कैल्शियम	मैग्नीशियम	लोहा	ताँबा	फॉस्फोरस	गधक	क्लोरीन	अम्ल सतुलन अणु तुल्याक /100 ग्रा
गोमास, हिमीकृत, कच्चा	74	350	8 0	25 0	3 7	0 2	200	215	71	13 7
मस्तिष्क, वछडे का, उबाला हुआ	147	270	16 0	13 3	2 0		355	132	167	20 7
मस्तिष्क, भेड का, उबाला हुआ	170	268	10 8	17 8	2 2		339	129	144	17 7
रान, सुअर की, कच्ची	(1,120)	345	14 2	15 6	1 2		104	174	(1,770)	7 6
हृदय, सुअर का, कच्चा	80	300	5 7	19 7	4 8		76	198	113	11 3
गुर्दा, भेड का, कच्चा	250	254	13 3	15 8	11 7	0 3	254	166	295	15 7
यकृत, सुअर का, कच्चा	85	319	5 1	23 3	13 0		372	228	102	24 8
भेड का मास, चाप, कच्चा पतला	91	350	12 6	27 2	1 7	0 2	195	208	84	12 1
सुअर का मास, कच्चा	45	400	4 3	26 1	1 4		223	258	49	17 2
गोमास, गुलमा, तला हुआ	(1,130)	255	21 2	16 6	4 1	0 2	168	163	(1,770)	12 9
सुअर का मास, गुलमा, तला हुआ	(999)	205	19 7	14 9	3 3	0 2	141	95	(1,390)	3 6

*McCance & Widdowson, 34-45

नोट : कोष्ठको मे दी गयी सख्यायें यह सूचित करती है कि भोजन तैयार करने मे सामान्य लवण अथवा सोडियम बाइकार्बोनेट का प्रयोग हुआ है

सारणी 104 – कुछ अगो के ताजे मांस में विटामिनो की मात्रा*

अग	थायमीन (मिग्रा / 100 ग्रा)	राइवोफ्लेविन (मिग्रा / 100 ग्रा)	निकोटिनिक अम्ल (मिग्रा / 100 ग्रा)	विटामिन वी$_6$ (मिग्रा / 100 ग्रा)	पैन्टोथेनिक अम्ल (मिग्रा / 100 ग्रा)	वायोटिन (माग्रा./ 100ग्रा)	फोलिक अम्ल (मिग्रा / 100 ग्रा)	विटामिन वी$_{12}$ माग्रा./ 100 ग्रा)	विटामिन ए(अ इ / 100ग्रा)	विटामिन सी(मिग्रा / 100मिग्रा)
गोजातीय										
मस्तिष्क	0 12	0 22	3 6	0 16	2 5	6 1	0 01	4 7		18
हृदय	0 24	0 84	6 6	0 29	2 3	7 9	0 11	9 7	30	6
गुर्दा	0 28	1 9	5 3	0 39	3 4	92 0	0 04	28 0	1,200	13
यकृत	0 23	3 3	14 0	0 74	7 3	100 0	0 08	65 0	44,000	31
फेफडा	0 11	0 36	4 0	0 07	1 0	5 9		3 3		
वछडे का यकृत	0 21	3 1	16 0	0 30					22 000	36
नये वछडे का यकृत	0 52	3 3	16 0	0 30	6 0	75 0	0 05			
सुअर										
मस्तिष्क	0 16	0 28	4 3		2 8	18 0		2 8		18
हृदय	0 31	0 81	7 3	0 35	2 5	18 0		7 4	30	6
गुर्दा	0 26	1 9	8 6	0 55	3 1	130 0		6 6	130	13
यकृत	0 25	3 0	14 0	0 51	6 6	85 0	0 07	23 0	14,000	23
फेफड़ा	0 09	0 27	3 4		0 9					
मेमना										
मस्तिष्क	0 15	0 26	3 7		2 6			7 3		18
हृदय	0 31	0 86	4 6		3 0			5 2		
गुर्दा	0 38	2 2	6 8		4 3			26 0	1,200	13
यकृत	0 29	3 9	12 0	0 37	8 1	130 0		35 0	50,000	33
फेफड़ा	0 11	0 47	4 7		1 2			5 0		

*Science of Meat & Meat Products, 202

करते हैं विभिन्न अंगों के ऊतकों में एंजाइमों की विशेष रूप से अधिकता पायी जाती है विभिन्न जाति के पशुओं से प्राप्त मांसों के प्रमुख एंजाइम प्रोटियेस न्यूक्लिएस, ग्लाइ-ऑक्सैलेस, ऐम्पजिनेस, लिपेस, ऐमिलेस, ग्लाइकोजनेस, ग्लूकोसाइडेम, ऐल्कोहलेस, फॉस्फेटेस फॉस्फोएस्टरेस, कैटालेस, ऐल्डिहाइड्रेस तथा डिहाइड्रोजनेस हैं

वसा – बीफ, भेड़ तथा पॉर्क की वसायें क्रमश बीफ चर्बी, मटन चर्बी और लार्ड (सुअर की चर्बी) नाम से ज्ञात हैं और इनके गुण तथा संघटन सारणी 105 में दिये गये हैं मांस वसा में बहु-असंतृप्त ऐराकिडिक अम्ल पाया जाता है जिसकी मात्रा विभिन्न जातियों के पशुओं के मांसों में बदलती रहती है पॉर्क वसा की पथ्य वसा का संघटन असंतृप्त वसा अम्लों की मात्रा को प्रभावित करता है सामान्यत पॉर्क में उपस्थित असंतृप्त वसा अम्लों की मात्रा बीफ तथा मटन वसा की अपेक्षा अधिक होती है पशु वसा के असाबुनीकृत पदार्थों में कोलेस्टेरॉल रहता है मांस वाले पशुओं की मस्तिष्क-वसा में 2–3% कोलेस्टेरॉल पाया जाता है किन्तु लार्ड तथा चर्बी में इसकी मात्रा 0 5% से भी कम रहती है

अन्य अवयव – मांस तथा मांस उत्पादों में उपस्थित अन्य अवयवों में, फॉस्फोरसी कार्बनिक पदार्थ, जैसे न्यूक्लियोटाइड, लेसिथिन, सेफेलिन, हेक्सोस-फॉस्फोरिक अम्ल, क्रिएटिनिन-फॉस्फोरिक तथा जैसे आर्जिनीन-फॉस्फोरिक अम्लों सहित फॉस्फैजन, कार्बनिक अम्ल जैसे लैक्टिक, सक्सिनिक, फ्यूमैरिक, आक्सैलिक, ऐसीटिक तथा प्रोपियोनिक अम्ल, और इनासिटॉल सम्मिलित हैं

मांस विषाक्तता – मांस विषाक्तता होने पर मिचली, वमन, आंतसार या दस्त, सिर दर्द, चक्कर तथा दुर्बलता जैसे सामान्य लक्षण प्रकट होते हैं पॉर्क खाने से खस्सी सुअर के अल्प-वसीय मांस में उपस्थित ट्रिकिनी परजीवियों द्वारा ट्रिकिनेसिस नामक गंभीर रोग हो सकता है विषाणु मांस को पकाने पर भी नष्ट नहीं हो पाते अत पशुओं में पाये जाने वाले पूयकारी और अन्य रक्तपूयता तथा विषायन जैसे जीवों द्वारा उत्पन्न परिस्थितियाँ भी भयावह हैं अयन के स्ट्रेप्टोकोकसी तथा साल्मोनेला के द्वारा संदूषणों से मांस में विषाक्तता उत्पन्न हो सकती है गर्भ, क्षीणता, अपरिपक्वता, थकान, घाव और चोट, ज्वर इत्यादि जैसी अन्य शारीरिक दशायें भी पशु मांस को मानव उपभोग के लिये हानिकर बनाती हैं

सारणी 105 – पशु वसाओं के गुण तथा संघटन*

स्थिरांक	गोमांस की चर्बी	बकरे के मांस की चर्बी	सुअर की चर्बी
ग वि	40–48°	44–51°	33–46°
अनुमाप	40–47°	43–48°	32–43°
आयो. मान (विज)	40–48	3?–46	53–77
साबु मान	190–99	192–97	190–202
संघटन, %			
लारिक	0 1		रंच
मिरिस्टिक	3 0	2 0	1 0
पामिटिक	29 0	25 0	28 0
स्टीऐरिक	20 0	30 0	13 0
ऐराकिडिक		0 8	
मिरिस्टोलीक	0 5		0 2
पालमिटोलीक	2 0		3 0
ओलीक	42 0	39 0	46 0
लिनोलीक	2 0	4 0	6 0
लिनोलेनिक	0 5		0 7
ऐराकिडोनिक	0 1		2 0

* Blanck, 552

मांस-उत्पाद तथा उनके सम्पाक

पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में, विभिन्न संसाधनों द्वारा कई प्रकार के मांस उत्पाद तथा सम्पाक तैयार करना सर्वथा नवीन उपलब्धि है कुछ सुअर-बाड़ों में हैम, बेकन तथा गुलमा जैसे समाधित मांस-उत्पाद तैयार किये जाते हैं इस समय कुछ संगठित इकाइयों द्वारा मांस तथा मांस के हैम, बेकन, पॉर्क, कढ़ी, कुक्कुट मांस जैसे उत्पाद तैयार किये जा रहे हैं 1962, 1963, 1964 तथा 1965 के वर्षों में इन संसाधित मांस-उत्पादों की मात्रा क्रमश 1,375, 1,800, 2,5 0 तथा 3,000 टन रही इन उत्पादों में पॉर्क, बेकन, गुलमा तथा मांस के भारतीय सम्पाक, जैसे कीमा, कोफ्ता, पुलाव, इत्यादि सम्मिलित हैं संगठित बड़ी इकाइयों के अतिरिक्त सम्पूर्ण देश में अन्य कई छोटी-छोटी इकाइयाँ फैली हुयी हैं जो 100–150 टन मांस और इनके सम्पाक तैयार करती हैं

देश के कुछ स्थानों पर युद्धकाल में बकरी के मांस के निर्जलीकरण के लिये कुछ कारखाने चालू किये गये थे किन्तु माँग न होने से उन्हें बन्द कर देना पड़ा मटन के कुछ उत्पाद (2 टन) 1948–49 में नागपुर में तैयार किये जाते थे असम में मटन की कुछ मात्रा धूप में सुखाकर तथा नीबू के साथ अचार बनाकर काम में लायी जाती है बीफ (पुट्ठा) की भी कुछ मात्रा प्रतिरक्षित की जाती है

गुलमा अथवा सॉसेज – गुलमा ताजे अथवा संसाधित विखण्डित मांस से बनता है जिसमें मसाला, जल, मखनिया सूखा दूध अथवा अन्य अवयव मिलाकर भेड़, सुअर या पशुओं की थैली (ओझड़ी) में रखा जाता है गुलमा ताजा, धूमित और/या पकाया हुआ, अर्ध-शुष्क और शुष्क होता है ताजा गुलमा, ताजे मांस विशेषकर पॉर्क से बनाये जाते हैं यह बहुत शीघ्र खराब हो जाता है फ्रेंकफर्टर, बोलोन, बर्लिनर, पोलिश इत्यादि ऐसे धूमित तथा पकाये हुये गुलमा उत्पाद हैं जो व्यापक रूप से तैयार किये जाते हैं धूमित तथा पकाये हुये गुलमे तैयार करने के लिये मांस को पहले समाधित किया जाता है अर्ध-शुष्क गुलमा-सम्पाकों में सलामी, कर्वेलाट तथा पेप्परोनी उत्पादों के नाम आते हैं

पॉर्क गुलमा तैयार करने के लिये, पॉर्क में पॉर्क-वसा, मसाले, पूरक (अनाजों की भूसी, आलू का आटा इत्यादि) तथा शर्करा मिलाकर इन्हें पशुओं की थैली में भर दिया जाता है भारतीय मानक संस्थान द्वारा ताजे तथा डिब्बाबन्द पॉर्क गुलमा के लिये विनिर्देशन निश्चित किये गये हैं (IS 3060 तथा 3061–1965) इसमें वसासहित मांस ≮ 80% होना चाहिये कुछ भारतीय पॉर्क तथा मटन गुलमों का सन्निकट विश्लेषण सारणी 106 में प्रस्तुत है

सारणी 106 – कुछ भारतीय गुलमों का अनुमानित संघटन*

गुलमा	जल	प्रोटीन	वसा	राख
सुअर के मांस का गुलमा				
ताजा	51 7	12 1	23 7	2 8
पकाया हुआ	60 1	13 9	15 5	
बकरे के मांस का गुलमा				
ताजा	64 5	10 6	17 5	3 5
पकाया हुआ	63 0	12 6	17 1	2 5
डिब्बाबन्द गुलमा				
समाधित	49 9	13 2	28 3	

*केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर के डा वी पण्डा द्वारा भेजे गये आँकडे से प्राप्त

मांस उद्योग के उपजात

मांस उद्योगों के उपजातों को खाद्य तथा अखाद्य दो वर्गों में बाँटा जा सकता है खाद्य उपजातों में वसा (चर्बी तथा लार्ड), ताँत, आहार-नलियाँ, ग्रंथियाँ, रक्त तथा बाडी पूछ आती है और अखाद्य उपजातों में खाल तथा त्वचा, ऊन, बाल, शूक, हड्डियाँ, बेकार मांस, सींग तथा खुर प्रमुख है विकसित देशों की तरह भारत में मांस उद्योग के उपजात व्यापारिक स्तर पर प्रयुक्त नहीं किये जाते हैं ग्रामीण क्षेत्रों में रक्त, लीद, सींग, हड्डियाँ इत्यादि तो फेंक ही दिये जाते हैं किन्तु नगरों में स्थित बूचड़खानों में भी इन उपजातों को ठीक से एकत्र नहीं किया जाता

खालें तथा ऊन उन प्रमुख उपजातों में से हैं जिन्हें प्रयोग में लाया जाता रहा है ऊन के विस्तृत विवरण के लिये इसी पुस्तक का "भेड" अनुभाग देखना चाहिये मांस उद्योग के अन्तर्गत खाल तथा त्वचा, हड्डियाँ, रक्त, वसा, आहार-नालियाँ, ग्रंथियाँ जैसे उपजातों की उपलब्धि, उत्पादन तथा उनके उपयोग से सम्बन्धित विस्तृत विवरण इसी पुस्तक के **गो तथा भैंस जातीय पशु** अनुभाग में प्रस्तुत किया गया है

वसा – गुरदे के चारों ओर पायी जाने वाली, परितन्त्रिकीय तथा पीठ और पुट्ठों के वसामय तन्तुओं में संगृहीत तथा भंडारित पशु वसायें उद्योगों में उपयोगी है सुअर की चर्बी तथा अच्छी श्रेणी की चर्बी खायी जाती है और निम्नकोटि की वसा, साबुन, अपमार्जक तथा स्नेहक इत्यादि के बनाने में प्रयुक्त की जाती है बीफ, लाशों से प्राप्त ओलिओस्टाक नामक अन्त-वसा उच्च कोटि की अखाद्य चर्बी है ग्रीज निम्नकोटि की अखाद्य चर्बियाँ है जो मृदुल अगाढता युक्त होती है इन्हें बैलों और भेडों (अस्थि-ग्रीज) की हड्डियों अथवा ऊन से प्राप्त किया जा सकता है ऊन ग्रीज (लेनोलिन), कच्चे ऊन में (20–30%) पाया जाने वाला एक मोमीला पदार्थ है (लार्ड, चर्बी तथा अन्य पशु वसाओं की विस्तृत जानकारी के लिये देखें **भारत की सम्पदा-प्राकृतिक पदार्थ**, चतुर्थ खण्ड–'पशु वसा तथा तेल')

वध हुये पशुओं के तन्तुओं से वसा निकालने के लिये वसा निष्कर्षण विधि प्रयोग में लायी जाती है इसके अन्तर्गत वसा कोशिकाओं को तोडफोड कर वसा निकालने के लिये तन्तुओं को या तो ऐसे ही (शुष्क निष्कर्षण) अथवा जल या भाप के साथ (आर्द्र निष्कर्षण) 40–60° पर गर्म किया जाता है

पशु वसाओं में पामिटिक, स्टीऐरिक तथा ओलीक अम्लों के साथ ही मिरिस्टिक तथा हेक्साडेसीनायक अम्ल की अल्प मात्रायें तथा कुछ अन्य अम्लों की अत्यल्प मात्राओं का सामान्य मिश्रण पाया जाता है ये वसायें, वसा-विलेय ए, डी तथा ई विटामिनों की आपूर्ति भी करती हैं इन्हें मांस के साथ खाया जाता है तथा खाना पकाने, मिठाई और घी में मिलावट करने के लिये भी प्रयोग में लाया जाता है चर्बियों को साबुन, मोमबत्ती तथा ग्रीज़ बनाने, चमडे को सख्त करने तथा खेल-कूद और वस्त्र उद्योगों में प्रयोग में लाया जाता है निम्नकोटि की चर्बियों को स्नेहक की तरह काम में लाते हैं लेनोलिन अनेक शृंगार तथा सौन्दर्य प्रसाधनों तथा घाव भरने वाली क्रीमों का आधार है

भारत में पशु वसाओं के कुल आकलित उत्पादन (1958–59 अवधि में) का 74% वध किये पशुओं से तथा शेष मरे हुये गोपशुओं और भैंसों से प्राप्त होता है वध किये विभिन्न पशुओं से प्राप्त वसाओं की प्रतिशतता इस प्रकार थी गोपशु, 8 0, भैंस, 11 8, भेड तथा बकरी, 71 8, तथा सुअर, 8 4

आहार-नलियाँ – इसके अन्तर्गत खिलाये गये चारे, आसजित वसा, अवपक इत्यादि से मुक्त पशुओं की सूखी छोटी आँतें आती हैं इन्हें व्यास के अनुसार श्रेणीबद्ध करके, छल्लों में लपेट कर निर्यात किया जाता है भारत में पशुओं से प्राप्त आहार-नलियों का 85% तो केवल वध की गयी भेडों तथा बकरियों से प्राप्त होता है और शेष मात्रा गोपशुओं, भैंसों तथा सुअरों से मिलती है

भेड-बकरियों से प्राप्त आहार-नलियों (व्यास, सामान्यतया >18 मिमी) को शोधित लवण में परिरक्षित करके विदेशों को निर्यात किया जाता है जहाँ इसे गुलमा बनाते समय थैलियों के रूप में प्रयोग करते हैं (IS 1981–1962) सुअरों से प्राप्त आहार-नलियों को भी इसी कार्य के लिये प्रयुक्त किया जाता है गोपशु, बकरी, सुअर तथा भेड से प्राप्त थैलियों (शुष्क तथा आर्द्र गुलमा की) के समाधन की एक विधि केन्द्रीय चर्म अनुसंधान संस्थान, मद्रास द्वारा पेटेण्ट की गयी है (भारतीय पेटेण्ट स 90469, 1963) कुछ स्थानों पर पशु आँतें भी खायी जाती हैं पशुओं की बहिष्कृत आहार-नलियों से रैकेट, संगीत वाद्यों के तार तथा ऊन और कपास को धुनकने के लिये देशी ताँतें बनायी जाती है बम्बई की एक फर्म ने शल्यक ताँत बनाने का एक कारखाना स्थापित किया है वध किये गये पशुओं की ग्रसिकाओं को कभी-कभी बेच दिया जाता है, किन्तु पशु थैलियों की कुछ मात्रा गुलमा बनाने के लिये निर्यात की जाती है पशुओं को वध करने के पश्चात् उनके उदर तथा आँतों में बचे हुये आहारों तथा अस्वांगीकृत भोजन को सडने तथा किण्वन के लिये छोड देते है जिनसे अच्छी खाद प्राप्त होती है

ग्रंथियाँ – इस देश में वध किये हुये पशुओं से प्राप्त अधिकांश ग्रंथियाँ मांस के साथ ही खायी जाती हैं गोपशुओं तथा भैंसों के अण्डाशयों और अण्ड-ग्रंथियों को बहुधा फेंक दिया जाता है यकृत बहुत ही पोषणयुक्त होता है इसमें विटामिन ए और बी की प्रचुर मात्रा पायी जाती है (सारणी 104) भारत में ग्रंथियों का कुल अनुमानित उत्पादन का 80% से अधिक वध की गयी भेडों तथा बकरियों से प्राप्त होता है, और शेष, गोपशुओं, भैंसों

तथा सुअरो से मिलता है भारत मे ग्रथियो के एकत्रण और सचयन की पर्याप्त सुविधाये नही है, अत ग्रन्थियो की थोडी ही मात्रा तमिलनाडु, मैसूर, पश्चिमी बगाल, महाराष्ट्र तथा दिल्ली मे ओषधियो के निर्माण के लिये प्रयोग की जाती है

भारत मे ग्रथियो से तैयार होने वाले उत्पादो मे ऐड्रिनैलिन, पीयूषिका, यकृत तथा थाइराइड ग्रथियो के निष्कर्ष तथा पित्त-लवण प्रमुख है परीक्षण के तौर पर इन्सुलिन भी तैयार किया जाता रहा है ग्रथियो के विभिन्न उत्पादो को तैयार करने की विधियो, उनके गुणधर्मो तथा दैहिक क्रियाओ के विस्तृत विवरण के लिये अन्यत्र देखे (Wlth India – Industrial Products, pt IV, 95–108)

रक्त – पशुओ के शरीर भार का 8% रक्त होता है गोपशुओ, भैसो तथा सुअरो का रक्त चमकीला लाल तथा भेड और बकरियो के रक्त के रग की अपेक्षा कुछ गाढा होता है वध किये हुये प्रत्येक पशु से प्राप्त औसत रक्त की मात्रा इस प्रकार है गोपशु से 9–11 किग्रा, भेड-बकरियो से 1 5 किग्रा, तथा सुअरो से 2–3 किग्रा भारत मे बूचडखानो से रक्त एकत्रित करने की समुचित सुविधाये प्राप्त नही है इस देश मे अनुमानित रक्त उत्पादन का 75% से भी अधिक केवल भेड-बकरियो से मिलता है

बूचडखानो मे प्राप्त रक्त को 4–5 घण्टे तक उबालकर और धूप मे अथवा वाष्प-शुष्कन विधि द्वारा सुखाकर भूरे रग के चूर्ण मे ससाधित किया जा सकता है रक्त मे नाइट्रोजन अधिक होने से इसे या तो ऐसे ही या खली अथवा चूर्ण के रूप मे या कम्पोस्ट के रूप मे मिट्टी मे डाला जा सकता है इसके चूर्ण को (प्रोटीन की मात्रा 80%) कॉफी, चाय अथवा रबर के बागानो मे या कृषि फार्मो पर उर्वरक के रूप मे उपयोग किया जा सकता है इसे पशुओ को खिलाने मे, उद्योगो मे और ओषधियो के निर्माण के उपयोग मे ला सकते है रक्त-चूर्ण का सघटन इस प्रकार है नमी, 6 8, प्रोटीन, 84 5, राख, 5 2, कैल्सियम, 0 28, तथा फॉस्फोरस, 0 28%, राइबोफ्लैविन, 0 11 मिग्रा, नायसिन, 2 25 मिग्रा, पैण्टोथेनिक अम्ल, 0 24 मिग्रा, तथा विटामिन बी$_{12}$, 0 99 माग्रा/100 ग्रा रक्त का ऐमीनो अम्ल सघटन सारणी 101 मे प्रदर्शित है ल्यूसीन, लाइसीन तथा हिस्टिडीन जैसे ऐमीनो अम्ल पशु-रक्त मे तैयार किये जा सकते है कभी-कभी भेड, बकरी तथा सुअरो के रक्त को मसालो के साथ तला जाता है, चावल के साथ उबाला जाता है अथवा आटे मे मिलाकर रोटियाँ बनायी जाती है सुअरो के रक्त को भी गुलमा बनाने के काम मे लाते है

ससाधित रक्त एल्बुमिन को प्लाइवुड चिपकाने, वस्त्रो तथा कागज की रँगाई और रँगाई के पहले चमडे की सफाई के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है रक्त-फिब्रिन से पेप्टोन तैयार किया जा सकता है

पुच्छ-केश – पशुओ की पूछ के बाल दो प्रकार के होते है एक तो कतरे और दूसरे उपाडे हुये पहले प्रकार के बाल जीवित पशुओ की पूछ से मिलते है तथा ये मरे हुये और मारे गये पशुओ की पूछो से प्राप्त दूसरे प्रकार के बालो की अपेक्षा अधिक चमकदार होते है गोपशुओ तथा भैसो की पूछो के बालो का अधिकाश विदेशो को निर्यात कर दिया जाता है केवल कुछ ही मात्रा इस देश मे ब्रुश बनाने के काम आती है बिहार के कुछ भागो में इसकी थोडी-सी मात्रा से रस्सियाँ बनायी जाती है

मास-चूर्ण – मास-चूर्ण अथवा छीजन पशु ऊतको के सूखे अवशेषो का सूक्ष्म चूर्ण होता है जिसमे बाल, खुर, सीग खाल, रक्त-चूर्ण, उदर-अवयव इत्यादि होते है जिनमे फॉस्फोरस 4 4% से अधिक होता है वे उत्पाद मास-चूर्ण तथा अस्थि-चूर्ण या छीजन कहलाते है मास-चूर्ण उर्वरक बाल, सीग, खुर तथा उदर अवयव सूखे हुये पशु ऊतक अवशेषो का महीन चूर्ण होता है जो वाष्पन अथवा शुष्क-निष्कर्षण विधि या दोनो की मिश्रित विधि से वसा निकाल करके प्राप्त किया जाता है ये सभी उत्पाद अच्छे खाद अथवा पशु और कुक्कुटो के आहार होते है मास तथा अस्थि-छीजन और मास उर्वरको के सघटन क्रमश इस प्रकार के है आर्द्रता, 4 4, 6 6, प्रोटीन, 51 0, 61 0, वसा, 11 8, 8 1, राख, 28 4 20 7, कैल्सियम, 10 0, 6 0, तथा फॉस्फोरस, 5 0, 3 0% मास-छीजन तथा उर्वरक प्रोटीनो का ऐमीनो अम्ल सघटन सारणी 101 मे दिया हुआ है

खाल तथा चर्म – खाल अथवा चर्म या त्वचा तीन विशिष्ट अथवा अध्यारोपित परतो की बनी होती है ये परते है बाह्य-त्वचा (कुल मोटाई का 1–2%), त्वचा या चर्म (कुल मोटाई का 98%) जिसमे चर्म निर्मायक पदार्थ पाये जाते है तथा पतला अधस्त्वचीय या गोश्त स्तर खाले तथा त्वचाये मुख्यतया प्रोटीन की बनी होती है (कुल ठोस पदार्थ का 90–95%, ताजे भार का 35%) इनमे सूक्ष्म मात्रा मे लिपिड, मोम, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण इत्यादि भी रहते है खालो तथा त्वचाओ के गुणो को कई कारक प्रभावित करते है, जैसे, पशु की आयु तथा लिंग, पशु के रहने के स्थान की समुद्रतल से ऊँचाई, वहाँ की जलवायु तथा प्राप्त चारा आदि

भारत मे उत्पादित खालो का अधिकाधिक अश चर्मशोधन या अर्ध-चर्मशोधन के पश्चात् चर्म के रूप मे प्रयुक्त होता है केवल कुछ प्रतिशत उत्पाद से रस्सियाँ, ताँत, ढोलक और अन्य वाद्य यत्र बनाये जाते है ग्रामीण चर्मशोधक अधिकतर सुकटी खालो (80%) तथा मरे हुये पशुओ की नम-लवणीयित खालो (20%) को काम मे लाते है वे इस चमडे से चप्पले तथा देशी जूते बनाते है

इस देश मे उत्पादित कुल बकरी तथा भेड की खालो का 36% तो कच्चा ही निर्यात कर दिया जाता है (अधिकतर बकरी की खाल), 55% शहरी एव ग्रामीण चर्मशोधको द्वारा ससाधित त्वचा मे परिवर्तित कर दिया जाता है, 2 5% ग्रामीण चर्मशोधशालाये उपयोग कर लेती है 6 0% आधुनिक चर्मशोधको द्वारा बढिया चमडा बनाने मे तथा 0 4% कच्ची अवस्था मे रस्सी तथा वाद्य यत्र बनाने के लिये प्रयुक्त होता है त्वचाओ से अनेक प्रकार के कार्य लिये जाते है तथा परिसज्जित वस्तुओ की किस्म के अनुसार उन्हे बाल सहित अथवा बिना बाल के प्रयोग किया जाता है बाल रहित चमडे के उत्पादन की माँग अधिक है शोधित त्वचाओ से जूते, बटुए, थैली या झोले, धौकनी, साँभर-चर्म इत्यादि प्रमुख उत्पाद निर्मित होते है मेमनो तथा बकरी के बच्चो के चमडो की अत्यधिक मात्रा निर्यात कर दी जाती है, तथा ससाधित और शोधित लोमचर्म की थोडी-सी मात्रा दस्ताने, कोट तथा टोपी जैसी फैन्सी वस्तुओ के निर्माण मे प्रयुक्त की जाती है

अस्थियाँ – पशुओ की हड्डियो तथा उनके उत्पादो को कृषि तथा उद्योग दोनो में प्रयोग किया जाता है पश्चिमी देशो के विपरीत, भारत मे उपलब्ध हड्डियो का अधिक भाग मृत पशुओ से मिलता

है गोपशुओ, भैंसो, घोडो, टट्टुओ तथा ऊँटो की हड्डियां व्यापारिक महत्व की है जबकि भेडो तथा बकरियो की अस्थियो को मास के साथ बेच दिया जाता है जो मास खाने के बाद फेक दी जाने से बेकार हो जाती है

भारत मे एकत्र की जाने वाली हड्डियो का अधिकाश हड्डी पीसने वाली चक्कियो द्वारा पिसी अस्थि, अस्थि पेष्य तथा हड्डी का चूरा बनाने के काम आती है इसकी कुछ मात्रा बटन, कघा, पत्रकर्तक, खिलौने इत्यादि तैयार करने के लिये प्रयोग की जाती है अधिकाश मिले, पिसी हड्डियो तथा पेष्यो को निर्यात के उद्देश्य मे हड्डियो की पिसायी करती है पिसी हड्डियो को (लम्बाई मे 0 5–5 0 सेमी) गोद तथा लेई बनाने के लिये भी व्यवहृत करते है अस्थि-पेष्यो (लम्बाई मे 0 25–0 50 सेमी) को उर्वरक के रूप मे प्रयोग किया जाता है इस देश मे इसकी कुछ मात्रा इस्पात के तलकठोरीकरण के लिये भी प्रयोग में लायी जाती है हड्डी का चूरा (< 0 25 सेमी) अकेले अथवा मिश्रित करके उर्वरक के रूप मे प्रयोग किया जाता है यह कच्चा तथा वाष्पित दो तरह का होता है जिनमे दूसरा भारत मे कम होता है आई एस आई विनिर्देशन के अनुसार कच्चे तथा वाष्पित हड्डी के चूरे मे क्रमश नमी, ≯ 8 0, ≯ 7 0, कुल फॉस्फेट (P_2O_5 के रूप मे) ≮ 20 0, ≮ 22 0 (शुष्क भार के आधार पर), उपलब्ध फॉस्फेट (P_2O_5 के रूप मे), ≮ 8 0, ≮ 16 0 (शुष्क भार के आधार पर), तथा कुल N, ≮ 3 0 % पाया जाता है

कैल्सियम तथा फॉस्फोरस बहुल होने के फलस्वरूप हड्डी का चूरा पशु आहार मे खनिज पूरक की तरह इस्तेमाल किया जाता है (IS: 853 – 1956, 1014 – 1956, 1942 – 1961) इसे हड्डियो को दाब के अन्तर्गत भाप द्वारा वसाविहीन करके तथा जीवाणुनाशन करके प्राप्त करते है इसमे (शुष्क भार के आधार पर) Ca, ≮ 32 0, P ≮ 15 0, फ्लोरीन, ≯ 0 06, तथा अम्ल अविलेय राख, ≯ 1 0% पायी जाती है

अस्थियो से प्राप्त अन्य उत्पादो मे अस्थि-कोयला, अस्थि की चर्बी, ऑस्सीन तथा डाइकैलसियम फॉस्फेट के नाम लिये जा सकते है अस्थि-कोयले को गन्ने का रस साफ करने के लिये व्यवहृत करते है अस्थि-चर्बी साबुन बनाने तथा स्नेहक के रूप मे प्रयोग की जाती है ऑस्सीन को लेई बनाने के लिये तथा डाइकैल्सियम फॉस्फेट को उर्वरक और ओषधियो मे प्रयुक्त किया जाता है

सरेस तथा जिलेटिन – सरेस तथा जिलेटिन पशुओ की हड्डियो तथा सयोगी ऊतको मे पाये जाने वाले कोलैजन के जल-अपघटनीय उत्पाद है सरेस अशुद्ध जिलेटिन होता है और मुख्यतया आसजक के रूप मे प्रयोग किया जाता है जिलेटिन मे जेल-शक्ति अधिक होती है, हल्के रग की होती है तथा आहार, ओषधियो और फोटोग्राफी फिल्मो मे प्रयोग की जाती है सरेस को सामान्यतया खालो के गोश्त तथा कतरनो से कुटीर उद्योगो द्वारा ही बनाया जाता है इसे कभी-कभी पिसी हड्डी के एक उपजात, अस्थि नसो से भी बनाया जाता है भारत मे हड्डियो से सरेस नही बनाया जाता अस्थियो तथा कच्ची खालो से सरेस और जिलेटिन तैयार करने के लिये राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, पूना द्वारा एक प्रायोगिक सयन्त्र विधि निकाली गयी है (भारतीय पेटेण्ट स 45583, 1951, 49033, 1953) भारत मे जिलेटिन व्यापारिक मात्रा में तैयार नही किया जाता अधिकतर इसका आयात किया जाता है सरेस और जिलेटिन के उत्पादन सम्बन्धी विस्तृत विवरण अन्यत्र मिलेंगे (With India – Industrial Products, pt IV, 141–49)

सींग तथा खुर – भैंस के कठोर तथा चौरस सींगो को कघा, चाकू के हत्थे, सुघनी के बक्से, बटन, खिलौने तथा फैन्सी वस्तुये बनाने के काम मे लाते हैं शहरी क्षेत्रो मे गोपशुओ तथा भैंसो के सींगो और खुरो को पात्रो मे वाष्पित करके तथा पीसकर चूर्ण बना लेते है इनके चूर्ण मे 15% नाइट्रोजन पायी जाती है और इसे चाय तथा कॉफी के बागानो मे खाद के लिये प्रयोग किया जाता है

गाय-भैंस-खुर तेल एक वसीय तेल है जो पशुओ अथवा भेडो के खुरो को जल मे उबालकर और मथकर प्राप्त किया जाता है यह पीले रग का होता है और इसमे ओलीक अम्ल की अधिकता (65%) रहती है चमडे के ससाधन मे इसका अत्यन्त महत्व है

शूक (कडे बाल)–शूको मे वे तारदार बाल आते है जो सुअरो तथा खस्सियो की पीठ तथा घुटनो से प्राप्त होते है उनकी कोखो अथवा बगलो और उदर पर उगे हुये बाल बहुत छोटे तथा व्यापारिक दृष्टि से बेकार होते है शूको को तरह-तरह के ब्रुश बनाने, गहनो की पालिश करने, क्रिकेट की गेदो को लपेटने और उन पर आवरण हेतु तथा जूतो के तल्लो की सिलाई के लिये प्रयोग किया जाता है

भारत मे 1960–61 अवधि मे 3 8 लाख टन शूको का उत्पादन हुआ (1 करोड 50 लाख रु के मूल्य का) और इसका अधिकाश निर्यात कर दिया गया शूक उत्पादक प्रमुख राज्य उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा पजाब है, तथा कानपुर और जबलपुर इसके सबसे बडे व्यापार केन्द्र है भारतीय मानक सस्थान ने विभिन्न गुणो, किस्मो एव श्रेणियो वाले शूको के लिये विनिर्देशन प्रस्तुत किये है (IS 1844–1962)

विपणन और व्यापार

भारत के पशुधन की उन्नति और सरक्षण के लिये विकास कार्यक्रम बनाने से पहले यह नितान्त आवश्यक है कि देश के पशुधन और उनके उत्पादो की प्रभावशाली और सक्षम विपणन व्यवस्था की जाये अपर्याप्त विपणन सुविधाये, व्यापार सम्बन्धी ऑकडो के सग्रहण और सचारण के लिये सुव्यवस्थित कार्यप्रणाली का अभाव और यातायात की कठिनाइयो ने पशुधन और उनके उत्पादो के समुचित विपणन में सबसे अधिक गतिरोध उत्पन्न किया है इन बाधाओ को दूर करने और पशुधन उद्योग को उचित रूप से व्यवस्थित करने के लिये भारत सरकार ने तीसरी पचवर्षीय योजना काल मे उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, केरल, मध्य प्रदेश, पजाब, सौराष्ट्र और पश्चिमी बगाल मे विपणन केन्द्र स्थापित किये है

ये विपणन केन्द्र मुख्य ग्राम खण्डो मे सहकारी आधार पर तरल दूध के विक्रय की व्यवस्था करेगे और उसकी खपत वाले क्षेत्रो के निकट स्थित खण्डो को आर्थिक और अन्य प्रकार की सहायता

देंगे जो मुख्य ग्रामखण्ड तरल दूध की खपत के क्षेत्रों से दूर होंगे वहाँ ये केन्द्र दुग्ध-उत्पादों के सहकारी विपणन को प्रोत्साहन देंगे वर्तमान मण्डियों का नियमन करने के साथ ये केन्द्र पशुधन और उनके उत्पादों, जैसे खाल, चमड़ा, ऊन, बकरी और सुअर के बाल आदि के विपणन की सुविधा के लिये सहकारी मण्डियों की व्यवस्था करेंगे ये केन्द्र विपणन संबंधी सर्वेक्षण करेंगे, मण्डियों के समाचार प्रसारित करेंगे तथा उत्पादकों को वैज्ञानिक और अच्छी विपणन विधियों तथा माल को श्रेणीबद्ध करने की रीतियों को अपनाने के सम्बन्ध में सलाह देंगे .

पशुधन

गोपशु और भैंसें

गायों, बैलों और भैंसों की बिक्री भार ढोने, दूध और मांस के लिये की जाती है भारवाही पशुओं का उपयोग केवल कृषि कार्यों में ही नहीं किया जाता वरन् उनसे पुर खींचने, घानियों में तेल पेरने, चक्कियाँ चलाने और गाड़ी खींचने का भी काम लिया जाता है अनेक राज्यों में पशु-वध पर नियंत्रण होने के कारण वध किये जाने वाले वृन्द की माँग सीमित है यह माँग कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली और मद्रास जैसे शहरों में अपेक्षतया अधिक है

विपणन की विधियाँ—पशुओं को इकट्ठा करके उनको इधर-उधर बेचने का काम सामान्यतः पशु प्रजनक, फेरी लगाने वाले और थोक व्यापारी करते हैं पशु प्रजनक दो प्रकार के होते हैं एक पेशेवर (जैसे गुजरात के रेवारी) जिनका मुख्य काम पशुओं का प्रजनन और पोषण है, और दूसरे कृषक, जो पशुओं को मुख्यत कृषि कार्यों के लिये पालते हैं अधिकांश प्रजनक अपने पशु स्वयं ही बेचते हैं फेरी लगाने वाले पशु प्रजनकों में कुछ बंजारे होते हैं जो घूमते रहने के समय पशुओं को खरीदते और बेचते रहते हैं और वे पशु व्यापारी हैं जो गाँव, कस्बों और शहरों के वासी होते हैं इस वर्ग के पशु व्यापारी देश-भर के पशुओं के एकत्रण और वितरण का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं देश में पशुओं के विपणन के लिये थोक व्यापारी बहुत ही कम हैं

जीवित पशुओं को साधारणतया समय-समय पर लगने वाले पशु-मेलों में बेचा जाता है नागपुर स्थित विपणन और निरीक्षण निदेशालय द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष में लगभग 140 पशु-मेले लगते हैं ये मेले मैसूर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और बिहार में सामान्य हैं छोटे-छोटे मेलों में गाय-बैलों की संख्या 200 और बड़े मेलों में एक लाख तक होती है बड़े मेले राजस्थान में अजमेर के निकट पुष्कर, हरियाणा में जहाजगढ़ (रोहतक), बिहार में सोनपुर और उत्तर प्रदेश में बटेश्वर में लगते हैं साप्ताहिक और अर्ध-साप्ताहिक हाट भी लगते हैं जो साधारणतया एक दिन तक रहते हैं और वे अधिकांशतः भारत के पूर्वी और दक्षिणी भागों में लगते हैं इस तरह के हाटों की संख्या लगभग 325 है और इनमें 20 से 500 तक पशु इकट्ठे होते हैं कस्बों और शहरों में दूध देने वाले, भारवाहक और वध योग्य पशुओं के हाट नियमित रूप से प्रतिदिन अथवा निश्चित दिनों पर लगते हैं अधिकांश पशु मेलों का आयोजन स्वायत्त संस्थायें, ग्राम पंचायतें अथवा निजी संस्थायें करती हैं कस्बों और शहरों में यह आयोजन सामान्यतया नगर पालिकाओं द्वारा किया जाता है

नियमित हाट—उत्पादन-विक्रेताओं को उचित मूल्य दिलाने की दृष्टि से असम, पश्चिमी बंगाल, केरल तथा जम्मू और कश्मीर के सिवाय अन्य सभी राज्यों में पशु-हाटों सहित, पण्यद्रव्य हाटों की व्यवस्था के वैधानिक नियम बनाये गये हैं बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर और मध्य प्रदेश में जो कृषि उत्पाद हाट अधिनियम लागू किया गया है उसमें पण्यद्रव्य अधिसूचित अनुसूची में पशुधन और उनके उत्पाद भी सम्मिलित हैं उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा बनाये गये अधिनियमों की अनुसूची में पशुधन और उनके उत्पाद भी सम्मिलित हैं पंजाब का अधिनियम केवल पशु-पालन उत्पादों पर ही लागू होता है, पशुधन पर नहीं, क्योंकि पशुओं के मेलों के नियमन के अलग से नियम हैं 'मद्रास मार्केट्स एक्ट' की अनुसूची में पशुधन और पशुधन उत्पादों का समावेश नहीं है आन्ध्र प्रदेश के केवल तेलंगाना क्षेत्र में पशुधन और पशुधन उत्पादों का नियमन है जहाँ पर 'हैदराबाद ऐग्रिकल्चरल प्रोडक्ट्स मार्केट्स एक्ट' लागू होता है

मवेशियों के हाटों का नियमन अभी हाल में लागू हुआ है और अभी तक पाँच राज्यों के 67 हाटों का नियमन हो चुका है ये हैं आन्ध्र प्रदेश में 2, गुजरात में 12, महाराष्ट्र में 40, मध्य प्रदेश में 3, और उड़ीसा में 10 मैसूर सरकार भी मवेशियों के हाटों को नियमित करने की सोच रही है

नियमित हाटों की व्यवस्था हाट समितियाँ करती हैं इनके सदस्यों में उत्पादक-विक्रेताओं के, व्यापारियों के, सहकारी समितियों और सरकार के नामजद प्रतिनिधि होते हैं हाटों का सभी व्यापार हाट समितियों के कर्मचारियों की देखरेख में होता है ये ही कर्मचारी पशु प्रजनकों और व्यापारियों को हाटों के संबंध में सूचनायें देते रहते हैं इन हाटों के भीतर पशु-चिकित्सा संबंधी सुविधायें भी उपलब्ध की जाती हैं

निर्यात और आयात—देश में गोजातीय पशुओं की इतनी भारी संख्या होते हुये भी भारत से गायों, बैलों और भैंसों का निर्यात व्यापार आर्थिक महत्व का नहीं है 1964–65 में समाप्त होने वाले पाँच वर्षों में गोजाति का वार्षिक निर्यात 1963–64 में शून्य और 1961–62 में 834,861 रु के भीतर रहा इनको आयात करने वाले देश ये फिलीपीन्स, ब्राजील और श्रीलंका भारत में प्रजनन के लिये भी आयात किया गया 1967–68 में विभिन्न देशों से लगभग 15 लाख रु के मूल्य के 200 बैल और 45 गायें आयातित की गयीं

मूल्य निर्धारण—देश में मवेशियों के संबंध में मानक स्थापित न किये जाने के कारण हाटों में उनका मूल्य निर्धारण खरीददार की पसन्द या पशु पसन्दगी पर निर्भर करता है भारवाही पशुओं के मूल्य निर्धारण में उनकी नस्ल, आयु, स्वभाव, रंग, स्थान और ऋतु महत्वपूर्ण होती हैं दुधारू पशुओं का मूल्य उनकी दूध देने की क्षमता, आयु, नस्ल, ब्यॉत काल, शारीरिक गठन, स्वभाव, रंग, स्थान और ऋतु के अनुसार निर्धारित किया जाता है इसी प्रकार वध योग्य पशुओं का मूल्य मांस के गुण तथा अपेक्षित उपलब्धि और खाल की दशा पर निर्भर करता है

मवेशियों के व्यापार में 'प्रति मुंड' सबसे अधिक प्रचलित इकाई है 'प्रति जोड़ी' का चलन केवल भारवाही पशुओं पर लागू होता है केवल वध किये जाने वाले ढोर झुण्डों में बेचे जाते हैं

विभिन्न नस्लों में अन्तर होने के कारण पशुधन की हाट श्रेणियों और वर्गों की समुचित व्याख्या नहीं हो पायी है अत

उनके मूल्याकन के मानक न केवल एक हाट से दूसरे हाट मे अपितु एक ही हाट के एक खरीददार से दूसरे खरीददार मे बदलते रहने हैं

दुधारू गायो और भैसो का उनके दुधकाल मे मूल्य अधिक रहता है 1967-68 मे हरियाणा से प्राप्त दरो के अनुसार गायो का मूल्य 500–700 रुपये मुर्रा भैसो का मूल्य 900–1200 रुपये था इन हाटो मे बैल भी ऊँचे दामो पर बेचे जाते हैं एक हरियाना बैल का मूल्य लगभग 600–850 रुपये तक होता है

भेडें और बकरियाँ

बिक्री मे पहले भेडो और बकरियो की छटनी मानक हाट वर्गो अथवा श्रेणियो मे नही की जाती खरीददार प्रत्येक पशु को खरीदने से पहले एक-एक करके परखता है भेडो और बकरियो के मूल्य पर जिन बातो का सामान्य प्रभाव पडता है, वे है उनका मास, दूध देने की क्षमता, नस्ल, आयु, लिग, गुणता, स्थान और ऋतु साधारणतय। बकरे का मूल्य अधिक होता है, क्योकि अधिकाश मास-प्रेमी भेड के बजाय बकरे का मास पसद करते है, फिर बकरे का चमडा भी महँगा बिकता है

भेडो और बकरियो का निर्यात बाजार भी है 1966–67 मे 408,600 रुपये के मूल्य की 6,800 भेडे और मेमने तथा 82,200 रुपये के मूल्य के 15,400 बकरे और बकरी के बच्चे भारत से बाहर भेजे गये भारत मे कुछ मुख्य विदेशी नस्लो का आयात प्रजनन कार्यो के लिये समय-समय पर किया जाता है 1966–67 के वर्ष मे 28,000 रुपये के मूल्य की 1,200 भेडे और मेमने तथा 2,35,000 रुपये के मूल्य के 6,500 बकरे और बकरी के बच्चो का विभिन्न देशो से आयात किया गया

विदेश व्यापार मे अन्य मवेशियो मे सुअरो, घोडो और खच्चरो को कुछ महत्व प्राप्त है विगत वर्षो मे इनका निर्यात तो नही हुआ है किन्तु नस्ल मे सुधार करने के लिये थोड़ा आयात (1966–67 मे 35,000 रुपये के मूल्य के लगभग 80 विदेशी नस्ल के सुअरो का) हुआ 1960–61 तथा 1963–64 मे क्रमश 5,62,900 रुपये के लगभग 400 घोडो और 12,84,000 रुपये के 800 खच्चरो का आयात हुआ

पशुधन उत्पाद

भारत की पशुधन सम्पदा मे न केवल जीवित पशु ही आते है वरन् इनमे व्यापारिक महत्व के उन उत्पादो का भी समावेश है जो वे अपने जीवनकाल मे और फिर मरने के बाद भी प्रदान करते है इनमे दूध सबसे महत्वपूर्ण उत्पाद है जिसका उपयोग इसी रूप मे या अन्य उत्पादो के रूप मे जैसे घी, मक्खन, पनीर आदि बनाकर किया जाता है पशुओं से प्राप्त होने वाले अन्य उत्पादो मे मास, खाल, हड्डियाँ, सीग, खुर, और माम उद्योग के सह-उत्पादो मे आँत, ग्रथि आदि महत्वपूर्ण है भेडो से प्राप्त ऊन का और सूअरो से प्राप्त शूको का अत्यधिक व्यापारिक मूल्य है

दूध तथा दुग्ध-उत्पाद

दुग्ध उत्पादको के लिये तरल दूध की बिक्री अत्यन्त लाभदायक होती है अत अधिक मे अधिक मुख्य ग्रामखण्डो मे उसके सहकारी विपणन की व्यवस्था के यत्न किये जाते है इसी उद्देश्य से मुख्य ग्रामखण्डो के आस-पास विपणन के लिये सहकारी समितियो की व्यवस्था की जा रही है दूध को एकत्रित करने और उसको बेचने की व्यवस्था के लिये जितने उपकरण आवश्यक होते है उनकी खरीददारी के लिये इन समितियो को आर्थिक सहायता दी जाती है इन क्षेत्रो के दुग्ध उत्पादको को अच्छे दुधारू पशु खरीदने के लिये उदारतापूर्वक तकावी ऋण दिया जाता है इन क्षेत्रो की अच्छी दुधारू गायो के बछडो को राज्यो के पशु-पालन विभाग खरीद लेते है और फिर वे उनका उपयोग ऐसे क्षेत्रो मे करते है जो मुख्य ग्रामखण्डो के अन्तर्गत नही आते. ऐसे खण्डो मे, जो तरल दूध की खपत क्षेत्रो से दूर होते है, घी, मक्खन, खोआ आदि जैसे दुग्ध उत्पादो के विपणन की व्यवस्था सहकारी आधार पर की जाती है मुख्य ग्रामखण्ड स्थापित करते समय डेरी और दुग्ध सभरण योजना वाले क्षेत्रो को अधिक मान्यता दी जाती है ताकि इन खण्डो मे उत्पादित दूध को इन योजनाओ के द्वारा अच्छे प्रकार से बेचा जा सके

व्यावहारिक रूप से भारत मे जितना दूध होता है, सारा देश के भीतर ही खर्च हो जाता है ताजी दूध-क्रीम, सम्पूर्ण दूध (वाष्पित अथवा सघनित) और शिशुओ या दुर्बल व्यक्तियो के दुग्धाहार की अत्यल्प मात्राये निर्यात की जाती है इसके विपरीत, देश मे इन वस्तुओ की कमी होने के कारण इनका आयात भारी मात्रा मे विदेशो से किया जाता है (सारणी 107)

दूध की माँग के अनुसार देश मे दूध के मूल्यो मे कमी-वेशी होती रहती है शहरी क्षेत्रो मे तरल दूध की माँग अधिक होने से गाँवो की अपेक्षा यहाँ दूध का भाव ऊँचा रहता है कुछ स्थानीय कारण भी दूध के मान को प्रभावित करते है, जैसे दुधारू

सारणी 107 – भारत में दूध और दुग्ध-उत्पादो का आयात*

(मात्रा : किग्रा ; मूल्य रुपये)

वर्ष	दुग्ध क्रीम (शुष्कित)		मखनियाँ दूध (वाष्पित)		संपूर्ण दूध (शुष्कित)		पनीर और दही		घी	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
1967–68	18,294	1,02,763	20,29,633	80,24,563	20,80,428	1,08,52,904	32,413	2,57,053	11,44,400	90,30,862
1968–69	12,64,953	57,60,604	7,37,854	33,28,065	13,09,818	48,39,217	33,830	2,88,344	15,49,327	1,19,47,296
1969–70	9,59,195	42,57,321	4,24,572	18,19,889	24,85,782	1,06,47,086	48,964	4,11,274	34,42,603	4,37,95,111
1970–71	63,534	6,70,871	20,79,501	1,06,20,427	3,91,552	15,19,328	52,599	4,42,152	40,90,239	2,25,93,618
1971–72	43,144	3,51,324	.	.	20,84,665	1,06,82,890	30,471	2,79,135	28,00,226	1,79,10,674

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India—Imports, 1968-72

सारणी 108 – भारत से घी का निर्यात*

वर्ष	घी	
	मात्रा (क्विंटल)	मूल्य (रुपये)
1967-68	13,516	1,51,172
1968-69	16,120	1,86,170
1969-70	15,467	1,83,505
1970-71	17 817	1,84,752
1971-72	1,77,019	16,72,052

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India–Exports 1968-72

पशुओं की नस्ल और दूध देने की क्षमता, चरागाहों की सुविधा, चारे और परिवहन पर व्यय और ऋतु सम्बन्धी परिवर्तन पीने वाले दूध का मूल्य दुग्ध-उत्पाद बनाने के लिये बिकने वाले दूध की वस्तुओं की अपेक्षा अधिक रहता है गायों और भैंसों के दूध अलग-अलग बेचे जा सकते हैं, किन्तु वे बहुधा मिलाकर बेचे जाते हैं जहाँ बकरी का दूध अधिक मात्रा मे पैदा होता है वहाँ उसे भी गाय-भैंस के दूध में मिलाया जा सकता है 1965-66 मे बम्बई के बाजारों मे दूध का औसत भाव 1 39 रु प्रति लीटर था जबकि वही दूध दिल्ली मे 'दिल्ली दुग्ध योजना' द्वारा 1969 मे 1 16 रु प्रति लीटर के भाव पर बेचा गया किन्तु कलकत्ते मे दूध का औसत मूल्य अधिक अर्थात् 1967-68 मे 2 00 और 3 00 रु प्रति लीटर के बीच रहा

घी – देश के अधिकांश दुधारू जानवर गाँवों मे रहते हैं इसलिये किसानों के लिये घी उद्योग एक सहायक उद्योग के रूप मे विशेष महत्वपूर्ण बन जाता है दूरस्थ भागों में अतिरिक्त दूध से घी निकाल लिया जाता है, क्योंकि उसको बिगडने से बचाने का यही सबसे अच्छा उपाय है

घी बनाने वाले घी को गाँवों मे लगने वाले साप्ताहिक अथवा अर्ध-साप्ताहिक मेलों में या मण्डियों मे बेच देते हैं अतिरिक्त घी की 50% से अधिक मात्रा फेरी लगाने वाले घी विक्रेताओं द्वारा बेची जाती है

देश मे अधिकांश घी भैंस के दूध से निकाला जाता है, गाय का दूध इस काम के लिये बहुत कम इस्तेमाल होता है लेकिन बाजारों मे बिकने वाला घी अधिकांशत दोनों के घी का मिश्रण होता है बाजार मे घी की परख उसके बाह्य गुणों, जैसे सुगंध, रूप-रंग और स्वाद के द्वारा की जाती है व्यावसायिक दृष्टि से घी को उसके उत्पादन क्षेत्रों के आधार पर वर्गीकृत और नामांकित किया जाता है

घी के भौत-रासायनिक स्थिरांकों मे मौसम, पशु की नस्ल, चारा और दूध देने की अवस्था आदि के अनुसार काफी अन्तर पाया जाता है घी की शुद्धता के सबध मे कोई मान्य मानक न होने [illegible] इसके अन्तर्राज्यीय व्यापार को बहुत धक्का लगा है [illegible] पदार्थ होने के कारण सबसे पहले घी को ही [illegible]करण और नामांकन) अधिनियम के अन्तर्गत श्रेणीबद्ध किया गया यह अधिनियम 1937 मे [illegible]बनकर लागू हुआ ऐगमार्क के अन्तर्गत घी को श्रेणीबद्ध करके इसकी शुद्धता और गुणता का निश्चय हो जाता है और उत्पादक को अच्छे दाम मिल जाते हैं इस अधिनियम के अन्तर्गत घी को तीन श्रेणियों मे बाँटा जाता है विशिष्ट (लाल लेबिल), सामान्य (हरा लेबिल), और मानक (कत्थई लेबिल) घी की ये तीन श्रेणियाँ उसमें प्राप्य मुक्त वसा अम्लों के आधार पर की जाती हैं ऐगमार्क घी को पैक करने वाले सुधरी हुयी घी परिष्कारशालाओं का प्रयोग करते हैं

1967-68 से 1970-71 के बीच भारत से अल्प मात्रा मे घी का निर्यात किया गया (सारणी 108) 1964-65, 1966-67 और 1967-68 मे कुछ मात्रा में घी बाहर से भी मँगाया गया 1965-66 मे बम्बई मे घी (पोरबदर) का औसत मूल्य 1,013 6 रु प्रति क्विंटल रहा इन्ही वर्षों में दिल्ली में घी का दाम 1,100-1,175 रु प्रति क्विंटल था, जबकि 1973 मे यही 1,500 रु प्रति क्विंटल हो गया

मक्खन – दूध के अन्य उत्पादों मे मक्खन का बडा महत्व है, चाहे वह देशी हो या क्रीम से निकाला हुआ हो अनुमान है कि 1961 मे 88,000 टन मक्खन तैयार किया गया जिसमें से 90% से अधिक देशी मक्खन और शेष क्रीम का मक्खन था मक्खन के उत्पादन के लिये पजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और गुजरात राज्य महत्वपूर्ण हैं शहरों में दैनिक उपयोग के लिये क्रीम-मक्खन की अधिक माग रहती है देशी मक्खन से घी बना लिया जाता है

उपभोक्ताओं के लिये नियमित रूप से शुद्ध मक्खन उपलब्ध कराने की दृष्टि से क्रीम-मक्खन को ऐगमार्क के अन्तर्गत श्रेणीबद्ध किया जाता है आजकल मक्खन का निर्यात प्राय नगण्य है. 1965-66 मे मक्खन का औसत मूल्य बम्बई मे 850 40 रु प्रति क्विंटल और दिल्ली मे 1,000 रु प्रति क्विंटल था, किन्तु 1969 मे यह बढकर 1,240 रु प्रति क्विंटल हो गया

मास और मास उत्पाद

मास अधिकतर ताजा इस्तेमाल में लाया जाता है मास और मास उत्पादों की माँग शहरों मे अधिक रहती है, इसलिये मास का व्यापार मुख्यत कस्बों और शहरों तक ही सीमित है देश में एकत्रित करने की शीघ्रगामी और दूरस्थ स्थानों तक पहुँचाने के लिये वातानुकूलित परिवहन की सुविधायें न होने के कारण मास का बडे पैमाने पर उत्पादन नही किया जाता

1963-64 तक मास और मास के सभी प्रकार के उत्पादों का कुछ निर्यात विदेशी मण्डियों मे किया जाता रहा है किन्तु उसके बाद से इन उत्पादों का निर्यात निरन्तर घटता रहा है तब तक गाय और बछडे का धूमित, लवणित और सुखाया हुआ मास, भेड अथवा मेमने का धूमित, लवणित और सुखाया हुआ मास और सुअर मास, हैम, गुलमा की थोडी मात्रा निर्यातित की जाती रही बाद के वर्षों में केवल भेड और बकरे का मास और गुलमा का ही निर्यात किया गया। बाहर से मँगाये जाने वाले मास में सलामी के अलावा मटन, बेकन, हेम, पॉर्क (लवणित, डिब्बाबद, आदि) और सभी प्रकार के गुलमों तक ही व्यापार सीमित रहा मास और मास-उत्पाद सबधी आँकडे सारणी 109 और 110 मे क्रमश दिये गये हैं

मास के मूल्य को निर्धारित करने मे मास की किस्म, उसका ताजापन और उसकी गुणता, चुने हुये टुकडे और जोड तथा उसकी

सारणी 109 – मांस और मास उत्पादो का निर्यात*

(मात्रा किग्रा , मूल्य रुपये)

	भेड और बकरी का मास		मेढक का मास, हिमिकृत		कछुये का मास, हिमिकृत		मास और आँते		कछुये का मास शुष्कित	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
1967–68	425	1,980	6,99,522	71,15,427	290	1,094	5,537	16,439	1,302	38,010
1968–69	2,130	8,827	5,01,365	57,40,078			15,494	1,15,124	1,379	52,174
1969–70	5,694	28,061	9,51,598	1,38,64,225			88,102	2,93,238	2,337	14,974
1970–71	26,049	1,03,542	23,99,725	2,94 75,207	7,254	51,918	1,54,489	6 69,972	3,333	97,761
1971–72	2,05,352	5,64,382	13,08,861	1,25,31,221		..	1,68,681	4,93,897	2,987	78,927

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India—Exports, 1968–72

सारणी 110 – भारत में मास और मास उत्पादो का आयात*

(मात्रा किग्रा मूल्य रुपये)

	सुअर का लवणित और धूमित मास (पीठ बगलें और पट्ठे)		अन्य मास और खाद्य आँते (शुष्कित)		मास निष्कर्ष रस		डिब्बाबन्द गुलमा	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
1967–68	1,222	13,814	639	7,793	52	495	269	5,498
1968–69	3,503	50,139	2,923	32,009	247	1,905	20,267	1,51,775
1969–70	620	8,327	13,421	1,33,291		..	142	1,334

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India—Imports, 1968–70

माँग और सम्भरण ऐसे कारक है जिन पर उसका मूल्य निर्भर करता हे गाँवो की अपेक्षा शहरो में मास का दाम अधिक होता है

1967 मे पॉर्क का औसत विक्री मूल्य (प्रति किग्रा) केरल के कुयालु-कुलम मे 2 25 रु और मद्रास मे 5 50 रु के वीच था, जबकि वकरे के मास का दाम नई दिल्ली (सुपर बाजार) मे 4 25 रु और मद्राम मे 6 50 रु था

उपोत्पाद

खाल और चमडा – ग्रामीण क्षेत्रो मे खाल और चमडे का सग्रह चमार करते है वे उन्हे बाद मे फेरी वालो या थोक विक्रेताओं के हाथ बेच देते है खाल और चमडे की मुख्य मडियॉं कलकत्ता, कानपुर, लखनऊ, मद्रास, विजयवाडा, बँगलौर, वम्बई, जालधर और दिल्ली मे है

बछडो और भैंसो की कच्ची खालो को कमा करके निर्यात किया जाता है ऐसी खालो का व्यापारिक नाम पूर्वी भारत का कमाया चमडा (ईस्ट इण्डिया टैण्ड लेदर) है 1967–68 और 1971–72 मे खालो और चमडे के आयात-निर्यात सम्बन्धी आँकडे सारणी 111 और 112 मे क्रमश दिये हुये है

1965–66 मे खाल और चमडे के थोक विक्रय के औसत मूल्य इस प्रकार थे कच्ची खाल (र/क्विटल), चमडा (र/100 टुकडे)—गाय की खाल (गीली-लवणित), 624 3, भैंस की खाल (गीली-लवणित), 229 9, वकरे की खाल, 608 6 और भेड की खाल, 580 6

अस्थियाँ – कच्ची हड्डियो और हड्डी के चूरे के निर्यात पर प्रतिवध लगा हुआ है केवल पीसी हुयी हड्डी के छोटे कुटके और हड्डी की स्नायुओ का ही विदेशो को निर्यात किया जाता है 1967–68 से 1971–72 मे हुये अस्थियो का निर्यात सारणी 113 मे दिया हुआ है

सीग और खुर – भारत से 1967–68 से 1971–72 के बीच सीग, खुर और अन्य उत्पादो का निर्यात सारणी 114 मे दिया गया है अनुमान है कि देश मे प्राप्त सीग और खुरो की समस्त माला का दो-तिहाई एकत्र ही नही हो पाता

अंतडियाँ (गट) – पशुओ की अतडियाँ, सुखाये मूत्राशय और कण्ठनाल गुलमा बनाने के लिये विदेशो मे भेज दिये जाते है 1964–65 मे गायो, वैलो और भैसो की थैलियाँ जिनका मूल्य लगभग 26 लाख रु था, भारत से विदेशो को भेजी गयी

सारणी 111 – भारत से खाल और चमड़े का निर्यात*

(मात्रा किग्रा, मूल्य रुपये)

	1967–68		1968–69		1969–70		1970–71		1971–72	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
चर्म										
अन्य गोपशु चर्म	67,278	516	92,854	7,58,119	1,38,377	10,54,898	10,077	71,720	24,306	1,69,873
भैंस चर्म, क्रोम-टैनित, असज्जित	1,713	22,493	63,878	5,36,868	1,31,988	12,16,189	66,862	7,11,013	6,00,993	42,51,090
भैंस चर्म, टैनित किन्तु असज्जित	2,50,044	22,04,760	5,51,925	56,05,796	3,85,094	39,00,827	1,85,856	16,13,330	4,41,953	39,54,898
खालें										
भेड़ों की खाल, ऊन सहित	2,722	1,18,982	1,291	1,67,030			215	13,200	4,671	2,00,224
भेड़ों की खाल ऊन रहित	18,317	1,78,184	16,379	2,63,542	58,684	7,08,346	7,289	1,39,874	2,125	35,795
मेमने की खाल	3,925	4,98,786	1,291	1,67,030	1,682	2,04,743	873	1,00,530	758	56,463
बकरी की खाल	2,42,195	62,65,953	4,67,513	47,13,516	9,40,410	1,44,10,073	7,01,729	78,30,043	1,20,822	18,95,598
बकरी की खाल, लवणित	63,66,715	6,12,36,183	42,72,800	3,82,78,703	51,26,278	5,84,78,356	30,80,236	2,69,90,105	2,715	39,050
बकरी की खाल, ससाधित	150	5,920	45,912	8,11,133	20,332	4,21,125	44,277	8,64,765	51,492	17,43,150

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India—Exports, 1968-72

सारणी 112 – भारत में खालों तथा चर्म का आयात*

(मात्रा टन, मूल्य हजार रु)

	1967–68		1968–69		1969–70		1970–71		1971–72	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
चर्म										
भैंस चर्म	1,748 7	5,987 6	2,867 1	10,674 8	2,592 7	9,264 6	3,013 7	10,609 2	2,525 9	9,974 4
गोपशु चर्म	391 5	1,802 4	610 8	2,33[illegible] 0	540 7	2,103 9	481 3	2,421 9	401 6	2,014 7
अन्य	505 2	2,361 4	672 1	2,909 6	806 4	3,654 7	246 7	1,208 9	111 6	705 6
खाल										
भेड और मेमना,										
ऊन सहित	45 5	88 2	2 0	3 6	43 8	83 6	4 0	10 7	1 4	10 0
ऊन रहित	82 2	183 1	55 4	120 0	222 4	300 7	62 6	134 7	53 9	76 9
बकरी										
लवणित	16 3	121 2	17 4	202 4	25 1	112 3	27 0	154 4	9 2	54 7
ससाधित	39 1	490 7	15 8	62 7	42 7	280 6	2 8	11 3	5 5	19 4

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India—Imports, 1968–72

सारणी 113 – भारत से अस्थियो का निर्यात*

(मात्रा · हजार टन, मूल्य हजार रु)

	पिसी हुयी हड्डी		हड्डी का चूरा		अन्य	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
1967–68	74,967 6	51,624 7	2,970 9	1,585 4	2,070 8	1,437 8
1968–69	65,546 9	37,748 8	2,271 0	1,073 0	10,081 1	5,886 2
1969–70	65,922 8	39,131 8	3,179 8	1,838 9	5,812 0	3,434 8
1970–71	66,671 8	43,050 8	2,320 4	1,389 8	7,204 7	4,696 4
1971–72	66,302 4	51,058 3	4,390 6	2,807 8	6,032 0	4,736 7

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India–Exports, 1968–72

फरवरी 1965 से भारत सरकार ने पशुओं की थैलियो को निर्यात करने से पहले उनके श्रेणीकरण और परीक्षण को अनिवार्य बना दिया है 'ऐग्रीकल्चरल प्रोड्यूस (ग्रेडिंग एण्ड मार्केटिंग) एक्ट' के अन्तर्गत निर्यात के लिये सभी थैलियो को श्रेणीबद्ध करके 'ऐगमार्क' से चिह्नित करना आवश्यक कर दिया है.

पूछ के बाल – 1961 मे अनुमानत 288 टन बाल (गायो, बैलो, भैसो की पूछो से) प्राप्त हुये जिनमे मे 30 टन पश्चिमी जर्मनी, इगलैड, अमेरिका और फ्रास को भेजे गये

ऊन और बाल – भारत मे उन्पन्न किया जाने वाला अधिकाश ऊन व्यापारिक दृष्टि से मोटी श्रेणी का होता है इसमें से केवल 15% वस्त्र उद्योग के उपयुक्त होता है देश में ऊनी वस्त्र बनाने वाली मिलो की आवश्यकता-पूर्ति के लिये अच्छे किस्म की प्रचुर ऊन (वार्षिक आयात लगभग 11,000 टन) विदेशो से मँगायी जाती है (सारणी 115 और 116)

कुटीर उद्योग मे ऊन मे मुख्यत कम्बल (कुल उत्पाद का 31 8%), कालीन और फर्श पर बिछाने की दरियाँ (22 2%),

सारणी 114 – भारत से सीग, खुर तथा अन्य उत्पादो का निर्यात*

(मात्रा किग्रा, मूल्य रुपये)

	भैंसो के सींग		सीग चूर्ण		खुर चूर्ण		खुर, पंजे, ऐसे ही अन्य उत्पाद	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
1967–68	3,74,712	4,56,186	5,06,789	3,57,355	4,23,969	3,09,089	6,32,260	4,36,692
1968–69	5,16,334	5,54,326	7,43,663	4,54,158	4,44,225	2,77,664	9,82,860	6,07,397
1969–70	5,05,777	5,10,577	2,66,047	1,81,774	1,52,267	1,04,762	8,84,994	5,85,715
1970–71	5,82,998	4,86,978	5,64,952	4,13,506	2,62,686	1,87,121	4,81,914	3,79,694
1971–72	2,97,625	2,74,669	2,71,470	2,45,036	3,39,130	3,06,123	5,95,505	4,49,109

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India–Exports–1968–72

सारणी 115 – भारत में ऊन का आयात*

(मात्रा किग्रा, मूल्य रुपये)

	1967–68		1968–69		1969–70		1970–71		1971–72	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
आस्ट्रेलिया	11,412	1,15,757	2,40,699	45,86,084			58,435	10,75,720	7,34,925	1,07,99,151
ब्रिटेन	26,023	2,86,801	3,524	31,467	49,809	5,43,027				
जापान									2,26,636	29,89,238
योग	37,435	4,02,558	2,44,223	46,17,551	49,809	5,43,027	58,435	10,75,720	9,61,561	1,37,88,389

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India—Imports, 1968-72

सारणी 116 – भारत में ऊन का आयात*
(मात्रा किग्रा ; मूल्य रुपये)

	भेड़ों और मेमनों की ऊन ग्रीज युक्त		भेडो और मेमनों की ऊन ग्रीज रहित	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
1967–68	1,17,64,077	11,14,14,773	1,09,479	13,32,377
1968–69	1,20,65,584	10,38,73,114	24,685	2,27,127
1969–70	1,82,80,957	16,38,86,102	75,084	9,11,174
1970–71	1,88,44,719	14,96,16,199	1,39,892	13,08,201
1971–72	1,68,40,579	11,73,71,705	52,567	4,67,494

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India–Imports, 1968–72

सारणी 117 – भारत से ऊन तथा पशु बालो का निर्यात*
(मात्रा किग्रा , मूल्य रुपये)

	ऊन (वूल टाप)		ऊन की रद्दी		ऊन तथा पशु-बाल	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
1967–68	241	6,065	416	2,288	23,821	1,31,051
1968–69	54,069	6,85,060			52,187	1,67,005
1969–70	47,953	5,92,320			44,361	50,772
1970–71	62,012	8,67,681			1,34,762	1,86,876
1971–72					41,669	52,465

*Monthly Statistics of Foreign Trade in India–Exports, 1968–72

धागा (4 3%) और अन्य वस्तुये (7 8%), जैसे शाल, ट्वीड, पट्टू, फेल्ट आदि बनाये जाते है फर्श पर बिछाने की दरियों के उद्योग मे टैनरी तथा मोटे ऊन की बडी मात्रा का उपयोग होता है

1961 मे ऊनी वस्त्र बुनने वाली मिलो ने कुल 76 लाख किग्रा ऊन का उपयोग किया इसमे से एक-तिहाई ऊन का स्रोत देशज था 1962 से इन मिलो ने देशी कच्चे ऊन की खरीद बढा दी देश मे कुटीर उद्योग और वस्त्र उद्योग मे प्रयुक्त विभिन्न श्रेणी के ऊनो की विशिष्टियाँ भारतीय मानक सस्थान ने निर्धारित कर दी है (IS 2900–1964)

भारत मे ऊन और बाल की महत्वपूर्ण मण्डियाँ (राज्यवार) इस प्रकार है कालिम्पोग, रायगज और कलकत्ता (पश्चिमी बगाल), गया और मासाराम (बिहार), बम्बई और पूना (महाराष्ट्र), राजकोट, अकलेश्वर, बडौदा और हारीज (गुजरात), मद्रास, सलेम, वल्लाजपेट और तिरुचिरापल्ली (तमिलनाडु), अमृतसर (पजाब), फाजिल्का, पानीपत (हरियाणा), कुल्लू (हिमाचल प्रदेश), हल्द्वानी, टनकपुर, रामनगर, देहरादून, आगरा, झांसी, मथुरा और इटावा (उत्तर प्रदेश), बगलौर, कोलार और रायचूर (मैसूर), श्रीनगर (जम्मू और कश्मीर), एलूरु, अडोनी, हैदराबाद और वारगल (आन्ध्र प्रदेश)

श्रेणीकरण – फरवरी 7, 1965 मे भारत सरकार ने एक योजना द्वारा ऊन के श्रेणीकरण को अनिवार्य कर दिया ऊन श्रेणीकरण और अकन नियमो के अनुसार कच्चे ऊन को श्रेणीबद्ध किये बिना भारत से बाहर नही भेजा जा सकता 1937 के 'एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस (ग्रेडिंग एण्ड मार्किंग) एक्ट' के अन्तर्गत ऊन सम्बन्धी नियम बनाये गये है और समय-समय पर उनमे सुधार होते रहे है ऊन श्रेणीकरण और अकन नियमो के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के ऊनो के गुणो की व्याख्या की गयी है, उनकी मानक श्रेणियाँ निर्धारित की गयी है और ऊन को पैक करने और अकित करने की विधियाँ दी गयी है मानक विशिष्टियाँ निर्धारित करते समय ऊन की किस्म, रग, सफाई और सामान्य स्वरूप पर ध्यान दिया जाता है भारत सरकार के कृषि विपणन सलाहकार द्वारा यह योजना शासित होती है निरीक्षण अधिकारी भेजे जाने वाले प्रत्येक माल की परीक्षा करते है और प्रत्येक ढेर मे से विश्लेषण के लिये नमूने 'ऊन परीक्षण हाउस बम्बई' को भेजे जाते है यदि उनके विश्लेषण के परिणाम निर्धारित मानक के अनुसार होते है तो उन पर रग आदि को दर्शाते हुये गाँठ पर ऐगमार्क का ठप्पा लगा दिया जाता है जब तक गाँठ पर ऐगमार्क का ठप्पा नही होता और उसके साथ ऐगमार्क श्रेणीकरण का प्रमाणपत्र नही रहता तब तक माल का निर्यात नही होने दिया जाता ऊन को निर्यात करने के लिये श्रेणीबद्ध करके वेष्टित करने के सम्बन्ध मे भारतीय मानक सस्थान ने विशिष्टियाँ तैयार की है (IS 11–1963, 2156–1962)

श्रेणीकरण योजना लागू करने से पहले अधिकाश निर्यातित माल लिवरपूल भेजा जाता था और वहाँ प्रत्येक छ हफ्ते के अन्तर पर सार्वजनिक नीलाम द्वारा बेच दिया जाता था किन्तु ऐगमार्क श्रेणीकरण लागू हो जाने के बाद से माल को सीधा बेचने में स्पष्ट वृद्धि हुयी है और लिवरपूल की मार्फत माल की बिक्री घट गयी है इस योजना को लागू करने से पहले इगलैड को वार्षिक निर्यात देश के कुल निर्यात का 60% होता था, किन्तु अब यह 30% से कुछ ही ऊपर है

निर्यात–1950 से ऊन का निर्यात 'कोटा विधि' से किया जाने लगा है हर वर्ष कोटे दिये जाते हैं इसका उद्देश्य देशी उद्योग को सरक्षण प्रदान करना और कच्चे ऊन के स्थान पर आधे तैयार माल के निर्यात की नीति को समान रूप से प्रोत्साहन देना है 1971–72 मे अत होने वाले पाँच वर्षों में भारत से जिन देशो को प्रतिवर्ष ऊन निर्यात किया जाता रहा है उसका ब्योरा सारणी 117 मे दिया गया है भारत से कुल वार्षिक निर्यात का अधिकाश भाग रूस (39 5%), यू के (34 3%) और अमेरिका (12 7%) को भेजा गया ऊन के साथ बकरे के बाल (अगोरा के अतिरिक्त) और बालो की पट्टियों का भी निर्यात किया गया (सारणी 118)

सुअर के बाल

सुअर से प्राप्त होने वाले मुख्य उपोत्पादो मे से केवल उसके शूको का ही निर्यात विदेशो को किया जाता है भारत मे ये बाल आमतौर से गाँवो और शहरो के आस-पास के स्थानो मे पाले जाने वाले जीवित सुअरो से वर्ष मे एक-दो बार नोच कर इकट्ठे किये जाते है मरे हुये या काटे गये सुअरो के भी शूक

सारणी 118 – भारत से ऊन और बकरे के वालो का निर्यात*
(माता किग्रा , मूल्य रुपये)

	भेड़ और मेमने का ऊन, ग्रीज युक्त		भेड और मेमने का ऊन ग्रीज रहित		बकरे के वाल	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
1967–68	56,90,516	3,34,96,347	35,52,617	2,29,82,625	27,14,671	58,45,802
1968–69	48,51,991	2,36,07,689	39,55,542	2,50,71,280	39,44,893	70,75,977
1969–70	29,29,737	1,48,17,335	44,46,517	2,65,00,822	38,87,505	66,73,714
1970–71	16,82,464	97,43,156	52,51,108	3,13,79,438	46,57,223	71,09,850
1971–72	28,52,729	1,72,18,547	24,52,359	1,69,34,058	39,87,507	65,80,531

*Monthly Statistics of the Foreign Trade in India–Exports, 1968–72

सारणी 119 – भारत से खस्सी सुअर, सुअर और वराह के शूकों का निर्यात*
(मात्रा किग्रा , मूल्य . रुपये)

	1967–68		1968–69		1969–70		1970–71		1971–72	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
अफगानिस्तान									1,000	5,880
अमेरिका	22,618	48,73,083	4,758	9,09,724	3,691	4,60,747	2,428	2,85,183	3,264	3,75,950
आस्ट्रिया							198	7,600		
इटली							652	57,212	670	24,034
चेकोस्लोवाकिया	2,806	2,19,013								
जर्मन गणराज्य	16,966	11,26,195	12,230	9,65,370	6,758	6,55,278	7,289	6,45,384	13,538	12,94,772
जर्मन फेडरल रिपब्लिक	5,256	73,541	11,240	3,23,917	5,509	3,70,135	8,916	3,79,596	5,934	1,52,404
जापान	620	1,47,547	130	7,800	800	41,712	600	36,553	353	15,052
डेनमार्क									1,048	1,25,320
नीदरलैंड	2,700	2,68,639	4,677	4,73,709	3,363	2,82,991	519	53,171	3,838	3,72,366
न्यूजीलैंड									446	58,883
फ्रास	1,248	2,60,789	1,560	30,714	1,808	45,145	4,282	89,030	300	32,000
ब्रह्मा					28	4,131				
ब्रिटेन	83,378	1,02,26,992	84,990	85,41,932	67,720	64,29,136	35,135	31,34,045	67,536	62,78,124
मयुक्त अरब गणराज्य					800	1,40,311				120
हगरी			578	14,837	8,989	3,92,225	7,672	3,49,596	4,028	1,55,258
हागकाग					20	800				
योग	1,35,592	1,71,95,799	1,20,163	1,12,68,003	99,486	88,22,611	67,691	50,37,370	1,02,399	89,26,530

*Monthly Statistics of the Foreign Trade in India—Exports, 1968–72

नोच कर निकाल लिये जाते है कुछ शूक मध्य प्रदेश मे और पजाव के जगलो मे पाये जाने वाले वनैले और अर्ध-वनैले सुअरो के भी इकट्ठे किये जाते है दार्जिलिंग नामक अच्छी किस्म के शूक हिमालय की तराइयो मे पाये जाने वाले सुअरो से एकत्र किये जाते है

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और विहार महत्वपूर्ण शूक-उत्पादक क्षेत्र है कानपुर, जवलपुर, आगरा, जौनपुर और वरहज सँवारे हुये शूको की सवसे वडी व्यापारिक मण्डियाँ है इनको सग्रह करने की अन्य मण्डियाँ है· महाराष्ट्र मे अमरावती और नागपुर, मध्य प्रदेश मे कटनी, विहार मे सथाल परगना और पश्चिमी वगाल मे कलकत्ता, दार्जिलिंग और कालिम्पोंग है इनको जहाजो मे लादने का प्रमुख वन्दरगाह वम्वई है

विश्व की मण्डियो मे सुअर के वाल भेजने वाले प्रमुख देशो मे भारत एक है 1968–72 मे समाप्त होने वाले पाँच वर्षों मे

सारणी 120—भारत में सुअर के शूकों का औसत मूल्य*
(रुपये/किग्रा)

कानपुर	1962–63		1963–64		1964–65		1965–66	
नाप/श्रेणी	सफेद	काला/धूसर	सफेद	काला/धूसर	सफेद	काला/धूसर	सफेद	काला/धूसर
छोटे	13 48	11 80	11 90	9 70	11 75	4 25	5 35	3 06
50 8 मिमी.	31 43	27 48	44 83	31 16	50 58	34 33	38 60	13 73
76 2 मिमी	78 26	62 78	98 16	75 50	127 50	82 08	109 89	73 50
101 6 मिमी.	119 41	101 76	124 66	109 16	142 17	103 66	147 85	113 16
127 0 मिमी.	173 43	151 91	151 66	149 41	175 50	145 33	168 70	149 00
152 4 मिमी.	176 43	173 28	173 66	166 58	220 33	171 66	220 33	170 83
पचमेल	50–70		50–85		52–80		55–85	
नम्बेरो					82–135		90–150	
कलकत्ता	58 55		63 08		85 75		102 40	

*उप-वरिष्ठ विपणन अधिकारी, काष्ठ, सुअर-शूक और बकरा-बाल श्रेणीकरण योजना, कानपुर, खाद्य और कृषि मंत्रालय (कृषि विभाग), विपणन और निरीक्षण निदेशालय, नागपुर से प्राप्त आँकड़े.

भारत ने जितना शूक भेजा है उसकी वार्षिक तौल और मूल्य सारणी 119 में दिये गये हैं देश में जितना शूक एकत्र किया जाता है उसका औसतन 66% विदेशों को भेज दिया जाता है और शेष देश के भीतर इस्तेमाल होता है भारतीय बालों को आयातित करने वाले मुख्य देश यू के, अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी और जापान हैं

श्रेणीकरण—सुअरों से नोच लेने के बाद शूकों को पहले धोया जाता है और फिर सुखाया जाता है सूखने के बाद उन्हें रंग और किस्म के अनुसार अलग-अलग छाँटकर हर किस्म और रंग के बालों को उनकी लम्बाई के अनुसार पुनः छाँटा जाता है यह लम्बाई अधिक से अधिक 153 मिमी और कम से कम 51 मिमी होती है 51 मिमी से कम लम्बे शूकों को छोटा माना जाता है किन्हीं भी क्रमागत लम्बाइयों के बीच 6 35 मिमी का अन्तर रहता है छँटाई करने के बाद हर माप के बालों को अलग-अलग मुट्ठों में बाँध लिया जाता है इनका व्यास 51 मिमी से अधिक नहीं होता इन्हें निर्यात करने के लिये लकड़ी के डिब्बों में बंद कर दिया जाता है भारतीय शूक तीन विभिन्न रंगों में मिलते हैं सफेद, धूसर और काले इसके अतिरिक्त उन्हें तीन और श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं अति कठोर, कठोर और अर्ध-कठोर, और मुलायम

निर्यात के लिये बालों के गुणों में सुधार लाने के लिये भारत सरकार ने ऐगमार्क योजना के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से बालों के श्रेणीकरण करने की योजना 1954 में लागू की 1937 के 'ऐग्रीकल्चरल प्रोड्यूस (ग्रेडिंग एण्ड मार्किंग) एक्ट' के अन्तर्गत, 1962 में 'ब्रिस्टल ग्रेडिंग और मार्किंग (एमेण्डमेण्ट) रूल्स' बनाये गये जिनके अन्तर्गत बिना श्रेणीकरण किये किसी भी प्रकार के शूक बाहर नहीं भेजे जा सकते 'ब्रिस्टल ग्रेडिंग और मार्किंग रूल्स' के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के बालों के गुणों की व्याख्या, उनकी मानक श्रेणियों का निर्धारण और शूकों को डिब्बों में भरने और डिब्बों के अंकन की विधियाँ दी गयी हैं मानक विशिष्टियाँ निर्धारित करते समय बालों की किस्म, उनके रंग, लम्बाई, लीखों और अन्य विजातीय पदार्थों से मुक्त होने पर ध्यान दिया जाता है निर्यात के लिये आये हुये सभी माल की परीक्षा की जाती है, निर्धारित मानक विशिष्टियों के अनुरूप होने पर उसे उचित ढंग से वर्गीकृत करके प्रत्येक बक्से पर ऐगमार्क का लेबुल लगाया जाता है बाद में प्रत्येक बक्से के माल के नमूनों की फिर जाँच की जाती है

निर्यात—ऐगमार्क श्रेणीकरण योजना लागू करने से पहले देश का 70 से 80% निर्यातित माल लन्दन में तिमाही नीलामी में बेच दिया जाता था किन्तु अब अनिवार्य श्रेणीकरण लागू हो जाने से अमेरिका तथा यूरोप को, विशेष रूप से माल की सीधी बिक्री, लगातार बढ़ती जा रही है पिछले वर्षों में कुल निर्यात का 60% से भी कम माल यू के भेजा गया (सारणी 119) सीधी बिक्री के कारण भारत में निर्यात करने वालों को सुविधा हो गयी है उनको निर्यात पर खर्च कम होने के अतिरिक्त बीच का समय बच जाने के कारण माल का मूल्य जल्दी मिल जाता है इसके अतिरिक्त लन्दन में गोदाम के और उससे संबंधित अन्य खर्चों में तथा नीलाम के खर्चे आदि में भी बचत हुयी है देश में शूकों का सामान बनाने वाले व्यवस्थित उद्योग भी अपनी आवश्यकतानुसार ऐगमार्क विशिष्टियों के अन्तर्गत श्रेणीकृत शूकों को खरीदते हैं

मूल्य—शूकों का मूल्य उनकी लम्बाई पर निर्भर करता है. शूक जितने ही लम्बे होते हैं उनका मूल्य भी उतना ही अधिक होता है भारत में सुअर के बालों के औसत मूल्य (श्रेणी के अनुसार) 1962–63 से 1965–66 में सारणी 120 में दिये गये हैं

कुक्कुट पालन

देश की अर्थव्यवस्था मे कुक्कुट पालन का महत्वपूर्ण स्थान है और इसके प्रति मनुष्य की रुचि आदि काल से रही है विश्व-भर की वर्तमान कुक्कुट नस्लो का पूर्वज कहलाने वाला सुप्रसिद्ध लाल जगली मुर्गा, **गैलस गैलस** (लिनिग्रस) का आदि स्थान भारत और इसके निकटवर्ती देश है एशियायी कुक्कुट नस्लो की उत्पत्ति **असील अथवा मलय** मुर्गे से बतायी जाती है विशिष्ट कुक्कुट पालन तथा उत्पादन का विकास आज मे 2,000 वर्ष पूर्व इटली मे हुआ

पिछले 25 वर्षों में विश्व के अनेक भागो मे कुक्कुट पालन व्यवसाय मे भारी वृद्धि हुयी और अब यह एक व्यापारिक उद्यम बन गया है अधिकाश देशो मे कुक्कुट पालन कृषको के लिये आय का स्रोत और जीविका का साधन समझा जाता है एक छोटे कुक्कुट-पालन गृह के लिये अधिक भूमि और बडी पूँजी की आवश्यकता नही होती और उससे अच्छा लाभाश प्राप्त होता है प्रथम विश्व युद्ध के बाद विश्व के कई देशो में कुक्कुट पालन मे व्यापक परिवर्तन हुये बताये जाते है

1966 मे भारत मे 11 512 करोड कुक्कुटादि पक्षी थे जो 1961 की सख्या 11 425 करोड से 0 84% अधिक है भारत में प्रति 100 व्यक्ति पीछे 25 चूजे आते है जबकि डेनमार्क मे यही सख्या 540, कनाडा मे 373, सयुक्त राज्य अमेरिका मे 286, ब्रिटेन मे 179 तथा अन्य यूरोपीय देशो में 150–200 है एक भारतीय मुर्गी वर्ष-भर मे केवल 60 अण्डे देती है, जो ससार की 130 अण्डो की ऐसी ही औसत क्षमता की आधी मे भी कम है सयुक्त राज्य अमेरिका मे वार्षिक औसत उत्पादन प्रति अण्डे देने वाले पक्षी पर 210 अण्डे है भारत में प्रति व्यक्ति को साल भर मे 12 अण्डे नसीब होते है जबकि यह सख्या सयुक्त राज्य अमेरिका मे 295, कनाडा मे 282, आयरिश गणराज्य में 281 और पश्चिमी जर्मनी मे 249 है विभिन्न प्रकार के कुक्कुटो मे प्राप्त तैयार मास के आधार पर भारत में प्रति व्यक्ति कुक्कुट मास की वार्षिक खपत लगभग 131 ग्रा है जबकि सयुक्त राज्य अमेरिका मे यही 13 18 किग्रा और अन्य यूरोपीय देशो में 2 47–5 95 किग्रा है यह मात्रा पोषण सलाहकार समिति द्वारा सस्तुत 84 ग्रा मास तथा आधा अण्डा प्रतिदिन प्रति व्यक्ति के सन्तुलित आहार मे बहुत कम है भारत सरकार के मन्त्रिमण्डल सचिवालय के साख्यिकीय विभाग के सशोधित अनुमान के अनुसार 1960–61 में तत्कालीन मूल्यो के आधार पर कुक्कुटादि, अण्डो तथा अण्डे उत्पादो से प्राप्त आय पशुधन से प्राप्त होने वाली 66 91 करोड की कुल आय की 4 2% थी

फसल उत्पादन मे भी कुक्कुटादि का पर्याप्त योगदान है कुक्कुट-गृह का कचरा और बीट आदि 9-12 मास की अवधि पूर्व हो जाने तक सन्तुलित कार्बनिक खाद बन जाता है जिसमें नाइट्रोजन 3%, फॉस्फोरस 2% और पोटैश 2% होता है अनुमान है कि यदि 40 पक्षियो को घास-फूस मे पाला जाये तो एक साल मे इस प्रकार की 1 टन सन्तुलित खाद प्राप्त होगी जो धान अथवा मक्के के एक हेक्टर, जई (सोर्घम) के दो हेक्टर अथवा तरकारी उपजाने के लिये 0 5 हेक्टर के खेतो के लिये पर्याप्त होगी

कुक्कुट पालन के अन्तर्गत विविध पक्षियो जैसे, मुर्गी, बत्तख, हस, पीरू और गिनी मुर्गो का पालन सम्मिलित है, किन्तु भारत में मुर्गियों को ही सर्वाधिक महत्व दिया जाता है ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे कुक्कुट पालन को विशेष स्थान प्राप्त है क्योकि यह किसानों के लिये अतिरिक्त आय का एक सुलभ साधन बन जाता है इस पर आरम्भिक तथा इसके अनुरक्षण पर आवर्तक दोनो ही प्रकार के खर्चे कम लगते है, जिन्हे साधारण किसान आसानी से कर लेता है भारत में कुक्कुट पालन हाल ही तक एक ग्रामीण कुटीर उद्योग माना जाता रहा है पिछले दशक मे इसमे बडी तेजी से वृद्धि हुयी है अब पिछवाडो मे 3–12 पक्षी वाले छोटे-छोटे पालन-गृह केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो और गैर सरकारी सस्थानो द्वारा स्थापित अनेक अण्डज उत्पत्तिशालाओ की सहायता से आधुनिक और वैज्ञानिक विधियो द्वारा सचालित होने वाले बडे व्यापारिक पालन-गृहो मे बदले जा रहे है

भारत मे अधिकाश कुक्कुट सकर जाति के अथवा अज्ञात किस्मो के है जिन्हे सामूहिक रूप से देशी नस्लो के नाम से जाना जाता है विकास योजनाओ के अन्तर्गत आयातित विदेशी नस्लें ग्रामीण क्षेत्रों मे कुल पक्षियों की 3% और शहरी क्षेत्रो मे 10–15% है सारणी 121 मे 1966 के आंकडो के आधार पर भारत मे कुक्कुटो की सख्या (राज्यानुसार) पृथक्-पृथक् दी गयी है 1966 की पशु गणना के अनुसार भारत मे कुक्कुटो की सख्या 11 512 करोड आंकी गयी जो विश्व-भर की कुक्कुटो की सख्या की लगभग 10% है भारत की कुल कुक्कुट सख्या का 89% मुर्गे-मुर्गियाँ, 8 4% बत्तख तथा शेष हस और पीरू पक्षी है. सारणी 122 मे भारत मे 1966 की गणना पर आधारित (राज्यवार) कुक्कुटो का वितरण दिया गया है इस सख्या की लगभग 34% (3.9 करोड) मुर्गियाँ थी जिनसे प्रतिवर्ष 37 5 करोड रु के मूल्य के 225 करोड अण्डे प्राप्त होते थे

1961 तक कुक्कुटो की सख्या मे हर 5 वर्ष मे 23% तक की वृद्धि हुयी किन्तु इसके बाद ऐसी कोई वृद्धि नही हुयी हाँ,

सारणी 121 – भारत में 1966 में मुर्गियो, मुर्गो और चूजो की सख्या*
(सख्या हजार मे)

राज्य	मुर्गियाँ	मुर्गे	चूजे
अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह	28 3	11 9	51 2
असम	2,065 3	949 5	4,426 9
आध्र प्रदेश	4,991 0	1,917 9	7,403 6
उडीसा	2,137 3	955 6	4,249 7
उत्तर प्रदेश	1,698 4	493 4	1,465 6
केरल	4,870 6	1,370 3	3,346 3
गुजरात	989 9	266 8	1 060 1
चण्डीगढ	6 7	1 3	5 1
जम्मू तथा कश्मीर	806 4	287 8	345 9
तमिलनाडु	3,9'8 5	1,790 0	4,888 1
त्रिपुरा	161 4	88 1	298 5
दिल्ली	79 7	8 2	47 6
पजाब	650 8	187 6	770 6
पश्चिमी बगाल	2 994 2	2,121 1	2,330 8
पाडिचेरी	47 0	11 4	44 6
बिहार	3,023 4	1,415 5	5,806 5
मणिपुर	118 5	80 1	387 6
मध्य प्रदेश	1,957 5	536 5	3,047 5
महाराष्ट्र	5,007 2	1,158 1	3 671 6
मैसूर	3,039 5	1,223 8	3,903 4
राजस्थान	350 3	166 0	343 7
हरियाणा	209 6	48 5	217 8
हिमाचल प्रदेश	108 3	38 8	58 8
लक्षद्वीप, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप समूह	7 3	2 3	
योग	39,307 1	15,130 5	48,101 5

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics and Statistics Ministry of Agriculture, Govt of India,1972

सारणी 122 – भारत में 1966 में कुक्कुटादि की सख्या*
(सख्या हजार मे)

राज्य	सख्या
अडमान और निकोबार द्वीप समूह	98 7
असम	10,984 5
आंध्र प्रदेश	14,714 7
उडीसा	7,698 0
उत्तर प्रदेश	3,771 0
केरल	9,909 0
गुजरात	2,324 4
चण्डीगढ	13 3
जम्मू और कश्मीर	1,534 8
तमिलनाडु	11,225 9
त्रिपुरा	663 4
दादरा और नगरहवेला	39 1
दिल्ली	137 4
नागालैंड	438 2
पजाब	1,680 1
पश्चिमी बगाल	12,818 2
पाडिचेरी	107 1
बिहार	10,849 4
मणिपुर	622 7
मध्य प्रदेश	5,738 9
महाराष्ट्र	9,902 0
मैसूर	8,276 8
राजस्थान	864 6
लक्षद्वीप और मिनिकोय द्वीप समूह	18 5
हरियाणा	479 4
हिमाचल प्रदेश	206 6
योग	1,15,116 5

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Govt of India, 1972

अधिक अण्डे देने वाले पक्षियो की सख्या अवश्य बढी है जिससे देश मे अण्डों के उत्पादन मे वृद्धि हुयी है अनुमान है कि 128 2 करोड रु के मूल्य के 512 8 करोड अण्डे प्रतिवर्ष उपलब्ध होते है भारत मे कुक्कुटो की सख्या प्रति वर्गमील (2 6 वर्ग किमी) 104 है सख्या का परिसर गुजरात मे 28 से केरल मे 607 तक है

पश्चिमी बगाल, तमिलनाडु, बिहार तथा आन्ध्र के लिये ये मान क्रमश 245, 225, 184 तथा 153 है भारत मे प्रति व्यक्ति कुक्कुटादि की उपलब्धि 0 28 है जबकि डेनमार्क मे यही 6 98 नीदरलैण्ड मे 4 44, कनाडा में 4 26, सोवियत सघ मे 2 37, ब्रिटेन और फ्रास मे 2 16 और सयुक्त राज्य अमेरिका में 2 00 है भारत मे प्रति व्यक्ति तथा प्रति वर्ग किलो मीटर कुक्कुटादि की उपलब्धि (राज्यानुसार) सारणी 123 मे दी गयी है

ग्रामीण क्षेत्रो और फार्मो मे अब भी 3–10 तक की सख्या मे पक्षी पाले जाते है अनेक पालने वाले किसानो के पास 100 से 500 तक अण्डा देने वाले पक्षी है और वे इनसे प्राप्त आय से अपना जीवन-निर्वाह करते हैं भारत मे व्यापारिक पैमाने पर 10,000–50,000 की सख्या मे भी कुक्कुट पाले जाते है शुद्ध नस्ल का सग्रह प्राप्त करने के ध्येय से दिल्ली, कामलाही (हिमाचल प्रदेश), भुवनेश्वर (उडीसा), बगलौर (मैसूर) और बम्बई (महाराष्ट्र) में क्षेत्रीय फार्म खोले गये है

भारत में मुर्गियो की 2 या 3 शुद्ध नस्ले मूलरूप मे पायी जाती हैं और यहा सर्वत्र पाली जाने वाली मुर्गियाँ अधिक अण्डे देने वाली नही होती है अधिकाश भारतीय मुर्गियो की किस्मे अज्ञात कुल की है उन्नत मुर्गियो की सख्या इनकी कुल सख्या की 1 4% है कुछ विदेशी नस्ले जैसे कि ह्वाइट लेगहार्न, रोड आइलैण्ड रेड, और बार्ड प्लाइमाउथ रॉक के मुर्गो की सहायता से भारतीय मुर्गियो के अण्डो के आकार तथा इनके उत्पादन में वृद्धि के लिये तेजी से सुधार लाने मे सफलता मिली है

अमेरिकी नस्लें आकार में भूमध्यसागरीय और एशियाई नस्लों के बीच की होती हैं ये पूर्वी भारी नस्लों की अपेक्षा जल्द किन्तु भूमध्यसागरीय नस्लों की अपेक्षा देर में वयस्क बनती हैं ये आहार ढूढ़ने में समर्थ और अण्डा सेने वाली और तेजी से मोटाने वाली होती हैं इनकी टांगें पखरहित और रंग में पीली होती हैं इनकी लोलकियाँ रंग में लाल और इनके अण्डो का खोल भूरा होता है

सभी अमेरिकी नस्लों को दो प्ररूपों में बाँटा जाता है सामान्य तथा दुकाजी ये दोनों अण्ड उत्पादन तथा मांस के लिये महत्वपूर्ण हैं पट्ठों के मांस का मूल्य अण्डा तथा मांस देने वाले पक्षियों की अपेक्षा अधिक मिलता है इनमें उत्तम प्रकार के खस्सी मुर्गे बनते हैं अमेरिकी नस्लें अन्य नस्लों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हैं और साधारण किसान अथवा कुक्कुट पालक की हर प्रकार की आवश्यकता पूरी करती हैं

प्लाइमाउथ रॉक बड़े आकार, उत्तम कोटि के मांस तथा अण्डे देने की क्षमता के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका की सर्वाधिक लोकप्रिय नस्ल है इस नस्ल के 6 प्ररूपों में से **बार्ड प्लाइमाउथ रॉक** भारत में अधिक प्रसिद्ध हैं भारत में इस नस्ल के मुर्गे भारतीय देशी मुर्गियों को उन्नत बनाने के लिये उपयुक्त सिद्ध हुये हैं

इस प्ररूप के पक्षियों में कलँगी इकहरी, शरीर लम्बा किन्तु गहन तथा सीने की हड्डी बड़ी होती है पक्षति का रंग धूसर श्वेत होता है पखों पर आरपार, सीधी, समान मोटाई की काली धारियाँ त्वचा तक बनी रहती हैं मादा की अपेक्षा नर पक्षियों का रंग उत्तरोत्तर प्रजनन में हल्का पड़ता जाता है मुर्गे का सामान्य भार 4 2 किग्रा और मुर्गी का 3 2 किग्रा होता है

संकीर्ण धारियों वाले **बार्ड प्लाइमाउथ रॉक** पक्षियों का प्रजनन आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी है अधिक संकीर्ण धारियों के लिये प्रजनन कराये गये कुलों के पक्षियों में वृद्धि धीमी पड़ जाती है, छोटे पक्षियों के तन पर पंख कम रहते हैं तथा वयस्क पक्षियों के पंख और पूँछ दोषपूर्ण होने लगते हैं **बार्ड प्लाइमाउथ रॉक** नस्ल के पक्षी साधारण ग्रामीण नस्लों को सुधारने के लिये उत्तम हैं अन्य अमेरिकी नस्लें **ह्वाइट, बफ, सिलवर पेन्सिल्ड, पार्टरिज, कोलम्बियन** और ब्लू हैं. इन में श्वेत प्ररूप अपनी अण्डे देने की क्षमता और कबाबी मांस उत्पादन के लिये लोकप्रिय हैं भारत में इस नस्ल का आयात हाल ही में किया गया है और यह लाभकारी सिद्ध हुयी है

वियनडोट कुक्कुट, ललित लोच से युक्त तथा अपेक्षाकृत गोल और ढीले पंखों से युक्त शरीर के होते हैं इनके पंख भूमि की ओर झुके होते हैं इन पक्षियों की पीठ छोटी, कलँगी दन्तुर और त्वचा रंग में पीली होती है सामान्य कार्यों के लिये यह अच्छी नस्ल है और मांस उत्पादन के लिये अधिक उपयोगी है यदि इसका पालन भलीभाँति किया जाय तो यह किस्म काफी अण्डे देने वाली भी बन सकती है भार में मुर्गा 3 8, मुर्गी 3 0, पट्ठा 3 4 और पठोर 2 5 किग्रा होते हैं **ह्वाइट, बफ, सिल्वर लेस्ड, गोल्डन लेस्ड, पार्टरिज, सिल्वर पेन्सिल्ड, कोलम्बियन** और **ब्लैक**, इस नस्ल की अन्य किस्में हैं

रोड आइलैण्ड रेड भारत की बहुत ही लोकप्रिय नस्ल है इस नस्ल की मुर्गियाँ अच्छी अण्डे देने वाली और उत्तम कोटि की मांस उत्पादक हैं यह सभी नस्लों में सर्वाधिक सहिष्णु है तथा जलवायु के विषम परिवर्तनों को भी सहन कर लेती है मुर्गियाँ उत्तम कोटि की अण्डे देने वाली होती हैं और इनके अण्डे का खोल भूरा होता है पालन-गृहों में सरकारी, गैर सरकारी तथा व्यापारिक पैमाने पर इस नस्ल के झुण्ड पाले जाते हैं

इस नस्ल की दो किस्में हैं इकहरी कलँगी वाली तथा दन्तुर कलँगी वाली केवल कलँगी की रचना को छोड़कर दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता इकहरी कलँगी वाले कुक्कुट अधिक लोकप्रिय होते हैं

इन पक्षियों का शरीर आयताकार और गठीला, सीना आगे की ओर उभरा हुआ, पीठ सपाट, टाँगें और पाँव साधारणतः गहरे पीले अथवा लाल और चोंच भी लाल होते हैं पक्षति भड़कीली चमकदार तथा रंग में काली अथवा भूराभ-लाल होती है कुछ में पाण्डु, श्वेत अथवा भूरी भी होती है इनकी लोलकियाँ और आँखें लाल होती हैं **रोड आइलैण्ड ह्वाइट** नस्ल, **रोड आइलैण्ड रेड** की भाँति लोकप्रिय नहीं है भार में मुर्गा 4 0, मुर्गी 3 0, पट्ठा 3 5 तथा पठोर 2 5 किग्रा होती है

न्यू हेम्पशायर अपेक्षाकृत एक नई नस्ल है जिसका आयात भारत में अमेरिका से हाल ही में किया गया है इस नस्ल के कुक्कुट अपनी सहिष्णुता के लिये प्रसिद्ध हैं यह **रोड आइलैण्ड रेड** समूह से सम्बन्धित सामान्य नस्ल है ये पक्षी आकार में **रोड आइलैण्ड रेड** कुक्कुटों के बराबर किन्तु अपेक्षाकृत कम आयताकार होते हैं यह नस्ल कुछ ही वर्षों में तेज वृद्धि, तीव्र परिपक्वता, जननक्षमता तथा सेने की क्रिया आदि के कारण लोकप्रिय बन गयी है इनकी पक्षति रंग में लालाभ-भूरी और कलँगी इकहरी होती है मुर्गियाँ अच्छी अण्डे देने वाली और अण्डे भूरे खोलों वाले होते हैं भार में ये पक्षी **रोड आइलैण्ड रेड** के बराबर होते हैं

अंग्रेजी श्रेणी के पक्षियों की 6 नस्लें, **ससेक्स, ऑर्पिंगटन, आस्ट्रालोर्प, कोर्निश, डारकिंग** तथा **रेड कैप** हैं ये सभी उपयोगी नस्लें हैं तथा उत्तम कोटि के मांस उत्पादन के लिये प्रसिद्ध हैं कोर्निश को छोड़कर अन्य सभी नस्लों के पक्षियों की त्वचा श्वेत तथा लोलकियाँ लाल होती हैं **डारकिंग** और **रेड कैप** को छोड़कर अन्य सभी नस्लों की मुर्गियाँ भूरे खोल वाले अण्डे देती हैं

प्रारम्भ में **ससेक्स** नस्ल का विकास मांस उत्पादन के लिये ही किया गया था उसकी तीन किस्में, **लाइट ससेक्स, रेड ससेक्स** तथा **स्पेकेल्ड ससेक्स** कही जाती हैं उनमें **लाइट ससेक्स** सर्वाधिक लोकप्रिय है जिसके कुछ अच्छे प्रभेद भी विकसित किये गये हैं भारत में कुक्कुटादि पालक इन्हें बड़ी संख्या में पालते हैं

ससेक्स कुक्कुटों का शरीर लम्बा और गठीला तथा कन्धे चौड़े होते हैं उनका सीना बड़ा तथा सुविकसित होता है ये अपने उत्तमकोटि के मांस के लिये प्रसिद्ध हैं इनकी कलँगी इकहरी और चोंच, टाँगें तथा पदज सींग जैसे रंग के होते हैं भार में मुर्गा 4 00, मुर्गी 3 2, पट्ठा 3 4 तथा पठोर 2 7 किग्रा होती है

ऑर्पिंगटन नस्ल के कुक्कुटों का शरीर लम्बा, गठीला और गोल, सीना भरा हुआ और पीठ चौड़ी होती है इस नस्ल के कुक्कुट भूमि से कुछ सटे हुये होते हैं इनकी अस्थियाँ अपेक्षाकृत भारी होते हैं भार में मुर्गा 4 6, मुर्गी 3 6, पट्ठा 4 0 तथा पठोर 3 2 किग्रा होते हैं इस नस्ल की चार किस्में 'पाण्डु', 'श्याम', 'श्वेत', तथा नील' ज्ञात हैं इनमें से पाण्डु सर्वाधिक लोकप्रिय है यह **बफ कोचीन, डार्क डारकिंग** तथा **गोल्डेन स्पेकेल्ड हैमबर्ग** से विकसित की गयी है इस श्रेणी की बढ़ती हुयी लोक-

प्रियता वाली किस्म आस्ट्रालोर्प के विकास के लिये कारणस्वरूप होने से इस किस्म महत्वपूर्ण है. ओर्पिंगटन अच्छा भक्ष्य पक्षी है. चयनात्मक प्रजनन तथा उचित प्रबन्ध से इनके अच्छे अण्डे देने वाले प्रभेद भी विकसित किये गये हैं.

आस्ट्रालोर्प एक उन्नत नस्ल है जो ऑस्ट्रेलिया में ओर्पिंगटन ब्लैक से विकसित की गयी है. घरो मे पालने के लिये उपयुक्त होने के कारण भारत में, विशेषकर आर्द्र और अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे यह किस्म लोकप्रिय होती जा रही है.

ओर्पिंगटन की इस किस्म के कुक्कुट देखने में अधिक खडे तथा कम भारी जान पडते है. इनका पालन अण्डे के लिये किया जाता है. इनके शरीर पर मास भी अधिक होता है फलत यह दोहरे लाभ वाली किस्म बन गयी है. इन कुक्कुटो का शरीर पूँछ की ओर ढालू और गठीला होता है. इनके पख भी ओर्पिंगटन की अपेक्षा अधिक गढे हुये रहते है. इनमे कलँगी इकहरी, चोच काली, टाँगें और पजे हराभ काले अथवा सीसे के समान काले, तथा तलवे गुलाबी श्वेत होते हैं. वैसे पक्षति सर्वत्र चमकदार किन्तु नीचे की तरफ भद्दे काले रग के होते हैं. भार में मुर्गा 400, मुर्गी 300, पट्ठा 34 तथा पठोर 25 किग्रा होते हैं.

आस्ट्राह्वाइट जो आस्ट्रालोर्प नर तथा ह्वाइट लेगहार्न मादा का सकर है, एक अच्छी अण्डे देने वाली ओजस्वी कुक्कुटो की किस्म है. व्यापारिक पालन-गृहो मे इन्हे बडी सख्या मे रखा जाता है.

कोर्निश मूलत कोर्निश इण्डियन गेम कहलाती थी. इनका विकास ब्रिटेन मे भारतीय असील और मलय और अंग्रेजी शिकार पक्षियो के सकरण के परिणामस्वरूप हुआ. अंग्रेजी नस्लो के विपरीत कोर्निश पक्षियो की त्वचा पीली होती है. इनके शरीर पर पख सघन और सटे हुये रहते हैं. शरीर का आकार मास उत्पादन के अनुकूल होता है. इनका सीना गठीला और विशाल तथा कन्धे चौडे होते हैं. कलँगी मटराकार होती है. भार में मुर्गा 36, मुर्गी 26, पट्ठा 32 तथा पठोर 23 किग्रा. होते हैं.

डारकिंग और रेडकैप अंग्रेजी श्रेणी की छोटी नस्ले हैं. डारकिंग शारीरिक आकार मे ससेक्स के समान होती है. तथा रेडकैप में कलँगी दन्तुर होती है. इन नस्लो के अण्डे भूरे खोल वाले नही होते.

भूमध्यसागरीय श्रेणी मे भूमध्यसागरीय क्षेत्रो में उद्भूत छ नस्ले आती है. इनके नाम हैं. लेगहार्न, मिनोरका, एनकोना स्पेनिशन, अण्डाल्यूसियन तथा बटरकप. इनमे लेगहार्न सर्वाधिक लोकप्रिय नस्ल है. इन सभी नस्लो के कुक्कुटो की टाँगो पर पख नही होते तथा इनमे लोलकियाँ क्रीमी अथवा श्वेत क्रीमी रग की होती हैं. मिनोरका नस्ल को छोडकर इस श्रेणी की अन्य सभी नस्लो के मुर्गे भार मे अपेक्षाकृत हलके तथा आकार मे छोटे होते है. ये कम आयु मे ही परिपक्व हो जाते हैं. ये फुर्तीले, चारा ढूढने मे तेज किन्तु अच्छे सेने वाले नही होते. अपेक्षाकृत कम आहार लेने के कारण इनका पालन मितव्ययी होता है. ये बहुत अच्छी अण्डे देने वाली मुर्गियाँ है और इनके अण्डे श्वेत खोलो वाले होते हैं.

लेगहार्न एक फुर्तीली तथा छोटी नस्ल है और अपने विभिन्न अगो के सुमेल होने के कारण प्रसिद्ध है. ये पक्षी आकार में गठे हुये और सुव्यवस्थित होते हैं. इनका सिर छोटा, कलँगी तथा चचुश्रृग पूर्णत सुव्यवस्थित होते हैं. इनके पख घने और पूँछ नीची होती है. इन पक्षियो की पीठ और टाँगें अपेक्षाकृत लम्बी तथा सीना उभरा रहता है. ह्वाइट (श्वेत), ब्राउन (भूरे), ब्लैक (श्याम) तथा बफ, लेगहार्न की अधिक प्रचलित किस्में हैं. सिल्वर, रेड, ब्लैक टेल्ड रेड तथा कोलम्बियन कुछ अन्य कम प्रचलित किस्मे है. मुख्य किस्मे पुन कलँगी की बनावट के आधार पर दन्तुर (रोज) तथा इकहरी कलँगी दो प्रकारो में बाँटी जाती हैं. इन सभी किस्मो के कुक्कुटो की चोचें, त्वचा, टाँगें तथा पजे पीले रग के होते हैं. पक्षति की रचना तथा कलँगी के प्रकार को छोडकर रूप तथा आकार मे ये सभी पक्षी समान होते हैं. कम खाने तथा तग स्थान मे रह सकने के कारण इनका पालन बहुत ही किफायती होता है. श्वेत लेगहार्न प्रकार बडे आकार के विपणन योग्य अण्डे देती हैं और विशेषतया व्यापारिक पालन गृहो के लिये अत्यन्त उपयुक्त है. मुर्गो में कलँगी इकहरी, मध्यम आकार की, तनी हुयी, तथा काफी नीचे तक कटावदार होती है. मुर्गियो में केवल पहला कटाव ही तना रहता है. शेष कलँगी एक ओर लटकी रहती है. मुर्गे मे कलँगी दन्तुर (रोज), मध्यम आकार की तथा रिक्त स्थानो पर वर्गाकार होती है. मुर्गी में यह सपाट होती है. भार में मुर्गा 26, मुर्गी 20, पट्ठा 25 तथा पठोर 18 किग्रा होते हैं.

ह्वाइट लेगहार्न कुक्कुटो को सर्वप्रथम विदेशी धर्म प्रचारक (पादरी) तथा चाय बागान मालिक लगभग 50 वर्ष पूर्व भारत में ले आये थे. ये इस देश मे विशेषतया शुष्क क्षेत्रो में सफल सिद्ध हुये हैं. ये पक्षी भारी मिट्टियो, आर्द्र तथा पहाडी क्षेत्रों में ठीक से नही बढ पाते. ये अण्डो के उत्पादन के लिये तो बहुत लोकप्रिय है किन्तु उत्तम भक्ष्य नहीं है.

ब्राउन लेगहार्न भी अपनी उत्तम उत्पादन क्षमता के कारण इतनी ही लोकप्रिय किस्म है. साधारणत इनका रग हल्का अथवा गहरा भूरा होता है. इनकी पक्षति जगली मुर्गे की अपेक्षा अधिक सुन्दर होती है. जिन क्षेत्रो में श्वेत रग के पक्षी पसन्द नही किये जाते वहाँ देशी मुर्गियो की नस्लो को सुधारने के लिये इन्हें काम में लाया जाता है.

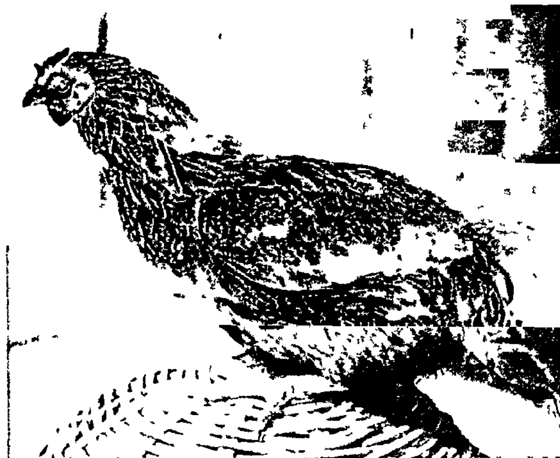
ब्लैक लेगहार्न पक्षी श्वेत किस्मो की अपेक्षा कम अण्डे देने वाली किस्म है. प्राय इन पक्षियो से ब्लैक मिनोरका किस्म के पक्षियो का भ्रम हो जाता है. किन्तु लेगहार्न पक्षियो के समरूप शारीरिक रचना तथा लाक्षणिक सिर से इन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है.

मिनोरका कई स्थानो पर लालमुँही स्पेनिश नाम से भी जानी जाती है. अन्य देशो से भारत में लाकर इन्हें कई पालन गृहो में रखा गया है. इनका शरीर लम्बा तथा कलँगी और लोलकियाँ बडी होती हैं. इनकी पीठ पूँछ की ओर ढालू रहती है. इनकी कलँगी ह्वाइट हार्न की ही तरह की किन्तु छ नुकीली कटानों से युक्त होती है. इन पक्षियो की चोच काली होती है और टाँगें तथा पजे काले तथा स्लेटी रंग के होते हैं. ये अच्छे अण्डे देने वाली मुर्गियाँ हैं. इनके अण्डे आकार में बडे और श्वेत खोलो वाले होते हैं. इनके चूजो की वृद्धि तेजी से होती है और ये उत्तम भक्ष्य पक्षी बनते हैं. भार मे मुर्गा 36, मुर्गी 30, पट्ठा 30 और पठोर 25 किग्रा होते हैं.

मिनोरका नस्ल की तीन किस्में ज्ञात हैं. ब्लैक (श्याम), ह्वाइट (श्वेत) तथा बफ. ब्लैक तथा ह्वाइट दोनो किस्में दो प्रकारो मे वर्गीकृत हैं: इकहरी कलँगी वाले तथा दन्तुर (रोज) कलँगी वाले. इनमे से पहला प्रकार सर्वाधिक लोकप्रिय है. अण्डे



कारकनाथ मुर्गा



कारकनाथ मुर्गी

कुक्कुट : देशी नस्लें



श्वेत वियनडोट मुर्गा



श्वेत वियनडोट मुर्गी



श्वेत कोर्निश मुर्गी



श्वेत कोर्निश मुर्गा

कुक्कुट : विदेशी नस्लें

देने में निम्नकोटि की होने के कारण भारत मे इसकी लोकप्रियता घटती जा रही है

एनकोना भी लेगहार्न के समान एक सामान्य नस्ल है किन्तु इसकी अपेक्षा यह कम पसन्द की जाती है एनकोना नस्ल की पक्षति काली चमचमाती हुयी होती है कुछ पखो के सिरे श्वेत भी होते है मुर्गे की गर्दन की काली सतह मे हरी झलक भी रहती है किन्तु मुर्गी में ऐसा नही होता इसका पूरा उदर भाग गहरे काले रग का होता है इन पक्षियो की चोच पीली, टाँगे तथा पजे भी पीले अथवा चित्तीदार काले रग के होते है और भार में मुर्गा 27, मुर्गी 20, पट्ठा 23 तथा पठोर 18 किग्रा होते है

सफेद मुँही ब्लैक स्पेनिश नस्ल के पक्षी आकार मे **मिनोरका** पक्षियो के समान होते है इनका चेहरा अत्यन्त श्वेत, चिकना तथा झुर्री रहित होता है इन पक्षियो का शरीर विशेष लम्बा नही होता पूँछ कुछ-कुछ उठी रहती है इनकी त्वचा का रग श्वेत, कलँगी इकहरी और अपेक्षाकृत बडी तथा बारीक, समरूपी दातो वाली होती है मुर्गी मे इसका सामने का भाग सीधा तना हुआ किन्तु पीछे का शेष भाग एक ओर लटका रहता हे इनकी चोच काली, टाँगे और पजे सीसे जैसे नीले रग के अथवा काले होते हैं इनकी पक्षति हरी झलक लिये हुये पूरी तरह से काली होती है भार मे मुर्गा 36, मुर्गी 30, पट्ठा 30 तथा पठोर 25 किग्रा होते हैं

ब्लू अण्डालूसियन मूलत स्पेनी नस्ल है इस नस्ल का महत्व मुख्यत इसके **ब्लू प्लाइमाउथ रॉक** के समान विषम युग्मज रग के कारण है इन पक्षियो की त्वचा श्वेत, चोच सीग के रग की और टाँगे तथा पजे सीसे जैसे नीले रग के होते है कलँगी इकहरी और प्राय लेगहार्न पक्षियो की अपेक्षा बडे आकार की, किन्तु मुर्गियो मे यह लेगहार्न मुर्गियो जैसी ही होती है भार मे मुर्गा 31, मुर्गी 25, पट्ठा 27 तथा पठोर 20 किग्रा होते है

कुक्कुटादि नस्लो को उपयोगिता के आधार पर पुन चार विभिन्न वर्गो मे रखा जा सकता है अण्ड वर्ग, मास वर्ग, सामान्य या दुकाजी वर्ग तथा मिश्रित वर्ग

अण्ड वर्ग के अन्तर्गत वे सभी नस्ले आती है जिनसे प्रति मुर्गी से प्रति वर्ष बडे आकार के 150–200 अण्डे प्राप्त होते है इन्हे झुडो मे पाला जा सकता है और कम आहार पर निर्वाह कर सकने के कारण इनका प्रबन्ध बहुत ही किफायती होता है इस वर्ग की मुख्य नस्ले **लेगहार्न, मिनोरका तथा एनकोना** है इनमे **लेगहार्न** सर्वाधिक लोकप्रिय है

मास वर्ग के अन्तर्गत बडे आकार तथा भारी शरीर वाले कुक्कुटो की नस्ले आती है इन पर ढीले-ढीले पख रहते हैं बडे होने पर इन पक्षियो के सीने, जाँघो और पीठ पर मास बढने लगता है यह मास कोमल होता है ऐसी नस्लो का व्यापारिक महत्व है इस वर्ग की नस्लो के नाम **ब्रह्मा, कोचीन, कोर्निश, असील, चटगाँव** आदि है

सामान्य अथवा दुकाजी वर्ग की नस्लो के पक्षियो से उत्तम कोटि का मास और बडे अण्डे (प्रति पक्षी प्रतिवर्ष सख्या मे 150 तक) प्राप्त होते है देहाती क्षेत्रो मे तथा पिछवाडे वने पालन-गृहो मे छोटे-छोटे झुडो के लिये ये आदर्श कुक्कुट होते है उचित प्रबन्ध होने पर ये पक्षी पूरे वर्ष अण्डे देते रहते है इस वर्ग की सामान्य नस्ले **रोड आइलैण्ड रेड, प्लाइमाउथ रॉक, न्यू हेम्पशायर, वियनडोट, आस्ट्रालोर्प, ओर्पिगटन** तथा डार्किंग है

मिश्रित वर्ग के अन्तर्गत वे सभी नस्ले आती है जिनका कोई विशेष आर्थिक महत्व नही होता कुछ पालक इन्हे प्रदर्शन के लिये शौकिया पालते है इस वर्ग की मुख्य नस्लें **अण्डाल्यूसियन, बैंटम (ब्रह्मा, बफ कोचीन** और दन्तुर कलँगी वाली **बैंटम**) और **स्पेनिश फाउल** है

प्रबन्ध

हाल ही तक, कुक्कुट पालन, घर के पीछे छोटे-छोटे पालन-गृहो तक ही सीमित था पिछले दशक मे इसकी लोकप्रियता काफी बढी है और बडी सख्या मे कुक्कुट पालको ने शहरी क्षेत्रो के पास बडे पैमाने पर इस व्यवसाय को अपना लिया है एक ऐसा समय था जब साधारण कुक्कुट पालक को कुक्कुटो के प्रजनन, सेने तथा उनके पालन-पोषण के तरीको के अतिरिक्त चूजो और अण्डो के विपणन में भी निपुण होना पडता था किन्तु कुक्कुट पालन उद्योग के विस्तार के साथ अब इस उद्योग के एक या दो पहलुओ पर ही दक्षता प्राप्त करने की प्रवृत्ति देखी जाती है

कुक्कुट पालन व्यवसाय की सफलता के अनेक कारण है इनमे प्रमुख है उचित स्थान और नस्ल का चुनाव, उनका किफायती गृह प्रबन्ध और पोषण, कुक्कुटादि रोग तथा परजीवियो का नियन्त्रण और इनके विपणन के लिये अच्छी सुविधायें

कुक्कुट पालन, चाहे बडे पैमाने पर किया जाये अथवा छोटे पैमाने पर किन्तु इसके स्थान की मिट्टी को मध्यम कणाकार होना चाहिये और पक्षियो को स्वस्थ बनाये रखने के लिये जल-निकास का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध होना चाहिये इस स्थान तक पहुँच सुगम होनी चाहिये तेज आँधी तथा जगली जानवरो और पक्षियो के आक्रमण से भी पक्षियो की रक्षा आवश्यक है. फार्म ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहाँ रख-रखाव का व्यय कम हो और पक्षियो को नष्ट कर देने वाले महामारी रोगो के फैलने की सम्भावना भी कम रहे तात्पर्य यह है कि पक्षियो को स्वस्थ तथा उपयोगी बनाये रखने के लिये हर अवस्था मे उनकी उचित देखभाल आवश्यक है

बाजार की माँग, उपयोग तथा स्थानीय परिस्थितियो के अनुकूल नस्लो के चुनाव मे अत्यन्त सावधानी बरतनी पडती है अण्डा और मास उत्पादन के लिये विभिन्न विशिष्ट नस्लो तथा विभेदो का विकास हुआ है अत कुक्कुटो के प्रजनन के लिये उचित प्रकार के चूजो का चयन और भी महत्वपूर्ण है यदि एकमात्र लक्ष्य अण्डा-उत्पादन हो तो फार्म मे अधिक अण्डा देने वाली मुर्गियाँ लाकर इकट्ठी करनी चाहिये पहले से चुने **ह्वाइट लेगहार्न** के विभेदो मे सकरण से प्राप्त चूजे इस प्रयोजन के लिये साधारणत अधिक उपयुक्त होते है यदि मास चाहना हो तो केवल तेजी से बढने वाले चूजो को चुनना चाहिये व्यापारिक कबाबी मास (कुक्कुटादि मास) उत्पादन के लिये **ह्वाइट कोर्निश** नस्ल के मुर्गो तथा **ह्वाइट प्लाइमाउथ रॉक** अथवा **न्यू हेम्पशायर** नस्ल की मुर्गियो के बीच सकरण कराने से प्राप्त चूजे अधिक उपयुक्त होते है

भारत मे कुक्कुट पालन की दो पद्धतियाँ प्रचलित है अर्ध-गहन तथा गहन अर्ध-गहन पद्धति मे पक्षियो को दिन के समय खुले बाडे मे छोड दिया जाता है और रात के समय एक बन्द स्थान मे पिजडे मे बन्द कर दिया जाता है यह पद्धति ग्रामीण क्षेत्रो के लिये अच्छी है क्योकि ऐसा करने से कुक्कुटो को सूर्य का प्रकाश और ताजी हवा पर्याप्त मात्रा मे मिलती रहती है साथ

ही इनकी कसरत भी होती रहती है गहन पद्धति मे पक्षियो को एक कमरे अथवा छप्पर मे घनी बिछाली पर एक साथ अथवा अलग-अलग पिंजडो मे रखा जाता है व्यापारिक पैमाने पर वडे कुक्कुट झुडो के प्रबन्ध के लिये यह पद्धति अधिक उपयुक्त है

अर्ध-गहन पद्धति मे 50 अण्डे देने वाली मुर्गियो के पालन के लिये 230 वमी क्षेत्रफल की आवश्यकता पडती है इसमे उचित आकार का छप्पर, आहार लेने के लिये टोकरियाँ, दरबे के बक्से, जल नालियाँ तथा रात मे पक्षियो के रहने के लिये पिंजडे होने चाहिये पक्षियो की तेज हवा मे रक्षा के लिये फूस अथवा किरमिच के पर्दे काम मे लाये जा सकते है गर्मियो मे छाया के लिये शहतूत अथवा नीबू जाति के वृक्ष लाभदायक होते हैं किन्तु जाडे मे धूप के लिये इनकी छँटाई कर देनी चाहिये दरबो को छप्पर के एक अन्धेरे कोने मे रखना चाहिये जिससे कि अण्डा देने के समय मुर्गी को शान्त वातावरण मिल सके

गहन अथवा निर्मित बिछाली मे पालन के लिये एक विशेष रूप से निर्मित स्थान के फर्श को घासफूस की कई मोटी परतो से ढक दिया जाता है इस प्रकार की बिछाली बनाने के लिये अधिक अवशोषण क्षमता वाले पदार्थ, जैसे धान की भूसी, मूगफली अथवा बिनौले के छिलके, गेहू का भूसा, छोटे-छोटे भुट्टो की खूख के टुटन, धान की पुआल, ईख के रेशे, बुरादा तथा लकडी की छीलन आदि प्रयोग किये जाते हैं जीवाणु तथा अन्य सूक्ष्म जीव कुक्कुटो की बीट तथा बिछाली के तिनको को अपघटित करके असक्रमित ह्यूमस जैसा पदार्थ बनाते है तिनको तथा घास-फूस पर जीवाणुओ की क्रिया से राइबोफ्लैविन, विटामिन तथा अन्य सूक्ष्ममात्रिक तत्व बनते है जो बिछाली की परतो द्वारा गृहीत होकर अण्डे सेने की क्रिया को बढाते है बिछाली वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के दो मास पूर्व ही बनानी आरम्भ कर देनी चाहिये और वर्षा समाप्त हो जाने के पश्चात् इस पर और तृण डालकर इसे 15–20 सेमी मोटी कर लेनी चाहिये जाडे-भर बिछाली की मोटाई इतनी ही रहनी चाहिये, किन्तु ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतुओ मे इसे कम करके 8–10 सेमी मोटी कर देनी चाहिये उत्तम परिणामो के लिये बिछाली को सूखा रखना अनिवार्य है बिछाली हिलाते-डुलाते रहने से भी उसके सूखने तथा नाशक जन्तुओ से रहित बनाने मे सहायता मिलती है

गहन बिछाली वाले पालन-गृह मे अधिक सख्या मे पक्षी नही होने चाहिये 100 पक्षियो के एक सग्रह मे प्रति पक्षी न्यूनतम स्थान हल्की नस्ल के लिये 28 वसेमी तथा भारी नस्लो के पक्षी के लिये 32 वसेमी होना चाहिये बिछाली-घर मे प्रकाश तथा ताजी वायु आने का पर्याप्त प्रबन्ध होना चाहिये पक्षी आराम से रहे इसलिये इस घर को चारो ओर से खुला रहना चाहिये और भूमि से 60–75 सेमी की ऊँचाई तक तार की जाली से ढका होना चाहिये अधिक शीत होने पर पक्षियो को गर्म रखने के लिये इन खुले स्थानो को टाट अथवा किरमिच तान कर ढक दिया जाता है

वडे शहरो मे स्थानाभाव होने के कारण अण्डा देने वाली बैटरियो का उपयोग किया जाता है अण्डा देने वाली बैटरी मे छोटे-छोटे पिंजडो की एक शृखला रहती है जो पक्तिवद्ध एक दूसरे के ऊपर रखे होते है ये पिंजडे प्राय धातु के चौखटो तथा तार की जाली से बनाये जाते है प्रत्येक पिंजडे मे एक अण्डा देने वाली मुर्गी पूरे एक दिन और रात के लिये बन्द कर दी जाती है पिंजडो को एक शृखला मे एक चौखटे मे 7 पिंजडे तक पक्तिवद्ध रखते है पिंजडे के तल मे मजबूत तार की जाली (2 5 सेमी) लगी रहती है जो मुर्गी के भार को सहन कर सके तल एक ओर ढालू तथा ऐसा घुमावदार बना रहता है जिससे इसमे अण्डा आते ही नीचे की ओर लुढक जाये पक्षियो की बीट इकट्ठी करने के लिये चौखटे मे एक धातु की बनी ट्रे लगी रहती है आहार तथा जल के लिये पिंजडो के सामने की ओर समस्त लोहे की छडो पर द्रोणिकाये रखी जाती है ये प्रत्येक पिंजडे मे अलग-अलग अथवा 3–4 पिंजडो के बीच लगायी जाती है इन्हे सफाई के लिये आसानी से निकाला जा सकता है

कुक्कुट-पालन घरो के विविध प्रकार के डिजाइन प्राप्त है कुक्कुट पालक अपनी आवश्यकताओ, कुक्कुटो की सख्या, स्थानीय जलवायु तथा सामान की स्थानीय सुलभता को देखते हुये मुर्गी-घर की योजना बनाता है पालन घरो का उचित स्थान पर होना अत्यन्त आवश्यक होता है इन्हे रोशनीदार तथा हवादार भी होना चाहिये पक्षियो को गर्मी, वर्षा, आर्द्रता, सूखा तथा ठण्डक से बचाने के लिये इन पर छत भी होनी चाहिये कुक्कुटादि के अण्डे देने तथा प्रजनन का प्राकृतिक समय वसन्त ऋतु है इसलिये कुक्कुट-पालन घर की योजना बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसमे पक्षियो को सदैव वसन्त ऋतु जैसा वातावरण मिलता रहे साधारणत अच्छे आकार के अण्डे पाने के लिये मुर्गियो को 13–24° का ताप उत्तम और सुखकर होता है ताप के बढने के साथ ही अण्डा माप मे छोटा होता जाता है, और खोल पतली होने के साथ-साथ अण्डो का उत्पादन घटता जाता है केवल पहाडी क्षेत्र ही ऐसे है जहाँ का ताप इतना निम्न हो जाता है कि पक्षियो की रक्षा के लिये विशेष प्रकार के घर बनाने पडते है अन्यथा देश के अधिकाश भागो मे पक्षियो को गर्मी के उच्च ताप से बचाने के लिये ही घर बनाये जाते है कुक्कुट-पालन घर की योजना बनाते समय यह बात विचारणीय होती है

देहातो मे कुक्कुट-पालन घर बाँस की पट्टियो, टाट के टुकडो, वृक्षो तथा झाडियो की टहनियो, सूखी घास आदि से बनाये जाते है ऐसे पालन घरो मे थोडे ही पक्षी रखे जाते है जो दिन के समय खुले छोड दिये जाते है 100 अण्डे देने वाली मुर्गियो अथवा 250 दिन की आयु के चूजो के लिये उचित पालन-घर 7 3 मी लम्बा, 4 5 मी चौडा, बीच मे 3 0 मी तथा किनारो पर 2 1 मी ऊँचा होना चाहिये पालन-घर की भूमि ढालू होनी चाहिये, खम्भो पर खडी छप्पर की छत 20–23 सेमी मोटी तथा चारो ओर ढालू होनी चाहिये इनके लिये तिकोनी छते भारतीय जलवायु के अनुकूल तथा उपयुक्त होती है सेने के लिये भी इस प्रकार के घर उपयुक्त होते हैं किन्तु इन्हे अण्डे देने वाले घरो से 30 5 मी की दूरी पर बनाना अच्छा रहता है

कुक्कुट-पालन गृहो मे अड्डे, दरबे, आहार टोकरियाँ, जल व्यवस्था, और ककडी तथा खोल आधान होने चाहिये साधारणत प्रति पक्षी 20–23 सेमी अड्डे का स्थान दिया जाना चाहिये अड्डे इतने बडे होने चाहिये कि पक्षी उन पर सुविधा से बसेरा ले सके ये अड्डे मोटे, लकडी के अथवा बाँस की 50 मिमी तक मोटी फडो के होने चाहिये मुर्गियो को अण्डे देने के लिये बक्से (30 5×45 7 सेमी) भी होने चाहिये जालीदार होने से दरबो मे प्रत्येक पक्षी के द्वारा दिये गये अण्डो का पता चल जाता है

आहार-नादो अथवा टोकरियो को भी इस प्रकार का बना होना चाहिये कि पक्षी आहार नष्ट न कर सके साधारणत.

आजकल चूजो तथा अण्डे देने वाली मुर्गियो को सूखा दलिया देने की प्रथा है यह आहार इस प्रकार रखा जाता है कि सदा साफ और सूखा रहे तथा पक्षियो के लिये हर समय सुलभ भी हो और नुकसान भी कम से कम हो ऐसे सम्भरक जिनमें टोकरियो से आहार, नालियो मे यन्त्रवत आ जाता है अब बहुत ही सामान्य हो चुके हैं इनमें श्रम की काफी बचत होती है चूजो तथा वयस्क पक्षियो के लिये पृथक-पृथक सम्भरको की आवश्यकता होती है ग्रामीण क्षेत्रो मे बाँस अथवा लकडी के बने साधारण नाँद काम मे लाये जाते हैं ये श्रेष्ठतर तथा काफी किफायती भी होते हैं क्योंकि पक्षी इनके दोनो ओर खडे होकर आहार ले सकते हैं कम अपव्यय के कारण लटके हुये सम्भरक अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं

पक्षियो को पानी आदि पिलाने के लिये अनेक प्रकार के पात्र प्रयोग मे लाये जाते हैं ये आधान फव्वारे के रूप मे अथवा ढक्कनदार हो सकते हैं.

आहार एव चुगान।

भारत मे कुक्कुटो को अपना पेट भरने के लिये खुला छोड दिया जाता है किन्तु पक्षियो की मास तथा अण्डा उत्पादन क्षमता बढाने के लिये इनको उचित रीति से चुगाना तथा इनका प्रबन्ध आवश्यक हो जाता है आहार सब से ज्यादा महँगी सामग्री है कुक्कुट-पालन पर आने वाली कुल लागत का लगभग आधे मे ज्यादा (60–70%) केवल आहार पर ही आता है इसलिये आहार के चुनाव में सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है पक्षियो को तेजी से बढने के लिये जो आहार दिया जाता है वह अण्डा उत्पादन अथवा उन्हें मोटा करने के लिये दिये जाने वाले आहार से भिन्न होता है

कुक्कुटो को दिये जाने वाले आहार मे मुख्यतया अन्न, अन्न के उपोत्पाद, जन्तु तथा वनस्पति स्रोत के अन्य उपोत्पाद तथा हरे चारे सम्मिलित होते हैं प्रोटीन आहार, विशेषतया जन्तु प्रोटीन, महँगे होते है, किन्तु पक्षियो को जन्तु तथा वनस्पति प्रोटीनो का मिश्रण खिलाने से ही सन्तोषजनक अण्डा-उत्पादन सम्भव है

कुक्कुट आहार के आवश्यक पोषक है जल, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, कैल्सियम, फॉस्फोरस और मैंगनीज खनिज तथा विटामिन सतुलित आहार में ये सभी पोषक उचित अनुपात में रहते हैं समुचित वृद्धि तथा अण्डों के उत्पादन के लिये सन्तुलित आहार अनिवार्य है. चूजो तथा अण्डा देने वाली मुर्गियो के किफायत से पालन के लिये आहार का अच्छी तरह से प्रयोग करना आवश्यक है बढते हुये चूजों के लिये प्रोटीन की तो आवश्यकता अधिक रहती है किन्तु कैल्सियम तथा फॉस्फोरस की आवश्यकता उन्हे अण्डे देने वाली मुर्गियो की अपेक्षा कम रहती है बढते हुये चूजो के आहार मे अण्डे देने वाली मुर्गियों की अपेक्षा फॉस्फोरस का कैल्सियम से अनुपात अधिक होना चाहिये अण्डे देने वाली मुर्गियो को बढते हुये चूजों की तुलना मे विटामिन ए और डी तो अधिक मात्रा मे किन्तु राइबोफ्लेविन कम मात्रा मे आवश्यक होता है अन्धेरे बन्द स्थानो पर पाली जाने वाली मुर्गियो को मुक्त विचरने वाली मुर्गियो की अपेक्षा अधिक विटामिन डी की आवश्यकता होती है उन मुर्गियो को जिनके अण्डो से बच्चे लेने होते है, ऐसी मुर्गियो की अपेक्षा जिनसे खाने के लिये अण्डे लेने होते है, विटामिन डी तथा राइबोफ्लेविन की अधिक मात्रा आवश्यक होती है बहुत ही किफायती उत्पादनो के लिये पक्षियो को अनेक खाद्य पदार्थो से बने सन्तुलित आहार देना आवश्यक है जिसमे सभी पोषक तत्व उचित अनुपात में हो अनाज की स्थानीय सुलभता तथा उसके मूल्यो को देखते हुये मुर्गियो के लिये सन्तुलित आहार तैयार किया जाता है

कुक्कुटादि को अन्नो से प्रचुर मात्रा मे कार्बोहाइड्रेट तथा वसा उपलब्ध हो जाती है खली, सडे गले मास, मछली और अस्थि तथा रक्त-चूर्ण से प्रोटीन प्राप्त हो जाता है चूना-पत्थर तथा शुक्ति कवचो से कुक्कुट आहार की कैल्सियम तथा फॉस्फोरस की आवश्यकता-पूर्ति हो जाती है कुक्कुट आहार मे 1% तक साधारण नमक मिला देना चाहिये कुक्कुटो के लिये कोमल घास, बरसीम, लूसर्न घास, बन्द गोभी, सलाद, गाजर तथा प्याज जैसे हरे चारे भी आवश्यक है इन्हे महीन काटकर तथा पकाकर देना चाहिये

सन्तुलित आहार की गणना के लिये इनमे विभिन्न खाद्य पदार्थो के सघटन ज्ञात होने चाहिये सारणी 124 मे कुक्कुट आहारो के औसत सघटन दिये गये है

कुक्कुटो को चुगाने की अनेक विधियाँ प्रचलित है इनके नाम है केवल दाना, केवल छीलन, दाना तथा दलिया, केवल दलिया, भिगोया दलिया तथा गोलियाँ बढते हुये चूजो तथा अण्डे देने वाली मुर्गियो के लिये दाना तथा दलिया आहार की विधि अत्यन्त लोकप्रिय है टोकरियो मे डालकर खिलाने के लिये छीलन तथा दलिया विधि उत्तम है क्योकि इस प्रकार बहुत कम व्यय होता है बढते हुये चूजो को प्रथम दो सप्ताह तक केवल दलिया का आहार दिया जाता है जैसे ही ये कुछ बडे हो जाते है, इनके आहार मे दाने की मात्रा बढा दी जाती है दाना-दलिया विधि में पक्षी इच्छानुसार दाना अथवा दलिया मिश्रण ले सकता है चूजो को प्रारम्भिक अवस्था मे यह नही दिया जाता हाँ, अण्डे देने वाले तथा प्रजनक पक्षियो को यह पूर्ण आहार की तरह दिया जाता है 20% प्रोटीनयुक्त दलिया के और दाने के 50 : 50 अनुपात के मिश्रण की सस्तुति की जाती है इस मिश्रण मे उचित मात्रा मे विटामिन तथा खनिज मिलाकर बढते हुये चूजो, अण्डे देने वाली मुर्गियो तथा प्रजनक पक्षियो को खिलाया जा सकता है किन्तु दाना और दलिया के अनुपात मे इतनी आसानी से सन्तुलन नही लाया जा सकता

व्यापारिक पैमाने पर पालन-घरो मे कुक्कुटो का आहार केवल दलिया के रूप मे ही देने की आधुनिक विधि अपनायी जाती है इस विधि मे अनाज को साबुत और अलग से खिलाने के बजाय पीसकर दलिये के साथ मिलाकर दिया जाता है इस केवल दलिया वाली विधि मे अनाज को बहुत बारीक पीसना पडता है अण्डे देने वाले तथा बैटरियो मे मास के लिये पाले जाने वाले पक्षियो के लिये केवल दलिया एक आदर्श आहार है यह चूजो को प्रारम्भिक अवस्थाओ में भी खिलाया जा सकता है

भारत मे कुछ मुर्गी-पालको ने कुक्कुटो को आहार देने की गुटिका (गोली) विधि भी अपनायी है इस विधि मे सूखे दलिया के मिश्रण को उच्च दाब पर विभिन्न आकार की आहार गोलियो मे बदला जाता है इन गोलियो का आकार खिलाये जाने वाले पक्षियो की आयु के अनुसार छोटा-बडा बनाया जा सकता है छोटे कुक्कुट-पालको के लिये आहार की यह विधि सुविधाजनक होती है

किसी भी मुर्गी-पालक के समक्ष सबसे विशेष बात यही रहती है कि पक्षियो मे ऐच्छिक भार वृद्धि के लिये उन्हे वह कितनी मात्रा मे आहार दे आहार चाहे पूर्ण सन्तुलित क्यो न हो किन्तु यदि

सारणी 124 – विभिन्न कुक्कुट खाद्यो का औसत सघटन (%)*

खाद्य पदार्थ	कुल शुष्क पदार्थ	प्रोटीन	वसा	अपरिष्कृत तन्तु	नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष	खनिज पदार्थ	कैल्सियम	फॉस्फोरस	कुल पचनीय पोषक
वाजरा	90.0	9.8	4.6	10.0	72.6	3.0	0.14	0.93	54.3
जौ	91.9	9.3	2.7	6.2	71.1	2.5	0.23	0.78	70.8
रक्त-चूर्ण	91.2	82.2	1.2	1.3	2.7	3.8	0.33	0.26	75.9
अस्थि चूर्ण	96.4	7.1	3.3	0.8	3.9	81.3	32.61	15.17	
मछली चूर्ण	92.4	58.7	7.9	0.9	4.1	20.7	7.52	6.82	67.6
कूडा-कचरा	39.3	6.0	7.2	1.1	22.2	2.8			34.6
चना	91.9	18.0	4.5	6.9	60.1	2.4	0.40	0.90	79.0
मूँगफली की खली	93.8	37.6	6.1	15.2	29.5	5.4	0.21	0.99	79.1
ज्वार	90.4	13.8	2.3		71.9	2.5	0.11	0.77	73.7
तीसी की खली	94.4	28.9	4.2	9.1	42.8	9.4	0.69	1.62	82.6
मक्का	91.9	9.7	3.0	2.0	75.5	1.7	0.06	0.84	70.5
मक्के का ग्लूटेन	90.5	26.4	2.4	7.1	48.4	6.1	0.20	1.26	77.4
मांस की रद्दी	93.7	55.0	10.7	2.2	1.2	24.1	12.18	9.85	73.8
शीरा, ईख का	75.4	0.7			70.1	4.6	0.90	0.10	69.5
जई	90.5	8.7	6.0		71.0	5.4	0.28	0.73	71.7
मटर	90.5	23.8	1.2	6.2	56.2	3.1	0.10	0.92	79.6
चावल	87.5	8.3	1.8	8.8	64.7	5.0		0.48	59.1
धान की भूसी	87.5	12.3	17.6	12.3	31.4	13.9	0.19	5.45	62.9
मखनियाँ दूध	9.6	3.7	0.1		5.0	0.8	0.22	0.27	8.6
सोयावीन चूर्ण	91.7	44.5	3.7	3.6	30.3	5.7	0.39	1.51	82.2
सूर्यमुखी के वीज	63.3	18.0	25.7	28.1	14.2	7.3	0.50	1.26	89.2
गेहूँ	91.5	9.6	1.7	1.7	76.8	1.7	0.19	0.70	84.0
गेहूँ का चोकर	89.0	11.5	4.4	12.2	54.1	6.8	0.23	2.0	70.8

*Naidu, 176

अपर्याप्त हो तो इससे पक्षियो की वृद्धि देर से होती है. इसलिये पक्षी विशेष की वृद्धि अवस्था को देखते हुये उसके लिये आहार की कोटि तथा मात्रा निर्धारित करनी चाहिये

नर पक्षियो मे मादा की अपेक्षा वृद्धि तेजी से होती है और इनको आहार भी अधिक चाहिये इसी प्रकार दुकाजी नस्ले जैसे रोड आइलैण्ड रेड तथा प्लाइमाउथ रॉक के चूजे, अण्डजनक नस्ले जैसे लेगहार्न के चूजो की अपेक्षा तेजी से वढती है और अधिक आहार भी लेती है विशुद्ध नस्लो के चूजो की अपेक्षा सकर नस्लो के चूजो मे प्रारम्भिक 10–12 सप्ताहो मे वृद्धि की दर तेज होती है खुले स्थानो की अपेक्षा चूजे वन्द स्थानो मे तेजी से वढते हैं पहले 2 मे 6 सप्ताह तक पक्षियो का भार लगभग दुगना हो जाता है किन्तु इसके वाद अधिक आहार चुगने के वावजूद भी इनके भार मे प्रतिशत वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है

पक्षियो मे वृद्धि दर कम से कम चार कारणो पर निर्भर करती है ये हैं नस्ल विशेष का औसत, वशानुगत आकार, इनकी दैनिक आहार की कोटि और मात्रा, आहार मे प्रोटीन की मात्रा तथा प्रवन्ध की विधियाँ

पक्षियो की आहार पद्धति इनकी आयु के अनुसार तथा अण्डो के अधिकतम उत्पादन के लिये इनकी विभिन्न श्रेणियो के अनुसार परिवर्तित होती रहती है

अण्डो से निकलने के वाद 36 घण्टो तक छोटे चूजो को किसी भी प्रकार के आहार की आवश्यकता नही होती इस समय तक ये अण्डे मे प्राप्य खाद्यो पर जीवित रहते है अण्डे देने वाले वढते चूजो के लिये उचित आहार निम्नलिखित पदार्थो को (भार के अनुसार भाग) मिला करके वनाया जाता है पीली मक्का अथवा अन्य कोई अनाज, 28, चावल की पालिश, 26, जौ अथवा जई, 7, गेहूँ की भूसी, 7, मूगफली की खली का चूरा, 16, मक्के का चूर्णित चोकर, 5, भपाई मछलियो का चूरा, 5, मास का कचरा, 3, अस्थि-चूर्ण, 1, कैल्सियम, 1.5 तथा साधारण नमक, 0.5 इस मिश्रण के पूरक के रूप मे इसमे निम्नलिखित अवयव भी (ग्रा/100 किग्रा) मिलाये जाते है विटामिन ए, 2.2, विटामिन वी$_2$ 0.5, विटामिन डी$_3$, 0.3, तथा मैंगनीज सल्फेट, 22 एक सप्ताह की आयु का हो जाने पर पक्षियो को हरा चारा पर्याप्त मात्रा मे दिया जाता है

अण्डे देने वाले पक्षियो को दलिया-आहार देना चाहिये जिसमे अन्य पदार्थ (भार के अनुसार भाग) इस प्रकार हो पीली मक्का

अथवा अन्य अनाज या अनाज मिश्रण 30, चावल की पालिश, 20, जौ अथवा जई, 10, गेहूँ की भूसी, 10, मूगफली की खली का चूरा, 15, मक्के का चोकर, 4 5, भपाई मछलियो का चूरा 1, कैल्शियम चूर्ण, 2, तथा साधारण नमक, 0 5 इसमे पूरक के रूप मे जो अवयव मिलाये जाते हैं वे इस प्रकार हैं (ग्रा /100 किग्रा.) विटामिन ए, 4 4, विटामिन बी$_2$, 0 5, विटामिन डी$_3$, 0 6 तथा मैंगनीज सल्फेट, 22 इनके अतिरिक्त पक्षियो को हरा आहार भी पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त होना चाहिये प्रत्येक पक्षी का दैनिक औसत आहार 112–126 ग्रा तक होना चाहिये

मास के लिये पाली जाने वाली मुर्गियो को निम्नलिखित पदार्थो के मिश्रण से बने (भार के अनुसार भाग) आहार की उचित खुराक दी जानी चाहिये पीली मक्का अथवा अन्य अनाज, 20, चावल की पालिश, 28, जौ अथवा जई, 7, गेहूँ की भूसी, 7, मूगफली की खली का चूरा, 20, मक्के का चोकर, 5, भपाई मछलियो का चूरा. 7, मास का चूर्ण, 3, अस्थि-चूर्ण, 1, कैल्सियम चूर्ण 1 5, तथा साधारण नमक, 0 5 इसमे निम्नलिखित अवयव पूरक के रूप मे मिलाये जाते हैं (ग्रा ,100 किग्रा) विटामिन ए, 2 2, विटामिन बी$_2$, 0 5, विटामिन डी$_3$ 0 3 तथा मैंगनीज सल्फेट 22 जब मुर्गियाँ एक सप्ताह की हो जाये तो उन्हे पर्याप्त मात्रा मे हरा चारा देना चाहिये

हल्की नस्लो के चूजो की अपेक्षा भारी नस्लो के चूजो को अधिक आहार की आवश्यकता होती है 4 सप्ताह तक की आयु के 100 चूजो के लिये प्रतिदिन औसतन 5 6 किग्रा आहार-मिश्रण (चुग्गे) की आवश्यकता होती है और 20 से 24 सप्ताह की आयु के चूजो के लिये 9 किग्रा कुक्कुट आहार के लिये दानेदार दलिया बारीक पिसे मिश्रण की अपेक्षा अच्छा माना जाता है

विकासशील देशो मे कुक्कुट आहार के विभिन्न पहलुओ पर व्यापक अनुसधान किये जा चुके हैं किन्तु भारत मे इस दिशा मे विशेष कार्य नही हुआ इस देश की जलवायु मे इतनी परिवर्तनशीलता पायी जाती है कि इसमें कुक्कुटो के आहार की खपत पर भी प्रभाव पडता है और इसमे भी परिवर्तन होता रहता है ग्रीष्म तथा वर्षा-पूर्व उष्ण-आर्द्र ऋतु मे पक्षियो की खुराक बहुत कम हो जाती है गर्मी की ऋतु के कारण स्थिर स्तरीय ऊर्जा के लिये कुक्कुटो की प्रोटीन की आवश्यकता 2% तक बढ सकती है गर्मी की ऋतु मे विटामिनो की भी अधिक जरूरत पडती है यहाँ तक कि गर्मी के प्रभाव को कम करने के लिये इनके आहार मे विटामिन-सी भी मिलाया जाता है

कुक्कुटो के विकास के विभिन्न पहलुओ को ध्यान मे रखते हुये भारतीय मानक सस्थान ने सभी प्रकार के कुक्कुटो (नये चूजे बढते चूजे तथा अण्डा देने वाले पक्षी) की आवश्यकतानुसार आदर्श आहार की मात्रा निश्चित कर दी है (IS 4018–1967, 1374–1968) सारणी 125 मे नवजात तथा बढते हुये चूजो और अण्डे देने वाले पक्षियो के आदर्श आहार की मात्रा दी गयी है कुक्कुटो के लिये पोषको की आवश्यकता के निश्चित मानक ऐसे होने चाहिये कि वे उष्णकटिबन्धीय तथा उपोष्ण क्षेत्रो मे प्रभावित करने वाले अधिकाश कारको का निराकरण कर सके काक्सिडिओसिस तथा ऐस्केरिएसिस रोगो से पीडित चूजो मे विटामिन ए की आवश्यकता बढ जाती है विश्व के कुक्कुट-पालन विज्ञान सस्थान की अन्तर्राष्ट्रीय समिति ने कुक्कुटो की पोषक आवश्यकताओं की सस्तुति की है मुर्गियो, टर्कियो तथा बत्तखो के सम्पूर्ण आहार मे सूक्ष्म पोषको की कसौटी निर्धारित कर ली गयी है (*Wld Poul Sci J*, 1967, 23, 47)

सारणी 125 – कुक्कुट आहार के भारतीय मानक विनिर्देश*

(%, शुष्क आधार पर)

रचक	नवजात कुक्कुट	बढनेवाले कुक्कुट	अण्डा देनेवाले कुक्कुट
आर्द्रता (अधिकतम)	10 0	10 0	10 0
अपरिष्कृत प्रोटीन	20 0-25 0	18 0-23 0	15 0-20 0
अपरिष्कृत वसा या ईथर निष्कर्ष (न्यूनतम)	3 0	3 0	3 0
अपरिष्कृत तन्तु (अधिकतम)	7 0	8 0	10 0
अम्ल अविलेय राख (अधिकतम)	1 0-1 3	1 0-1 3	2 0-2 3
फास्फोरस (न्यूनतम)	0 45	0 45	0 45

*IS 4018-1967, 1374-1968

भारतीय दशाओ मे नवजात चूजो, बढते पठोरो, अण्डे देने वाली तथा प्रजनन करने वाली मुर्गियो और मास प्रदायक पक्षियो के लिये कैलोरी, प्रोटीन और ऐमीनो अम्लो की आवश्यक मात्राओ का निश्चयन किया जा चुका है (Scott, *Feed Formulations for India*, All India Association of Poultry Industry, 68–063–15, 1968)

सतुलन के लिये कुछ अनाज मिलाकर विशेष सान्द्र-आहार भी बनाये जा सकते हैं यदि कही सस्ते अनाज उपलब्ध हो तो सान्द्र आहारो मे चुग्गे का मूल्य काफी कम हो जाता है इन सान्द्रो के कारण छोटे चुग्गा मिश्रको को मिश्रण बनाने के लिये अपेक्षाकृत कम अवयवो का भण्डारन करते हुये भी सभी अनिवार्य पोषक तत्व मिल जायेंगे बढते चूजो तथा अण्डे देने वाले पक्षियो के लिये सान्द्र-आहार का सघटन इस प्रकार होता है गेहूँ की भूसी, 7, मूगफली की खली, 30, तिल की खली, 30, मास का चूर्ण, 12, चूना, 8, अस्थि-चूर्ण, 4, शीरा, 5, विटामिन तथा खनिज, 4% विटामिनो तथा खनिजो का अलग से मिश्रण बनाकर शेष चुग्गे मे मिला दिया जाता है इस सान्द्र-आहार को चुग्गे मे 25% तक ही सीमित रखा जाता है अर्थात् पक्षी आहार मे अनाज तथा सान्द्र-आहार 1 3 के अनुपात मे होने चाहिये इस प्रकार तैयार किये गये आहार मे प्रोटीन की मात्रा 15% तक होनी चाहिये

विटामिनो और खनिजो के अतिरिक्त आहार मे पेनिसिलिन, आरिओमाइसिन, टेरामाइसिन, बेसिट्रैसिन आदि जैसे प्रतिजैविक भी मिलाये जा सकते हैं कहा जाता है कि प्रतिजैविक मुर्गियो और टर्कियो मे वृद्धि को प्रेरित करते हैं मास उत्पादन के लिये सम्पूर्ण वृद्धि-काल मे प्रतिजैविक खिलाना अच्छा रहता है यदि आहार मे प्रति करोड अश पीछे 20 अश प्रतिजैविक उपस्थित रहे तो पक्षी की आहार-मात्रा मे वृद्धि होती है तथा यह मात्रा वृद्धि-प्रेरण के लिये पर्याप्त होती है आहार मे सूखा गोबर (1–2%) मिला देने से इसकी विटामिन बी$_{12}$ की आवश्यकता पूरी हो जाती है

यद्यपि भारत में कुक्कुट-पालन उद्योग ने पिछले दशक मे काफी प्रगति की है किन्तु कुक्कुट आहार उद्योग उससे होड नही ले सका है 1964, 1965, 1966 तथा 1967 में सयुक्त कुक्कुट आहार

का उत्पादन क्रमश 14 4, 28 4, 39 2 तथा 42 6 हजार टन हुआ अनुमान है कि पक्षियों के लिये प्रतिवर्ष 1 करोड 2 लाख टन सयुक्त आहार की आवश्यकता होगी जबकि 1968 का अनुमानित उत्पादन 48,000 टन था जो माँग से कही कम था

भारत मे पहला कुक्कुट आहार सयत्र 1960 मे स्थापित किया गया इस समय बडे-बडे शहरो मे छोटे स्तर पर कुक्कुट आहार उत्पादन केन्द्रो के अतिरिक्त सुव्यवस्थित ढग मे 25 सयन्त्र चालू है इनके अतिरिक्त देश मे राज्य सरकारो, सहकारी समितियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं (यू एन आइ सी ई. एफ और एफ ए ओ) द्वारा सचालित कुक्कुट आहार मिश्रण बनाने के अनेक सयन्त्र है सगठित इकाइयो मे कुक्कुट आहार तैयार करने के लिये पूर्णतया आधुनिक उपकरण तथा उसके कच्चे माल और सयोजित मिश्रण के कोटि नियन्त्रण की उत्तम सुविधाये है असगठित क्षेत्रो मे कुक्कुट तथा पशु आहार तैयार करने वाले सयन्त्रों की प्रतिस्थापित उत्पादन क्षमता प्रतिवर्ष 4,08,000 टन है भविष्य मे विस्तार योजनाओं के लागू हो जाने पर इस उद्योग की उत्पादन-क्षमता 5,00 000 टन वार्षिक मे भी अधिक हो जाने की सम्भावना है (विस्तृत विवरण के लिये देखे—Processed Feeds, With India—Industrial Products, pt VII, *Annu Rep Compnd Livestk, Manufrs Ass India*, 1967)

कुक्कुट आहार मे मिलाये जाने वाले कच्चे माल इस प्रकार है बाजरा (**पेनिसिटम टाइफायडीज**) के दाने अथवा बीज, जौ (**हॉर्डियम वल्गेर**), काला चना (**फेसिओलस मुगो**), चीना (**पेनिकम मिलिएसियम**), कुलथी (**डालिकास बाइफ्लोरस**), ज्वार (**सोर्घम वल्गेर**), जई (**ऐवेना स्टेरिलिस**), पनेवर (**कैसिआ टोरा**), रागी (**एल्यूसाइनी कोराकाना**), पीली मक्का (**जिया मेज**) तथा साल (**शोरिया रोबस्टा**), खलियाँ या चूर्ण, खोपडा, बिनौला (छीला हुआ अथवा छिलकोसहित), मूगफली (सपीडक अथवा विलायक निष्कर्षित), ग्वार, मक्का अकुर, सरसो, कुसुम्भ, तिल और सोयाबीन, जन्तु उत्पाद जैसे रक्त का चूर्ण, मछली चूर्ण, यकृत अवशेष, मास-चूर्ण, मास की सीठी, खनिज पूरक जैसे अस्थि-चूर्ण (वाष्पित), डाइकैल्सियम फॉस्फेट, चूना, शुक्तिकवच, मैंगनीज सल्फेट तथा साधारण नमक, विटामिन (खनिज-स्थायीकृत) और जीवाणु-नाशक कुक्कुट आहार मिश्रण बनाने के काम आने वाले कुछ कच्चे मालो का अनुमानित सघटन सारणी 124 मे दिया गया है

ऐसे चुग्गे (कुक्कुट आहार) ज्यादा पसन्द किये जाते है जिनमे अनाजो के प्रतिस्थापी प्रयुक्त हो इसलिये अनाजो के अनेक प्रतिस्थापी पदार्थो का विकास किया गया है चावल की पालिश, निष्कर्षित धान का चोकर, आम की गुठली की बीजी, टैपिओका का आटा और रेशम-कीट प्यूपे (निष्कर्षित अथवा अनिष्कर्षित) प्रयोग किये जाने वाले कुछ प्रतिस्थापी पदार्थ है शीरा, गेहूँ का चोकर तथा खराब हुये अन्न कुछ ऐसे ऊर्जा-बहुल अवयव है जो आहार-उत्पादको को सरकार की ओर से मिल जाते है साल के बीज भी कुक्कुट आहार के उपयुक्त पाये गये है उडीसा सरकार ने इस जगली उत्पाद को कुक्कुट आहार के लिये बडे पैमाने पर उपयोग मे लाने के लिये कदम उठाये है केरल मे कुक्कुटो को मक्का के स्थान पर टैपिओका के टुकडे खिलाये जाते है मैसूर मे रेशम उद्योग मे प्राप्त उपोत्पाद के रूप मे रेशम-कीट के प्यूपे भी कुक्कुटो को आहार के रूप मे दिये जाते है ये प्यूपे पशु-प्रोटीन मे परिपूर्ण है और रेशम-उत्पादको के लिये अतिरिक्त आय के स्रोत बन गये है बूचडखानो के उपोत्पाद, जैसे रक्त आदि भी कुक्कुट आहार के सम्भावित स्रोत है किन्तु इनका सचयन तथा उपयोग बूचडखानो की सुधार योजनाओ से जुडा हुआ है कुक्कुट आहार के प्रतिस्थापियो के विकास के लिये इज्जतनगर, लुधियाना (पजाब), हैदराबाद, कटक (उडीसा) और पूना (महाराष्ट्र) के पोषण अनुसधान केन्द्रो मे अनुसधान कार्य किया जा रहा है इन उपोत्पादो को कुक्कुट आहार के लिये प्रयुक्त करके अण्डा उत्पादन के व्यय मे 30% तक कमी लायी जा सकी है यही नही, कुछ पक्षियो में अन्नरहित आहार देने से 30% मक्कायुक्त मान्य राशन की अपेक्षा अच्छी वृद्धि देखी गयी है

सारणी 126 – 1961 में भारत में कुक्कुटो के लिये उपजात आहारो का औसत उत्पादन*

(मात्रा हजार टन मे)

आहार	मात्रा	आहार	मात्रा
खोपरे की खली	120	मूँगफली की खली	1,450
गेहूँ का चोकर	500	मास का चूर्ण	24
जन्तु वसा	34	रक्त	50
टैपिओका अवशेष	900	रेशम के कोड़े के प्यूपे (सूखे)	5
तिल की खली	137		
तीसी की खली	242	शीरा	10,000
धान का चोकर	3,000	सरसो की खली	500
बिनौले की खली	248	साल के बीज	100

*Winter, April, 1967, 30

भारत मे 1961 मे कुक्कुटो के उपोत्पादो से तैयार आहार-सामग्रियों का अनुमानित उत्पादन सारणी 126 मे दिया गया है

प्रजनन

वैज्ञानिक विधियो के द्वारा कुक्कुटो मे प्रजनन कार्य अर्वाचीन चलन है जो घरेलू देशी मुर्गियो की नस्ल सुधार से सम्बन्धित है इसका लक्ष्य अनुकूल परिस्थितियो के अन्तर्गत तथा प्रजनन की उन्नत विधियों द्वारा क्रमागत पीढियो मे पक्षियो में आनुवशिक सुधार लाना है

स्थानीय परिस्थितियो और बाजार माँग को देखते हुये सफल कुक्कुट-पालन के लिये कुक्कुटो की समुचित नस्ल के चुनाव मे अत्यन्त सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है मुर्गियो की विशिष्ट नस्लो के तथा विभेदो के विकास हो जाने के कारण प्रजनन के लिये उचित किस्म की मुर्गियो का चुनाव आवश्यक हो गया है इस प्रकार **ह्वाइट लेगहार्न** तथा **लाइट ससेक्स** नस्ले अण्डा उत्पादन के लिये और **रोड आइलैण्ड रेड** नस्ल अण्डा और मास दोनो के उत्पादन के लिये उपयुक्त है

वशावलियाँ तैयार करना कुक्कुट-पालन का एक महत्वपूर्ण अग होता है प्रजनन तथा सगम के ययोचित अभिलेखो को तैयार करने मे पक्षियों मे समोन्नति की पूर्वज परम्परा की जानकारी, पक्षियो की प्रजनन-क्षमता का ज्ञान तथा इच्छित गुणो वाले पक्षी कुल को तैयार करना सम्भव हो पाता है पक्षियों मे नस्ल, कुल, ऋतु तथा नर पक्षियों की आयु और अवस्था के आधार पर अनेक विधियो से सगम कराया जाता है जिनमे बाडा-संगम, झुण्ड-सगम,

विशिष्ट-सगम तथा एकान्तर नर सगम मुख्य हैं पिछले कुछ वर्षो मे मुर्गियो मे कृत्रिम वीर्यसेचन के प्रयोग भी हुये है और यह विधि अनेक मुर्गियो मे-विशेषकर बैटरी पद्धति मे पाली जाने वाली मुर्गियो को प्रमाणित मुर्गे द्वारा सगम कराने मे सफल हुयी है प्रजनन के लिये कम से कम 10 मास की आयु के पठोरो को चुनना चाहिये

झुण्डो के सुधार के लिये अन्त प्रजनन, बाह्य-सकरण, सकरण तथा श्रेणीकरण जैसी प्रजनन की विभिन्न प्रणालियाँ अपनायी जाती है

अन्त प्रजनन अथवा निकट-प्रजनन मे निकट सम्बन्धी पक्षियो मे सगम करवाया जाता है एक स्टाक मे सदा इसी प्रणाली को लगातार अपनाते रहने मे पक्षियो मे अण्डा देने, अण्डा सेने, वृद्धि की दर और उनकी जीवन क्षमता मे कमी आ जाती है

परस्पर सम्बद्ध पक्षियो मे तथा उनकी सतति मे कुछ इच्छित पक्षियो की पुनरावृत्ति के लिये व्यवस्थित प्रजनन पारम्परिक प्रजनन कहलाता है उत्तरोत्तर पक्षियो के मादा पक्षियो से एक ही नर द्वारा सगम करा कर उत्पन्न की गयी सन्तानो मे ज्ञात गुणो को स्थापित कर पाना सम्भव होता है यदि इसे उचित ढग से चालू किया जाय तो पारम्परिक प्रजनन के द्वारा प्रजनक को काफी अण्डे देने वाला विभेद या ऐसा विभेद विकसित करने मे सहायता मिल सकती है जो कई वर्षो तक बाह्य रक्त का उपयोग किये बिना भार मे वृद्धि प्रदान करता रह सकता है

एक ही नस्ल अथवा किस्म के दो सवथा भिन्न विभेदो या कुलो एव स्टाको के पक्षियो का सगम **बाह्य-सकरण** कहलाता है यह विधि पक्षियो मे ओजस्विता बढाने तथा विशिष्ट दोषो को दूर करने मे जो अन्य विधियो द्वारा नही दूर किये जा सकते, उपयोगी है इस प्रणाली से कुछ ऐसे इच्छित गुण भी प्रविष्ट किये जा सकते है जो मूलत स्टाक मे नही पाये जाते इस प्रणाली से नस्ल विशेष के विशुद्ध गुणो पर बुरा प्रभाव पडने की सम्भावना होने के कारण इसका अधिक प्रयोग नही किया जाता

भिन्न नस्लो अथवा किस्मो के पक्षियो के सगम को **सकरण** कहते है. इससे अच्छी जनन क्षमता, जीविता, मुर्गी की तीव्र वृद्धि तथा अधिक अण्डे देने वाले सकर उत्पन्न होते है दो विभिन्न नस्लो के पक्षियो मे सकर सतति मे सकर-ओजस्विता आ जाती है अन्य अनियमित सकरो की तरह सकरण की पहली पीढी (F_1) मे अण्डा देने वाले पक्षी प्राप्त करने के लिये हाल ही तिर्यक सकरण (क्रिस क्रासिंग), त्रिविध सकरण, अत:सकरण या व्यतिकर सकरण की विधियाँ अपनायी गयी है अण्डा-उत्पादन के लिये दो सकरण सर्वाधिक लोकप्रिय है **रोड आइलैण्ड रेड × लाइट ससेक्स और ह्वाइट लेगहार्न × रोड आइलैण्ड रेड**

श्रेणीकरण प्रणाली मे विशुद्ध नस्ल के नर तथा मिश्रित नस्ल की मादा मे प्रजनन सम्पन्न किया जाता है यह प्रणाली सकर जातीय पक्षियो के सुधार के लिये उपयोगी है

कई देशो मे मुर्गी से नर बच्चो मे आने वाले लैंगिक गुण मुर्गी-पालन को मनचाहा रूप देने मे अत्यन्त महत्वपूर्ण होते है ऐसे चार गुणो का कुछ व्यापारिक महत्व भी है इनके नाम है (1) भारी और उपयोगी नस्लो में धीमी गति से पखो का उगना, जो **ह्वाइट लेगहार्न** मे अत्यधिक पख आने के गुण से विरुद्ध है; (2) धारीदार पक्षति (**बार्ड प्लाइमाउथ रॉक**), धारीरहित के विपरीत, (3) चँदीली पक्षति (**लाइट ससेक्स**), जो सुनहरी पक्षति (**रोड आइलैण्ड रेड**) की विरोधी है, तथा (4) कुछ में टाँगो का हल्का रग गाढे रग का विरोधी है नस्ल विशेष के लिग सम्बन्धी विशिष्ट गुणो के आधार पर अण्डो के फूटने के तुरन्त बाद ही चूजो का लिग जानना सम्भव है बडे पैमाने पर कुक्कुट-पालन घरो के लिये अण्डो के फूटने के तुरन्त बाद ही नरो और मादाओ का अलग कर लेना लाभप्रद होता है, क्योकि अण्डो के उत्पादन के लिये केवल मादा पक्षियो को ही व्यापारिक पैमाने पर पाला जाता है यदि वाछित गुणो वाले पक्षी को अलग करके उनके सगम का विवेकशील कार्यक्रम बनाया जाय तो व्यापारिक स्तर पर अण्डो का उत्पादन लाभदायक हो सकता है

सतति परीक्षण

किन्ही गुणो यथा अण्डा उत्पादन, अण्डे का आकार, जीवन क्षमता आदि, जिनमे सुधार लाने हो उनके लिये किसी विशिष्ट सगम से प्राप्त सतति की कार्यक्षमता के परीक्षण अच्छी उपलब्धि के लिये कुक्कुट-पालन मे विशेष महत्व रखते है ऐसा कोई भी सगम जिससे अच्छे परिणाम मिलते है दोहराया जाता है कोई भी नर अथवा मादा पक्षी जिसके वशज लगातार असतोषजनक सिद्ध होते रहते है उसका बहिष्कार कर दिया जाता है

भारत मे कुक्कुट प्रजनन के लिये कुछ चुनी हुयी देशी मुर्गियाँ ही ली जाती है और इनकी नस्ल-सुधार के लिये बाहर से लाये गये विशुद्ध जातीय मुर्गे प्रयुक्त होते है यद्यपि ऐसे प्रयोगो मे पक्षियो के व्यवहार मे कोई विशेष आनुवशिक सुधार नही दिखायी पडते किन्तु कुक्कुटो मे अण्डा तथा मास-उत्पादन मे सुधार के लिये भारतीय कृषि अनुसधान परिषद ने जो समन्वित योजनाये चालू की है उनसे कुक्कुटादि के स्तर मे सुधार होने की सम्भावना है ये समन्वित योजनाये भारतीय परिस्थितियो के लिये सबसे अनुकूल दो-नस्ली सकर या विभेद चुनने के उद्देश्य से चालू की गयी है

प्रजनन स्टाक का चुनाव अनेक बातो पर निर्भर करता है शारीरिक आकार, अण्डा देने की क्षमता, स्थिरता, वशावली तथा प्रजनन क्षमता इनमे प्रजनन क्षमता सबसे महत्वपूर्ण कारक है

किसी भी पक्षी की प्रजनन क्षमता चूजे देने वाले अण्डे देने की क्षमता तथा निकले हुये चूजो की जीवन-क्षमता पर निर्भर करती है प्रजनन क्षमता नर अथवा मादा का आनुवशिक गुण न होकर वैयक्तिक गुण होता है भारी अथवा मास वाले पक्षी हल्के अथवा अण्डे देने वाले पक्षियो की अपेक्षा कम जननक्षम होते है बडे-बडे व्यापारिक पालन-घरो मे अण्डो से अधिकतम चूजे प्राप्त करने के लिये पक्षियो की जनन क्षमता जानने के लिये परीक्षण के तौर पर सगम कराये जाने चाहिये

कुक्कुटो मे अण्डे की जनन क्षमता (फूटने वाले जननक्षम अण्डो की प्रतिशतता) निश्चित रूप से मादा पक्ष से वशानुक्रमित होती है किन्तु नर पीढी से भी प्रभावित होने की सम्भावना रहती है प्रजनन कार्यक्रमो मे उच्च जनन क्षमता वाली, अण्डे देने वाली मुर्गी का चुनाव आवश्यक होता है तथा इसका सगम भी ऐसे पठ्ठो से कराया जाता है जिनका जन्म अच्छी जनन क्षमता वाली मुर्गियो से हुआ होता है अल्प वयस्क, कम जीवन-शक्ति अथवा अधिक मोटे पक्षियो से उच्च जनन क्षमता के ही अण्डे उत्पन्न हो, यह आवश्यक नही है अन्त प्रजनन प्रणाली मे भी यदि जनको का सगम कराने के लिये सावधानी से चुनाव किया जाये तो इससे भी उच्च जनन क्षमता वाले अण्डे प्राप्त होते रहते है

कुक्कुट-पालन अर्थ व्यवस्था मे पक्षियो की जीवन क्षमता (अधिक काल तक जीवित रहने की क्षमता) विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि पक्षियो की मृत्यु दर बढ जाने से उनकी स्थान पूर्ति अत्यन्त महँगा सौदा होता है लाभप्रद कुक्कुट पालन के लिये केवल जनन-क्षम अण्डो का ही अधिक सख्या मे फूटना पर्याप्त नही होता बल्कि निकले हुये चूजो का जीवित रहना तथा उनका अच्छी तरह मे बढते रहना भी आवश्यक होता है सेने तथा चूजो के पालन-पोषण के लिये मादा पक्षियो की भिन्न-भिन्न नस्लो मे भिन्न प्रकार की सक्रियता रहती है इसी प्रकार विभिन्न नरो के प्रजनन तथा पालन-पोषण के फलस्वरूप भी भिन्नता आ सकती है ये भिन्नता मुख्यत विभिन्न नस्लो की आयुवृद्धता के कारण होती है मृत्यु दर मे भिन्नता का कारण किसी विभेद मे जीवाणवीय अतिसार, पक्षि जीर्णज्वर तथा मुर्गी-लकवा जैसे रोगो के प्रति कम प्रतिरोधिता का होना है ऐसी दशा मे इन रोगो के प्रति प्रतिरोधी नस्लो के पक्षियो का ही प्रजनन करवाना चाहिये ऐसे नर अथवा मादा पक्षियो का वहिष्कार करना चाहिये जो लगातार या तो अल्प प्रजननशीलता या अल्प जीवन क्षमता प्रदर्शित करते है जो दोषपूर्ण अण्डे सेने से या पालन-पोषण अथवा अन्य कारकों के कारण नही होती परवर्ती प्रजनन योजनाओं मे भी ऐसी सतति का तिरस्कार कर देना चाहिये

एक ही नस्ल की मुर्गियो मे भी वृद्धि की गति तथा अण्डा उत्पादन क्षमता मे पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है अण्डो के उत्पादन के लिये अधिक अण्डे देने वाली मुर्गियो का चुनाव करना चाहिये अण्डो के व्यापारिक उत्पादन के लिये पहले से चुनिन्दा **ह्वाइट लेगहार्न** नस्लो के सकरण से प्राप्त सकर चूजे प्राप्त किये जाते है अण्डे देने वाली तथा अण्डे न देने वाली मुर्गियो के मुख्य लक्षण सारणी 127 मे दिये गये है

मास के लिये केवल वढने वाले चूजो का चुनाव करना चाहिये ऐसे चूजे धीमी गति से बढने वाले चूजो की अपेक्षा अपने आहार का उपयोग अपनी शारीरिक वृद्धि के लिये अधिक क्षमता पूर्वक करते है व्यापारिक पैमाने पर मास-उत्पादन के लिये **ह्वाइट कोर्निश** नस्ल के चुने हुये मुर्गे तथा **ह्वाइट प्लाइमाउथ रॉक** अथवा **न्यू हैम्पशायर** नस्ल की मुर्गियो से प्राप्त सकर अधिक पसन्द किये जाते है

सारणी 127 – अण्डे देनेवाले तथा न देने वाले कुक्कुटो के महत्वपूर्ण लक्षण

लक्षण	अण्डे देने वाले	अण्डे न देने वाले
कलँगी	लाल तथा भरी हुई	सिकुड़ी हुई तथा श्वेत स्कैब के कारण धूमिल
आँखे	चमकीली	मन्द
गुहाद्वार	भीगा, चौडा तथा पीले रग का, सदूपित	सूखा, तग, पीले रग का, असदूपित
चोच	धूमिल पीत	पीत
जघनास्थियाँ	दो अगुल से अधिक फैली	अस्थियो के बीच बिल्कुल जगह नही होती
शरीर परिमाण	3–5 अगुल	दो अगुल से भी कम स्थान

व्यापारिक उत्पादन के लिये एक अथवा दो चुनी हुयी नस्लो को पालना अच्छा होता है कई नस्लो को एक साथ पालने की अपेक्षा केवल थोडी नस्लो मे विशिष्टता प्राप्त कर लेना अच्छा रहता है क्योकि इससे पक्षियो के आवास, प्रजनन तथा पालन की समस्याये कम हो जाती है

जैसे ही शारीरिक आकार, मास तथा पखो की कम बाढ वाली मुर्गियाँ पहचान मे आ जायँ वैसे ही उनका परित्याग कर देना चाहिये यदि किसी कारणवश अधिक अण्डे देने वाली मुर्गियाँ अण्डे देना बन्द कर दे तो उनको भी त्याग देना चाहिये

देशी पक्षी भारी होते है और अधिक चुगा खाते है किन्तु अण्डे बहुत कम देते है आजकल के सकरित पक्षी छोटे, सहिष्णु और रोग-प्रतिरोधी तथा अधिक अण्डा उत्पादन क्षमता मे युक्त होते है अनेक व्यापारिक सगठनो ने **बैण्टम** अथवा **मिजेट** नामक छोटे पक्षियो का पालन आरम्भ कर दिया है **मिजेट** कोई असामान्य पक्षी न होकर अपनी ही तरह के भरे-पूरे पक्षियो की लघु प्रतिकृति है इसमे सामान्य पक्षियो में पाये जाने वाले जीन के स्थान पर बौने जीन के आ जाने के कारण भिन्नता पायी जाती है मिजेट पक्षी आकार मे जगली मुर्गे के बराबर तथा सहिष्णु होते है ये किसी भी सामान्य पक्षी की अपेक्षा ऐसे क्षेत्रो मे भली-भाँति बढते है जहाँ का ताप उच्च होता है ये पालन-घरो मे भी अच्छी तरह रह सकते है और अन्य नस्लो की अपेक्षा थोडे खर्च पर ही अण्डे देते है ये पक्षी उन्नत देशी नस्लो के समान होते है और सामान्य सकर मुर्गी की ही तरह अण्डे देते है ये पक्षी प्रतिवर्ष 225 अण्डे देते है जबकि उन्नत देशी नस्ल तथा सकर मर्गियाँ क्रमश 180 और 250 अण्डे देती है

अण्डे सेना तथा फूटना

भारत मे प्राय कुक्कुट छोटे-छोटे समूहो मे पाले जाते है सामान्यत 10–12 मुर्गियो के पीछे एक मुर्गा छोडकर प्रजनन बाडा (दरबा) बना लिया जाता है ऋतु तथा नस्ल के अनुसार मुर्गियो की सख्या घट-बढ सकती है यही कारण है कि अण्डा सेने की क्रिया प्राय मुर्गियाँ ही करती है अण्डो को फूटने के लिये उचित ऊष्मा प्रदान करने के लिये प्रजनक मुर्गी 20–21 दिन तक अण्डो के ऊपर बैठती है निजी अण्डे सेने के स्थानो मे अण्डो की जनन क्षमता, प्रतिवर्ष चूजा जनन तथा प्रत्येक किस्म के चूजो के विक्रय मूल्यो मे सम्बद्ध आँकडे सारणी 128 में दिये गये है

दरबो मे मुर्गे से सगम होने के प्राय एक सप्ताह अथवा कुछ अधिक समय के बाद मुर्गियाँ सेचित अण्डे देने लगती है अण्डो के ठीक से फूटने के लिये दिये जाने के तुरन्त बाद उन्हे एकत्र करना आवश्यक हो जाता है गर्मियो में 5 दिन से अधिक तथा जाडे मे 10 दिन से अधिक पुराने हो जाने पर अण्डो से चूजा नही निकालना चाहिये सेने के लिये अण्डो का चुनाव उनके देने वाले पक्षियों की आनुवशिकी, स्वास्थ्य तथा ओजस्विता जानकर किया जाता है असेचित अथवा रोगी अण्डो का तिरस्कार कर देना चाहिये

सेने के लिये जो अण्डे चुने जाये वे आकार, रूप, भार तथा रग मे समान हो चटकी खोल वाले अण्डो को सेने के लिये नही रख छोडना चाहिये सेने के लिये रखे जानेवाले अण्डो का गठन अच्छा होना चाहिये क्योकि परिरक्षण तथा सेने के समय नमी की हानि का आकलन खोल की गठन पर निर्भर करता है गन्दे अण्डो पर रोगाणु लगे रहने के कारण सेने

सारणी 128 – अण्डे सेने वाली कुछ निजी शालाओं में कुक्कुट उत्पादन*

अण्डे सेने वाले स्थान	नस्ल अथवा विभेद	अण्डा सेने की वार्षिक क्षमता	प्रतिवर्ष वास्तविक सेये गये अण्डे		प्रति चूजा विक्रय मूल्य (रुपये)	
			मांस उत्पादक चूजे	पट्ठे	मांस उत्पादक चूजे	पट्ठे
आरबोर एकर्स फार्म इण्डिया लिमिटेड, पूना (महाराष्ट्र)	व्हाइट लेगहार्न-56 (A A-ब्राइन और AA-ब्रायलर)	2,340,000	1,100,000	500,000	1 50	3 10
कोण्डाइ हैचरीज, कलकत्ता (प बंगाल)	हीब्रेड लेगहार्न अन्त प्रजति	6,00,000	20,000	75,000	1 75	3 50
ग्रीनोक कुक्कुट फार्म, पूना (महाराष्ट्र)	G—1—व्हाइट लेगहार्न	2,50,000		45,000	1 60	3.10
हीब्रेड (इण्डिया) प्रा. लिमिटेड, करनाल (हरियाणा)	हीलाइन और इण्डियन रिवर हाइब्रो	18,40,000	1,75,728	7,82,608	1 25	3,00
ही-फेड हेचरी, हैदराबाद (आ प्र)	हीलाइन	42,000		87,064	1 30	3,00
जयश्री कुक्कुट फार्म, एरिनजलाकुडा (केरल)	अमेरिका की विशुद्ध व्हाइट लेगहार्न	90,000			1 00	1,50
क्वालिटी फार्म, पूना (महाराष्ट्र)	ही-लाइन (अन्त प्रजनित संकर)	6,00,000	46,000	1 42,000	1 35	3 10
पटेल पोल्ट्री फार्म, बुलसर (गुजरात)	हीलाइन	1,40 000	5,000	62,000	1 65	3.30
पायनियर पोल्ट्री, इन्दौर (म प्र)	हीलाइन और इण्डियन रिवर हाइब्रो	86,000	12,000	40,000	1 50	3 00
यूनिचिक्स, दिल्ली	जेकोस्लोवाकिया लेयर्स एण्ड ब्रायलर्स, UH—424, लेयर्स, UC—136 ब्रायलर्स	4,80,000	80,000	1,300,00	1 40	2 95

*अण्डे सेने वाले केन्द्रों से प्राप्त आकड़ों के आधार पर

के लिये केवल साफ-सुथरे अण्डे ही रखने चाहिये यदि मिट्टी लगी हो तो सेने के लिये रखे जाने वाले अण्डों को धोना नहीं चाहिये यदि मिट्टी अधिक लगी हो तो ऐसे अण्डों को सेने के लिये नहीं रखा जाता अण्डों पर लगे धब्बों को मोटे सूखे अथवा गीले कपड़े से रगड कर साफ किया जा सकता है अण्डों को सूखे, हवादार, साफ-सुथरे, गन्धहीन स्थानों पर जहाँ का ताप 12 8–15 6° हो रखना चाहिये

सेने से पूर्व अण्डों को 7 दिन से अधिक संचित नहीं करना चाहिये अन्यथा ये खराब होने लगते हैं इनको दिन में एक या दो बार फिराया जाता है जिससे इनका भ्रूणीय केन्द्रक खोल की आन्तरिक झिल्ली से कहीं चिपक न जाये यदि सेये जाने वाले अण्डे एक स्थान से दूसरे स्थान तक लेजाने हों तो उन्हें इस तरह बन्द करना होता है कि वे धक्के से सुरक्षित रह सकें बड़े-बड़े पालन-घरों में सेने से पहले अण्डों का संचयन विशेष प्रकार के रैकों मे किया जाता है

चुने हुये अण्डों का आकार सामान्य, भार 56 ग्रा तक और खोलों का गठन अच्छा तथा दोषरहित होना चाहिये अच्छा हो यदि 5–6 अण्डे सेने के लिये एक पठोर का लक्ष्य रखा जाय सच तो यह है कि 60–70% अण्डे ही फूट पाते हैं जिनमें से लगभग आधे चूजे पठोर के रूप में रहते हैं

अण्डे दो प्रकार से सेये जाते हैं (1) मुर्गियों द्वारा प्राकृतिक विधि से, (2) इनक्यूबेटरों में कृत्रिम विधि से प्राकृतिक विधि में सेने के लिये अण्डों को प्रजनक-मुर्गियों के नीचे रखा जाता है सेने की यह विधि छोटे मुर्गी-पालकों के लिये सर्वथा उपयुक्त है इसलिये यह देहातों में अधिक लोकप्रिय है इस पर भी, यह सदैव सम्भव नहीं होता कि जब और जहाँ चाहे प्रजनक-मुर्गी पकड में आ जाय भारतीय देशी मुर्गी आदर्श बैठने वाली तथा निपुण माँ होती है अण्डे सेने तथा चूजों की देखभाल के लिये इस प्रकार की 4 या 5 मुर्गियाँ 50 अण्डे वाले इनक्यूबेटर की तरह कार्य कर सकती हैं सेने के लिये केवल स्वस्थ और शान्त स्वभाव की मुर्गियों को ही चुनना चाहिये

भ्रूण विकास सन्तोषजनक हो, इसके प्रति आश्वस्त होने के लिये अण्डों का परीक्षण सेने के लिये रखने के बाद 7वें, या 9वें दिन तथा पुन 15वें अथवा 16वें दिन कर लेना चाहिये अनुर्वर और क्षतिग्रस्त अण्डों को हटा देना चाहिये 18वें दिन के बाद मुर्गियों से छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये उनके लिये चुग्गा तथा जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहना चाहिये 20वें अथवा 21वें दिन अण्डों से चूजे बाहर आने लगते हैं कुछ मुर्गियाँ, जो चूजे पहले निकल आते हैं, उन्हीं की देखरेख करती हैं और बाद में निकलने वालों की उपेक्षा कर देती हैं यह नितान्त आवश्यक है कि जब तक कि सारे चूजे अण्डों से बाहर न आ जाये, मुर्गी को अण्डों पर बैठने के लिये छोड रखा जाय प्रजनक-मुर्गियों को अत्यन्त सावधानी से चुग्गा देना चाहिये और उन्हें दरबों में वापिस बैठाकर 12–24 घण्टों तक अकेले शान्तिपूर्वक रहने देना चाहिये

अण्डे फूटने का कार्य 21वे दिन प्राय पूरा हो जाता है ज्यो ही सारे अण्डे फूट जाये त्यो ही अण्डो के टूटे खोलो तथा घोंसले के अन्य पदार्थो को वहाँ से हटा देना चाहिये वहाँ पर नयी बिछाली देकर उस पर दुबारा कीटनाशक छिडक देना चाहिये मुर्गियो तथा नये निकले चूज़ो को कम से कम दो दिन के लिये अकेले छोड देना चाहिये

हाल के वर्षो मे भारत मे इनक्यूबेटरो मे कृत्रिम अण्डा सेने का प्रचलन हुआ है जहाँ अधिक सख्या मे अण्डे सेये जाने हो वहाँ पर यह विधि किफायती है इसमे श्रम भी कम लगता है और जब चाहे तभी अण्डो से चूजे निकल सकते है इस प्रकार से निकले चूजे वस्तुत: रोगो और परजीवियो से मुक्त होते है

इनक्यूबेटर कई माप के होते है इनमे से कुछ छोटी मशीने (मेज पर रखने योग्य) जिनमे 25 तक अण्डे आते है और कुछ बडी मशीने (अलमारी के आकार की) होती है जिनमे कई हजार अण्डे एक साथ रखे जा सकते है उत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिये इनक्यूबेटरो को खुले हवादार कमरो मे अलग-अलग रखना चाहिये छोटे इनक्यूबेटरो मे सामान्यत ताप 38 3–39 4° रहता है यन्त्र से चलने वाली बडी मशीनो मे अण्डो को ऊष्मित करने तथा हिलाने-डुलाने का कार्य वैद्युत युक्तियो द्वारा किया जाता है

अण्डो से वाष्पन द्वारा जल की अत्यधिक हानि को वश मे रखने के लिये इनक्यूबेटरो मे पर्याप्त आर्द्रता होना चाहिये इनक्यूबेटर मे अनुकूलतम आर्द्रता बनाये रखने के लिये इसको जल अथवा भीगी बालू से भरी विशेष प्रकार की बनी द्रोणियो मे रखा जाता है 18वे दिन के बाद जब तक सभी अण्डे फूट न ले तब तक इनक्यूबेटर नही खोलना चाहिये एक बार चूजे निकल आने पर उन्हे ब्रूडरो मे उठाकर रख दिया जाता है

बच्चो का पालन

चूज़ो को या तो मुर्गी के नीचे अथवा कृत्रिम ढग से ब्रूडरो मे पाला जा सकता है चूज़ो का पालन-काल इनके बाहर निकल आने के बाद 8 सप्ताह तक रहता है और यही कुक्कुटो के जीवन का सबसे नाज़ुक समय भी होता है

मुर्गियो के साथ चूज़ो को छोटे-छोटे अलग समूहो मे छोड देना प्राकृतिक पालन की सर्वोत्तम विधि है इस विधि मे दरबे सहित चूज़ो को नित्यप्रति नये-नये स्थानो पर ले जाया जा सकता है एक औसत आकार की देशी मुर्गी 10–15 चूज़ो की देखभाल करने मे समर्थ है

चूज़ो का कृत्रिम पालन ऊष्मित ब्रूडरो मे किया जाता है कृत्रिम पालन मे प्राकृतिक पालन की अपेक्षा कई लाभ है इससे वर्ष के किसी भी समय इच्छित सख्या मे चूज़ो को पाला जा सकता है इस विधि से रोगो, परजीवियो तथा परभक्षियो के कारण होने वाली चूजो की मृत्यु दर को अच्छी तरह नियन्त्रित किया जा सकता है

ब्रूडर-घर कई डिजाइनो से बनाये जाते है जो आकार, वाछित ऊष्मा उत्पन्न करने के लिये (लगभग 26 7–32 2°) आवश्यक ईंधन की प्रकृति तथा पाले जाने वाले चूज़ो की सख्या पर निर्भर करती है

चूजा-पालन की चाहे कोई भी विधि क्यो न अपनायी जाय उन्हे गरम तथा सुविधामय रखना और सन्तुलित आहार देना अनिवार्य है उत्तरी भारत मे नवम्बर मे फरवरी तक चूज़ो का पालन बहुत ही अच्छी तरह होता है इसके बाद वर्षा ऋतु तक चूज़ो मे वृद्धि की गति धीमी पड जाती है इसके विपरीत, दक्षिण मे चूजो के पालन का अनुकूलतम समय जून मे सितम्बर तक है कुक्कुट-पालको को अपने क्षेत्रो के अनुसार चूजो के पालन के लिये अनुकूलतम समय निर्धारित कर लेना चाहिये

यदि अण्डो मे बाहर आने के तुरन्त बाद चूजो को बिना कुछ खिलाये विशेष रूप मे बने हवादार बक्सो मे बन्द करके भेजा जाय तो इस प्रकार एक दिन के चूजो को दूर-दूर के स्थानो तक अच्छी तरह ले जाया जा सकता है भारत मे कुक्कुट-पालन व्यवसाय का तेजी से विकास होने के कारण एक दिन के चूजो की माँग काफी बढ गयी है बहुत से कुक्कुट-पालक अण्डो को स्वय न सेकर सरकारी फार्मो अथवा व्यापारिक अण्डे सेने के स्थानो मे चूजे को खरीदना अथवा प्रशिक्षित लोगो द्वारा अण्डो से चूजे निकलवाना अधिक पसन्द करते है बक्सो मे बन्द करने के लिये गर्मी मे भूसा अथवा कुट्टी तथा जाडे की ऋतु मे सूखी घास अनुकूलतम वेष्टन पदार्थ का काम देती है चूजो को उचित वायु तथा प्रकाश देने के लिये बहुत अधिक सख्या मे बक्सो को बाधना नही चाहिये

जन्म लेने के 24 घण्टो के अन्दर ही चूजे सक्रिय होकर चुगने योग्य हो जाते है अगले 5 सप्ताह के लिये इन्हे अधिक ताप की आवश्यकता होती है इनकी देखभाल करने वाली मुर्गी इनकी रक्षा करने तथा इनको खिलाने के साथ-साथ इनको ऊष्मा प्रदान करते रहने का सबसे बडा कार्य करती है यही कारण है कि प्राकृतिक पालन करने पर चूजे 10 सप्ताह तक पालक-मुर्गी के साथ ही रहते है

जब तक चूजे 6–8 सप्ताह के नही हो जाते तब तक उनका लिंग स्पष्ट नही हो पाता 8 सप्ताह के हो जाने पर नर चूजो मे अच्छी तरह कलँगी तथा लोलकियाँ निकल आती है किन्तु मादा चूजो मे वे इस आयु मे भी अच्छी तरह नही दिखती एक दिन की आयु के चूजो के लिंग जानने की दो विधियाँ है शारीरिक लक्षणो का परीक्षण तथा कुछ विशेष नस्लो तथा सकर नस्लो मे नीचे तथा जांघो के ऊपर के पखो के रगो का परीक्षण बाह्य परीक्षण जापानी रन्ध्र विधि अथवा यान्त्रिक विधि से करते है जिसमे लिंग-निर्धारण यन्त्र का प्रयोग किया जाता है कोई भी कुशल पालक रन्ध्रो को देखकर एक घण्टे मे लगभग 800 चूज़ो को लिंग के आधार पर काफी हद तक सही-सही अलग-अलग कर सकता है लिंग-निर्धारण यन्त्र सर्वप्रथम जापान मे ईजाद हुआ इसमे खोखली नली होती है जिसके पारदर्शक सिरे पर प्रकाश की व्यवस्था होती है जब इस सिरे को एक दिन की आयु के चूज़ो की गुदा मे डाला जाता है तो इससे पक्षी के प्रजनन अग प्रकाशमान होकर प्रकट दिखायी पडने लगते है किन्तु इस विधि से रन्ध्र विधि की तरह चूजो की लैंगिक पहचान जल्दी-जल्दी नही हो पाती एक दिन के चूज़ो को लिंग के आधार पर पृथक्-पृथक् करने का एक लाभ यह भी है कि नर और मादा पक्षियो को छोटी ही आयु से व्यापारिक माँग के अनुसार अलग-अलग रखकर पाला जा सकता है कुक्कुट-पालक प्राय 8 सप्ताह की आयु मे पट्ठो को पठोरो से विलग करते है

नवजात चूज़ो को अण्डो से निकलने के बाद तब तक इनक्यूबेटर मे रहने दिया जाता है जब तक कि वे हृष्ट-पुष्ट होकर काफी भूखे न हो उठे (48 घण्टे तक) अथवा उन्हे चूजा बक्सो मे 12 घण्टे

नक पडे रहने देना चाहिये प्रजनन-गृहो मे विभिन्न अड्डे अथवा पट्टियो का होना आवश्यक है जिससे चूजो को विभिन्न माप तथा आकार के पालन-गृहो मे ले जाया जा सके नवजात चूजो तथा वयस्क पक्षियो को साथ-साथ नही पालना चाहिये 10–14 सप्ताह की आयु होने पर पक्षियो की चोचो को काट देने की प्रथा है जिससे वे ज्यादा चोच न मारे

गहन कुक्कुट-उत्पादन केन्द्र – पशुओ मे प्राप्त आहार के उत्पादन को बढावा देने के लिये भारत सरकार द्वारा सचालित तृतीय पचवर्षीय योजना मे विशेष विकास योजना के अन्तर्गत अण्डा तथा कुक्कुट-उत्पादन एव विपणन केन्द्रो की स्थापना की गयी इस योजना का उद्देश्य इसमें भाग लेने वालो को पालन के लिये धन तथा आवश्यक सुविधाये देना रहा है विभिन्न राज्यों मे इस प्रकार के 92 केन्द्र तथा ऐसे कई अन्य केन्द्र भी स्थापित किये जाने है (सारणी 129) प्रत्येक गहन केन्द्र मे किसानो को देने के लिये लगभग 30,000 चूजे तैयार करने वाले अण्डे सेने के स्थानो की स्थापना करने की आवश्यकता है पक्षियों के लिये प्रतिवर्ष 2,000 टन चुग्गा-मिश्रण तैयार करने के लिये प्रत्येक केन्द्र में एक मिश्रक-चक्की अथवा पाट-चक्की लगाना आवश्यक होता है

अधिकाश केन्द्रो मे इन योजनाओ के अन्तर्गत सन्तोषजनक प्रगति हो रही है और इसकी सहायता से पजाब, केरल, पश्चिमी बगाल, राजस्थान, मैसूर, मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु राज्यो मे काफी प्रभाव हुआ है अण्डो के उत्पादन मे वृद्धि के साथ इन्हे राज्य मे अथवा राज्य से बाहर दूरवर्ती बाजारो मे भेजने के लिये राज्य स्तर पर विपणन सगठनो की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है

क्षेत्रीय कुक्कुट फार्म – देश मे राज्य सरकार के कुक्कुट फार्मो को उत्तम कोटि के पक्षी देने, कुक्कुट पालन के विभिन्न पहलुओ पर प्रशिक्षण दिलाने पक्षियो की किफायती नस्ले प्राप्त करने के लिये कुक्कुट प्रजनन पर अनुसधान तथा कुक्कुट पालन के समय उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओ का समाधान करने के लिये 1959–60 में हेस्सारघाटा, बगलौर (मैसूर), बम्बई (महाराष्ट्र), भुवनेश्वर (उडीसा), दिल्ली और कामलाही (हिमाचल प्रदेश) मे पाँच क्षेत्रीय कुक्कुट फार्म खोले गये 1965 मे 'भूख निवारण अभियान' के अन्तर्गत उच्च स्तरीय शुद्ध वशावली की **व्हाइट लेगहार्न** तथा **आस्ट्रालोर्प** नस्लो के एक दिन के चजो को ऑस्ट्रेलिया मे लाया गया **लेगहार्न** की एक और शुद्ध वशावली 'एम-लाइन' को भी हाल ही मे लाया गया है इन पक्षियो को बगलौर के क्षेत्रीय फार्म मे रखा गया है क्षेत्रीय फार्मो में पक्षियो की सख्या में तेजी से वृद्धि की गयी बगलौर तथा बम्बई के फार्मो में इनके सकर भी उत्पन्न किये जाने लगे है उत्तम अण्डा तथा मास उत्पादन और कम मृत्यु दर होने के कारण व्यापारिक अण्डा उत्पादको में इन सकर पक्षियो की माग बढी है 1966–67 मे बगलौर तथा बम्बई के फार्मो मे क्रमश 6,90,947, 2,02,006 और 5,99,049, 1 77 575 अण्डे और चूजे तैयार किये गये

क्षेत्रीय फार्मो मे **व्हाइट लेगहार्न और रोड आइलैण्ड रेड** पक्षियो तथा ऑस्ट्रेलियाई **लेगहार्न और आस्ट्रालोर्प** नस्लो के प्रजनन मे प्रजनक मुर्गा उत्पादन विधि प्रयोग में लायी जाती है

सारणी 129 – भारत में कुक्कुटो के गहन विकास केन्द्र*

राज्य	खण्ड	केन्द्रों की सख्या
असम	जोरहाट, मिलचर, खानपारा	3
आन्ध्र प्रदेश	हैदराबाद, विशाखापटनम, विजयवाड़ा	3
उड़ीसा	भुवनेश्वर, राउरकेला	2
उत्तर प्रदेश	बरेली, देहरादून, बीजापुर, लखनऊ, कानपुर	5
केरल	मुवाट्टुपुजा, पेटा (त्रिवेन्द्रम)	2
गुजरात	सूरत	1
चण्डीगढ	चण्डीगढ	1
जम्मू और कश्मीर	जम्मू, श्रीनगर	2
तमिलनाडु	पोरायार कैथ, अचरापक्कम, रानीपेट, पोर्टोनोवा, ओमालूर, कोयम्बतूर, मद्रास	8
दिल्ली	दिल्ली	1
पजाब तथा हरियाणा	दासुया, खरार, नवानशहर, समराला, पठानकोट, घरशंकर, काँगडा, डेरा-गोपीपुर, रूपड़, लुधियाना, राजपुरा, नूह, फिरोजपुर, करनाल, जगाधरी, सरहिन्द, तरन-तारन, जीरा, फिलौर, नरायणगढ, झिरका, जालन्धर, पटियाला, अम्बाला	25
पश्चिमी बगाल	कलकत्ता, दुर्गापुर, चिनसुरा, बाराशात	4
बिहार	राँची, पटना	2
मध्य प्रदेश	भोपाल, इन्दौर, जबलपुर, रायपुर, ग्वालियर	5
महाराष्ट्र	सतारा, चिपलम, शोलापुर, नान्देद, अकोला, यवतमल, भीर, उस्मानाबाद, नासिक, अहमदनगर, अमरावती परभणी, मुरबाद, ताम्गँाव	14
मैसूर	बंगलौर, मालवली, हवेरी, गगावती, कुडी, मैसूर	6
राजस्थान	जोधपुर, अजमेर, जयपुर, उदयपुर, भरतपुर, टोंक, अलवर	7
हिमाचल प्रदेश	पगोण्टा	1
योग		92

**Indian Fmg, N S*, 1968-69, 18(9), 22

रोग

निदानशास्त्र के आधार पर कुक्कुटो के रोग निम्नलिखित वर्गो मे रखे जाते है जीवाणुज, विषाणुज, परजीवी, प्रोटोजुआन, कवकीय तथा पोषण सम्बन्धी भारत के विभिन्न भागो मे कुक्कुटो के इन हानिकारक रोगो के अतिरिक्त पिछले कुछ दशको मे सक्रामक स्वरयन्त्र श्वासप्रणाल शोफ, सक्रामक श्वसननलीशोथ, सक्रामक प्रतिश्याम, पक्षियो का मस्तिष्क सुषुम्नाशोफ, ओर्निथोसिस, पक्षियो का ल्युकोसिस काम्प्लेक्स, चिरकालिक श्वसन रोग तथा विभिन्न प्रकार के नये-नये पोषणिक परजीवी तथा कवकीय रोगो के होने की सूचना मिली है. पक्षियो मे रोग फैलाने मे आकस्मिक कारणो के अतिरिक्त कुछ और भी महत्वपूर्ण कारक है जो पक्षियो की जीवन-शक्ति को घटाकर उन्हें नाना प्रकार से रोगी बनाते रहते है इनमे से पक्षियो की

आनुवंशिकता, उग्र मौसम मे अपर्याप्त सुरक्षा, पक्षियो की भीड, ठीक से सफाई का न होना दोषपूर्ण आवास और पोषण व्यवस्था तथा प्रबन्ध के अन्य दोष मुख्य हैं अनुमान है कि कुक्कुटो मे रोगो (जीवाणुज तथा परजीवी) के कारण 50 लाख रु की हानि होती है

जीवाणुज रोग—जीवाणुओ के सक्रमण के कारण उत्पन्न रोगो मे पेचिश रोग (बी डब्ल्यू डी), अपात्र ज्वर पक्षी आत्र ज्वर, पक्षी हैजा, क्षयरोग, सक्रामक प्रतिश्याम, तथा चिरकालिक श्वसन रोग (सी आर डी) मुख्य हैं

ब्रुसेलोसिस, गिल्टी रोग, कूटयक्ष्मा, टेटैनस, पक्षियो का विविध्रओ-यकृत शोथ, स्पायरोकीटोसिस, लिस्टेरियासिस, बॉटुलिज्म, विसर्प, स्ट्रेप्टोकॉकस रुग्णता, स्टफिलोकॉकस रुग्णता, कोली कलिका गुल्म तथा कोली जीवाणु रुग्णता अन्य जीवाणुज रोग है जो कम होते हैं

पक्षियो मे पेचिश रोग (दण्डाणु श्वेत अतिसार) ससार-भर मे होता है सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, एशिया, जापान, ब्रिटेन, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया अफ्रीका तथा कोरिया मे इस रोग के होने की सूचना है इस रोग के कारण चूजो और वयस्क पक्षियो मे मृत्यु-दर बढ जाती है अण्डे देने वाले पक्षियो मे जनन-क्षमता और अण्डे देने की क्षमता कम हो जाती है तथा पक्षियो की वृद्धि देर से होती है इस रोग का सक्रामक जीवाणु **साल्मोनेला पुल्लोरम** है जो चूजो, पठोरो, चिडो तथा अन्य पक्षियो को सक्रमित करता है बत्तख और हस इस रोग के प्रति कुछ प्रतिरोधी हैं किन्तु वे इस रोग के जीवाणुओ को आश्रय देने तथा फैलाने मे सहायक हैं चूजो मे पेचिश रोग अधिक होता है इसमे नस्ल के अनुसार रोग होने की सम्भावना बदलती रहती है **लेगहार्न** जैसी हल्की नस्लें अन्य नस्लो की अपेक्षा कम प्रभावित होती है यह रोग दूषित अण्डो, दूषित इनक्यूबेटरो, प्रजनक-घरो तथा कुक्कुट पालन मे काम आने वाले अन्य उपकरणो तथा पीडित चूजो और वयस्क पक्षियो की बीट द्वारा फैलता है

पक्षी की आयु के अनुसार रोग के लक्षण बदलते रहते हैं. ये चूजो मे अपेक्षाकृत अधिक सुस्पष्ट रहते हैं इस रोग से पीडित पक्षियो में उदासीनता और अवसाद आते हैं भूख कम अथवा नहीं ही लगती, श्लेष्मल झिल्ली मे पीलापन भी आ जाता है और पक्षी को दस्त आने लगते हैं इस रोग की अवधि तो वैसे 4-5 दिन की होती है किन्तु चिरकालिक सक्रमण मे यह अधिक हो जाती है वयस्क पक्षियो मे इस रोग की उद्भवन-अवधि दो से तीन सप्ताह तक होती है इस रोग मे मृत्यु-दर 50% तक रहती है कुछ पक्षी तो इनक्यूबेटर के अन्दर ही 2-3 दिन मे और कुछ चूजा-घरो मे जाने के एक से तीन सप्ताह बाद तक मर जाते हैं पीडित चूजो के उपचार के लिये 0 04% फ्यूराजोलिडोन (एन एफ 180) को चुग्गे मे मिलाकर देना चाहिये

पक्षियो में **साल्मोनेला** वश की एक या एक से अधिक जातियो के सक्रमण से उत्पन्न होने वाले अपान्त्र ज्वर के अन्तर्गत अनेक जीवाणुज रोग सम्मिलित हैं अब तक अपान्त्र ज्वर उत्पन्न करने वाली लगभग 800 विशेष सीरमीय किस्मो की जानकारी प्राप्त हो चुकी है जिनमे **सा टिफिमुरिअम, सा डर्बी, सा ब्रेडेनी, सा. मान्टिविडियो, सा ओरेनिनबर्ग, सा न्यूपोर्ट, सा बरेली, सा अनाटिस** तथा **सा मेलिएग्रिडिस** प्रमुख है

अपान्त्र ज्वर ऐसा रोग है जो मुर्गियो और पीरुओ को तो अधिक किन्तु हसो, बत्तखो, कबूतरो, तीतरो, चूकर चूजो को कभी-कभी होता है इस रोग से वैसे तो प्राय छोटे चूज़े ही पीडित होते हैं किन्तु वयस्क पक्षियो के पीडित होने की भी सम्भावना रहती है वयस्क पक्षी रोगी हो जाने पर जल्द ही निरोग हो जाते हैं और कभी-कभी जीवाणुओ के लिये सवाहक का कार्य भी करने लगते हैं इस रोग के जीवाणु दूषित अण्डो अथवा रोगी पक्षियो की बीट द्वारा फैलते हैं

कुक्कुट आन्त्र ज्वर मुर्गियो का एक रक्त सम्बन्धी रोग है जो **साल्मोनेला गैलिनेरम** जीवाणुओ द्वारा उत्पन्न होता है मुर्गियो के अतिरिक्त यह पीरू और बत्तखो मे भी उत्पन्न होता है सभी आयु के पक्षियो को होने वाला यह रोग प्रचण्ड अथवा चिरकालिक अवस्थाओ में होता है इस रोग का सक्रमण मुख्यत दूषित अण्डो रोगी चूजो की बीट तथा सवाहक पक्षियो द्वारा होता है

पास्तुरेला मल्टीसिडा जीवाणु के कारण उत्पन्न होने वाला कुक्कुट हैज़ा, मुर्गियो, पीरुओ, बत्तखो और हसो का व्यापक रोग है और इसका सम्बन्ध रक्त से है प्रचण्ड अथवा चिरकालिक अवस्थाओ मे होने वाला यह रोग शायद ही 2 माम से कम आयु के छोटे पक्षियो मे देखा जाता है रोग की प्रचण्ड अवस्थाओ मे मृत्यु दर 90% तक हो जाती है इसके उपचार के लिये पक्षियो के पीने के पानी मे सल्फामेथाजीन मिला दिया जाता है इसकी रोकथाम के लिये टीका भी लगाया जाता है

माइकोबैक्टीरियम एविअम जीवाणु के कारण होने वाला क्षय रोग चिडियो मे व्यापक चिरकालिक सक्रामक रोग है इसके जीवाणु सुअर और भेडो को भी सक्रमित कर सकते हैं तथा मनुष्य मे क्षय रोग के जीवाणुओ के लिये पशुओ को सुग्राही बना देते हैं इसीलिये कुक्कुटो के पीडित होते ही इस रोग को तुरन्त ही उन्मूलित करने की सलाह दी जाती है यह रोग मुख्यतया रोगी पक्षियो की बीट द्वारा फैलता है इसमे बूढे पक्षी, नये पक्षियो के सक्रमण के साधन बनते हैं इस रोग के लक्षण सक्रमित हो जाने के बहुत बाद कई बार तो एक वर्ष अथवा इससे भी बाद मे प्रगट होते हैं रोगी पक्षी का भार कम हो जाता है और वह उदासीन दीखता है, उसे जल्दी थकावट आने लगती है, सीना विषम और क्षीण होने लगता है तथा इसके अण्डा उत्पादन मे भी कमी देखी जाती है

सक्रामक प्रतिश्याम (रूप) **हीमोफिलस गैलिनेरम** नामक जीवाणु के कारण उत्पन्न होने वाला पक्षियो का श्वसन रोग है यह सभी आयु वाले पक्षियो को होता है यह प्रचण्ड तथा चिरकालिक दोनो अवस्थाओ में होते देखा जाता है यह रोग संवाहक पक्षियो द्वारा ही फैलता है तथा वातावरण मे शुष्कता अथवा अत्यधिक आर्द्रता, एक स्थान पर अधिक भीड आदि के कारण अधिक फैलता है इस रोग की अवधि 10 दिन से लेकर कुछ महीनो तक रहती है मृत्यु दर विशेष अधिक नही होती है, रोगी पक्षी चुग्गा कम लेता है और कम अण्डे देता है रोगी पक्षियो के उपचार के लिये इनके प्रति 50 किग्रा चुग्गे मे 250 ग्रा सल्फाथायाजोल मिलाया जाता है.

हाल ही मे चिरकालिक श्वसन रोग का महत्व बढा है क्योकि ग्रस्त पक्षियो के भार में वृद्धि नही हो पाती जिससे मास के लिये कुक्कुट पालन उद्योग को काफी हानि पहुँचती है वैसे तो हर आयु के चूज़े इस रोग के शिकार बनते हैं किन्तु विकासशील पक्षियो को बहुत हानि पहुँचती है इस रोग का मुख्य कारण प्ल्यूरोनिमोनिया के समान समूह से सम्बन्धित **माइकोप्लाज्मा गैलिनेरम** जैसा

जीवाणु होता है किन्तु **कोलीफार्म** जीवाणु वाइरस तथा कुछ कवक सम्बन्धी कारक-जैसे अन्य जीव भी इसके वाहक हो सकते है यह रोगग्रस्त पक्षियो तथा इनके अण्डो द्वारा फैलता है ग्रस्त पक्षियो को साँस लेने मे कठिनायी होती है और शरीर का भार तथा अण्डा उत्पादन घट जाता हे जैसे-जैसे रोग वढता जाता है, कुछ पक्षी मर जाते है और शेष निर्बल तथा क्षीण हो जाते है इस रोग के उपचार के लिये 20–40 अश प्रति लाख अश जीवाणु-नाशक रसायनो का प्रयोग किया जाता है

वाइरस रोग – कुक्कुटो के लिये रानीखेत, कुक्कुट चेचक, कुक्कुट प्लेग, सक्रामक स्वरयत्र श्वासप्रणाल शोफ, सक्रामक श्वसननलीशोथ, पक्षियो के श्वेत कोशिका रोग तथा मस्तिष्क सुषुम्ना शोफ जैसे वाइरस रोग घातक होते है और थोडे ही समय मे कुक्कुटो की मृत्यु वडी तादाद मे हो जाती है अन्य रोगो के विपरीत, वाइरस रोगो की कोई विशेष चिकित्सा नही हो पाती इनकी रोकथाम का एकमात्र उपाय अधिक हानि होने से पहले ही झुडो मे इनके प्रसार को रोकने के समुचित साधन अपनाना है

रानीखेत रोग (न्यू-कैसल रोग) हर आयु के पक्षियो को होता है और यह कुक्कुटो के अत्यन्त घातक रोगो मे से एक हे इस रोग से शत-प्रतिशत मृत्युयें होती है और कुक्कुट फार्म की अण्डे देने वाली मुर्गियाँ एकदम अण्डा देना बन्द कर देती है इस रोग के लक्षण वाइरस के विभेद के अनुसार वदलते रहते है यह रोग प्राय प्रचण्ड अथवा अति प्रचण्ड अवस्थाओ में देखा जाता है और तीन चार दिनो मे ही चूजो की मृत्यु दर काफी वढ जाती है

रानीखेत रोग प्राय रोगी पक्षियो के निस्राव, वीट तथा अन्य मैल मे फैलता है परपोषी पक्षियो मे वाइरस श्वसन अथवा पाचन तन्त्रो मे से होकर प्रवेश करते है यह वाइरस एक स्थान से दूसरे स्थान तक वायु द्वारा अथवा उपकरणो, आहार थैलियो, टोकरियो द्वारा फैलते है प्रकोप के समय चूहे तथा कुत्ते भी इसके फैलाने मे सहायक होते है क्योकि वे रोगी पक्षियो के शवो को खा लेने के 8 दिन वाद तक वाइरस उत्सर्जित करते रहते है रोग की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे जो अण्डे दिये जाते है उनमे भी वाइरस देखा गया है अण्डे सेने वाले स्थानो के सदूषण का यही प्रमुख स्रोत है एक दिन के चूजो को आँखो के वीच में टीका लगा कर और 7 सप्ताह तक के चूजो को 'विगवेव' विधि से वचाया जा सकता है इस रोग का कोई कारगर उपचार नही है

कुक्कुट चेचक पक्षियो का रोग है और जहाँ कही भी कुक्कुट पालन होता है वही पर यह सामान्य है यह हर आयु और नस्ल के नर तथा मादा पक्षियो को होता है फिर भी वयस्को की अपेक्षा वढने वाले पक्षी इससे अधिक प्रभावित होते है वाइरस रोग होते हुए भी यह वडी धीमी गति से फैलता है इस रोग की उद्भवन अवधि 4 से 14 दिन तक की है यह शुष्क तथा नम दो प्रकार का होता है जिनमे से नम अथवा डिप्थीरिया-जैसा प्रकार शुष्क प्रकार की अपेक्षा अधिक घातक है रोग की इन दोनो प्रकार से होने वाली मृत्यु दरे भिन्न-भिन्न है नम प्रकार मे मृत्यु दर 50% तक जाती है जव कोई स्वस्थ पक्षी रोगी पक्षी का स्पर्श करता है या फिर किसी अन्य विधि से स्वस्थ पक्षी तक वाइरस पहुँच जाते है तव यह रोग फैलता है इस रोग को फैलाने मे मच्छर, कुटकी, चिडियाँ तथा अन्य पक्षी भी सहायक होते है

कुक्कुट प्लेग कुक्कुटो का अत्यन्त घातक सक्रामक रोग है यह अचानक ही फैलता है जिससे तमाम पक्षी किसी प्रकार के लक्षण प्रकट किये विना ही मर जाते है इससे रोगी पक्षी चुगना, घूमना-फिरना और अण्डे देना वन्द कर देते है और वे निर्वल तथा सुस्त पड जाते है इनकी कलँगी और लोलकियो पर नीलिमा छा जाती है, आनन शोफ हो जाता है, कभी-कभी तन्त्रिकीय विकृति के परिमाणस्वरूप रोगी पक्षी मे क्षोभ और ऐंठन भी आ जाती है और वह लुढकने, वृत्ताकार चक्कर लगाने तथा गतिविभ्रमित होने लगता है इस रोग से रक्षा के लिये 'कबूतर-चेचक वैक्सीन' का अत्यधिक उपयोग किया जाता है इस रोग के उपचार के लिये कोई कारगर ओषधि प्राप्त नही है

सक्रामक स्वर यत्र श्वसन प्रणाल शोफ, कुक्कुटो का एक प्रचण्ड तथा अत्यधिक सक्रामक श्वसन वाइरस रोग है यह ज्यादातर वढने वाले तथा वयस्क पक्षियो को होता है प्राकृतिक परिस्थितियो मे इस रोग की उद्भवन-अवधि 6–12 दिन होती है यह रोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से रोगी पक्षियो के ससर्ग में आये ढाँचो, पालन-उपकरणो, अन्य पक्षियो तथा कुत्तो और चूहो द्वारा फैलता है इनके अतिरिक्त निरोग हो जाने पर रोगी पक्षी इस रोग के वाइरसो के सवाहक वनते है इस रोग की अवधि लगभग दो सप्ताह की होती है झुण्ड में यह रोग वडी तेजी से फैलता है इससे मृत्यु दर 14 से 72% तक पहुँच जाती है, अण्डा देने वाली मुर्गियाँ अण्डा देना काफी कम कर देती है और मास के लिये पाले जाने वाले पक्षियो का भार नही वढ पाता 6 सप्ताह की आयु के सभी वर्गो के पक्षियो को टीका लगाकर इस रोग से प्रतिरक्षा प्राप्त की जा सकती है

सक्रामक श्वसननली शोफ हर वर्ग के और हर आयु के पक्षियो को होने वाला एक व्यापक और प्रचण्ड श्वसन वाइरस रोग है यद्यपि इस रोग से मृत्यु दर अधिक नहीं होती किन्तु इससे छोटे चूजो को अत्यन्त हानि पहुँचती है यह रोग वडी तेजी से फैलता है और इसकी उद्भवन-अवधि 18–36 घण्टो तक की होती है चूजों में मृत्यु दर 40% तक देखी गयी है इससे अण्डे देने वाली मुर्गियाँ कम अण्डे देने लगती है और इस अवस्था में दिये गये अधिकाश अण्डे रुक्ष, आकार में असम, कोमल कवचीय तथा घटिया होते है अण्डो की जनन क्षमता भी कम होती है रोगी पक्षी अधिक समय तक अण्डो का सामान्य उत्पादन नही कर पाते तथा इस रोग मे पक्षियो की जनन-क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है

ल्यूकोसिस काम्प्लेक्स (ए एल सी) मुर्गियो का एक व्यापक सक्रामक वाइरस रोग है पक्षियो की टाँगो और पखो का पक्षाघात, शरीर के विभिन्न भागो में गाँठे पडना और पक्षियो का अन्धा होना इस रोग के लक्षण है छोटे पक्षियो मे वडो की अपेक्षा रोग की सम्भावना अधिक रहती है यह रोग रोगी पक्षियो की वीट तथा सदूपित अण्डो से अप्रत्यक्ष रूप से तथा स्वस्थ पक्षियो के सम्पर्क से फैलता है पीडित रहने पर पक्षियो मे 2 से 4 महीने तक इस रोग के लक्षण देखे जाते है पीडित पक्षियो में पाँच प्रकार के लक्षण देखे जाते है (1) **तन्त्रिका प्रकार** (तन्त्रिकीय लिम्फो-मैटोसिस, कुक्कुट पक्षाघात अथवा रेज पक्षाघात) इसमें पक्षी के पख मे, एक अथवा दोनो टाँगो मे तथा गर्दन मे पक्षाघात हो जाता है जव रोग का प्रभाव टाँगो पर होता है तो पक्षी लँगडा कर चलता है, इसकी चाल एक-सी नहीं रह पाती है और लेटते समय पक्षी अपनी एक टाँग को आगे और दूसरी टाँग पीछे की ओर तान कर रखता है जव यह रोग गर्दन तक पहुँच जाता है

तो वह ऐंठ जाती है और पक्षी को साँस लेने तथा खाना निगलने में कठिनाई होने लगती है (2) **चाक्षुप प्रकार** (चाक्षुप लिम्फोमैटोसिस, धूसर अथवा खसखसी आँख), इस रोग में परितारिका की प्राकृतिक चमक चली जाती है और यह रग मे धूसर अथवा धूसरीय श्वेत पड जाती है आँख की पुतली का आकार विषम हो जाता है और प्रकाश के साथ प्रतिक्रिया करना वन्द कर देती है, कोषे उभर आते हैं और अन्तत पक्षी अन्धा हो जाता है छ. मास से अधिक आयु के पक्षी ही प्राय इस प्रकार के रोग से पीडित होते देखे जाते हैं (3) **अतराग प्रकार** (यकृत वृद्धि, अतराग लिम्फोमैटोसिस), प्रारम्भिक अवस्थाओं में इस रोग का पता भी नही चल पाता किन्तु वढ जाने पर उदर में पानी भर जाता है, पक्षी कम चुगने लगता है, भार मे वढोत्तरी नही होती, पक्षी की कलँगी तथा लोलकियाँ निस्तेज होकर रग मे पीली पड जाती है, वीट का रग हरा पड जाता है और पक्षी कम अण्डे देने लगते हैं (4) **अस्थि प्रकार** (ओस्टियोपेट्रोसिस, सगमरमर अस्थि), अतराग प्रकार की अपेक्षा यह कम होता है, इससे पीडित पक्षियों की लम्वी अस्थियाँ, विशेपतया जाँघो और पंखो की अस्थियाँ मोटी होने लगती है फलत रोगी पक्षी की चाल और ठवन मे अन्तर आ जाता है तथा पक्षी अस्वाभाविक चाल से झटके लेकर चलने लगता है (5) **रुधिर प्रकार** (इरिथ्रोल्यूकोसिस), यह विरले ही देखने मे आता है, इसके कारण पक्षी में रक्त की कमी पड जाती है और वह दुर्वल हो जाता है रोग की गम्भीर अवस्थाओ मे पक्षी की कलँगी, लोलकियाँ और टाँगे पीताभ नारगी पड जाती हैं इस अवस्था मे यदि पक्षी को किसी भी प्रकार की चोट लग जाय तो लगातार रक्त वहता रहता है इस रोग से प्राय एक साथ अधिक पक्षी नहीं पीडित होते

पक्षियो का एन्सेफेलोमाइलिटिस (मारक कम्पन) विशेपतया एक से तीन सप्ताह तक के चूजो का वाइरस रोग है इस रोग में गतिविभ्रम होने से पक्षी की गर्दन और सिर में कम्पन होने लगती है इस रोग की मृत्यु दर 5–10% तक है यह रोग रोगी पक्षियो के दूपित अण्डों से फैलता है

विभिन्न वाइरस रोगो से पक्षियो की रक्षा का एकमात्र उपाय रोग की रोकथाम है, अत पक्षियो को विभिन्न रोगो के सक्रमण से वचाने के लिये उन्हें उपयुक्त समय मे टीका लगाने की सिफारिश की जाती है सफाई और स्वास्थ्य के नियमो का कठोरता से पालन, अच्छी व्यवस्था तथा खिलाने की अच्छी विधियो को अपना कर तथा रोगो के सक्रमण तथा अति सकुलन पर निगरानी रखने से पक्षियो के इन वाइरस रोगो पर नियत्रण हो सकता है

परजीवी रोग—कुक्कुटो मे रोग उत्पन्न करने वाले परजीवी दो प्रकार के हैं पक्षियो की वृद्धि और अण्डा-उत्पादन को प्रभावित करने के कारण कुक्कुट-पालन की अर्थ-व्यवस्था में आन्तरिक तथा वाह्य कृमियो के समान आन्तरिक परजीवियो की भूमिका प्रमुख है कुक्कुटो में **नेमेटोडा, सेस्टोडा** और **ट्रेमेटोडा** वर्गो से सम्वन्धित अनेक कृमि पाये जाते है पक्षियो में कुछ सामान्य आन्तरिक कृमिरोग गोल और फीता कृमियो के कारण उत्पन्न होते हैं

मुर्गियो और पीरुओ में **ऐस्केरिडिया गैली** द्वारा उत्पन्न वडे गोल कृमियो के सक्रमण सामान्य है तीन महीने से कम आयु वाले पक्षियो में परजीवी कृमि 30 दिन के भीतर पूरी तरह विकसित हो लेते है किन्तु वडे पक्षियो मे लगभग 50 दिन लगते है पूर्ण विकसित कृमि पीताभ-श्वेत रंग के और 37–76 मिमी तक लम्वे होते हैं वयस्क कृमि शरीर के आन्तरिक भागो में आत्र की श्लेष्मला को वेध कर आन्तरिक परतो को काफी हानि पहुँचाते है

सक्रमण या तो कृमियो द्वारा या फिर कृमियो के सक्रमित अण्डो तथा पक्षियो की वीट से होता है कृमियो के अण्डे मिट्टी अथवा घासफूस मे महीनो तक सक्रिय वने रहते हैं सक्रमित पक्षी क्षीण होने लगते है तथा उनके अण्डा-उत्पादन मे भी कमी आ जाती है कई पीडित पक्षी तो कृमियो के द्वारा आँत अवरुद्ध हो जाने से मर भी जाते है

कुक्कुटो में केशिका कृमियो (12 5–25 0 मिमी आकार) के कारण होने वाला सक्रमण, **कैपिलेरिया** वश के वाल मे पतले कृमियो की कई जातियो के द्वारा होता है ये कृमि, पाचन तन्त्र के विभिन्न भागो, जैसे, ग्रसिका, गला ग्रथिल जठर, आँत के ऊपरी भागो तथा उण्डुक मे पाये जाते है कुछ जाति के कृमियो को केचुये जैसे माध्यमिक परपोपी की आवश्यकता पडती है

लाल रग के 12.5–25 0 मिमी लम्वे गिजर्ड कृमि गिजर्ड की शृगी परतो मे रहते हैं इन कृमियो को अपना जीवन-चक्र पूरा करने के लिये टिड्डे, भृग तथा मरुस्थली टिड्डे जैसे माध्यमिक परपोपियो की आवश्यकता पडती है ये कृमि गिजर्ड के पेशीय भागो मे नरम गाँठें अथवा हल्के उभार उत्पन्न करके पक्षी की पाचन क्रिया क्षीण कर देते है

हिटेरैकिस गैलिनी पक्षियो की आँत के उण्डुक भागो में मिलने वाले उण्डक कृमियो की एक मुख्य जाति है जो लगभग 12 5 मिमी तक लम्वी होती है ये कृमि पक्षियो में 'काला सिर' रोग उत्पन्न करने वाले प्रोटोजोआ के लिये सवाहक का कार्य करते है

कुक्कुटो को पीडित करने वाली फीता कृमियो की 11 जातियाँ ज्ञात हैं जिनमे से 6–7 जातियाँ अधिक सामान्य हैं ये परजीवी खण्डित, श्वेत, चपटे, फीते के समान, कुछ मिमी से लेकर कई सेंमी तक लम्वे होते हैं इनके स्कोलेक्स भाग में काँटे अथवा चूपण अग होते हैं जिनकी सहायता मे ये पक्षी के पीडित भागो से चिपके रहते है उन्हे अपना जीवन-चक्र पूर्ण करने के लिये कीट, केचुआ, अथवा घोंघे जैसे माध्यमिक परपोपियो की आवश्यकता होती है इन माध्यमिक परपोपियो में सक्रामक लारवे होने के कारण इन्हें खाने से कुक्कुट इन कृमियो के शिकार वनते है

फीता कृमियो से पीडित हो जाने पर पक्षियो की वृद्धि रुक जाती है, भूख कम हो जाती है, वे क्षीण और दुर्वल पड जाते हैं तथा कम अण्डे देने लगते है फ्लूक अथवा ट्रेमाटोड कृमि पक्षियों मे वहुत कम पाये जाते है जव कभी ये कृमि पक्षियो मे मिलते हैं तो ये निकास द्वार तथा डिम्ववाहिनी के गिर्द अधस्त्वचीय कृमिकोप के रूप में पाये जाते है इन कृमियो से ग्रस्त पक्षी चुगना वन्द कर देते हैं जिससे वे दुर्वल तथा क्षीण हो जाते हैं जव कृमि डिम्ववाहिनी के चारो ओर रहते हैं तो उसमें सूजन आ जाती है और छाले दिखायी पडने लगते हैं इस सूजन तथा पेट की झिल्ली-शोथ से श्वेत पनीर जैसा स्राव निकलने लगता है

कुक्कुटो में कृमि सक्रमण हो जाने पर उनके इलाज की अपेक्षा रोकथाम तथा नियन्त्रण के उपाय अधिक आवश्यक होते हैं कृमि सक्रमण को कम से कम वनाये रखने के लिये सावधानी वरतनी चाहिये जिसके अन्तर्गत दरवो की सफाई, दूपित घासफूस को निकालना, समुचित जल निकासी तथा जलाक्रान्त न होने देने के

लिये फूस की ठीक से छौनई, गहरी विछाली होने पर तिनके को वारम्वार उलट-पुलट करके सूखा रखना सम्मिलित है इनके अतिरिक्त दरबे मे अधिक भीड नही होनी चाहिये तथा वहाँ रोग-वाहक कीटो को मारने के लिये उचित कीटनाशको का प्रयोग भी करना चाहिये

चीलर, किलनी, कुटकी, मत्कुण तथा पिस्सू आदि परजीवी पक्षियो को कष्ट पहुँचाते हैं कुक्कुटो के कुछ सामान्य वाह्य परजीवी निम्न प्रकार के हैं

सभी प्रकार के चीलरो में शरीर के चीलर सामान्य है और ये प्राय बूढे पक्षियो के शरीर पर रोओ के नीचे, सीने के पखो तथा गर्दन पर पाये जाते हैं

सिर का चीलर, सिर के पखयुक्त भाग पर, काण्डीय चीलर पखो के काण्ड पर और पख चीलर प्राय पखो पर रहते हैं इनके कारण त्वचा मे खुजली, पपडी का वनना, पखो की अस्त-व्यस्तता, अण्डा उत्पादन तथा चुग्गा की मात्रा मे कमी होने लगती है

कुक्कुट किलनी अथवा नीला चीलर (**आरगस परसिकस**), एक अन्य परजीवी है *जिसके वयस्क रात के समय पक्षियो से ही अपना* आहार प्राप्त करते हैं चीलरो के कारण पक्षी की भूख मिट जाती है और इनका भार कम होने लगता है पक्षी अण्डे कम देने लगते हैं और कभी-कभी पक्षियो मे रक्त की भी कमी हो जाती है और कितनी पक्षाघात हो जाता है

पख कुटकी (धूसर कुटकी) कुक्कुटो पर रहकर उनके भार तथा अण्डा-उत्पादन में कमी कर देती है इसके द्वारा परपोषियो का रक्त चूसे जाने के कारण उनमे रक्त की कमी आ जाती है और उनकी कलँगी और लोलकियाँ पीली पड जाती हैं

मुर्गा कुटकी (लाल कुटकी), रात्रिचर होने के कारण दिन के समय पक्षी पर नहीं दिखायी पडती इसकी उपस्थिति के कारण पक्षी की शारीरिक वृद्धि तथा अण्डा-उत्पादन मे कमी देखी जाती है और पक्षी चुग्गा भी कम मात्रा मे लेने लगते हैं पक्षियो मे स्थायी उत्तेजना उत्पन्न होती है पक्षियो मे कुछ हद तक रक्ताल्पता भी देखी जाती है

पख गिराने वाली कुटकी, पक्षियो के पख कूपो के तल मे रहती है और शरीर पर स्थायी खुजली उत्पन्न करती है जिसके कारण पख गिरने लगते हैं

शल्की टाँग कुटकी, प्राय पक्षियो की टाँगो की त्वचा को काटती है यह कभी-कभी उनकी कलँगी और लोलकियो मे भी देखी जाती है इसकी उपस्थिति के कारण पक्षी लँगडा कर चलते है तथा उनकी टाँगें सूज जाती है

फसली कुटकी, प्राय पक्षी के प्रत्येक अग पर पायी जाती है जिससे खुजली उत्पन्न होती है और पक्षी की भूख मिटने लगती है और शरीर पर छाले और गुमटे भी उत्पन्न हो जाते है

खटमल, पक्षियो को केवल रात मे सताते हैं इनके कारण शरीर पर खुजली उठती है तथा पख गिरने लगते हैं

प्रोटोजोआ से उत्पन्न रोग – कुक्कुटो मे प्रोटोज़ोआ से कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते है, जैसे कॉक्सिडिआ रुग्णता, हेक्सा-मिटिआ रुग्णता, हिस्टोमोना रुग्णता, ट्रिकोमोनिआ रुग्णता, ट्रिपानोसोमिआ रुग्णता, टाक्सोप्लाज्मा रुग्णता, ल्यूकोसाइटोजोआ के सक्रमण, प्लाज्मोडियम सक्रमण तथा ईजिप्टिएनेला सक्रमण. इनमे से कॉक्सिडिआ रुग्णता सक्रमण सवसे अधिक होता है जिसके कारण मुर्गी-पालन पालको की चिन्ता का विषय बना हुआ है कॉक्सिडिआ की लगभग 8 जातियाँ (**आइमेरिया** जातियाँ) चूज़ो पर आक्रमण करती है पक्षियो मे जल अथवा आहार के द्वारा सक्रमण फैलता है चार से आठ सप्ताह तक की आयु के पक्षी इसके शिकार हो जाते है वे क्षीण होने लगते है और उनके भार मे तथा रक्त मे कमी आ जाती है जिससे उनकी मृत्यु दर भी वहुत उच्च होती है रोगी पक्षी कम अण्डे देने लगते है और आहार की मात्रा मे भी कमी आ जाती है वडी आयु के पक्षियो के लिये यह रोग हानिकारक नही होता

सल्फामेथैजीन के समान ओषधियो द्वारा तुरन्त इलाज करके और सफाई का उत्तम प्रवन्ध करके इस रोग पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है

हेक्सामिटा मेलियाग्रिडिस परजीवी प्रोटोजोआ के कारण हेक्सामिटिआ रुग्णता नामक रोग फैलता है जिसमे नजला-जुकाम की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं यह मुख्यत पीरू, बटेरो तथा महोखो को होते देखा जाता है प्रयोगो मे मुर्गियो और वत्तखो *को भी इससे सक्रमित किया जा सकता है किन्तु प्राकृतिक अवस्थाओ* मे ये पक्षी इससे सक्रमित नही होते

हिस्टोमोना रुग्णता (काला सिर रोग), प्राय पीरुओ को होता है किन्तु कभी-कभी मुर्गियो के चूजे और अन्य पक्षी भी इससे पीडित हो जाते हैं इस रोग का कारण **हिस्टोमोनास मेलियाग्रिडिस** परजीवी प्रोटोज़ोआ है यह परजीवी कुक्कुटो मे पाये जाने वाले साधारण उण्डुक कृमियो का आश्रयी है यद्यपि मुर्गियो मे इस रोग के होने की सम्भावना वहुत कम रहती है किन्तु इनमे परजीवी अड्डा बनाये रहते हैं अत वे रोग को पीरुओ तक पहुँचाने मे सवाहक का काम करते है

ट्राइकोमोना रुग्णता प्राय पीरुओ मे अधिक किन्तु मुर्गियो मे विरले ही होते देखा जाता है इस रोग का कारण **ट्राइकोमोनास गैलिनी** नामक प्रोटोजोआ परजीवी है

ट्रिपैनोसोमा रुग्णता रोग अनेक जगली पक्षियो, चूज़ो, कबूतरो और गिनी मुर्गियो को होते देखा गया है मुर्गियो को यह रोग **ट्रिपैनोसोमा** वश की कुछ परजीवी जातियो (**ट्रि एवियम** और **ट्रि गैलिनेरम**) के सक्रमण के फलस्वरूप होता है यह रोग कुक्कुटो मे अधिक नही पाया जाता

ल्यूकोसाइटोज़ोआन समूह से सम्बन्धित परजीवी प्रोटोज़ोआ जन्तुओ के कारण उत्पन्न होने वाला ल्यूकोसाइटोजोआई सक्रामक रोग पीरू, वत्तखो और हसो का एक सामान्य रोग है यह चूज़ो को वहुत कम होता है चूजो को **ल्यूकोसाइटोजन साबरेजेसाइ, ल्यू कालेराइ** तथा **ल्यू ऐंड्रूसाइ** सक्रमित करते वताये गये हैं

पक्षियो के प्रोटोजोआ सम्बन्धी रोगो मे **टोक्सोप्लाज्मा** जन्तुओ के कारण उत्पन्न टोक्सोप्लाज्मा रुग्णता, **प्लाज्मोडियम गैलिनेसियम** के कारण उत्पन्न प्लाज्मोडियम तथा **एजिप्टिएनैला पुलोरम** के सक्रमण से उत्पन्न ईजिप्टिनैला रोग मुख्य है

कवकीय रोग – कवको या फफूदो से उत्पन्न रोग कुक्कुटो के आम रोगो मे से नही है किन्तु फिर भी कुक्कुट रोगो मे इनका निजी महत्व है

मुर्गियो में **ऐस्पर्जिलस फ्यूमिगेटस** के द्वारा ऐस्पर्जिलस रुग्णता उत्पन्न होती है यह रोग सदा अति उग्र अवस्था में उत्पन्न होता है तथा इसके कारण मृत्यु दर और विकृत अगता वहुत अधिक होती है यह रोग कवक के वीजाणुओ द्वारा अथवा दूपित चुग्गे, जल अथवा घासफूस द्वारा फैलता है इस रोग से पक्षियो को निरोग रखने के लिये पालन-गृहो

को सदा साफ-सुथरा रखना चाहिये और भोजन तथा घासफूस को फफूदीरहित और सीलन से मुक्त रखना चाहिये

ट्रिकोफाइटेन मेगनिनाइ (एकोरियन गैलिनी) फफूदी के कारण उत्पन्न होने वाला फेवश रोग मुर्गियो और पीरुओ का चिरकालिक त्वचाकवकीय सक्रामक रोग है सर्वप्रथम इस रोग के क्षत कलँगी पर सफेद धब्बो के रूप मे दिखाई पडते है नवीन पक्षियो और भारी एशियाई नस्लो के चूजो मे इस रोग के फैलने की अधिक सम्भावना रहती है यह रोग पीडित पक्षियो की त्वचा से गिरे हुये शल्को और पपडियो के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्पर्क से अन्य पक्षियो तक पहुँचता है

पाचन क्षेत्र मे कवकार्ति हो जाने पर पक्षियो को वम्वकार (थ्रश, मोनिलिग्र। रुग्णता) रोग हो जाता है यह रोग बडे पक्षियो की अपेक्षा चूजो मे अधिक सामान्य है इससे पक्षियो की वृद्धि रुक जाती है इस रोग पर नियन्त्रण का उपाय पालन-गृहो मे सफाई का अच्छा प्रबन्ध रखना है

पोषण सम्बन्धी विकार – कुक्कुटो को प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिजो तथा विटामिनो से युक्त सन्तुलित आहार की पर्याप्ति मात्रा देकर ही लाभ की आशा रखनी चाहिये आहार मे प्रोटीन की कमी होने से पक्षी की बाढ रुक-रुक कर होती है, वयस्कता देर मे आती है और अण्डा उत्पादन मे कमी आती है आहार मे प्रोटीन की मात्रा अपर्याप्त होने पर यह निश्चित है कि पख ठीक से नही आते प्रोटीन न्यूनता के कारण पक्षी परस्पर छीना-झपटी, दुम की नोचाई तथा कभी जाति-भक्षण पर भी उतर आते है

कुक्कुटो को कार्बोहाइड्रेट और वसा से आवश्यक ऊर्जा मिलती है वसा से वसा-विलेय विटामिनो के अवशोषण मे भी सहायता मिलती है चूजो की वृद्धि के लिये लिनोलीक, लिनोलेनिक और ऐराकिडोनिक जैसे असतृप्त वसा अम्ल भी आवश्यक होते है

कुक्कुटो को स्वस्थ रखने के लिये तथा शरीर के मृदु ऊतको के निर्माण मे खनिज अनिवार्य तथा सहायक होने है बढने वाले चूजो में हड्डियो के बनने तथा वयस्क पक्षियो में अण्डो की खोलो के लिये फॉस्फोरस और कैलसियम आवश्यक है पक्षी-शरीर मे इन दोनो खनिजो का उपयोग आहार मे उपस्थित विटामिन डी की मात्रा पर बहुत कुछ निर्भर करता है चुग्गे मे इन दोनो खनिजो के न होने से अण्डा-उत्पादन तथा पक्षियो के भार मे कमी आ जाती है और पक्षी कम जनन क्षमता वाले नरम कवचीय अण्डे देने लगते है मैग्नीशियम की कमी होने से चूजो की वृद्धि रुक जाती है, वे सुस्त पड जाते है और छेडे जाने पर थोडे-थोडे समय के लिये ऐठने लगते है यदि वयस्क पक्षियो के आहार में मैग्नीशियम की कमी हुयी तो वे पतली खोल वाले तथा कम सख्या मे अण्डे देने लगते है

चूजो के आहार मे सोडियम और क्लोरीन की न्यूनता से भी उनकी वृद्धि रुक जाती है अण्डे देने वाली मुर्गियाँ छोटे आकार के, हल्के तथा कम सख्या मे अण्डे देने लगती है लवणो की अधिकता से विषाक्तता के लक्षण प्रकट होने लगते है जिससे पक्षी को प्यास अधिक लगने लगती है, वह खडा नही रह पाता और पेशीय दुर्बलता के कारण वह ऐठने भी लगता है जिससे पक्षी की मृत्यु हो जाती है

आहार मे पोटैशियम की कमी से चूजो की वृद्धि रुकती और मृत्यु दर बढती है

मैगनीज ऐसा सूक्ष्ममात्रिक तत्व है जो चूजो के पेरोसिस रोग को रोकने के लिये अनिवार्य माना जाता है इस रोग मे पक्षी की टाँगे लँगडी हो जाती है जिससे वह अपना पूरा आहार प्राप्त नही कर पाता और उसकी मृत्यु हो जाती है मैगनीज न्यूनता के कारण वयस्क पक्षियो मे जनन-क्षमता घटती है वे निम्न जनन क्षमता वाले अण्डे देने लगते है और उद्भवन की अन्तिम अवस्था मे भ्रूणो की मृत्यु दर बढ जाती है कुछ फूटकर निकले भ्रूणो मे गर्भ उपास्थि दुष्पोषण विकार हो सकता है मैगनीज न्यून चुग्गा चुगने वाले पक्षियो के अण्डो से उत्पन्न चूजो मे गतिविभ्रम और ग्रीवा और सिर के तान्त्रकीय विकार उत्पन्न हो जाते है

कुक्कुटो मे थाइराइड ग्रथि की सामान्य क्रियाशीलता के लिये आयोडीन आवश्यक है बढने वाले चूजो के आहार मे आयोडीन की न्यूनता से शरीर-भार में भी कमी आ जाती है इसमे प्रजनक मुर्गियो में अण्डा-जनन क्षमता मे कमी आने के साथ-साथ उनके सेये जाने की अवधि भी बढ जाती है

आहार मे फ्लोरीन की अधिकता होने से चूजो की वृद्धि रुक जाती है और अण्डे देने वाली मुर्गियाँ कम अण्डे देने के साथ ही अपना शरीर-भार खोने लगती हैं

लोहा तथा ताँबा रक्त मे उचित मात्रा मे हीमोग्लोबिन बनने के लिये अनिवार्य है आहार मे इन खनिजो की न्यूनता के कारण चूजो की वृद्धि रुक जाती है और मृत्यु दर बढती है

चूजो के चुग्गे मे जस्ते की कमी से भी उनकी वृद्धि रुकती है, ठीक से पख नही उग पाते, जानुसन्धि बढ जाती है और विशेष रूप से टाँगो की चमडी उपडने लगती है

कहा जाता है कि गन्धक की न्यूनता के फलस्वरूप पक्षियो के सामान्य उपापचय मे बाधा पडती है

चूजो के लिये सेलिनियम अनिवार्य बतलाया जाता है मालिब्डेनम की न्यूनता से कुक्कुटो की वृद्धि रुकती देखी जाती है

कुक्कुटो के लिये विटामिन सी के अतिरिक्त अन्य सभी विटामिन अनिवार्य है विभिन्न विटामिनो की न्यूनता के कारण विशिष्ट प्रकार के लक्षण प्रकट होने है (सारणी 130)

अन्य कुक्कुट

बत्तख

भारत मे पाले जाने वाले कुक्कुटो मे लगभग 9% बत्तखे है जिनका पालन बहुधा पूर्वी तथा दक्षिणी राज्यो मे किया जाता है 1966 की पशुधन गणना के अनुसार भारत मे कुल 9,887 हजार बत्तखे थी जिनमे अधिकतम बत्तखे 5,330 पश्चिमी बगाल में थी और फिर क्रमश असम, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, केरल, बिहार और उडीसा मे इनकी सख्या कम होती गयी भारत मे बत्तखो और अन्य पक्षियो की (राज्यानुसार) कुल सख्या सारणी 131 में दी गयी है

यूरोप और सयुक्त राज्य अमेरिका की तरह भारत मे बत्तखो और हसो की माग भक्ष्य पक्षी के रूप में अधिक नही है यहाँ इनका पालन केवल अण्डो के लिये ही किया जाता है देहातो मे बत्तखे अधिक लोकप्रिय है क्योकि उनके अण्डो का औसत वार्षिक उत्पादन देशी मुर्गियो की अपेक्षा अधिक होता है. इनकी देखभाल भी मुर्गियो से कम करनी होती है अच्छी तरह पली, अच्छी तरह खिलायी-पिलायी गयी तथा स्वच्छ बाडे मे रखी

सारणी 130 – कुक्कुटो में विटामिन न्यूनता का प्रभाव*

	चूजे	वयस्क
विटामिन ए	वृद्धि रुकना, निद्रालुता और दुर्बलता, चाल मे तालमेल न बैठना, पक्षति का अस्त-व्यस्त और क्षीण हो जाना, अधिक आसू बहना, पलको के निचले भाग पर पनीर जैसा पदार्थ एकत्र होना, चूजो के श्वसन रोगो से ग्रसित होने की सम्भावना	दुर्बलता, क्षीणता, पक्षति का अस्त-व्यस्त हो जाना, अण्डा उत्पादन मे कमी, जनन-क्षमता भी कम हो जाना, आखें फूलना और कीचड से भरा होना.
विटामिन डी	सूखा रोग, टागो की दुर्बलता, विलम्बित वृद्धि, चोच और पंजो का नरम पडना, चाल मे तालमेल न बैठना.	अण्डा उत्पादन तथा जनन-क्षमता मे न्यूनता, पतले खोलो वाले अण्डो की सख्या मे वृद्धि, चोच, पजा तथा पखुरे की हड्डी का नरम पडना
विटामिन ई	गतिविभ्रम उत्पन्न करने वाला मस्तिष्क-विकार, बल आ जाने के कारण सिर मे पीछे की ओर आकुचन, चाल मे तालमेल न बैठना, फिर अवसन्नता के कारण मृत्यु	अण्डो की जनन-क्षमता का घटना, भ्रूणो की मृत्यु दर बढना, नर कुक्कुटों मे वृषण-व्यपविकास
विटामिन के	रक्त का थक्का न बनना, चोट लग जाने पर अत्यधिक मात्रा मे रक्त स्राव ओर चूजो मे अरक्तता, अण्डे से निकलते समय चोट आदि लग जाने से चूजो की तत्काल मृत्यु	रक्त स्राव
थायामीन	भूख का मिटना, पाचन क्रिया का क्षीण पडना, शारीरिक भार मे कमी, पक्षति का अस्त-व्यस्त होना, टागो का दुर्बल पडना, पदचाप अस्थिर, बहु तन्त्रिका शोथ	कलगी का नीला पडना, पाचन क्रिया क्षीण होना, आकुचन तथा टागो, पखो और गर्दन की प्रसारण पेशियो का पक्षाघात, जिसके परिणामस्वरूप कुक्कुट का स्वप्नदर्शी बनना, अत्यन्त दुर्बलता
राइबोफ्लैविन	विलम्बित वृद्धि, दुर्बलता, क्षीणता, चूजो को दस्त लगना, पजो का कुञ्चित होना, पखो का झुक जाना, मुख पर स्कैब और त्वचा-शोथ	अण्डो के उत्पादन मे कमी, भ्रूणो की मृत्यु दर मे वृद्धि और अण्डो की जनन-क्षमता मे कमी, जीर्ण-शीर्ण और टूटे पंख, ओजस्विता का विलोप
पेण्टोथैनिक अम्ल	वृद्धि विलम्बित हो जाती है, मृत्यु दर बढ जाती है, त्वचा शोथ के साथ पख भी टूटने लगते हैं पर्यस्थिशोथ हो जाता है. मुख के गिर्द स्कैब जैसे छाले पड जाते है	वृद्धि की गति धीमी, भगुर, आहार प्रवृत्ति, अण्डो की जनन-क्षमता मे कमी, ओजस्विता का ह्रास, भ्रूण अवस्था मे मृत्यु दर मे वृद्धि, अपव्ययता
नायसिन	जानुअस्थि का बढना, टागे झुकना, पर्यस्थिशोथ हो जाना, मुख फूलना, दस्त लगना, पख छितरना और त्वचा-शोथ.	छितरे पख, मुख-शोथ, त्वचा-शोथ
पायरीडॉक्सिन	विलम्बित वृद्धि, भूख का विलोप, तन्त्रिका विकार के कारण कुक्कुट का विना उद्देश्य के इधर-उधर भटकना और पख फडफडाना, कुक्कुट का इधर-उधर गिरना, सिर और पाव झटका देकर हिलाना	अण्डा उत्पादन मे कमी, शारीरिक भार मे कमी, अण्डो की जनन-क्षमता मे कमी, आहार मे कमी और अन्तत मृत्यु होना.
फोलिक अम्ल	वृद्धि की गति धीमी, पखो का छितरना, अरक्तता और पर्यस्थिशोथ	पख छितरना, रक्त क्षीणता, भ्रूण अवस्था मे मृत्यु दर का अधिक होना, पखो का वर्णक समाप्त होना, अण्डा उत्पादन मे कमी, त्वचा-शोथ तथा अण्डो की जनन-क्षमता मे कमी
बायोटिन	चोच के गिर्द, आखों, त्वचा और पाव पर त्वचा-शोथ, सहजात पेरोसिस, बायोटिन, अभाववाली मुर्गियो से उत्पन्न चूजो मे गतिविभ्रमता तथा विकलागता	
विटामिन बी$_{12}$	वृद्धि की गति का मन्द होना और मृत्यु दर अधिक.	ठीक से न चुगना, अण्डो की जनन-क्षमता घटना ओर भ्रूण अवस्था में मृत्यु दर बढना
कोलीन	वृद्धि की गति का मन्द होना, पर्यस्थिशोथ ओर टागे दुर्बल होना	अण्डा उत्पादन और जनन-क्षमता मे कमी

*Naidu, 1959, 171

बत्तखो के अण्डे मुर्गियो के अण्डो के समान ही पौष्टिक होते है फिर भी बत्तखो के अण्डे सस्ते बिकते है मुर्गी की अपेक्षा एक वर्ष में एक बत्तख 30 से 40 अण्डे अधिक देती है देश में अण्डो के कुल उत्पादन का लगभग 16% (40 14 करोड अण्डे) बत्तखो से प्राप्त होते है भार मे बत्तख का अण्डा मुर्गी के अण्डे (70 ग्रा) से 14–21 ग्रा अधिक रहता है बत्तखे दूसरे वर्ष और प्राय तीसरे वर्ष भी अच्छी तरह अण्डे देने लगती हैं इनका पालन किफायती होने के साथ-साथ इनमे रोग भी कम लगते है

सारणी 131 – भारत में बत्तखो तथा इतर कुक्कुटो की संख्या*

राज्य	बत्तख	इतर कुक्कुट
असम	2,203 3	233 5
आन्ध्र प्रदेश	381.7	20 5
उडीसा	161 4	194 0
उत्तर प्रदेश	64 7	49 0
केरल	318 8	3 0
गुजरात	6 4	1 3
जम्मू और कश्मीर	84 5	10 3
तमिलनाडु	537 9	61 4
त्रिपुरा	104 2	11 1
दिल्ली	1 8	0 1
पजाब	18 6	52 5
पश्चिमी बगाल	5,330 5	41 6
पाडिचेरी	3 6	0 5
बिहार	286 1	318 0
मणिपुर	33 0	3 6
मध्य प्रदेश	29 7	157 7
महाराष्ट्र	42 8	22 3
मैसूर	62.9	47.2
राजस्थान	3 9	0 8
हरियाणा	3 4	0 1
अन्य	1 2	0 1

*Indian Livestock Census 1966, Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Agriculture, Govt of India, 1972

जिससे इनकी मृत्यु दर भी अधिक नही होती वत्तखे विरले ही कुडक होती हैं इन्हे ऐसे स्थानो पर भी अच्छी तरह पाला जा सकता है जहाँ कोई अन्य पक्षी अथवा पशु लाभ सहित नही पाले जा सकते और न कोई खाद्य फसल ही ठीक से उपजायी जा सकती है वत्तखो के पालने के लिये दलदल और नदी के किनारे जैसे स्थान अति उत्तम होते है यहाँ इनको पर्याप्त मात्रा में आहार मिल जाता है जिसे गीले दाने, जडें इत्यादि डालकर इनकी मात्रा वढायी भी जा सकती है

वत्तखे अण्डो तथा चूजो के लिये पाली जाती है. अव भी छोटे-छोटे झुडो में पाली जाने के कारण भारत मे कुक्कुट पालको द्वारा अण्डे देने वाली तथा भक्ष्य पक्षियो की वशावलियाँ नही वन पायी है

वत्तखो की सर्वश्रेष्ठ नस्ल **कैम्पवेल** है लाभप्रद अण्डा-उत्पादन के लिये **खाकी** उत्तम किस्म है इनके और 18 अन्य प्ररूप और 34 किस्मे है किन्तु वे सभी **कैम्पवेल** और **खाकी** किस्मो मे घटिया वताये जाते हैं इसके वाद **ह्वाइट कैम्पवेल, डार्क-कैम्पवेल** तथा **इण्डियन रनर** नस्लो के नाम आते हैं **खाकी, कैम्पवेल** और **इण्डियन रनर**, श्वेत तथा वादामी श्वेत होती है. ये दोनो ही नस्ले अण्डे के लिये उत्तम मानी जाती हैं वत्तखो की देशी नस्ले निम्न प्रकार हैं श्वेत रग की **इण्डियन रनर**, पीली चोंच तथा रग मे हल्की भूरी किन्तु काले पखो के सिरे वाली **सिलहट मेटा**, काले शरीर किन्तु श्वेत छाती तथा कठ वाली **नागेश्वरी** **खाकी कैम्पवेल** प्राय द्विकाजी नस्ल मानी जाती है **मसकोवी**, **पेकिन** और **आलजवरी** खायी जाने वाली लोकप्रिय नस्लें हैं कभी-कभी चूजे प्राप्त करने के उद्देश्य मे इन नस्लो में सकरण भी कराया जाता है यूरोप और सयुक्त राज्य अमेरिका मे जहाँ वत्तख चूजो का जनन अत्यन्त सुव्यवस्थित ढग मे किया जाता है, **मसकोवी** तथा **पेकिन** नस्लो के पक्षी सर्वाधिक लोकप्रिय भक्ष्य पक्षी हैं विभिन्न नस्लो की मादा तथा नर वत्तखो का सामान्य भार क्रमश इस प्रकार है **इण्डियन रनर**, 1.58 और 1 81, **खाकी कैम्पवेल**, 2 03 और 2 27, **पेकिन**, 3 6 और 3 6, **आलजवरी**, 4 08 और 4 54 किग्रा

वत्तखो की अनेक दिखावटी किस्में चिडियाघरो और वानस्पतिक उद्यानो, पार्को तथा मृगवनो में छोडी जाती हैं इनमें से कुछ विशेष कर **रुएन** तथा **शेलड्रेक** अत्यन्त सुन्दर और छोटे आकार की वत्तखें हैं

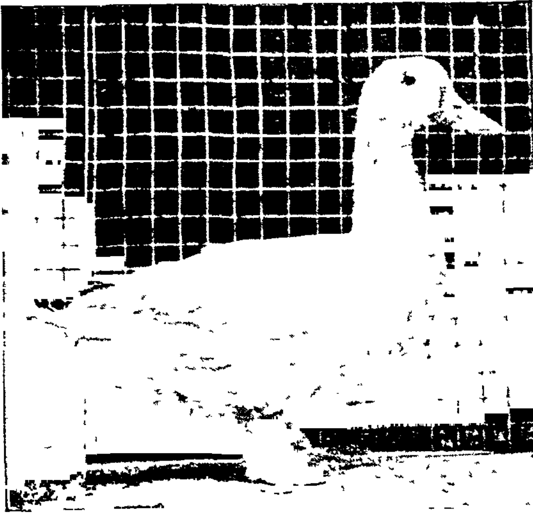
वत्तखो को रहने के लिये अपेक्षतया साधारण आड की आवश्यकता पडती है वत्तखें प्रात काल खुले स्थान पर अण्डे देती हैं इसलिये जव तक ये अण्डा न दे लें, इन्हें आड में या वाडे में रखा जाता है वत्तखो के पालने की दो विधियाँ हैं मुक्त अथवा घास मैदान मे तथा पिछवाडे दूसरी विधि अधिक प्रचलित है वत्तखें न तो वैटरियो में और न गहरी विछाली में ही जीवन विताने की अभ्यस्त हैं

अण्डे देने वाली सामान्य वत्तख का आकार मझोला, अस्थि रचना सुन्दर, गर्दन पतली, कन्धे चौडे, अगला भाग पूर्ण, पीठ से सीने तक का भाग गहन, पक्षति कसी हुयी और सुथरी होती है. स्थूल आकार के वे पक्षी जिनकी गर्दन पर पख अधिक होते हैं, टाँगे और खोपडी की अस्थियाँ मोटी होती हैं अथवा जिनके सीने पर मास वहुत कम रहता है जनन के लिये उपयुक्त नही होते.

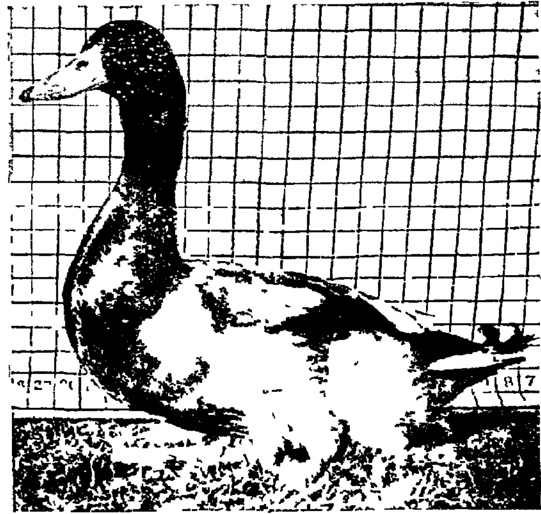
एक नर वत्तख का सगम 8 मादा वत्तखो से तथा भारी नस्लों में 4–6 वत्तखो से कराया जाता है जव अण्डे चाहने हो तव उसमे लगभग 8 सप्ताह पूर्व सगम कराया जाता है प्रजनक पक्षियो को खुले घास के मैदानो की आवश्यकता होती है उनसे जल्दी-जल्दी प्रजनन नही कराना चाहिये

अण्डो के सेने का कार्य या तो इनक्यूवेटरो मे अथवा मुर्गियो से लेना चाहिये सेने के लिये जिन अण्डो का चुनाव किया जाता है उनके लिये मुर्गी के अण्डो के समान ही चुनाव की कसौटी अपनायी जाती है. **मसकोवी** नस्ल मे अण्डे सेने की अवधि 35 दिन तथा अन्य नस्लो में 28 दिन है प्रमुख आवश्यकतायें इस प्रकार हैं मुर्गी के अण्डे की अपेक्षा ताप कम किन्तु आर्द्रता अधिक चाहिये. अण्डो को 7 दिन से अधिक का नही होना चाहिये और नस्ल के अनुसार 70–84 ग्रा तक भार का होना चाहिये

इनक्यूवेटर में पहले और दूसरे सप्ताह मे 38 3°, तीसरे सप्ताह में 38 9° तथा शेष काल मे 39 4–40° तक ताप होना चाहिये, जिस कमरे मे इनक्यूवेटर रखा हो उसका ताप 15 6–21 1° होना चाहिये अण्डो का परीक्षण 7वें तथा 20वें दिन करना चाहिये, आर्द्रता अधिक होनी चाहिये, पहले 24 दिनो तक इसे 60% से वढाकर 70% कर देना चाहिये और फिर जव अण्डे फूटने लगें तो इसे

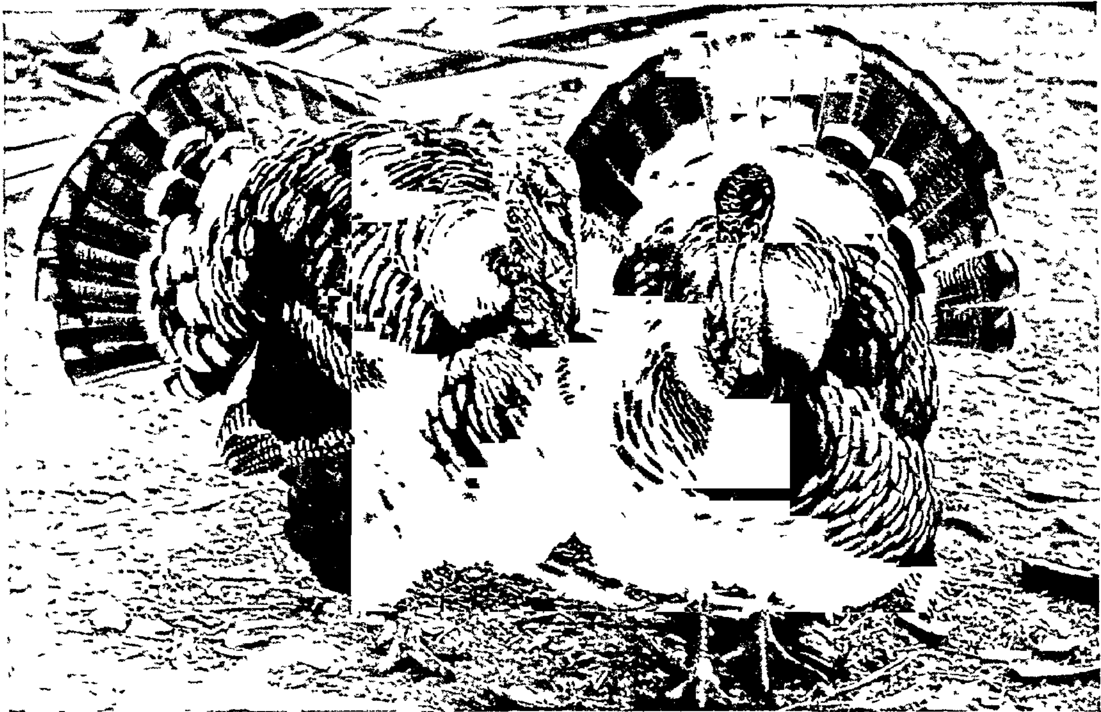


देशी रनर



खाकी कैम्पबैल

बत्तखें



कांस्य रंग की चौड़े सीने वाली टर्कियां (पीरू)

पुन 65% तक घटाकर बाद मे 70% तक बढा देना चाहिये अन्तिम 4–5 दिनो को छोडकर सामान्यत अण्डो को दिन मे दो बार घुमा-घुमा कर देख लेना चाहिये अण्डा फूटने से दो-तीन दिन पहले अण्डो के खोल छील दिये जाते है उसके बाद उन्हे हिलाना-डुलाना नही चाहिये

अण्डा फूटने के बाद नवजात बत्तख-चूजो को सुखाकर, झाड-पोछ करके उन्हे जाली लगे कक्षो मे स्थापित कर दिया जाता है ब्रूडर को चलाकर पहले ताप 32 2° और एक सप्ताह के बाद इसे घटा कर 26 7° और दूसरे सप्ताह के अन्त में इसे 21 1° कर लेना चाहिये गर्मी की ऋतु मे चूजो से पर्याप्त ऊष्मा उत्पन्न होती है जिसके कारण इन्हें किसी प्रकार के ऊष्मन की आवश्यकता नही पडती

बत्तख पालन का सबसे सस्ता ढग फूट सकने वाले अण्डे खरीद कर किसी अच्छी मुर्गी को बिठाकर अथवा इनक्यूबेटर मे रखकर सेने का है एक अण्डजनक बत्तख प्राप्त करने के लिये कम से कम तीन अण्डे इनक्यूबेटर मे रखते है औसतन 100 मे से 80 अण्डे ससेचित होते हैं और इनमे से सामान्यत 65 तो फूट जाते है 65 चूजो मे से केवल 60 ही अण्डजनक अवस्था तक बढ पाते हैं पालने के लिये 12 सप्ताह की आयु तक के चूजे भी खरीदे जा सकते हैं यदि ठीक से पाला जाय तो चूजे 16–18 सप्ताह मे वयस्क हो जाते हैं

4–6 सप्ताह की आयु के बत्तख-चूजो को बत्तख घरो मे आसानी से स्थानान्तरित किया जा सकता है प्रजनको के लिये जालीदार फर्श ठीक रहता है सूखे मे चूजे आराम से रहते है और वे गीले हो जाने वाले तिनको के फर्श की अपेक्षा कडे फर्श पर रहना अधिक पसन्द करते है बत्तख-चूजो को विशेष प्रकार से बने छोटे घरो मे रखना चाहिये जिनमे लकडी का अथवा जालीदार फर्श हो और जिन्हे बाडे में सुगमता से खुले स्थानो पर ले जाया जा सके चूजो को 6 सप्ताह की आयु से पहले पानी मे नही तैरने देना चाहिये

ब्रूडर अवस्था पार कर लेने के बाद 4–5 सप्ताह के चूजो को सायबानो मे रखा जा सकता है ये 50–60 के झुडो मे अच्छी तरह रह लेते है ऐसे एक झुड के लिये 3 6–1 8 मी का सायबान काफी होता है इनके लिये चुग्गे और जल की मात्रा, मुर्गी के चूजो के लिये आवश्यक मात्रा की दुगुनी होनी चाहिये रात मे बत्तख के चूजो को बन्द करके रखना चाहिये

प्रारम्भ मे चूजो को रोटी के मोटे टुकडे तथा स्वच्छ जल दिया जाता है किन्तु कुछ लोग पहले दो दिनो तक इन्हे दूध पिलाना पसन्द करते है इनका पोषण साधारणत मुर्गियो के चूजो की ही तरह किया जाता है तीव्र वृद्धि के लिये इनके चुग्गे में प्रोटीन पर्याप्त मात्रा मे होनी चाहिये सयुक्त राज्य अमेरिका और कई यूरोपीय देशो मे इन्हे छोटी-छोटी गोलियो के रूप मे आहार दिया जाता है इनमे 70% तक प्रोटीन रहता है इसके अतिरिक्त राइबोफ्लैविन और मैंगनीज सल्फेट पर्याप्त मात्रा मे खिलाये जाते है इनको सूखी या गीली दलिया भी खाने को दी जाती है सूखी दलिया के चुग्गे मे अन्न और दलिया में 2 1 का अनुपात रहता है किन्तु गीली दलिया में यह अनुपात 3 · 1 रहता है इससे अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं इसे दिन मे दो बार देना चाहिये उन्हे हरी चीजें भी खिलानी चाहिये जब वे एक सप्ताह के हो जायें तो चूजो को मक्का का महीन दलिया तथा दो सप्ताह के होने पर शुक्ति-कवच का चूर्ण खिलाना चाहिये और ज्यो-ज्यो पक्षी की आयु बढती जाय दलिये और कवचो के आकार को बढाते जाना चाहिये

तैरने के लिये पानी की किसी भी समय आवश्यकता नही होती किन्तु पीने तथा आँखो को धोने के लिये यह अत्यावश्यक है इस पानी को साफ और ताजा तथा पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होना चाहिये नादो में इतना पानी तो रहना ही चाहिये कि पक्षी नहा सकें

बत्तखो को बहुत अधिक रोग नही होते लेकिन इनकी वृद्धि जल्दी-जल्दी होने के कारण इन्हे असन्तुलित आहार से मुर्गियो की अपेक्षा अधिक हानि होती है ये लवण-विषो तथा अपर्याप्त आहार के प्रति सवेदनशील होती हैं इन्हें प्रचुर सूर्य का प्रकाश तथा पर्याप्त सवातन आवश्यक है गन्दे पोखरो से भी इनमे आहार-विषाक्तता फैल सकती है ग्रीष्म ऋतु मे छाया तथा पेय जल के अभाव मे बडी तादाद मे पक्षी मरने लगते है

विटामिन ए, डी, राइबोफ्लैविन (विटामिन बी$_2$) तथा विटामिन ई के अभाव से न्यूनता रोग उत्पन्न होते हैं हरे चुग्गे और घोघा-चर्ण के अभाव मे इनमें कोटर-शोथ उत्पन्न होता है मुर्गियो मे होने वाले चिचडी (टिक) ज्वर, स्टेगर (डगमगाना), पुलोरम रोग, कॉक्सीडिआ रुग्णता तथा निमोनिया जैसे कतिपय रोग बत्तखो में भी पाये जाते हैं

उपयुक्त पालन-गृह बनाकर, सुव्यवस्थित प्रबन्ध और सन्तुलित आहार देकर बत्तखो के तमाम रोगो पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है

हंस

हसो का पालन मुख्यत: खाद्य पक्षी के रूप मे किया जाता है किन्तु **चीनी**-जैसी कुछ नस्ले अण्डा देने के लिये भी विकसित की गयी हैं हसो को बन्दी बनाकर नही रखा जा सकता ये स्वच्छन्द होकर विचरने वाले पक्षी हैं और ये स्वय गर्मी से अपनी रक्षा करने मे समर्थ है.

हसो की **टोलूज़**, **एम्बडेन** और **चीनी** नस्ले यूरोपीय देशो मे अत्यन्त लोकप्रिय हैं **एम्बडेन** विशुद्ध श्वेत रग की नस्ल है जो शीघ्र ही वयस्क हो जाने के लिये प्रसिद्ध है **टोलूज़** बडा पक्षी है और मन्द गति से बढता है भारत मे दो प्रकार के हस पाये जाते हैं श्वेत पीठ वाले तथा भूरी पीठ वाले दूसरे प्रकार मे पेट तथा गर्दन का रग सफेद और पख भूरे रग के होते हैं नर भार में 3 4–3 6 किग्रा और मादा 3 0–3 4 किग्रा होती है मादा प्राय वर्ष मे दो बार, हर बार आठ से दस तक अण्डे देती है जिसमें से प्रत्येक अण्डे का औसत भार 112–116 ग्रा होता है

हस गन्दे पक्षी है, इसलिये इन्हे फार्म की इमारतो से दूर रखना चाहिये ये अत्यन्त सहिष्णु हैं किन्तु तेज धूप और भारी वर्षा से रक्षा के लिये इन्हे पालन-गृह चाहिये सभी उम्र के हस घास खाते हैं यदि तैरने के लिये तालाब न हो तो भी नहाने आदि के लिये पर्याप्त गहराई का पानी होने पर इन्हे पाला जा सकता है इन्हें तालाबो, नदियो अथवा पोखरो के पास रखना अच्छा समझा जाता है क्योकि ऐसी धारणा है कि ऐसे स्थानो मे रहने वाले हस अपेक्षाकृत अधिक जननक्षम होते हैं.

सगम के समय हसो को कम से कम दो वर्ष की आयु का होना चाहिये और समान आयु वाले नर तथा मादा के बीच सगम कराना चाहिये 5–7 मादा पक्षियो से सगम करने के लिये एक नर होना चाहिये

सेने के लिये मादा को एकान्त में रखे एक बडे बक्से मे (0.76 मी लम्बा और इतना ही चौडा तथा 0 91 मी ऊँचा) बैठाया जाता है अण्डो का चुनाव तथा उपचार बत्तखो के अण्डो के ही समान किया जाता है सामान्यतया एक मादा के नीचे चार से अधिक अण्डे नही रखे जाते इन पक्षियो के नीचे 28–30 दिन मे अण्डे फूटते है, 26वे दिन इनका खोल फूटने लगता है खोल फूटने के 24 घण्टे बाद अण्डो से चूजे बाहर आ जाते है इनक्यूबेटरो मे भी 37 8° पर अण्डो से बच्चे निकाले जा सकते है इसमे बत्तखो के अण्डो के लिये आवश्यक आर्द्रता के तुल्य आर्द्रता रहनी चाहिये हस के अण्डो को दिन में कम से कम चार बार फिराना चाहिये

मुर्गियो के पालने वाले दरबे (ब्रूडर) हस के चूजो के लिये यथेष्ट होते है हस के 25 चूजो को उतना ही स्थान चाहिये जितना कि एक दिन के मुर्गी के 100 चूजो को हस के चूजो का *पालन-पोषण बत्तखो के चूजो की भाँति ही किया जाना चाहिये* 10 सप्ताह से कम आयु के चूजो को पानी मे तैरने नही देना चाहिये भारी वर्षा तथा तेज धूप से इनकी रक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये एक स्थान पर 20–25 से अधिक पक्षी नही पालने चाहिये

घास के अभाव में मास उत्पादन के लिये इन्हे पेला हुआ दाना अथवा हरा चारा अधिक खिलाना चाहिये मारने के 6 सप्ताह पूर्व से ही विशेष भीगा हुआ दलिया खिलाना चाहिये

पीरू

पीरू ऐसे कुक्कुट है जिन्हे विशेषतया बडे दिन (क्रिसमस) मे खाने के लिये पाला जाता है यद्यपि पक्षी के आकार का कोई महत्व नही है फिर भी पुराने जमाने मे बडे आकार के पक्षियो की अधिक माँग होती थी नारफोक, **ब्रिटिश ह्वाइट, वेल्टसविले स्माल ह्वाइट** तथा ब्राड ब्रेस्टेड ब्रान्ज सामान्य पालतू नस्ले है

जब पीरू 20–28 सप्ताह के हो ले तभी इन्हे बेचना चाहिये पीरू जब तक 3 वर्ष के नही हो जाते तब तक वयस्क नही होते तीन वर्ष से कम आयु की मादा पक्षियो मे प्रजनन नही करवाना चाहिये अच्छी तरह से पाला-पोषा दो-वर्षीय नर पीरू वयस्क मादा के साथ सगम योग्य होता है

पीरुओ की व्यवस्था उनके पोषण, निवासस्थान, पालन, तथा रोगो के नियन्त्रण के मौलिक नियम, अन्य कुक्कुट पक्षियो जैसे ही होते है पहले पीरुओ को हसो की तरह खुले स्थानो मे रखा जाता था किन्तु अब इन्हे बाडो मे पाला जा सकता है इनके लिये भी हसो के लिये प्रयुक्त तरह के सायबान कामचलाऊ हो सकते है किन्तु इन्हे ऊँचे स्थानो पर बनाना चाहिये इनके अड्डे भूमि से 0 6 मी ऊँचाई पर होने चाहिये छत की औसत ऊँचाई 2 4 मी से कम नही होनी चाहिये प्रत्येक पीरू को 0 74 वमी क्षेत्रफल मिलना चाहिये मुर्गी की अपेक्षा पीरू को तिगुने स्थान की आवश्यकता होती है

मादा पीरुओ से सगम होने के पूर्व नर पीरुओ को कृत्रिम प्रकाश मे रखा जाता है मादा प्रजनको को भी 4 सप्ताह तक इसी प्रकाश मे रखा जाता है ऐसा करने से वे जल्दी अण्डे देने लगती है नर द्वारा मादा पक्षियो को घायल होने से बचाने के लिये कई पालक उनकी पीठ पर विशेष प्रकार की बनी काठी लगा देते है, अन्यथा अण्डो की निषेचन दर बहुत कम हो जाती है प्रत्येक प्रजनक पक्षी को विभिन्न विटामिनो से युक्त 140–168 ग्रा दलिया दिया जाता है

पीरू के अण्डे इनक्यूबेटर मे अथवा मुर्गी के नीचे रखकर सेये जा सकते है इन अण्डो के फूटने का क्रम हस के अण्डो जैसा ही होता है पीरू के अण्डो को फूटने मे 28 दिन लगते है

पक्षियो को शुष्क स्थान पर पालना चाहिये पहले दो सप्ताह तक इन्हे *एक छोटे घेरे में रखना चाहिये और 4* सप्ताह बाद से इन्हे देखभाल करने वाली मुर्गी के साथ बाहर निकलने देना चाहिये जब तक चूजे आठ सप्ताह तक के नही हो जाते तब तक उनकी रक्षा की आवश्यकता बनी रहती है 10–12 सप्ताह तक इन्हें बन्द रखना चाहिये इसके बाद इन्हें मैदान में स्वतन्त्र रूप से विचरने के लिये छोडा जा सकता है

पीरुओ का आहार उनकी आयु के अनुसार बदलता रहता है 20वें से 24वे सप्ताह में इनको सूखा अथवा भीगा हुआ दलिया प्रचुर मात्रा मे खिलाया जाता है इनके लिये विटामिन ए और डी, राइबोफ्लैविन और विटामिन बी$_{12}$ भी आवश्यक है पीरुओ को भी, कुक्कुटो के लिये सस्तुत प्रतिजैविक तथा कॉक्सिडिओस्टेट दिये जाते है पीरू-चूजो के लिये हरे आहार की आवश्यकता होती है इन्हे सभी तरह के कोमल हरे पदार्थ खिलाये जा सकते है तीन महीने तक प्रतिदिन इन्हे प्याज की हरी पत्तियाँ काट कर खिलायी जा सकती है चूजो को मोटा बनाने के लिये मखनियाँ दूध अत्यन्त लाभकारी है पीरुओ को खिलाना लाभदायक इसलिये है कि मास की कोटि पर इन पक्षियो का मूल्य निर्भर करता है-

भारत मे अन्य कुक्कुटो (मुर्गियो के अतिरिक्त) के विकास पर बहुत कम ध्यान दिया गया है तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत एक क्षेत्रीय बत्तख प्रजनन केन्द्र और दो बत्तख प्रसार केन्द्र खोले गये चौथी पचवर्षीय योजना मे दक्षिणी क्षेत्र मे एक अन्य क्षेत्रीय बत्तख प्रजनन केन्द्र और केरल, तमिलनाडु, उडीसा, पश्चिमी बंगाल, मध्य प्रदेश, असम तथा मणिपुर, त्रिपुरा और अण्डमान-निकोबार द्वीपसमूह में कई छोटे-छोटे बत्तख-प्रजनन फार्म खोलने का विचार है

कुक्कुट उत्पाद

अण्डे तथा मास, कुक्कुटो के दो प्रमुख उत्पाद है इनके अतिरिक्त उनसे पख, खाद आदि उपोत्पाद भी प्राप्त होते है भारत मे कुक्कुटो का प्रजनन और पालन मुख्यत अण्डो के लिये ही किया जाता है बूढे कमजोर तथा अनावश्यक पक्षियो को मास के लिये बेच दिया जाता है

कुक्कुटो के अण्डे और मास, प्रोटीनो तथा विटामिनो के सबसे उत्तम स्रोत है इस समय भारत मे प्रति व्यक्ति एक वर्ष मे 12 अण्डे खाने को मिलते है, जबकि यही सख्या सयुक्त राज्य अमेरिका मे 295, कनाडा मे 282 और पश्चिम जर्मनी मे 245 है भारत मे प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष 131 ग्रा कुक्कुट मास उपलब्ध होता

है सयुक्त राज्य अमेरिका मे यही मात्रा 13 18 किग्रा और यूरोप के देशो मे 2 47–5 95 किग्रा है

अण्डे

अण्डे सर्वाधिक पचनीय पशु-प्रोटीन के उत्तम स्रोत है ये कई प्रकार के पकवानो को स्वादिष्ट बनाने वाले होते है ये फॉस्फोरस, लोह, राइबोफ्लैविन तथा विटामिन ए के भी उत्तम स्रोत है

समान भार लेने पर अण्डो मे शूकर या कुक्कुट मास के बराबर, गोमास का ¾ तथा सम्पूर्ण दूध के पनीर का ⅝ भाग पशु-प्रोटीन पाया जाता है अण्डे पकाने पर स्कदित हो जाते है तलने, तोडकर पकाने, उबालने, गर्म जल मे पकाने तथा लचीला बनाकर खाने पर ये क्षुधावर्धक होते है ये एजिल-केक तथा स्पज-केक जैसे खाद्य मे किण्वीकारक की तरह, लपसी और मीठी पूरी मे सयोगकर्त्ता की तरह, फिरनी को गाढा बनाने और पाई मे मलाई भरने तथा सलाद के मसाले मे पायसीकारक की तरह कार्य करते है ये रोटी के टुकडो को परस्पर चिपकाये रखने तथा उन पर परत जमाने के लिये और मास खण्डो या कबाबो पर चिपकाने का कार्य करते है आइसक्रीम अथवा कैण्डी मे डाले जाने पर अण्डे उनके बडे क्रिस्टल नही बनने देते अथवा बहुत कम बनने देते है अण्डे, सलाद तथा अन्य भोज्य पदार्थो को सजाने तथा स्वादिष्ट बनाने के लिये भी प्रयुक्त किये जाते है अण्डो का ऐल्बुमिन, यदि थोडी मात्रा मे डाला जाय तो कॉफी अथवा शोरबा को निर्मल बनाता है चमडा उद्योगो मे अण्डे की जर्दी का प्रयोग उसके पायसीकारक गुणो के कारण किया जाता है अण्ड-श्वेत मे स्कदक तथा आसजक गुण होने के कारण इसका उपयोग कई अखाद्य उद्योगो मे किया जाता है

सारणी 132 – भारत में मुर्गी तथा बत्तख के अण्डो का अनुमानित वार्षिक उत्पादन *

(हजार मे)

राज्य	मुर्गी के अण्डे	बत्तख के अण्डे	योग
अण्डमान, निकोबार द्वीप समूह	974	146	1,120
असम	1,02,290	85,439	1,87,729
आन्ध्र प्रदेश	2,91,599	25,702	3,17,301
उडीसा	1,00,998	7,076	1,08,074
उत्तर प्रदेश	98,180	3,412	1,01,592
केरल	2,30,062	36,348	2,66,546
गुजरात	46,816	249	47,065
जम्मू और कश्मीर	51,384	3,385	54,769
तमिलनाडु	2,44,920	36,348	2,81,268
त्रिपुरा	7,405	676	8,081
दिल्ली	1,300	12	1,312
पजाब	33,345	832	34,177
पश्चिमी बगाल	1,74,007	1,93,474	3,67,481
बिहार	1,87,152	14,800	2,01,952
मणिपुर	9,123	1,886	11,009
मध्य प्रदेश	92,836	899	93,735
महाराष्ट्र	2,65,249	2,405	2,67,654
मैसूर	1,84,880	917	1,85,797
राजस्थान	9,253	132	9,385
लक्षदीव तथा अन्य द्वीप समूह	208		208
हिमाचल प्रदेश	2,479	5	2,484
योग	21,34,460	4,14,279	25,48,739

*विपणन एवम् निरीक्षण निदेशालय, खाद्य एवं कृषि मन्त्रालय (कृषि विभाग), नागपुर.

खाद्य एव कृषि मन्त्रालय के विपणन एव निरीक्षण निदेशालय, नागपुर के अनुसार 1956 की पशुगणना के आधार पर भारत में अण्डो का वार्षिक उत्पादन मुर्गियो से 175 76 करोड और बत्तखो से 32 77 करोड था जो 1961 मे क्रमश 213 44 तथा 41 43 करोड अर्थात् कुल मिलाकर 254 87 करोड हो गया 1961 की पशुगणना के आधार पर भारत मे मुर्गियो और बत्तखो के अण्डो का राज्यानुसार वार्षिक उत्पादन सारणी 132 मे दिया गया है अण्डो का वर्तमान अनुमानित वार्षिक उत्पादन 512 8 करोड है

अनुमान है कि अण्डो के कुल उत्पादन का लगभग 60% शहरी बाजारो मे बिकने के लिये जाता है जिसमे से 95% अण्डे पकाकर अथवा अन्य रूप मे खाने तथा शेष 5% मिष्ठान्न, पकवान आदि बनाने के काम मे आते है चिक्कणन, जिल्दसाजी, ओषधि आदि बनाने मे ये अपेक्षाकृत बहुत कम इस्तेमाल होते है

सरचना

अण्डे मे खोल, झिल्ली, सफेदी (ऐल्बुमिन) तथा जर्दी होती है मुर्गी तथा बत्तख के साधारण अण्डे में ऐल्बुमिन, 57, जर्दी, 32 और खोल, 11% रहता है

अण्डे का खोल दुर्नम्य किन्तु सरध्र और मुख्यतया अकार्बनिक लवणो (विशेषकर कैल्सियम कार्बोनेट) से बना हुआ होता है भ्रूण के श्वसन के लिये पर्याप्त सरध्र होते हुये भी सूखा होने पर यह खोल सूक्ष्मजीवो को प्रविष्ट नही होने देता और अण्डे के भीतर की आर्द्रता को भाप बनकर उडने से रोकता है खोल की सतह उपचर्म से ढकी रहती है बत्तखो के अण्डो मे इस उपचर्म के साथ कुछ अन्य चर्बीदार पदार्थ भी लगे रहते हैं खोल के अन्दर दो चीमड तन्तुमय झिल्लियाँ रहती हैं इनमे से एक कवच से तल तथा दूसरी अण्डे के छोटे सिरे पर मोटे श्वेत भाग (ऐल्बुमिन) से लगी रहती है जब ठण्डा होने तथा नमी के वाष्पन से खोल के भीतर के पदार्थ सिकुडते है तो ये झिल्लियाँ पृथक् हो जाती है और अण्डे के बडे सिरे पर वायु-स्थान बन जाता है

अण्डे की सफेदी या ऐल्बुमिन मे बाहरी श्वेत तरल, बीच मे गाढा सफेद अश जो जर्दी को घेरे रहता है, गाढे सफेद अश के भीतर एक पतली सफेद परत तथा अण्डे के प्रत्येक सिरे पर चैलेजी नामक दो ततुमय सरचनाये होती है जो जर्दी से लेकर अण्डे के प्रत्येक सिरे तक सर्पिल आकार मे फैली रहती है और जर्दी को स्थिर रखती है मुर्गी के अण्डे मे सफेद भाग कुछ-कुछ हरिताभ पीला होता है और आन्तरिक गाढा भाग मेघश्याम रग का होता है बत्तख का अण्ड-श्वेत रगहीन और पारदर्शक होता है

अण्डे की जर्दी (पीतक) लगभग गोलाकार होती है चैलेजी और मोटे श्वेत भाग की सुनम्यता के कारण यह खोल के बीचोबीच स्थिर रहता है यदि अण्डे को लम्बी धुरी पर घुमाया जाये तो इसके साथ पीतक भी घूमता है और एक अधिक चक्कर लगाकर पीतक चैलेजो की ऐठन से रुक जाता है

कई कारणो से विशेषतया विभिन्न नस्लो और विभेदो के अनुसार अण्डो के भार मे काफी अन्तर देखा जाता है उत्तरी अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप के देशो मे अण्डो का भार 47–70 ग्रा तक होता है किन्तु भारत, पाकिस्तान और मिस्र मे एक साधारण अण्डे का भार लगभग 35 ग्रा होता है बत्तख के अण्डो के भार मे भी भिन्नता पायी जाती है यह मुर्गी के अण्डे के भार से लगभग 30% अधिक होता है

परिरक्षण एव ससाधन

उन्नत देशो मे स्वच्छ तथा पौष्टिक अण्डो के उत्पादन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है भारत मे लगभग 25% अण्डे ग्राहको तक अच्छी दशा मे नही पहुँच पाते हैं, वे उत्पादन स्थान से खपत के स्थान तक परिवहन मे खराब हो जाते हैं वे बासी हो जाते है, उनमे भ्रूण अथवा फफूदी विकसित हो जाती है या फूट जाने के कारण दूषित हो जाते हैं अनुमान है कि अण्डो के 5% का जीवाणु सदूषण से और शेष 20% का अन्य कारणो से क्षय होता है इससे लगभग 5 6 करोड रुपये की वार्षिक हानि होती है इसके अतिरिक्त अनेक बार दूषित अण्डे जनसाधारण के स्वास्थ्य के लिये भी सकट बन जाते है

अण्डो को दिये जाने के कुछ ही घण्टो के बाद उन्हे एकत्रित करके 16° ताप और 75% सापेक्ष आर्द्रता वाली विशेष रूप से बनी अण्डे की कोठरी मे रखकर यथाशीघ्र ठण्डा कर लेना चाहिये ठण्ड के दिनो मे भी यदि घोसलो मे अण्डे अधिक समय तक पडे रहे तो वे खराब हो जाते हैं अण्डो को जालीदार टोकरियो में दिन मे कम से कम 2–3 बार एकत्र करना चाहिये

शीतागार – पश्चिमी देशो मे अण्डो को शीतागारो मे 0° ताप और 85% सापेक्ष आर्द्रता पर लगभग 9 महीनो तक अच्छी तरह रखा जाता है किन्तु इस प्रकार के परिरक्षण मे अण्डो का वायु-स्थान बढ जाता है जो इनकी कोटि का व्यापारिक मापदण्ड होता है यदि गैस आगारो मे जिनकी वायु मे 60% कार्बन-डाइ-ऑक्साइड होता है 0° पर परिरक्षण किया जाय तो वायु-स्थान नही बढता भारत मे प्रशीतन की सुविधाये पर्याप्त न होने के कारण शीतागारो मे अण्डो का परिरक्षण बडे पैमाने पर अभी प्रारम्भ नही हो सका है

सफाई – ठण्डे पानी से धोने की बजाय गन्दे अण्डो को ऊपर से साफ करने वाले तथा प्रक्षालक विलयनो से (जैसे NaOH का 1% विलयन) अच्छी प्रकार साफ किया जा सकता है इनके खोलो को भीगे कपडे अथवा रेगमाल से भी रगड कर साफ किया जा सकता है हाल ही मे किये गये सर्वेक्षण से पता चला है कि ऊपर से गन्दे अण्डो पर **स्ट्रेप्टोकोकस, स्टेफिलोकोकस, माइक्रोकोकस, बैसिलस, स्यूडोमोनास, एक्रोमोबेक्टर, एशेरिशिया प्रोटियस, ईअरोबैक्टर** तथा **साल्मोनेला** वश के सूक्ष्मजीव रहते है मिट्टी लगे अण्डो को गरम जल से (40 5–43° ताप) जिसमे साफ करने वाले पदार्थ तथा प्रक्षालक मिले हो, 4–5 मिनट तक धोकर साफ कर लेना चाहिये केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर में अण्डा धोने का पाउडर तथा धोने के उपकरण तैयार किये गये हैं इस उपकरण से एक घण्टे मे 1,000–1,500 अण्डे धोये जा सकते हैं और इसे अण्डो को व्यापारिक पैमाने पर धोने के लिये व्यवहृत किया जा सकता है

गर्मियो मे वायुमण्डल का ताप अधिक होने से निषेचित अण्डे मे दिये जाने के दो दिन बाद ही भ्रूण विकसित हो जाते है जिससे वे खाने के लायक नही रह पाते ऐसे अण्डो को 15 मिनट तक गरम जल (57–63°) मे रखकर पुन अनिषेचित किया जा सकता है. इस ताप पर कृमि अथवा समेचित अण्डो के भ्रूण तथा खोल के ऊपर या भीतर लगे कुछ जीवाणु मर जाते हैं अनिषेचित अण्डा असमेचित अण्डे जैसा ही होता है क्योंकि इसमे भ्रूण नही विकसित हो पाता और यह लम्बी अवधि तक अच्छी अवस्था मे रह सकता है

अण्डो को दीर्घ अवधि तक अच्छी प्रकार से रखने के लिये ऊष्मा उपचारित कर उन पर चूने की अथवा तेल की सतह चढाई जाती है जिससे खोल के छिद्रो से वाष्पीकरण द्वारा आन्तरिक आर्द्रता तथा कार्बन-डाइऑक्साइड बाहर नही आ पाते अण्डो पर चूने की सतह चढाने के लिये उन्हे चूने के पानी मे (जिसमे थोडा नमक भी मिला होता है) 18 घण्टे तक रखा जाता है

अण्डो पर तेल लगाना एक कम खर्चीली विधि है और व्यापक रूप से उपयोग मे लायी जाती है अमेरिका मे इसके लिये जिस अण्डे के लेप या ससाधन तेल का प्रयोग किया जाता है वह पैराफिन से विशुद्ध किया हुआ श्वेत रग का खनिज तेल होता है जिसे कार्नेशन तेल कहते है भारत मे इसके स्थान पर नारियल का तेल सफलतापूर्वक प्रयोग मे लाया गया है हाल ही में केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर ने अण्डो को लम्बी अवधि तक अच्छी तरह रखने के लिये इन पर तैलीय आधार का एक पेट्रोल उत्पाद जिसमें कुछ कवक और जीवाणुनाशी द्रव्य भी मिलाये जाते है, लगाने की एक विधि ढूढ निकाली है इस विधि मे अण्डो को बॉस अथवा तार की बनी टोकरी मे डालकर प्रयोग मे लाये जाने वाले तेल मे भरे बर्तन मे 5–10 सेकड के लिये डुबाया जाता है बाहर निकालने के पश्चात् टोकरी को लगभग एक घटा के लिये टाँग देते हैं इससे टोकरी मे से टपकने वाले तेल को एकत्र करके पुन प्रयोग मे लाया जा सकता है इस समय पखो के उपयोग द्वारा अण्डो को रखने के लिये जल्दी से सुखाया जा सकता है टोकरी से गिरे तेल को कभी-कभी छानकर तथा जीवाणुरहित करके बारम्बार काम मे लाया जा सकता है अण्डो पर इस प्रकार की सतह चढाने के लिये सस्थान मे बने उपकरण से एक घण्टे मे 4,000–5,000 तक अण्डे लेपित किये जा सकते है

अण्डो के परिरक्षण की इस तकनीक की क्षमता को देश के विभिन्न भागो और ऋतुओ मे परखा गया है ऐसे अण्डो को जिनके खोल पर तेल लगा होता है, 38° पर दो सप्ताह तक, कमरे के ताप (24–27°) पर लगभग 4 सप्ताह तक, 13° पर 12 सप्ताह तक और 7° पर 24 सप्ताह तक अच्छी दशा मे रखा जा सकता है इस तकनीक से कवक सन्दूषण से भी अण्डो की रक्षा हो जाती है 100 अण्डो पर तेल लगाने का व्यय लगभग 20 पैसे बैठता है

तरल अण्डो का हिमीकरण – हिमीकरण करके तरल अण्डों (खोलरहित अण्डो) की गुणता स्थिर रखी जा सकती है अण्डो के श्वेत तथा पीत भाग को प्राकृतिक अनुपात मे ही अथवा दोनो को अलग-अलग हिमीकृत होने दिया जा सकता है अण्डो के भीतर के पदार्थो को –20° पर अथवा इससे कम ताप पर हिमीकृत करके रखा जाता है अण्डो के इस प्रकार के हिमीकरण मे लगभग तीन दिन लग जाते है हिमीकरण को और जल्द सम्पन्न करने के लिये वात-झोका-हिमीकरण तथा विशिष्ट-त्वरित-हिमीकरण सयन्त्रो का प्रयोग किया जा सकता है

अण्डो को सुखाना – अण्डो के परिरक्षण के लिये अण्डो को खोलसहित अथवा तरल रूप मे परिरक्षित करने की अपेक्षा सुखाना श्रेष्ठतर विधि है पश्चिमी देशो मे शुष्कन विधि का पूर्ण विकास कर लिया गया है तथा अब यह व्यापक रूप से काम मे लायी जा रही है इसमे अण्डे की लुगदी बनाकर उसे दाब के अन्तर्गत शुष्कन-कक्ष मे डालते है और एक तुडिका से फुहार रूप मे छिडकते है भीतर आने वाली वायु का ताप 127° और बाहर निकलने वाली वायु का ताप 50° रखा जाता है

यद्यपि भारत मे फुहार-शुष्कन विधि व्यापारिक पैमाने पर प्रयुक्त नही की जाती किन्तु कही-कही तवे पर सुखाने की विधि से अण्डो का निर्जलन किया जाता है तवे पर सुखाने के लिये लुगदी की परत 0 6 सेंमी मोटी होनी चाहिये तथा वाप्पन के समय ताप 40–50° तक रहना चाहिये लुगदी को तब तक सुखाया जाता है जब तक कि इसमे 6% आर्द्रता रह जाती है

फुहार से सुखाया गया उत्पाद सामान्यत महीन चूर्ण के रूप मे होता है किन्तु तवे पर सुखाया गया उत्पाद पपडीदार या शल्की होता है जिसे पीसकर चूर्ण बनाया जा सकता है

सघटन

अण्डो का सघटन पक्षियो की नस्ल, आहार, परिवेश तथा अन्य कई कारको से बदलता रहता है 50 ग्रा से कम भार वाले अण्डो मे उनके भार बढने के साथ पीतक की प्रतिशतता घटती है बत्तखो, पीरूओ तथा अन्य पक्षियो के अण्डे मुर्गियो के अण्डो से कोई विशेष भिन्न नही होते मुर्गी तथा बत्तख के अण्डो के खाद्य अश का रासायनिक सघटन क्रमश इस प्रकार है आर्द्रता, 73 7, 71 0, प्रोटीन, 13 3, 13 5, वसा, 13 3, 13 7, कार्बोहाइड्रेट, 0 8, तथा खनिज पदार्थ, 1 0, 1 0% और कैल्सियम, 60, 70, फॉस्फोरस, 220, 260, लोह, 2 1, 3 0, थायमीन, 0 10, 0 12, राइबोफ्लैविन, 0 18, 0 28 तथा निकोटिनिक अम्ल, 0 1, 0 2 मिग्रा प्रति 100 ग्रा दोनो ही प्रकार के अण्डो मे विटामिन ए 1,200 अ इ/100 ग्रा होता है

सम्पूर्ण तरल अण्डे (खोलरहित) मे औसतन 64% श्वेत भाग तथा शेष पीतक (जरदी) होता है श्वेत भाग में लगभग 12% ठोस पदार्थ (मुख्यतया प्रोटीन) तथा थोडी मात्रा मे खनिज और शर्करा तथा वसा का रच होता है इसके विपरीत पीतक मे 50% ठोस होता है जिसमे दो-तिहाई वसा और एक-तिहाई प्रोटीन रहता है पीतक-प्रोटीन, श्वेत-ऐल्बुमिन से भिन्न होता है अण्डे के श्वेत तथा पीतक भाग के अवयव क्रमश सारणी 133 और सारणी 134 मे दिये गये है पीतक मे जिन अन्य विविध अवयवो की सूचना प्राप्त है वे है क्रिएटिन, क्रिएटिनीन, लैक्टिक अम्ल, कोलीन तथा ऐल्कोहल

प्रोटीन – मुर्गी के अण्डे मे औसतन 12% प्रोटीन रहता है जिसका 65% श्वेत भाग मे तथा शेष पीतक मे पाया जाता है श्वेत तथा पीतक भाग मे उपस्थित प्रोटीनो की मात्रा सारणी 133 तथा 134 मे दी गयी है श्वेत भाग मे ओवैल्बुमिन की मात्रा लगभग 70% तक होती है और यह तीन पृथक प्रोटीनो $ए_1$, $ए_2$

सारणी 133 – अण्डे के श्वेत भाग का औसत*†

रचक	मात्रा (%)	विलक्षण गुण
ओवैल्बुमिन	54	शीघ्र विकृत हो जाता है, सल्फिड्रिल होता है
कोनैल्बुमिन	13	लोह के साथ जटिल बनाता है, जीवाणु रोधक
ओवोम्यूकॉयड	11	ट्रिपसिन एंजाइम का निरोधक
लाइसोजाइम	3 5	पालिसैकराइड के लिये एंजाइम होता है जीवाणु रोधक
ओवोम्यूसिन	1 5	श्यान, उच्च सिआलिक अम्ल, वाइरसो से अभिक्रिया
फ्लैवो प्रोटीन और एपोप्रोटीन	0 8	राइबोफ्लैविन के साथ संयोग
प्रोटीनेस निरोधक	0 1	जीवाण्विक प्रोटीनेस का निरोधक
एविडिन	0 05	बायोटिन के साथ संयोग, जीवाणु रोधक
बिना पहचाने प्रोटीन	8	मुख्यत ग्लोबुलिन
अप्रोटीन	8	मुख्यतया आधा ग्लूकोस और लवण (बहुत कम लाक्षणिक)

*Feeney & Hill, *Advanc Fd Res*, 1960, **10**, 23

†शुष्क भार के आधार पर

सारणी 134 – अण्ड-पीतक का औसत संघटन*†

रचक	मात्रा (%)	विशेष
वसा		
उदासीन ग्लिसराइड	42	आहार के साथ अम्लो मे परिवर्तन
फास्फोलिपिड	20‡	मुख्यतया 3/4 लेसिथिन और 1/4 सिफैलिन
स्टेरॉल	2	मुख्यतया कोलेस्टेरॉल
कुल वसा	64	
प्रोटीन		
लिवेटिन	5	एंजाइमो से युक्त, बहुत कम विलक्षणताये
फॉसविटिन	7	10% फॉस्फोरस से युक्त
लिपोप्रोटीन	21‡	पायसीकारक
कुल प्रोटीन	33	
अन्य		
मुख्यत शर्करा तथा लवण	3	

*Feeney & Hill, *Advanc Fd Res*, 1960, **10**,23

†शुष्क भार के आधार पर

‡फॉस्फोलिपिड का लगभग एक-तिहाई लिपोप्रोटीनों मे आबद्ध होता है

सारणी 135 – अण्ड प्रोटीन के अनिवार्य ऐमीनो अम्ल रचक

(ग्रा /16 ग्रा N)

प्रोटीन	आर्जिनीन	हिस्टीडीन	लाइसीन	ट्रिप्टोफैन	फेनिल एलानीन	मेथियोनीन	थ्रियोनीन	ल्यूसीन	आइसोल्यूसीन	वैलीन
मुर्गी का अण्डा, सम्पूर्ण[1]	4 8-9 7	2 1-3 8	6 0-8 1	1 1-1 6	5 4-6 3	3 0-4 1	4 3-5 3	9 2-19 0	5 3-8 0	4 4-7 3
मुर्गी का अण्डा, श्वेत भाग[2]	4 2	1 8	5 4	1 3	4 5	3 8	5 2	7 7	6 2	6 1
मुर्गी का अण्डा, पीतक[1]	7 2	1 5	5 7	1 5	4 4	3 0	3 5			
मुर्गी का अण्डा[1] (ओवैल्बूमिन)	5 4	1 8	5 1	1 7	5 2	5 0	3 5	12 5		5 5
वत्तख का अण्डा, श्वेत भाग[2]	3 4	2 1	5 7	1 2	5 3	4 6	5 6	7 9	4 7	6 2

[1]Kuppuswamy *et al* , 174-75, [2]Patwardhan & Vijayaraghavan, *Indian J Med Res* , 1954, **42**, 521

तथा ए$_3$ मे विभाजित है अण्डो के सचयन काल मे यह अधिक स्थिर रूप 'एस-ओवैल्वुमिन' मे परिवर्तित हो जाता है जो प्राकृतिक ओवैल्बुमिन की अपेक्षा कम विप्रकृत होता है कोनैल्बुमिन प्रोटीन जो श्वेत भाग मे 17% तक होता है 4 1 के अनुपात मे दो रूपो मे पाया जाता है ओवोम्यूकॉयड जो ऊष्मा से न स्कदित होने वाला ग्लाइकोप्रोटीन है तीन मुख्य और दो गौण अवयवो मे पृथक् किया जा चुका है इन सब मे ट्रिप्सिन अवरोधक सक्रियता पायी जाती है लाइसोजाइम एक जीवाणुसलयन कारक है ओवोम्यूकिन एक तन्तुमय म्यूकोप्रोटीन है जिसके कारण अण्डे के श्वेत भाग की जैली-जैसी अवस्था पायी जाती है अड-श्वेत के मोटे भाग मे दोनो पतले भागो की अपेक्षा ओवोम्यूकिन अधिक मात्रा मे होता है श्वेत भाग मे वाइरस के कारण होने वाले हीमैग्लुटिनीकरण को निरुद्ध करने मे समर्थ कारक सम्भवत ओवोम्यूकिन के सर्वसम होता है वत्तखो के अण्ड-श्वेत भाग मे मुर्गी के अण्डो के श्वेत भाग से लगभग एक-चौथाई लाइसोजाइम क्रियाशीलता पायी जाती है श्वेत-अण्ड भाग मे उपस्थित एविडिन प्रोटीन बायोटीन के साथ सयोग करके इसे अनुपलब्ध बनाता है किन्तु ऊष्मा द्वारा इसे पुन उपलब्ध बनाया जा सकता है

अण्ड-पीतक मे जिन प्रोटीनो की पहचान की गयी है वे है लिवेटिन (4–10%), फॉस्फोप्रोटीन विटेलिन (4–15%), विटेलेनिन (8–9%), फॉसविटिन (लगभग 2%) तथा लिपोविटेलिन (16–18%) और लिपोविटेलेनिन (12–13) नामक लिपोप्रोटीनें अण्ड-प्रोटीनो मे ऊतको की वृद्धि तथा निर्वाह के लिये अनिवार्य ऐमीनो अम्ल पाये जाते है जिसके कारण वे तुलना करते समय प्रोटीनो के लिये मौलिक मानक माने जाते है इन प्रोटीनो मे आर्जिनीन तथा मेथिओनीन विशेष रूप से अधिक मात्रा मे पाये जाते है अण्ड-श्वेत भाग के मुख्य प्रोटीन ओवैल्बुमिन मे मेथिओनीन अधिक होता है अण्ड-पीतक प्रोटीन विटेलिन मे आर्जिनीन, लाइसीन और ल्यूसीन अधिक मात्रा मे पाये जाते है अण्ड-प्रोटीनो के अनिवार्य ऐमीनो अम्ल सारणी 135 मे दिये गये है मुर्गियो को दिये जाने वाले आहार का अण्ड-प्रोटीनो के ऐमीनो अम्ल सघटन पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता

अण्ड प्रोटीनो के जैविक मान और पाचन गुणाक अधिक होते है इनका जैविक मान दूध, मास, सोयाबीन, मूगफली, गेहूँ आदि की प्रोटीनो के जैविक मान से अधिक बताया गया है श्वेत भाग मे पीत भाग की तुलना मे प्रोटीन का पोषक मान अधिक होता है दिये गये आहार के विभिन्न स्तरो पर अण्डे और अण्ड उत्पादो के जैविक तथा पोषण मान सारणी 136 मे दिये गये है ऊष्मा

सारणी 136 – अण्ड प्रोटीनो के पोषण मान*

स्रोत	प्रोटीन की मात्रा (N×6 25)	आहार स्तर (%)	जैविक मान (%)	पाचन गुणाक (%)
मुर्गी का अण्डा				
सम्पूर्ण अण्डा		8	96 0	97 0
वसारहित सम्पूर्ण अण्डा	68 9	5	94 0†	97 0†
		8	85 0†	92 0†
		8	97 0**	95 0**
सम्पूर्ण अण्डा, सुखाया		10		98 2
सम्पूर्ण अण्डा, पपडियाँ सूखी		3-4	65 0‡	92 0‡
अण्डा, सम्पूर्ण, चूर्ण, सूखा तथा वसा विहीन (बाजारू)	76 8	3 5	94 0‡	98 0‡
अण्ड-श्वेत, ताजा		10	64 6	94 8
वत्तख का अण्डा				
अण्ड-श्वेत, ताजा		11	60 8	82 5
अण्ड-श्वेत, ताजा, आटोक्लेवित		11	68 4	88 8

*Kuppuswamy *et al* , 1971-72 ** बढते चूहो पर ज्ञात

† वयस्क चूहो पर ज्ञात ‡ मानवीय उपापचय परीक्षणो से ज्ञात

उपचार से अण्ड-श्वेत के प्रोटीन की, प्रोटीन की अत पात्र पचनीयता बढ जाती है सम्पूर्ण अण्डा, पीतक तथा अण्डा निष्कर्ष निम्न-कोटि के चावल आहार के पूरक सिद्ध हो चुके है

वत्तखो के अण्डो के श्वेत भाग के प्रोटीनो मे पाये जाने वाले अनिवार्य एमीनो अम्लो की सूची सारणी 135 मे दी गयी है वत्तखो के अण्डो के श्वेत भाग का पोषण मान मुर्गी के अण्डे के श्वेत भाग की अपेक्षा कम होता है (सारणी 136) वृद्धि के निरोध का कारण न स्कदित होने वाला प्रोटीन है, जो सम्भवत ओवोम्यूकायड है वत्तख के अण्डे को एक घण्टे तक आटोक्लेवित करने मे इसका पोषण मान बढ जाता है किन्तु मुर्गी के अण्डे मे ऐसा नही होता

पोषण मान के अतिरिक्त अण्डे मे झाग उत्पन्न करने तथा स्कन्दन के गुण भी पाये जाते है जो अण्डो का प्रयोग करने वालो के लिये विशेष महत्वपूर्ण है अण्डे का श्वेत भाग इसलिये फेंटा जा सकता है क्योकि इसमे ओवैल्बुमिन पाया जाता है फिर भी ग्लोबुलिनो के कारण फेंटे जाने की शक्ति तथा ओवोम्यूकिन के कारण झाग बनाये रखने की शक्ति उत्पन्न होती है मुख्यत

लिपोप्रोटीनो के कारण अण्ड-पीत मे पायसीकरण, पीटे जाने तथा स्कन्दन के गुण होते है सलाद की परिमज्जा मे पायसीकरण के गुण का प्रयोग किया जाता है

अ-प्रोटीन नाइट्रोजनी पदार्थ – अण्डे का बहुत-सा अ-प्रोटीन नाइट्रोजन का अश लेसिथिन के रूप मे रहता है मुक्त कोलीन तथा अन्य क्षारक भी अण्डे मे होते हैं अण्डो मे ओविन नामक पदार्थ भी पहचाना गया है जिसमे फॉस्फोरस तो अधिक किन्तु नाइट्रोजन बहुत कम रहता है

लिपिड – ताजे अण्डे के पीतक मे ईथर-विलेय लिपिड 30–35% (शुष्क आधार पर 60–70%) और फॉस्फेटाइड 4–12% रहता है कडे उबले हुये अण्डो को विलायक के साथ निष्कर्षित अथवा निष्पीडित करके अण्डे की पूरी वसा या तेल को निकाला जा सकता है मुर्गी के अण्ड-पीतक वसा के भौतिक तथा रासायनिक गुणो का परास इस प्रकार है ग वि, 22–25°, आ घ $^{25°}$, 0 9144 – 0 9188, $n^{40°}$, 1 4593 – 1 4687, साबु मान, 179 9–199 2, आयो मान, 62 8–81 6, आर एम मान, 0 40–0 66, पोलेन्स्की मान, 0 28, एस्टर मान, 171 2–177 5, अम्ल मान, 4 47–5 98, असाबु पदार्थ, 3 75–5 08% अण्ड-पीतक के ग्लिसराइडी और फॉस्फेटाइडी प्रभाजों के रचक वसा अम्ल क्रमश इस प्रकार है मिरिस्टिक, 0 7, पामिटिक, 25 2, 31 8, स्टीऐरिक, 7 5, 4 1, हेक्साडेसेनाइक, 3 3, ओलीक, 52 4, 42 6, लिनोलीक, 8 6, 8 2, तथा असतृप्त अम्ल C_{22}, 2 3, 13 3% मुर्गी तथा बत्तख के अण्ड-पीतक में कोलेस्टेरॉल क्रमश 1 8 तथा 2 6% रहता है

कार्बोहाइड्रेट – अण्डे मे ग्लूकोस नामक शर्करा रहती है श्वेत भाग मे पीतक की अपेक्षा अधिक शर्करा रहती है मुर्गी के अण्डे मे ग्लूकोस की औसत मात्रा इस प्रकार है सम्पूर्ण अण्डा, 0 45, श्वेत भाग, 0 47 तथा पीतक, 0 14% अण्डे मे जल अपघटन के द्वारा अपचायक शर्करा उत्पन्न करने वाला कार्बोहाइड्रेट भी पाया जाता है यदि शुष्क अण्डा-उत्पादो मे मुक्त ग्लूकोस रहा तो उनमे गम्भीर क्षय होता है साधारणत अण्डो को सुखाने के पूर्व ही ग्लूकोस को या तो किण्वन द्वारा या फिर एजाइमी ऑक्सीकरण द्वारा ग्लूकोनिक अम्ल मे परिवर्तित करके समाप्त कर दिया जाता है

विटामिन – अण्डे मे राइबोफ्लैविन तथा विटामिन ए और डी प्रचुर मात्रा मे पाये जाते है. अण्डे के श्वेत भाग मे राइबोफ्लैविन फ्लैवोप्रोटीन के रूप मे और बायोटीन, एविडिन नामक प्रोटीन से सयुक्त रहता है एविडिन को गर्म करके निष्क्रिय बनाया जा सकता है सम्पूर्ण अण्डा तथा इसके श्वेत तथा पीतक भाग मे पाये जाने वाले विटामिनो की मात्रा सारणी 137 मे दी गयी है अण्डे का सचयन करने पर विटामिन अधिक विनष्ट नहीं होते

खनिज – अण्डो मे फॉस्फोरस, लोह तथा आयोडीन अधिक मात्रा मे पाये जाते है मुर्गी के अण्डो के श्वेत और पीतक भागो के खनिज सघटन सारणी 138 मे दिये गये है मुर्गी के अण्डो में प्राप्य सूक्ष्ममात्रिक तत्वो मे ऐलुमिनियम (0 02 मिग्रा / 100 ग्रा), सीसा (0 2–1 0 मिग्रा /100 ग्रा मुर्गी के अण्ड-पीतक मे), मालिब्डेनम, बेरियम, स्ट्रांशियम, टाइटैनियम, वैनेडियम और क्रोमियम मुख्य है

एंजाइम – अण्डो मे जिन एजाइमो के होने की सूचना प्राप्त है, वे हैं : ट्रिप्टिक प्रोटिएनेस, दो एरेप्सिन-जैसे एजाइम, लिपेस (जिसकी मात्रा इनक्यूबेशन के समय बढ जाती है), मैलिसिलेस

सारणी 137 – मुर्गी के अण्डो के विटामिन रचक*

(प्रति 100 ग्रा)

विटामिन	कच्चा अन्डा सम्पूर्ण	कच्चा अन्डा श्वेत भाग	कच्चा अन्डा पीतक
विटामिन ए, अ इ	1,140	0	3,210
थायमिन, माग्रा	100	0	270
राइबोफ्लेविन, माग्रा	290	260	350
नायसिन, माग्रा	100		
पेण्टोथेनिक अम्ल, मिग्रा	2 7	0 13	6 0
फोलिक अम्ल, माग्रा	9 4	1 6	23 2
बायोटिन, माग्रा	22 5	7 0	52 0
पायरिडाक्सिन, माग्रा	252	217	308
कोलीन क्लोराइड, मिग्रा	532		1,490
विटामिन बी$_{12}$, माग्रा	0 28	0 009	0 83
इनासिटाल, मिग्रा	33		
ऐस्कार्बिक अम्ल	0	0	0
विटामिन डी, अ इ	50	0	150
विटामिन ई, मिग्रा	2	0	0
विटामिन के	उपस्थित	0	उपस्थित

*ये आँकडे डा वी पन्डा, केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसंधान सस्थान, मैसूर से प्राप्त हुये

सारणी 138 – मुर्गी के अण्डो का खनिज सघटन*

(प्रति 100 ग्रा)

खनिज	कच्चा अन्डा सम्पूर्ण	कच्चा अन्डा श्वेत भाग	कच्चा अन्डा पीतक
राख, ग्रा	1 0	0 6	1 7
कैल्सियम, मिग्रा	54	6	147
फास्फोरस, मिग्रा	210	17	586
लोह, मिग्रा	2 1	0 3	5 6
सोडियम, मिग्रा	111	175	78
पोटेशियम, मिग्रा	149	149	110
मैग्नीशियम, मिग्रा	9	11	13
क्लोराइड, मिग्रा	100	131	67
सल्फर, मिग्रा	233	211	214
मैगनीज, माग्रा	40		110
जस्ता, मिग्रा	1 3	0 01	3 8
आयोडीन, माग्रा	12 0	6 8	16 0
सेलेनियम, माग्रा	22	5 1	32 4
फ्लोरीन, माग्रा	60	20	120
ताँबा, माग्रा	170	40	250
अम्लता, अधिक अम्ल (मिलि Nअम्ल)	11 1	5 2	25 6

* ये आँकडे डा वी पन्डा, केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसधान संस्थान, मैसूर से प्राप्त हुये

हिप्यूरिक अम्ल पर क्रियाशील एंजाइम, ऐमिलेस, डायस्टेस, पेप्टाइडेस, फॉस्फेटिडेस, विविध प्रोटीन अपघटनी एंजाइमे, ऑक्सिडेस, मोनो-तथा ट्राइ-ब्युटिरेस और केटैलेस

वर्णक – अण्ड-पीतक के कैरोटिनायड हैं ल्यूटीन और जियाजेथिन. ल्यूटीन की मात्रा 0 009 से 0 019% बदलती रहती है अण्डे में एक नाइट्रोजनी क्रिस्टलीय वर्णक, ओवोफ्लैविन के भी होने की सूचना है

अण्डे की खोलो मे ऊरोडीइन नामक भूरा वर्णक पाया जाता है जो हीमैटोपारफिरिन के समरूप है अण्डो के खोल का नीलाभ हरा-वर्णक ऊसायन कहलाता है और इसमे विलिवर्डिन नामक बाइल वर्णक के होने का अनुमान है

अण्ड जीव-विष – अण्डो के कारण विषाक्तिकरण के उदाहरण पाये गये है मुर्गी के अण्डे विरले ही घातक होते है किन्तु बत्तख के अण्डे घातक हो सकते है सम्भवतया ऐसा निषेचन के समय, विशेषतया सेने के ताप पर अण्डे रखने से इसमे जीवाणुओ के प्रवेश कर जाने से होता है अण्डे मे सम्भवतया एक अज्ञात पदार्थ रहता है जो कुछ लोगो मे यकृत और आंत के विकार उत्पन्न करता है अण्डो को पर्याप्त ऊँचे ताप पर पकाकर इनके श्वेत और पीतक भागो को पूर्णतया स्कन्दित करके अण्डो को अहानिकर वनाया जा सकता है

अण्डो के खोल – अण्डे का खोल मुख्यतया कैल्सियम कार्बोनेट (लगभग 90%) का बना होता है इसका औसत सघटन इस प्रकार है कैल्सियम, 38 मैग्नीशियम, 0 6 कार्बोनेट (CO_3), 55 प्रोटीन, 1 5, और अन्य (जल तथा सूक्ष्ममात्रिक खनिज आदि), 5% खोल की झिल्ली खोल का 4–5% तक होती है और उसमे 20% तक प्रोटीन तथा 10% तक अकार्बनिक पदार्थ होते है

अण्डे के उत्पाद

अधिक अण्डो को, विशेषतया गर्मी की ऋतु मे, ऐल्बुमिन की पपडियाँ, हिमीकृत अण्ड-पीतक, और अण्डा-चूर्ण जैसे अण्डा उत्पाद बनाने के लिये प्रयोग किया जा सकता है केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर ने इन उत्पादो की उत्पादन-विधि का मानकीकरण किया है

ऐल्बुमेन की पपडियाँ – ऐल्बुमेन पपडियाँ अण्डो के गाढे ऐल्बुमेन को जीवाणुओ द्वारा किण्वित कराकर जिससे ऐल्बुमेन विच्छेदित हो जाय, ग्लूकोस को हटाकर तैयार की जाती हैं तब इस पदार्थ का अम्लीकरण करके इसे सुखा लिया जाता है ऐल्बुमेन पपडियो का उपयोग ऑफसेट मुद्रण मे ऐलुमिनियम या जस्ते की पत्रियो पर पोते जाने वाले सुग्राही मिश्रण को तैयार करने के लिये किया जाता है इनका उपयोग पेय पदार्थो की बोतलो के ढकनो को मजबूती से लगाने और उत्तम कोटि के चमडे की रँगाई मे भी किया जाता है भारत मे प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख रुपये के मूल्य की ऐल्बुमेन पपडियाँ आयात की जाती हैं देश मे मुद्रण उद्योग के लिये जितनी ऐल्बुमेन पपडियो की आवश्यकता होती है उसे केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर द्वारा विकसित प्रक्रम द्वारा देश मे ही तैयार करके पूरा किया जा सकता है

हिमीकृत पीतक – ऐल्बुमेन पपडियो के उत्पादन के समय जो अण्ड-पीतक उपजात के रूप मे बच जाता है उसे या तो उसी रूप मे उपयोग मे लाया जाता है अथवा उसे हिमीकृत करके विभिन्न उद्योगो मे इस्तेमाल किया जाता है हिमीकृत अण्ड-पीतक से तैयार होने वाले मुख्य उत्पाद हैं सादा पीतक, नमकीन पीतक, मीठा पीतक और पायसीकृत पीतक नमकीन हिमीकृत पीतक मे 10% नमक और मीठे हिमीकृत पीतक मे 10% चीनी मिलायी जाती है स्कन्दनरोधी होने के कारण नमक तथा चीनी मिलाने से हिमीकरण के समय ऐसे परिवर्तनो पर जिनमे पीतक के भौतिक तथा कोलायडी गुणो मे अन्तर आता है विजय पायी जा सकती है हिमीकृत पीतक में 6–8% सोडियम क्लोराइड और 1% सोडियम बेंजोएट मिलाकर इसका परिरक्षण भी किया जा सकता है अण्ड-पीतक मे परिरक्षण के लिये नमक अथवा चीनी मिलाये जाने पर खाद्य उद्योगो में इनका प्रयोग सीमित हो जाता है तथापि अनुपचारित हिमीकृत अण्ड-पीतक जैल तथा इस प्रकार का जैलित पीतक कई व्यापारिक तथा घरेलू उपयोगो के लिये अनुपयुक्त बन जाता है यदि अण्ड-पीतक के साथ 0 04% तक पेप्सिन मिला दिया जाय तो इसे जमाकर 3–4 महीने तक अच्छी अवस्था मे सुरक्षित रखा जा सकता है पिघलने के बाद गाढेपन रग तथा सक्रियता गुण मे पीतक ताजे पीतक के ही समान रहता है

क्लोरीनीकृत विलायको के उपयोग द्वारा अण्ड-पीतक मे वसा का निष्कर्षण गहरा पीला होता है और इसमे 10–12% तक पीतक का लेसिथिन और अण्डे का पूरा कोलेस्टेरॉल पाया जाता है इस तेल को प्रशामक के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है तेल के निष्कर्षण के बाद बचा हुआ पीतक-चूर्ण उत्तम पूरक खाद्य है इसमे अवशिष्ट तेल की रच मात्रा और अण्ड-पीतक का सारा लेसिथिन रहता है

अण्ड-पीतक मे लेसिथिन की मात्रा 6–8% रहती है और इसे निष्कर्षित करने के लिये एक विशिष्ट विधि काम मे लायी जाती है इस विधि से पीतक से केवल लेसिथिन ही पृथक् हो पाता है इसमे उपस्थित अण्ड-तेल पर इसका कोई प्रभाव नहीं पडता

अण्डे का चूर्ण – केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर ने मुर्गी अथवा बत्तख के सम्पूर्ण अण्डे की विभिन्न श्रेणियो (अम्ल-स्थायीकृत, यीस्ट विशर्करित तथा यीस्ट और अम्ल स्थायीकृत) से सूखा चूर्ण बनाने की विधि विकसित की है इस विधि मे पहले अण्डो को बहते हुये जल मे अच्छी तरह धोया जाता है, फिर उन्हे 2% विरजक चूर्ण विलयन के हौज मे डुबोया जाता है, जिससे उनके ऊपर लगी गन्दगी विलग हो जाती है तथा ऊपर से चिपके हुये जीवाणु भी मर जाते है फिर अण्डो को तोडकर जो द्रव निकलता है उसे मथा जाता है और खोल के टुकडे तथा चैलेजा विलग करने के लिये उसे छान लिया जाता है शर्करा पृथक् करने के लिये उसमे 0 5% सूखा सक्रिय यीस्ट (द्रव अण्डे के आधार पर) मिलाकर उसे 36° ताप पर 1 5 घण्टे तक किण्वित होने के लिये रख दिया जाता है फिर उसमें विद्यमान साल्मोनेला आदि जीवो को मारने के लिये किण्वित द्रव को 30 मिनट के लिये 60–61° पर पास्तुरीकृत करते हैं पास्तुरीकृत तरल अण्डे को तुरन्त ठण्डा करके उसमे 1*N* HCl मिलाया जाता है जिसमे पी-एच 5 5 रहे अण्ड तरल को फिर 160° अतर्गम और 60° निर्गम ताप पर कणित्र की गति 20,000 चक्र प्रति मिनट रख करके फुहार बनाकर सुखा लिया जाता है इस प्रकार प्राप्त अण्ड-चूर्ण मे 5–6% तक आर्द्रता रहती है इसे पुन 60° ताप पर निर्वात-शेल्फशोषक मे 2–3 घण्टे तक सुखाया जाता है.

सारणी 139 – फुहार विधि से सुखाये अण्ड-चूर्ण के भारतीय मानक*

आर्द्रता, % भार के अनुसार (अधिकतम)	2
प्रोटीन (N×6 68), % भार के अनुसार (न्यूनतम)	45
लेसिथिन और वसा, % भार (न्यूनतम)	28
विलेयता, % भार (न्यूनतम)	80
पी-एच (अधिकतम)	7 9
ऑक्सीजन, % भार के अनुसार (अधिकतम)	2
जीवाणुओ की गणना/ग्रा (अधिकतम)	75,000
यीस्ट तथा फफूँदी गणना/ग्रा (अधिकतम)	100
कॉलिफार्म गणना/ग्रा (अधिकतम)	100

*IS 4723–1968

सारणी 140 – फुहार विधि से सुखाये अण्डो का निकटतम सघटन* (%)

	सम्पूर्ण	श्वेत भाग	पीतक
आर्द्रता	4	5	4
प्रोटीन (N×6 25)	47	90	33
वसा	41	0 3	58
नाइट्रोजनरहित निष्कर्ष	3 9	5 4	2 2
अपचायक शर्करा	1 0	2 /	0 4
पी-एच	8 2	7 0	6 5
राख	4 0	5 0	3 6

*Matz, 1968, 67-76

इस प्रकार इसमे आर्द्रता 2% मे कम रह जाती है यदि तरल अण्डे को अम्लीकृत किया जाता है तो चूर्ण मे 1 5% तक सोडियम बाइकार्बोनेट मिलाया जाता है इम चूर्ण को नाइट्रोजन की उपस्थिति मे डिब्बो मे अवातमुद्रा मे बन्द कर देते है

तरल अण्डे का 23–24% तक चूर्ण बनता है और पुनर्प्राप्ति लगभग 97% तक होती है केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर द्वारा किये गये पाइलट सयत्र परीक्षणो से पता चला है कि सम्पूर्ण अण्ड-चूर्ण बडे पैमाने पर सफलतापूर्वक बनाया जा सकता है और इस पर प्रति किग्रा 30 रु की लागत बैठती है इस उत्पाद मे आर्द्रता, 3, प्रोटीन, 45, लेसिथिन और वसा, 38–40, और विलेयता, 85–90% होती है भारतीय मानक सस्थान ने फुहार से सुखाये गये अण्ड-चूर्ण के लिये विनिर्देशन भी जारी किये है (सारणी 139)

सुखाये अण्डो का चूर्ण अपेक्षाकृत उच्च ताप पर भी कई महीनो तक सचित किया जा सकता है इसे रखने के लिये अण्डो की अपेक्षा कम स्थान की आवश्यकता पडती है और यह हल्का भी होता है (1 किग्रा अण्ड-चूर्ण लगभग 80 तरल अण्डो के बराबर होता है) प्रशीतन की आवश्यकता न होने के कारण इसे दूरस्थ स्थानो तक सुगमता से ले जाया जा सकता है व्यावहारिक रूप से अण्ड-चूर्ण का पोषण मान अण्डे के बराबर होता है और इसके प्रोटीन मे अण्डे के सभी ऐमीनो अम्ल अनिवार्य रूप से पाये जाते है अण्ड-चूर्ण को फिरनी और पाई बनाने के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है इससे सैनिक-असैनिक दोनो प्रकार के कर्मचारियो की आवश्यकता पूरी की जा सकती है अधिक उत्पादन के समय बचे-खुचे अण्डो का भी इस्तेमाल हो सकता है फुहार से सुखाये अण्डो (सम्पूर्ण, श्वेत तथा पीतक भाग) का निकटतम सघटन सारणी 140 मे दिया गया है

सुखाया अण्ड-श्वेत एन्जिल-केको और मिष्ठान्नो के बनाने तथा सुखाया अण्ड-पीतक की डफनट और आइसक्रीम बनाने के काम आता है कहा जाता है कि उष्णकटिबन्धीय जलवायु मे पकाये तथा सुखाये हुये अण्डो का सचयन-काल फुहार से सुखाये कच्चे अण्डो की अपेक्षा अधिक होता है

अण्ड-चूर्ण बनाते समय उपजात के रूप मे प्राप्त टूटी-फूटी खोलो को चूर्णित करके चूजो के चुग्गे के लिये कैल्सियम के स्रोत की तरह काम मे लाया जा सकता है इसमे आर्द्रता, 1 2, अपरिष्कृत प्रोटीन, 5 8, अपरिष्कृत वसा, 0 4 और राख, 90 5% होती है.

श्रेणीकरण तथा पैकिंग

अच्छे अण्डो का आकार और उनकी खोल का गठन उपयुक्त तथा उनका भीतरी पदार्थ अच्छा होना चाहिये अण्डो का आकार वशागत होता है अत अच्छे अण्डे देने योग्य पक्षी प्राप्त करने के लिये समान आकृति तथा आकार के अण्डे सेने के लिये रखने चाहिये अण्डो को सेने के लिये रखने से पूर्व उनके रक्त और मास बिन्दुओ का परीक्षण कर लेना चाहिये

ताजे तथा अच्छे अण्डे मे छोटा वायु-स्थान रहता है जिसकी गहराई 6 मिमी से अधिक नही होती ऐसे अण्डो मे पीतक अण्डे के मध्य मे स्थापित होता है जिसकी सीमा कुछ-कुछ जान पडती है और जब ऐसे अण्डे को तोडा जाता है तो पीतक बहुत कम स्थान घेरता है अण्ड-श्वेत को एकदम स्वच्छ होना चाहिये टूटने पर गाढी सफेदी पीतक को घेरे रहती है, केवल थोडी सी सफेदी बाहर की ओर रह जाती है

अण्डे के खोल का गन्दा होना, उसका चटका हुआ अथवा नरम और पतला होना, ये अण्डे के दोष तो है ही, लेकिन इनके अतिरिक्त भी कुछ सामान्य दोष भी है, यथा अपेक्षतया बडे वायु स्थान (6 3 मिमी से अधिक गहरे), पीतक का केन्द्र से हटकर खोल के निकट आ जाना, रक्त तथा मास बिन्दुओ का होना, भ्रूण विकसित हो आना, पीतक का चित्तीदार, निस्तेज अथवा रगहीन पड जाना

अण्डो के श्रेणीकरण तथा मानकीकरण के अन्तर्गत इनको कई समरूप क्रमो मे लगाना पडता है अण्डो का मूल्याकन इनकी आन्तरिक कोटि, खोल की बनावट और मजबूती, आकार और रग को देखकर किया जाता है भार के अनुसार इनका श्रेणीकरण करने मे इनको मानक आधानो मे बन्द करने तथा इनके वितरण मे सुविधा हो जाती है

अभी भारत मे अण्डो का थोक व्यापार और एक समान श्रेणीकरण सुव्यवस्थित नही है किन्तु प्रशीतन और परिवहन की सुविधाओ मे सुधार हो जाने पर इनके एकत्रीकरण और विपणन की अधिक सुव्यस्थित विधियो के विकसित होने की आशा है और तब इनके कोटि-नियत्रण तथा श्रेणीकरण के सामान्य सिद्धान्तो को लाभ-सहित कार्यान्वित किया जा सकता है

भारत सरकार ने कृषि उत्पादन (श्रेणीकरण और विपणन) नियम 1937 के अन्तर्गत एगमार्क की ए तथा बी श्रेणियाँ निर्धारित

सारणी 141 – बाजारू अण्डो पर ऐगमार्क लगाने की शर्तें *

श्रेणी	भार (ग्रा)	खोल	वायु स्थान	श्वेत भाग	पीतक
A-अत्यधिक बडा	60 तथा अधिक	साफ अभग तथा ठोस आकार सामान्य	4 मिमी तक गहरा, व्यावहारिक रूप से नियमित अथवा उत्तमतर	साफ, यथोचित रूप से दृढ	अच्छी प्रकार से केन्द्र मे स्थिर, दोषरहित वहिरेंखा अस्पष्ट
A-बडा	53-59				
A-मँझोला	45-52				
A-छोटा	38-44				
B-अत्यधिक बडा	64 तथा अधिक	साफ से लेकर साधारण धब्बो वाला, ठोस तथा हल्का अपसामान्य	8 मिमी तक गहरा, मुक्त तथा हल्का बुलबुलेदार	साफ, कुछ कुछ क्षीण	केन्द्र से थोडा हटकर, वहिरेंखा कुछ स्पष्ट
B-बडा	54-59				
B-मँझोला	45-32				
B-छोटा	38-44				

*विपणन और परीक्षण निदेशालय, खाद्य एवम् कृषि मन्त्रालय (कृषि विभाग), नागपुर

A, स्वस्थ और चैतन्य , B, कम स्वस्थ और चैतन्य

टिप्पणी जिन अण्डो मे उपलिखित दोनो वर्गों मे से किसी के भी गुण नही होते उनके बाजार मे ताजे अण्डे कहकर बेचने पर पाबन्दी लगायी जा सकती है

की है प्रत्येक श्रेणी मे आकार के अनुसार 4 विभिन्न वर्ग बनाये गये हैं, जिनके नाम हैं अति बडे, बडे, मँझले तथा छोटे खाद्य अण्डो के विपणन के लिये ऐगमार्क की शर्तें सारणी 141 मे दी गयी है

छटाई – गाँवो से प्राप्त अण्डे कुछ टूटे हुये अथवा गन्दे होते हैं जिससे उन्हे किसी श्रेणी मे नही रखा जा सकता फलत आरम्भ मे ही उन्हे हाथ से चुन लिया जाता है अण्डो के खोल को साफ-सुथरा, बिना धब्बो का, पुष्ट तथा सामान्य आकार और बनावट का होना चाहिये इन्हे भीगे नमदे से पोछकर साफ किया जा सकता है एक व्यक्ति एक घण्टे मे साधारणतया 700–1000 अण्डे साफ कर सकता है हस्तचालित अण्डा साफ करने वाली मशीन एक घण्टे मे लगभग 1,500 अण्डे साफ करके सुखा सकती है यदि प्रतिदिन 5,000 से अधिक अण्डे साफ करने हो तो मशीन के प्रयोग की संस्तुति की जाती है

प्रकाश-परीक्षण – तेज प्रकाश की सहायता से इसे सम्पन्न किया जाता है जहाँ बिजली के प्रकाश की सुविधा नही होती है वहाँ गैस बत्ती (पेट्रोमेक्स) पर धात्विक आवरण लगाकर काम चलाया जाता है ऐसा करने के लिये अण्डे को आँख से लगभग 30 सेमी की दूरी पर बत्ती के सामने बडे सिरे को ऊपर की ओर करके फिराया जाता है अण्डे के भीतर के पदार्थो को बिना धब्बो के, उसका पीतक बीचो-बीच मे मुक्त तथा गतिशील होना चाहिये अण्डे का श्वेत भाग साफ और पारभासक होना चाहिये तथा वायुस्थान को 6 मिमी से अधिक गहरा नही होना चाहिये प्रकाश के सामने एक ताजे सामान्य अण्डे का भीतरी भाग गुलाबी-पीला जान पडता है श्रेणी विनिर्देशो को सही-सही जान लेने पर एक व्यक्ति एक घण्टे मे 600–900 अण्डो की प्रकाश-परीक्षा कर सकता है

श्रेणीकरण – दोषरहित और साबुत अण्डो को साफ करके इनकी ताजगी की जाँच करने के बाद इनको विभिन्न श्रेणियो मे वर्गीकृत किया जाता है आकार के आधार पर इनका श्रेणीकरण छोटी-बडी मशीनो की सहायता से किया जाता है अण्डो पर श्रेणीकृत विनिर्देशो के अनुसार ठप्पे लगा दिये जाते है

पैकिग – जहाँ तक सम्भव हो मुर्गी और बत्तख के अण्डो को अलग-अलग पैक करना चाहिये अण्डो को प्राय ऐसी टोकरियो मे पैक किया जाता है जो टूटने वाली होती है एक स्थान मे दूसरे स्थान तक ले जाने मे 10–30% अण्डे टूट जाते हैं

भारत मे अण्डो की पैकिग के लिये उचित वेष्ठन सामग्री तथा अच्छी कोटि के आधानो के प्रयोग को लोकप्रिय बनाने के लिये कुक्कुट-पालन विकास योजनाओ के अन्तर्गत विकास सम्बन्धी शोध तथा प्रसार कार्य की आवश्यकता है दक्षिण भारत मे प्रयोग की जाने वाली टोकरियाँ अपेक्षाकृत कुछ मजबूत और बाँस के ढक्कनो वाली होती है कभी-कभी मिट्टी के पात्र और मर्तबान भी प्रयोग में लाये जाते है पैकिग बक्सो पर उनकी बनवायी तथा ढुलाई का खर्च अधिक आने के कारण बहुत कम स्थानो पर इनका प्रयोग किया जाता है अण्डो को मजबूत टोकरियो अथवा पीपो में सूखी घास, भूसी, गेहूँ का भूसा अथवा कटी घास आदि के साथ बन्द करने से इनके फूटने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है वेष्टन सामग्री साफ, सूखी तथा दोषरहित होनी चाहिये जिससे अण्डो मे किसी प्रकार की आपत्तिजनक गन्ध न आ जाये पैकिंग के लिये दफ्ती (गत्ता) के खोल बने बक्सो को जिनमे प्रत्येक खोल में एक अण्डे के हिसाब से निश्चित सख्या मे अण्डे आ सकते हैं, प्रयुक्त करके पैकिंग की अनेक कठिनाइयाँ दूर की जा सकती हैं ऐसे खोलो के दो मुख्य प्रकार हैं आपूरक तथा समतल खण्ड और तश्तरियाँ पैकिग के लिये आपूरक और समतल उपस्करो और इनको बन्द करने के लिये उचित प्रकार के बक्सो के प्रयोग के प्रचार किये जाने की आवश्यकता है क्योकि इनके प्रयोग मे अण्डो मे टूट-फूट काफी कम हो जाती है और इसमे 5% तक लाभ अवश्य ही बढ जाता है

गरम मौसम मे अण्डो को पैकिग के पूर्व ठडा कर लेना चाहिये और मदूषण से विशेष रक्षा करनी चाहिये पेटियो को अण्डो की श्रेणियो के अनुसार बन्द करके इन पर नाम-पत्र लगा देना चाहिये पैकिग के एक या दो दिन बाद ही अण्डो को बाजार में भेज देना चाहिये

मास

अधिकाश यूरोपीय देशो मे भक्ष्य अथवा मास उत्पादक पक्षियों का पालन सुव्यवस्थित उद्योग बन चुका है इसे या तो स्वतत्र

पेशे के रूप मे अथवा व्यापारिक अण्डा उत्पादन के साथ-साथ किया जाता है लेकिन भारतवर्ष में केवल फालतू और बूढे पक्षी ही खाने के लिये बेचे जाते है

मुर्गे-मुर्गियो के अतिरिक्त पीरू और हस भी खाये जा सकते है कभी-कभी बत्तख भी खाने के काम आती है किन्तु कुछ लोग इसके मास को इसकी विशेष गन्ध के कारण पसन्द नही करते जगली बत्तखे, कबूतर, बटेर तथा तीतर भारत के भक्ष्य शिकार पक्षी है जिनका मास कभी-कभी खाया जाता है बटेरो और तीतरो का मास विशेषतया भुने होने पर विशेष स्वादिष्ट होता ह

खाद्य कुक्कुटो को, सीने और जाघो पर विशेष रूप से अधिक मॉसल होना चाहिये मास पीला न होकर सफेद होना चाहिये, पखो से रहित तथा त्वचा को पतली होना चाहिये खाने वाले कुक्कुटो की बाढ जल्दी-जल्दी होनी चाहिये और आहार के अनुपात मे इनके शरीर के भार मे काफी वृद्धि होनी चाहिये

वयस्क कुक्कुटो का शारीरिक भार, नस्ल, वश या सकरण के अनुसार बदलता रहता है पूर्ण विकसित मुर्गे भार मे 1 किग्रा से कम से लेकर 5 किग्रा तक, बत्तखे 1 5–5 किग्रा तक और पीरू 3–18 किग्रा तक होते है जाति के अनुसार और एक जाति के ही विभिन्न पक्षियो की वृद्धि दर मे पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है पक्षी के शरीर के विभिन्न भागो का भार पक्षी की नस्ल, लिंग, आयु, आहार तथा अन्य बढने की परिस्थितियों पर निर्भर करता है साधारणत नर पक्षियो मे मादा पक्षियो की अपेक्षा तेजी से वृद्धि होती है और पूर्ण विकसित अवस्था मे उनका भार भी अधिक रहता है नर चूजो मे टाँगो का और मादा चूजो मे टाँगो से इतर शरीर का भार अधिक होता है पूर्ण विकसित नर पक्षियो मे मादा चूजो की अपेक्षा अधिक किन्तु कम अवस्था मे नर चूजो की अपेक्षा मादा चूजो मे मास का प्रतिशत अधिक होता है चूजो मे सीने की मास पेशियो का भार आधे से भी अधिक होता है और ये अन्य भागो की अपेक्षा अधिक पीली होती है

मनुष्य के उपभोग के लिये कुक्कुट मास को अच्छा, स्वस्थ, साफ और कोमल होना चाहिये खाने वाले मास की अन्य कसौटियाँ है शरीर का समानुरूप, ककाल पर पेशियो की कुल मात्रा, त्वचा अथवा इस पर लगी वसा तथा मास की पौष्टिकता • मुर्गे, गिनी-मुर्गे तथा पीरू का मास सफेद, कोमल तथा भीनी सुगधि वाला और जल्द पचने वाला किन्तु बत्तखो और हसो का मास गहरे रग का तथा देर मे पचने वाला होता हे कुक्कुट मास मे अन्य मासो की अपेक्षा वसा की मात्रा कम होती है

मास की कोमलता, रसीलापन तथा स्वाद-गन्ध जो प्राय इसे पकाते समय प्रकट होती है, मुख्यत कुक्कुट की आयु और लिग पर निर्भर करते है चाहे नर हो या मादा, 12 सप्ताह से कम आयु के चूजो का मास बहुत ही कोमल और त्वचा नरम तथा चिकनी होती है जिसे उबाल करके अथवा तल करके पकाया जा सकता है 12 से 16 सप्ताह तक की आयु के नर और मादा का मास भी अपेक्षाकृत कोमल और चिकनी त्वचा वाला होता है जो भून करके पकाया जा सकता है खस्सी मुर्गे (वधिया किये हुये मुर्गे) की त्वचा नरम तथा चिकनी सतह वाली होती है मास आदि के लिये पाले जाने वाले अन्य पक्षियो की अपेक्षा इसमे अधिक वसा होती है 10 मास से अधिक आयु की वयस्क मुर्गियो का मास अधिक कोमल नही होता

अभी भारत मे कुक्कुट मास-उत्पादन मे बहुत कम दक्षता प्राप्त हयी है कुक्कुट मास की अधिकाश मात्रा अपेक्षाकृत सस्ते देशी नस्ल के कुक्कुटो से प्राप्त की जाती हे यद्यपि विदेशी मास उत्पादक नस्लो ह्वाइट कोर्निश और ह्वाइट रॉक का पालन भी किया जाने लगा है और ह्वाइट रॉक मुर्गियो और ह्वाइट कोर्निश मुर्गो के सकरण से मास उत्पादक कुक्कुटो के मुख्य वश तैयार किये जा रहे है अतिरिक्त पट्ठो को भी खाने के काम मे लाया जाता है भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् की मास उत्पादक कुक्कुट परियोजना, राजेन्द्र नगर, हैदराबाद के अन्तर्गत किये गये अध्ययनो से ज्ञात हुआ हे कि भारत मे मास के लिये कुक्कुटो को सस्ते मे तैयार किया जा सकता हे 10 सप्ताह की आयु के मास उत्पादक कुक्कुट का औसत भार 1 5 किग्रा होता है और प्रति किग्रा मास के लिये यह 2 7 किग्रा चुग्गा खाता है दिल्ली राज्य कुक्कुट फार्म मे किये गये परीक्षणो से पता चला है कि 1 2 से 1 5 किग्रा. तक के भार के एक मास उत्पादक कुक्कुट को तैयार करने मे 2 25 रु व्यय होता है

ससाधन

कुक्कुट ससाधन के अन्तर्गत पक्षियो को मारकर उनके रक्त तथा पखो को विलग करना अर्थात् सज्जित करना, फिर रक्त, पख, सिर तथा टाँगे अलग करना, शव को कई भागो मे काटना, तथा मास मे से हड्डियाँ निकालना सम्मिलित है जिस हद तक पक्षियो का ससाधन किया जाता है वह इस बात पर निर्भर करता है कि उपभोक्ता कैसी चीज चाहते है और वितरण करने वाले केन्द्रो मे कौन-कौन सी चीजे उपलब्ध है कुछ उपभोक्ता जीवित पक्षी खरीदना पसन्द करते है तो कुछ अपनी आवश्यकता अथवा स्वाद के अनुसार सज्जित कुक्कुट मास को ही खरीदना पसन्द करते है कुक्कुट व्यापारी कुक्कुटो की गर्दन चीर कर अथवा काट कर मारते है और इसे ताजा ही कागज मे लपेट कर ग्राहको को तुरन्त दे देते है कई बडे शहरो मे कुक्कुट को मारने के पश्चात् उसे साफ करके बेचा जाता है

सज्जित करना (सफाई)

कुक्कुटो को मारने से पहले खुले आरामदेह स्थानो पर रखना चाहिये ताकि न तो किसी प्रकार कुक्कुटो की भीड हो और न वे उत्तेजित ही हो उन्हे पर्याप्त मात्रा मे चुग्गा तथा पानी उपलब्ध करना चाहिये, नही तो मारे जाने के बाद कुछ लाशो मे से बहुत कम रक्त निकलता प्रतीत होता है फिर भी मारने के 3–4 घण्टे पहले चुग्गे को हटा लेना चाहिये लेकिन पानी हर समय उपलब्ध होना चाहिये

मारते समय कुक्कुट की कैरोटिड धमनी काट दी जाती है जिससे पूरा रक्त निकल जाय अपूर्ण रक्त निकलने से काला तथा अग्राह्य पदार्थ मिलता है विभिन्न कुक्कुटो मे पूरा रक्त निकलने मे अलग-अलग समय लगता है किन्तु चूजे मे यह 30–60 सेकण्ड होता है पीरू मे धमनी काटने से पहले पखो को ढीला करने के लिये कपालीय गुहा मे पतला चाकू भोक दिया जाता है

व्यापारिक पैमाने पर कुक्कुटो के पख उतारने के लिये रक्त निकले पक्षियो को किसी विशेष ताप पर रखे हुये जल मे एक निश्चित समय के लिये डुबोया (फुहारा) जाता है फिर पखो को हाथ से नोच करके अथवा बिजली से चलने वाले बेलनो पर

सारणी 142 – विभिन्न किस्मो के कुक्कुटो से प्राप्त सज्जित किये आँत रहित तथा खाद्य मास की औसत मात्रा*

	जीवित भार (किग्रा)	परिसाधित मांस (जीवित भार का %)	आंतरहित मास (पकाने के लिये तैयार) (जीवित भार का %)	खाद्य मास (जीवित का %)
चूजे				
मांस वाले, तले जाने वाले	1 4	86	64	43
भुने जाने वाले	2 3	87	65	47
मुर्गियाँ	2 5	88	68	56
टर्की				
तलने योग्य छोटे चूजे	3 2	88	72	53
वयस्क कुक्कुट				
हल्के	5 0	88	74	54
मध्यम	8 2	89	77	56
भारी	12 2	92	79	60
वत्तखे	2 7	89	70	56
हंस	6 4	88	72	56

*Stewart & Abbott, *FAO Market Guide*, No 4, 1961, 59

लगी पखें उखाडने वाली रवड की उँगलियो से उखाडा जाता है कुक्कुट ससाधन के लिये अधिकतर दाह या अर्द्धदाह करते है जिसमे 50–53° पर 3 मिनट तक द्रव में दहन किया जाता है इस विधि से त्वचा के वाहरी भाग मे कोई विशेष प्रभाव भी नही पडता और पख ढीले पड जाते है

पुराने पक्षियो के मास पर से वाल हटाने के लिये उसे सुखाने के वाद आग की लपटो के ऊपर से गुजारा जाता है अथवा इसके लिये विशेष रूप से वनी झुलसाने वाली मशीनें प्रयोग मे लायी जाती है

ड्रेसिंग से रक्त और पख निकाल देने से भार मे कमी आ जाती है जितना रक्त वाहर निकल जाता है वह जीवित कुक्कुट के शरीर भार का लगभग 4% होता है पखो के कारण होने वाली भार की कमी स्थिर नही होती यह औसतन जीवित शरीर भार की लगभग 5% होती है यह मुर्गियो मे अधिक और मुर्गों में कम होती है 8–24 सप्ताह तक की आयु के देशी मुर्गे के ससाधित मास का भार जीवित कुक्कुट भार का लगभग 67% होता है भारतीय वाजारो मे अधिकाश देशी मुर्गो का मास ही विकता है

आँत निकालना

प्राय विना आँत के अथवा पकाने के लिये तैयार अवस्था में ही कुक्कुट मास वेचा जाता है ऐसे मास के लिये निर्जलन, वसा की विकृतगधिता तथा आन्त्रिक गुहा मे जीवाणु विकारो के प्रति सावधानी वरतनी पडती है कटा हुआ, पकाने के लिये तैयार कुक्कुट मास भी वडी मात्रा में विकता है

आँते निकालने से कुक्कुट मास के भार मे जो कमी आती है वह उसके फूले हुये आकार पर निर्भर करती है यह हानि छोटे चूजो मे अपेक्षाकृत अधिक होती है साधारणत 1 किग्रा सज्जित किया कुक्कुट मास आँतें निकालने के पश्चात् भक्ष्य आन्त्रिक भागो सहित 0 80 किग्रा तथा इनके विना 0 67 किग्रा. रह जाता है ससाधन की विभिन्न अवस्थाओ मे चूजो, पीरूओ, वत्तखो तथा हसो के मास का औसत भार सारणी 142 में दिया गया है

द्रुतशीतन और हिमीकरण – वध करने तथा ड्रेसिंग के तुरन्त वाद कुक्कुट मास को 4 5° तक ठण्डा करके फिर उसे लगभग 0° ताप पर रखना चाहिये कुक्कुट मास का अत्यधिक निर्जलन रोकने के लिये वध के 2–8 घण्टो के भीतर ही पिघलती हुयी वर्फ का प्रयोग करके ताप को तुरन्त घटा कर द्रुतशीतन कर दिया जाता है यदि शवो को ठीक से रखा जाय तो वे 3–4 सप्ताह तक रह जाते है आँत-रहित परिसाधित कुक्कुट मास द्रुतशीतन करते समय यदि क्लोरटेट्रासाइक्लीन अथवा ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन (1 भाग प्रति लाख) का प्रयोग किया जाये तो मास और भी लम्वी अवधि के लिये सुरक्षित रखा जा सकता है मास मुख्यत पक्षी की विष्ठा लग जाने से ही दूपित होजाता है इसलिये मास को विष्ठा लगने से वचाना चाहियें द्रुतशीतन मे मास में ऐमीनो अम्लो तथा क्षारीय नाइट्रोजन की मात्रा प्रोटीन की खपत होने के कारण वढ जाती है वसा का अम्ल मान भी वढ जाता है

कतिपय विशेप परिस्थितियो मे कुक्कुट मास को हिमीकरण द्वारा कई महीनो तक सुरक्षित रखा जा सकता है –9° से कम ताप पर सूक्ष्मजीवो की क्रिया नही हो पाती फलत कुक्कुट मास खट्टा और चिकना नही हो पाता यह आवश्यक है कि हिमीकरण से पहले द्रव हिमीकरण अथवा मन्द हिमीकरण द्वारा शव का द्रुतशीतन कर दिया जाय जिससे हिमीकरण से पहले किसी प्रकार के जीवाणु इसे खराव न कर दे सम्भव है कि हिमीकृत अवस्था मे त्वचा का निर्जलन हो जाय तथा रग काला पड जाय निम्न ताप पर यह प्रक्रम मन्द होता है किन्तु यदि शवो को 6 महीने या इससे अधिक समय के लिये रखना हो तो यह गम्भीर वन सकता है ऐसे शवो के भार मे हानि तो होती ही हे, मास का रूप भी विगड जाता हे और धीरे-धीरे इसका सुरस और रसीलेपन मे भी कमी आ जाती है

सज्जित किया हुआ कुक्कुट मास कई तरह से वेचा जाता है भूनने आदि के लिये समूचा कुक्कुट, दो भागो मे वँटा हुआ आधा-आधा कुक्कुट, हड्डियो सहित विना आँत वाला भक्ष्य आन्त्रिक भागो तथा गर्दन सहित पश्चिमी देशो मे सभी प्रकार के मासो का निरीक्षण वध करने के पूर्व तथा वाद मे किया जाता हे और स्वास्थ्य निरीक्षको द्वारा सफाई का निरीक्षण होता है

व्यापारिक रीति से समाधित मास के लिये अथवा तले जाने के लिये चूजे द्रुतशीतित अवस्था मे ही वेचे जाते है जवकि अधिकाश पीरू प्राय हिमीकृत अवस्था मे अधिक विकते है पहले से पकाये कई प्रकार के हिमीकृत कुक्कुट मास उत्पाद उपलब्ध है चूजे और पीरू की कचौरियाँ कन्द (पतले कटे टुकडे), गोल वेलनाकार टुकडे, अण्डे तथा पाव रोटी सहित तले हुये टुकडे, चूजो के मास की सीखे तथा पीरू मास फडे मुख्य है इन उत्पादो का हिमीकरण कर इनका सुस्वाद, कोमलता तथा रसीलापन वनाये रखना कुछ कठिन है

देश मे कुक्कुट उद्योग का तेजी से विकास होने के साथ ही प्रति घण्टे लगभग 1000 पक्षियो को सभाल सकने योग्य ससाधन

सयत्रो को अभिकल्पित करना जो यान्त्रिक कम हो तथा वडे पैमाने पर स्वचालित सयत्र से युक्त हो लाभदायक होंगे इन सयत्रो का उद्देश्य कुक्कुट पालको को समय पर चूज़ो के उचित दाम देकर वैज्ञानिक विधियो से सज्जित किये गये पकाने के लिये तैयार कुक्कुट उत्पादो को बाजार मे उपलब्ध कराना है देश मे विदेशी सहयोग मे कुक्कुट समाधन के वडे-वडे सयन्त्र चण्डीगढ तथा पूना (महाराष्ट्र) मे स्थापित किये गये हैं इन सयत्रो की ड्रेसिंग क्षमता क्रमश 600 और 1000 कुक्कुट प्रति घण्टा है

डिव्वावन्दी – विशेषतया यूरोप तथा सयुक्त राज्य अमेरिका मे कुक्कुट मास वडी मात्रा मे डिव्वो मे बन्द किया जाता है डिव्वो मे वन्द करने के लिये मास को जीवाणुविहीन किया जाता है वाद मे यह डिव्वो मे लम्बी अवधि तक सुरक्षित रहता है गर्म देशो मे जहाँ प्रशीतन की विशेष सुविधाये उपलब्ध नही है, वहाँ डिव्वा वन्द मास के वितरण तथा सरलतापूर्वक सचयन मे काफी सुविधा होती है भारत मे अधिकाश शहरी कुक्कुट उत्पाद-भण्डारो तक मे प्रशीतन की पर्याप्त सुविधाये न होने के कारण अतिरिक्त कुक्कुट उत्पादो की डिव्वावन्दी का भविष्य आशाजनक प्रतीत होता है

सिझाना – मुर्गियो के मास के सिझाने मे अथवा सिझाने और निर्जलीकरण की सयुक्त विधि से उसे स्थायी बनाने तथा देशी खाद्य सम्पाको तथा पाक विद्या की विधियो के लिये उपयुक्त उत्पाद प्रदान करने का सस्ता साधन प्राप्त हो जाता है कुक्कुट मास कई एशियाई देशो के अत्यन्त सिझाये हुये खाद्य पदार्थो से मिलाया जाता है केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर में कुक्कुट मास को सिझाने की मानक विधियो के विकास के लिये अनुसधान किये जा रहे है जिससे ग्राह्य स्थायी उत्पाद प्राप्त हो सकें

कभी-कभी चूज़ो और पीरुओं को सिझाया और धूमित किया जाता है, ऐसे उत्पाद उत्तम माने जाते हैं सिर, गर्दन तथा टाँगें अलग करने के वाद आँत निकाला हुआ मास चीनी तथा पोटैसियम नाइट्रेट को 3 5° पर जल में विलयित करके उसे 18–25 दिन तक सिझाने के वाद धोया, सुखाया और फिर 57–60° ताप पर 16 घण्टे तक धुआँया जाता है

संघटन

कुक्कुट मास उच्च कोटिक प्रोटीन, लौह तथा फॉस्फोरस और बी-विटामिनो का उत्तम स्रोत है कुक्कुट मास के पोषण सचयन करने पर विनष्ट नही होते और पकाने के समय भी इनकी हानि वहुत ही सामान्य, वह भी बी-विटामिनो की होती है विभिन्न भक्ष्य पक्षियो के खाद्य अगो का रासायनिक सघटन सारणी 143 मे दिया गया है

नाइट्रोजनी पदार्थ–विभिन्न भक्ष्य तथा शिकार पक्षियो के खाद्य अगो में प्रोटीन की औसत मात्रा इस प्रकार पायी गयी चूज़े एव मास उत्पादक कुक्कुट, 21 6, तले जाने वाले चूज़े, 20 0 और भूने जाने वाले चूज़े, 20 3, बाल हस, 16 2, पीरू, 20 1, वत्तख (पालतू), 16 0 और खस्सी मुर्गा, 21 4% कुक्कुट मास के प्रोटीन अन्य पशुओ के मास-प्रोटीन जैसे ही होते हैं इनमे वाह्य कोशिकी प्रोटीन (कोलैजेन और एलास्टिन) तथा अन्त कोशिका प्रोटीन, सम्मिलित हैं जिनमे एक्टिनोमायोसिन ग्लोवुलिन एक्स, मायोजेन तथा मायोग्लोबिन के नाम प्रमुख हैं कच्ची पेशी विलेय लघु रचक तथा कार्नोसीन, एनसेरीन, क्रिएटीन, एडिनोसीन ट्राइफॉस्फेट, यूरिया, अमोनिया, ग्लुटाथायोन तथा एमीनो अम्ल पाये जाते है ऐक्टिनोमायोसिन पेशियो का सकुचनशील अवयव है और यह पेशियो के कुल प्रोटीन का आधे से अधिक होता है एलास्टिन तथा कोलैजेन पके हुये मास मे कडापन उत्पन्न करते हैं और ये कुक्कुट की आयु के साथ-साथ बढते जाते हैं कुक्कुट की हड्डियाँ मुख्यत कोलैजेन और कैल्सियम फॉस्फेट की और त्वचा मुख्यत कोलैजेन की वनी होती है पानी अथवा भाप में पकाये जाने पर कुक्कुट मास का कोलैजेन जिलेटिन में परिवर्तित हो जाता है और यह शोरवे या सूप के लिये उपयुक्त पदार्थ प्रदान करता है

कुक्कुट मास मे अधिकतम कोमलता लाने के लिये कुक्कुटो को अधिक वडा करने की आवश्यकता नही होती यदि पक्षियो को मारने के वाद तुरन्त पका लिया जाय तो मास कडा, रेशेदार और रवड के जैसा हो जाता है कुक्कुट को मारने के पश्चात् इसके मास को एक अथवा दो दिन तक प्रशीतन ताप पर रखने से यह पूर्णत विघटित होकर मुलायम हो जाता है

कुक्कुट मास के प्रोटीनो का पौष्टिक मान भी अन्य पशुओ के समान उच्च होता है ये बहुत जल्द पचने वाले होते हैं कुक्कुट मास प्रोटीनो के अनिवार्य ऐमीनो अम्ल सारणी 144 में दिये गये है

वसा – कुक्कुट ऊतको मे वसा की मात्रा, ऊतको की किस्म, कुक्कुट की आयु, लिंग, उपचार तथा पोषण के अनुसार परिवर्तित

सारणी 143 – कुक्कुटो के खाद्य अश का सघटन

	चूज़े					
	छोटे	तरुण	वयस्क	बत्तख	हंस	पीरू
आर्द्रता,%	71 2	66 0	55 9	54 3	51 1	58 3
प्रोटीन,%	20 2	20 2	18 0	16 0	16 4	20 1
वसा,%	7 2	12 6	25 0	28 6	31 5	20 2
राख,%	1 1	1 0	1 1	1 0	0 9	1 0
कैल्सियम, मिग्रा /100 ग्रा	14	14	14	15	15	23
फास्फोरस, मिग्रा /100 ग्रा	200	200	200	188	188	320
लौह, मिग्रा /100 ग्रा	1 5	1 5	1 5	1 8	1 8	3 8
थायमिन, मिग्रा /100 ग्रा	0 08	0 08	0 08	0 10	0 10	0 09
राइबोफ्लैविन, मिग्रा /100 ग्रा	0 16	0 16	0 16	0 24	0.24	0 14
निकोटिनिक अम्ल, मिग्रा /100 ग्रा	10 2	8 0	8 0	5 6	5 6	8 0
विटामिन ए मान, अ इ /100 ग्रा	230	410	810			

*Wu Leunc *et al*, *Agric Handb*, *U S Dep Agric*, No 34 1952, 34-35

सारणी 144 – कुक्कुट प्रोटीन के अनिवार्य ऐमीनो अम्ल रचक*

(ग्रा /16 ग्रा N)

	चूजों की पेशियां	चूजों का मांस हल्के रंग का	चूजा-मांस गहरे रंग का	गिजर्ड	चूजा यकृत	चूजा पंख केराटिन	अन्डे सेने वाले स्थानों से प्राप्त मह-जात चूर्ण†
प्रोटीन मात्रा,%		23 3	18 4	19 8	18 9	93 8	
आर्जिनीन	7 1	5 9	6 1	5 6	7 1	7 5	6 0
हिस्टिडीन	2 3	3 7	2 9	2 5	3 8	0 4	1 0
लाइसीन	8 4	7 5	8 8	6 0	7 3	1 3	5 5
ट्रिप्टोफैन	1 2	1 2	0 9	0 8	0 7		0 7
फेनिलएलानीन	4 6	3 8	4 0	3 2	4 6	5 2	5 8
मेथियोनीन	3 2	2 1	2 8	2 6	4 1	0 5	2 7
थ्रियोनीन	4 7	3 9	3 8	4 5	5 1	4 4	
ल्यूसीन		7 0	7 2	6 0	8 2	8 0	3 7
आइसोल्यूसीन		5 3	5 7	4 4	5 6	6 0	4 3
वेलीन		4 7	4 6	3 8	5 6	8 3	4 8

*Kuppuswamy *et al*, 155-57, 160-61

† आंकड़े डा वी पण्डा, केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर से प्राप्त हुए

होती रहती है मास-उत्पादक चूज़ो में छाती के ऊनको में केवल 0 3% तक और मुर्गी के उदरीय वसा ऊनको में 80% तक वसा होती है यह वसा या तो उदासीन वसा के रूप मे होती है जो त्वचा के नीचे भण्डारो में तथा देह गुहा मे प्रमुखत पायी जाती है अथवा फॉस्फोलिपिड वसा के रूप में जो यकृत, हृदय इत्यादि के लिपिडो में प्रचुर मात्रा मे रहती है फॉस्फोलिपिडो में टेट्राए-नाइक, पेंटाएनाइक और हेक्साएनाइक अम्लो की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है

कुक्कुट की लाश के प्रत्येक भाग की संचित उदासीन वसा का संघटन लगभग एक-जैसा होता है मुर्गियो के वसा के स्थिरांक भी सुअर की चर्बी जैसे होते है किन्तु इनका आयोडीन मान सुअर की चर्बी से अधिक होता है मुर्गियो की वसा में रंग का लगभग 40% जैन्थोफिल रहता है चूजे तथा पीरू की वसा के विभिन्न मानों के परास क्रमश. इस प्रकार है ग वि, 23–40°, 31–32°, आ घ $^{15°}$, 0 9065–0 9241, 0 9090–0 9220, $n^{40°}$, 1 4610–1 4620, 1 4587–1 4663, साबु मान, 193 5–204 6, 191 6–225 1, आयो मान, 66 7–78 2, 64 9–81 1 और एम मान, 1 0–1 8, 3 8 और थायोसायनोजन मान, 62 5–62 8 — चूज़े की वसा में लगभग 60% असतृप्त और 30–35% सतृप्त अम्ल रहते है 7 मास की आयु की मुर्गी की देह मे वसा (उदरीय, गिजर्ड तथा गर्दन के वसा भण्डारो की) का संघटन इस प्रकार है मिरिस्टिक, 0 1, पामिटिक, 25 9, स्टीऐरिक, 6 7, हेक्साडेनेनाइक, 7 0, ओलीक, 38 1, लिनोलीक, 21 8, और C_{20-22} असतृप्त अम्ल 0 4% भारतीय नर पीरू की संचित वसा का संघटन इस प्रकार है सतृप्त, 31 2, हेक्साडेसेनाइक, 15 5, ओलीक, 35 2, लिनोलीक, 15 6, तथा लिनोलेनिक, 2 5%

वसा की अम्लता कुक्कुट मास के ताजेपन की विश्वसनीयता की सूचक मानी जाती है इसका मान बढना मास बिगडने का सूचक है अन्य पशुओं की भाँति, कुक्कुट मास में भी लिपेस ऐंजाइम विशेष रूप मे पाया जाता है जो कुक्कुट के मरने पर वसा का विघटन करता है कुक्कुट मास मे लिपेस सम्भवत जाइमोजेन के रूप में रहता है और कुक्कुट की मृत्यु के बाद इससे यह एंजाइम मुक्त हो जाता है वध करने के तुरन्त बाद कुक्कुट वसा मे लिपेस की कोई सक्रियता नही देखी जाती किन्तु अधिक समय तक, विशेषतया हिमांक से अधिक ताप पर रखने पर यह क्रिया बढ जाती है लिपेस के अतिरिक्त अपरिष्कृत कुक्कुट मास मे कैटैलेस, परॉक्सीडेस, ऑक्सीडेस तथा रिडक्टेस एंजाइम भी पाये जाते है

कुक्कुट वसा का स्थायित्व ऑक्सीकारी विकृत गंधिता के नियन्त्रण पर निर्भर करता है और इसे कुक्कुट आहार में टोकोफे-रॉल जैसे ऑक्सीकरण रोधको की मात्रा बढा कर बढाया जा सकता है पीरू-वसा की अपेक्षा चूज़ा-वसा अधिक स्थायी है कुक्कुट आहार में, विशेषकर कुक्कुट को वध करने से पूर्व के मछली के तेल की मात्रा अधिक रहने पर इनके पकाये गये मास मे मछली की-सी गन्ध आती है

एंजाइम – वसा में पाये जाने वाले एंजाइमो के अतिरिक्त कुक्कुट मास मे ऐमिलेस, इनवर्टेस, प्रोटिएस, ऐंटीट्रिप्सिन, ग्लाइकोज-नेस तथा माल्टेस नामक एंजाइम उपस्थित रहते है

खनिज – कुक्कुट मास में फॉस्फोरस और लौह पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है चूज़े के कच्चे मास का खनिज संघटन इस प्रकार है सोडियम, 46, पोटैसियम, 407, कैल्सियम, 5 8, मैग्नीशियम, 29 0,, लौह, 0 7, फॉस्फोरस, 248, गंधक, 268 तथा क्लोरीन, 61 मिग्रा /100 ग्रा कुक्कुट मास मे जो सूक्ष्ममात्रिक तत्व पाये जाते है, वे मैंगनीज, ताँबा और आयोडीन है

विटामिन – कुक्कुट मास में बी-विटामिनो मे से राइबोफ्लैविन और निकोटिनिक अम्ल विशेषतया प्रचुर मात्रा मे पाये जाते है इनमें विटामिन की मात्रा चुग्गे की विटामिन मात्रा पर निर्भर करती है चूज़ो और पीरूओं की श्यामल पेशियो में पीली पेशियो की अपेक्षा थायमीन और राइबोफ्लैविन अधिक मात्रा मे और निकोटिनिक अम्ल कम मात्रा मे पाये जाते है चूज़े के दुर्बल अंगो के मास मे पाये जाने वाले बी-विटामिनों की मात्रा सारणी 145 मे दी गयी है मुर्गी के यकृत तथा शरीर वसा मे विटामिन ए और कैरोटिनॉयड होते है यकृत के एक नमूने मे 32,200 अ इ /100 ग्रा विटामिन ए पाया गया चूज़ो के यकृत मे विटामिन डी भी काफी रहता है कुक्कुट मास में टोकोफेरॉल व्यापक रूप मे पाया जाता है पीरू में यह गिजर्ड अथवा कंकाल पेशियो की अपेक्षा यकृत और हृदय मे तथा सीने की अपेक्षा टाँगो की पेशियो में अधिक सान्द्रित रहता है

सुरस यौगिक – चूज़ो के ऊनको के सुरसीय अवयवो की प्रकृति अभी तक पूर्णतया ज्ञात नही हो पायी है चूज़ो मे जो सुरस रहती है वह कम से कम दो प्रभाजो के कारण होती है जिनमे से एक गंधकयुक्त और दूसरा वसा अम्ल जैसा पदार्थ होता है गन्धकयुक्त यौगिक बहुत ही अस्थायी है और रखा रहने पर हाइ-ड्रोजन सल्फाइड मुक्त करता है यह सम्भवत चूज़ो के मास के

सारणी 145–ताजे चूजा ऊतकों के वसा रहित भागों के कुछ विटामिन बी रचक*

(मिग्रा /100 ग्रा)

ऊतक	थायमीन	राइबोफ्लैविन	नायसिन	पेन्टोथैनिक अम्ल
यकृत	0 09	2 17	13 9	2 20
हृदय	0 22	1 05	2 91	1 26
गिजर्ड	0 04	0 21	4 56	0 28
त्वचा	0 01	0 09	1 63	0 12
सीने की पेशियाँ	0 04-0 06	0 05-0 10	8 2-12 5	0 11-0 22
टाँग की पेशियाँ	0 08-0 13	0 10-0 35	5 68-7 56	0 2-0 4

*Rice *et al*, *Arch Biochem*, 1946, **10**, 251

गधकयुक्त पदार्थो से बनता है क्योकि कच्चे मास मे किसी तरह की सुरसता नही रहती

वर्णक – कुक्कुटो के आहार से प्राप्त होने वाले मुख्य वर्णक जैन्थोफिल है और मास का वर्ण, आहार मे उपस्थित इस वर्णक की मात्रा का समानुपाती है यदि पक्षियो का पूरा रक्त वह नही जाता तो मास के ऊपरी ऊतको में हीमोग्लोबिन नामक लाल वर्णक रह जाता है हीमोग्लोबिन से मिलता-जुलता एक वर्णक मायोग्लोबिन है जो जाँघो और टाँगो की पेशियो मे पाया जाता है और उनके गहरे रग के लिये उत्तरदायी होता है

कुक्कुटो का हरापन – जो मास उचित ढग से पहले प्रशीतित नही कर लिया जाता और साधारण ताप पर रखा रहने दिया जाता है उसका रग नीला-हरा और आकृति फूली हुयी जान पडती है इसमें ऐसा रग हीमोग्लोबिन पर जीवाण्विक क्रिया से उत्पन्न हाइड्रोजन सल्फाइड की अभिक्रिया से बनने वाले सल्फाहीमोग्लोबिन के कारण आता है सर्वप्रथम ऐसा रग प्राय. पसलियो पर दिखायी पडता है जहाँ आँतो मे सडन उत्पन्न होने से हाइड्रोजन सल्फाइड बनती है जिससे त्वचा की कोशिका नलियो मे उपस्थित रक्त पर क्रिया होती है यदि कुक्कुटो को वध के पूर्व भूखा रखा जाय तो मास मे कम हरापन आता है

श्रेणीकरण और मानकीकरण

कुक्कुटो को खरीदते समय उपभोक्ता उनकी किस्म, लिंग, आयु और साधारण स्वास्थ्य को विशेष महत्व देते हैं वे सामान्यत कुछ कुक्कुट छाँट लेते हैं और उनके सीने को यह जानने के लिये टटोलते हैं कि उनमे कितना मास होगा इसी आधार पर कुक्कुटो का चुनाव होता है और मोल-भाव किया जाता है छोटे चूजो का मूल्य बूढे कुक्कुटो की अपेक्षा अधिक माँगा जाता है भारत के कुछ भागो में कुक्कुटो को उनकी आयु के अनुसार चार वर्गो में बाँटा जाता है ये हैं, 3 मास से कम की आयु के (चूजा), 3 से 5 मास की आयु तक (चेंगना), 5 से 8 मास की आयु (पठ्ठा) तथा 8 से 12 मास की आयु के (तैयार मुर्गी). एक ही भार के छोटे चूजो का मूल्य बूढे कुक्कुटो की अपेक्षा 5% और मुर्गी का मूल्य मुर्गे से 10% अधिक होता है

जीवित कुक्कुटो की विभिन्न श्रेणियो मे अन्तर बताने वाले विभिन्न मोटे नियम सापेक्ष हैं और विशेष बाजारो तक ही सीमित रहते हैं फिर भी आसानी से कुक्कुट मास की किस्म जानने के लिये निर्धारित मानक बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं कुक्कुटो की लाशो की गुणता अनेक कारको पर निर्भर करती है, यथा, शरीर का आकार, मास की मात्रा, वसा, जले दागो तथा घावो की अनुपस्थिति, पक्षाकुर त्वचाक्षत, टूटी अस्थियाँ तथा विवर्णन ये लक्षण कुक्कुट की जाति, आयु तथा लिंग के आधार पर निर्धारित किये जाते हैं

कुक्कुट मास का मानकित श्रेणीकरण केवल उन्ही देशो मे सम्भव है जहाँ कुक्कुटो की लाशे बहुत बिकती है और मास को इस रूप में रखने के लिये प्रशीतन की सुविधायें होनी अत्यावश्यक हैं देश मे सज्जा और ससाधन सयत्र स्थापित हो जाने के बाद तथा सज्जित तथा ससाधित मास की प्रचुर थोक और फुटकर बिक्री होने पर इनके सचालन तथा बाजारो तक पहुँचाने के लिये प्रशीतन की सुविधायें उपलब्ध होने पर इनका मानकित श्रेणीकरण सम्भव हो सकेगा. भारतीय मानक सस्थान ने सज्जित मास की दो श्रेणियो के लिये विनिर्देश नियत किये हैं (IS 4764–1968)

पैकिंग – कुक्कुट मास की किस्म तथा बाजार मे बिकने वाले रूप पर इसकी पैकिंग निर्भर करती है अच्छी तरह पैक करने से न केवल सज्जित किया तथा आँतरहित मास सुरक्षित रहता है वरन् इससे कुक्कुट की किस्म तथा उसके गुण की भी जाँच हो जाती है जिससे उपभोक्ता आकर्षित हो सकता है विभिन्न देशो मे जलवायु तथा स्थानीय दशाओ के अनुसार सज्जित कुक्कुट मास प्लास्टिक तथा दफ्ती आदि के बने डिब्बो मे पैक करके भेजा जाता है. प्लास्टिक की डिब्बाबन्दी को वायुरुद्ध होना चाहिये

मांस उत्पाद

डिब्बाबन्द चूजे – भारत मे सेना के लिये डिब्बाबन्द चूजो की बहुत अधिक माँग है डिब्बाबन्दी के लिये परिपक्व कुक्कुट जिनमें चूजो की अपेक्षा अधिक मास होता है उपयुक्त हैं 20 मास से अधिक आयु की कम अण्डे देने वाली मुर्गियो के मास को डिब्बो मे बन्द करना लाभदायक है केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर ने हाल ही मे कुक्कुट मास को सम्पूर्ण कुक्कुट, सम्पूर्ण अस्थिरहित कुक्कुट, अस्थिरहित कटा हुआ कुक्कुट, अस्थिसहित कटा हुआ कुक्कुट तथा कुक्कुट के उत्कृष्ट भागो–जैसे सीना, जाघे आदि के डिब्बो मे बन्द करने की ठोस पैकिंग विधि विकसित की है उपभोक्ता के स्वादबोध के अनुसार उत्पाद को पुन पकाना होता है इस विधि से बिना मासयूप के अधिकतम आहार प्राप्त हो सकता है डिब्बाबन्द कुक्कुट मास (केवल अस्थिसहित मास) का सघटन इस प्रकार है जल, 61 9, प्रोटीन, 29 8, वसा, 8 0 और राख, 2 4%, कैल्सियम, 14, फॉस्फोरस, 148, लोह, 1 8, थायमीन, 0 04, राइबोफ्लैविन, 0 16 तथा नायसिन, 6 4 मिग्रा /100 ग्रा

डिब्बाबन्दी के समय कुक्कुट मास जेली तथा शोरबा उपोत्पाद के रूप में प्राप्त होते हैं ये निर्बल लोगो के लिये पौष्टिक होते हैं

गुलमा – बूढी मुर्गियो और मास उत्पादक तथा निकृष्ट कुक्कुटो के मास को तरकारियो के साथ 50% तक मिलाकर तथा मसाले आदि डालकर गुलमा बनाया जाता है इस उत्पाद मे आर्द्रता, 62–65, प्रोटीन, 15–17, वसा, 15–17 तथा कार्बोहाइड्रेट, 3–4% रहता है

चूज़ों का अर्क—कुक्कुट अर्क, स्वस्थ चूज़ों के मास के कीमे का खौलते हुए पानी द्वारा आशिक जल-अपघटन करके निष्कर्ष को निर्वात मे सान्द्रित करके, बनाया जाता है सान्द्रित निष्कर्ष को जीवाणुविहीन तथा इसमे वसा होने पर इसे वसारहित भी कर लिया जाता है इस सान्द्र को तनु करके और नाइट्रोजन और कुल ठोस इच्छित मात्रा मे करके निर्मलीकरण कर लिया जाता है और सम्पुटिका मे भर दिया जाता है सम्पुटिकाओं मे सुरसकारी तथा मीठा वनाने वाले कारकों को उपयुक्त परिरक्षकों के साथ मिलाकर वायुरुद्ध कर दिया जाता है चूज़ों के अर्क मे कुल ठोस, 10–13, प्रोटीन, 7–8 तथा क्लोराइड (NaCl के रूप मे), 0 2–0 3% होता है भारत मे चूज़ो के अर्क की अच्छी विक्री है इस समय भारत मे चार सस्थायें हैं जो प्रतिवर्ष लगभग 20,000 ली अर्क तैयार करती हैं

शिशु आहार—केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर द्वारा विकसित विधि से कुक्कुट मास से कृत्रिम शिशु आहार भी बनाया जा सकता है मास और यूष तो शिशु आहार वनाने मे काम आते हैं किन्तु खाल तथा हड्डियाँ लेई या निर्जलित उत्पाद वनाने मे इस्तेमाल की जाती हैं ऐसे शिशु आहार, प्रोटीन, लोह और निकोटिनिक अम्ल-वहुल होते हैं और इनमे रेशे विल्कुल नही पाये जाते

उपोत्पाद

कुक्कुट खाद—कुक्कुटो की वीट मे सान्द्र खाद मिलती हैं जिसे किसान विशेष रूप से पसन्द करते हैं कुछ ही स्थानो पर वीट को एकत्र करके भली-भांति सचित करने और परिरक्षित करके थोक मे वेचने का प्रवन्ध है कुक्कुट खाद में (शुष्क आधार पर) नाइट्रोजन, 2, फॉस्फोरिक अम्ल, 1 25, और पोटैश, 0 75% रहता है

मोटी विछाली से तैयार कुक्कुट खाद का कृषि उत्पादन पर विशेष प्रभाव पडता है एक वर्ष में 40 कुक्कुटो से लगभग 1 टन विछाली की खाद मिलती हैं जो धान अथवा मक्का के एक हेक्टर के लिये सोर्घम के 2 हेक्टर अथवा घनी वोयी गयी तरकारी के 0 5 हेक्टर के लिये पर्याप्त होती है कुक्कुट खाद से प्रति कुक्कुट वार्षिक आय मे 1–2 रु की वृद्धि हो सकती है यदि देश के अण्डा देने वाले अनुमानित 4 करोड कुक्कुटो को वाडो मे अथवा खुले स्थानो मे रखने की वजाय मोटी विछाली वाले पालन गृहो मे रखा जाये तो इनसे प्रतिवर्ष लगभग 30,000 टन नाइट्रोजन और 10 लाख टन कार्वनिक पदार्थ प्राप्त हो सकता है यदि 4,000 कुक्कुटो को एक हेक्टर भूमि पर अच्छी तरह से मोटी विछाली का प्रयोग करके पाला जाय तो 100 टन खाद प्राप्त होगी जो धान की 100 हेक्टर खेती के लिये पर्याप्त होगी

पख—अव पक्षियो के पखो को अच्छे-अच्छे व्यापारो मे प्रयुक्त किया जाने लगा है कुक्कुटो के लिंग तथा उनकी आयु के अनुसार पखो का भार जीवित भार का लगभग 4–9% होता है पखो को थैलो मे वन्द करने से पूर्व अच्छी प्रकार धोकर सुखा लेते है ठीक से छांटे गये सूखे और साफ पखो की माँग अधिक है विक्री योग्य न होने पर पखो को खेत मे डालकर खाद वनायी जा सकती है

पख साधारणत तकिये तथा गद्दे आदि भरने के काम आते हैं ऊष्मारोधी नरम और हल्के होने के कारण विदेशो मे कुक्कुटो के कोमल पिच्छ पखो की काफी माँग है जालन्धर (पजाव) मे पखो से, विशेषतया वत्तख के पखो मे खेलने के शटलकॉक वनाये जाते हैं कुक्कुट के फुटकर व्यापारी मारे गये अथवा सज्जित कुक्कुटो के लम्वे-लम्वे पखो को एकत्र करके उन्हे साफ करके शटलकॉक वनाने वालो के हाथ वेच देते हैं पखो का मूल्य उनकी लम्वाई, रग, शक्ति, गठन, लचीलेपन पर निर्भर करता है वत्तखो के पख अच्छे गठन तथा अपने जलसह गुणो के कारण मुर्गियो के पखो से मँहगे विकते हैं 1963–64 मे 2 00,000 रु का कोमल पिच्छ पख निर्यात किया गया पखो मे अधिकाशत केराटिन नामक तन्तुमय प्रोटीन होता है मुर्गियो के पखो के केराटिन के ऐमीनो अम्लो का सघटन सारणी 144 मे दिया गया है कुक्कुटो के पखो मे केराटिन प्राप्त करने की विधियाँ निकाली गयी हैं

उपजात आहार—कुक्कुटो से प्राप्त होने वाले कई उपजात जैसे रक्त-चूर्ण, कुक्कुट उपजात चूर्ण तथा अण्डे सेने वाले गृहो मे निकले उपजात चूर्ण, मास-उत्पादक जन्तुओ तथा कुक्कुटो को खिलाने के लिये प्रयुक्त किये जा सकते हैं इन्हे मुख्यत प्रोटीन अथवा अनिवार्य ऐमीनो अम्लो के लिये खिलाया जाता है इनमें वसा, प्रोटीन और खनिज भी पर्याप्त मात्रा मे पाये जाते हैं ऐसे पदार्थो का औसत सगठन सारणी 146 मे दिया गया है

पख-चूर्ण अथवा जलअपघटित पख तैयार करने के लिये मरे कुक्कुटो के पखो को उच्च भापीय दाव पर प्रयोग किया जाता है इसमे 80% से अधिक प्रोटीन तथा 70% तक पचनीय प्रोटीन होते हैं ठीक मे तैयार किया गया चूर्ण सामान्य प्रोटीन वर्धक आहार का प्रतिस्पर्धी हो सकता है जव मास उत्पादक कुक्कुटो को चुग्गे में 2–5% तक चूर्ण दिया गया तो सन्तोषजनक परिणाम मिले ऐसा लगता है कि पख-चूर्ण से कुक्कुटो को विटामिन वी$_{12}$ तथा एक अज्ञात आवश्यक कारक मिलते हैं

कुक्कुट के उपजात चूर्ण में वध किये गये कुक्कुटो के सिर, पजे, अविकसित अण्डे, गिजर्ड तथा आँतो को पीसकर सुखाये गये अग रहते हैं आहार के रूप में यह रद्दी मास का सन्तोषजनक

सारणी 146—कुक्कुटों के सहजातो का संघटन*
(औसत मान %)

सहजात	आर्द्रता	अपरिष्कृत प्रोटीन	वसा	अपरिष्कृत रेशे	नाइट्रोजन मुक्त निष्कर्ष	राख
वाजारू पख चूर्ण	6 5	87 0	3 5	0 3	0.2	3 2
कुक्कुट मास पपड़ियाँ	6 0	55 2	14 5	1 0	6 0	17 4
कुक्कुट रक्त-चूर्ण	16 5	67 0	6 2	0 5	3 5	7 5
मिश्रित कुक्कुट सहजात चूर्ण	7 4	6 31	13 2	1 5		
अन्डा सेने वाले स्थानों से प्राप्त सहजात चूर्ण†	8 0	31 1	30 1			25 0

*NSDA Utilization Res Rep No 3, Nov 1961
† Panda *et al*, *Indian vet J*, 1965, 42, 292

प्रतिस्थापी है व्यापारिक आहार मे राख 16% से कम तथा अम्ल विलेय राख 4% से अधिक नही होनी चाहिये

अण्डे सेने वाले स्थानो से प्राप्त उपजात का चूर्ण अण्डो की खोलो, अनिषेचित अण्डों, बिना फूटे अण्डो, पकाये गये निकृष्ट चूजो के मिश्रण को सुखाकर पीसने से बनता है इसमे 18.1% कैल्सियम और 413 मिग्रा/100 ग्रा फॉस्फोरस होता है अण्डे सेने के स्थानो से प्राप्त उपजात चूर्ण के अनिवार्य ऐमीनो अम्लों की सूची मारणी 144 मे दी गयी है.

विपणन तथा व्यापार

भारत मे कुक्कुट पालन मुख्यतया ग्रामीण क्षेत्रो में किया जाता है जहाँ सामान्यत पालक कम सख्या में ही पक्षी रखते है विगत कुछ वर्षो मे शहरो तथा शहरो के आसपास के इलाको में वडे पैमाने पर कुक्कुट पालने के व्यवसाय मे आश्चर्यजनक प्रगति हुयी है इतने पर भी अण्डो तथा कुक्कुटों की अधिकाश मात्रा ग्रामीण क्षेत्रो से ही प्राप्त होती है अधिकाश कुक्कुट जीवित अवस्था मे ही बेचे जाते है हाल ही के वर्षों मे अण्डो और कुक्कुट मास की खपत अत्यन्त तेजी के साथ बढने लगी है कुक्कुट-पालन व्यवसाय का भविष्य बहुत कुछ जनमाधारण के जीवनस्तर से सीधे सम्वन्धित है

कुक्कुट पालन-घरो और उपभोक्ताओं के बीच की दूरी जितनी अधिक होगी उचित समय पर ऐच्छिक स्थान पर अण्डो को ताजा तथा कुक्कुटो को जीवित पहुँचाने के लिये विपणन व्यवस्था भी उतनी ही जटिल हो जावेगी उत्पादको और उपभोक्ताओं की आवश्यकता और अभिरुचि को देखते हुये देश के कई भागो में कई तरह के कुक्कुट और कुक्कुट विपणन मगठन स्थापित किये गये है ये विपणन सगठन अण्डे तथा कुक्कुटो का लाखो रुपयो का व्यापार करते है

वाजारो के ममीप रहने वाले कुक्कुट पालक अपने अण्डो और कुक्कुटो को सीधे वाजारो मे बेच देते है अण्डा एकत्र करने वाले गाँव-गाँव जाकर अण्डे इकट्ठे करते है गाँव के मेलो मे भी ये व्यापारी अण्डो का क्रय-विक्रय करते है इस प्रकार के मेलो से ये व्यापारी बडी सख्या मे अण्डे और कुक्कुट खरीद कर इनको शहरो मे थोक व्यापारियों को भेज देते है किन्तु इम प्रकार से खरीदे गये अण्डे मिले-जुले तथा अनिश्चित प्रकार के होते है

जीवित कुक्कुटो को उनकी किस्म, आयु तथा लिंग के अनुमार अलग-अलग करके प्राय टोकरियो अथवा जालीदार पिंजडों में वन्द कर दिया जाता है नीलामकर्ता अथवा थोक व्यापारी इन्हे पक्तियो मे सजा देते है कुक्कुटो को घरो मे वाजार तक लाने के लिये प्रयुक्त माधनो का प्रभाव मास की कोटि पर वहुत पडता है यदि पक्षियो की ठीक से परवाह नही की जाती या अनुपयुक्त या ठूम-ठूम कर भरे पिंजडों मे भरा जाता है अथवा गर्मी की ऋतु मे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने मे देर हो जाती है तो कुक्कुटो के मरने, पख अथवा टाँग टूटने तथा चोट लग जाने के परिणामस्वरूप बहुत हानि होती है

ऐसे शहर जहाँ कुक्कुट मास तथा अण्डो की काफी खपत होती है उनमें केन्द्रीय थोक वाजार होते है जो कुक्कुट मास तथा अण्डो के भाव निर्धारित करते है भारत के कुछ वडे शहरो मे अण्डो को बेचने के पूर्व श्रेणीवार दफ्तीं के डिब्बो में लगाकर तथा सज्जित एवम् पकाने के लिये तैयार मास की रक्षात्मक वेष्टन मे लपेटकर हिमकारी अलमारियो में रखते है

भारत मे कुक्कुट सम्वन्धी विपणन सूचना तथा अनुसधान का उचित रूप से समन्वय नही हो पाया है. देश मे कुक्कुट उत्पादो की बढती हुयी मात्रा का पूर्ण उपयोग करने के लिये कुक्कुट पालन तथा कुक्कुट प्रसार मे विशिष्ट प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है.

गहन कुक्कुट उत्पादन कार्यक्रम के अन्तर्गत पजाव, केरल, पश्चिमी वगाल, राजस्थान, मैसूर, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, और तमिलनाडु राज्यो मे काफी प्रगति हुयी है ऐसे केन्द्रो पर अण्डो के उत्पादन में हुयी वृद्धि के साथ इनको राज्य के अन्दर अथवा वाहर अच्छे वाजारो तक पहुँचाने के लिये विपणन सगठनों की आवश्यकता अनुभव की जा रही है

चूजो तथा कुक्कुट आहार की पूर्ति और वाजारो मे अण्डा और कुक्कुट पहुँचाने के लिये 1964 मे चण्डीगढ में पजाव कुक्कुट निगम की स्थापना की गयी, जिसके सचालन केन्द्र गुरदासपुर, लुधियाना, जालधर, मलरकोटला, पटियाला तथा अमृतसर है. भारत में जितने अण्डे तथा खाद्य पक्षी तैयार होते है उनकी खपत देश में ही हो जाती है इनका निर्यात बहुत कम मात्रा में होता है

पहले भारत से श्रीलका को वडी सख्या मे अण्डो का निर्यात होता था किन्तु अव इनकी मात्रा कम होती जा रही है 1967–68 में लगभग 2,76,000 रु के मूल्य के लगभग 2,24,000 जीवित कुक्कुट और 1,03,000 रु के मूल्य के लगभग 60 लाख खोलसहित अण्डे निर्यात किये गये

भारत मे कुक्कुटो का आयात कुछ विदेशी जातियो तक ही मीमित है, जैसे कि **ह्वाइट लेगहार्न, रोड आइलैण्ड रेड, प्लाइमाउथ रॉक, ब्लैक मिनोरका**, सकर चूजे और फूटने वाले अण्डे इनका उपयोग देशी स्टाक के सुधार के लिये होता है.

भारत मे अण्डो का आयात वगलादेश से होता है किन्तु अव इनकी मात्रा घटती जा रही है. 1967–68 में लगभग 1,02,000 रु के जीवित कुक्कुट तथा 5,000 रु के 1,60,000 खोलसहित अण्डे भारत मे आयात किये गये

मूल्य – भारत में अण्डो तथा खाद्य पक्षियो का मूल्य स्थान-स्थान अथवा ऋतु के अनुसार बदलता रहता है अण्डो तथा कुक्कुटो का मूल्य उनके उत्पादन तथा पालन-व्यय पर निर्भर करता है कृषि अनुसधान साख्यिकी सस्थान (भारतीय कृषि अनुसधान परिषद्) ने अण्ड-उत्पादन और कुक्कुट पालन व्यय का अनुमान लगाने के लिये 1967 मे पजाव के होशियारपुर जिले के टाँडा-दासुया क्षेत्र का सर्वेक्षण किया 65 व्यापारिक कुक्कुट पालन गृहो के शीतऋतु के 4 महीनो के यादृच्छिक प्रतिचयन आँकडो के विश्लेषण से पता चला है कि एक वयस्क कुक्कुट के आहार पर, अवैतनिक मजदूरी को छोडकर, कुल खर्च का 95% बैठता है, इस प्रकार अण्डा देने वाली मुर्गी के रख-रखाव पर किये गये खर्च के कारण अण्डे का औसत मूल्य 12–16 पैसे आता है फूटने योग्य अण्डे का औसत मूल्य 15–20 पैसे तथा एक दिन की आयु के चूजो पर 40–45 पैसे खर्च बैठता है

भक्ष्य पक्षी का मूल्य, उसकी किस्म, शारीरिक भार तथा आयु पर निर्भर करता है बूढी मुर्गी तथा पट्ठे का औसत मूल्य प्रति किग्रा जीवित भार के लिये 3 50 रु तथा मास-उत्पादक कुक्कुट का 4 50 रु होता है पकाने के लिये तैयार सज्जित हिमीकृत

कुक्कुट जीवित भार का लगभग 70% बैठता है और इनका मूल्य लगभग 8 रु प्रति किग्रा और मीज़े कुक्कुट का दाम लगभग 7 रु प्रति किग्रा होता है

अनुसंधान और विकास

भारत मे भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान, इज्जतनगर, केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसधान सस्थान, मैसूर तथा विभिन्न पशुधन अनुसधानशालाओ और राज्यो के सरकारी कुक्कुट फार्मो मे पर्याप्त अनुसधान कार्य हो चुका है अथवा हो रहा है जिसमे देश मे बडे पैमाने पर कुक्कुट विकास सम्भव हो सका है भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् की सहायता से इन सस्थानो मे कुक्कुटो के आवास, आहार तथा प्रजनन पक्षो पर अनुसधान कार्य हो रहा है ग्रामीण परिस्थितियो मे एक दिन की आयु के चूजो को पालने तथा इनकी मृत्यु दर कम करने की उचित विधियो को पालको तक पहुँचाने के लिये भी अन्वेषण कार्य चल रहा है देश मे कुक्कुट मास को लोकप्रिय बनाने के लिये कुक्कुट तैयार करने की दिशा मे भी अध्ययन हो रहे है देश मे उपलब्ध कुक्कुट आहार के आधार पर देश के विभिन्न भागो मे कुछ सस्ते और सन्तुलित कुक्कुट आहार तैयार करने के यत्न हो रहे है अण्डा और मास उत्पादन के लिये देशी नस्लो को सुधारने का कार्य भी चल रहा है भारतीय पशु चिकित्सा अनुसधान सस्थान मे **ह्वाइट लेगहार्न और रोड आइलैण्ड रेड** नस्लो के द्वारा नस्ल-परीक्षण भी किये गये है कई स्थानो पर अब अण्डो और कुक्कुटादि के विपणन सम्बन्धी पहलुओ पर भी कार्य हो रहा है

1962–63 के अन्त मे भारत मे लगभग 120 राजकीय और 5 क्षेत्रीय कुक्कुट फार्म थे जिनमे कुल 65,160 अण्डाजनक कुक्कुट थे इन फार्मो के पास कुल मिलाकर 880 इनक्यूबेटर थे अधिकाश फार्मो मे **ह्वाइट लेगहार्न और रोड आइलैण्ड रेड** नस्लो के ही कुक्कुट पाले जाते है कुछ फार्मो में **ब्लैक मिनोरका, लाइट ससेक्स, ह्वाइट प्लाइमाउथ रॉक, न्यू हेम्पशायर, ब्राउन लेगहार्न** तथा **ब्लैक लेगहार्न** नस्लो के कुक्कुट भी पाले जाते है

1962–63 के अन्त मे देश मे लगभग 276 कुक्कुट सवर्धन केन्द्र थे जिनमे कुल मिलाकर 20,175 अण्डे देने वाली मुर्गियाँ थीं इन केन्द्रो के पास कुल 695 इनक्यूबेटर थे ये केन्द्र किसानो को अण्डे तथा एक दिन के चूजे सप्लाई करते है

अण्डो और कुक्कुटो के विपणन को केवल कुछ ही राज्यो मे सुव्यवस्थित किया गया है और अब लगभग 21 विपणन सगठन कार्य कर रहे है केवल चार राज्यो मे ही शीतागार की सुविधायें उपलब्ध है केरल, महाराष्ट्र और पजाब मे विपणन के सुव्यवस्थित सगठन स्थापित किये जा चुके है जबकि गुजरात, मैसूर, उडीसा, पश्चिमी बगाल, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश मे ऐसे सगठन स्थापित किये जा रहे है

1963 के अन्त मे भारत मे 2,474 ऐसे व्यक्तिगत फार्म थे जिनमे प्रत्येक मे अण्डे देने वाली मुर्गियो की सख्या 50–100 थी, 691 कुक्कुट फार्मो मे 100–500 तक मुर्गियाँ थी और 137 फार्म ऐसे थे जिनमे 500 से अधिक अण्डा देने योग्य मुर्गियाँ थी

चौथी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश की 50% जनता के लिये प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष 50 अण्डे उत्पन्न करने का लक्ष्य रखा गया है इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये चौथी पचवर्षीय योजना के अन्त तक अण्डा देने वाली मुर्गियो की सख्या दुगनी करनी पडेगी कुक्कुट विकास के लिये 1956–77 के लिये प्रस्तावित दीर्घकालीन योजना का विवरण सारणी 147 मे दिया गया है

सारणी 147–1956–77 में कुक्कुटो के विकास की योजनायें*

	1956	1961	1966	1971	1977
कुक्कुट सख्या (करोडो मे)	9 4	11 69	23 56	47 02	94 04
अन्डजनक कुक्कुटो की सख्या (करोडो मे)	3 6	4 5	9 0	18 0	36 0
कुल अन्डा उत्पादन (करोड़ो मे)	190 8	270 0	585 0	144 0	3240 0
सेने वाले कुक्कुटो की सख्या (करोडो मे)	38 2	54 0	117 5	288 0	648 0
मनुष्य के उपभोग के लिये उपलब्ध कुक्कुटो की सख्या (करोडो मे)	152 6	216 0	467 5	1 152 0	2,592 0

*खाद्य एवम् कृषि मन्त्रालय (कृषि विभाग), नई दिल्ली की चौथी पचवर्षीय योजना के कार्यरत वर्ग की रिपोर्ट के आधार पर

कुक्कुट आहार की पूर्ति का न हो पाना उद्योग की उन्नति मे बाधक है अधिकाश प्रकार के कुक्कुट आहारो मे 30–40% अन्न का प्रयोग होता है अन्न के प्रयोग में कुक्कुट मनुष्यो से होड ले रहे है एक परिमित अनुमान के आधार पर चौथी पचवर्षीय योजना के अन्त मे कुक्कुटादि के लिये प्रतिवर्ष लगभग 20 लाख टन अन्न की आवश्यकता होगी अत ऐसा चुग्गा तैयार करना आवश्यक हो गया है जिसमे अन्न कम लगे और लागत भी कम आवे इस कमी को पूरा करने के उद्देश्य से तथा विभिन्न आयु के कुक्कुटो के लिये बना-बनाया सन्तुलित आहार तैयार करने के लिये अनेक निजी कारखाने लगाये जा रहे है विभिन्न राज्यो मे इस समय कुक्कुट आहार तैयार करने वाले लगभग 49 सरकारी और 903 मान्यता प्राप्त निजी कारखाने है

चौथी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुक्कुटो के विकास के यथेष्ट विस्तार का प्रस्ताव है देश मे कुक्कुट उत्पादन के लिये चौथी पचवर्षीय योजना मे लगभग 25 करोड रुपये खर्च किये जाने का प्रस्ताव है जबकि तृतीय पचवर्षीय योजना मे यह राशि लगभग 7 करोड रुपये थी देश मे गहन कुक्कुट विकास की योजना देश के चुने हुये क्षेत्रो मे कुक्कुट उत्पादन एवम् विपणन करने वाले केन्द्रो के माध्यम से सचालित करने की है कुक्कुटादि के सर्वतोमुखी विकास तथा उत्पादो के विपणन के लिये विशेष कार्यक्रम तैयार किया जावेगा देश के पहाडी क्षेत्रो, आदिमवासी क्षेत्रो और पिछडे वर्गो के लोगो के क्षेत्रो मे कुक्कुटादि के विकास की विशेष योजना है

अत्यधिक सख्या मे उत्पादित अण्डो तथा भक्ष्य पक्षियो के प्रबन्ध के लिय अनेक राज्यो मे, अण्डो और कुक्कुटादि के स्थानान्तरण के लिये प्रशीतित उपकरणो, शीतागारो तथा कुक्कुटादि ससाधन सयत्रो की सुविधाओ से युक्त अण्डा तथा कुक्कुटादि एकत्रीकरण केन्द्र भी खोलने का प्रस्ताव है कुक्कुट प्रजनन और पालन के लिये 7,000 से अधिक पालको तथा अनेक निजी सस्थानो को ऋण देने की सुविधाये भी प्रदान की जा रही है

संदर्भ ग्रन्थ

सामान्य

AGGARWAL, N C—Cattle wealth of India Some problems discussed, *Econ Rev*, 1961, 12(17), 31–33

Animal Nutrition—*Proc Indian Coun agric Res Conf*, 1967

BAWA, H S—Livestock Products, *Rev Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 17, 1957

BHATTACHARYA, P—Animal Production and Health Breeding Better Livestock for India, Agenda item, C 5–2 (United Nations Conference on the Application of Science and Technology for the Benefit of Less Developed Areas)

BHOTE, R A—The place of livestock industry in India's economy, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(2), 3

BRIGGS, H M—Modern Breeds of Livestock (The Macmillan Co, New York), 1949

Brochure on Revised Series of National Product for 1960–61 to 1964–65 [Central Statistical Organization (Dep of Statistics), Cabinet Secretariat, Govt of India, New Delhi], 1967

CHAUDHURI, S C & GIRI, R.—Role of cattle in India's economy, *Khadi Gramodyog*, 1964, 10, 291–302

COLE, H H—Introduction to Livestock Production including Dairy and Poultry (W H Freeman & Co, San Francisco), 2nd edn, 1962

Committee on Natural Resources—Survey and Utilization of Agricultural and Industrial By-products and Wastes, VIII Wastes and By-products from Slaughterhouses and Dead Animals (Planning Commission, New Delhi), 1963

DATTA, S—Fifty Years of Science in India—Progress of Veterinary Research (Indian Science Congress Association, Calcutta), 1963

Estimates of National Income, 1964–65 [Central Statistical Organization (Dep of Statistics), Cabinet Secretariat, Govt of India, New Delhi], 1966

GEORGE, P M—Livestock industry, *Poona agric coll Mag*, 1959–60, 50, 247–49

Handbook of Animal Husbandry—Facts and Figures for Farmers, Students and all engaged or interested in Animal Husbandry (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1st edn, 1962, reprint edn, 1967

HARBANS SINGH—Domestic Animals—India The Land and People (National Book Trust of India, New Delhi), 1966

HARBANS SINGH & MOORE, E N—Livestock and Poultry Production (Prentice-Hall of India Pvt Ltd, New Delhi), 1968

HARBANS SINGH & PARNERKER, Y M—Basic Facts About Cattle Wealth and Allied Matters (Central Council of Gosamvardhana, New Delhi), 1966

Human Nutrition vis-a-vis Animal Nutrition in India, (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1954

KAURA, R L—Indian Breeds of Livestock including Pakistan Breeds (Prem Publishers, Lucknow), 1952

KEHAR, N D—Animal nutrition, *Souvenir Indian Coun agric Res*, 1929–54, 91–94

KURIAN, J—Role of livestock in the national economy, *Agric Situat India*, 1966, 21, 455–64

LANDER, P E—Feeding of Farm Animals in India (Macmillan & Co Ltd Calcutta) 1949

Livestock breeding under tropical and subtropical conditions *Proc F A O Meeting Lucknow (India)*, 1950

Livestock wealth of India, *Sci & Cult*, 1937–38, 3, 160

MOHAN, S N—Livestock development, *Agric Prodn Manual*, 1962, 137-69

MORRISON, F B—Feeds and Feeding (The Morrison Publishing Co, Ithaca, N Y) 22nd edn, 1956

National Income Statistics Proposals for a Revised Series of National Income Estimates for 1955–56 to 1959–60 [Central Statistical Organization (Dep of Statistics), Cabinet Secretariat, Govt of India, New Delhi], 1961

Production Yearbook (Food and Agricultural Organization of the United Nations, Rome), Vol 20, 1966

RANDHAWA, M S—Agriculture and Animal Husbandry in India (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1958

Report of the Committee on Utilization of Food and Agricultural Wastes (Council of Scientific & Industrial Research, New Delhi), 1959

Research in Animal Husbandry A Review, 1929–54 (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1962

Sample Surveys for Improvement of Livestock Statistics (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1961

SAXENA, H C—Animal feed industry in India, *Foreign Tr India*, No 33, 1966, 41–44

SAXENA, H C—Animal feed industry in India, *Res & Ind*, 1968, 13, 57-61

SEN, K C—Animal Nutrition Research in India (Macmillan & Co Ltd, Calcutta), 1953

SRINIVAS, C S—Importance of livestock in Indian economy, *Andhra vet coll Mag*, *Tirupathi*, 1960, 2, 12–16

WATT, G—The Commercial Products of India (John Murray, London), 1908, reprint edn, 1966

WATT, G—A Dictionary of the Economic Products of India (Govt Press, Calcutta), 6 vols, 1889–1893, Index, 1896

WHYTE, R O—Grassland and Fodder Resources of India, *Sci Monogr*, *Indian Coun agric Res*, No 22, 1957

WHYTE, R O *et al*—Agriculture and Livestock Targets in Indian Milk Schemes (from 'Agricultural Criteria for Dairy Development' by Whyte, R O published by FAO/UNICEF), 1964

WILLIAMSON, G & PAYNE, J W A—An Introduction to Animal Husbandry in the Tropics (Longmans, Green & Co Ltd, London), 1959, English Language Book Society edn, 1964

With India—The Wealth of India A Dictionary of Indian Raw Materials and Industrial Products (Council of Scientific & Industrial Research, New Delhi), Raw Materials, 8 vols, 1948–1969, Industrial Products, 6 pts, 1948–1965

पशुधन तथा भैंसें

AAREY Milk Scheme (Pictorial Feature), *Chem Age India*, Ser 6, 1952, 175

ACHARYA, C N—Cow-dung gas plants, *Indian Fmg*, *N S*, 1953–54, 3(9), 16

AGARWALA, O P—Artificial insemination and its applicability in India, *Allahabad Fmr*, 1950, 24, 88

AGARWALA, O P—Cross-breeding project at the Allahabad Agricultural Institute, *Allahabad Fmr*, 1968, 42, 87–101

AMBLE, V N & JAIN, J P—Plan for evolving a new breed of dairy cattle by crossing indigenous and exotic breeds, *J Genet*, 1965, 59(2), 1–19

AMBLE, V N & JAIN, J P—Comparative performance of different grades of cross-bred cows on military farms in India, *J Dairy Sci*, 1967, 59, 1695–1702

AMBLE, V N & RAUT, K C—Seasonal variation in milk production, *Dairy Ext*, 1964–65, 3 & 4(11 & 12, 1 & 2), 27–34

AMBLE, V N *et al*—Milk production of bovines in India and their feed availability, *Indian J vet Sci*, 1965, 35, 221–38

'Amuldan' A scientific cattlefeed, *Res & Ind*, 1964, 9, 327–29

ANANTAKRISHNAN, C P—Milk and its products, *Indian Fmg, N S*, 1952–53, 2(9), 20

Animal feeds, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(1), 52

Animal nutrition Disadvantages of paddy straw as cattle feed, *Annu Rep*, *Indian Coun agric Res*, 1958–59, 87–88

BACHAN SINGH—Protozoan diseases Bovine Trypanosomiasis in Central Provinces with an account of some recent outbreaks, *Indian J vet Sci*, 1936, 6, 242

BADRI, RAJASAHEB—Cross-breeding of cows in India The imperative need (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy', published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 55–56

BALASUBRAMANIAM, M—Cattle wealth of India, *Indian Fin Annu Yearb*, 1960, 93–98

BALWANI, T N—Anthrax and how to control it, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, 11(7), 17–18

BALWANT SINGH—The blood groups of Indian cattle and buffaloes, *Indian J vet Sci*, 1942, 12, 12

BALWANT SINGH—The blood group Identifications of various Indian breeds of cattle in India, *Indian J vet Sci*, 1945, 15, 109

BATRA, T R & DESAI, R N—Factors affecting milk production in Sahiwal cows, *Indian J vet Sci*, 1964, 34, 158–65

BAWA, M S *et al*—Fertility level of Hariana bulls, *Indian vet J*, 1968, 45, 40–46

BHASIN, N R—Study on economic characters of Nagauri cattle, *Indian vet J*, 1968, 45, 1022–26

BHASIN, N R—Study on economic characters of Mewati cattle, *Indian vet J*, 1969, 46, 234–43

BHASIN, N R & DEASI, R N—Influence of cross-breeding on the performance of Indian cattle, *Indian vet J*, 1967, 44, 405–12

BHATIA, H M—Much spade-work has been done in cattle improvement, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(3), 40–43, 46

BHATIA, H M—Rinderpest is routed again in the South, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(4), 17–19

BHATIA, H M—Animal husbandry research—I Animal breeding Live weight, draught capacity and sterilization methods, *Indian Fmg, N S*, 1965–66, 15(12), 43–45

BHATIA, H M—India's battle against rinderpest, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(12), 29–31

BHATIA, S S—Improvement of cattle and dairy industry, *Allahabad Fmr*, 1957, 31, 53–59

BHATNAGAR, S S *et al*—Horn waste as a raw material for the plastics industry, *J sci industr Res*, 1943–44, 2, 166–71

BHATTACHARJEE, J P—Cattle in India's farm economy (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy', published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 57–62

BHATTACHARYA, P—Some aspects of reproduction in Indian farm animals, Presidential Address, *Proc. Indian Sci Congr*, 1958, pt II, 132

BHATTACHARYA, P—Breeding profitable cows (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy, published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 39–46

BHATTACHARYA, P—Better feeding for higher production (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Development', pt 2, published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1965, 187–91

BHATTACHARYA, P & PRABHU, S S—Field application of artificial insemination in cattle, *Indian J vet Sci*, 1952, 22, 163–78

BHOTE, R A & JAYARAMAN, S—Slaughter-house by-products and their utilization, Paper read at the Symposium held at the Central Leather Research Institute, Madras

Bovine Stars of India All India Cattle Show, 1955 *Misc Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 82, 1957

Breakthrough in cattle breeding, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(7), 52

Cattle and buffalo breeding, in Handbook of Animal Husbandry (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1962, 1–37

Cattle wealth, *New Administrator*, 1964, 7(1–2), 13

CHANDRA, K—Chemical composition and nutritive value of maize grit, *Indian vet J*, 1968, 45, 248–51

CHANDRA, P T—The cattle wealth of India, *Brit agric Bull*, 1955, 8(38), 72

CHATTERJEE, I—India's cows and plough cattle and their interrelation with work and milk production, *Indian Agriculturist*, 1963, 7(1 & 2), 13–22

CHAUDHURI, R P—Insect Parasites of Livestock and their Control, *Res Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 29, 1962

CHAUDHURI, R P—Efficacy of some newer insecticides in controlling ectoparasites of livestock, *Indian vet J*, 1963, 40, 336–45

CHAUDHURI, R P—War on cattle grubs continues, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(4), 17–19

CHAUDHURI, R P—Some insect tormentors of livestock—II Black-flies, house-flies and mosquitoes, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(3), 17–19

CHAUDHURI, R P—Some insect tormentors of livestock—III Sand-flies, midges and blow-flies, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(4), 14–15, 45

CHAUDHURI, R P—Insect tormentors of livestock—IV The mites, *Indian Fmg, N S*, 1966–67, 16(5), 43–45, 49

CHAUDHURI, S C—Census figures reveal new trends in cattle population growth, *Indian Live-Stk*, 1963 1(1), 12–17

CHET RAM & KHANNA, N D—Studies on blood groups of Indian cattle, *Indian J vet Sci*, 1961, 31, 257–67

COCKRILL, R W—The water buffalo, *Sci Amer*, 1967, 217(6), 118–25

Co-operative dairying makes headway, *Farmer*, 1961, 12(11), 5–7

COTTON, W E *et al*—Efficacy and safety of abortion vaccines prepared from *Brucella abortus* strains of different degrees of virulence, *J agric Res*, 1933, 46, 291–314

COTTON, W E *et al*—Efficacy of an avirulent strain of *Brucella abortus* for vaccinating pregnant cattle, *J agric Res*, 1933, 46, 315–26

Cow-dung gas plants, *Indian Inform*, 1959, 2, 451

Cow-dung manure, *Yojana*, 1966, 10(21), 33

Damage and defects in hides and skins, *Footwear India*, 1963, 6(7), 12–16, 34

DANDEKAR, V M —An economic approach to cattle development in India (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Development', pt 2, published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1965 192–96

DAS, R —Gobar gas and potential for its utilization, *Allahabad Fmr*, 1962, 36(1), 17–21

DAS GUPTA, N C —Green berseem as a substitute for concentrates for economic feeding of dairy cattle, *Indian J vet Sci*, 1943, **13**, 196

DUTTA, S —Problem of foot and mouth disease in India, *Indian vet J*, 1951, **27**, 403–11

DATTA, S —National rinderpest eradication plan, *Indian J vet Sci*, 1954, **24**, 1

DAVE, C N —Oilcakes make excellent cattle feed, *Farmer*, 1960, **11**(6–7), 26–27

DAVIS, R F —Modern Dairy Cattle Management (Prentice-Hall of India Pvt Ltd, New Delhi), 1967

Definitions of the Characteristics of Cattle and Buffalo Breeds in India, *Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 86, 1960

Dehorning Cattle, *Inform Leafl*, *Indian Coun agric Res*, No 17, 1953

DESAI, B P —Combustible gas from cattle dung, *Poona agric Coll Mag*, 1951, 42(2), 74

Development of Dairy Schemes (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Development', pt 2, published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1965, 225–30

DEY, B B *et al* —Manufacture of glandular products in India, *J sci industr Res*, 1943–44, **2**, 83–88

DEY, B B *et al* —Glandular products from slaughter-house wastes, *J sci industr Res*, 1944–45, **3**, 12–14

DHANDA, M R & GOPALKRISHNA, V R —Foot and Mouth Disease in India, *Res Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 16, 1958, **4**, 20

DHANDA, M R & LALL, J M —Research activities for improving livestock health, *Gosamvardhana*, 1965, **13**(6–7), 55

DHANDA, M R & MENON, M S —Rinderpest and its control Latest position with regard to vaccines employed, *Indian vet J*, 1958, **35**, 214

DHANDA, M R *et al* —Immunological studies on *Pasteurella septica*—I Trials on adjuvant vaccine, *Indian J vet Sci*, 1956, **26**, 273

DHANDA, M R *et al* —Observation on the treatment of foot and mouth disease, *Indian J vet Sci*, 1956, **26**, 13

DHANDA, M R *et al* —Note on the occurrence of atypical strains of foot and mouth disease virus in India, *Indian J vet Sci*, 1957, **27**, 79

DHANDA, M R *et al* —Immunological studies on *Pasteurella septica*—II Further trials on adjuvant vaccine, *Indian J vet Sci*, 1958, **28**, 139

DHILLON, H S —Rinderpest Mass-scale production of lapinized-avianized vaccine by intravenous inoculation, *Indian J vet Sci*, 1965, **35**, 90–93

DHITAL, B P —Fuel from cattle dung, *Poona agric Coll Mag*, 1959, 50(3), 166–68

Economic Impact of Dairy Development in Developing Countries, India, CCP 65/Working Paper No 7 (Committee on Commodity Problems, 38th Session Food and Agriculture Organization, Rome), 1965

EDWARDS, J —Recent advances in artificial insemination, *Indian Fmg*, 1950, **11**, 247

Eradicating rinderpest—*Farmer*, 1960, **11**(12), 7–10

First Indian Dairy Year Book (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1960

Flaying and Curing of Hides and Skins as Rural Industry (Food and Agriculture Organization, Rome), 1955

GANGULY, S K —Need for improvement of cattle wealth of India with regard to their glandular secretory products, *Proceedings of the First All-India Congress of Zoology, Jabalpur*, 1959, 34

GAUR, P R —Artificial insemination in livestock with special reference to cattle, *Everyd Sci*, 1961, 7(3–4), 16–22

GAZDAR, P J —Brown Swiss cross with Indian cattle, *Allahabad Fmr*, 1952, **26**, 191

GAZDAR, P J —Influence of Indian cattle in the United States of America, *Indian vet J*, 1958, **35**, 565–73

GHOSH, D K —Utilization of bones and their by-products (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy', published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 87–90

GULRAJANI, T S —Biological products for controlling animal diseases, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, **18**(3), 35, 52

GUNDEWAR, W G —Gaulao breed The pride of Vidarbha, *Farmer*, 1960, **11**(12), 11–12

GUPTA, L —Importance of cattle feed industry in India, *Sirpur Ind J*, 1962, **1**, 257–62

HARBANS SINGH—Cattle economy of India Role of *gaushalas* and *pinjrapoles*, *Plant J*, 1951, **43**(5), 96–98

HARBANS SINGH—The buffalo and its distribution (India), *Food & Fmg*, 1952, **4**, 51–52

HARBANS SINGH—Origin and classification of domestic cattle, *Gosamvardhana*, 1955, 2(6), 13–15

HARBANS SINGH—The Sahiwal cattle, *Gosamvardhana*, 1955, 3(1), 16–20

HARBANS SINGH—Common Diseases of Farm Animals and Poultry and What to do About Them (Directorate of Extension, Ministry of Food & Agriculture, New Delhi), 1961

HARBANS SINGH—Key Villages in India (The Key Village Scheme), *Farm Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 65, 1961

HARBANS SINGH—A Handbook of Animal Husbandry for Extension Workers (Directorate of Extension, Ministry of Food & Agriculture, New Delhi), 1963

HARBANS SINGH—Breeds of cows in the country (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy', published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 47–54

HARBANS SINGH—Our cattle and milk problem, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(3), 23–27

HARBANS SINGH—The Problem of cattle development in India, *Yearb*, *Bharat Krishak Samaj*, 1964, 437–55

HARBANS SINGH—Better cattle health through better fodder production, *Gosamvardhana*, 1965, **13**(8), 21

HARBANS SINGH—Gaushalas and Pinjrapoles in India (Central Council of Gosamvardhana, New Delhi), 1965

HARBANS SINGH—Our cattle problem, *Khadi Gramodyog*, 1965, **12**, 113–15

HARBANS SINGH—Treat breeding bull with care—*Intensive Agric*, 1965, 2(11), 2–4

HARBANS SINGH *et al* (Editors)—Cattle Keeping in India (Central Council of Gosamvardhana, New Delhi), 1967

HATHI, K G & OOMMEN, T T —Scope for economic utilization of cane final molasses for livestock feed in India, *Indian Sug*, 1960–61, 10(1), 103-04

HATHI, K G & OOMMEN, T T—Utilization of cane final molasses for livestock feed in India, *Sug J*, 1960, **23**, 30–32

HOEK, F H & HAQ, N—How to Utilize Carcasses, *Farm Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 47, 1958

HUSSAIN, S & SREENIVASAYA, M—Preparation of fine chemicals and drugs from slaughter-house products and offals, *J Sci industr Res*, 1944–45, **3**, 445–46

ICHHAPONANI, J S & SIDHU, G S—Relative performance of Zebu cattle and the buffalo on urea and non-urea rations, *Indian J Dairy Sci*, 1966, **19**, 33–38

Increase in milk yield of cattle, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, **11**(3), 37

Increased production in animal husbandry field—II Milk, *Indian vet J*, 1966, 43(2), E 15–19

Increased production in animal husbandry field—III Milk, *Indian vet J*, 1966, 43(3), E 23–26

Increased production in the animal husbandry field—IV Meat, eggs, fish, etc, *Indian vet J*, 1966, 43(4), E 31–35

IYA, K K—Manufacturing Western Dairy Products in India, *Farm Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 49, 1958

IYA, K K—Dairy development during the plans, *Indian Fmg, N S*, 1966–67, **16**(11), 11–14

IYA, K K & LAXMINARAYANA, H—Dairy science, *Annu Rev biochem Res India*, 1951, **22**, 92

JOGARAO, A—Utilization of keratinous wastes with special reference to horn and hoof waste, *Chem Age, India*, Ser 6, 1952, 121

JOHRI, P N *et al*—Investigations on subsidiary feeds—I Banana (*Musa* spp) leaves as cattle fodder, *Indian vet J*, 1967, **44**, 425–29

JOSHI, N R & PHILLIPS, R W—Zebu Cattle of India and Pakistan, *FAO agric Stud*, No 19, 1953

JUNEJA, G C—Cow development in Government farms (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy, published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 71–76

JUNEJA, G C—Healthy cattle for increased production, *Gosamvardhana*, 1965, **13**(6–7), 8

JUNEJA, G C—Meat production, consumption and export (from 'Get-together of Research & Industry, Working Group No 6', published by Council of Scientific & Industrial Research, New Delhi), 1965, 25–33

KADUSKAR, M R—Effect of feeding mixed grass hay alone on metabolism and rate of growth in cattle, *Indian vet J*, 1967, **44**, 607–11

KAPADIA, P S—Wealth from Waste Potentialities of the carcass utilization industry (from 'Building from Below · Essays on India's Cattle Economy', published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 69–70

KARTHA, K P R—Breed of Cattle in India, *Farm Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 32, 1957

KEHAR, N D *et al*—Investigations on subsidiary feeds Rice (*Oryza sativa*) husk as cattle feed, *Indian J vet Sci*, 1959, **29**, 35–37

KEHAR, N D *et al*—Investigations on husbandry feeds *Mahua* (*Bassia latifolia*) flowers as cattle feed, *Indian J vet Sci*, 1959, **29**, 39–41

KEHAR, N D *et al*—Studies in Fat Requirement of Cattle and Nutritive Value of Oilcakes (Indian Central Oilseeds Committee, Hyderabad), 1961

KHANNA, N D & SINGH, H P—Role of red blood cells in dairy science, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, **18**(10), 45

KHERA, R C—Breeding programme with Jersey yields encouraging results, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(1), 9–12

KHERA, S S—Preventing infectious diseases of livestock, *Indian Fmg, N S*, 1959–60, 9(8), 14–16, 25

KHURODY, D N—Development of dairy animals in selected areas (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy', published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 29–38

KINGSBURY, J M—Plants poisonous to livestock A review, *J Dairy Sci*, 1958, **41**, 875–907

KOHLI, M L & SURI, K R.—Breeding season in Hariana cattle, *Indian J vet Sci*, 1960, **30**, 219–23

KRISHNAMURTHY, S—How to judge dairy cattle, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, **18**(10), 39

KULKARNI, H V—Nasal granuloma, its incidence, control and prevention, *Farmers*, 1956, 7(12), 33–34

KUMARAN, J D S—Artificial inseminations at Karnal, *Indian Fmg, N S*, 1952–53, 2(10), 10

LAKKE GOWDA, H S—Emergency cattle feeds, *Mysore agric J*, 1956, **31**, 241–47

LALL, H K—Tuberculosis in Indian cattle, *Indian Fmg, N S*, 1951–52, 1(10), 28

LALL, H K—Incidence of horn cancer in Meerut Circle, U P, *Indian vet J*, 1953, **30**, 205

LALL, H K—Cattle improvement through selective breeding, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, **18**(6), 31–33

LALL, H K & RAZVI, A H—Cost of milk production, *Indian vet J*, 1963, **40**, 22–23

LALL, J M—Johne's Disease in Cattle, Sheep and Goats, *Res Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 19, 1958

LALL, J M—Haemorrhagic septicaemia A serious scourge of cattle, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(4), 37–38

LALL, J M & SEN, N C—Vole vaccination Its value in the control of bovine tuberculosis, *Indian J vet Sci*, 1953, **23**, 25

LAMER, M—Dairy problems and policies in India, *Mon Bull Agric econ Statist*, 1961, **10**(3), 1–9

LAXMINARAYANA, H—Dairy science Diseases of cattle, *Annu Rev biochem Res India*, 1954, **25**, 119, 121–23

Livestock diseases supplement, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, **11**(9), 41–47

LODHA, K R—Cattle manage, a dreadful skin infection, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(2), 9–10, 40

MAHADEVAN, P—Breeding for Milk Production in Tropical Cattle, *Tech Commun*, *Commonw Bur Anim Breed & Genet*, *Edinburgh*, No 17, 1966

MAHADEVAN, V—Report on Urea as a Protein Substitute (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1955–58

MAHADEVAN, V—Feed as a factor of fertility, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(2), 6–8, 15

MAHAJAN, S C & SHARMA, U D—Some observations on the preservation of Hariana bull semen at room temperatures, *Indian J vet Sci*, 1967, **37**, 187–91

MAJUMDAR, B N *et al*—Studies on tree leaves as cattle fodder—I Chemical composition as affected by the stage of growth, *Indian J vet Sci*, 1967, **37**, 217–23

MAJUMDAR, B N *et al*—Studies on tree leaves as cattle fodder—II Chemical composition as affected by the locality, *Indian J vet Sci*, 1967, **37**, 224–31

MAMORIA, C B—Cattle wealth in Rajasthan, *Econ Rev*, 1961, **13**(4), 26–27

MANIAM, E V S—Cattle Wealth of India (Patt & Co, Kanpur), 2nd edn, 1938

MANJREKAR, S L & NISAL, M B—Animal by-products in India and their contribution to the economy of the country, *Indian vet J*, 1963, 40, 772–78

MATHUR, A C—Foot and mouth disease in Indian cattle, *Indian Fmg, N S*, 1952–53, 2(5), 18

MATHUR, A C—Common ailments of cattle, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(2), 24

MATHUR, C S—Common fodder grasses native to the desert soil of Rajasthan and their feeding value, *Indian vet J*, 1960, 37, 187–95

MATHUR, M L *et al*—Studies on Para grass (*Barchiaria mutica* Stapf or *Panicum brahmode*) Effect of replacing twenty-five per cent production ration (concentrates) with Para grass on the milk and fat production in milch cows, *Indian J Dairy Sci*, 1963, 16, 9–14

MENON, M S—Susceptibility tests on hill cattle to freeze dried goat tissue vaccine in India, *Indian vet J*, 1962, 39, 14–29

Milk yield of buffaloes, *Indian Fmg, N S*, 1965–66, 15(12), 49

MIRCHANDANI, R T & JAYARAMAN, S—Trend of milk production in India, *Agric Situat India*, 1959–60, 14(7), 753–59

MISHRA, H R—Genetic study on some economic characters of a dual purpose herd of cattle, *Indian vet J*, 1965, 42, 341–48

MITHUJI, G F *et al*—Haematological studies in Kankrej cattle, *Indian vet J*, 1966, 43, 605–12

MITRA, S K—The Zebu cattle of India, *Sci Reporter*, 1967, 4, 507

MOHAN, S N—Mobilizing rural resources through dairy development (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Development', published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1965, 209–12

Molasses as feed, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(1), 24

MOORE, E N—Livestock shows and milk yield competitions, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(10), 62–64

MUDGAL, V D—The utilization of feed nutrients by cattle and buffaloes, *Indian J Dairy Sci*, 1966, 19, 109–12

MUDGAL, V D—How to feed your cow economically, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, 18(1), 43

MUDGAL, V D & RAY, S N—Growth studies in Indian breeds of cattle . Studies on the growth of Red Sindhi cattle, *Indian J vet Sci*, 1966, 38, 80–89

MUKHERJEE, D P & BHATTACHARYA, P—Seasonal variations in semen quality and haemoglobin and cell volume contents of the blood in bulls, *Indian J vet Sci*, 1952, 22, 73

MULLICK, D N & KEHAR, N D—Seasonal variations in heat production of cattle and buffaloes, *J Anim Sci*, 1952, 11, 798

MURARI, T—Problems of breeding bulls in the Indian Union, *Allahabad Fmr*, 1951, 25(3), 98

MURTY, V N—The iron content of livestock feeds, *Indian J Dairy Sci*, 1957, 10, 67–72

NAIDU, K N & DESAI, R N—Genetic studies on Holstein-Friesian Sahiwal cattle for their suitability in Indian tropical conditions as dairy animals—3 pts, *Indian J vet Sci*, 1965, 35, 197–203, 204–12, 1966, 36, 61–71

NAIK, S N & SANGHVI, L D—Haemoglobin Khillari A new variant in Indian cattle, *Indian vet J*, 1966, 43, 789–92

NAIK, S N *et al*—Blood groups, haemoglobin variants and glucose-6-phosphate dehydrogenase study in the imported "Jersey" cattle, *Indian vet J*, 1963, 40, 680–85

NAIK, S N *et al*—A note on blood groups and haemoglobin variants in Zebu cattle, *Anim Prodn*, 1965, 7(2), 275–77

NAIR, P G—Research on animal blood groups in India, *Immunogenetics Letter*, July, 1964, 142–45

NANDA, V P—A new deal for the Indian cow, *Span*, 1968, 9(12), 20–25

NANDI, S N—Bovine haematuria in Darjeeling district, and its treatment, *Indian vet J*, 1955, 32, 202

NANGIA, S S *et al*—Haemorrhagic septicaemia oil adjuvant vaccine Study of potency test in rabbits Duration of immunity and keeping quality, *Indian vet J*, 1966, 43, 279

NAYUDAMMA, Y—Quality of hide from dead and slaughtered animal in India, *Leath Sci*, 1967, 14, 143–45

NEGI, S S—Utilization of fish by-products as cattle feed Digestibility and nutritive value of beach-dried white-bait fish-meal, *Indian J Dairy Sci*, 1963, 16, 216–20

NEGI, S S & KEHAR, N D—Utilization of fish by-products as cattle feed Digestibility and nutritive value of a mixed fish-meal including a shark liver meal, *Indian vet J*, 1968, 45, 151–57

New dairy project of Kaira District Co-operative Milk Producers' Union Ltd, Anand, *Chem Age India*, 1956, 7(1), 87–94

New insecticide for livestock, *Tanner*, 1968, 23(1), 25

NILAKANTAN, P R—Studies on Blackquarter, M Sc Thesis, University of Madras, 1954

OHRI, S P & ANAND PRAKASH—Performance of Murrah buffaloes in arid zone—I Effect of the length of dry period on the successive lactation yield, *Indian vet J*, 1969, 46, 311–15

PAGORIA, M L—Cattle improvement has the goal of double-purpose breeds, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, 18(10), 41

PANDA, B—Genetics and disease resistance in animals A review, *Indian vet J*, 1961, 38, 577–91

PANIKKAR, M R—Maximize farm production through mixed farming, *Gosamvardhana*, 1960, 8(7–8), 17.

PANIKKAR, M R *et al*—Mixed farming, *Gosamvardhana*, 1956, 4(9), 15–18

PANSE, V G *et al*—A plan for improvement of nutrition of India's population, *Indian J agric Econ*, 1964, 19(2), 13–40

PANSE, V G *et al*—Sample Survey for Estimation of Milk Production (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1964

PANSE, V G *et al*—Cost of milk to the producer and the consumer, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(3), 37–39, 47

PARNERKER, Y M—Bullock and food production (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy', published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 63–66

PARNERKER, Y M—Dairy farming in our economy, *Khadi Gramodyog*, 1965, 12(1), 116–19

PARNERKER, Y M—Resources of goshalas and pinjrapoles and other private institutions for utilization of cattle development work (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Development', pt 2, published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1965, 205-06

PATEL, B M & RAY, S C—Studies on cotton-seed feeding to milch animals, *Indian J Dairy Sci*, 1948, 1, 1

PATEL, B M *et al*—Haematological constituents of blood of Gir cattle, *Indian vet J*, 1965, 42, 415–20

PATEL, N M *et al*—The influence of different intervals of cutting and stage of growth on the forage value of some well-known cultivated grasses, *Indian J Dairy Sci*, 1950, 3, 16

PATIL, B D *et al*—Siratro The perennial legume for arid areas, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, **17**(1), 36–39

PATIL, V M—Cattle development, *Farmer*, 1960, **11**(1), 97–104

PAUL, A K *et al*—Studies on different seminal attributes of Indian dairy breeds, *Indian J Dairy Sci*, 1966, **19**, 79-82

Proposals for feeds and fodder development in the fourth plan (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy', published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1964, 141–54

Radioisotopes, fertilizers and cow-dung gas-plant, *Proceedings of the Symposium, Indian Coun agric Res, New Delhi*, 1961, 438

RAMASWAMY, S—Food processing industries in India Dairy products, *J Ind & Tr*, 1962, **12**(9), 1493-96

RANGANATHAN, T S—East Indian tanning industry and tanning agents Manufacture of roller skins from E I tanned sheep skins, *Bull cent Leath Res Inst, Madras*, 1955, **2**, 7

RAO, A R & REDDY, K K—Breeding season in Ongle cows, *Indian vet J*, 1967, **44**, 145–49

RAO, C K—Studies on semen and fertility in the bull, *Indian J Dairy Sci*, 1950, **3**, 75–84

RAO, C K—Studies on reproduction in Malvi cattle Age at first calving, calving interval and post-partum to conception interval, *Indian vet J*, 1966, **43**, 805–11

RAO, K R—Some observations on investigation of Johne's disease in Mysore State, *Indian J vet Sci*, 1950 **20**, 17

RATTAN, P J S *et al*—Haematological constituents of Sindhi and cross-bred cows, *Indian J Dairy Sci*, 1966, **19**, 191–94

RAY, H N—Protozoa affecting the health of domesticated animals in India Piroplasmidea, Genus *Babesia* Starcovii (1893), *Proc Indian Sci Congr*, 1945, pt II, 136, 143

RAY, H N & BHASKARAN, R—Protozoan diseases, *Indian vet J*, 1953, **30**, 236

RAY, S N—Animal Nutrition and Management in India Agenda item, C 5-3 (United Nations Conference on the Application of Science and Technology for the Benefit of Less Developed Areas)

RAY, S N—Balanced feeding for healthier livestock Trace elements in feeds, *Gosamvardhana*, 1965, **13**(8), 25

RAY, S N & MUDGAL, V D—Research on nutrition of cattle and buffalo in India, *Indian J vet Sci*, 1968, **38**, 117–33

Recommendations of Central Council of Gosamvardhana Seminar (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Development', pt 2, published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), *1965*, *215–24*

Report of the *Ad hoc* Committee on Slaughter-houses and Meat Inspection Practices (Ministry of Food & Agriculture, Dep of Agriculture), 1957

Report of the Committee on Utilization of Food and Agricultural Wastes (Council of Scientific & Industrial Research, New Delhi), 1959

Report of the Cross-breeding Committee (First report) (Central Council of Gosamvardhana, New Delhi), 1963

Report of the Special Committee on Preserving High-yielding Cattle (Central Council of Gosamvardhana, New Delhi), 2 pts, 1962

Report of the Working Group of Exports to review the Cattle Breeding Policy (Ministry of Food & Agriculture, Dep of Agriculture, New Delhi), 1963

Research Biennial (National Dairy Research Institute, Karnal), 1961–63

ROY, A—Breeding buffaloes in the off-season, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, **17**(7), 34–35

ROY, A—Livestock productivity at high altitudes, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, **17**(3), 36–38, 50

RUDRAIAH D—Livestock wealth of Mysore, *Mysore Inform*, 1961, 24(9), 17–18

SAGREIYA, K P & VENKATARAMANY, P—Use of cattle dung as manure and domestic fuel, *Indian For*, 1962, **88**, 718–24

SAHA, U P—Dehorning of cattle, *Indian Fmg, N S*, 1953–54 3(2), 12

SAHAI, B & KEHAR N D—Investigations on subsidiary feeds Kapok (*Ceiba pentandra*) seed as a feed for livestock, *Indian J vet Sci*, 1968, 38, 670–73

SAMPATH KUMARAN, J D—Effective use of artificial insemination, *Indian Fmg, N S*, 1952–53, 2(12), 12

SARKAR, S K & MITRA, S K—Biological characteristics of Indian buffalo hides, *Leath Sci*, 1963, **10**, 30

SAXENA, H C—Cotton-seed meal for animal feeds, *Oils & Oilseeds J*, 1967, 19(8), 14–15

SEETHARAMAN, C—Economic importance of foot and mouth disease, *Indian Fmg*, 1950, **11**, 155, *Poona agric Coll Mag*, 1952–53, 43(1), 32

SEETHARAMAN, C & SINHA, K C—Veterinary Biological Products and Their Uses, *Animal Husbandry Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 2, 1963

SELVARANGAN, R *et al*—Manufacture of parchment from hides and skins for use in orthopaedic appliances, musical instruments, puppets, sports goods, etc, *Leath Sci*, 1964, **11**, 99–101

SEN, K C—Nutritive Values of Indian Cattle Feeds and the Feeding of Animals, *Bull Indian Coun agric Res*, No 25, 1964

SEN, K C & ANANTAKRISHNAN, C P—Nutrition and Lactation in Dairy Cattle, *Rev Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 31, 1960

SEN, K C & LAXMINARAYANA, H—Dairying in India, *Yearb*, *Bharat Krishak Samaj*, 1964, 457–68

SEN, K C *et al*—The nutritive value of alkali-treated cereal-straws, *Indian J vet Sci*, 1942, **12**, 263

SEN, S K—Insect pests of livestock, *Indian Farm Mech*, 1956, 7(4), 26–27

SEN, S K & SRINIVASAN, M K—Theileriasis of cattle in India, *Indian J vet Sci*, 1937, **7**, 15

SHARMA, R M—The Economic Importance of Ox Warble-fly and Suggestion for its Control in the Affected Areas (Ninth Conference on Animal Diseases held at Bhubaneswar in 1960, Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1960

SHARMA, R M & CHHABRA, R C—Ox-warbles can now be put down, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(2), 13–15

SHARMA, U D & MAHAJAN, S C—Preservation of Hariana bull semen at room temperature A new modification of a diluent, *Indian J vet Sci*, 1965, **35**, 322–24

SHARMA, U D & MAHAJAN, S C—Some observations on preservations of buffalo semen in the Illini Variable Temperature diluent, *Indian vet J*, 1966, **43**, 50–55

SHARMA, V V—Utilization of agricultural by-products for livestock feeding, *Gosamvardhana*, 1967, **15**(1), 26–28

SHRIVASTAVA, D D—Cost of production of milk in rural and urban areas, *Rur India*, 1955, **18**, 273–78

SIKKA, L C—Dairying for the development of the cow (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Economy',

published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti New Delhi), 1964, 19–28

SINGH, B —*The blood group identification of various Indian breeds of cattle in India*, *Indian J vet Sci*, 1945, **15**, 109

SINGH, D —*Gosadans* A step towards weeding and consequently to controlled breeding (from 'Building from Below Essays on India's Cattle Development', pt 2, published by Sarva Seva Sangh, Krishi Goseva Samiti, New Delhi), 1965, 202–04

SINGH, D & MURTHY, V V R —Random sample survey technique for estimation of production and consumption of milk, *Agric Situat India*, 1963, **18**(1), 9–15

SINGH, D N —Mixed Farming in India, *Farm Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 40, 1957

SINGH, G —Artificial Insemination of Cattle in India, *Tech Bull*, *Indian Coun agric Res* (*Anim Husb*), No 1, 1965

SINGH, G —Bringing up breeding bulls along scientific lines, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(4), 12–13, 19, 48

SINGH, G —Common animal diseases and their control, *Indian Fmg*, *N S*, 1966–67, 16(12), 23–25

SINGH, G & PRABHU, S S —Effect of frequency of ejaculation upon the reaction time and semen quality of Hariana bulls, *Indian J vet Sci*, 1963, **33**, 230–32

SINGH, G S —Some aspects of feeds and fodders poisonous to livestock, *Indian Dairyman*, 1962, **14**, 287–91

SINGH, G S —Grass that cuts your concentrates costs, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(2), 37–38

SINGH, R A & DESAI, R N —Effect of body-weight and age at calving on milk production in cross-breds (Holstein×Sahiwal) as compared to Sahiwal cattle—II Effect of age at first calving on milk production and its comparison with that of body-weight, *Indian J vet Sci*, 1967, **37**, 8–15

SINGH, R P —Study of breeding season in buffaloes maintained at military farms, *Indian vet J*, 1966, **43**, 820–24

SINGH, R. P —Study on the breeding efficiency of buffaloes maintained at military farms, *Indian vet J*, 1966, **43**, 623–28

SINGH, R P —Study of body size and production and relative efficiency of milk production in buffaloes maintained at military farms, *Indian vet J*, 1967, **44**, 149–54

SINGH, S B & DESAI, R N —Inheritance of some economic characters in Hariana cattle—I Age at first calving, *Indian J Dairy Sci*, 1961, **14**, 81–88

SINGH, S B & DESAI, R. N —Inheritance of some economic characters in Hariana cattle—II Peak yield, *Indian J Dairy Sci*, 1961, **14**, 89–94

SINGH, S G & ROY, D J —Freeze-drying of bovine semen, *Indian J vet Sci*, 1967, **37**, 1–7

SINHA, H S & PRASAD, R B —Seasonal variation in semen characteristics and reaction time of Tharparkar, Hariana and Taylor bulls, *Indian J Dairy Sci*, 1966, **19**, 83–88

SINHA, K P —Production of *ghee* in India, *Bihar agric Coll Mag*, 1962–63, **13**(1), 40–43

SONI, B N —Control of the ox warble-fly (*Hypoderma lineatum*) in India, *Indian Fmg*, *N S*, 1951–52, **1**(7), 20

SONI, B N —Hides and skins, *Souvenir*, *Indian Coun agric Res*, 1929–54, 98–100

SONI, B N —The economic importance of ox warble-fly and suggestion for its planned control in the affected areas (Ninth Conference on Animal Diseases held at Bhubaneswar in 1960, Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1960

SOPARKAR, M B & DHILLON, J C S —Incidence of tuberculosis among cattle in India, *Proc Indian Sci Congr*, 1931, 353

SRINIVASAN, M K —The problem of improvement of cattle in hilly tracts, *Proc of the Eighth Meeting Animal Husbandry Wing, Board of Agriculture and Animal Husbandry India, Mysore*, Feb 1949, 149

SRIVASTAVA, H D —A study of the life-history of *Paramphistomum explanatum* of bovines in India A study of the life-history of *Gastrothylax crumenifer* of Indian ruminants The intermediate host of *Fasciola hepatica* in India A new intermediate host of *Fasciola gigantica* of Indian ruminants, *Proc Indian Sci Congr*, 1944, pt 3, 142

Statistics of milk production and utilization in India, *Souvenir, Fifth Dairy Industry Conference* (Indian Dairy Science Association), 1968

SUKHATME, P V —Food and nutrition situation in India—II, *Indian J agric Econ*, 1962, **17**(3), 1

SYED KAREEM & SUNDARARAJ, D D —Why *Sesbania* makes nutritious cattle feed, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, **17**(1), 20

THAPAR, G S —Systematic survey of helminth parasites of domesticated animals in India, *Indian J vet Sci*, 1956, **26**, 211.

THOMAS, C A —Rhodes grass is nutritious and palatable fodder, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, **18**(3), 29–31

TIWARI, S R —Cattle feed in India, *World Crops*, 1966, **18**(2), 59–61

TOMAR, N S *et al*—Seasonal variations in reaction time and semen production, and prediction of some semen attributes on initial motility of spermatozoa in Hariana and Murrah bulls, *Indian J Dairy Sci*, 1966, **19**, 87–93

TOMAR, S P S & DESAI, R N —Study of growth rate in buffaloes maintained on military farms (Heritability estimates), *Indian vet J*, 1965, **42**, 116–25

Urea-enriched paddy straw as cattle feed, *Agric Res*, 1964, **4**, 190

Using urea in the feeding of cattle, *Queensland agric J*, 1961, **87**, 463–67

VAIDYA, G W & BHATTACHARYA, P —Artificial Insemination and its Bearing on the Livestock Industry of India, *Leafl*, *Dep Anim Husb*, *Uttar Pradesh*, No 6, 1952

VALUNJKAR, G R —A note on the technical aspect of the utilization of dead bodies of animals, *J Indian Leath Technol Ass*, 1961, **9**, 149–55

VANCHESWARA IYER, S & RANGA RAO, D V —Studies on haemorrhagic septicaemia adjuvant vaccines—II, *Indian vet J*, 1959, **36**, 415

VANCHESWARA IYER, S *et al*—Studies on haemorrhagic septicaemia vaccines The effect of adjuvants upon the immunizing value of formalin-killed *Pasteurella boviseptica* organisms, *Indian vet J*, 1955, **31**, 379

VARDARAJAN, B S —Eradication of rinderpest, *Indian Fmg*, 1949, **10**, 74

VARMA, A K —Studies on the nature, incidence, distribution and control of nasal schistosomiasis and fascioliasis in Bihar, *Indian J vet Sci*, 1954, **24**, 11, 22

VENKATAKRISHNAN, R —Studies on the nutritive value of Para grass (*Brachiaria mutica*) as cattle fodder, *Indian vet J*, 1967, **44**, 53–62

VERMA, I S & IYA, K K —Dairy industry is forging ahead, *Indian Fmg*, *N S*, 1963–64, **13**(10), 14–15, 17

VIDYA SAGAR—Economics of cow and buffalo in India, *Econ Rev*, 1959, **11**(9), 12–16

Virus diseases, *Annu Rep*, *Indian vet Res Inst*, *Izatnagar*, 1959–60, 12

Ware, F—Brief Survey of Some of the Important Breeds of Cattle in India, *Misc Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 46, 1940

Warner, J M—Methods of manufacturing improved milk products, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, 18(3), 46–47

Whyte, R O—Intensification of Agriculture based on Dairy Development (Food and Agriculture Organization, Rome), 1965

Whyte, R O—Milk Production in Developing Countries (Faber & Faber Ltd, London), 1967

Whyte, R O & Mathur, M L—Analysis of the feed and fodder resources for the livestock population of India, *Indian Dairyman*, 1965, **17**, 323–33

Whyte, R O & Mathur, M L—Animal breeding for milk production, *Indian Dairyman*, 1966, **18**, 211–21

Woodham, A A—Significance of protein quality in livestock-feeding, *Outlook Agric*, 1964, **4**, 190–96

Wright, N C—Report on the Development of Cattle and Dairy Industries in India (Manager of Publications, Delhi), 1957

भेड़ें

Ahuja, L D—Growth of ram lambs of Marwari breed on 'fair' rangelands in semi-arid zone, *Ann Arid Zone*, 1966, **5**, 229–37

Alexander, P & Hudson, R F—Wool Its Chemistry and Physics (Chapman & Hall Ltd, London), 1954

Amble, V N *et al*—Statistical studies on breeding data of Deccani and cross-bred sheep, *Indian J vet Sci*, 1967, **37**, 305–26

Animal Breeding, in Agriculture and Animal Husbandry Research, 1929–1946 (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), pt II, 163

Animal Nutrition—Investigations on the nutritional requirements of sheep, *Annu Rep*, *Indian vet Res Inst*, *Izatnagar*, 1949–50, 41

Apte, H G & Patil, R B—Studies in quality of cross-bred wools Regional variation in fleeces, *Indian vet J*, 1968, **45**, 47–53

Bennett, H—Industrial Waxes (Chemical Publishing Co, New York), 2 vols, 1963

Bergen, W V—Wool Handbook (Interscience Publishers, New York), Vol I, 1963

Bhan, M M—Carbonization of wool, *Wool & Wool India*, 1967, 3(8), 35–39

Bhasin, N R & Desai, R N—Studies on factors affecting the characters concerning quality of wool fibre in a *Chokla* flock of sheep, *Indian vet J*, 1965, **42**, 782–88

Bhasin, N R & Desai, R N—Studies on inheritance of characters concerning quality of wool-fibre in *Chokla* strain of sheep, *Indian vet J*, 1966, **43**, 133–37

Bhatia, B B—Note on liver affections with three species of flukes parasitizing Indian sheep, *Indian J Helminth*, 1960, **12**, 74–79

Bhatia, B B—On some of the Bursate nematodes in abomasal infections of Indian sheep, *Indian J Helminth*, 1960, **12**, 80–92

Bhatia, B B—*Onchocerca armillata* Railliet and Henry 1909 A study of the infection in Indian sheep with remarks on its bovine hosts, *Indian vet J*, 1960, **37**, 394–97

Bhatia, B B—Preliminary survey of the nematode parasites of sheep and some of the types of helminthic lesions encountered, *Proc Indian Sci Congr*, 1960, pt III, 441–42

Bhatia, B B—On the common helminthic affections of the small intestine in Indian sheep, *Proc nat Acad Sci India*, 1961, **31B**, 321–31

Bhatnagar, D S & Chaudhary, N C—Sheep number and wool production, *Allahabad Fmr*, 1961, **35**, 31–37

Bhattacharya, P—Developing our sheep industry, *Indian Fmg, N S*, 1965–66, **15**(7), 14–15

Brochure on the Standard Methods of Wool Analysis (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 117, 1958

Bryuzgina, G *et al*—Curing of sheepskins and mechanization of the process, *Chem Abstr*, 1964, **60**, 1946

Buch, B B & Jayaraman, S—Culling A means for improvement of sheep, *Indian Fmg, N S*, 1953–54, 3(10), 24

Buch, B B & Jayaraman, S—The economic importance of sheep in India, *Indian vet J*, 1954, **30**, 317–20

Buch, B B & Jayaraman, S—Improvement of Indian sheep, *Indian vet J*, 1954, **30**, 320–25

Catgut contribution to the study of sheep, *Indian J Pharm*, 1949, **11**, 61

Chatterjee, A K *et al*—Bandur An ideal meat-type sheep, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, **18**(4), 54–58

Chaudhary, B N—Estimation of sample size in carpet wool analysis, *Indian vet J*, 1965, **42**, 349–54

Chaudhary, B N—Performance and wool quality of the sheep of Bihar, *Indian vet J*, 1965, **42**, 191–200

Chemical test methods in wool processing, *Wool Sci Rev*, No 32, 1967, 1–15

Dabadghao, P M *et al*—Sevan grass for sheep farming, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, **11**(5), 5–7

Das, B M & Mitra, S K—Histology of red hairy sheepskin, *J sci industr Res*, 1954, **13B**, 864–66

Das, R B—Growth and wool production in lambs, *Agric Res*, 1963, **3**, 140–41

Diseases of sheep and goats in Uttar Pradesh and Andhra Pradesh, *Annu Rep*, *Indian Coun agric Res*, 1958–59, 72–73

Enterotoxaemia can be controlled, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, **11**(10), 36–37

Eye troubles in sheep, *Indian Fmg, N S*, 1957–58, **7**(12), 19

Facts about feeding and breeding of sheep and goats, *Indian Fmg*, 1945, **6**, 417

Fenghelman, M—The mechanical properties of set wool fibres and the structure of keratin, *J Test Inst*, 1960, **51**, T589

Few observations on the association of yellow staining in the fleece with some characteristics of the sheep in Rajasthan breeds, *Leath Sci*, 1968, **15**, 289

Gosh, P K & Purohit, K G—Haematological investigations in Rajasthani breeds of sheep—I Blood haemoglobin levels, *Indian vet J*, 1964, **41**, 459–62

Guha, S *et al*—Artificial insemination in sheep and goats at Izatnagar, *Indian J vet Sci*, 1951, **21**, 171–76

Gulati, A N—Literature on Indian wool A review, *Indian Fmg*, 1949, **10**, 90–100

Gupta, P P & Rajya, B S—Possible occurrence of viral pneumonia in indigenous sheep and goats A morphological study of pneumonic lung lesions, *Indian vet J*, 1969, **46**, 205–08.

Gupta, P R—India's quest for golden fleece, *Span*, 1968, 9(8), 2–7

Haksar, R C—Method of improving India's wool production, *Indian Fmg*, 1947, **8**, 14–18

Honmode, J—Artificial insemination of sheep, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, **18**(1), 48

India and Pakistan Wool, Hosiery and Fabrics [Commerce (1935) Ltd , Bombay], 1967

JALIHAL, M R —Russian sheep in Kashmir, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(3), 22–23

JAYARAMAN, S & BUCH, B B —Building up a better ewe flock, *Indian Fmg, N S* , 1953–54, 3(11), 20

JAYARAMAN, S & BUCH, B B —Care and management of lambs, *Indian Fmg, N S* , 1953–54, 3(8), 26

JAYARAMAN, S & BUCH, B B —Selection and management of rams, *Indian Fmg, N S* , 1953–54, 3(6), 20

JAYARAMAN, S & MAHAL, G S —Relationship of clean wool yield with body weight and body size in Bikaner ewes, *Indian J vet Sci* , 1954, **24**, 143–50

JOSHI, B P —Himalayan pastures A blessing to sheep breeders, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(1), 8

KALRA, D B —Hissardale sheep fleece in comparison to other fine wool breeds, *Rajasthan Agric* , 1966, **6**, 38–44

KATIYAR, R D —Parasitic diseases of sheep and goats and their control, *Agric Anim Husb* , *Uttar Pradesh*, 1956, 6(7), 11–13

KATIYAR, R D —Listeriosis amongst sheep and goats in Uttar Pradesh, *Indian vet J* , 1960, **37**, 620–23

KATIYAR, R D —Lumbar paralysis amongst sheep and goats of Uttar Pradesh, *Indian vet J* , 1960, **37**, 167–74

KATIYAR, R D —Occurrence of *Metastrongylus apri* in Indian sheep and goats, *Indian J vet Sci* , 1960, **30**, 213–14

KATIYAR, R D & TEWARI, H C —Acute fascioliasis amongst sheep in Kumaon Hills, *Indian vet J* , 1962, 39, 382–86

KAURA, R L —Some common breeds of Indian sheep—I *Indian Fmg*, 1941, **2**, 175

KAURA, R L —Some common breeds of Indian sheep—II *Indian Fmg*, 1942, **3**, 122

KAURA, R L —Some common breeds of sheep in India, *Indian Fmg*, 1943, **4**, 549–52

KAUSHIK, S N & SINGH, B P —Comparison of pure-bred and cross-bred ewes for wool production, *Indian vet J* , 1968, **45**, 131–34

KAUSHIK, S N & SINGH, B P —Factors affecting birth weight of cross-bred lambs, *Indian vet J* , 1968, **45**, 752–59

Keeping Sheep Healthy Things to Avoid, *Farm News Release*, *Indian Coun agric Res* , No 257, 1956

KHOT, S S —Sheep, *Souvenir*, *Indian Coun agric Res* , 1929–54, 101–05

KHOT, S S —Sheep and farming, *Indian Fmg, N S* , 1956–57, 6(10), 3

KHOT, S S —How to Select and Breed Sheep, *Inform Pamphl* , *Indian Coun agric Res* , No 87, 1957

KHOT, S S —Sheep and Wool in India, *Farm Bull* , *Indian Coun agric Res* , No 16, 1957

KHOT, S S —Feeding Sheep, *Inform Pamphl* , *Indian Coun agric Res* , No 91, 1958

KHOT, S S —Keep Your Sheep Healthy, *Inform Leafl* , *Indian Coun agric Res* , No 94, 1958

KHOT, S S —Sheep rearing in the Himalayas, *Indian Fmg* , *N.S* , 1963–64, **13**(1), 47–48

KHOT, S S —Towards better sheep and wool, *Indian Fmg, N S* , 1963–64, **13**(7), 18–19

KHOT, S S —Two sheep breeds of promise, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(2), 3

KHOT, S S & RAMACHANDRAN, K N —Fine-wooled sheep in Nilgiris, *Indian Fmg*, 1948, **9**, 63

KRISHNA RAO, M V *et al* —Wool follicle population of some Indian breeds of sheep, *Aust J agric Res* , 1960, **11**, 97–104

KRISHNAN, R —Pathogenesis of sheep pox, *Indian vet J* , 1968, **45**, 297–302

KULKARNI, V A *et al* —Carcass quality of Mandia, Bikaneri-Magra and Magra type sheep, *Indian vet J* , 1965, **42**, 643–54

KUMAR, L S S *et al* —Sheep, in Agriculture in India Vol III Animals (Asia Publishing House, New Delhi), 1963

KUPPUSWAMY, P B —Pitto and Gillar in sheep and goats, *Indian Fmg*, 1948, **9**, 73

LAL, J M —Johne's Disease in Cattle, Sheep and Goats, *Res Ser* , *Indian Coun agric Res* , No 19, 1958

LALL, H K —Some common breeds of Indian sheep, *Indian Fmg*, 1947, **8**, 605

LALL, H K —Sheep in the hilly regions of Uttar Pradesh, *Indian Fmg*, *N S* , 1952–53, 2(10), 28

LALL, H K —Breeds of Sheep in the Indian Union, *Misc Bull* , *Indian Coun agric Res* , No 75, 1953

LITTLEWOOD, R W —Sheep breeding, in 'Livestock of Southern India' (The Superintendent, Govt Press, Madras), 1936, 202–16

Liver-fluke menace can now be put down in irrigated areas, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(4), 48–49

MAHAL, G S —Calendar for a sheep farm, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(1), 37–39

MAHAL, G S & KUMAR, S —A survey of sheep and wool production in the plains of Punjab State, *Indian J agric Econ* , 1966, **21**(3), 65–71

MATHARU, B S —Dos and don'ts in digging sheep, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(3), 44–45

MINETT, F C —Mortality in sheep and goats in India, *Indian J vet Sci* , 1950, **20**, 69

MOHAN, S N —Sheep and wool improvement, *Agric Prodn Manual*, 1962, 150–54

MOORE, E & VARADARAJAN, B S —First Bandur sheep show near Mandya a big success, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(1), 37–38

MUKHERJEE, R P —Studies on the life-history of *Geylonocotyle scolicoelium* (Fischoeder, 1904), Nasmark, 1937, an amphistome parasite of sheep and goats, *Proc Indian Sci Congr* , 1960, pt III, 438–39

MUKHERJEE, R P & SHARMA, V P —Massive infection of a sheep with amphistomes and the histopathology of the parasitized remain, *Indian vet J* , 1962, **39**, 668–70

MURTHY, V S & RAO, C V —Some suggestions for development of sheep industry in low rain fall areas, *Wool & Wool India*, 1969, 6(6), 43–46

NAGARCENKAR, R —Sheep industry in India, *Poona agric Coll Mag* , 1960, **51**(2), 5–9

NAGARCENKAR, R —Sheep are selective in their climatic requirements, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(2), 41–42

NAGARCENKAR, R & BHATTACHARYA, P —Factors responsible for 'canary colouration' of wool, *Indian J vet Sci* , 1964, **34**, 46–60

NAGARCENKAR, R & BHATTACHARYA, P —Relationship of certain pelt characteristics with 'canary colouration' of wool, *Indian J vet Sci* , 1964, **34**, 242–52

NANDA, P N —Improvement of quantity and quality of wool in India, *Indian Fmg*, 1947, **8**, 4–7

NANDA, P N & SINGH, C —Improvement of wool quality by selective breeding in Bikaneri and Lohi sheep, *Indian J vet Sci* , 1948, **18**, 195–201

NARAYAN, N L —Rajasthan Sheep Statistics and Sheep Breeds (Office of the Deputy Director, Sheep & Wool, Animal Husbandry Dep , Govt of Rajasthan, Jaipur)

NARAYAN, N L —Baroda wool grading and marketing experiment, *Indian Fmg*, 1947, **8**, 26

NARAYAN, N L —Stud farms Key to better sheep flocks, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(2), 45–46

NARAYAN, S —Studies in the wool quality of Pattanwadi sheep, *Indian J vet Sci* , 1951, **21**, 43–63

NARAYAN, S —Popularizing Bikaneri breed, *Indian Fmg, N S* , 1953–54, 3 2), 22

NARAYAN, S —Yellowing of wool in sheep How to reduce it, *Indian Fmg, N S* , 1967–68, **17**(7), 40–42

NARAYAN, S —Some observations on the yellowing of wool and its relation to fleece characteristics in the Russian merino sheep stationed at Jaipur, First All-India Semiar on Indian Wool, *Wool & Wool India*, Spec No , 1968, xlii–xliv

NARAYAN, S & RATHORE, A —Skin follicle and wool characteristics of seven breeds of Rajasthan sheep, *Univ Udaipur Res Stud* , 1963, **1**, 89–90

NARAYAN, S & SHARMA, R S —Few observations on the association of yellow staining in the fleece with some characteristics of the sheep in Rajasthan breeds, *Indian vet J* , 1968, **45**, 760–73

NEGI, G C & NAYAR, K C —Spanish merinos thrive well in H P , *Indian Live-Stk*, 1964, 2(4), 17–19

PANDURANGARAO, C C —Mastitis Its causes and cure, *Indian Fmg, N S* , 1968–69, 18(4), 43

PARMAR, C S —The Joria sheep of north Gujarat, *Allahabad Fmr*, 1951, **25**, 150

PATIL, R B —Nitrogen and sulphur contents of wool, *Indian J vet Sci* , 1967, **37**, 172–75

PATRO, P S —Domestication of sheep for improvement of woollen and worsted fibres, *Khadi Gramodyog*, 1964, **10**, 695–99

PATTISON, I H —Scrapie, *Sci J* , 1967, 3 3), 75–79

PRASAD, B M —Helminthic infestations in sheep and goats, *Indian Fmg*, 1949, **10**, 155

PUROHIT, K —Poisonous plants of Kumaon Sheep pastures, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(2), 28–29

RAMAMURTHY, N S & TALAPATRA, S K —Technique of sampling pasture grasses with sheep, *Indian vet J* , 1968, **45**, 349–52

RAMANI, K —Sheep pox vaccine, *Indian Fmg, N S* , 1961–62, **11**(5), 3, 11

RANDHAWA, M S —Sheep, in 'Agriculture and Animal Husbandry in India' (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1958, 303–09

RAO, C K —Studies on reproduction in Indian breeds of sheep Bannur and Nilgiri breeds, *Indian vet J* , 1966, **43**, 130–33

RAO, G R *et al* —Observations on some aspects of blood of sheep, *Indian vet J* , 1962, **39**, 429–33

RAO, M V K —Towards sufficiency in wool production, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(1), 10–12, 37

RATHORE, G S *et al* —Haemonchosis in sheep in Rajasthan and its control, *Indian J vet Sci* , 1955, **25**, 1

RAWAL, B D & KATIYAR, R D —Studies on gastro enteritis in Uttar Pradesh, *Indian vet J* , 1960, **37**, 495–99

RAY, H N —Protozoa affecting the sheep and goats in India, *Indian Fmg*, 1949, **10**, 487

RAY, H N —Rickettsiosis in Indian sheep, *Sci & Cult* , 1949–50, **15**, 284

Researches in Nutrition Composition of Indian Foodstuffs, *Spec Rep Ser* , *Indian Coun med Res* , No 22, 1961, 17

ROY, A & SAHNI, K L —Artificial insemination in sheep and goat —II Problems posed, *Indian Fmg, N S* , 1968–69, **18**(3), 43–45

SAHNI, K L & ROY, A —A note on summer sterility in Romney Marsh rams under tropical conditions, *Indian J vet Sci* , 1967, **37**, 335–38

SAHNI, K L & ROY, A —A study on the sexual activity of Bikaneri sheep (*Ovis aries* L) and conception rate through artificial insemination, *Indian J vet Sci* , 1967, **37**, 327–34

SAHNI, K L & ROY, A —Artificial insemination in sheep and goat—III *Indian Fmg, N S* , 1968–69, **18**(4), 52–53

SAPRE, M V —Observations on contagious ecthyma of sheep and goats, *Indian vet J* , 1964, **41**, 682–85

SATYANARAYANA, K V —Preliminary note on the prevalence and pathogenicity of haemolytic *Escherichia coli* in sheep and goats in Andhra Pradesh, *Indian vet J* , 1962, **39**, 197–200

SETH, O N —Influence of haemoglobin variant on the fertility in Bikaneri (Magra) sheep, *Curr Sci* , 1968, **37**, 231–32

SETH, O N & ROY, A —Comparative study on the milk-secreting capacity in Indian breeds of ewes by the use of 'Lamb suckling' and 'Oxytocin' techniques, *Indian J vet Sci* , 1967, **37**, 347–50

SHAHI, H B —Sheep breeding research in India, *Indian Fmg*, 1941, **2**, 61–65

Shearing of Sheep Number of Clips, *Farm News Release, Indian Coun agric Res* , No 204, 1956

Shearing of Sheep Woollen Slates, *Farm News Release, Indian Coun agric Res* , No 248, 1956

Sheep breeding Improvements of sheep and wool, *Annu Rep* , *Indian Coun agric Res* , 1958–59, 59–63

Sheep Breeding in 'Handbook of Animal Husbandry' (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1962, 38–67, 255–459

Sheep development programme, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(1), 2

Sheep farming in Rajasthan, *Indian Fmg, N S* , 1953–54, 3(9), 10–11

Sheep and goat breeding, *Annu Rep* , *Indian Coun agric Res* , 1962–63, 26–28, 43

Sheep population in India, *Agric Situat India*, 1955–56, **10**(4), 39

SINGH, B P *et al* —Evaluation of breeds of sheep on the basis of cross-bred lamb performance, *J Anim Sci* , 1967, **26**, 261–66

SINGH, G —Some 'Musts' for the sheep breeder, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(4), 41

SINGH, G —Evolution of the Kashmir Merino, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(3), 8, 10

SINGH, G —Some points to remember when breeding sheep, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(2), 21–22

SINGH, G & SHARMA, R M —Improvement of sheep and wool at the Government Livestock Farm, Hissar, *Indian vet J* , 1952, **28**, 357

SINGH, G S & JOSHI, D C —A drought resistant, evergreen indigenous shrub as a feed for sheep, *Sci & Cult* , 1956–57, **22**, 111–12

SINGH, G S & JOSHI, D C —*Goja* (*Amaranthus spinosus* Linn) . A drought resistant ever-green useful feed for sheep, *Indian vet J* , 1957, **34**, 190–96

SINGH, O N —Central Sheep and Wool Research Institute, Malpura, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(3), 20–23, 34

SINGH, O N—Cross-breeding of sheep for wool production in India, *Wool & Wool India*, 1967, 3(10), 37–41
SINGHANIA, G—Prospects of developing Indian Merino, *Wool & Wool India*, 1968, 5(3), 36–38
SMITH, L W & HUSSAIN, M—Bikaneri sheep, *Indian Fmg*, 1940, 1, 549
SRIVASTAVA, H D *et al*—Pathogenicity of experimental infection of *Schistosoma indicum* (1906) to young sheep, *Indian J vet Sci*, 1964, 34, 35–40
Success in Sheep Breeding Proper Feeding of Rams, *Farm News Release, Indian Coun agric Res*, No 153, 1955
SULE, A D—Non-felting of wool A critical comprehensive review tracing the history, growth and up-to-date development, *Wool & Wool India*, 1967, 3(9), 24–61
SULE, A D—Wool wax (Recovery, purification, properties, by-products and uses) Scope of its recovery and utilization in India, *Wool & Wool India*, 1967, 3(6), 21–37
SULE, A D *et al*—Spectrophotometric determination of yellowness of canary-coloured wools, *Text Res J*, 1965, 35, 952
TANEJA, G C—Watering of sheep in the desert, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(3), 46–47
THAKUR, A K B *et al*—Study on body weight and conformation of Gaddi and Romney Marsh sheep, *Indian vet J*, 1967, 44, 589–96
TYAGI, J C—Performance of Polwarth, Bikaneri and their crosses, *Indian vet J*, 1965, 42, 200–04
TYAGI, J C—The performance of Polwarth, Rampur-Bushair and their cross-breeds, *Indian vet J*, 1965, 42, 425–27
TYAGI, J C & MAHAR, U S—The performance of Polwarth sheep in Uttar Pradesh hills, *Indian vet J*, 1965, 42, 965–72
TYAGI, J C & MAHAR, U S—Consequences of acclimatizing Polwarth sheep in Uttar Pradesh hills—Growth rates of lambs and body weights of ewes, *Indian vet J*, 1966, 43, 344–49
TYAGI, J C & VIRK, N S—Absorptiometry, a rapid method for determining sperm concentration in ram semen, *Indian vet J*, 1967, 44, 575–79
Upgrading Indian sheep, *World Crops*, 1968, 20(1), 32–33
UPPAL, P K *et al*—Observations on the use of live and inactivated virus vaccines against sheep pox, *Indian vet J*, 1967, 44, 815–27
VAIDYA, B K & BHATT, P N—Indian wool, *Indian Fmg*, 1947, 8, 479
VAKIL, D V—Fibre measurements for Chokla wool—I Fibre length and tensile strength, *Indian vet J*, 1967, 44, 857–61
WARTH, A H—The Chemistry and Technology of Waxes (Reinhold Publishing Corp, New York), 2nd edn, 1956
Washing Sheep Before Shearing Better Prices for Wool, *Farm News Release, Indian Coun agric Res*, No 136, 1955
Washing Sheep Cleaner Fleece, *Farm News Release, Indian Coun agric Res*, No 200, 1956
WOODROFFE, D—Tanning of Indian sheepskins and goatskins, *Tanner*, 1952–53, 7(6), 15–18
Wool from Polwarth sheep, *Indian Fmg, N S*, 1954–55, 4(8), 21
Wool grading scheme, *Farmer*, 1957, 8(2), 34–36
Wool Home production to meet home requirements, *Indian Fmg*, 1947, 8, 1–2
Wool in India, *Suppl, Wool News Bull*, No 72, 1958
Wounds in Sheep Treatment Recommended, *Farm News Release, Indian Coun. agric Res*, No 260, 1956

बकरियाँ

AGARWALA, O P—Goat The poor man's cow, *Allahabad Fmr*, 1954, 28, 208
AMBLE, V N *et al*—Statistical Studies on Breeding Data of Beetal Goats, *Res Ser, Indian Coun agric Res*, No 38 1964
Animal Nutrition—II The influence of different levels of carotene intake on the metabolism of calcium, phosphorous and protein of goats, *Annu Rep, Indian vet Res Inst, Izatnagar*, 1949–50 42
BARNABAS, T & MAWAL, R B—Amino acid content of goat's milk at different stages of lactation, *Indian J Dairy Sci*, 1959, 12, 63–67
BAWA, M S—Utility of date fruit as a feed for goat, *Indian Fmg*, 1950, 11, 328
BHALLA, N P *et al*—Haematological values of healthy hill-goats, *Indian J vet Sci*, 1966, 36, 33–39
BHALLA, R C & SHARMA, G L—Pathogenesis of foot and mouth disease in endocrine glands of experimentally infected goats, *Indian J vet Sci*, 1967, 37, 287–97
BHATIA, S S—Goat The Poor Man's Cow (Department of Animal Husbandry and Fisheries, Govt of Uttar Pradesh, Lucknow), 1954
BHATIA, S S—Feeding Goats for Milk Production, *Farm Bull, Indian Coun agric Res*, No 52, 1959.
Breeding and cross-breeding of Angora goats, *Indian Fmg*, 1940, 1, 384
Breeding goats and sheep for milk production, *Curr Sci*, 1944, 13, 221
Cheap Houses for Goats, *Inform Pamphl, Indian Coun agric Res*, No 51, 1957
DAS, D N *et al*—Lumbar paralysis in goats—A case record, *Indian vet J*, 1964, 41, 227–33
DAS, J *et al*—Incidence of *Brucella* reactors among goats and sheep in Orissa, *Indian vet J*, 1961, 38, 547–50
DE VALOIS, J J—Milk Goats in India, *Rural Development Ser*, No 1, 1944
DEB, J C—Fuller and better utilization of Indian goatskin, *J Indian Leath Technol Ass*, 1963, 11, 289–95
Economics and management of Angora goats, *Indian Fmg*, 1940, 1, 490
GAUTAM, O P—Haematological norms in goats, *Indian J vet Sci*, 1965, 35, 173–77
Goat breeding, *Annu Rep, Indian Coun agric Res*, 1958–59, 63–64
Goat Breeding, in 'Handbook of Animal Husbandry' (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1962, 68–93, 255–459
Goat The poor man's cow, *Indian Fmg, N S*, 1960–61, 10(11), 20–21, 40
HADDON, J R & IDNANI, J A—Goat dermititis A new virus disease of goats in India, *Indian J vet Sci*, 1946, 16, 181
HASSAN, Z—Investigation into the intestinal helminth load in local goats, *Indian vet J*, 1964, 41, 543–46
JAMASPJINA, B B—The Surti goat, *Indian Fmg*, 1944, 5, 406–07
KAURA, R L—Some common breeds of goats in India—I *Indian Fmg*, 1943, 4, 549
KHOT, S S & JALIHAL, M R—Pashmina goat of Ladakh, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(4), 15–16
KUMAR, L S S *et al*—Goats, in 'Agriculture in India' Vol III—Animals (Asia Publishing House, New Delhi), 1963, 39–45

LALL, H K—Some common breeds of goats in India—III, *Indian Fmg*, 1947, 8, 322–27

LALL, H K—Goat Keeping for Profit, *Farm Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 4, 1954

LALL, H K—Goats need good feeding, *Indian Fmg*, *N S*, 1954–55, 4(2), 25

LALL, H K—This way to manage your goat flocks, *Indian Fmg*, *N S*, 1954–55, 4(4), 22

LALL, H K—When goats get sick, *Indian Fmg*, *N S*, 1954–55, 4(7), 25

LALL, H K—Some tips on goat feeding, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(2), 13–14

LALL, H K—Goat breeding, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(1), 28–31, 43

LALL, H K & SINGH, J—Some observations on mortality in goats, *Indian J vet Sci*, 1949, 19, 261

LITTLEWOOD, R W—Milch Goats, in 'Livestock of Southern India' (Superintendent, Govt Press, Madras), 1936, 216–20

MAHAJAN, M R & KHAN, A A—Jamnapari goats, *Indian Fmg*, 1948, 9, 148

MATHUR, T N—Brucellosis among goats and sheep in Haryana A practical approach to the investigation of brucellosis, *Indian vet J*, 1968, 45, 91–102

MOULICK, S K *et al*—Factors affecting multiple birth in black Bengal goats, *Indian J vet Sci*, 1966, 36, 154–63

PANT, K P—Studies on birth weight, mohair yield, and mohair fibre length of Angora and Angora×Gaddi goats, *Indian vet J*, 1968, 45, 929–39

PANT, K P—Medullated mohair fibres of Angora, Gaddi and their cross-bred goats, *Indian vet J*, 1969, 46, 125–32

PANT, K P & KAPRI, B D—Studies on the hair follicle ratios of Angora, Gaddi and their cross-bred goats, *Indian vet J*, 1966, 43, 1085–88

PATEL, J K—Artificial insemination in goats, *Indian vet J*, 1967, 44, 509–11

PAUL, D L—Goat breeding in Assam, *Indian Fmg*, *N S*, 1953–54, 3(8), 12

PILLAI, C P—Goat paralysis, *Trop Agriculturist*, 1953, 109, 207

RADHEY MOHAN—Cutaneous eruptions of rinderpest in goats, *Indian J vet Sci*, 1953, 23, 39

RAI, G S & ROY, A—Studies in milk yield of Jamnapari goats in the home tract, *Indian vet J*, 1965, 42, 596–601

RAJA, S—Our hides and skins—Standard selections and measurements of goatskins dealt on measurement basis, *Tanner*, 1951, 6(6), 21

RANDHAWA, M S—Goat in 'Agriculture and Animal Husbandry in India' (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1958, 311–13

RAO, H A G—Practical goat (milk) keeping, *Mysore agric J*, 1952, 28(1 & 2), 14

READ, W S—Breeding and cross breeding of Angora goats, *Indian Fmg*, 1940, 1, 384

READ, W S—Mohair from Angora goat, *Indian Fmg*, 1940, 1, 53–54

READ, W S—No difference in market value, *Indian Fmg*, 1940, 1, 385

READ, W S—The Angora goat, and the mohair industry, *Indian Fmg*, 1940, 1, 162–65, 328–31

REKIB, A & SANDHU, D P—Effect of feeding higher doses of urea on the rumen metabolism in goat, *Indian vet J*, 1968, 45, 735–39

ROY, A & SAHNI, K L—Artificial insemination in sheep and goat—II Problems posed, *Indian Fmg*, *N S*, 1968–69, 18(3), 43

SAHNI, K L & ROY, A—Study on the sexual activity of the Barbari goat (*Capra hircus* L) and conception rate through artificial insemination, *Indian J vet Sci*, 1967, 37, 269–76

SEN, K C—Immunobiological relationship of goat-pox and sheep-pox viruses, *Indian J med Res*, 1968, 56, 1153–56

SEN, K C—Studies on goat-pox virus, Serological properties, *Indian J med Res*, 1968, 56, 1157–63

SEN, S K—Some common breeds of goats in India—II *Indian Fmg*, 1944, 5, 356

SHANMUGASUNDARAM, K S—Birth rate among goats, *Indian vet J*, 1957, 34, 107–17

SINHA, B N—Bihar's cross-bred goats are heavier and high milkers, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(4), 40

SIVADAS, C G *et al*—Studies on pathology of coccidiosis in goats, *Indian vet J*, 1965, 42, 474–79

SRIVASTAVA, V K *et al*—Carcass quality of Barbari and Jamnapari type goats, *Indian vet J*, 1968, 45, 219–25

TEWARI, A N & IYER, P K R—Localized lesions in the omentum of goats due to *Taenia* species, *Indian vet J*, 1960, 37, 627–30

TIKU, J L—Pashmina industry needs to be nursed, *Indian Fmg*, *N S*, 1967–68, 17(5), 56

सुअर

ABDULALI, H—Wild pigs in the Andamans, *J Bombay nat Hist Soc*, 1962, 59, 281–83

AGARWALA, O P—Pig raising and pork processing, *Allahabad Fmr*, 1954, 28(3), 75

AGARWALA, O P—Annual Report of the Department of Animal Husbandry for the Year 1961–62, *Allahabad Fmr*, 1962, 36(5), 9

AHMED, K A—How to keep pigs for profit and food, *Indian Fmg*, 1947, 8, 457

ALWAR, V S—Parasites of pigs (*Sus scrofa domestica*) in Madras, *Indian vet J*, 1958, 35, 112–16

ANTHONY, D J & LEWIS, E F—Diseases of the Pig (Bailliere, Tindall & Cox, London), 5th edn, 1962

Bacon factory begins operation, *Yojana*, 1969, 13(4), 21.

BARAT—Development of pig husbandry, *Tanner*, 1967, 22(3), 111

BOSE, E M—The rearing of imported pigs in India, *Agric Live-Stk India*, 1939, 9, 707

BROWN, H *et al*—Studies on colostrum acquired immunity and active antibody production in baby pigs, *J Anim Sci*, 1961, 20, 323–28

CLARKE, G B *et al*—The Pig Modern Husbandry and Marketing, edited by Price, W T (Geoffrey Bles, London), 1962

DHARMAKUMARSINHJI, R S—Indian wild boar (*Sus scrofa cristatus* Wagner) feeding on *Boerhavia diffusa* Linn, *J Bombay nat Hist Soc*, 1960, 57, 654–55

Dressing of hog skins, *Industry*, *Calcutta*, 1950, 41, 456

DUBEY, J P—A note on helminthic nodules in local piglets, *Curr Sci*, 1964, 33, 340–42

FISHWICK, V C—Pigs Their Breeding, Feeding and Management (Crossby Lockwood & Sons Ltd, London), 4th edn, 1947

GUPTA, S—Take care of your boar, *Indian Fmg*, *N S*, 1961–62, 11(4), 21

GUPTA, S—Breeding pigs for quality pork, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(4), 12–14

GUPTA, S & MOULICK, S K—Pigs too need proper feeds, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(3), 14–16, 35

GUPTA, S & MOULICK, S K—Artificial feed supplements for growing, pigs, *Beng Veterinarian*, 1964, **12**, 42–44

GUPTA, S & SOM, T L—Diseases incidental to a farrowing sow, *Anim Hlth*, 1961, **2**(1), 49–55

GUPTA, S *et al*—Incidence of foot and mouth disease in large white pigs at the Regional Pig Breeding Station, West Bengal, *Indian vet J*, 1962, **39**, 534–40

GUPTA, S *et al*—Effect of high level copper supplementation in the ration of growing pigs, *Emp J exp Agric*, 1964, **32**, 331

HEANEY, I H—Pig breeding, *Chem & Ind*, 1956, 778–82

JAMKHEDKAR, P P *et al*—Infectious mastitis in sows, *Indian vet J*, 1964, **41**, 385–91

KAURA, R L—Swine Husbandry and Piggery Products, *Rev Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 27, 1958

KRISHNAMURTHY, S—Management methods as a means of improving pig production in the far east, *Working paper No 16, F A O Conference on Pig Production and Diseases in the Far East*, *Bangkok*, 1968

MATHARU, B S—Pig rearing is a profitable occupation, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, **17**(12), 35–36, 44

Meat by-products as source of better living, *Fact*, 1951, **5**(10), 281

Meat packers find more items from pigs and steers, *Chemurg Dig*, 1950, **9**(7), 16

MILLEN, T W—A practical sanitary pig sty, *Indian Fmg*, 1947, **8**, 136–37

MOULICK, S K *et al*—Effects of terramycin, aureomycin and high level of copper sulphate on growing pigs, *Indian J vet Sci*, 1965, **35**, 275–81

MUKHERJEE, A K—Extinct, rare and threatened game of the Himalayas and the Siwalik ranges, *J Beng nat Hist Soc*, 1963, **1**, 36–67

MURARI, T—Pig keeping as a side line, *Madras agric J*, 1932, **20**, 229

NARAYANA, J V—Preliminary studies on an outbreak of swine-pox in Large-Whites in Andhra Pradesh, *Indian vet J*, 1964, **41**, 71–75

NARAYANA, J V & RAO, P P—Preliminary survey of disease position among pigs in Andhra Pradesh—A Viral disease among Large-Whites, *Indian vet J*, 1964, **41**, 520–22

Preliminary report on swine fever epidemic in Uttar Pradesh, *Indian vet J*, 1962, **39**, 405–06

RAO, P L *et al*—Studies on the relationship of carcass yield, certain wholesale cuts and offals to the live weight in pigs, *Indian vet J*, 1968, **45**, 866–73

RAO, P P—Preliminary survey of disease position among pigs in Andhra Pradesh—B Bacterial diseases among Large-Whites, *Indian vet J*, 1965, **42**, 655–58

RADDY, J C—Pig raising and pork production programme at the Allahabad Agricultural Institute, Allahabad, *Allahabad Fmr*, 1967, **41**, 233–40

SAGAR, R H—Herd health programme for raising hogs, *Allahabad Fmr*, 1967, **41**, 67–73

SAKKUBAI, P R & SHARMA, G L—Swine fever Great scope for prevention, Little for cure, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(2), 9–10

SAXENA, H C—Antibiotics in the nutrition of farm animals—II Swine, *Allahabad Fmr*, 1954, **28**, 105

SHAHI, H B—Essentials of pig feeding, *Indian Fmg*, 1940, **1**, 427

SINGH, S—Common parasites of pigs in Delhi, *Indian vet J*, 1959, **36**, 84–85

SINHA, B K—Observations on the incidence and pathology of natural lungworm infection in pigs (*Sus scrofa domestica*) in Bihar *Indian vet J*, 1967, **44**, 884–88

SOHAN SINGH—Common parasites of pigs in Delhi, *Indian vet J*, 1959, **36**, 84–85

STATHER, F—Pig hide and pig leather, *Tanner*, 1958, **12**, 261–64, 267

SUBRAMANIAM, T *et al*—Broncho-pneumonia in baby pigs due to *Metastrongylus apri*, *Indian vet J*, 1967, **44**, 121–27

Water hyacinth problem and pig farming, *Sci & Cult*, 1951–52, **17**, 231

घोड़े तथा टट्टू

COOK, H R—Horse meat in cooked meat food products, *Biol Abstr* 1964, **45**, 2616, Abstr 32445

DURGA DAN—Control of *surra* in horses and camels of Jodhpur State, *Indian vet J*, 1949, **25**, 280–82

Encephalomyelitis and *surra* in horses, *Annu Rep*, *Indian vet Res Inst*, *Izatnagar*, 1949–50, 23

FRANCIS, J—A review of the respiratory diseases of the horse, *Indian J vet Sci*, 1945, **15**, 235

GAZDER, P J—Horses in the Republic of India, *Indian vet J*, 1953–54, **30**, 49–53

GOSWAMI, S K & NAG, B—Breeding ponies in the hills, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(2), 22–23, 27

Horse breeding in India, *Agric J India*, 1918, **13**, 152

Horse population declines, *World Crops*, 1956, **8**, 383

Horse sickness in Madhya Pradesh, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, **11**(10), 39

JAIN, N C & MURTY, D K—Sensitivity of Indian strain of horse sickness virus to some broad spectrum antibiotics *in vitro* and in experimentally infected mice, *Indian J vet Sci*, 1963, **33**, 189–99

JOAN, BUNN-RICHARDS—Horses and Ponies (Ward, Lock & Co, London), 1961

KRISHNAMURTY, D & JAIN, N C—Some observations on outbreaks of African horse sickness in Uttar Pradesh, *Indian vet J*, 1962, **39**, 305–15

LALL, H K—A horse stud in the making, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, **17**(4), 26–27

OLSSON, N & RUUDVERE, A—The nutrition of the horse, *Nutr Abstr Rev*, 1955, **25**, 1–18

PARNAIK, D T *et al*—Observation on South African horse sickness in Maharashtra, *Indian J vet Sci*, 1965, **35**, 94–101

PAVRI, K M *et al*—An outbreak of rabies in horses near Poona, India, *Curr Sci*, 1964, **33**, 329–30

SAIGIN, I A—Methods of developing Koumiss production, *Nutr Abstr Rev*, 1954, **24**, 211, Abstr 1253

SHAH, K V—Investigation of African horse sickness in India—I Study of the natural disease and the virus, *Indian J vet Sci*, 1964, **34**, 1–14

SHAH, K V *et al*—Investigation of African horse sickness in India—II Reactions in non-immune horses after vaccination with the polyvalent African horse sickness vaccine, *Indian J vet Sci*, 1964, **34**, 75–83

SHAHI, H B—Indigenous breeds of horses and donkeys in India, *Indian Fmg*, 1942, **3**, 430–37

SHARMA, G L *et al*—I V R I vaccine cuts down losses due to African horse sickness, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(1), 43–44, 46

STEEL, J H—The horse A zoological study, *J Bombay nat Hist Soc*, 1887, 2, 198

STEEL, J H—Wild horses, *J Bombay nat Hist Soc*, 1887, 2, 253

TIKU, J L—Horses of Ladakh—Some of the finest breeds, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, 18(11), 47–49

WADIA, F—Horse breeding in India, *Bombay vet Coll Mag*, 1951, 2, 66–68

गधे तथा खच्चर

ANDERSON, W S—Fertile male mules, *Indian J vet Sci*, 1941, 11, 62

Animal Management (The Veterinary Department of the War Office, London), 1933

BRANFORD, R—Note on an outbreak of contagious pneumonia in donkeys, *Agric J India*, 1917, 12, 268

DEORANI, V P S & DUTT, S C—Histopathology of parafilariasis in mules, *Curr Sci*, 1967, 36, 240–41

GEE, E P—Indian wild ass A survey, February 1962, *J Bombay nat Hist Soc* 1963, 60, 516–29

KULKARNI, V B & MANJREKAR, S L—Account of the outbreak of strangles among mules imported from Italy in Maharashtra State, *Bombay vet Coll Mag*, 1963–64, 11, 19–21

RAYMENT, G J R—Mule breeding, *J Bombay nat Hist Soc*, 1895, 9, 177

SHAHI, H B—Indigenous breeds of horses and donkeys in India, *Indian Fmg*, 1942, 3, 430–37

STEEL, J H—Mules, *J Bombay nat Hist Soc*, 1890, 5, 252

ऊँट

AGARWALA, O P—Camel, the ship of the desert, *Allahabad Fmr*, 1951, 25, 224

BHARGAVA, K K *et al*—Study of the birth-weight and body measurements of camel (*Camelus dromedarius*), *Indian J vet Sci*, 1965, 35, 358–62

BHIMAYA, C P—The effect of animal factor on soil conservation in western Rajasthan, *Indian For*, 1961, 87, 738–44

CROSS, H E—The Camel and its Diseases—Being Notes for Veterinary Surgeons and Commandants of Camel Corps (Bailliare, Tindall & Cox, London), 1917

DAS, D K & MITRA, S K—Note on the histological characteristics of camel hide, *J Indian Leath Technol Ass*, 1967, 15, 379–400

DHILLON, S S—Incidence of rinderpest in camels in Hissar district, *Indian vet J*, 1959, 36, 603–06

DURGA DAN—Control of *surra* in horses and camels of Jodhpur State, *Indian vet J*, 1949, 25, 280–82

DURGA DAN—Survey Report on the Indian Camels (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1954–56 (Unpublished)

HIRA, L M—Camel breeding in India, *Indian Fmg*, 1947, 8, 504–07

How camels conserve water, *Burmese For*, 1962, 12(2), 88

KHERASKOV, S G—Camel milk as a product of nutrition, *Chem Abstr*, 1963, 58, 2779

LEESE, A S—A Treatise on the One-humped Camel in Health and in Disease (Haynes & Sons, Lincolnshire), 1927.

LODHA, K R—Getting rid of camel mange, *Indian Fmg, N S*, 1966–67, 16(2), 33–34

MATHARU, B S—Camel care, *Indian Fmg, N S*, 1966–67, 16(7), 19–22

NANDA, P N—Camels and their management, *Rev Ser, Indian Coun agric Res*, No 16, 1957

NANDA, P N—Camel at work, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(4), 24–27, 47

NANDA, P N—Management of camels, *Indian Fmg, N S*, 1965–66, 15(12), 38–39

SHARMA, V D & BHARGAVA, K K—Bikaneri camel, *Indian vet J*, 1963, 40, 639–43

SHARMA, V D & SHARMA, S N—Some peculiarities of camel reproduction, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(2), 44–47

STEEL, J H—The camel, its uses and management (Leonard), *J Bombay nat Hist Soc*, 1889, 4, 207

याक

SHARMA, G P—Yak in the Nepal Himalayas, *Indian Fmg, N S*, 1953–54, 3(11), 24

TIKU, J L—Yak is indispensable to inhabitants of the hills, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(2), 22–23

TIKU, J L—Some peculiar farm animals of Ladakh, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, 18(3), 49–51

Yak, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(3), 7

पशुधन उत्पादों का रसायन

ABD-EL-SALAM, M H & EL-SHIBINY, S—Chemical composition of buffalo milk—I General composition, *Indian J Dairy Sci*, 1966, 19, 151–54

ABD-EL-SALAM, M H & EL-SHIBINY, S—Chemical composition of buffalo milk—II Effect of lactation period, *Indian J Dairy Sci*, 1966, 19, 155–57

ACHARYA, B N & DEVADATTA, S C—Compounds of phosphorus in milk—Part I *Proc Indian Acad Sci*, 1939, 10B, 221–28

ACHARYA, B N & DEVADATTA, S C—Phosphorus, calcium, and magnesium in milk—Part II *Proc Indian Acad Sci*, 1939, 10B, 229–35

AGARWALA, O P & SUNDARESAN, D—Influence of frequency of milking on milk production, *Indian J Dairy Sci*, 1955, 8, 94–99

AGGARWALA, A C—Production of Wholesome Meat in India, *Farm Bull, Indian Coun agric Res, N S*, No 15, 1964

AGGARWALA, A C & SHARMA, R M—Laboratory Manual of Milk Inspection (Asia Publishing House, Bombay), 4th edn, 1961

ALI, ABDULLAH YUSUF—Some nutritional aspects of meat meal, *Indian vet J*, 1965, 42, 428

ANANTARAMIAH, S N—Biochemical Studies on Lactic Acid, Bacteria (Diacetyl Production), M Sc Thesis, University of Bombay, 1952

ASCHAFFENBURG, R & SEN, A—Comparison of the caseins of buffalo's and cow's milk, *Nature, Lond*, 1963, 197, 797

AYKROYD, W R & KRISHNAN, B G—Effect of skimmed milk, soyabean and other foods in supplementing typical Indian diets, *Indian J med Res*, 1936–37, 24, 1093–1106

AYKROYD, W R *et al*—The Nutritive Value of Indian Foods and the Planning of Satisfactory Diets, *Spec Rep Ser, Indian Coun. med Res*, No 42, 1966

Bailey's Industrial Oil and Fat Products, edited by Swern, D (Interscience Publishers, New York), 3rd edn, 1964

BALASUBRAMANIAN, S C *et al*—Nutritive value of the proteins of milk and some indigenous milk products, *Indian J med Res*, 1955, **43**, 255–64

BANDYOPADHYAYA, N—Composition, structure and physico-chemical properties of buffalo horn, *J Indian chem Soc, industr Edn*, 1948, **11**, 148–60

BARNABAS, T & MAWAL, R B—The amino acid content of goat's milk at different stages of lactation, *Indian J Dairy Sci*, 1959, **12**, 63–67

BASU, K P & HALDAR, M K—Supplementary relations between the proteins of pulses and those of milk by the balance sheet and growth methods, *J Indian chem Soc*, 1939, **16**, 189–98

BASU, K P & MUKHERJEE, K P—Phosphorus in milk—I The phosphorus partition in the milk of cow, goat, sheep and human beings, *Indian J vet Sci*, 1943, **13**, 231

BASU, K P & MUKHERJEE, K P—Phosphorus in milk—II Availability of phosphorus of the milk of cow, goat and buffalo, *Indian J vet Sci*, 1943, **13**, 236

BASU, K P & NATH, H P—Comparative value of butter fats and vegetable oils for growth, *Indian J med Res*, 1946, **34**, 33

BASU, K P *et al*—Composition of Milk and Ghee, *Rep Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 8, 1962

BASU, U P & BHATTACHARYA, S—On the characteristics of Indian ox-bile powder, *J Indian chem Soc, industr Edn*, 1948, **11**, 107

BASU, U P *et al*—A study on the toxicity of the bile acids and their derivatives prepared from Indian ox bile, *Indian med Gaz*, 1940, **75**, 215

BATE-SMITH, E C & INGRAM, M—Forty years of research on meat, *Food Preserv Quart*, 1967, **27**(3), 67–72

BATZER, O F *et al*—Identification of some beef flavour precursors, *J agric Fd Chem*, 1962, **10**, 94–95

BHALERAO, V R & BASU, K P—Effect of different milk supplements on the poor South Indian diet, *Indian J Dairy Sci*, 1950, **3**, 1–6

BHALERAO, V R *et al*—The relative rate of absorption of different oils and fats, *Indian J vet Sci*, 1947, **17**, 221

BHALERAO, V R *et al*—Comparative growth promoting value of oils and fats, *Indian J vet Sci*, 1950, **20**, 151

BHATIA, I S—Effect of cooking upon the vitamin A content of ghee, *Bull cent Fd technol Res Inst*, *Mysore*, 1952–53, **2**, 72

BHATIA, I S—Vitamin A content of cow's butter-fat, *Bull cent Fd technol Res Inst*, *Mysore*, 1952–53, **2**, 178

BHATTACHARYA, D C & SRINIVASAN, M R—New varieties of *dahi* (fermented whole milk), *Indian Dairyman*, 1967, **19**(1), 35–38

BHOTE, R A & JAYARAMAN, S—Hides and skins in India's leather industry, *Agric Marketing*, 1965, **7**(4), 18–19, 21

BLANCK, F C (Editor)—Handbook of Food and Agriculture (Reinhold Publishing Corpn, New York), 1955

BLOCK, R J & BOLLING, D—The Amino Acid Composition of Proteins and Foods (C C Thomas, Springfield, Ill) 1951

BLOCK, R J & MITCHELL, H H—The correlation of the amino acid composition of proteins with their nutritive value, *Nutr Abstr Rev*, 1946–47, **16**, 249–78

BOSE, S *et al*—Dehairing skins and hides, Indian Pat 50806, 1955

Butter Colour, *Leafl Nat Dairy Res Inst*, *Karnal*, No 5, 1965

CHANDAN, R C & SHAHANI, K M—Milk lipases A review, *J Dairy Sci*, 1964, **47**, 471–80

CHANDRASEKHARA, M R *et al*—Infant food from buffalo milk—I Effect of different treatments on curd tension, *Food Sci*, 1957, **6**, 226–28

CHANDRASEKHARA, M R *et al*—Roller-dried infant food from buffalo milk Project costs, *Res & Ind*, 1959, **4**, 13–15

CHANDRASEKHARA, M R *et al*—Infant food based on coconut protein, groundnut protein isolate and skim milk powder—I Preparation, chemical composition and shelf-life, *J Sci Fd Agric*, 1964, **15**, 839–41

CHATFIELD, C & ADAMS, G—Proximate Composition of American Food Materials, *Circ U S Dep Agric*, No 549, 1940

CHAUDHURI, A C—Practical Dairy Science and Laboratory Methods (Scientific Book Agency, Calcutta), 1959

CHITRE, R G & PATWARDHAN, V N—The nutritive value of milk and curds, *Curr Sci*, 1945, **14**, 320

Dairying in India, *Rev Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 14, 1956

DASTUR, N N—Buffaloes' milk and milk products, *Dairy Sci Abstr*, 1956, **18**, 967–1008

DATTA, N C & BANERJEE, B N—Studies on the nutritive value of milk and milk products, *Indian J med Res*, 1934–35, **22**, 341–51

DAVIES, W L—Indian Indigenous Milk Products (Thacker, Spink & Co, Calcutta), 1948

DE, H N & SOM, A B—Utilization of whey—a milk waste in the production of 'Chhanna', for supply of calcium to poor rice diet, *Indian J vet Sci*, 1948, **18**, 241–43

DE, S—Improving the keeping quality of milk, *Indian Live-Stk*, 1965, **3**(1), 4–7, 39

DE, S & RAY, S C—Studies on the indigenous method of *khoa*-making—Part I Influence of the conditions of dehydration and the type of milk on the production of *khoa*, *Indian J Dairy Sci*, 1952, **5**, 147–65

DESIKACHAR, H S R & SUBRAHMANYAN, V—Utilization of calcium from cow and buffalo milk and effect of souring on calcium availability, *Indian J Dairy Sci*, 1948, **1**, 123

DHAR, D C *et al*—Preparation of pancreatin from slaughter-house products, *Res & Ind*, 1969, **14**(1), 1–4

DHAR, S C—Purification, crystallization and properties of cathepsin C from beef spleen, *Leath Sci*, 1964, **11**, 191

DHARMARAJAN, C S—Studies on the Freezing Point of Milk of Indian Cows and Buffaloes, M Sc Thesis, University of Madras, 1950

DHINGRA, D R—The component fatty acids and glycerides of the milk fats of Indian goats and sheep, *Biochem J*, 1933, **27**, 851–59

Digestibility of cow's milk and buffalo's milk, *Madras agric J*, 1955, **42**, 186

DIKSHIT, P K & RANGANATHAN, S—The vitamin D content of butter and ghee (clarified butter), *Indian J med Res*, 1950, **38**, 37–40

DUDANI, A T—Organisms that spoil your milk, *Indian Fmg*, *N S*, 1968–69, **18**(2), 27–29

DUGAN, L R—Fatty Acid Composition of Food Fats and Oils, *Circ Amer Meat Inst Foundation*, No 36, 1957

FEENEY, R E & HILL, R M—Protein chemistry and food research, *Advanc Fd Res*, 1960, **10**, 23–73

First Indian Dairy Yearbook, 1960 (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1961.

GANGULI, N C & BHALERAO, V R —A comparative study on the casein of buffalo and cow milk by paper disc electrophoresis, *Milchwissenschaft*, 1964, 19, 535

GANGULI, N C *et al*—Composition of the caseins of buffalo and cow milk, *J Dairy Sci*, 1964, 47(1), 13–18

GERRARD, F —Meat Technology A Practical Text Book for Student and Butcher (Leonard Hill, London), 1964

Ghee Residue, *Leafl Nat Dairy Res Inst*, *Karnal*, No 4, 1964

GHOSH, S N & ANANTAKRISHNAN, C P —Composition of milk—Part IV Influence of season, breed and species, *Indian J Dairy Sci*, 1963, 16, 190–202

GHOSH, S N & ANANTAKRISHNAN, C P —Composition of milk—Part V Effect of stage of lactation, *Indian J Dairy Sci*, 1964, 17, 17–28

GODBOLE, N N —An apparatus for domestic pasteurization of milk, *Trans Indian ceram Soc*, 1957, 16, 107–10

GODBOLE, N N & SADGOPAL—Butter-fat (Ghee) Its Composition, Nutritive Value, Digestibility, Rancidity, Adulteration—its Detection and Estimation (Leader Press, Allahabad), 2nd edn, 1939

GULVADY, S L *et al*—Cholesterol content of milk of cows and buffaloes, *Indian J Dairy Sci*, 1952, 5, 125–34

GUPTA, S S & HILDITCH, T P —The component acids and glycerides of a horse mesenteric fat, *Biochem J*, 1951, 48, 137–46

HALL, C W & HEDRICK, T I —Drying of Milk and Milk Products (The Avi Publishing Co, Inc, West Port, Conn), 1966

HATTIANGDI, G S & KANGA, K F —The heat stability of vitamin A in ghee and vanaspati, *J Sci industr Res*, 1956, 15C, 48–51

HILDITCH, T P & SHRIVASTAVA, R K —The component glycerides of an Indian sheep body fat, *J Amer Oil Chem Soc*, 1949, 26, 1–4

HILDITCH, T P & WILLIAMS, P N —The Chemical Constitution of Natural Fats (Chapman & Hall, London), 4th edn, 1964

HOEK, F H & HAQ, N —How to Utilize Carcasses, *Farm Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 47, 1958

HOLLA, K S —Detection of adulteration of butter-fat, *Bombay Technol*, 1958–59, 9, 16–20

HOLMAN, W I M —The distribution of vitamins within the tissues of common foodstuffs, *Nutr Abstr Rev*, 1956, 26, 277–304

HUNZIKER, O F —Condensed Milk and Milk Powder (published by the author, La Grange, Ill) 7th edn, 1949

IYA, K K —Manufacturing Western Dairy Products in India, *Farm Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 49, 1958

IYA, K K —Manufacture of pasteurized milk *Indian Live-Stk*, 1965, 3(4), 10–11, 23

IYA, K K.—Manufacturing condensed milk, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(2), 15–16

IYA, K K —Manufacture of table butter, *Indian Fmg*, *N S*, 1966–67, 16(5), 12–14

IYA, K K & LAXMINARAYAN, H —Making good *dahi*, *Indian Fmg*, *N S*, 1952–53, 2(11), 18

IYENGAR, J R *et al*—Effect of cooking on the composition of mutton, *Food Technol*, *Champaign*, 1965, 19, 120–22, 222–24

IYER, J G —Trace-element content of milk in Indian cattle, *Naturwissenschaften*, 1957, 44, 635

JACOBS, M B (Editor)—The Chemistry and Technology of Food and Food Products (Interscience Publishers, Inc, New York), 3 vols, 2nd edn, 1951

JENNESS, R & PATTON, S —Principles of Dairy Chemistry (Chapman & Hall Ltd, London, John Wiley & Sons, Inc, New York), 1959

JUDKINS, H F & KEENER, H A —Milk Production and Processing (John Wiley & Sons, Inc, New York), 1960

KANNAN, A —Studies on Enzymes in Milk and Milk Products, Ph D Thesis, University of Bombay, 1949

KERALA VERMA—Bacteriological Studies on Raw and Boiled Milk, M Sc Thesis, University of Bombay, 1950

KHAMBATTA, J S & DASTUR, N N —Nutritive value of *dahi*—Rat feeding experiments, *Indian J Dairy Sci* 1950 3, 87–93

KHAMBATTA, J S & DASTUR N N —Changes in the chemical composition of milk during souring—Pts I & II, *Indian J Dairy Sci*, 1950, 3, 147–60 1951, 4, 73–80

KIRK OTHMER—Encyclopedia of Chemical Technology (Interscience Publishers, New York), 2nd edn, Vol XIII 1967

KIRSCHENBAUER H G —Fats and Oils An Outline of Their Chemistry and Technology (Reinhold Publishing Corp, New York), 2nd edn, 1960

KOTHAVALLA, Z R & VERMA, H C —Studies in the manufacture of Surati cheese *Indian J Vet Sci*, 1942, 12, 297

KRISHNASWAMY, M A & JOHAR, D S —Some aspects of cheddar cheese, *Food Sci*, 1959 8, 86–91

KRISHNASWAMY, M A *et al*—Vegetable rennet for cheddar and processed cheese, *Res & Ind*, 1961, 6, 43–44

KUPPUSWAMY, S *et al*—Proteins in Foods, *Spec Rep Ser*, *Indian Coun med Res* No 33, 1958

LALITHA, K R & DASTUR, N N —Keeping quality of ghee—I Effect of nature of milk, method of preparation, temperature of melting and antioxidants on the keeping quality, *Indian Dairy Sci*, 1953, 6, 147

LALITHA, K R & DASTUR, N N —Keeping quality of ghee—II Effect of storing butter and ghee on vitamin A content, *Indian J Dairy Sci*, 1954, 7, 1

LALL, H K —Goat-keeping for Profit, *Farm Bull*, *Indian Coun. agric Res*, No 4, 1954

LAMPERT, L M —Modern Dairy Products (Chemical Publishing Co, New York), 1965

LAWRIE, R. A —Meat Science (Pergamon Press, Oxford), 1966

LAXMINARAYANA, H & IYA, K K —Studies on *dahi*—I Introduction and historical review, *Indian J Vet Sci*, 1952, 22, 1

LAXMINARAYANA, H *et al*—Studies on *dahi*—II General survey of the quality of market *dahi*, *Indian J Vet Sci*, 1952, 22, 13

LAXMINARAYANA, H *et al*—Studies on *dahi*—III Taxonomy of the lactic acid bacteria of *dahi*, *Indian J Vet Sci*, 1952, 22, 27

LILY G *et al*—Growth-promoting value of milk and some indigenous milk products, *Indian J med Res*, 1955, 43, 243–48

LILY G *et al*—Supplementary value of milk and some indigenous milk products to a poor rice diet, *Indian J med Res*, 1955, 43, 249–53

LING, E R.—Text Book of Dairy Chemistry (Chapman & Hall Ltd, London), 2 vols, 3rd revised edn, 1956

MCCANCE, R A & WIDDOWSON E M —The composition of Foods (Her Majesty s Stationery Office, London), 1960

MAJUMDAR, B N & JANG, S —Comparative manurial value of the excreta of some farm animals, *Ann Biochem*, 1963, 23, 91–94

MALAKAR, M C —Nutritive value of the proteins of processed milk, *Sci & Cult*, 1952–53, 18, 316

MALIK, S S & NAIR, P G —Studies on serological detection of

cow milk added to buffalo milk, *Indian J vet Sci*, 1967, 37, 207–16

MANGLA PRASAD—Problems of rancidity in edible fats and fatty foods—Part I Oils and fats (Fatty acid composition of common edible oils and fats), *J Oil Technol Ass India*, 1962, 17, 20–40

MANI, G S. *et al*—Composition and nutritive value of some indigenous milk products, *Indian J med Res*, 1955, 43, 237–42

MANKODI, B S & SHENOY, R D—Pasteurization vs sterilization of milk, *Bombay Technol*, 1958–59, 9, 21–25

MANN, I—Meat Handling in Underdeveloped Countries Slaughter and Preservation, *F A O agric Developm Pap*, No 70 (Food and Agriculture Organization, Rome), 1960

Manufacture of Edam and Gowda cheese from buffalo milk, *Indian Fmg, N S*, 1965–66, 15(12), 18–21

MATHUR, M L & DESAI, S V—Studies on the effect of different fodders on the milk yield and its composition and mineral metabolish in Sahiwal cows, *Indian J vet Sci*, 1953, 23, 143

MATHUR, M L & DESAI, S V—Studies on calcium and phosphorus in milk and feeds of Sahiwal cows from precalving period to the end of lactation, *Indian J. vet Sci*, 1953, 23, 221

MATHUR, V K & BHATIA, B S—Chemistry and technology of cured and smoked meat products, *Def Sci J*, 1967, 17(2A), 1–20

MEGGITT, A A & MANN, H H—The composition of the milk of some breeds of Indian cows and buffaloes and its variations—Part I The milk of some breeds of Indian cows, *Mem Dep Agric India, Chem*, 1911, 2, 1–61

MEGGITT, A A & MANN, H H—The composition of the milk of some breeds of Indian cows and buffaloes and its variations—Part II The milk of some breeds of Indian buffaloes, *Mem Dep Agric India, Chem*, 1912, 2, 195–258

Methods of Sampling and Testing Butter-fat (*Ghee*) and Butter under Agmark (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 81, 1954

Milk—The miracle food, *Gosamvardhana*, 1964, 12(6 & 7)

Milk storage, *Bull cent Fd technol Res Inst, Mysore*, 1955–56, 5, 32

MISHRA, M—Use of coconut milk in adulteration of milk and methods for its detection, *Indian vet J*, 1964, 41, 754–58

MITRA, K & MITTRA, H C—Investigations into the biological value of milk proteins By the rat growth method, *Indian J med Res*, 1942, 30, 423–31

MITRA, K & MITTRA, H C—Investigations into the biological value of milk proteins, *Indian J med Res*, 1942, 30, 576–80

MITRA, K & MITTRA H C—Biological value of proteins from muscle meat of cow, buffalo, and goat, *Indian J med Res*, 1945, 33, 87–90

MITRA, K & MITTRA H C—Food value of a further batch of edibles , Estimated by chemical methods, *Indian J med Res*, 1945, 33, 91–95

MITRA, K & VERMA, S K—The biological value of the proteins of rice, pulse and milk fed in different proportions to human beings, *Indian J med Res*, 1947, 35, 23–28

MITRA, S N *et al*—Effect of storage on the composition of *desi* butter, *J Instn Chem India*, 1960, 32, 232–34

MORRISON, F B—Feeds and Feeding (The Morrison Publishing Co , Ithaca, N Y), 22nd edn, 1956

MURTHY, G K *et al*—Vitamin A in cow, buffalo, goat and sheep *ghee*, *Proc Soc biol Chem India*, 1955, 13, 41

NABAR, A B—Comparative Efficiency of Cow and Buffalo as Producers of Milk, M Sc Thesis, University of Agra, 1956

NAIR, P G—Hansa test to detect milk adulteration, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(10), 56–58

NAIR, P G & IYA, K K—A new test for the detection of buffalo milk added to cow milk, *Indian Dairyman*, 1963, 15, 121–22, 133

NARAYANA RAO, M—Nutritive value of buffalo butter-fat, *Indian J med Res*, 1954, 42, 29

NARAYANAMURTI, D *et al*—Studies on adhesives—Part III Casein glues, *Indian For Bull*, *N S*, No 116, 1943

NAYUDAMMA, Y—Quality of hides from dead and slaughtered animals in India, *Tanner*, 1967, 21, 415

NIRMALAN, G & NAIR, M K—Chemical composition of goat milk, *Kerala Vet*, 1962, 1, 49–51

PANDIT, T K & BHAT, J V—Methods of preparation and characteristics of soft cheese made in India, *Indian J Dairy Sci*, 1955, 8, 173–76

PATEL, H S & PATEL, B M—Loss of vitamin A potency during the preparation of *ghee* from milk, *Indian J Dairy Sci*, 1955, 8, 53–60

PATHAK, S P & TRIVEDI, B N—Component glycerides of camel (*Camelus indicus*) depot fat, *J Sci Fd Agric*, 1958, 9, 533–35

PATHAK, S P & VASISTHA, A K—Glyceride structure of Indian turkey (*Meleagris gallopavo*) depot fat, *Indian Oil & Soap J*, 1964–65 30, 337–41

PAUL, T M—About nutritive value of *ghee*, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(2), 11

PAUL, T M & ANANTAKRISHNAN, C P—Keeping quality of *ghee* heated to different temperatures, *Indian J Dairy Sci*, 1949, 2, 108

PAUL, T M & SHAHANI, K M—Biochemical studies on the use of different *dahi* cultures on acidity development in *ghee*, *Indian, I Dairy Sci*, 1950 3, 59

PAUL, T M *et al*—The digestibility of various oils and fats, *Indian J vet Sci*, 1951, 21, 1

PAUL, T M *et al*—Composition of the milk of cows, buffaloes, goats and sheep, *Proc Soc biol Chem India*, 1954, 12, 11–12

Physico chemical studies on proteins of buffalo's milk, *Rep Bose Inst*, 1960–61, 29–33

Physico chemical studies on proteins of goat's milk, *Rep Bose Inst*, 1960–61, 33–34

PILKHANE, S V & BHALERAO V R—Development of phosphatase test for *dahi*, *Indian J Dairy Sci*, 1967, 20, 31–35

PRAPHULLA, H B & ANANTAKRISHNAN, C P—Composition of milk—Part I Influence of breed, season and time of milking on copper, iron, sodium, potassium, chlorine and lactose contents of milk, *Indian J Dairy Sci*, 1958, 11, 48–58

PRAPHULLA, H B & ANANTAKRISHNAN, C P—Composition of milk—Part II Influence of the order and stage of lactation on copper, iron, sodium, potassium, chlorine and lactose contents of milk, *Indian J Dairy Sci*, 1959, 12, 33–42

PRAPHULLA, H B & ANANTAKRISHNAN, C P—Composition of milk—Part III Correlation between sodium, potassium chloride and lactose contents of milk, *Indian J Dairy Sci*, 1960, 13 24–28

Produce Clean Milk (Directorate of Extension, Ministry of Food & Agriculture, New Delhi) 1965

PRUTHI, J S & SACHDAY, N M—Detection of animal body fat

in butter-fat (*ghee*) A Resume, *Indian Oil & Soap J*, 1967–68, 33, 237–42

RAGHAVAN, D & KACHROO, P (Editors)—Market Quality of Ghee, *Rep Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 9, 1962

RAJ, H & JOSHI, N V—Amino acid composition of milk of Indian buffaloes—Part I Essential amino acid composition of total proteins and protein fractions, *Indian J med Res*, 1955, 43, 591–96

RAJ, H & JOSHI, N V—Essential amino acid content of buffalo milk, *Curr Sci*, 1955, 24, 274

RAJ, H & JOSHI, N V—Essential amino acid pattern of buffalo milk during lactation, *J Sci industr Res*, 1955, 14C, 185–88

RAJAGOPAL, N S & ACHAYA, K T—Fatty acids, including polyenoic and trans components, and glycerides of Indian goat tallows, *J Sci Fd Agric*, 1964, 15, 497–503

RAMASWAMY, T S & BANERJEE, B N—Storage of ghee Influence of the method of preparation and acidity on the keeping quality of ghee, *Ann Biochem*, 1948, 8, 123–26

RANGANATHAN, S—The vitamin D content of Indian butter, *Indian J med Res*, 1954, 42, 165

RANGAPPA, K S—Studies in Milk and Butter-fat with Special Reference to the Detection of Adulteration in Milk and Improved Methods of the Production of Butter-fat by the Indigenous Process, Ph D Thesis, University of Bombay, 1948

RANGAPPA, K S & ACHAYA, K T—The Chemistry and Manufacture of Indian Dairy Products (The Bangalore Printing and Publishing Co, Bangalore), 1948

RAY, S N & PAL, A K—Comparative nutritive value of ghee and certain hydrogenated vegetable oils, *Sci & Cult*, 1946–47, 12, 494

RAY SARKAR, B C *et al*—The essential amino acid content of the proteins isolated from milk of the cow, ewe, sow, and mare, *J Dairy Sci*, 1953, 36, 859–64

ROY, N K—Spectrophotometric method for the identification of milk of different species—Part I Cow and buffalo milk, *Indian J Technol*, 1966, 4, 176–79

ROY, N K & BHALERAO, V R—Spectrophotometric method for the detection of buffalo milk in cow milk, *Curr Sci*, 1963, 32, 503–04

SAHAI, K *et al*—Effect of feeding alkali and water-treated cereal straw on milk yield, *Indian J vet Sci*, 1955, 25, 201–12

SANYASI RAJU, M & VARADARAJAN, S—Removal of high acidity in ghee, *Madras agric J*, 1954, 41, 64

SAT PRAKASH—Physico-chemical properties of milk *Indian Dairyman*, 1963, 15, 267–71

SCHWEIGERT, B S & PAYNE, B J—A Summary of Nutrient Content of Meat, *Bull Amer Meat Inst Foundation*, No 30, 1956

Science of Meat and Meat Products, by American Meat Institute Foundation (W H Freeman & Co, San Francisco), 1960

SEN GUPTA, P N—Studies on the dehydration of meat—Part I Breakdown products and effect of processing operations, *J Indian chem Soc industr Edn* 1951, 14, 75–84

SEN GUPTA, P N—Studies on the dehydration of meat—Part II Relation between the atmospheric humidity and the drying time, *J Indian chem Soc*, *industr Edn*, 1951, 14, 125–33

SEN GUPTA P N—Studies on the dehydration of meat—Part III Effect of dehydration on the nutritive values of goat meat and of edible offals, *J Indian chem Soc*, *industr Edn*, 1951, 14, 134–47

SHURPALEKAR, S R *et al*—Nutritive value of dried infant milk foods based on buffalo milk, *J Sci Fd Agric*, 1963, 14, 877–83

SHURPALEKAR, S R *et al*—Studies on the amino acid composition and nutritive value of the proteins of goat's milk, *J. Nutr & Dietet*, 1964, 1, 25–27

SHYAMJI, M *et al*—Further studies on the keeping quality of creamery butter during storage, *Agra Univ J Res (Sci)*, 1963, 12 (3), 29–44

SINGH, H & DAVE, C N—Investigations into the variations of quantity and quality of milk from different quarters of udder, *Indian J Dairy Sci*, 1953, 6, 97.

SINGH, K P & SINGH, S N—Variations in the physico-chemical constants of ghee, *Indian J Dairy Sci*, 1960, 13, 143–49

SINGH, R P *et al*—Nutritive value of raw and boiled milk of cows and buffaloes, *Indian J vet Sci*, 1947, 17, 113–18

SINGH, V B—Chemistry of Milk and Milk Products (Asian Publishers, Muzaffarnagar), 1965

SOMAN, U P & AMBEGAOKAR, S D—Effect of commercial sterilization on the nutritive value of buffalo milk · Amino acid composition and protein efficiency ratio, *J Nutr & Dietet*, 1966, 3, 117–20

SRINIVASAN, M R & ANANTAKRISHNAN, C P—Milk products of India, *Animal Husbandry Ser*, *Indian Coun agric Res*, No 4, 1964

STEVENS, A H—Concentrating whey for feed *Butter, Cheese & Milk Prod J*, 1951, 42, 32–38

SUBRAHMANYAN, V *et al*—Adulteration of ghee and its detection, *J sci industr Res*, 1952, 11A, 277–82

SUBRAHMANYAN, V *et al*—Casein from deteriorated skim milk powder, *Bull cent Fd technol Res Inst*, *Mysore*, 1952–53, 2, 96–99

SUBRAHMANYAN, V *et al*—Production of infant food and other products from buffalo milk in India, *Food Sci*, 1957, 6, 52–57.

SUNDARARAJAN, A R—Comparative nutritive value of milk and curd, *Indian J med Res*, 1950, 38, 29–36

SURE, B.—Relative supplementary values of dried food yeasts, soya bean flour, peanut meal, dried non-fat milk solids, and dried buttermilk to the proteins in milled white corn meal and milled enriched wheat flour, *J Nutr* 1948, 36, 65–73

SWAMINATHAN, M—The relative value of the proteins of certain foodstuffs in nutrition—Part II, *Indian J med Res*, 1937–38, 25, 57–79, Part III, ibid, 1937–38, 25, 381, Part V, ibid, 1938–39, 26, 107–12 Part VI, ibid, 1938–39, 26, 113

Symposium on the recent advances in the biochemistry of milk and milk products *Proc Soc biol Chem India*, 1954, 12, 11–72

TAWDE, S & MAGAR, N G—Nutritive value of high acidity ghee, *Ann Biochem*, 1957, 17, 177–78

THOMAS, C A.—Toned milk . A cheaper and nutritious milk for growing population in India, *Farm J*, *Calcutta*, 1967, 8(11), 22–23

THOMAS, C A—Tests for testing milk quality, *Indian Fmg*, *N S*, 1968–69, 18(10), 51–52

Thorpe's Dictionary of Applied Chemistry (Longmans, Green & Co, London), 12 vols, 4th edn, 1954–56

TRIVEDY, J N *et al*—Nutritive value of fresh rancid, high acid and bazar ghee, *Indian J Dairy Sci*, 1948, 1, 93

VARMA, K—Quality control of milk *Indian Fmg*, *N S* 1967–68, 17(12), 27–28

VENKATAPPAIAH, D—Non-protein Nitrogenous Constituents of Milk, M Sc Thesis, University of Bombay, 1951

VENKATAPPAIAH, D & BASU, K P—Non-protein nitrogenous constituents of milk—Part I Variation due to species, breed, individuality, season and stage of lactation, *Indian J Dairy Sci*, 1952, 5, 95–116

VENKATAPPAIAH, D & BASU, K P—Non-protein nitrogenous constituents of milk—Part II Effect of feeding high and low protein rations to cows and of putting the cows to work, *Indian J. Dairy Sci*, 1954, 7, 213–18

VENKATAPPAIAH, D & BASU, K P—Non-protein nitrogenous constituents of milk—Part III Effect of different heat treatments, *Indian J Dairy Sci*, 1955, 8, 1–8

VENKATESWARA RAO, R & BASU, K P—Effect of storage on the essential amino acid content of buffalo milk powder (spray-dried), with and without the addition of glucose (5%), *Proc Soc biol Chem India*, 1954, 12, 22–23

VENKATESWARA RAO, R & BASU, K P—Essential amino acid composition of total proteins and casein of cow and buffalo milk, *Proc Soc biol Chem India*, 1954, **12**, 20–21

VENKATESWARA RAO, R & BASU, K P—Essential amino acid content of milk products, *Proc Soc biol Chem India*, 1954 12, 21–22

VENKATESWARA RAO, R & BASU, K P—Studies on essential amino acids in milk, *Proc Soc biol Chem India*, 1954, **12**, 19–20

VERMA, I S & SOMMER, H H—Study of the naturally occurring salts in milk, *J Dairy Sci*, 1957, 40, 331–35

WATT, B K & MERRILL, A L—Composition of Foods Raw, Processed, Prepared, *Agric Handb*, *U S Dep Agric*, No 8, 1950

WEBB, B H & JOHNSON, A H (Editors)—Fundamentals of Dairy Chemistry (The Avi Publishing Co, Inc, Westport, Connecticut), 1965

WILLIAMS, K A—Oils, Fats and Fatty Foods Their Practical Examination (J & A Churchill Ltd London), 4th edn, 1966

WINTON, A L & WINTON, K B—The Structure and Composition of Foods (John Wiley & Sons, Inc, New York), Vol III, 1937

WU LEUNG, W *et al*—Chemical Composition of Foods Used in Far Eastern Countries, *Agric Handb*, *U S Dep Agric*, No 34, 1952

Brochure on the Marketing of Goat Hair in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 129, 1961

Brochure on the Marketing of Milk in the Indian Union (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Brochure Ser*, No 3, 1949

Brochure on the Marketing of Wool in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Brochure Ser*, No 2, 1948

Export of E I tanned hides and skins and by-products to U S A, *Leathers*, 1967, 8(5), 3–4

Goat hair grading and marking rules, 1952, *Indian Tr J*, 1953, 184(2433), 184

Grading and Marketing Butter and Ghee under Agmark (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), 1961

Grading under Agmark exports of Agmarked commodities from India during 1963, *Agric Marketing*, 1964, 7(1), 21, 24

विपणन एवं व्यापार

Handbook in Grading of Bristles in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 107, 1958

Handbook on the Quality of Indian Wool (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 33, 1942.

Heavier goatskin exports from India Pakistan, China supplies drop, *Tanner*, 1967, 22, 59–63

India—Handbook of Commercial Information (Dep of Commercial Intelligence & Statistics, Calcutta), 3 vols, 4th edn 1963–65

India to import more wool tops from Australia, *Wool News Bull*, No 6, 1950, 1

Indian bristle trade, *Madras agric J*, 1954, **41**, 80

Instructions on Grading and Marketing of Creamery Butter (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 105, 1958

Marketing of Bristles in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 137, 1962

Marketing of Wool in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 142, revised edn, 1965

Monthly Statistics of the Foreign Trade of India, Vols I and II (Dept of Commercial Intelligence & Statistics, Calcutta), March 1963, 1964, 1965, 1966, 1967 and 1968

New record set for India's exports, *J Ind & Tr*, 1964, **14**(5), 756–62

Report on the Marketing of Animal Fats and Certain Important By-products in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 124, 1961

Report on the Marketing of Bones and Bone-meal in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 115, 1958

Report on the Marketing of Cattle in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 53, 1946

Report on the Marketing of Ghee and Other Milk Products in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 85, revised edn, 1957

Report on the Marketing of Hides in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 164, 1967

Report on the Marketing of Meat in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 79, 1955

Report on the Marketing of Milk in the Indian Union (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 64, 1950

Report on the Marketing of Sheep and Goats in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 50, 1944

Report on the Marketing of Skins in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 80, revised edn, 1955

Report on the Marketing of Wool and Hair in India (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 54, 1946

Report on the Regulated Markets in India, Vol I, Legislation (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 91, 1956

Result of public sales of tanned East India goat and sheepskins 24th January, 1955, *Tanner*, 1955, 9(9), 13–14

Review of exports of East India tanned hides and skins and by-products to U K, *Leathers*, 1967, 8(5), 1–2

Tanned East Indian goat and sheepskins sales, *Tanner*, 1964, 19(2), 59

Trade in sheep and lambskins, *Leathers*, 1967, 8(7), 1–7

Varied trends in goatskins trade, *Tanner*, 1967, 21(12), 432–33, 435

What are the main types of wool recognized in world trade, *Indian Fmg*, 1947, 8, 35

Wool Grading Instructions (Directorate of Marketing & Inspection, Govt of India), *Marketing Ser*, No 1, 32, 1962

कुक्कुट पालन

ABBAS, F—Poultry birds can yield manure too, *Indian Fmg, N S*, 1964–65, 14(4), 19

ADHIYA, V—You can get four times more eggs, *Indian Fmg, N S*, 1965–66, 15(12), 16–17

ADLAKHA, S C—Serological investigation to determine respiratory infections of poultry in India, *Avian Dis*, 1966, 10, 401–04

Advances in farm research Poultry, *Indian Fmg, N S*, 1960–61, 10(10), 4

AGARWALA, O P—Poultry keeping and egg production, *Indian Poult Gaz*, 1956, 40(3), 15–26

AGARWALA, O P—Compare the effect of replacement of groundnut cake with mustard cake in layer ration on age first egg laid, hatchability and egg production throughout one year of laying, *Indian vet J*, 1964, 41, 751–53

ALMQUIST, H J—Amino acid requirements of chickens and turkeys A review, *Poult Sci*, 1952, 31, 966–81

ANSAARI, Z A & TALAPATRA, S K—Fish meal as a protein supplement in young ruminants, *Indian J Dairy Sci*, 1966, 19(4), 183–86

ARORA, V K *et al*—Comparative study of a variety of crossbreeds in poultry on hatchability and viability, *Indian vet J*, 1967, 44, 852–56

ARYA, P L & CHHABRA, M B—Spirochaetosis in poultry (A clinical observation), *Indian vet J*, 1959, 36, 32–35

Aseel—A valiant fighter, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, 11(10), 23

ATHAR ALI & IYER, S G—Poultry keeping in hot climates, *Indian Fmg*, 1948, 9, 407–10

AYKROYD, W R *et al*—The Nutritive Value of Indian Foods and the Planning of Satisfactory Diets, *Spec Rep Ser*, *Indian Coun med Res*, No 42, 1966

AYUPAN, A L—Tips on preserving eggs, *Philipp Fms & Gdns*, 1964, 1(8), 28

BAWA, H S—Graded eggs can raise your profit margin, *Indian Fmg, N S*, 1954–55, 4(9), 16–17

BENJAMINE, E V *et al*—Marketing of Poultry Products (John Wiley & Sons, Inc, New York), 5th edn, 1960

BENK, E *et al*—Natural β-carotene in fresh, dried, and frozen yolks of duck eggs, *Chem Abstr*, 1967, 67, 20706

BERI, S P—The natural method of hatching, *Indian Fmg, N S*, 1952–53, 2(2), 22

Better fowls at lower cost, *Indian Fmg, N S*, 1955–56, 5(6), 38

BHATTACHARYA, A N—Nutritional value of poultry litter in ruminants and poultry, *Diss Abstr*, 1965, 25, 6861–62

BLANCK, F C (Editor)—Handbook of Food and Agriculture (Reinhold Publishing Corp, New York), 1955

BLOCK, R J & MITCHELL, H H—The correlation of the amino acid composition of proteins with their nutritive value, *Nutr Abstr Rev*, 1946–47, 16, 249–78

BORA, L R & SHARMA, P K—Assam Muga silkworm, *Antharaea assamensis* Ww, pupae as protein supplement in chick ration, *Indian vet J*, 1965, 42, 354–59

BOSE, S—The marketing of poultry products, *Indian Poult Gaz*, 1950, 34(2), 3–5

BOSE, S—Processed cowdung as poultry feed, *Indian Fmg, N S*, 1954–55, 4(8), 13

BOSE, S—You can make eggs hold on longer, *Indian Fmg, N S*, 1958–59, 8(5), 15–16

BOSE, S—How they determine egg quality, *Indian Fmg, N S*, 1959–60, 9(9), 23–24

BOSE, S—Handling of eggs and poultry meat without refrigeration, *Pacif Sci Congr Abstr*, 1961, 10, 5

BOSE, S—Poultry supplement, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, 11(10), 41–48

BOSE, S—What makes poultry keeping paying, *Indian Live-Stk*, 1963, 1, 28–30

BOSE, S—Storage of eggs and poultry meat, *Indian Poult Gaz*, 1965, 48, 125–35

BOSE, S—You can get more eggs through cross-breeding, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, 18(3), 37–40

BOSE, S & TANDON, H P—Processed cow manure, an ingredient of poultry feed, *Proc Indian Sci Congr*, 1954, Pt 3, 233

BOSE, S *et al*—The effect of the addition of mango-seed kernel and jaman seed meal in a simplified poultry ration for egg production, *Indian Poult Gaz*, 1951, 34(4), 12–17

BOSE, S *et al*—The utilization of mango-seed kernel and *jaman* seed meal in a simplified poultry ration for growing chicken, *Indian J vet Sci*, 1952, 22, 247–50

BRADY, J C—Poultry farming along scientific lines, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(1), 44–45, 47

Breeding Egg production in the villages, *Annu Rep imp vet Res Inst*, *Izatnagar* (1946–47), 1955, 34, 35

Breeding and rearing of ducks, *Indian Fmg*, 1948, 9, 389

BUSS, E G—Artificial breeding of turkeys requires several careful steps, *Sci Fmr*, 1967, 14(2), 12

By-products from poultry and eggs rich field for chemurgic research, *Chemurg Dig*, 1957, 16(9), 10–12

CAMPBELL, A C R—Profitable Poultry Keeping in India and the East—A Complete Guide to Breeding and Keeping Poultry for Eggs or for the Table, with Practical Hints on Diseases (D B Taraporevala Sons & Co Pvt Ltd, Bombay), 7th edn, 1956

Cannibalism in poultry, *Indian Fmg, N S*, 1957–58, 7(8), 33

CAPPA, V—Nutritive value of *Urtica dioica* Analytical investigations and experimental tests on chickens, *Chem Abstr*, 1966, 65, 7701

CARD, L E—Poultry Production (Lea & Fabiger, Philadelphia), 8th edn, 1952

CAVE, N A G *et al*—Nutritional value of wheat milling byproducts for the growing chick—I Availability of energy, *Cereal Chem*, 1965, 42, 523–32

CAVE, N A G *et al*—Nutritional value of wheat milling byproducts for the growing chick—II Evaluation of protein, *Cereal Chem*, 1965, 42, 533–38

CFTRI develops a technique to improve keeping quality of eggs, *J Fd Sci & Technol*, 1966, 3, 118

CHATTERJEE, N—Nutrition of growing eggs of the hen, *Gallus domesticus*, *Ann Zool*, 1967, 5(4), 31–38

CHAUDHURY, D S & CHATURVEDI, M L—Utilization of waste blood from slaughter-houses in poultry feed, *Indian vet J*, 1966, 43, 247–49

CHISHOLM, M—Origin and history of the Indian runner duck, with discussion, *Rep Proc World Poult Congr* (1930), 1931, 848–53

CHUDY, J & BATURA, J—Nutrition studies on rapeseed oil—I Storage of erucic acid in the depot fats in chickens fed rapeseed oil, *Chem Abstr*, 1966, 65, 20588

CHUDY, J & CICHON, R—Nutrition studies on rapeseed oil—II Effect of rapeseed and soybean oil on the food lipemia in cocks, *Chem Abstr*, 1967, 66, 17414

Coccidiosis in chickens, *Indian Fmg, N S*, 1955–56, 5(7), 19

Cold storage of shell eggs, *Bull cent Fd technol Res Inst, Mysore*, 1955–56, 5, 32

COUCH, J R & STELZNER, H D—Preparation of poultry growth-promoting substances, *Chem Abstr*, 1964, 60, 11296

DANI, N P *et al*—Scope of broiler processing industry in India, *Indian Fd Packer*, 1965, 19(1), 35–38

DAS, J—Control of common poultry diseases in India, *Indian Poult Gaz*, 1951, 35(3), 19–24

DAS, J & PANDA, S N—*Salmonellosis in poultry in Orissa, Indian vet J*, 1962, 39, 218–21

DATTA, R K—Trace elements that your poultry need, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(3), 41–42

DATTA, S—Poultry research in 'Fifty Years of Science in India Progress of Veterinary Research' (Indian Science Congress Association, Calcutta), 1963, 100–17

DEO, P G—Roundworms of Poultry (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1964

DEO, P G & SRIVASTAVA, H D—Studies on the effect of different deficient diets on the natural resistance of chickens to *Heterakis gallinae* (Gmelin, 1790), Freeborn, 1923, *Indian J vet Sci*, 1963, 33, 225–29

DESAI, R N—Poultry breeding is yet in its infancy (a review of research), *Indian Fmg, N S*, 1968–69, 18(1), 45

DEVADAS, R P & SUTTON, T S—Effects of egg-yolk supplementation to the poor rice diet of S India on the growth of rats—I Fat extracted egg-yolk, *Indian J med Res*, 1951, 39, 51–58

DEVADAS, R P & SUTTON, T S—Effects of egg-yolk supplementation to the poor rice diet of S India on the growth of rats—II Egg-yolk extract, *Indian J med Res*, 1951, 39, 59–71

DHANDA, M R *et al*—Observations on the viability of freeze-dried Ranikhet (Newcastle) disease vaccine, *Curr Sci*, 1951, 20, 304

DHANDA, M R *et al*—Immunization of fowls with combined fowl pox and Ranikhet (Newcastle) disease vaccine, *Indian vet J*, 1958, 35, 5

DHARMARAJU, E—Turkeys can be bred in your backyard, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(7), 33

DIKSHIT, P K & PATWARDHAN, V N—Nutritive value of duck egg white, *Curr Sci*, 1950, 19, 18–19

DIKSHIT, P K & PATWARDHAN, V N—Nutritive value of duck egg white—Part II A comparison of the digestibility and growth promoting capacity of hen and duck egg whites, *Indian J med Res*, 1954, 42, 525–32

DRIGGERS, J C—Fish oil in poultry rations, *Chem Abstr*, 1955, 49, 10544

Drying of eggs, *Food Sci*, 1957, 6, 49–52

Duck farms, *Indian vet J*, 1963, 40, 176

Ducks for combating pests, *Madras agric J*, 1949, 36, 289

Eggs, *Bull cent Fd technol Res Inst, Mysore*, 1953–54, 3(3), 75

EVERSON, G J & SOUDERS, H J—Composition and nutritive importance of eggs, *Chem Abstr*, 1958, 52, 18946

Feeding poultry, *Indian Fmg, N S*, 1957–58, 7(12), 19

Feeding poultry—Common Errors, *Farm News Release, Indian Coun agric Res*, No 10, 1958

FEENEY, R E & HILL, R M—Protein chemistry and good research, *Advanc Fd Res*, 1960, 10, 23–73

Fowl pox, *Annu Rep, Indian vet Res Inst, Izatnagar*, 1949–50 13, 1955

Fowl typhoid, *Mysore agric J*, 1954, 30, 48

GAREWAL, N S—The role of minerals in poultry nutrition, *Indian Poult Gaz*, 1954, 38(1), 7–9

GAREWAL, N S—Bringing up chicks, *Indian Fmg, N S*, 1955–56, 5(10), 23–25

GAREWAL, N S—What eggs cost to produce, *Indian Fmg, N S*, 1957–58, 7(6), 18–19

GAREWAL, N S—Broilers do have a future in India, *Indian Fmg, N S*, 1959–60, 9(8), 10–11

GAREWAL, N S—Some scourges of poultry birds, *Indian Fmg, N S*, 1960–61, 10(11), 25–26

GAREWAL, N S—It's useful to know how to judge poultry birds and eggs, *Indian Live-Stk*, 1965, 3(4), 40–43

GAREWAL, N S—Poultry shows show-up the best birds, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, 18(1), 50–51

GAUD, G—Two new species of feather mites (Analgesoidea) from poultry in India, *Indian vet J*, 1961, 38, 65–70

GHOSH, G K—*Sclerorella typhi* infection in fowls, *Indian vet J*, 1962, 39, 11–14

GUPTA, B N—Draw up a breeding policy for your birds, *Indian Fmg, N S*, 1962–63, 12(1), 30–31

GUPTA, B N—Some points about poultry feed, *Indian Fmg, N S*, 1962–63, 12(4), 18–19

GUPTA, B N—Some points of poultry health, *Indian Fmg, N S*, 1962–63, 12(8), 25–27

GUPTA B N—Faulty "Foster-mothers" may play havoc in your brooders, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(1), 34, 63

GUPTA, B N—Rid your birds of roundworms, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(2), 19, 55

GUPTA, B R & BOSE, S—Studies on the internal qualities of thermo-stabilized and untreated hen and duck eggs despatched from distant places, *Indian J vet Sci*, 1962, 32, 143–51

GURUMURTHY, V—Some observations on fowl cholera in Andhra Pradesh, *Indian vet J*, 1962, 39, 438–42

HALEEM, M A *et al*—Studies on the economics of processing and preservation of poultry meat, *Annu Rep, Cent Fd technol Res Inst, Mysore*, 1966, 46–47

HALEEM, M A *et al*—Studies on the preparation of dehydrated minced poultry meat as a base for soup powder, *Indian vet J*, 1967, 44, 348

HARKIRAT SINGH—Personal care essential in poultry-keeping, *Indian Fmg, N S*, 1953–54, 3(11), 4

Hen's eggs in clinical use, *Sci & Cult*, 1947–48, 13, 245

HILDITCH, T P & WILLIAMS, P N—The Chemical Constitution of Natural Fats (Chapman & Hall, London), 4th edn, 1964

Indian-American firm makes first import of new disease-resistant U S chickens, *Foreign Agric*, 1966, 4(17), 9

IYENGAR, J R *et al*—Preparation of whole egg powder, egg white powder and egg yolk powder, *Annu Rep, Cent Fd technol Res Inst, Mysore*, 1966, 48–49

IYER, S G—Control of poultry mortality in India, *Indian Fmg*, 1948, 9, 335

IYER, S G—Economics of poultry keeping, *Indian Fmg*, 1949, 10, 498

IYER, S G—Improved indigenous hen evolved by selective breeding, *Indian vet J*, 1949, 26, 80–86

IYER, S G—Poultry industry in India, *Indian Poult Gaz*, 1949, 33(2), 11

IYER, S G—Poultry industry in India, *Indian vet J* 1950, 26, 281–87

IYER, S G—Egg production in Indian fowls (*desi*), *Indian Poult Gaz*, 1951, 35(2), 23–26

IYER, S G—Egg production in different breeds of poultry, *Proc Indian Sci Congr*, 1952, Pt 3, 199

IYER, S G—Hatchability in different breeds of fowls, *Proc Indian Sci Congr*, 1952, Pt 3, 200

IYER, S G—Poultry, *Souvenir, Indian Coun agric Res*, 1929–54, 106, 1954

IYER, S G—All about the egg, *Indian Fmg, N S*, 1954–55, 4(7), 29

IYER, S G—From 50 eggs to 120 A rational system of feeding of poultry can make for better poultry production, *Indian Fmg N S*, 1955–56, 5(8), 31

IYER, S G—Make the best of the better birds, *Indian Fmg, N S*, 1955–56, 5(1) 13

IYER S G—When Ranikhet comes, *Indian Fmg, N S*, 1955–56 5(4), 9, 26

IYER, S G—What a poultry keeper should know *Indian Live-Stk* 1963, 1(1) 31–32, 62

IYER, S G—Exploiting hybrid vigour for egg production, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(7), 30–32

IYER, S G & DOBSON, N—A successful method of immunization against Newcastle disease of fowls, *Vet Rec* 1940, 52, 889

IYER, S C & NARAYANAN, S—Influence of season on fecundity of Indian fowls in Northern India *Proc Indian Sci Congr* 1951, Pt 3, 244

IYER, S G & PARTHASARATHY, D—Poultry feeding in India, *Indian vet J*, 1950, 26, 378–84

IYER, S G & TANDON H P—A note on the rate of egg production in a strain of improved Indian fowls *Indian Poult Gaz* 1951, 35(3), 9–10

IYER, S G & TANDON, H P—Egg production of different breeds of poultry during summer months in Northern India *Indian Poult Gaz*, 1953, 37(2), 74–76

IYER, S G *et al*—Improvement in egg production *Proc Indian Sci Congr*, 1951, Pt 3 244

IYER S G *et al*—Poultry farming at high altitudes *Proc Indian Sci Congr*, 1953, Pt 3, 62

IYER, S G *et al*- Improvement of egg production in a strain of White Leghorn fowls by progeny testing of sires, *Proc Indian Sci Congr*, 1954, Pt 3, 232

JACOBS M B (Editor)—The Chemistry and Technology of Food and Food Products (Interscience Publishers Inc, New York) 3 vols, 2nd edn 1951

JANSEN, JAC—Duck plague (a concise survey), *Indian vet J*, 1964 41, 309–16

JEFFREY, E P—Blood and meat spots in chicken eggs, *Poult Sci* 1945, 24, 363

JOHARI, D C & SINGH B P—Studies on internal egg quality—I Influence of breed, season and age of the birds on internal egg quality *Indian vet J* 1968, 45, 139–44

JOHARI, D C & SINGH, B P—Studies on internal egg quality—II Heritability of internal egg quality traits and genetic correlation of egg weight and shape index with some important egg quality traits in White Leghorn pullets, *Indian vet J*, 1968, 45, 332–37

JOHN LYON, B S *et al*—Development of poultry diets which do not compete with human food resources, *Indian vet J*, 1966, 43, 830–32

JOLLES, J *et al*—Differences between the chemical structures of duck and hen egg-white lysozymes, *Chem Abstr*, 1967, 67, 18120

KADKOL, S B & LAHIRY, N L—Strained baby foods from poultry, *Indian Fd Packer*, 1964, 18(3), 1–3

KAHLON, A S & DWIVEDI, H N—Study of seven poultry farms in the Punjab, *Agric Situat India*, 1964–65, 19, 877–79

KANNAN, S—Wild ducks—A paddy pest, *Madras agric J*, 1950, 37, 38

KAR, A B—Artificial insemination of poultry, *Indian vet J*, 1949, 25, 310–20

KHAN, A W—Extractions and fractionation of proteins in fresh chicken muscle, *J Fd Sci*, 1962, 27, 430–34

KIRLOSKAR, M S—Raising-fine poultry for the table *Indian Fmg, N S*, 1957–58, 7(12), 14–15

KIRLOSKAR, M S & BHAGWAT, A L—It costs less to manufacture your own poultry feed, *Indian Live-Stk* 1965, 3(3), 35–36, 46

KRISHNAN, T S—Studies on egg defertilization *Proc Indian Sci Congr*, 1951, Pt 3, 245

KUMAR, J & KAPRI, B D—Genetic studies on internal egg quality and its relationship with other economic traits in White Leghorn birds—I Heritability and repeatability of egg quality, *Indian vet J* 1966, 43, 825–29

KUMAR, J & KAPRI, B D—Genetic studies on internal egg quality and its relationship with other economic traits in White Leghorn birds—II Hatchability and egg quality *Indian vet J*, 1967, 44, 219–24

KUMAR J & KAPRI, B D—Genetic studies on internal egg quality and its relationship with some of the economic traits in White Leghorn birds—III Economic traits *Indian vet J* 1967, 44, 847–51

KUPPUSWAMY S *et al*—Proteins in Foods *Spec Rep Ser Indian Coun med Res*, No 33, 1958

LAL Chand—Survey on poultry practices and production, *J vet. Anim Husb Res*, 1964 8, 1–8

LALL H K—Poultry development in Meerut Circle *Indian Fmg N S*, 1952–53, 2(9) 76–78

LIPSCOMB, J K & HOWES, H—Ducks and Geese *Bull Minist Agric Lond*, No 70, 1934

MCARDLE, A A—Poultry Management and Production (Angus & Robertson, Sydney) 1963

MCARDLE, A A—Feed problem for a small poultry keeper *Indian Live-Stk*, 1964, 2(2), 37, 44

MCARDLE A A—A Poultry Supplement—to be used in conjunction with the booklet 'A Poultry Guide for the Villager' for the use of the sideline and commercial type poultry operator (United Nations' Children's Fund, New Delhi), 1964

MCARDLE, A A—A Handbook for Poultry Officers in India (United Nations' Children's Fund, New Delhi) revised edn 1965

MCARDLE, A A & PANDA J N—Fertilizer from your poultry birds *Indian Fmg, N S*, 1963–64, 13(10) 3–5, 23

McArdle, A A & Panda, J N—A Poultry Guide for the Villager (Ministry of Food & Agriculture, Dep of Agriculture, New Delhi), 3rd edn, 1965

McCance, R A & Widdowson, E M—The Composition of Foods (Her Majesty's Stationery Office, London), 1960

Macdonald, A J & Bose, S—Growth promoting value of eggs, *Indian J med Res*, 1952, 30, 285

Macdonald, A J *et al*—Canning chicken, *Indian Fmg*, 1944, 5, 214–17

Mahadevan, T D—Use of egg cooling cabinet to preserve quality of eggs in summer season, *Indian Poult Gaz*, 1966, 50(2), 33–37

Mahadevan, T D & Bose, S—The determination of the percentage of edible flesh in the Rhode Island Red, White Leghorn and *Desi* (indigenous) cockerels at different stages of growth, *Indian J vet Sci*, 1951, 21, 39–41

Mahadevan, T D & Bose, S—Investigation on carcass yield of table poultry meat, *Indian J vet Sci*, 1967, 37, 122–30

Mahindru, K G—Leucosis is another fowl-killer, *Indian Fmg, N S*, 1958–59, 8(5), 26–27

Mahindru, K G—*Desi* vs exotic poultry breeds, *Indian Fmg, N S*, 1962–63, 12(5), 27

Majumdar, B N & Jang, S—Comparative manurial value of the excreta of some farm animals, *Ann Biochem*, 1963, 23, 91–94

Malik, D D—Poultry research projects undertaken at the Agricultural University, Hissar, *Indian Poult Gaz*, 1967, 50(4), 22–27

Mash without cereals Feed for poultry, *Farmer*, 1967, 13(3), 21-22

Mathur, P B—Cold storage of perishable foods, *Bull cent Fd technol Res Inst*, *Mysore*, 1954–55, 4, 215

Matz, S A—Cookie and Cracker Technology (The Avi Publishing Co, Inc, Westport, Connecticut), 1968

Mehta, I V P—Common poultry diseases in India, *Indian vet J*, 1951, 27, 337–41

Menon, P B—Poultry-lice, *Indian Fmg, N S*, 1953–54, 3(12), 12–13

Minor, L J *et al*—Chicken flavour The identification of some chemical components and the importance of sulphur compounds in the cooked volatile fraction, *J Fd Sci*, 1965, 30, 686–96

Mirza, I B—Vaccination against Ranikhet disease in poultry, *Indian vet J*, 1953, 30, 242–43

Model poultry farm in Maharashtra, *Indian Fmg, N S*, 1967–68, 17(7), 29

Mohan, R N—Cutaneous eruptions in rinderpest, *Indian J vet Sci*, 1948, 18, 27–32

Mohiuddin, Gh & Lone, M M—Incidence and control of endoparasites in ducks, *Indian vet J*, 1967, 40, 493–95

Moore, E N—Prosperity through poultry, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, 11(6), 13–15

Moore, E N—Routine vaccination can rout Ranikhet, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(1), 32–34

Morris, R C—Domestic poultry diseases now endemic in jungle, *J Bombay nat Hist Soc*, 1952–53, 51, 747–48

Morrison, F B—Feeds and Feeding (The Morrison Publishing Co, Ithaca, N Y), 22nd edn, 1956

Mukerji, A *et al*—Duck plague in West Bengal—Pts I & II, *Indian vet J*, 1963, 40, 457–62, 753–58

Mukerji, A *et al*—Report on outbreaks of duck virus hepatitis in West Bengal, *Indian vet J*, 1963, 40, 597–600

Mukherjee, D P & Bhattacharya, P—Semen studies and artificial insemination in poultry, *Indian J vet Sci*, 1949, 19, 79

Mukherjee, R & Parthasarathy, D—The digestible nutrients of certain cereal grains as determined by experiments on Indian fowls Studies on biological values of the proteins of certain poultry feeds, *Indian J vet Sci*, 1948, 18, 41–45, 51–56

Mukherjee, R *et al*—Studies on economic poultry rations—II Effect of the incorporation of pulse chunies in the ration of growing chicks, *Indian vet J*, 1966, 43, 533–37

Nagpal, M L *et al*—Studies for evolving economic poultry ration Feeding trials with economic broiler rations with ordinary and deoiled rice bran as cereal substitutes, *Indian vet J*, 1968, 45, 341–49

Naidu, P M N—Poultry Keeping in India (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1959

Nair, M K *et al*—Incidence and pathology of gout in poultry, *Kerala Vet*, 1964, 3(1), 12–14

Narain, R & Parthasarathy, D—Phytic acid in poultry feeds, *Proc Indian Sci Congr*, 1951, Pt 3, 244

Narasinga Rao, B S & Patwardhan, V N—Nutritive value of duck egg white—III The presence of a growth inhibitor in duck egg white, *Indian J med Res*, 1954, 42, 533–42

Narasinga Rao, B S & Patwardhan, V N—Nutritive value of duck egg white—IV Antitryptic and growth inhibiting properties of the duck egg white ovomucoid, *Indian J med Res*, 1954, 42, 543–44

Neb, Y B—Better production and handling of eggs for higher returns, *Indian Live-Stk*, 1963, 1(2), 30–31

Nilakantan, P R—Poultry industry and virus diseases, *Indian Poult Gaz*, 1950, 34(3), 9–13

Ogra, M S *et al*—Evolving economic rations for poultry, *Indian Live-Stk*, 1964, 2(1), 17–18

Pal, A K & Iyer, S G—Rational feeding of poultry, *Indian Poult Gaz*, 1952, 35(4), 5

Pal, A K & Ramachandra, G—A note on the feeding of *bajra* to chickens, *Proc Indian Sci Congr*, 1954, Pt 3, 230

Panda, B—Nutritive value of egg of chicken, *Farm J*, *Calcutta*, 1962, 3(5), 9–12

Panda, B—Turkey egg handling methods, *Indian vet J*, 1962, 39, 398

Panda, B—Production and processing of poultry and poultry products, *Poult Guide*, 1966, 3, 3–13

Panda, B—Marketing aspects of egg and poultry products, *Food Ind J*, 1967, 2(2), 12–13

Panda, B—Recent advances in preservation of eggs and its products in India, *Proc Indian Poult Sci Ass*, *New Delhi*, Dec 23, 1967, 7–11

Panda, B—Some newer sources of ingredients for poultry feed, *Farm J*, *Calcutta*, 1967, 8(7), 9–12

Panda, B—Marketing aspects of egg and poultry products, *Food Ind J*, 1968, 2(2), 12–13

Panda, B & Haleem, M A—Storage problems of poultry and poultry products, *Proc 1st Mysore State Poultry Show Seminar*, *Bangalore*, Dec 29, 1966

Panda, B & Reddy, M S—Studies on preservation of frozen egg yolk by enzymatic treatment, *Indian Fd Packer*, 1968, 22(2), 58–59

Panda, B *et al*—Effect of feeding egg powder obtained from fresh and preserved eggs on growth and feed conversion of albino rats, *Indian vet J*, 1965, 42, 264–66

PANDA, B *et al*—Preservation of shell eggs at room temperature and studies on their internal quality, *Indian vet J*, 1965, **42**, 291–92

PANDA, B *et al*—Processing poultry industrial wastes for animal feeds—I Preparation and utilization of egg shell powder 2nd conference of poultry research workers in India, March 1965, *Indian vet J*, 1965, **43**, 290–91

PANDA, B *et al*—Processing poultry industrial wastes for animal feeds—II Preparation of hatchery by-product meal from hatchery wastes 2nd conference of poultry research workers in India, March 1965, *Indian vet J*, 1965, **42**, 291

PANDA, B *et al*—Processing and utilization of egg shell as a source of calcium in animal feeds, *Indian vet J*, 1965, **42**, 773–77

PANDA, B *et al*—Studies on the effect of different coating materials on the keeping quality of eggs preserved at room temperature, *Proc World Poult Sci Congr*, Kiev, 1966

PANDA, B *et al*—Studies on quality of shell eggs marketed in Mysore city, *Indian vet J*, 1968, **45**, 953–57

PANDA, B *et al*—Studies on the effect of washing eggs with different detergent and sanitizer mixtures on microbial load and keeping quality of shell eggs, *Indian vet J*, 1969, **46** 608–15

PANDA, J N—Selection of breed for profitable egg production, *Indian Poult Gaz*, 1950, 33(4), 8–10

PANDA, J N—Poultry development in Orissa *Indian Poult Gaz*, 1954, 38(1), 4–6

PANDA, P C *et al*—Studies on the bacterial contamination of market eggs A preliminary report, *Indian vet J*, 1968, **45**, 439–43

PARKINSON, T L—Chemical composition of eggs, *J Sci Fd Agric*, 1966, **17**, 101–11

PARKINSON, T L—Effect of pasteurization on the chemical composition of liquid whole egg—I Development of a scheme for the fractionation of the proteins of whole egg, *J Sci Fd Agric*, 1967, **18**, 208–13

PARTHASARATHY, D & IYER, S G—Poultry feeding in India, *Indian Poult Gaz*, 1949, 33(?), 3

PARTHASARATHY, D & IYER, S G—Dried cow manure in the ration of growing chickens, *Indian J vet Sci*, 1951, **21**, 107

PARTHASARATHY, D & MUKHERJEE, R—The manganese content of some poultry feeds, *Indian J vet Sci*, 1948 **18**, 47–50

PATHAK, S P & VASISTHA, A K—Glyceride structure of Indian turkey (*Meleagris gallopava*) depot fat, *Indian Oil & Soap J*, 1965, **30**, 337–41

PATIL, R M—Quality table eggs in summer, *Poona agric Coll Mag*, 1950, **41**, 56

PATIL, R M—Handling and Marketing of Eggs, *Farm Bull*, *Indian Coun agric Res*, No 37, 1958

PATIL R M—More eggs—more birds, *Farmer*, 1960, **11**(1), 105–06

PATIL, R M—Poultry Co-operatives prosper in Maharashtra, *Indian Fmg, N S* 1968–69, **18**(10), 47

PATWARDHAN, M V & VIJAYARAGHAVAN, P K—Nutritive value of duck egg white—I Note on the essential amino acid composition of duck egg white, *Indian J med Res*, 1954, **42**, 521–23

PAUL, D L—A few words on duck-keeping in Assam, *Indian Fmg, N S*, 1954–55, 4(1), 24

PILLAI, C P—Modification of Newcastle disease (Ranikhet) virus, *Trop Agriculturist*, 1948 **104**, 190

PIPPEN, E L *et al*—Volatile carbonyl compounds of cooked chicken—I Compounds obtained by air entrainment, *Food Res*, 1958, **23**, 103–13

PIPPEN, E L & NONAKA, M—Volatile carbonyl compounds at cooked chicken—II Compounds volatilized with steam during cooking, *Food Res*, 1960, **25**, 764–69

Poulty Breeding in 'Handbook of Animal Husbandry (Indian Council of Agricultural Research, New Delhi), 1962

Poultry development, *Farmer*, 1962, 13(6), 24–27

Poultry diseases—*Annu Rep, imp vet Res Inst*, *Izatnagar*, 1946–47, 37–38

Poultry diseases, *Annu Rep Indian Coun agric Res*, 1948–49

Poultry farming, *Bull Indian cent Cocon Comm*, 1954–55, **8**, 300

Poultry feed, *Industr Bull*, 1969, **8**, 64–65

Poultry Feeding in Tropical and Subtropical Countries, *F A O & agric Developm Pap* (Food & Agriculture Organization, Rome), No 82, 1965

Poultry Research, *Agric Anim Husb Res*, *Indian Coun agric Res*, 1929–46, Pt 2, 179, 1952

Poultry Research, *Annu Rep Indian vet Res Inst*, *Izatnagar*, 1949–50, **7**

Poultry Science Number, *Indian Fmg, N S*, 1968–69, **18**(9)

Poultry ticks, *Indian Fmg, N S*, 1959–60, 9(9), 25

PRASAD, H & SRIVASTAVA, C P—Duck diseases in India with a note on an outbreak of Coli-bacillosis in Bihar, *Indian vet J*, 1964, **41**, 787–92

Processed Cow dung A Good Poultry Feed, *Farm News Release*, *Indian Coun agric Res*, No 122

RANGANATHAN, N *et al*—Study on the dressing of Rhode Island Red, White Leghorn and *Desi* cockerels, *Indian vet J*, 1967, **44**, 956–61

RANGHAN, S K—Poultry feeding and egg production, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, **11**(12), 26–27

Ranikhet disease, *Annu Rep, imp vet Res Inst*, *Izatnagar* 1946–47, 7

Ranikhet vaccination in India, *Indian Fmg*, 1949, **10**, 259

RAO, C G—Studies on pox in ducks in Andhra Pradesh, *Indian vet J*, 1965, **42**, 151–55

RAO, P V *et al*—Studies on economic poultry rations—I An investigation on the inclusion of rice polishings, guar meal and gram chuni in the ration of growing chicks, *Indian vet J*, 1966, **43**, 143–49

RAO, S B V – Protect your birds from fowl-pox, *Indian Fmg, N S*, 1957–58, 7(12), 11

RAO, S B V – Present position of infectious coryza in chickens in India, *Indian vet J*, 1958, **35**, 331–36

RAO, S B V—Protect your chicks against coccidiosis, *Indian Fmg, N S*, 1958–59, 8(4), 14–15

RAO, S B V—"F intranasal vaccine that immunizes chicks against Ranikhet, *Indian Fmg, N S*, 1961–62, **11**(11), 23–24

RAO, S B V—Psittacosis Ornithosis A new threat to poultry farmer, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(?), 25–?6, 52

RAO, S B V—When CRD strikes your flock, *Indian Live-Stk*, 1963, **1**(1), 35–36, 60

RAO, S B V *et al*—Note on the chick embryo vaccine against fowl-pox, *Indian vet J*, 195?–53, **29**, 387

RAO, S V S – Fish-meal in poultry nutrition *Farm J*, *Calcutta*, 1968, 9(3), 23–?4

Rapeseed meal for livestock and poultry—Review, *Publ Dep Agric Canada* No 1257, 1965

ग्रन्थ में प्रयुक्त अँग्रेजी तथा लैटिन शब्द

पशुधन
Livestock

गोपशु
Cattle

Bos indicus Linn , *Bovidae*, *Bovinae*, Holstein-Friesians, German Fleckvieh

भैंसें
Buffaloes

Bubalus bubalis Linn , *Mangifera indica*, *Syzygium cumini*, *Cassia tora*, *Tamarindus indica*, *Acacia arabica*, *Saccharum spontaneum*, *S munj*, *Carthamus oxyacantha*, *Arachis hypogaea*, *Madhuca indica*, *Crotalaria juncea*, *Enterolobium saman*, Shorthorn, *Haemorrhagic septicaemia*, *Pasteurella septica*, *Clostridium chauvoei*, *Cl septicum*, *Bacillus anthracis*, *Mycobacterium tuberculosis*, *Corynebacterium pyogenes*, *Bacterium coli*, *Pseudomonas aeruginosa*, *Streptococcus agalactiae*, *Staphylococcus aureus*, *Streptococcus dysgalactiae*, *S uberis*, *Brucella abortus*, *Vibrio foetus*, *Trichomonas foetus*, *Bovimyces pleuropneumoniae*, *Theileria*, *Trypanosoma evansi*, *Tabanidae*, *Stomoxys*, *Eimeria*, *E zurnii*, *E smithi*, *E cylindrica*, *E subspherica*, *E bovis*, *E bukidnonensis*, *E wyomingensis*, *E canadensis*, *E alabamensis*, *E braziliensis*, *E thianethi*, *E ellipsoidalis*, *E auburnensis*, *Babesiosis*, *Babesia bigemina*, *B argentina*, *B berbera*, *B bovis*, *B major*, *Theileria annulata*, *Hyalomma savignyi*, *Theileria mutans*, *Fasciola gigantica* Cobbold, *F indica* Varma, *F hepatica* Linn , *Schistosoma nasalis* Datta, *Lymnaea* spp , *Indoplanorbis* sp , *Paramphistomum explanatum*, *Gastrothylax crumenifer*, *Cotylophoron cotylophorum*, *Indoplanorbis exutus*, *Eurytrema pancreaticum* (Janson), *Moniezia expansa* (Rudolphi), *Avitellina centripunctata*, *Stilesia globipunctata*, *Haemonchus contortus* (Rudolphi), *Mecistocirrus digitatus* (Linstow), *Oesophagostomum* (*Bosicola*) *radiatum* (Rudolphi), *Monodontus* Molin, *Bunostomum* Railliet, *Ascaris vitulorum*, *Trichuris ovis*, *T globulosa*, *T discolor*, *Dictyocaulus viviparus*, *Habronema* spp , *Stephanofilaria assamensis* (Pande); *Onchocerca* spp , *Parafilaria bovicola*, *Culicoides* sp , *Hirudinaria* spp , *Dinobdella* spp , *Haemadipsa* spp , *Hypoderma* spp , *Ornithodoros* spp , *Hyppderma lineatum* De Vill , *Ornithodoros* Koch, *Hyalomma* Koch, *Haemaphysalis* Koch, *Psoroptes communis*, *Sarcoptes scabei* (de Geer), *Demodex folliculorum* (Simon) *Corynebacterium renale*, *Pfeifferella mallei*, *Saccharum officinarum*, *Pennisetum typhoideum*, *Coffea arabica*, *Avicennia officinalis*, *Brassica napus*, *Bassia latifolia*, *Manihot utilissima*, *Guizotia abyssynica*, *Sorghum vulgare*, *Cynodon plectostachyum*, *Cenchrus ciliaris*, *Brachiaria mutica*, *Pennisetum purpureum*, *Phaseolus atropurpureus*, *Atylosia scarabaeoides*, *Cenchrus ciliaris*, *C setigerus*, *Chrysopogon fulvus*, *Vicia sativa*, *Streptococcus lactis*, *Onosma hispidum*, *Withania coagulans*, *Bixa orellana*

भेड़ें
Sheep

Ovis orientalis Gmelin, *O musimon* Pallas, *O ammon* Linn , *Bovidae*, *Caprinae*, *Vigna aconitifolius*, *V aureus*, *V mungo*, *Dolichos biflorus*, *Sesbania aegyptiaca*, *Ischaemum pilosum*, *Clostridium welchii*, *Pasteurella haemolytica*, *Fusiformis nodosus*, *Spirochaeta penortha*, *Pasteurella multocida*, *Salmonella abortus-ovis*, *S typhimurium*, *Varestrongylus pneumonicus* Bhalerao, *Ixodes ricinus* (Linn), *Xanthium strumarium*

बकरियाँ
Goats

Capra spp , *Alpine*, *Nubian*, *Saanen*, *Toggenberg*, *Angora*, *Bacillus anthracis*, *Brucella melitensis*, *Vibrio foetus*, *Leptospira pamona*, *Corynebacterium ovis*, *Babesia* spp , *Fasciola gigantica* Cobbold, *Cotylophoron* spp , *Schistosoma* spp , *Moniezia* spp , *Bovicola* sp , *Ornithodoros* sp , *Boophilus* sp , *Sarcoptes* sp , *Chevon*, *Mohair*

सुअर
Pigs

Artiodactyla, *Suiformes*, *Suidae*, *Sus scrofa cristatus* Wagner, *S salvanius* (Hodgson), *Sus scrofa andamanensis* Blyth *Berkshire*, *Large White Yorkshire*, *Middle White Yorkshire*, *Landrace*, *Hampshire*, *Tamworth*, *Wessex saddleback*, *Trifolium alexandrinum*, *Trigonella* sp , *Dolichos biflorus*, *Pasteurella suiseptica*, *Erysipelothrix rhusiopathiae*, *Brucella abortus suis*, *Haemophilus influ-*

enzae suis, Escherichia coli, Streptothrix actinomyces, Macracanthorhynchus hirudinaceus Trevassos (=*Echinorhynchus gigas*), *Ascaris lumbricoides* Linn , *Metastrongylus elongatus* Duj , *Taenia solium* Linn , *Trichinella spiralis* (Owen), *Haematopinus suis* Linn , *Sarcoptes scabiei* (de Geer)

घोड़े और टट्टू
Horses and Ponies

Eohippus, Perissodactyla, Equidae, Equus Linn ; *Asinus, Dolichohippus, Hippotigris, Equus przewalskii* Poliakov, *Equus hemionus khur* Lesson, *E h onager* Boddaert, *Cicer crietinum* Linn

ऊँट
Camels

Artiodactyla, Camelidae, Camelus Linn , *Camelus dromedarius* Linn , *C bactrianus* Linn , *Vigna aconitifolius, V aureus, Cyamopsis psoralioides, Eruca sativa, Brassica campestris, Azadirachta indica, Dalbergia sissoo, Acacia arabica, Zizyphus nummularia, Sorghum vulgare, Trypanosoma evansi, Sarcoptes cameli*

याक
Yak

Bos (Poephagus) grunniens Linn , *Artiodactyla; Bovidae, Zo, Zum*

पशुधन उत्पादों का रसायन
Chemistry of Livestock Products

Penicillium roquefortii, Lactobacillus bulgaricus, Streptococcus diacetilactis

कुक्कुट पालन
POULTRY

Gallus gallus Linn , Langshan, Plymouth Rock; Wyandotte, Rhode Island Red, New Hampshire, Barred Plymouth Rock, White, Buff, Silver, pencilled, Partridge, Columbiar, Blue, Silver laced, Golden laced, Black, Sussex, Orpington, Australorp, Cornish, Dorking, Red cap, Leghorn, Minorca, Ancona, Spanish, Andalusian, Buttercup, Bantams, Spanish fowl, *Panicum miliaceum, Avena sterilis, Eleusine coracana, Zea mays, Shorea robusta*, Midget, *Salmonella derby, S bredeney, S montividio, S oranienberg, S newport, S bareilly, S anatis, S meleagridis, Salmonella gallinarum, Haemophilus gallinarum, Mycoplasma gallinarum, Ascaridia galli, Capillaria, Heterakis gallinae, Argus persicus, Hexamita meleagridis, Histomonas meleagridis, Trichomonas gallinae, Trypanosoma, T avium, T gallinarum, Leucocytozoon sabarazesi, L caulleryi, L andrewsi, Aegyptianella pullorum, Aspergillus fumigatus, Trichophyten megnini (Achorion gallinae)*

अन्य कुक्कुट
Other Poultry

White Campbell, Indian Runner, Muscovi, Pekin, Aylesbury, Rouens, Sheldrakes

हंस
Geese

Chinese, Toulouse, Embden.

पीरू
Turkeys

Norfolk, British White, Beltsville Small White; Broad Breasted Bronze, *Streptococcus, Staphylococcus, Micrococci, Bacilli; Pseudomonas, Achromobactor; Escherichiae, Proteus Aerobactor, Salmonella.*

अनुक्रमणिका